महात्मा गांधी

पूर्णाहुति

तृतीय खण्ड



प्यारेलाल

महात्मा गांधी : पूर्णाहुति
तृतीय खण्ड

लेखक
प्यारेलाल

अनुवादक
रामनारायण चौधरी

पहला संस्करण, मई १९७२

ISBN 81-7229-305-4

मुद्रक और प्रकाशक
जितेन्द्र ठाकोरभाई देसाई
नवजीवन मुद्रणालय
अहमदाबाद ३८००१४
फोन: +91-79-28540635 I 27542634
E-mail : jitnavjivan10@gmail.com I Website : www.navajivantrust.org

अर्पण

महादेव देसाईको

मैं ईश्वरकी पूर्ण एकतामें और इसलिए मानव-जातिकी एकतामें विश्वास करता हूं। . . . अतएव मैं दुष्टसे दुष्ट मनुष्यसे भी स्वयंको अलग नहीं कर सकता, न मैं सद्गुणीसे सद्गुणी मनुष्यके साथ अपनी एकरूपतासे इनकार कर सकता।

महात्मा गांधी

प्रकाशकका निवेदन

प्यारेलालजीके 'महात्मा गांधी : पूर्णाहुति' नामक ऐतिहासिक महत्त्व रखनेवाले ग्रन्थका द्वितीय खण्ड १९७१ में प्रकाशित हो चुका है। अब उसका यह तृतीय खण्ड पाठकोंके समक्ष रखते हुए हमें आनन्द होता है। इस ग्रन्थका चतुर्थ खण्ड भी हम यथासंभव जल्दी ही प्रकाशित करनेका प्रयत्न करेंगे।

इस तृतीय खण्डमें आये हुए मूल अंग्रेजी काव्यांशोंका हिन्दी पद्यानुवाद डॉ. अम्बाशंकर नागरने किया है, जिसके लिए नवजीवन ट्रस्ट उनका हृदयसे आभारी है।

१-५-१९७२

निवेदन

उत्तरदायित्वके भारसे मुक्त होनेकी तथा कृतज्ञताकी भावनाके साथ, जिसमें कुछ खेद भी मिला हुआ है, मैं 'महात्मा गांधी : पूर्णाहुति' के पीछे किया हुआ लगभग ८ वर्षका अपना परिश्रम यहां समाप्त करता हूं। इस ग्रन्थके पृष्ठोंमें जो कुछ शब्दबद्ध किया गया है, उसके अनुभवसे एक बार फिर गुजरना कोई सामान्य संतोष और सौभाग्यकी बात नहीं है।

१९५६ का वर्ष पूरा हुआ उसके पूर्व इस ग्रन्थके प्रथम २० अध्याय छप चुके थे और बाकीके अध्यायोंकी पांडुलिपिका मसौदा तैयार हो गया था।* २१वें तथा २२वें अध्यायोंमें निरूपित विषयके बारेमें एक ही छोटा अध्याय जोड़नेका मैंने विचार किया था। परन्तु जब मैं गांधीजीके जीवनके अंतिम दिवसोंकी उनकी प्रवृत्तियोंके महत्तवका विश्लेषण करने और उन्हें समझने बैठा, तब मुझे लगा कि उसे कामचलाऊ ढंगसे प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। इसका विकल्प यह था कि इन अध्यायोंमें निरूपित विषयका एक अलग ग्रन्थमें सांगोपांग विवेचन किया जाय। परन्तु बादमें मुझे पता चला कि जो भाग छप चुका था उसमें इस विषयकी पूरी चर्चा आगेके पृष्ठोंमें करनेका मैंने विश्वास दिलाया था। इसलिए अब ऐसा करना अनिवार्य हो गया था।

परन्तु छपे हुए पृष्ठों पर नजर डालनेसे अब मुझे लगता है कि ऐसा करना उचित ही है। 'पूर्णाहुति' का अंतिम ग्रन्थ इन अध्यायोंके बिना प्रकाशित करना वरसे रहित बारातके जैसा होता।

गांधीजीको यह बात बिलकुल पसंद नहीं थी कि उन्हें हिमालयकी चोटी पर चढ़ाकर दूर दूरसे उनकी पूजा की जाय, दूर दूरसे उनकी प्रशंसा की जाय, परन्तु उनका अनुसरण न किया जाय। केवल सैद्धान्तिक चिन्तनमें लीन रहना गांधीजीके स्वभावमें नहीं था। उनका तत्त्वज्ञान मूलतः कर्ममें समाया हुआ था। ऐसे महापुरुषका अनुसरण न करके केवल उनके व्यक्तित्वका यशोगान करना निरर्थक पूजाका रूप ग्रहण कर लेता है। गांधीजीकी आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक दृष्टि और प्रवृत्तियोंको केवल तफसीलकी बात समझना, स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बाद हमारे लिए उनका कोई अर्थ नहीं रहा और इसलिए वे क्षणिक हैं ऐसा मानकर उन्हें छोड़ देना उन सब बातोंको निरर्थक, बना देने जैसा है, जिन्हें सिद्ध करनेके लिए गांधीजीने अपनी आत्माको घिस डाला था। उनकी आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक प्रवृत्तियां, जिसे वे जीवनकी मूलभूत वस्तु मानते थे उसकी अभिव्यक्ति और अविभाज्य अंग

थीं। उनमें से एकको स्वीकार करके दूसरीको हम छोड़ नहीं सकते। वे भारतसे तथा भारतके द्वारा संसारसे क्या सिद्ध कराना चाहते थे, इस विषयमें उन्होंने थोड़ी भी शंका नहीं रहने दी है। खादी और चरखेके बारेमें, हाथ-उद्योगोंके बारेमें, ग्राम-जीवनके बारेमें तथा ये सब वस्तुएं जिन मूल्योंका प्रतिनिधित्व करती हैं उन मूल्योंके बारेमें—संक्षेपमें सर्वोदयके बारेमें अर्थात् समाजके अंतिमसे अंतिम मनुष्यको जो न मिल सके उसका खुदके लिए इनकार करनेके बारेमें अपनी श्रद्धा गांधीजी अंत समय तक प्रकट करते रहे; और आज जो कुछ 'प्रगति' के नामसे जाना जाता है और जिसके लिए हम गर्वका अनुभव करते हैं, उसमें से अधिकांशके बारेमें अपना अविश्वास भी वे अंत लक व्यक्त करते रहे। अपने अवसानके कुछ ही मास पहले उन्होंने कहा था कि अपनी श्रद्धाकी घोषणा मैं अंतिम क्षण तक करता रहूंगा तथा कब्रमें से भी इसके विषयमें आपसे बातें करता रहूंगा। इसलिए अपनी कब्रमें से भी वे हमसे किस विषयमें बातें करना चाहते थे, यह समझ लेना अपने प्रति और गांधीजीके प्रति हमारा कर्तव्य है।

इस ग्रन्थके पृष्ठोंमें बताई गई गांधीजीकी कुछ आशंकायें सत्य सिद्ध हो चुकी हैं। भारत और पाकिस्तानके बीच शस्त्रसज्ज होनेकी आत्म-घातक प्रतिस्पर्धा, भारत और पाकिस्तानके बीचके तनावका सत्तागुटों द्वारा उठाया जानेवाला अनुचित लाभ, नमक-कर तथा शराबबंदीके बारेमें पीछे हटनेके लिए किये जानेवाले निष्फल प्रयत्न, घुड़दौड़ और जुएकी शर्तोंसे पैसा कमाकर सरकारी खजाना भरनेकी जारी रखी जानेवाली दूषित पद्धति, प्रान्तोंके आपसी झगड़े और भाषाके प्रश्नसे सम्बन्धित झगड़े, अंग्रेजी भाषाके स्थान पर भारतकी राष्ट्रभाषाके रूपमें हिन्दुस्तानीकी स्थापनाको निष्फल बनानेके लिए शिक्षित लोगों द्वारा किये जानेवाले प्रयास, जन-जीवनसे सम्बन्धित आयोजनमें 'पंडितों' के शोरगुलमें जनताकी आवाजके डूब जानेका दिनोंदिन बढ़ता जा रहा खतरा और अंतमें भारतको सैनिक मनोवृत्तिवाला बनानेके लिए किया जानेवाला निरंतर प्रयास – इन सबने ठोस वास्तविकताओंका रूप ले लिया है। और सबसे बड़ी करुणता तो यह है कि प्रतिवर्ष ३० जनवरीके दिन शांतिके दूतको अर्पित की जानेवाली श्रद्धांजलिकी सरकारी विधि शस्त्रास्त्रों द्वारा सम्पन्न की जाती है! यह विधि भारतको सैनिक मनोवृत्तिवाला बनानेके प्रयत्नका प्रतीक कही जा सकती है। इस मार्गके अंतमें आगे क्या आनेवाला है, यह हमें जान और समझ लेना चाहिये। सावधानी रखना खतरेका सफलतासे सामना करनेकी तैयारी जैसा है।

अतः उपर्युक्त दो अध्याय तथा उपसंहार इस ग्रन्थमें जोड़नेका खतरा मैंने सोच-समझ कर ही लिया है। इसलिए जो पाठक कहानीके रसमें विक्षेप नहीं पड़ने देना चाहते, वे प्रथम वाचनके समय ये दो अध्याय अथवा केवल २१वां अध्याय छोड़ सकते हैं। कही जानेवाली बातका आवश्यकतासे अधिक विस्तार न हो, इस विचारसे उसका समर्थन करनेवाली बहुतसी सामग्री ग्रन्थके अंतमें 'टिप्पणियों' के रूपमें दी गई है । अपने आपमें भी उस सामग्रीका बहुत महत्त्व है।

इस ग्रन्थकी रचनामें विभिन्न मित्रोंने जो सहायता की है, उसके लिए मैंने ग्रन्थके प्रथम खण्डमें हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त की है। इसके सिवा, इस ग्रन्थकी पांडुलिपिको अंतिम रूप देनेमें रिचार्ड ग्रेग तथा संत निहालसिंहने जो दिलचस्पी ली है उसके लिए मैं उनका विशेष आभारी हूं।**

प्यारेलाल

अहमदाबाद,
१२-२-१९५८

---

* यह बात मूल अंग्रेजी ग्रन्थ 'महात्मा गांधी: दि लास्ट फेज़' के विषयमें लिखी गई है।

** मूल अंग्रेजी ग्रन्थकी प्रस्तावना।

अनुक्रमणिका

प्रकाशकका निवेदन

निवेदन

पहला भाग

अलग अलग रास्ते

१. विभाजनकी छाया

२. बढ़ता हुआ अंतर

३. विनाशके बीज

४. गांधीजी और नये वाइसरॉय

५. पूर्वका संदेश

६. फिर नये सिरेसे आरंभ

दूसरा भाग

विभाजनकी लड़ाई

७. दुबारा मोर्चे पर

८. अंतिम मोर्चेकी लड़ाई : श्रद्धाकी दूसरी कसौटी

९. पराजयकी लड़ाई

१०. सत्याग्रही असफलताको जानता ही नहीं

११. विषको अमृत बना लो

१२. 'वर्णसंकर स्थिति'

तीसरा भाग

सबने त्याग दिया

१३. 'प्रभातसे पहलेका घोरतम अंधकार'

१४. रामबाण उपायकी खोज

१५. भूलभुलैया

१६. 'एक आदमीकी सीमासेना'

१७. आकाश टूट पड़ा

पहला भाग

अलग अलग रास्ते

पहला अध्याय: विभाजनकी छाया

१

१९४७ के मार्च महीनेकी बात है। गांधीजीको बिहारमें आये लगभग एक सप्ताह हो गया था। वे अपनी सारी शक्ति लगाकर उस उपद्रव-पीड़ित प्रान्तके हिन्दुओं और मुसलमानोंके टूटे हुए दिलोंको जोड़नेका भगीरथ प्रयत्न कर रहे थे, ताकि वे फिरसे अपनी जन्मभूमिमें भाई-भाईकी तरह एकसाथ रह सकें। इतनेमें ही विधिकी विडम्बनासे उन्होंने पंजाबके विभाजनकी मांग करनेवाला कांग्रेसका प्रस्ताव अखबारोंमें देखा। उन्हें ऐसा अनुभव हुआ मानो उनके पैरों तले अचानक जमीन फट गई हो। उनसे न तो इस विषयमें कोई सलाह ली गई थी और न कोई संकेत इस सम्बन्धमें पहलेसे उन्हें किया गया था। २० मार्चको उन्होंने पंडित नेहरूको लिखा: "मेरा खयाल है कि मुझे कार्यसमितिके प्रस्तावके पीछे रहा कारण मालूम नहीं है।" सरदार पटेलको उन्होंने लिखा : "मैं इस प्रस्तावको समझ नहीं सकता।"

कांग्रेसके वरिष्ठ नेतागण विभाजनकी कल्पनाको भी अभिशाप मानते थे। तब फिर अविभक्त भारतके जिस आदर्शके लिए उन्होंने और कांग्रेसने भारी परिश्रम किया और बड़े बड़े बलिदान दिये, उसे अपने एक समयके मार्गदर्शकको कमसे कम औपचारिक ढंगसे भी पूछे बिना तिलांजलि देनेकी प्रेरणा उन्हें कैसे मिली ? उसकी विचारपूर्ण सलाहके विरुद्ध जाकर न केवल पंजाब और बंगालके विभाजनकी, परन्तु अन्तमें स्वयं भारतके भी विभाजनकी मांग उन्होंने क्यों की ?

इसका स्पष्टीकरण कुछ तो उस स्थितिमें खोजना होगा जो कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओंके सामने अन्तरिम सरकारमें और देशमें उपस्थित हुई और कुछ उस उत्तरोत्तर बढ़ती हुई खाईमें जो उनके और गांधीजीके दृष्टिकोणोंको अलग कर चुकी थी। परन्तु सबसे बड़ा स्पष्टीकरण उनकी इस प्रतीतिमें खोजना होगा कि ब्रिटिश सरकारकी २० फरवरी, १९४७ की घोषणाके मूलमें विभाजनकी बात गर्भित रूपमें है और राष्ट्रपिताने उससे बचनेके लिए जो रास्ता बताया है उस पर चलनेको अधिकांश कांग्रेस-जन तैयार नहीं हैं।

फरवरी १९४७ के दूसरे सप्ताहमें पंडित नेहरूने गांधीजीको लिखा: "हम हर तरफ बहे चले जा रहे हैं और कभी कभी मुझे शंका होती है कि हम सही दिशामें बह रहे हैं या नहीं। हम सतत संकटकी

अवस्थामें जी रहे हैं और परिस्थितियोंकी सच्ची पकड़ हमारे हाथमें नहीं है।" [पंडित नेहरूका पत्र गांधीजीको, १० फरवरी, १९४७]

देश राजनीतिक गतिरोधसे ऊब गया था। अन्तरिम सरकारके कांग्रेसी सदस्योंको अंग्रेज कर्मचारियोंके षड्यंत्रों और मुस्लिम लीगकी सदाकी अड़ंगेबाजीसे गहरी चिन्ता हो रही थी। उनके मनमें यह डर समा गया था कि यदि वर्तमान अवसर हम चूक गये, तो शायद ऐसा अवसर बहुत अर्से तक फिर न आये और अंग्रेज भारत छोड़ कर न भी जायं।

२० फरवरी, १९४७ की ब्रिटिश सरकारकी घोषणामें कहा गया था कि सत्ताका हस्तांतरण जून १९४८ तक पूरा कर दिया जायगा । इससे यह डर कम हो गया था। पं. नेहरूने एक सार्वजनिक वक्तव्यमें इस घोषणाको एक "बुद्धिमत्तापूर्ण और साहसपूर्ण" निर्णय बता कर उसका स्वागत किया था। [पं. नेहरूका अखबारी वक्तव्य, २२ फरवरी, १९४७] अब संविधान-सभा मुस्लिम लीगके बहिष्कारकी बाधाके बिना अथवा ब्रिटिश संसदके अंतिम रवेयेकी अनिश्चितताके बिना स्वाधीनताका संविधान रचनेके कार्यमें आगे बढ़ सकती थी। ब्रिटिश घोषणाके थोड़े ही समय बाद पंडित नेहरूने गांधीजीको एक पत्रमें लिखा:

> संभव है यह (घोषणा) ठीक वैसी ही न हो जैसी हमें पसंद आती । परन्तु सच बात यह है कि अन्तमें उन्होंने निर्णय और घोषणा कर दी कि वे भारत छोड़ कर जा रहे हैं। उनके हेतु कुछ भी हों, अब वे अपनी बातको बदल नहीं सकते और आगे जो कुछ भी हो वह सब इसीको ध्यानमें रखकर होना चाहिये। वर्तमान स्थिति यह है कि अगर मुस्लिम लीग संविधान-सभामें आती है, जिसकी बहुत कम संभावना है, तब तो कैबिनेट-मिशनका १६ मईवाला वक्तव्य लागू होता है। अन्यथा उस वक्तव्यकी मर्यादायें नहीं रह जातीं और संविधान-सभा विभागों (सेक्शन्स), समूहों (ग्रूप्स) और मर्यादित केन्द्रके बिना वास्तवमें एक सर्वसत्ताधारी संस्थाके रूपमें काम करती है। परन्तु एक मर्यादा है: उसके निर्णय उन्हीं भागों पर लागू होंगे, जिनके प्रतिनिधि उसमें होंगे। जब हम अन्तिम बार मिले थे तब आपने लगभग ऐसी ही बात कही थी। [पं. नेहरूका पत्र गांधीजीको, २४ फरवरी, १९४७]

यहां तक तो ठीक था। परन्तु भारतके विभाजनकी जो संभावना कैबिनेट-मिशनकी योजना (१६ मई, १९४६) में नहीं थी, वह २० फरवरी, १९४७ वाली घोषणासे पैदा हो गई। इस हद तक लीगकी "विभाजन करो और चले जाओ" की मांगको मान लिया गया था और इसलिए लीगने उसका स्वागत किया था। 'लंदन टाइम्स' ने इस विषयमें यह टीका की : "श्वेतपत्रकी भाषासे मुस्लिम पृथक्तावादको प्रोत्साहन मिल रहा है।" [दि इंडियन एन्युअल रजिस्टर, १९४७, खण्ड - १, पृ. १००] परन्तु प्रश्नका यह पहलू कांग्रेसके उत्साहके पहले उबालमें कुछ समयके लिए पीछे हटा दिया गया। ब्रिटिश सरकारका वक्तव्य इस मुद्दे पर और कई दूसरे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर काफी अस्पष्ट था; उससे वह सामान्य संतोष मंद नहीं पड़ा, जिसके साथ कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनोंने उसका स्वागत किया था। पंडित नेहरूके विश्लेषणको आगे देखें:

> इसका यह परिणाम हो सकता है कि पहले भारतीय संघ बंगाल, पंजाब और सिन्धके सिवा सारे भारतके लिए स्थापित किया जाय । अवश्य ही संघका संविधान सब पर लागू होगा या यों कहिए कि सबके लिए खुला रहेगा; परन्तु शायद ये प्रान्त उसमें शरीक होना पसन्द न भी करें। ऐसा हुआ तो दूसरा प्रश्न यह पैदा होता है कि बंगाल और पंजाबके वे हिस्से (पश्चिम बंगाल और दक्षिण पंजाब), जिनका संविधान-सभामें पूरा प्रतिनिधित्व है, संघके अंग होने चाहिये। इसका अर्थ होगा पंजाब और बंगालका विभाजन । यह संभव नहीं है कि जिन्ना या मुस्लिम लीग इस विकलांग पाकिस्तानके लिए राजी हो जायंगे। . . . इसलिए उन्हें अन्तमें इन दो बातोंके बीच चुनाव करना होगा – या तो वे इसे स्वीकार करें या संभवत: विशेष शर्तों पर भारतीय संघमें शरीक हों। दूसरे शब्दोंमें, बंगाल और पंजाबकी स्थिति उस सूरतमें लगभग किसी देशी रियासतके जैसी होगी। [पं. नेहरूका पत्र गांधीजीको, २४ फरवरी, १९४७]

पूरा चित्र सामने आने तक संपूर्ण घोषणा पर अपना निर्णय न देकर कांग्रेस कार्यसमितिने अपना यह विचार दोहरा दिया कि "सत्ताका हस्तांतरण संघर्षहीन हो इसके लिए उससे पहले अन्तरिम सरकारको व्यवहारमें औपनिवेशिक सरकार (डोमिनियन गवर्नमेन्ट) मान लिया जाय, उसका सरकारी नौकरियों और प्रशासन पर कारगर नियंत्रण हो और वाइसरॉय तथा गवर्नर-जनरल सरकारके वैधानिक अध्यक्षके रूपमें काम करें।" [कांग्रेस कार्यसमितिका प्रस्ताव, ८ मार्च, १९४७; 'कांग्रेस बुलेटिन', २६ मार्च, १९४७, पृ. ३] उसने यह भी मांग की कि "केन्द्रीय सरकारको पूरे अधिकार और दायित्ववाले

मंत्रि-मंडलकी तरह काम करना चाहिये। अन्य कोई भी व्यवस्था सुशासनके साथ सुसंगत नहीं है और राजनीतिक तथा आर्थिक संकटोंसे परिपूर्ण संक्रमण-कालमें दूसरी कोई व्यवस्था खास तौर पर खतरनाक सिद्ध होगी।" [वही] कांग्रेस कार्यसमितिने फिरसे इस बातकी पुष्टि की कि ६ दिसम्बर, १९४६ को ब्रिटिश सरकारने योजनाका जो अर्थ बताया उसके साथ १६ मई, १९४६ वाली ब्रिटिश कैबिनेट-मिशनकी योजना उसे स्वीकार है; परन्तु उसने इस बात पर जोर दिया कि संविधान-सभाका आधार वास्तवमें स्वेच्छापूर्ण है। दबाव या जबरदस्तीके डरसे ही अविश्वास, संदेह और संघर्ष उत्पन्न हुआ था। यदि वह डर दूर कर दिया जाय, तो भारतके भविष्यका इस तरह फैसला करना आसान हो जायगा, जिससे सब कौमोंके अधिकारोंकी रक्षा हो सके और सबको समान अवसर मिले: "यह स्पष्ट कर दिया गया है कि संविधान-सभाका बनाया हुआ संविधान उन्हीं प्रदेशोंके लिए लागू होगा जो उसे स्वीकार करेंगे। . . . कोई भी प्रान्त अथवा प्रान्तका भाग संविधानको स्वीकार करके भारतीय संघमें शामिल होना चाहे, तो उसे ऐसा करनेसे रोका नहीं जा सकता । इस प्रकार दोनों ही तरफ कोई जबरदस्ती नहीं होनी चाहिये। फिर तो लोग अपने भविष्यका फैसला खुद ही कर लेंगे।" [वही, पृ. ४]

२४ फरवरी, १९४७ को गांधीजीने पंडित नेहरूको एक पत्र लिखा। यह पंडित नेहरूका उसी तारीखका पत्र गांधीजीको मिलनेसे पहलेकी बात है। गांधीजीने अंग्रेजोंकी अंतिम घोषणा पर अपनी प्रतिक्रिया बताते हुए कहा था कि "बहुत कुछ आधार इस बात पर रहेगा कि: (१) संविधान-सभा क्या कर सकती है; (२) अन्तरिम सरकारके रूपमें आप लोग क्या कर सकते हैं; और (३) क्या ब्रिटिश सरकारमें सचाई है और वह सचाई पर टिकी रहेगी ? " (देखिए खण्ड-२, पृ. २८०)

इस समय मुस्लिम लीगकी सरकारें केवल दो प्रान्तोंमें अर्थात् बंगाल और सिन्धमें ही थीं। सिन्धमें लीगी मंत्रि-मंडलकी स्थिति डावांडोल थी और उसे गवर्नर प्रान्तीय विधान-सभाकी बैठकको लगातर स्थगित रख कर ही पदारूढ़ रख रहे थे। बंगालमें संयुक्त सर्वसत्ताधारी बंगालके पक्षमें लोगोंकी भावना बढ़ रही थी और सरकारी क्षेत्रोंमें यह भय था कि संभवतः पूर्व बंगाल अन्तमें पाकिस्तानकी योजनासे बाहर निकल जाना चाहेगा। [एलन कैम्पबेल-जॉन्सन, 'मिशन विथ माउन्टबेटन', लंदन, १९५१, पृ. ६५] पंजाबमें यूनियनिस्ट-कांग्रेस-सिक्ख दलकी मिश्र सरकार सत्तारूढ़ थी। इससे साम्प्रदायिक जोड़-तोड़का अंत हो गया था और पाकिस्तान-विरोधी भावना जोर पकड़ रही थी। [वही] यदि मुस्लिम लीगका संविधान-सभाका बहिष्कार जारी रहता, तो आसामके, उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्तके

तथा कैबिनेट-मिशन योजनाके अनुसार विभाग (सेक्शन) 'ब' और 'क' के अंतर्गत पश्चिम बंगाल तथा पूर्व पंजाबके गैर-मुस्लिम बहुमतवाले जिलोंके गैर-लीगी प्रतिनिधि तथा कुछ देशी राज्योंके प्रतिनिधि विभाग 'अ' के प्रतिनिधियोंके साथ संविधान-सभामें शामिल हो जाते। इस प्रकार बनाया हुआ संविधान उन क्षेत्रों पर अपने आप लागू होता, जिनका संविधान-सभामें पूरा प्रतिनिधित्व था और यदि वह संविधान बिलकुल न्यायपूर्ण और उदार होता, तो पंजाब जैसा प्रान्त भी उसकी ओर आकर्षित हो सकता था। और संयुक्त बंगाल यदि अपने लिए सर्व-सत्ताधारी राज्यके दरजेके पक्षमें निर्णय करता, तो पाकिस्तानकी योजनाके लिए बड़ा भूभाग बाकी नहीं बचता और अन्तमें देशका विभाजन टल सकता था।

स्थितिका एक बेचैन करनेवाला पहलू प्रान्तोंमें मुस्लिम लीग द्वारा दी गई हिंसाकी धमकी थी। इसलिए सारा दारमदार इस बात पर था कि अन्तरिम सरकार अव्यवस्थाकी शक्तियोंको कहां तक नियंत्रणमें रख सकती है और कांग्रेसी प्रान्तोंमें न्यायपूर्ण कानूनका शासन कहां तक अमलमें ला सकती है – जिससे बिहार जैसे प्रान्तोंमें मुसलमानोंके उचित डर दूर किये जा सकें। मुस्लिम लीगने बंगाल और हालमें ही पंजाबकी तरह सारे देशमें अव्यवस्था फैलानेकी धमकी दे रखी थी। इसलिए केन्द्रमें सुदृढ़ और एकरागवाली सरकारका होना और सरकारी नौकरियों तथा प्रशासन-तंत्र पर उसका कारगर नियंत्रण रहना अत्यावश्यक था। ऐसी अन्तरिम सरकार, जो एक-दूसरेसे झगड़नेवाले विरोधी वर्गोंमें बंटी हुई हो और जिसका सरकारी नौकरियों पर कोई कारगर नियंत्रण न हो, इस विकट स्थितिका सामना नहीं कर सकती थी। ऐसी परिस्थितिमें अन्तरिम सरकारके लीगी सदस्योंकी स्थिति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो गई थी।

कांग्रेसने यह दृष्टिकोण अपनाया कि ब्रिटिश सरकारकी २० फरवरीवाली घोषणासे १६ मई, १९४६ वाली कैब्रिनेट-मिशनकी योजना रद नहीं होती । वह योजना अब भी मौजूद थी। उसने सिर्फ एक ऐसा सूत्र पेश किया था जिससे यदि एक निश्चित तारीख तक सारे भारतको स्वीकार होनेवाला कोई सर्वसम्मत हल संविधान-सभा द्वारा प्रस्तुत न किया जा सके, तो भारतीय प्रश्नका हल अपने आप हो जाय । इसलिए अन्तरिम सरकारके मुस्लिम लीगी प्रतिनिधियोंको या तो कैबिनेट-मिशनकी योजनाके अनुसार संविधान-सभामें आना चाहिये या अन्तरिम सरकार में से निकल जाना चाहिये ।

ब्रिटिश सरकार अब तक इस प्रश्नको टालती रही थी। क्या अब वह इसका सीधा सामना करने और आवश्यक कदम उठानेको तैयार थी?

जब गांधीजीने ब्रिटिश सरकारकी सचाई और उस पर स्थिर रहनेकी उसकी शक्तिके प्रश्नकी ओर ध्यान खींचा तब उनका यही मतलब था। श्री ब्रेल्सफोर्डके शब्दोंमें कहें तो ब्रिटिश नीति यह थी कि "सत्ताकी कुंजी अपने हाथमें अंत तक उसी प्रकार रखी जाय, जैसे गदरके बाद तोपखाना गोरोंके हाथमें रखा गया था।"[ब्रेल्सफोर्ड, 'सब्जेक्ट इंडिया', बंबई, १९४६, पृ. १९५] इस नीतिके अनुसार ब्रिटिश सरकारने भारतको सत्ता सौंपने तक तीन ब्रह्मास्त्र अपने हाथमें रख छोड़े थे: (१) सरकारी नौकरियों पर नियंत्रण; (२) सार्वभौम सत्ता (पेरेमाउन्टसी); और (३) सेना पर नियंत्रण। इनका उपयोग भारतीय तत्त्वोंको बिखेरनेमें भी किया जा सकता था और जोड़नेमें भी किया जा सकता था। प्रश्न यह था: वाइसरॉय और गवर्नर अपनी विशाल सत्ताका उपयोग भारतको तोड़नेमें करेंगे या इस परिणामको टालनेमें ? संक्रमण-कालमें वे खुद राज्य करेंगे या दूसरोंको करने देंगे ? अथवा एक तरफ तो बुनियादके नीचे बारूद इकट्ठी होने देंगे और दूसरी तरफ नि:स्वार्थ तटस्थताका ढोंग करते हुए अनुकूल स्थानसे कभी एक दलके साथ और कभी दूसरेके साथ तब तक सौदा करते रहेंगे जब तक अन्तमें दोनों पक्ष मजबूर होकर ऐसा हल न स्वीकार कर लें, जो दोनोंमें से किसीको भी वास्तवमें पसन्द न हो और जो दोनोंके हितोंके लिए हानिकारक हो ? पं. नेहरूने गांधीजीको लिखा, "हमें अभी तक मालूम नहीं" कि:

> ब्रिटिश मंत्रि-मंडलने लॉर्ड माउन्टबेटनको क्या आदेश दिया है। तर्कशुद्ध आदेश तो यही हो सकता है कि वाइसरॉय एक वैधानिक अध्यक्षकी तरह काम करें और सरकारको औपनिवेशिक सरकारकी तरह काम करने दें। इसका अर्थ यह है कि सरकारका कोई नेता होना चाहिये। इससे भी मुस्लिम लीगके साथ संघर्ष खड़ा होगा। [पं. नेहरूका पत्र गांधीजीको, २४ फरवरी, १९४७]

ब्रिटिश सरकारने दोनोंमें से एक भी कार्य नहीं किया। उस समय कांग्रेसने भी अपनी मांग पर अधिक जोर नहीं दिया, क्योंकि वह मुस्लिम लीगको संविधानसभामें लानेका अन्तिम प्रयत्न कर लेनेके लिए उत्सुक थी । पंडित नेहरूके पत्रमें आगे कहा गया था:

> हमारा सामान्य दृष्टिकोण फिलहाल यह है कि निजी तौर पर कुछ मुस्लिम लीगी नेताओंसे मिल कर उन्हें संविधान-सभामें आनेके लिए समझानेकी कोशिश की जाय । यदि वे

आनेसे इनकार करें, तो उनके अन्तरिम सरकारमें रहनेके प्रश्नका फिरसे सामना करना पड़ेगा। अभी तो हम उनके इस्तीफे पर जोर नहीं दे रहे हैं, क्योंकि इससे तो सहयोगकी सारी बात खतम हो जायगी। परन्तु हर हालतमें अगले महीनेमें इस बातका इधर या उधर निबटारा हो जाना चाहिये।

इसके अनुसार कांग्रेस कार्यसमितिने मुस्लिम लीगको संविधान तैयार करनेके कार्यमें सम्मिलित होनेका फिरसे निमंत्रण दिया और लीगसे कहा कि वह कांग्रेसके प्रतिनिधियोंसे मिलनेके लिए अपने प्रतिनिधि नामजद करे, ताकि सत्ताके आगामी हस्तांतरणसे पैदा होनेवाली परिस्थितियों पर विचार किया जा सके।

इस प्रकार कांग्रेस निराशामें भी लीगके सहयोगकी आशा रखकर विलम्ब कर रही थी, परन्तु मुस्लिम लीग बड़ी तेजीसे अपना काम कर रही थी। लन्दन 'टाइम्स ' ने २८ नवंबर, १९४६ को ही सम्पादकीय टिप्पणीमें लिखा था:

> अंग्रेज किसी एक ही राजनीतिक पार्टीको दूसरे समूहोंके अधिकारोंका ध्यान रखे बिना जिम्मेदारी सौंपना स्वीकार नहीं कर सकते; और न हिन्दुओं द्वारा नियंत्रित केन्द्रीय सरकारके निरंकुश विवेक पर मुस्लिम बहुमतवाले प्रान्तोंकी सरकारोंको छोड़ सकते हैं। यदि राज्यपत्र (स्टेट पेपर) में बताये गये ढंगका समझौता नहीं हो सकता, तो **भारतकी एकताको – जो पिछली शताब्दीकी एक महान सिद्धि है, प्राथमिक न्यायके उच्चतर हितों पर बलिदान करना होगा**। [दि इंडियन एन्युअल रजिस्टर, १९४६, खण्ड- २, पृ. ८६] (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

मुस्लिम लीगको इस ब्रिटिश विचारधाराका और अपनी शक्तिका पूरा भान था । दिसम्बर १९४६ की लंदन-वार्ताओंकी असफलताके समयसे ही मुस्लिम लीगको एक तरहसे निश्चित रूपमें यह मालूम हो गया था कि यदि मुस्लिम लीग संविधान-सभाका बहिष्कार करती रही, तो कैबिनेट-मिशनकी योजना पर अमल नहीं किया जायगा। उसके पास यह जाननेके लिए भी काफी सामग्री थी कि उस सूरतमें जिन क्षेत्रोंका संविधान-सभामें प्रतिनिधित्व नहीं होगा उनमें सत्ता उन सरकारोंको हस्तांतरित की जायगी जो उस समय वहां पदारूढ़ होंगी। सम्राट्की सरकारकी २० फरवरीवाली घोषणाके संदर्भमें इसका यह अर्थ होता था कि जून १९४८ तक "पूरा प्रतिनिधित्व रखनेवाली" संविधान-सभाके द्वारा राज्यपत्रमें बताया

गया समझौता नहीं हुआ, तो सत्ता उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्तमें डॉ. खानसाहबकी कांग्रेसी सरकारको और पंजाबमें मलिक खिजरहयात खांकी गैर-लीगी यूनियनिस्ट-कांग्रेस-सिक्ख मिश्र सरकारको हस्तांतरित की जा सकती थी। इसलिए २० फरवरीवाली ब्रिटिश सरकारकी घोषणाकी मुस्लिम लीग पर यह प्रतिक्रिया हुई – उसने इस घोषणाको इस बातका संकेत समझा कि जिन प्रान्तोंको वह पाकिस्तानके लिए मांगती थी वहांके गैर-लीगी मंत्रि-मंडलोंको उखाड़ कर उनके स्थानमें पुन: लीगी मंत्रि-मंडल स्थापित करनेका प्रयत्न किया जाय, ताकि जब जून १९४८ तक अंग्रेज देशकी सत्ता भारतीयोंके हाथमें सौंपें तब उस घोषणाके अनुसार लीगी मंत्रि-मंडलोंको "उत्तराधिकारी सरकारें" मान लिया जाय।

२

मुस्लिम लीगके सीधी कार्रवाई करके मौजूदा मंत्रि-मंडलोंको उखाड़नेके कार्यक्रमका प्रभाव मुख्यतः आसाम, पंजाब और उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्तके तीन प्रदेशों पर पड़ा।

६ जनवरीके कांग्रेस महासमितिके प्रस्तावमें कैबिनेट-मिशनकी योजनाका ब्रिटिश सरकार द्वारा किया हुआ अर्थ मान लिये जानेके बाद आसामके मुख्यमंत्रीने घोषणा की थी कि आसाम विभाग (सेक्शन) में बैठनेको तैयार है; परन्तु वह लीगसे विभागके कार्यके बारेमें वही गारन्टी चाहता है जो मुस्लिम लीग संघ (यूनियन) के संविधानमें कांग्रेससे मांगती है। इसका उत्तर आसामकी मुस्लिम लीगने यह दिया कि दूसरे ही दिन – अर्थात् ८ जनवरी, १९४७ को – आसाम सरकारके विरुद्ध "सीधी कार्रवाई" आरम्भ करनेका प्रस्ताव पास किया। सम्राट्की सरकारकी २० फरवरीवाली घोषणासे इस आन्दोलनको और भी उत्तेजन मिला और ३० मार्चको आसामके तमाम जिलोंमें "सविनय कानून-भंग आन्दोलन" शुरू कर देनेका निर्णय आसाम मुस्लिम लीगकी कार्यसमितिने अपनी शिलांगकी बैठकमें किया। परन्तु प्रान्तीय मंत्रि-मंडलने स्थितिका सफलतापूर्वक मुकाबला किया और आसाम साम्प्रदायिक अग्निकांडसे बच गया।

पंजाबमें मुख्यमंत्री मलिक खिजरहयात खां मुस्लिम लीगकी दबाव डालनेवाली चालबाजियोंका शुरूसे ही प्रतिकार करते रहे थे और उसकी हां में हां मिलानेसे इनकार करते आये थे। यहां भी मुस्लिम लीगी मंत्रि-मंडल या लीगके अनुकूल मंत्रि-मंडल प्राप्त करनेके सारे वैधानिक उपाय जब असफल सिद्ध हुए तो हिंसाका आश्रय लिया गया। जुलाई १९४६ के लीगके सीधी कार्रवाईवाले प्रस्तावके थोड़े ही

समय बाद एक प्रान्तीय संघर्ष-समिति बनाई गई। मुस्लिम वकीलोंसे कहा गया कि वे "आघात सैनिक" (शॉक ट्रूपर्स) बनकर निकल पड़ें और "भावी संग्राम" के लिए आम लोगोंको तैयार करें; मुसलमान स्त्रियोंको "प्रारम्भिक चिकित्सा" सीखनेका आदेश दिया गया; मुस्लिम लीग नेशनल गार्ड्स नामक स्वयंसेवक-दल संगठित किया गया; उन्हें सेनाकी बेकार समझकर बेच दी जानेवाली फौलादकी टोपियां खरीद कर दी गईं; वर्दियां पहना कर फौजी कवायद सिखाई गई। उनमें से बहुतोंको तमंचों और बन्दूकोंसे सुसज्जित किया गया। [खोसला, 'स्टर्न रेकनिंग', मद्रास, १९५१, पृ. ९५] राष्ट्रीय स्वयं-सेवक संघने भी सैनिक ढंगका अपना संगठन शुरू कर दिया। दिसम्बर १९४६ और जनवरी १९४७ के बीच मुस्लिम लीग नेशनल गार्डोंके फौजी ढंगके जुलूस और कवायदें लाहौरके मोहल्लोंमें खूब दिखाई देने लगीं।

गैर-सरकारी सेनाओंके इस प्रकार बढ़नेसे प्रान्तीय सरकार घबराई और जनवरीके आखिरी सप्ताहमें उसने मुस्लिम नेशनल गार्ड्स और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ दोनोंको गैर-कानूनी संस्थाएं घोषित कर दिया । राष्ट्रीय स्वयं-सेवक संघने इस आज्ञाको मान कर अपने केन्द्रकी तलाशी लेने और उसको ताला लगाने दिया। परन्तु मुस्लिम नेशनल गार्डोंने पुलिसको अपने मकानमें नहीं घुसने दिया। जब पुलिस उनके प्रधान कार्यालयकी तलाशी लेने आई तो प्रान्तके ७ चोटीके लीगी नेताओंने इसका विरोध किया। इसलिए उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। मकानकी तलाशीमें अन्य चीजोंके साथ साथ १ हजार फौलादी टोपियोंका एक ढेर, बहुतसी वर्दियां और भड़कानेवाले प्रचार-साहित्यका एक ढेर निकला । [वही, पृ. ९५-९६]

दूसरे दिन लीगके जनरल सेक्रेटरी लियाकतअली खांने घोषणा की कि मुस्लिम नेशनल गार्ड्स मुस्लिम लीगका एक अविभाज्य अंग हैं, इसलिए उन पर किया गया हमला "लीग पर हमला" है। इसके बाद मुस्लिम लीगने पंजाबमें भयंकर आन्दोलन शुरू कर दिया। इसका वर्णन पंजाब सरकारके मुख्य सचिवने यों किया: वह "एक निश्चित अलोकतांत्रिक राजनीतिक हेतु" से किया जा रहा है। इसके परिणामस्वरूप बहुतसी गिरफ्तारियां हुईं, जिनमें विधान-सभाके १७ लीगी सदस्य भी थे। सावधानीके तौर पर प्रान्तकी राजधानीमें ब्रिटिश सैनिकोंको बुलाना पड़ा। लीगकी योजनामें संचार-व्यवस्थामें हस्तक्षेप करने और कर अदा न करनेकी मुहिम भी शामिल थी।

फरवरीके अन्तिम सप्ताहमें पंजाब सरकार और मुस्लिम लीगके बीच समझौता हो जाने पर लीगी नेताओंके खिलाफ दायर किये गये मुकदमे वापस ले लिये गये। [पंजाब सरकार और मुस्लिम लीगके बीच समझौतेकी शर्तें ये थीं: (१) सार्वजनिक सभाओं पर लगा प्रतिबन्ध हटा लिया जाय; (२) सरकार मौजूदा पंजाब सुरक्षा अध्यादेशके स्थान पर शान्ति और सार्वजनिक व्यवस्था बनाये रखनेके लिए आवश्यक कानून प्रस्तुत करे; (३) आन्दोलनके सिलसिलेमें नजरबन्द, विचाराधीन अथवा अपराधी सभी कैदी छोड़ दिये जायं, सिवा उनके जो भारतीय दंड-विधानकी धारा ३२५ के मातहत अथवा इससे अधिक गम्भीर अपराधोंके अभियुक्त या अपराधी ठहराये गये हों; और (४) जुलूसों पर प्रतिबन्ध जारी रहे] मुस्लिम गार्डों और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ परसे दो दिन बाद पाबंदी उठा ली गई। किन्तु मुस्लिम लीगकी तरफसे कानूनकी खुली अवज्ञा की जाती रही। इस बीच लीगी गुंडागीरीको मजबूतीसे दबा देनेकी मिश्र सरकारकी असमर्थताने पंजाबकी गैर-मुस्लिम जनतामें इतनी कटुता पैदा कर दी थी कि मंत्रि-मंडलके यूनियनिस्ट मुस्लिमों और हिन्दू-सिक्ख समर्थकोंमें फूट पड़ गई। लीग यही चाहती थी। ४ दिन बाद पंजाबके मुख्यमंत्रीने लीगके बढ़ते हुए दबावका प्रतिकार न कर सकनेके कारण और शायद इस डरसे कि अब उनका मंत्रि-मंडल हिन्दू और सिक्ख समर्थन पर भरोसा नहीं रख सकता, २ मार्चको त्यागपत्र दे दिया। लीगने इस अवसर पर रोशनी करके खुशियां मनायीं। किन्तु मंत्रि-मंडलसे यह कह दिया गया कि वह फिलहाल अन्तरिम सरकारके रूपमें काम करता रहे।

इसके बाद घटनायें बड़ी तेजीसे आगे बढ़ीं। ३ मार्चको पंजाबके गवर्नर सर इवान जैन्किन्सने पंजाब विधान-सभामें मुस्लिम लीगी दलके नेता ममदोतके खानको सरकार बनानेके लिए आमंत्रित किया। उन्होंने आमन्त्रण स्वीकार कर लिया। एक ऐसे दलके द्वारा, जिसने बलपूर्वक पाकिस्तानकी स्थापना करनेका इरादा खुले तौर पर जाहिर कर दिया था, पंजाबमें सरकार बनानेकी संभावनासे पंजाबके गैर-मुस्लिम वर्गोंमें आतंक फैल गया।

यह समझकर कि हमें फंसानेके लिए जाल बिछाया जा रहा है, सिक्ख बिलकुल निराश हो गये। सारा विवेक ताकमें रख कर पंथिक अकाली दलने एक प्रस्ताव पास किया कि जब तक मुस्लिम लीगका उद्देश्य सिक्खोंकी मातृभूमि पंजाब पर मुसलमानोंका प्रभुत्व या पाकिस्तान स्थापित करना है तब तक प्रान्तमें मुस्लिम लीगी सरकारकी स्थापनाका "तमाम संभव साधनों द्वारा प्रतिकार" किया जाय। ४ मार्चको हिन्दुओं और सिक्खोंने लाहौरमें पाकिस्तान-विरोधी दिवस मनाया। निषेधाज्ञा तोड़ कर

गैर-मुस्लिम विद्यार्थियों ने जुलूस निकाला। पुलिसने उस पर गोली चलाई और परिणामस्वरूप कई आदमी हताहत हुए।

५ मार्चको मलिक खिजरहयात खांकी अवधायक सरकारने इस्तीफा दे दिया। मुस्लिम लीग अब भी सदनमें आवश्यक बहुमत नहीं बना सकी, इसलिए गवर्नरने भारतीय शासन-विधानकी ९३वीं धारा लगू कर दी, विधान-सभाकी बैठक अनिश्चित कालके लिए स्थगित कर दी और प्रान्तके शासनकी बागडोर स्वयं संभाल ली। इसने अमृतसर, रावलपिंडी और मुलतान शहरमें, पंजाबके रावलपिंडी, मुलतान और झेलमके ग्रामीण भागोंमें और उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्तके एबोटाबाद जिलेमें भी मुसलमानोंकी तरफसे व्यापक दंगे छेड़ दिये जानेके संकेतका काम किया। दंगाइयोंने इन सब स्थानोंमें एक ही तरहकी पद्धति अपनाई, इससे भी पता चलता था कि उसके पीछे कोई सुनिश्चित और सुनियोजित योजना थी। पंजाब सरकारके मुख्य सचिव श्री मैकडॉनल्डके वक्तव्यके अनुसार १९ मार्च, १९४७ के दोपहर तक मुस्लिम लीगकी छेड़ी हुई मुहिमने २०४९ हिन्दुओं और सिक्खोंको मौतके घाट उतार दिया था और ११०३ को सख्त घायल कर दिया था। [दि इंडियन एन्युअल रजिस्टर, १९४७, खण्ड-१, पृ. ११२ (आई)] ये आंकड़े भी अनुमानसे कम माने गये थे।

कुछ उपद्रव-ग्रस्त स्थानोंको देख आनेके बाद पंडित नेहरूने कहा था: "मैंने भयंकर दृश्य देखे हैं; और मैंने सुना है कि मनुष्योंने ऐसे कृत्य किये हैं, जो हैवानोंको भी लज्जित कर सकते हैं। . . . यदि राजनीति इसी तरह चलाई जायगी, तो वह राजनीति नहीं रहेगी बल्कि एक तरहकी जंगली लड़ाई बन जायगी; और उससे जहां मनुष्य रहते हैं वे स्थान मरुभूमि बन जायंगे। . . . लोग अपने राजनीतिक लक्ष्यके लिए चाहें तो कशमकश करें, परन्तु ऐसा उन्हें मनुष्योंकी तरह कुछ हद तक मानव-गौरवकी रक्षा करते हुए करना चाहिये।" [पं. नेहरूका अखबारी वक्तव्य, १७ मार्च, १९४७]

इन घटनाओंकी ब्रिटेनके अनुदार दलके अखबारोंमें भी लीगके विरुद्ध प्रबल प्रतिक्रिया हुई। "अवैध आन्दोलनके द्वारा साम्प्रदायिक तानाशाही थोपनेके किसी भी प्रयत्न" के साथ अनिवार्य रूपसे जुड़े हुए खतरोंको बताते हुए लंदन 'टाइम्स' ने ११ मार्च, १९४७ को लिखा कि यदि आन्दोलनके लिए यह दावा किया जाय कि वह "लोकतांत्रिक सिद्धान्तों" पर आधारित है, तो भी उससे यह खतरा किसी तरह कम नहीं हो जाता।

'टाइम्स' ने आगे चलकर कहा: " मुस्लिम लीगने पंजाबमें जो मुहिम चलाई है उसका एक अजीब पहलू यह है कि इस प्रान्तमें ५६ प्रतिशत मुस्लिम बहुमत (लोकतांत्रिक) सिद्धान्तोंकी दुहाई दे सकता है, परन्तु भारतके दूसरे हिस्सोंमें वह उन सिद्धान्तोंका भयंकर विरोध करता है ।"

इस पर कांग्रेसकी तरफसे पंजाबके विभाजनकी मांग की गई। पंजाबके बारेमें कांग्रेस कार्यसमितिका प्रस्ताव इस प्रकार था:

> पिछले ७ महीनोंमें भारतने अनेक भयंकर और करुण घटनाएं देखी हैं, जो पाशविक हिंसा, हत्या और दबावसे राजनीतिक उद्देश्योंकी प्राप्तिके हेतुसे की गई हैं। . . .
>
> पंजाब . . . छह सप्ताह पहले एक ऐसे आन्दोलनकी घटना-स्थली बन गया, जिसे कुछ ऊंचे अधिकारियोंका समर्थन प्राप्त था और जिसका उद्देश्य एक ऐसे लोकप्रिय मंत्रि-मंडलको दबाना और तोड़ना था, जिस पर वैधानिक उपायों द्वारा आक्रमण नहीं किया जा सकता था। इस आन्दोलनको कुछ सफलता मिली और जिस समूहने इस आन्दोलनका नेतृत्व किया था उसके प्रभुत्ववाला मंत्रि-मंडल बनानेकी कोशिश की गई। इसके विरुद्ध कड़ा रोष पैदा हुआ, जिसका परिणाम अधिक उग्र और व्यापक हिंसामें आया। . . .
>
> इन दुःखद घटनाओंने इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण दे दिया है कि हिंसा और दबावसे पंजाबकी समस्याका निबटारा नहीं हो सकता और दबाव पर आधारित कोई व्यवस्था स्थायी नहीं हो सकती। इसलिए कोई ऐसा रास्ता निकालना जरूरी है, जिसमें जबरदस्तीकी मात्रा कमसे कम हो। इसके लिए पंजाबको दो प्रान्तोंमें बांट देनेकी जरूरत होगी, ताकि मुख्यतः मुस्लिम भागको मुख्यतः गैर-मुस्लिम भागसे अलग किया जा सके। [कांग्रेस कार्यसमितिका प्रस्ताव, ८ मार्च, १९४७; 'कांग्रेस बुलेटिन', २६ मार्च, १९४७, पृ. ५]

व्यवहारमें यह कांग्रेसकी ओरसे अन्तिम क्षण की जानेवाली इस बातकी कोशिश थी कि यदि मुस्लिम लीग भारतके विभाजनके अपने आग्रह पर डटी रहे, तो उसके सामने उसके इस सिद्धान्तके स्वाभाविक परिणामोंको रखकर उसे विभाजनके सिद्धान्तसे विमुख बनाया जाय। कुछ अंशमें यह इस बातकी भी कोशिश थी कि भारतका विभाजन होनेकी सूरतमें उस प्रान्तके गैर-मुस्लिम बहुमतवाले प्रदेशको मुस्लिम लीगकी हुकूमतसे बचा लिया जाय। यदि लीग भारतके विभाजनकी मांगका आग्रह

करे, तो वह सकारण यह दावा नहीं कर सकती थी कि जो प्रदेश वह पाकिस्तानके लिए चाहती है उन्हें इस सिद्धान्तके अमलसे मुक्त किया जाय। धारणा यह थी कि जब लीगके सामने "कटे-छंटे, कीड़ोंके खाये हुए जैसे" पाकिस्तानके मिलनेकी ही संभावना खड़ी होगी, जिसके बारेमें यह मान कर चला जाता था कि ऐसा पाकिस्तान आर्थिक दृष्टिसे निभ नहीं सकता, तो लीग देशके विभाजनकी अपनी मांग पर जोर नहीं देगी। गांधीजीके दृष्टिकोणसे यह दृष्टिकोण बिलकुल भिन्न था। जिन रियायतोंमें उनका विश्वास नहीं होता था, उन्हें कूटनीतिकी दृष्टिसे वे कभी दूसरोंको देते नहीं थे। संयोगवश कांग्रेस कार्यसमिति द्वारा किया गया स्थितिका अध्ययन बिलकुल गलत निकला।

कार्यसमितिने लीगको कांग्रेस-प्रतिनिधियोंसे मिलनेके लिए जो निमंत्रण भेजा था, उसका कोई उत्तर लीगकी तरफसे नहीं आया। उसने इतना ही कहा कि कांग्रेसका प्रस्ताव "मुस्लिम लीगकी कार्यसमितिकी अगली बैठकमें उसके सामने रखा जायगा।" इसके लिए कोई तारीख निश्चित नहीं की गई। और जब एक महीने बाद कांग्रेसके मंत्रीने पुछवाया कि वह बैठक कब होगी, तो उनसे कहा गया कि इस बीचमें नये वाइसरॉयने जो चर्चाएं शुरू की हैं उन्हें देखते हुए इस बातकी कोई संभावना नहीं है कि "जब तक वार्ताएं किसी निश्चित स्थितिमें न पहुंच जायं" तब तक लीगकी कार्यसमितिकी कोई बैठक बुलाई जायगी।

३

पंजाबमें जो कार्य-पद्धति इतनी सफल सिद्ध हुई वही उत्तर-पश्चिम सीमा-प्रान्तमें भी काममें ली गई और वहां भी वह उतनी ही सफल सिद्ध हुई।

कैबिनेट-मिशनके १६ मई, १९४६ वाले वक्तव्यके बाद खान बन्धुओंने – खान अब्दुल गफ्फार खां और उनके बड़े भाई सीमाप्रान्तके मुख्यमंत्री डॉ. खानसाहबने – यह बता दिया था कि समूह-रचना (ग्रूपिंग) के राजनीतिक पहलूके बारेमें उन्हें बहुत चिन्ता नहीं है। उन्हें ऐसे किसी भी समूह (ग्रूप) अथवा विभाग (सेक्शन) में शरीक होने पर आपत्ति नहीं थी, जो पठानोंको अपने ही ढंगसे विकास करनेकी पूरी स्वतन्त्रताकी गारन्टी देनेको तैयार हो:

> मुझे पंजाब, सिन्ध और बलूचिस्तानके साथ एक समूह (ग्रूप) में रहने पर कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु मुझे यह कहना चाहिये कि इस तरहकी साझेदारीमें शरीक होनेसे पहले हम

सबको भाइयोंकी तरह साथ बैठकर कुछ शंकाओंका निवारण करके एक-दूसरेको सन्तुष्ट करना चाहिये और यह विश्वास दिलाना चाहिये कि ऐसी समूह-रचना प्रत्येक प्रान्तके हितमें है। कुछ लोग इसे धर्मका रंग देते हैं, परन्तु यह ठीक नहीं है। धर्मका इससे क्या संबंध है ? यह एक आर्थिक समस्या है – सिर्फ नफे और नुकसानका सवाल है। जबरन् कोई चीज नहीं कराई जा सकती। आज पिता भी अपने पुत्रको कोई काम करनेके लिए मजबूर नहीं कर सकता।

इसके सिवा, दूसरा एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न, जिस पर ध्यान देनेकी जरूरत है, हिन्दू बहुमतवाले प्रान्तोंमें शामिल होनेका है, जब कि हम चारों ओर पंजाब, सिन्ध और बलूचिस्तानसे घिरे हुए हैं। यह कैसे हो सकता है कि हम अपने ही पड़ोसीकी उपेक्षा करें और उसकी अवगणना करके दूसरोंके साथ मिल जायं ? यदि हम कभी कोई समूह (ग्रूप) बना सकते हैं, तो पंजाब, सिन्ध और बलूचिस्तानके साथ ही बना सकते हैं, न कि दूसरे प्रान्तोंके साथ; क्योंकि हिन्दू बहुमतवाले सारे प्रान्त हमसे सैकड़ों मील दूर हैं। [लालकुर्ती दलके मुखपत्र 'पख्तुन' में बादशाह खान; 'दि टाइम्स ऑफ इन्डिया' में उद्धृत, २९ जुलाई, १९४६]

परन्तु लीगने पठानोंको समझानेकी कोशिश करनेके बजाय उन्हें डरा-धमका कर झुकाना चाहा; और जब उससे काम न चला तो उसने हिंसासे सत्तारूढ़ मंत्रि-मंडलको उखाड़ फेंकनेका प्रयत्न किया। इस कामके लिए साम्प्रदायिक भावनाओंको भड़कानेसे अधिक आसान और क्या हो सकता था ? दुर्भाग्यवश बिहारके उपद्रवोंके असरने इस स्थितिमें तैयार गोला-बारूदकी गरज पूरी की। 'डेली टेलिग्राफ' लंदनके संवाददाता कॉलिन रीडने पेशावरसे अपने पत्रको समाचार भेजा: "दूसरे प्रान्तोंके उत्तेजना फैलानेवाले लोग यहां आकर बिहारसे लाये हुए खोपड़ियोंके चित्र और कुरानके फटे हुए टुकड़े दिखाकर मुसलमानोंकी भावनाओंको भड़का रहे हैं।" [दि इंडियन एन्युअल रजिस्टर, १९४७, खण्ड - १, पृ. ११२ (जे)]

सिन्धु नदीके इस ओर वाले सीमाप्रान्तके हजारा और डेरा इस्माइल खां जिले पश्तोभाषी इलाके नहीं हैं। मानसिक रचनाकी दृष्टिसे और शारीरिक लक्षणोंमें भी हजारा और डेराजातके मुसलमान उत्तरके पठानोंकी अपेक्षा पंजाबके मुसलमानोंके अधिक निकट हैं। हजारा जिले पर साम्प्रदायिक उपद्रवोंका

सबसे पहले प्रभाव पड़ा। १७ जनवरी, १९४७ को सरदार पटेलने नोआखालीमें गांधीजीको ये समाचार भेजे:

> हजारा जिलेमें ९ लाख मुसलमान हैं। हिन्दू और सिक्ख मिल कर ३१ हजार हैं। इनमें से २० हजार पहले ही भाग गये हैं। दंगोंमें मरनेवालोंकी संख्या ४० से ५० तक है। आगजनी और लूट व्यापक पैमाने पर हुई है। बिहारका बदला सीमाप्रान्तमें लिया जा रहा है। शुरूमें आक्रमण करनेवालोंकी टोलियां सीमा पार करके आईं और उन्होंने २-३ जगह लूट मचाई, घरोंको आग लगाई और हत्याएं कीं। परन्तु बादमें स्थानीय मुसलमानोंने ही भीषण कृत्य किये। यह सब बिहारका बदला लेनेके लिए किये गये लीगके प्रचारका परिणाम है। ब्रिटिश अधिकारी दावानलको बुझानेके लिए कुछ नहीं कर रहे हैं। कुछ उसे भड़कानेमें भी मदद दे रहे हैं।

उपद्रवोंकी दूसरी लहर फरवरी १९४७ के तीसरे सप्ताहमें किसी समय आई। जनवरी महीनेमें एक सिक्ख स्त्रीको, जिसके पतिको दंगाइयोंने मार डाला था, भगाकर जबरदस्ती एक मुसलमानसे उसकी शादी कर दी गई। मुख्यमंत्री डॉ. खानसाहबने उस स्त्रीका बयान लेनेवाले एक मुसलमान मजिस्ट्रेटके निर्णयके आधार पर आज्ञा दी कि स्त्रीको उसके संबंधियोंके पास वापस भेज दिया जाय। इस पर मुस्लिम लीगियोंने यह मांग करनेके लिए जुलूस निकाला कि स्त्री उस आदमीके हवाले कर दी जाय, जिसके साथ उसकी जबरदस्ती शादी कर दी गई थी। मर्दानके डिप्टी कमिश्नरने सुरक्षाके लिए शहरमें सभाओं और जुलूसों पर प्रतिबन्ध लगा दिया। अब्दुल कयूम खांने उस आज्ञाका उल्लंघन किया और २० फरवरीको उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। ये पहले केन्द्रीय धारासभामें कांग्रेसी दलके उपनेता थे और बादमें मुस्लिम लीगमें शामिल हो गये थे। इसके बाद डॉ. खानसाहबके मंत्रि-मंडलके विरुद्ध "नागरिक स्वतंत्रताकी रक्षा" के मधुर नाम पर "सविनय कानून-भंग" का वैसा ही आन्दोलन शुरू किया गया जैसा आसाम और पंजाबमें किया गया था। अधिकारियोंने कुछ मुस्लिम लीगी नेताओंको गिरफ्तार करके कानून तोड़ने और साम्प्रदायिक हिंसाको भड़कानेके अपराधमें जेल भेज दिया। इसके बाद लीगने प्रान्तके प्रशासनको ठप करनेकी मुहिम संगठित की। अदालतोंमें धरना दिया गया और बेकाबू भीड़ने रेलमार्गको रोक दिया। उन्होंने रेलकी पटरियां उखाड़नेका भी प्रयत्न किया और जब सेनाने बिखर जानेका हुक्म दिया तो उस पर पत्थर बरसाये।

रावलपिंडी (पंजाब) में ५ मार्च, १९४७ को दंगे शुरू हो गये। लोगोंकी हत्या की गई, घरोंको आग लगा दी गई और लूट मचाई गई। दो दिन बाद एक रेलगाड़ीको रोक कर तक्षशिलासे कुछ ही मील दूर मुसाफिरों पर हमला किया गया। यह दुःखद घटना बादमें सामान्य बात हो गई। इसी समय पेशावर शहर और छावनीमें दंगे शुरू हो गये। पड़ोसके गांवोंसे मुस्लिम लीगियोंने हिन्दुओं और सिक्खोंको जबरदस्ती मुसलमान बनाना शुरू कर दिया।

इन भयंकर कृत्योंक लिए नोआखाली तो पहले ही बहुत बदनाम हो चुका था, अब सीमाप्रान्तमें भी उनका आरंभ होनेसे पेशावरकी गैर-मुस्लिम आबादीमें घबराहट पैदा हो गई। १० दिन तक उन्होंने अपने आपको घरोंमें बंद रखा और बाजारोंमें निकलनेका उनका साहस नहीं हुआ। सीमाप्रान्तीय विधान-सभामें उस समय बजट-अधिवेशन चल रहा था। प्रान्तीय मंत्रि-मंडलने इस डरसे कि अगर उसने स्थितिसे निबटनेके लिए कठोर कार्रवाई की तो गवर्नर इसका बहाना बनाकर कहीं विधान-सभाको भंग न कर दे, फिलहाल चुप रहनेका निर्णय किया। [सीमाप्रान्तके गवर्नर और मंत्रि-मण्डलके बीचके सम्बन्धोंकें लिए, देखिए अध्याय १२] बजटके स्वीकृत होते ही मंत्रि-मंडलकी बैठक हुई और उसने खुदाई खिदमतगारोंको बुलानेका निश्चय किया । (इन्हें आम तौर पर 'लाल कुर्तीवाले' भी कहा जाता था, क्योंकि उनकी वर्दीका रंग लाल ईंटके जैसा था।) शामको आदेश जारी किये गये और दूसरे ही दिन लगभग १० हजार खिदमतगार पेशावर आ पहूंचे। उन्हें शहरभरमें खतरेके अलग अलग स्थानों पर तैनात कर दिया गया। यद्यपि अहिंसाके व्रतधारी होनेके कारण उनके पास हथियार नहीं थे, फिर भी उनके होनेसे पुनः विश्वास स्थापित होनेमें सहायता मिली। घरोंके जो द्वार १० दिनसे बन्द थे वे खुल गये और गैर-मुस्लिम आबादीके लोग अपने घरोंसे बाहर निकल कर पुनः सुरक्षितता अनुभव करने लगे और अपने कामधंधेसे लग गये।

अप्रैल १९४७ में डेरा इस्माइल खांमें कौमी आग फैली। एक बड़ी मुस्लिम भीड़ने शहर पर हमला किया और गैर-मुस्लिमोंकी लगभग १२०० दुकानोंको नष्ट कर दिया । उपद्रव गांवोंमें भी फैल गया। कई जगह सारी गैर-मुस्लिम आबादीकी हत्या कर दी गई या उसे जबरदस्ती मुसलमान बना लिया गया । 'फ्रंटियर कांस्टेबुलरी' नामक पुलिस दल शहरमें मौजूद था, परन्तु उसने लगभग कुछ नहीं किया और भीड़को अबाधित रूपमें अराजकताका तांडव नृत्य करने दिया। परन्तु यहां पंजाब जैसी बात नहीं थी। सीमा-प्रान्तमें साम्प्रदायिक हिंसा डॉ. खानसाहबके मंत्रि-मंडलकी एकताको नष्ट नहीं कर सकी। सब

लोग अच्छी तरह जानते थे कि दंगे कौन करा रहा है और सीमाप्रान्तके गैर-मुस्लिम दीर्धकालसे मानते आये थे कि खान बन्धुओंमें ही उनकी एकमात्र आशा निहित है और खुदाई खिदमतगारोंका संगठन ही उनकी सुरक्षाकी एकमात्र गारंटी है। परन्तु उसकी एक दूसरी उतनी ही दुर्भाग्यपूर्ण प्रतिक्रिया हुई। हजाराके दंगोंके बाद सरदार पटेलने एक पत्रमें गांधीजीको लिखा :

> बादशाह खान बिहार चले गये हैं, जहां कोई घटना नहीं हो रही है। परन्तु वे जैसा ठीक समझें वैसा करेंगे। . . . डॉ. खानसाहब भले आदमी हैं और आफतमें फंस गये हैं। लीग जहरीला प्रचार कर रही है, परन्तु उन्हें सख्त कार्रवाई करनेमें डर लगता है। [सरदार पटेलका पत्र गांधीजीको, १७ जनवरी, १९४७]

गांधीजीको बड़ा दुःख हुआ। डॉ. खानसाहबमें साहसका अभाव बताना या तो उस शेरदिल नेताको या सीमाप्रान्तकी वस्तुस्थितिको न जानने जैसा था। घटनाओंके प्रभावसे मूल्योंमें तेजीसे परिवर्तन हो रहा था। १५ दिनके बाद गांधीजीको पंडित नेहरूका यह पत्र मिला:

> मैंने बिहार और दूसरी जगह देखा है कि वहां जो घटनाएं हुई हैं उनके लिए हिन्दुओंमें बहुत थोड़ी पश्चात्ताप या ग्लानिकी भावना है। लगभग ऐसी भावना है कि जो कुछ हुआ ठीक ही हुआ है। मुसलमानोंमें निश्चित रूपसे यह डर है, चाहे वह उचित हो या न हो, कि उन पर और भी हमले हो सकते हैं।
>
> उत्तर-पश्चिम सीमाप्रांतमें कुछ भयंकर कृत्य किये गये हैं, यद्यपि विस्तार तथा संख्याकी दृष्टिसे बिहारके साथ उनकी कोई तुलना नहीं है। मेरी दृष्टिमें गुणवत्ता अथवा उसके अभावके खयालसे नोआखाली, बिहार, मेरठ जिले और हजारामें कोई भेद नहीं है। वे सब मानवके अत्यधिक पतन और दुष्टताको बताते हैं। [पं. नेहरूका पत्र गांधीजीको, ३० जनवरी, १९४७]

परन्तु जाने-अनजाने समस्त पुराना नेता-मंडल, बाह्य अवकाशवाली आकाश-गंगाके तारा-मंडलोंकी तरह, अप्रकट रूपमें दूसरे सूर्यकी कक्षामें – आनेवाले वाइसरॉय लॉर्ड माउन्टबेटनकी कक्षामें – आकृष्ट हो रहा था। कुछ समयसे ये नेता और गांधीजी अलग अलग भूमिका पर कार्य कर रहे थे। इस चीजने उनके विचारों, दृष्टिकोण और रुखको नया रूप दे दिया था । गांधीजीका मार्ग उद्धारक या तारक था। उनका दृष्टिकोण अहिंसक था और उसका अपना एक तर्क था। जब तक बिहारमें सच्चे पश्चात्तापकी

भावना प्रकट न हो—चाहे भारतके दूसरे भागोंमें कुछ भी होता रहे – तब तक हिन्दुओं और मुसलमानोंके दिल एक नहीं हो सकते और उसके फलस्वरूप भारतका विभाजन अनिवार्य हो जायेगा। सरदार पटेल अपनी कट्टर राजनीतिक भूमिकासे सारे दृश्यको देखते थे और लेन-देनकी दृष्टिसे सोचते थे। वे बिहार, बंगाल और अन्यत्र एकसी कार्रवाई करना चाहते थे । उनका कहना था कि लीगकी अक्ल तभी ठिकाने आयेगी जब वह समझ लेगी कि हिंसाका खेल ऐसा है "जिसे दोनों पक्ष खेल सकते हैं।" [सरदार पटेलका पत्र सर स्टैफर्ड क्रिप्सको, १५ दिसम्बर, १९४६] पंडित नेहरूका दृष्टिकोण आदर्शवादी था । परन्तु उसमें वह पृष्ठबल नहीं था जो गांधीजीके नेतृत्वने अहिंसक स्वातंत्र्य-संग्रामके समयमें प्रस्तुत किया था। वही पृष्ठबल इस आदर्शवादको कारगर बना सकता था । यथार्थवादी सरदार पटेल कभी कभी अपने साथीके अवास्तविक आदर्शवादकी कड़ी आलोचना कर देते थे। परन्तु आपसमें उनका चाहे जितना मतभेद रहा हो, फिर भी दोनोंमें से एक भी गांधीजीसे सहमत नहीं हो सकता था। दोनों नेता पशुबलके आधार पर खड़े जिस शासन-तंत्ररूपी यंत्रके अंग बन गये थे, उसकी प्रक्रियाके वश तथा प्रान्तों और केन्द्रमें सत्ता हाथमें आनेके पश्चात् अपनाई गई अपनी नीतियोंके अटल फलितार्थोंके वश इच्छा-अनिच्छासे उन्हें होना ही पड़ता था। उनके भूतपूर्व प्रेरणामूर्ति गांधीजी तथा उनके बीचका अंतर दिनोंदिन बढ़ता जा रहा था। सरदार पटेलने सबसे पहले इसे समझ लिया। पंडित नेहरूको यह अनुभूति देरसे हुई और वे लगभग आखिर तक उसके खिलाफ संघर्ष करते रहे।

दूसरा अध्याय: बढ़ता हुआ अंतर

१

जब १९२० के आसपास सत्याग्रह-युगके आरम्भमें गांधीजीने कांग्रेसका नेतृत्व संभाला उस समय उन्होंने उसके सामने जो आदर्श रखे थे उनसे कांग्रेस सतत दूर हटती जा रही थी । उसने सत्य और अहिंसाको नीतिके रूपमें अपनाया था, न कि धर्मके रूपमें । नीति तो व्यावहारिक उपयोगिताकी अथवा कार्यसाधकताकी चीज होती है। यदि वह हेतुको पूरा नहीं करती अथवा जब लक्ष्य पूरा हो जाता है, तो वह छोड़ दी जा सकती है या बदल दी जा सकती है। धर्म श्रद्धाका विषय है। वह इस प्रकार न तो छोड़ा जा सकता है और न बदला जा सकता है। जिन लोगोंमें अहिंसाके प्रति श्रद्धा नहीं थी, उनसे गांधीजी यह नहीं कह सकते थे कि अहिंसाको वे अपना धर्म बना लें। परन्तु जब तक कोई नीति अमलमें रहती है, तब तक वह धर्म जैसी ही होती है। इसलिए गांधीजीने कहा कि यदि कांग्रेस-जन नीतिके तौर पर भी अहिंसाका पालन करें, तो मेरे लिए वह काफी है। बादमें उन्होंने कहा : "यदि मुझे अहिंसाको राजनीतिमें स्थान देना हो, तो मैं और कुछ कर ही नहीं सकता था। . . . यदि मैं अहिंसाको धर्म माननेवाले मनुष्योंसे कार्य आरंभ करता, तो अन्तमें मैं अकेला ही रह जाता। मैं स्वयं अपूर्ण हूं, इसलिए अपूर्ण पुरुषों और स्त्रियोंके साथ मैंने आरंभ कर दिया और अज्ञात समुद्रमें अपना जहाज छोड़ दिया।" [हरिजन, १२ अप्रैल, १९४२, पृ. ११६] गांधीजी साधन और साध्यकी एकतामें विश्वास रखते थे, इसलिए उन्होंने तर्क किया कि यदि एक ही तरहके साधन अपनाये गये तो अन्तमें हम सब एक ही लक्ष्य पर पहूंचेंगे। यदि न्याय और प्रामाणिकतापूर्वक अहिंसाका प्रयोग किया गया तो अनुभवसे श्रद्धा आ जायगी।

४० करोड़ आदमियोंके हृदयोंमें नई कार्य-पद्धतिका अर्थ और आंतरिक स्वरूप अंकित करना और उनमें आवश्यक संयम पैदा करना आसान काम नहीं था। शुरू शुरूमें तो बहुतोंका यह खयाल था कि अहिंसा हिंसक कार्रवाईके लिए केवल एक आच्छादन या मुखौटा ही है और जब वे उसके लिए तैयार हो जायंगे तब हिंसक कार्रवाई अवश्य शुरू कर दी जायगी। उन्होंने गांधीजीके अर्थको गलत समझा । वे अक्सर लड़खड़ा जाते थे। जब जब ऐसा होता था गांधीजी अपना अभिप्राय स्पष्ट करनेके लिए और उन्हें उनकी गलती समझानेके लिए अपना सबसे कठोर और असंदिग्ध उपाय काममें लाते थे – अर्थात् आन्दोलनको स्थगित कर देते थे और / या उपवासके द्वारा दूसरोंकी गलतीके लिए प्रायश्चित्त

करते थे। अहिंसाके अर्थ और गुणोंको समझनेके लिए और ब्रिटिश सरकारको राष्ट्रव्यापी पैमाने पर सफलतापूर्वक चुनौती देनेकी शक्तिका अपने भीतर विकास करनेके लिए देशको दस वर्ष तक (१९१९-३०) अहिंसाकी तालीम लेनी पड़ी और उसका अभ्यास करना पड़ा। परन्तु अभी भी अधिकांश लोगोंके लिए अहिंसाका अर्थ और तत्त्व सीमित ही रहा था। जब सरकारका संगठित दमन पूरे जोरों पर चला (१९३२-३४), तो उनकी सीमित अहिंसा उस दमनका मुकाबला नहीं कर सकी।

गांधीजी अपने आपसे पूछने लगे : क्या बात है कि अहिंसाकी १४ वर्षकी परीक्षाके भी वांछित परिणाम नहीं निकले ? वे इस निर्णय पर पहूंचे कि यद्यपि लोगोंने उनके बताये हुए साधन अपनाये थे, फिर भी शायद उनके लिए उन साधनोंका वही अर्थ नहीं था जो गांधीजी करते थे। गांधीजीने जिस परिणामकी प्राप्तिका लक्ष्य सामने रखा था, उसे सिद्ध करनेके लिए केवल साधन ही एक जैसे होना आवश्यक नहीं था, बल्कि उनका अर्थ भी एक जैसा होना आवश्यक था।

कांग्रेसके उद्देश्यकी व्याख्या इस प्रकार की गई थी: "शांतिपूर्ण और उचित उपायों" द्वारा स्वराज्यकी प्राप्ति। गांधीजीकी दृष्टिमें "शांतिपूर्ण और उचित" शब्द "सत्यतापूर्ण और अहिंसक" के ही पर्याय थे । कांग्रेस-जन इनका यही अर्थ समझते थे अथवा "शांतिपूर्ण और उचित" में सत्यतापूर्ण और अहिंसकसे भिन्न कोई उपाय भी शामिल थे? इस अर्थको सर्वथा असंदिग्ध बना देनेके लिए गांधीजीने सुझाया कि कांग्रेसके विधानमें "शांतिपूर्ण और उचित" शब्दोंके बजाय "सत्यतापूर्ण और अहिंसक" शब्द रख दिये जायं।

अक्तूबर १९३४ में कांग्रेस महासमितिकी जो बैठक बम्बईमें हुई, उसने गांधीजीके इस प्रस्तावको उड़ा दिया। कांग्रेस अहिंसाका खण्डन करनेको भी तैयार नहीं थी और उसके सम्बन्धमें बनी रहनेवाली संदिग्धताको भी छोड़ना नहीं चाहती थी। इसी प्रकार कांग्रेसके विधानमें एक धारा ऐसी थी, जिसमें "सदा खादी पहनना" कांग्रेसियोंके लिए अनिवार्य बना दिया गया था। यह धारा आरंभसे ही लगभग बेकार रही थी। परन्तु कांग्रेस खादीको छोड़नेके लिए भी तैयार नहीं थी। अन्य बातों पर भी दोनोंके बीच मतभेद था। गांधीजी इस नतीजें पर पहूंचे कि उनका व्यक्तित्व एक दुःस्वप्नका काम कर रहा है और कांग्रेसमें विचार-स्वातंत्र्यका गला घोट रहा है और इस प्रकार उसके स्वाभाविक विकासको रोक रहा है। इसके कारण "सबसे अधिक प्रतिनिधित्व रखनेवाली तथा लोकतांत्रिक स्वरूपवाली संस्था" के

लिए एक ऐसी संस्थाकी कक्षामें उतर जानेका खतरा पैदा हो गया है, जिसमें "बुद्धिके लिए कोई अवकाश नहीं है" और "एक ही व्यक्तिका प्रभुत्व चलता है।" इस प्रकार कांग्रेस-जन सत्य अथवा अहिंसामें निहित संपूर्ण शक्तिका अनुभव नहीं कर सकते । इसके लिए उन्हें "स्वाभाविक रूपसे विचार करना और कार्य करना" सीखना पड़ेगा।

इन १४ वर्षोंमें गांधीजी हमेशा कांग्रेसके सदस्य रहे थे। वे कांग्रेस महासमितिकी किसी भी बैठकमें अनुपस्थित नहीं रहे थे और उसके विचार-विमर्शमें सक्रिय भाग लेते और मार्गदशन देते थे। अब उन्होंने निश्चय किया कि उन्हें अबाधित रूपमें और दूसरोंके विकासमें बाधा पहूंचाये बिना सत्याग्रहके क्षेत्रमें अपना अनुसंधान जारी रखनेके लिए कांग्रेससे अलग हो जाना चाहिये :

> कांग्रेस-जन अब भी अहिंसाको धर्म नहीं मानते, इसमें उनका दोष नहीं है। अवश्य ही अहिंसाका मेरा दोषपूर्ण प्रस्तुतीकरण और उससे भी अधिक अहिंसाका मेरा दोषपूर्ण आचरण इस असफलताके लिए जिम्मेदार है। मुझे इसका भान नहीं है कि मैंने कभी अहिंसाके प्रस्तुतीकरण या अमलमें कभी दोष किया है; परन्तु जब अहिंसा अभी तक कांग्रेस-जनोंके जीवनका अविभाज्य अंग नहीं बनी है, तो इससे यही निष्कर्ष निकल सकता है। . . .
>
> (सविनय प्रतिकारके) सिद्धान्तके मेरे २७ वर्षके अध्ययन और पालनके बावजूद मैं यह दावा नहीं कर सकता कि मुझे इसके बारेमें पूर्ण ज्ञान है। . . . कितना ही अपूर्ण होते हुए भी हम सबमें एकमात्र विशेषज्ञ मैं ही हूं, इसलिए यदि मैं इस नतीजे पर पहूंचूं कि कुछ समय तक सविनय प्रतिकार मेरे तक ही सीमित रहना चाहिये तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। . . . जो प्रस्ताव इस विषय पर हालमें पास हुए हैं उन सबमें साथी कांग्रेस-जनोंको मेरी बात समझाना मेरे लिए दिनोंदिन कठिन हो रहा है, यद्यपि उन्होंने उदारतापूर्वक अपना मत उनके पक्षमें दिया है।
>
> इन प्रस्तावोंके विषयमें बुद्धिपूर्वक विश्वास रखे बिना अपना मत देते समय उन्हें जिस व्यथाका अनुभव हुआ, उसके स्मरणसे मैं भी उनके जितनी ही व्यथा अनुभव करता हूं। हम जिसे अपना समान लक्ष्य मानते हैं उसकी सिद्धिके प्रयत्नमें हम सबको प्रगति साधनी हो . . . तो उन्हें और मुझे इस दबावसे मुक्त होना चाहिये । इसलिए सब सम्बन्धित लोगोंके लिए अपने-अपने

विश्वासके अनुसार स्वतंत्रता और साहसके साथ काम करना जरूरी है। [गांधीजीका वक्तव्य, १७ सितम्बर, १९३४; 'हिस्ट्री ऑफ दि इंडियन नेशनल कांग्रेस', खण्ड- १, १९३५, पु. ९७६-७७]

उन्होंने अपने आपसे पूछा कि कांग्रेसकी अहिंसा मेरे आदर्श और उद्देश्यसे किस बातमें कम रही और क्यों कम रही?

यदि हममें पूरी अहिंसक वृत्ति होती, तो उसे अपने आप प्रकट होना चाहिये था और वह सरकारके ध्यानमें भी आनी चाहिये थी। . . . हम आतंकवादियोंको भी यह नहीं दिखा सके कि उनका जितना विश्वास हिंसामें है उससे अधिक विश्वास हमारा अपनी अहिंसामें है। इसके विपरीत, हममें से बहुतोंने उनको यह अनुभव कराया है कि हमारे दिलोंमें हिंसाकी वही भावना है, जो उनके दिलोंमें है। फर्क इतना ही रहा है कि हमारा हिंसाके कार्योंमें विश्वास नहीं है। आतंकवादियोंकी यह दलील ठीक है कि अगर हिंसाकी भावना दोनोंमें समान है, तो हिंसा करने या न करनेकी नीति केवल रायकी बात है। [वही]

बेशक, देशने अहिंसाकी दिशामें बड़ी प्रगति की थी, परन्तु जनताकी वह अहिंसा मन, वचन और कर्मसे विशुद्ध अहिंसा नहीं थी।

अब मेरा यह परम धर्म है कि मैं सरकारको और आतंकवादियोंको इसका प्रत्यक्ष प्रमाण देनेका उपाय ढूंढ़ निकालूं कि अहिंसा प्रत्येक अर्थमें स्वतन्त्रता सहित हर सही चीजको प्राप्त करनेका कारगर साधन है। [वही]

इस प्रयोगके लिए . . . मुझे पूर्ण अनासक्तिकी और काम करनेकी पूरी स्वतंत्रताकी जरूरत है। सत्याग्रह . . . मेरे लिए जीवनका विश्वव्यापी नियम है। सचमुच सत्य ही मेरा ईश्वर है। मैं उस ईश्वरको अहिंसाके जरिये ही खोज सकता हूं, और किसी तरह नहीं। सत्यकी इस खोजमें मेरे देशकी और दुनियाकी भी स्वतंत्रता निश्चित ही शामिल है। मैं इस खोजको इहलोक अथवा परलोककी किसी भी वस्तुके लिए स्थगित नहीं कर सकता। इस खोजको जारी रखनेके लिए ही मैंने राजनीतिक जीवनमें प्रवेश किया है; और यदि मैं यह बात कि इस खोजमें पूर्ण स्वाधीनता और बहुतसी दूसरी चीजें – जो सत्यका अंश हो सकती हैं—शामिल हैं, शिक्षित कांग्रेस-जनोंके दिल और दिमागमें न बैठा सकूं, तो मुझे यह अटल श्रद्धा रख कर अकेले ही कार्य करना चाहिये

कि जो बात आज मैं अपने देशवासियोंको स्पष्ट नहीं समझा सकता वह किसी दिन अपने आप उन्हें स्पष्ट हो जायगी; अथवा ईश्वरने चाहा तो **वह मेरे मुंहमें कोई उपयुक्त शब्द रख कर या मेरे हाथों कोई उपयुक्त कार्य करा कर स्पष्टीकरण कर देगा**। [वही] (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

तदनुसार अक्तूबर १९३४ में गांधीजीने कांग्रेसकी सदस्यतासे त्यागपत्र दे दिया और अगले ३ वर्ष केवल स्वाधीनता-प्राप्तिकि लिए अहिंसक बल निर्माण करनेमें ही लगाये। वे अपने सेवाग्राम आश्रममें ही जमे रहे और ऐसा कार्यक्रम तैयार करके उसे अमलमें लानेमें संलग्न हो गये, जो देशके करोड़ों लोगोंके जीवनको परिपूर्ण करनेवाली बुनियादी प्रवृत्तियोंमें तथा उनके दैनिक सम्बन्धोंमें अहिंसाको ओतप्रोत कर देनेमें सहायक सिद्ध हो। इसे वे रचनात्मक अहिंसा कहते थे। परन्तु जब उन्हें बुलाया जाता तब वे कांग्रेस कार्यसमितिकी बैठकोंमें उपस्थित होते थे और जब उनकी राय मांगी जाती तब कांग्रेसी नेताओंको वे सलाह भी देते थे।

१९३७ में कांग्रेसके सामने प्रान्तोंमें पद-ग्रहण करनेका प्रश्न आया। गांधीजीने अहिंसक प्रयोगके विकासके अगले कदमके रूपमें कांग्रेसको पदग्रहण करनेकी सलाह दी। उस समय उनकी इस कार्रवाईसे बहुतोंको आश्चर्य हुआ। गांधीजीने उन्हें समझाया: पद-ग्रहण करना सत्ताकी राजनीतिके क्षेत्रमें साहस करना नहीं, परन्तु "एक ओर रक्त-रंजित क्रान्तिसे बचनेका और दूसरी ओर आज तक न आजमाये गये पैमाने पर सामूहिक सविनय अवज्ञासे बचनेका गंभीर प्रयत्न होगा।" [हरिजन, १७ जुलाई, १९३७, पृ. १८१] लक्ष्य केवल विदेशी सरकारको **हटा कर उसका स्थान लेना ही नहीं, परन्तु शासनके विदेशी तरीकेको मिटा देना भी होगा**। कांग्रेस "पुलिस तथा उसके पीछे रही सेनाके बल पर शासन नहीं चलायेगी, परन्तु **जनताकी अधिकसे अधिक सद्भावनाके आधार पर निर्भर अपनी नैतिक सत्ता द्वारा शासन चलायेगी**। . . . **श्रेष्ठ शस्त्रबल**से प्राप्त होनेवाली सत्ताके बल पर वह शासन नहीं करेगी, किन्तु अपने **प्रत्येक कार्यमें जिस जनताका प्रतिनिधित्व करनेका वह प्रयत्न करती है उस जनताके बल पर वह शासन करेगी**।" [हरिजन, २१ अगस्त, १९३७, पृ. २२०। गांधीजीने इस आदशेका अधिक विस्तार इस प्रकार किया: "जिन मंत्रियोंको अपने अपने प्रान्तोंमें हिंसा, द्वेष अथवा अश्लीलता फैलती मालूम हो, वे फौजदारी कानून और उसके साथ जुड़े हुए अर्थोंका आश्रय लेनेसे पहले सक्रिय और कार्यक्षम सहायताके लिए कांग्रेस संगठनकी ओर तथा अन्तमें कांग्रेस कार्यसमितिकी ओर देखेंगे। सच तो यह है कि कांग्रेसकी विजय उस सफलतासे आंकी जायगी, जो उसे सेना और पुलिसको एक तरहसे बेकार

बना देनेमें प्राप्त होगी। और, यदि उसे ऐसे संकटोंका सामना करना पड़े, जिनमें पुलिस और सेनाका उपयोग अनिवार्य हो जाय, तो वह सर्वथा असफल रहेगी। वर्तमान शासन-विधानको तोड़नेका उत्तम और एकमात्र परिणामकारी उपाय यह है कि कांग्रेस अन्तिम रूपमें यह सिद्ध कर दे कि वह सेनाकी सहायताके बिना और पुलिसकी कमसे कम सहायता लेकर शासन कर सकेगी] (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

और इसके लिए सतत कार्य करनेकी और अनुशासनकी, सत्य और अहिंसामें श्रद्धा रखनेकी तथा सबसे अधिक रचनात्मक कार्यक्रमकी क्षमतामें श्रद्धा रखनेकी जरूरत थी। गांधीजीने चेतावनी दी: **"किन्तु यदि हमें अपने ही चुने हुए लक्ष्य पर विश्वास न हो, तो हमें आश्चर्य नहीं होना चाहिये यदि किसी दिन हमें यह पता चले कि पद स्वीकार करके हमने गम्भीर भूल की थी।"** [हरिजन, २० नवम्बर, १९३७, पृ. ३४०] (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

उसके बाद उनका प्रत्येक भाषण एक तरहसे कार्यके उस सिद्धान्तका भाष्य जैसा होता था, जो उन्होंने पद स्वीकार करते समय प्रस्तुत किया था। उत्तरप्रदेशके कुछ शहरोंमें जो साम्प्रदायिक दंगे हुए और कांग्रेसी मंत्रियोंने उन्हें दबानेके लिए जो कदम उठाये, उनसे गांधीजीके मनमें यह प्रश्न पैदा हुआ : कांग्रेसकी अहिंसा कमजोरोंकी अहिंसा है या बलवानों और शक्तिशाली लोगोंकी ? "अगर वह कमजोरोंकी अहिंसा है **तो वह हमें कभी अपने लक्ष्य तक नहीं पहूंचायेगी और यदि बहुत अर्से तक उसका प्रयोग किया गया तो वह हमें हमेशाके लिए स्वशासनकी दृष्टिसे अयोग्य भी बना सकती है**। . . . यदि वह (कांग्रेसकी अहिंसा) सच्ची शक्तिसे उत्पन्न नहीं होती, तो कांग्रेसके लिए उत्तम और ईमानदारीकी बात यही होगी कि वह ऐसी घोषणा कर दे और अपने व्यवहारमें आवश्यक परिवर्तन कर ले। . . . **जिस हद तक कांग्रेसी मंत्रियोंको पुलिस और फौजका उपयोग करना पड़ा है, उस हद तक मेरी रायमें हमें अपनी असफलता स्वीकार कर लेनी चाहिये**।" [हरिजन, २० मार्च, १९३८, पृ. ५४] (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

१९३८ में उन्होंने कुछ साथी कार्यकर्ताओंसे कहा, "मुझे इस बातसे लज्जा आती है कि हमारे मंत्रियोंको पुलिस और सेनाकी सहायता लेनी पड़ी।" [हरिजन, २ अप्रैल, १९३८, पृ. ६४] कांग्रेसकी कार्यसूचीमें अहिंसक स्वयंसेवकोंका संगठन रचनेका कार्यक्रम था और इसके लिए उसने स्वयंसेवकोंके लिए एक प्रतिज्ञा भी तैयार की थी। यह प्रतिज्ञा स्वयंसेवकोंको लेनी थी और उस पर

अमल करना था। परन्तु कांग्रेसवालोंने ऐसी अहिंसक सेना खड़ी करनेके लिए परिश्रम नहीं किया। गांधीजीने उनसे कहा, यदि आप प्रतिज्ञाकी कल्पनाके अनुसार एक विशाल अहिंसक सेना संगठित कर लेते, तो ये दंगे नहीं हो पाते; और अगर कोई दंगे होते भी, तो या तो आप उन्हें दबा देते या उस प्रयत्नमें अपने प्राणोंकी आहुति दे देते।

गांधीजीको इस भयने पकड़ लिया था कि इस तरह तो स्वाधीनता आयेगी तब उसका स्वागत करनेके लिए हम तैयार नहीं हो सकेंगे। उन्होंने पूछा, मान लीजिए कि वाइसरॉय कांग्रेस-अध्यक्षको मिलने बुलायें और कांग्रेसकी शर्तें बतानेके लिए कहें, तो क्या कांग्रेसियोंमें उनसे यह कहनेकी ताकत होगी कि कांग्रेस राजकाज संभालनेकी क्षमता रखती है और अंग्रेज भारतसे जा सकते हैं? "क्या आप समझते हैं कि हम वाइसरॉयसे यह कह सकते हैं कि हम पुलिस और फौजके बिना काम चला लेंगे और राजाओं, जमींदारों और मुसलमानोंसे समझौता कर लेंगे? मुझे डर है कि हम ईमानदारीके साथ यह नहीं कह सकते कि हम इन लोगोंके साथ आसानीसे समझौता कर सकेंगे । परन्तु यदि हममें सच्ची अहिंसा हो, तो हमें ये बातें कह सकना और कर सकना चाहिये।" [वही, पृ. ६५]

गांधीजीने चेतावनी दी: यदि कांग्रेसकी अहिंसा केवल ब्रिटिश कर्मचारियोंको शारीरिक हानि न पहूंचाने तक ही सीमित हो, तो ऐसी अहिंसासे कभी स्वाधीनता नहीं मिल सकती । अंतिम लड़ाईमें उसकी हार ही होनेवाली है। "असलमें तो अंतिम लड़ाईसे बहुत पहले ही हमें उसके निकम्मेपनका पता चल जायगा।" [हरिजन, २३ अप्रैल, १९३८, पृ. ८८] अंतमें उन्होंने कहा, अगर कांग्रेस-जन यह समझते हों कि हिंसक संग्रामके बिना वे ब्रिटिश सत्ताको नहीं हटा सकेंगे, तो कांग्रेसको राष्ट्रसे ऐसा कह देना चाहिये और वैसी ही तैयारी करनी चाहिये। "हमें वही करना चाहिये जो सारी दुनियामें किया जा रहा है—**'जब तक सहन कर सकें सहें, जब प्रहार करना अनिवार्य हो तब प्रहार करें।" यदि हमारा धर्म अथवा नीति यही होनेवाली हो तब तो हमने कीमती १७ वर्ष व्यर्थ ही खोयें**। परन्तु सीखने और सुधारनेमें कभी भी बहुत देर नहीं होती ।" [हरिजन, ९ अप्रैल, १९३८, पृ. ७३] (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

कांग्रेसी मंत्रि-मंडलोंकी अनेक असफलताओंके बावजूद उन्हें अहिंसाकी कुछ विजयोंका श्रेय भी प्राप्त हुआ था। बलवानोंकी अहिंसाके विकासकी संभावनाओंकी अधिक खोज करनेके लिए गांधीजीने १९३८ की शरद ऋतुमें उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्तके खुदाई खिदमतगारोंमें दौरा किया। सितम्बर

१९३८ के म्यूनिख-संकटके कारण उसी समय यूरोपके दूसरे युद्धमें फंस जानेका खतरा पैदा हो गया था। इस चुनौतीका कांग्रेसी भारत क्या उत्तर देगा ? कांग्रेस कार्यसमितिकी एक लम्बी बैठक हुई और अन्तमें, गांधीजीके शब्दोंमें कहें तो, कार्यसमितिके १५ सदस्योंने अपनी अहिंसाको कसौटी पर चढ़ानेकी तैयारी बतानेकी हिम्मत दिखाई। "कार्यसमिति लगभग इस नतीजे पर पहुंची कि वह इंग्लैंडेके साथ सौदा करनेका अवसर छोड़ देगी, परन्तु मरते दम तक संगठित अहिंसाका पालन करके विश्वशांतिमें अपना योगदान करेगी।" [हरिजन, ८ अक्तूबर, १९३८, पृ. २८२] इस पर गांधीजीने यह कहा: "यह मेरी अपेक्षासे बाहरकी बात थी।" [हरिजन, १५ अक्तूबर, १९३८, पृ. २९२] परन्तु कांग्रेस दूसरा कोई निर्णय करती, तो भी गांधीजीकी स्थितिमें कोई फर्क नहीं पड़ता। "मैं अकेला ही रह जाऊं तो भी युद्धमें भाग नहीं लिया जायगा, भले सरकार सारा नियंत्रण कांग्रेसको ही क्यों न सौंप दे ।" [वही]

म्यूनिख-समझौतेके हो जानेसे कुछ समयके लिए कांग्रेस परीक्षासे बच गई। दूसरे वर्ष विश्वयुद्ध आ गया और कांग्रेस तैयार नहीं थी। गांधीजीकी स्थिति तो उस समय भी स्पष्ट थी। उन्होंने 'हरिजन' में लिखा: "यह बात मुझे अहिंसाकी अधिकतम श्रद्धासे भर देती है। हिटलरके कृत्योंसे अथवा उन लोगोंके कार्योंसे, जो हिटलरसे लड़े या उससे नहीं लड़ सके, उत्साहित होना मेरे लिए असंभव है। . . . परन्तु मेरे मनमें कोई शंका नहीं कि कमजोरोंकी अहिंसक सेना भी हिटलरके पैरोंके नीचेकी जमीन खिसका देगी।"[हरिजन, १३ जुलाई, १९४०, पृ. १९९] उन्होंने घोषणा की कि लोकतंत्रोंकी रक्षा और हिटलरवादकी पराजयके लिए कांग्रेस और भारत यदि कोई योग्य सहायता दे सकते हैं, तो इसी तरह कि वे अहिंसाका अपनी श्रद्धाके अनुसार आचरण करें और सैनिक आक्रमणका सामना करनेकी उसकी क्षमताका प्रत्यक्ष प्रमाण दें ।

किन्तु कांग्रेस कार्यसमितिके सदस्य गहरे आत्म-निरीक्षणके बाद इस निर्णय पर पहूंचे कि वे वीरोंकी अहिंसाकी भावनासे इतने ओतप्रोत नहीं हैं कि लोगोंको उसका विश्वास करा सकें। उनका खयाल था कि जरूरी होने पर विदेशी आक्रमणको सशस्त्र बलका उपयोग करके भी हटाना और यदि कांग्रेसकी मांगके संबंधमें ग्रेट ब्रिटेन कोई सन्तोषजनक निबटारा कर दे तो नाजी और जापानी आक्रमणके खतरेका मुकाबला करनेके लिए मित्र-राष्ट्रोंके युद्ध-प्रयत्नोंमें सम्मिलित होना उनका धर्म होगा। इसके विपरीत आचरण करना उनके लिए असत्य आचरण करना होगा। उन्होंने गांधीजीसे कहा: "हमें लगता है कि हम अपने मन, हृदय और आत्मासे आपकी स्थितिको स्वीकार नहीं कर सकते और

हमें यह भी लगता है कि हमें आपको इसमें फंसाना नहीं चाहिये।" [वही] परन्तु गांधीजी भी अपने प्रति असत्याचरण नहीं कर सकते थे। उन्होंने साथियोंसे कहा: "मुझे भी आप लोग अपने विचार व्यक्त करनेके लिए स्वतंत्र छोड़ दीजिये। . . . अवश्य ही जब आपको मेरी जरूरत होगी मैं आपके पास ही हूं। परन्तु मैं आपकी नीति और कार्यक्रमका मार्गदर्शन अब नहीं कर सकता। इसलिए आप मेरे बिना अपना काम चलानेका भरसक प्रयत्न कीजिये और भविष्यमें अपनी सभाएं वर्धामें न करके और कहीं कीजिये।" [वही]

इस प्रकार उन्होंने कांग्रेसके कार्यक्रम और नीतिकी जिम्मेदारीसे मुक्त होना चाहा और कांग्रेसके नेताओंने उन्हें मुक्त कर दिया। जुलाई १९४० में कांग्रेस महासमितिके पूना अधिवेशनमें कुछ शर्तों पर मित्रराष्ट्रोंके युद्ध-प्रयत्नोंमें सहयोग देनेका प्रस्ताव पास किया गया। (इसे पूना-प्रस्ताव कहते हैं।) इन शर्तोंमें भारतके स्वाधीनताके अधिकारको स्वीकार करनेकी बात भी थी। परन्तु ब्रिटिश सरकारने कांग्रेसकी मांगको ठुकरा कर उसे फिर गांधीजीके आश्रयमें जानेको मजबूर कर दिया। सितम्बर १९४० में घोषणा कर दी गई कि पूनाका प्रस्ताव "रद हो गया" है और कांग्रेसने "युद्धमें भाग न लेने " के आधार पर गांधीजीके नेतृत्वमें व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा शुरू करनेका निश्चय किया।

अगस्त १९४१ में वाइसरॉयने अपनी कार्यकारिणी परिषद्को बढ़ा कर उसमें कई भारतीयोंको ले लिया, ताकि मित्रराष्ट्रोंके युद्ध-प्रयत्नोंमें भारतका सहयोग प्राप्त करनेके लिए अनुकूल वातावरण पैदा हो सके। इसके बाद जो कांग्रेसी नेता व्यक्तिगत सविनय अवज्ञामें गिरफ्तार किये गये थे, उन्हें छोड़ दिया गया। कांग्रेस कार्यसमितिकी अगली बैठकमें गांधीजीने कांग्रेसी अहिंसाकी बुनियादको गहरा और व्यापक बनानेके लिए सघन रचनात्मक कार्यका विस्तृत कार्यक्रम प्रस्तुत किया। किन्तु चर्चाके दौरान उन्हें पता चला कि युद्धमें भाग लेनेका उनका विरोध "मुख्यतः" अहिंसाके आधार पर खड़ा था, परन्तु अधिकांश सदस्योंकी राय थी कि **यह विरोध अहिंसाके आधार पर हो यह जरूरी नहीं**। निःशस्त्रीकरणके द्वारा विश्वशांतिके ध्येयमें तो उनका विश्वास था, परन्तु राष्ट्रीय नीतिके रूपमें अथवा उस लक्ष्यके साधनके रूपमें विशुद्ध अहिंसामें उनका विश्वास नहीं था। उनका मत था कि कांग्रेसकी नीतिके अनुसार विदेशी आक्रमण होने पर उसका सशस्त्र प्रतिकार भी किया जा सकता है। इसलिए गांधीजीने पुनः सेनापति-पदसे मुक्त होना चाहा और कार्यसमितिने उन्हें पुनः मुक्त कर दिया।

कोई दूसरी तरहका राजनीतिक वातावरण होता तो इसके कारण आसानीसे कांग्रेसमें फूट पड़ जाती और स्वयं आन्दोलन भी छिन्नभिन्न हो जाता । परन्तु गांधीजीकी अहिंसाकी तो बात ही निराली थी। गांधीजी इस प्रश्न पर कांग्रेसमें दो दल कर सकते थे। परन्तु "मैंने देख लिया कि यह भूल होगी । यह लगभग हिंसा होगी। अहिंसा सामान्य ढंगसे कार्य नहीं करती । कभी कभी एक कदम पीछे हटाना आगे कदम बढ़ानेका आरंभ होता है।" [हरिजन, २५ जनवरी, १९४२, पृ. ९] जो लोग गांधीजीसे सहमत नहीं थे उनका खयाल था कि सरकार अथवा कांग्रेसके आलोचकोंको यह कहनेका मौका नहीं देना चाहिये कि कांग्रेसने अहिंसाके "असंभव" अथवा "अराजनीतिक" आधार पर समझौतेकी बातचीतके लिए द्वार बन्द कर दिये हैं। गांधीजीने अपने समर्थकोंको समझाया : "कांग्रेसके इस प्रस्तावके कारण दुनिया उससे आशा रखने लगी है। . . . कांग्रेसने इतना ही करनेका निश्चय किया है कि जिन बातोंको दुनिया समझ सकती है उनके अनुसार कांग्रेस दुनियाको अपने साथ व्यवहार करने देगी। . . . मैं नहीं चाहता कि कांग्रेस दुनियाकी नजरोंमें हास्यास्पद दिखाई दे।" [वही, पृ. १०]

गांधीजीने कांग्रेसके दृष्टिकोणके अनुकूल बनकर संसारके साथ कांग्रेसको सुसंगत बना दिया और कांग्रेसका कार्यक्रम चलानेकी जिम्मेदारीसे मुक्त होकर भविष्यका भार अहिंसामें अडिग श्रद्धा रखनेवालों पर डाल दिया। गांधीजीने इन श्रद्धावान लोगोंसे कहा, "यदि आप अपनी इस श्रद्धाको सिद्ध कर दिखायेंगे, तो अन्तमें सबके एकमत हो जानेकी पूरी संभावना है।" [वही, पृ. ९] और अन्तमें ऐसा ही हुआ। अगस्त १९४२ के "भारत छोड़ो" संग्राममें सभी कांग्रेस-जनोंका एक ही नारा हो गया। इससे कांग्रेस अपमानजनक शर्तों पर युद्धमें सीधा हिस्सा लेनेकी स्थितिसे बच गई। और इस प्रकार उसका युद्धमें पड़ना कारगर भी न होता। परन्तु सत्ताधीशोंकी "सिंहोचित" कार्रवाईने विदेशी आक्रमणका अहिंसक प्रतिकार करनेकी अपनी योजनाकी क्षमताकी परीक्षा करनेका और उसका प्रत्यक्ष प्रमाण देनेका गांधीजीको मौका नहीं दिया। गांधीजीको यह मौका मिला होता तो जो बात वे आज तक अपनी वाणीसे कांग्रेसियोंको स्पष्ट नहीं कर पाये थे उसे, जैसा कि उन्होंने १९३४ में कहा था, "ईश्वर मेरे मुंहमें कोई उपयुक्त शब्द रख दे उसके द्वारा या ईश्वर मुझे कोई उपयुक्त कार्य करनेकी प्रेरणा दे उसके द्वारा" वे स्पष्ट कर देते।

और इसका नतीजा यह हुआ कि जब अन्तमें स्वाधीनता भारतमें आ धमकी, तो कांग्रेस १९४४ की तरह उस समय भी "हिंसा और अहिंसाके बीच झूल रही थी" [हरिजन, १ सितम्बर, १९४०, पृ. २६५] और अहिंसाकी शक्तिके द्वारा ही स्वाधीनताकी चुनौती स्वीकार करनेको तैयार नहीं थी।

२

खादी, मद्य-निषेध, ग्रामोद्योग और अस्पृश्यता-निवारण वर्षोंसे कांग्रेसके कार्यक्रमका अविभाज्य अंग थे। केन्द्रमें राष्ट्रीय सरकारके आगमनके साथ और उससे पहले प्रान्तोंमें राष्ट्रीय सरकारोंके आगमनके साथ कई बातें, जो आज तक सैद्धान्तिक स्तर पर मानी जाती थीं, अब व्यावहारिक संभावनाके क्षेत्रमें आ गईं। इन बातोंके संबंधमें अपना वचन-पालन करनेके निर्देशके साथ ही गांधीजीने कांग्रेसी सदस्योंको अन्तरिम सरकारमें भेजा था। उन्होंने चेतावनी दी कि कोई यह न समझे "कि केन्द्रमें हमारा कांग्रेसी मंत्रि-मंडल है, इसलिए सब-कुछ ठीक है।" [हरिजन, १३ अक्तूबर, १९४६, पृ. ३४५]

१९४५-४६ के आम चुनावोंके फलस्वरूप प्रान्तोंमें कांग्रेस फिरसे सत्तारूढ़ हुई उससे पहले केन्द्रीय सरकारने अपनी युद्धोत्तर पुनर्निर्माण योजनाके अनुसार भिन्न भिन्न प्रान्तोंके लिए तकुओंकी संख्या निश्चित कर दी थी। इसके लिए यह शर्त रखी गई थी कि यदि कोई प्रान्त अपनी निश्चित संख्या (कोटा) का उपयोग नहीं कर सकेगा, तो वह दूसरे प्रान्तोंको दे दी जायगी। परन्तु असलमें इसके लिए भी झगड़ा हुआ। नर-कंकालोंकी भूमि उड़ीसा भी, जहां गांधीजीको दरिद्र-नारायणके दर्शन हुए थे, इस दौड़में शरीक हुआ। गांधीजीने कांग्रेसी मंत्रियोंको समझानेकी कोशिश की कि मिलोंकी संख्या दुगनी कर देनेसे या मौजूदा मिलोंमें दो पालियां जारी करनेसे आप शायद कपड़ेकी कमी तो दूर कर सकेंगे, परन्तु आम लोगोंकी गरीबी नहीं मिटा सकेंगे। [हरिजन, २५ अगस्त, १९४६, पृ. २७८] आप दो घोड़ों पर एकसाथ सवारी नहीं कर सकते। "यदि मिलें फलती-फूलती हैं, तो खादीको मरना ही होगा।" [हरिजन, २० अक्तूबर, १९४६, पृ. ३६५] यदि खादी बुनियादी तौर पर सही चीज नहीं है या उसमें आपका विश्वास नहीं है, तो बेहतर है कि आप उसे हटा दें। परन्तु उसके साथ आपको खिलवाड़ नहीं करना चाहिये। कपड़ा-उद्योगवालोंको गांधीजीने चेतावनी दी : "पूंजीपतियों और दूसरे स्थापित स्वार्थोंको गरीब ग्रामवासियोंके विरुद्ध खड़े होकर उन्हें गौरवपूर्ण श्रम द्वारा अपनी बुरी अवस्थाको सुधारनेसे रोकना नहीं चाहिये।" [हरिजन, २७ अक्तूबर, १९४६, पृ. ३७२]

गांधीजीकी दृष्टिमें खादी और रचनात्मक कार्य अहिंसाके प्रतीक और सामूहिक अहिंसात्मक अनुशासनके विकासके साधन थे। रचनात्मक प्रवृत्तिके बिना – और खादी या चरखा उसका केन्द्रबिन्दु था—भारतके गांवोंमें असाधारण जागृति होना संभव नहीं थी। और न गांधीजीकी दृष्टिके अनुसार, रचनात्मक कार्यके बिना आम लोगोंके अहिंसक प्रयत्न द्वारा भारतकी स्वाधीनता ही प्राप्त की जा सकती थी। वे राजनीतिमें इसलिए पड़े थे कि (राजनीतिक स्वाधीनताके बिना लोग अपनी नैतिक स्वतंत्रता प्राप्त नहीं कर सकते थे; वे यह भी जानते थे कि राजनीतिसे अलग रह कर अपने सपनोंके भारतके लिए जो सामाजिक और आर्थिक आदर्श उन्होंने अपने समक्ष रखें थे, वे भी पूरे नहीं किये जा सकते। उनकी कल्पनाकी स्वाधीनता किसीका बहिष्कार नहीं करती थी, यहां तक कि "कोढ़ी और पागल" का भी नहीं । उसका अर्थ था जीवनमें प्राप्त करने योग्य सर्वोच्च वस्तु प्राप्त करनेका सबके लिए समान अवसर।

गांधीजीकी रायमें "संसार भरमें शहरी आदमी ही लड़ाईके लिए जिम्मेदार होता है, ग्रामीण कभी नहीं होता।" [मीराबहन कृत 'ग्लीनिग्स' में गांधीजीका उद्धरण, अहमदाबाद, १९४९, पृ. १७] वे शहर और गांवके बीच न्यायकी पुनर्स्थापना करना चाहते थे। उनका कहना था कि आज तो "तराजूका पलड़ा शहरीके पक्षमें और ग्रामवासीके विपक्षमें अत्यधिक झुका हुआ है।" [हरिजन, २५ अगस्त, १९४६, पृ. २८१] परन्तु सारे कांग्रेस-जनोंका यह दृष्टिकोण नहीं था। सारे कांग्रेसजन इस बात पर भी एकमत नहीं दिखाई देते थे कि स्वाधीनताका मूल तत्त्व क्या हो। वे कहते थे: "मुझे पता नहीं कि कितने लोग अहिंसा या चरखेमें श्रद्धा रखते हैं अथवा विकेन्द्रीकरणमें विश्वास रख कर गांवको उसका केन्द्रबिन्दु समझते हैं। इसके विपरीत, मैं यह जानता हूं कि बहुतसे लोग यह चाहते हैं कि भारत प्रथम श्रेणीकी सैनिक शक्ति बने और भारतमें सुदृढ़ केन्द्रीय सरकार हो।" [हरिजन, २८ जुलाई, १९४६, पृ. २३६]

मद्रासके कांग्रेसी मंत्रि-मंडलने खादीकी एक महत्त्वाकांक्षी योजना पर अमल करनेका बीड़ा उठाया था। जब मद्रासके मंत्री गांधीजीसे अनुमति लेने आये तो उन्होंने कहा, "यदि आप लोग इसके साथ ही कपड़ेकी नई मिलें भी खड़ी करते रहें, तो आपकी योजना एक तमाशा और धोखाधड़ी बन जायगी।" [हरिजन, ६ अक्तूबर, १९४६, पृ. ३४२] गांधीजीने आगे मंत्रियोंसे कहा, यदि आप अपनी इस योजनाके बारेमें जरा भी गंभीर हैं, तो आपको कपड़ेकी नई मिले खड़ी करने पर प्रतिबन्ध लगाना होगा और जिन क्षेत्रोंमें आपकी खादी-योजना लागू होनेवाली है उनमें मिलका कपड़ा और सूत नहीं जाने देना होगा। उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि खादी-संबंधी कोई भी योजना यदि संबंधित लोगोंके स्वेच्छापूर्ण

सहयोगके बिना लागू की गई, तो स्वराज्य-प्राप्तिके एक साधनके रूपमें खादीकी मौत हो जायगी; परन्तु आपको किसी न किसी तरहकी जबरदस्ती तो करनी ही पड़ेगी। "**परन्तु वह परिस्थितियोंकी जबरदस्ती होनी चाहिये**।" ["सरकारको चाहिये कि वह गांववालोंको सूचना कर दे कि उनसे एक निश्चित तारीखके भीतर अपने गांवोंकी जरूरतके लिए खद्दर तैयार करनेकी आशा रखी जायगी। उसके बाद उन्हें कोई कपड़ा नहीं दिया जायगा। सरकार अपनी ओरसे गांववालोंको बिनौले या कपास (जिसकी भी जरूरत हो) लागत कीमत पर देगी और उत्पादनके औजार भी ऐसी कीमत पर देगी, जो आसानीसे वसूल होनेवाली किस्तोंमें लगभग पांच वर्षोंमें या इससे ज्यादा समयमें अदा हो सके । जहां जरूरी हो वहां सरकार उन्हें सिखानेवाले शिक्षक भी देगी और यह जिम्मा लेगी कि गांववालोंकी कपड़ेकी जरूरत पूरी हो जानेके बाद उनका तैयार किया हुआ जो खद्दर उनके पास बचेगा उसे सरकार खरीद लेगी। इस तरह बिना शोरगुलके और बहुत थोड़े ऊपरी खर्चसे कपड़ेकी तंगी दूर हो जायगी।" – गांधीजी, हरिजन, २८ अप्रैल, १९४६, पु. १०४] मंत्रि-मंडलने ये दोनों शर्तें मान लीं और निर्णय किया कि तकुओंका जो प्रस्तावित कोटा उन्हें मिलनेवाला है उसका लाभ नहीं उठाया जायगा। परन्तु केन्द्रीय सरकारने (अन्तरिम राष्ट्रीय सरकारने), जिसमें चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य जैसे महारथी कांग्रेसी नेताके पास उद्योग-विभाग था, यह रुख अपनाया कि किसी प्रान्तको अपना कोटा लेनेसे इनकार करनेकी स्वतंत्रता नहीं है। कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओंका रवैया भी सहायक नहीं था। मार्च १९४७ में खादी-योजना शुरू करनेवाले मद्रास मंत्रि-मंडलका पतन हो गया, जिसने खादीकी योजना शुरू की थी। उसके स्थान पर आनेवाले मंत्रि-मंडलने उस योजनाका परित्याग तो नहीं किया, परन्तु उसके साथ खिलवाड़ शुरू कर दिया। जिन दो शर्तों पर गांधीजीने योजनाको अनुमति दी थी, उनमें से एक पर भी अमल नहीं किया गया और सर्वसम्मत योजनामें संशोधन और समझौते कर लिये गये। इसका योजनाके वास्तविक स्वरूप पर असर पड़ा और अन्तमें वह मर गई ।

केन्द्रमें सरदार पटेलको देशमें अन्न और कपड़ेकी निरन्तर बनी रहनेवाली कमीसे चिन्ता हो रही थी। गांधीजीको लिखे अपने एक पत्रमें उन्होंने अपनी यह चिन्ता व्यक्त की और उनके (गांधीजीके) नोआखालीसे लौट आने पर जोर दिया। गांधीजीने उत्तर दिया: "मुझे तो सूर्यकी भांति स्पष्ट दिखाई देता है कि हमें अन्न और वस्त्रकी कमी होनी ही नहीं चाहिये। यह दूसरी बात है कि मैं आपको यह बात समझा

न सकूं। ऐसी सूरतमें मैं यहां रहूं या वहां रहूं, इससे क्या फर्क पड़ जायगा ?" [गांधीजीका पत्र सरदार पटेलको, ५ फरवरी, १९४७]

अप्रैल १९४७ में पटनाके एक प्रार्थना-प्रवचनमें गांधीजीने कहा : यदि मैं बिहारका मुख्यमंत्री होऊं और मुझे अपनी सरकारके सदस्य चुनने पड़ें, तो मैं यह देखूंगा कि वे बिहारमें तमाम नई मिलोंका बनना बन्द कर दें और जो पहलेसे स्थापित हैं उनका तैयार किया हुआ माल नियंत्रित भाव पर भारतके बाहर बेचें। मैं "लोगोंकी स्वीकृतिसे" बिहारमें मिलके कपड़ेकी बिक्री रोक दूंगा। अप्रैल १९४७ के अंतिम सप्ताहमें पटनामें हुई रचनात्मक कार्यकर्ताओंकी एक सभामें गांधीजीने कहा, "मिलका कपड़ा खादीके साथ साथ नहीं बिकना चाहिये । इंग्लैंडमें विदेशी मंडियोंके लिए बना हुआ लंकाशायरका कपड़ा घरके उपयोगके लिए आपको नहीं मिलता।"

दो दिन बाद हिन्दुस्तानी तालीमी संघकी एक सभामें उन्होंने उस बढ़ती हुई खाई पर, जो उनके और कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओंके दृष्टिकोणमें दिखाई दे रही थी, फिरसे अपना गहरा दुःख प्रकट किया। वे बोले, अब तक विभिन्न रचनात्मक प्रवृत्तियां राजनीतिक क्षेत्रसे अलग चलती रही हैं। कांग्रेसके सत्ता ग्रहण करने पर मंत्रिगण अपने अनुभवसे लाभ उठा कर उसी कामको देशव्यापी आधार पर फैला सकते थे, जिसे अब तक वे प्रयोगके आधार पर कर रहे थे। दुर्भाग्यसे सरकारने ऐसा नहीं किया। "मैं सरकारको दोष नहीं देता। उसे विरासतमें एक तंत्र मिला है। उसी तंत्रसे उसे काम लेना पड़ता है। मैं मंत्री होता तो शायद मैं भी ऐसा ही करता।" रचनात्मक कार्यकर्ताओंको अनन्त धैर्य रखनेकी जरूरत है। क्या मैंने आपसे अक्सर यह नहीं कहा है कि देशकी राजनीतिको नये सांचेमें ढालना भी रचनात्मक प्रवृत्तिका कार्य है? परन्तु उन्हें सान्त्वना देते हुए गांधीजीने कहा : "**यदि इन संघर्षों के बीच . . . भारतको शुद्ध विचार पर आधारित शुद्ध कार्यका नेता बनना है, तो भगवान इन बड़े आदमियोंकी बुद्धिको झूठी सिद्ध कर देगा और गांवोंको अपनी बात योग्य ढंगसे कहने तथा उसे आचरणमें उतारनेकी शक्ति प्रदान करेगा**।" [हरिजन, २८ जुलाई, १९४६, पृ. २३६] (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

३

दूसरे क्षेत्रोंमें भी यही संकल्प-विकल्प कांग्रेसकी नीतिका एक लक्षण बन गया था। जबसे बिहारके दंगे हुए तभीसे गांधीजी उनकी जांचके लिए एक कमीशन नियुक्त करने पर जोर दे रहे थे।

पंडित नेहरूने बंगालके मुख्यमंत्री शहीद सुहरावर्दीको लिखा था कि अगर बंगाल सरकार एक ही तरहकी शर्तोंके साथ पूर्व बंगाल और बिहारकी घटनाओंकी संयुक्त जांच कराना मंजूर न करे, तो भी बिहारके मंत्री "अपनी जांचका काम आगे बढ़ायेंगे ।" [पं. नेहरूका पत्र शहीद सुहरावर्दीको, १ जनवरी, १९४७] परन्तु जांचके कोई लक्षण नजर नहीं आते थे। बिहारके एक मुस्लिम लीगीने गांधीजीको लिखा कि इस देरकी जड़ सरदार पटेल हैं। इस पर गांधीजीने सरदार पटेलको लिखा:

> आप कमीशनके विरुद्ध हैं, गवर्नर और वाइसरॉय भी उसके विरुद्ध हैं। क्या यह मुख्यमंत्रीके हाथ बांध देनेके लिए काफी नहीं है ? इसके बावजूद मेरी यह पक्की राय है कि यदि कमीशन नियुक्त न किया गया, तो वह लीगकी रिपोर्टके अभियोगोंको स्वीकार कर लेनेके बराबर होगा। मैं ही जानता हूं कि (इस मामलेमें) मुझ पर कितना दबाव डाला जा रहा है। [गांधीजीका पत्र सरदार पटेलको, १७ जनवरी, १९४७]

पं. नेहरूके एक पत्रने गांधीजीकी बेचैनी और बढ़ा दी :

> मुझे बिहारकी चिन्ता है। मैंने वहांके कुछ मंत्रियोंसे साफ कह दिया कि वे एक जांच-कमीशनकी मांग करें; या बंगाल सरकार इसमें से निकल जाये, तो वे खुद ही कमीशन नियुक्त कर दें। मैंने समझा था कि वे सहमत हैं, परन्तु तबसे आज तक कुछ किया नहीं गया है। मुझे इसका कारण मालूम नहीं है। [पं. नेहरूका पत्र गांधीजीको, ३० जनवरी, १९४७]

पं. नेहरूके पत्रमें आगे लिखा था: "मेरा खयाल है, लेकिन इसके लिए मेरे पास कोई प्रमाण नहीं है, कि जांचके लिए कोई प्रबल इच्छा नहीं है । कुछ भी हो, बिहार सरकार धीमी गतिसे अपना काम कर रही है। सरकारने कष्ट-निवारणका बहुत काम किया है। परन्तु उसे ठीक ढंगसे नहीं किया, इसलिए मनोवैज्ञानिक परिणाम बड़े नहीं निकले। मुस्लिम आबादीमें डर और त्रासकी भावना फैली हुई है। मुझे मालूम हुआ है कि बादशाह खानने जो कुछ वहां देखा, उससे उन्हें जरा भी खुशी नहीं हुई।"

यह पत्र मिलने पर गांधीजीने सरदारको फिर लिखा: "अगर कमीशन नियुक्त नहीं होगा, तो बहुत बुरी बात होगी। बिहारके मंत्री अपराधी सिद्ध होंगे। यदि उनके हाथ स्वच्छ हैं, तो कमीशनसे क्या हानि हो सकती है ? यहां (नोआखालीमें) मुझ पर बिहार जानेके लिए बहुत जोर डाला जा रहा है। परन्तु मुझे बिहारके मंत्रियों पर विश्वास है, इसलिए मैं वहां नहीं जा रहा हूं। लेकिन अगर कमीशत्त नियुक्त नहीं

होगा, तो मुझे लगता है कि मुझे वहां जाना पड़ेगा।" [गांधीजीका पत्र सरदार पटेलको, ५ फरवरी, १९४७]

सरदारको इससे चोट लगी:

> आपसे किसने कहा कि बिहारमें जांच-कमीशनकी नियुक्ति न होनेमें मेरा हाथ है? मेरी यह राय जरूर है कि कमीशनकी नियुक्तिसे कोई लाभ नहीं बल्कि हानि ही होगी। इतने पर भी कमीशन नियुक्त किया जाय, तो मैं उसे कैसे रोक सकता हूं ? मुझे यह अजीब बात मालूम होती है कि ऐसे गलत समाचार आप तक पहूंचाये जाते हैं।
>
> बिहारका गवर्नर कमीशनके नियुक्त न होनेके पीछे है। वाइसरॉय भी नहीं चाहते। अन्यथा उसे कौन रोक सकता है? कलकत्ता जांच-कमीशन (अगस्त १९४६ के भीषण हत्याकांड पर रिपोर्ट देनेके लिए) वाइसरॉयके कहने पर नियुक्त किया गया था। जांच हो रही है। रिपोर्ट १२ महीने बाद मिलेगी। इतनी देरके बाद उससे क्या लाभ होगा ? इसके अलावा, रुपयेकी निरी बरबादी होगी । मेरी समझमें नहीं आता कि मैं इस चित्रमें कहां आता हूं। [सरदार पटेलका पत्र गांधीजीको, १० फरवरी, १९४७]

सरदारका सीधी जिम्मेदारीका खण्डन सम्पूर्ण और असंदिग्ध था, परन्तु उनके अपने रवैयेके बारेमें कोई गलतफहमी नहीं रही। उससे गांधीजीकी शंकाओंका समाधान नहीं हुआ। पंडित नेहरू अशान्त थे, परन्तु यह साफ था कि वे कुछ कर नहीं सकते थे। कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओंके मनकी दुविधा पूर्णताको पहुंच गई थी।

फरवरी १९४७ के आखिरी सप्ताहमें गांधीजीकी सलाहसे बिहारके मुख्यमंत्रीने प्रान्तीय विधान-सभामें आखिर यह घोषणा की कि बिहार सरकारने प्रान्तके साम्प्रदायिक उपद्रवोंकी जांच करके अपनी रिपोर्ट पेश करनेके लिए एक जांच-कमीशन नियुक्त करनेका निर्णय कर लिया है। गांधीजीने बिहारके मंत्रियोंको कमीशनके विचारार्थ ये कार्य लिख भेजे थे:

> १. ता. . . . को शुरू हुए हालके साम्प्रदायिक उपद्रवोंके कारणों और उन्हें शांत करनेके लिए बिहार सरकार द्वारा किये गये उपायोंकी जांच करके रिपोर्ट देना; यह भी बताना कि पीड़ित

मुसलमानोंमें फिरसे विश्वास स्थापित करनेके लिए बिहार सरकारको और क्या कदम उठाने चाहिये।

२. जांच जनताके लिए खुली रहेगी और न्यायाधीशको कागजात मंगाने और गवाहोंको बुलानेके सारे आवश्यक कानून-सम्मत अधिकार होंगे।

३. न्यायाधीश सरकारको अपनी रिपोर्ट . . . को या उससे पहले पेश कर देगा।

पटना हाईकोर्टके न्यायाधीश श्री रूबेनको एक सदस्यवाले कमीशनके रूपमें नियुक्त करनेका निर्णय किया गया और इस कार्यके लिए उन्हें आवश्यक सत्ता देनेवाले एक विधेयकका मसौदा बनाया गया। यह भी निश्चय किया गया कि मुसलमानोंमें विश्वास उत्पन्न करनेके लिए कोई मुसलमान सिविलियन अफसर कमीशनका सचिव नियुक्त किया जाय। मुख्यमंत्री इसके लिए उत्सुक थे कि विधेयक विधान-सभाके उसी अधिवेशनमें स्वीकृत हो जाय । विधेयकका मसौदा तैयार करा लिया गया और गवर्नर सर हुग डॉ से विधेयकको प्रान्तीय विधान-सभामें पेश करनेकी औपचारिक स्वीकृति मांगी गई। परन्तु उन्होंने यह कहकर विधेयककी बातको टाल दिया कि वे सारे मामलेकी चर्चा दिल्लीवालोंके साथ करेंगे। बादमें अप्रैलके तीसरे सप्ताहमें दिल्लीसे लौटने पर उन्होंने एक नोट पेश कर दिया कि विधेयकका मसौदा किसी हद तक समयसे पहले बना लिया गया है; अभी तो "जांच करानेका भी" सरकारका कोई निर्णय नहीं हुआ है; (उनके मतानुसार) मुख्यमंत्रीने विधान-सभामें जांच करानेकी "स्वयं अपनी अनिच्छापूर्ण तैयारी" प्रकट की है; ऐसे भी संकेत मिलते हैं कि प्रस्तावित रूपमें की जानेवाली जांच मुसलमानोंको स्वीकार्य नहीं होगी और वे उसके साथ असहयोग करेंगे; और उस सूरतमें जांचसे कोई लाभ नहीं होगा, बल्कि जांच करानेसे सार्वजनिक शान्तिके लिए बहुत बड़ा खतरा ही खड़ा होगा। गवर्नरने यह भी कहा कि अभी तो और भी बहुतसी प्राथमिक बातें तय करनी हैं, इसलिए विधान-सभाके इस अधिवेशनमें विधेयक प्रस्तुत करनेका प्रश्न ही नहीं हो सकता। अन्तमें उन्होंने कहा कि मैं ऐसा करना किसी भी प्रकार जरूरी नहीं समझता, क्योंकि जांचके पक्षमें कोई अन्तिम निश्चय हो ही जायगा, तो मामला "विवादरहित" हो जायगा और उस हालतमें मुझे अध्यादेश जारी करनेमें कोई आपत्ति नहीं होगी।

नतीजा यह हुआ कि विधेयक विधान-सभाके उस अधिवेशनमें प्रस्तुत नहीं किया जा सका। जब जूनमें मुख्यमंत्रीने इस मामलेको फिरसे हाथमें लिया तब तक कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों देशके विभाजनकी योजना पहले ही स्वीकार चुकी थीं। जैसा कि स्पष्ट था, बिहार गवर्नरने दिल्लीकी संमतिसे अब यह रवैया अपनाया कि "परिस्थितियोंके बदले हुए वैधानिक पहलूको देखते हुए" कमीशनकी नियुक्तिके लिए अब कोई "वास्तविक मांग नहीं रही । मुख्यमंत्रीने उन्हें याद दिलाया कि कमीशन नियुक्त करनेकी घोषणा विधान-सभामें पिछले फरवरी मासमें ही कर दी गई थी, घोषणाका मेरे मंत्रि-मंडलके साथियोंने एकमतसे समर्थन किया था और अब जूनका महीना चल रहा है। मुख्यमंत्रीने कहा कि नियमित घोषणा करनेका और उस संबंधमें आवश्यक प्रारंभिक कार्रवाई करनेका समय आ पहूंचा है और यदि न्यायाधीश रूबेनकी नियुक्तिके लिए मुख्य न्यायाधीशकी स्वीकृति जरूरी हो तो वह तुरन्त ले ली जाय। बादमें मुख्य न्यायाधीशसे कहा गया तो उन्होंने इस हेतुके लिए न्यायाधीश रूबेनकी सेवायें देना स्वीकार कर लिया।

इस बीच नये वाइसरॉय लॉर्ड माउन्टबेटनने अपने पूर्वाधिकारीके शासनकालमें आरंभ की गई कलकत्तेकी जांचको बन्द कर देनेका फैसला कर लिया था। अब बिहार गवर्नरने यह दलील दी कि कलकत्तेकी जांच पूरी तरह छोड़ दी जानेके बाद बिहार सरकारका वैसी ही जांच कराना "बहुत अनुचित" और "हास्यास्पद भी" होगा। इसके फलस्वरूप प्रान्तमें साम्प्रदायिक उपद्रव "फौरन भड़क उठेंगे"। अन्तमें उन्होंने मुख्यमंत्रीको टका-सा जवाब दे दिया कि "अपने कार्यकालके अन्तिम कुछ दिनोंमें मैं इस प्रकारके निर्णयकी जिम्मेदारीमें भाग लेनेको बिलकुल तैयार नहीं हूं।" यदि मुख्यमंत्री फिर भी मामलेको आगे बढ़ाना चाहते हैं, तो उन्हें भारतीय हाथोंमें सत्ताके हस्तांतरित हो जानेके बाद – अर्थात् १४ अगस्त, १९४७ के बाद – मेरे उत्तराधिकारीके सामने आदेशके लिए इस मामलेको "रखना चाहिये"।

१५ अगस्त, १९४७ को भारतका विभाजन हो गया और दोनों भाग विधिवत् स्वाधीन घोषित कर दिये गये। जब मुख्यमंत्रीके आदेशानुसार कमीशनका मामला फिर हाथमें लिया गया, तो विभागीय सचिवने भी यही दलील पेश की कि बदली हुई राजनीतिक परिस्थितियोंमें "अतीतकी कड़वी बातोंको पुन: खोलना" आवश्यक नहीं रहा है। "बदली हुई राजनीतिक व्यवस्थामें" मुस्लिम लीग भी अक्तूबर-नवम्बर १९४६ के साम्प्रदायिक दंगोंकी जांच कराना पसंद नहीं करेगी। सचिवने निवेदन किया कि इन बातोंको जाने दें तो भी जब कलकत्ता जांच-कमीशन भंग कर दिया गया है और सभी लोग "दुःखद

भूतकालको भूलनेके लिए उत्सुक हो गये हैं", उस समय कोई जांच-कमीशन नियुक्त करना "सचमुच बड़ी अजीब बात" होगी ! इसी समयके आसपास बिहारके कुछ प्रमुख मुस्लिम नेताओंने, जिनमें बिहार मंत्रि-मंडलके एक मंत्री डॉ. सैयद महमूद भी थे, एक सार्वजनिक वक्तव्य निकाला और उसमें सरकारसे अनुरोध किया कि जांच-कमीशन नियुक्त करनेका विचार छोड़ दिया जाय, "ताकि कटु स्मृतियां फिरसे ताजा न हों" और "हम अपनी सामाजिक, आर्थिक और शिक्षा-संबंधी स्थितिको सुधारनेके लिए . . . प्रान्तके पुनर्निर्माणमें उचित भाग ले सकें ।" यह दुःखद कांड तब बंद हुआ जब बिहार मंत्रि-मंडलने अपनी एक बैठकमें "कोई जांच-कमीशन मुकर्रर न करनेका सरकारसे अनुरोध करनेवाले मुस्लिम नेताओंके वक्तव्यको देखते हुए" इस मामलेका आगे विचार करना स्थगित कर दिया। अन्तमें ३० अक्तूबर, १९४७ को "मुस्लिम नेताओंकी मांगको ध्यानमें रख कर" बिहार मंत्रि-मंडलने कमीशन नियुक्त करनेका विचार छोड़ दिया।

वैधानिक दृष्टिसे बिहार सरकारकी दलील अकाट्य थी | गवर्नरकी अड़ंगेबाजी साफ दिखाई देती थी। परन्तु इस बातको हम छोड़ दें तो भी क्या गांधीजी बिहारके मंत्रियोंसे पहले ही यह नहीं कह चुके थे कि उन्हें ऐसा समझ कर काम करना चाहिये मानों गवर्नर है ही नहीं। यदि गांधीजीका और कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओंका एक ही विचार होता और वे दृढ़तासे काम लेते, जैसा कि गांधीजीने सुझाया था, तो क्या उन सबके सर्वसम्मत निर्णयका विरोध करनेका गवर्नरको साहस होता ? परन्तु दोनोंको यही पसंद था। जांच हुई नहीं, कांग्रेसकी अनिश्चितताकी नीति जारी रही और राज- नीतिक स्थिति अन्तिम पराकाष्ठाकी अवस्थामें पहुंच गई।

४

यह इतिहासकी एक विचित्र विषमता है कि जब कोई राष्ट्र अथवा संस्था सत्ताके शिखर पर पहुंच जाती है और उसके परिश्रमका फल बिलकुल पास आता दिखाई देता है, तब उसमें भीतरी ह्रासके लक्षण भी उत्पन्न हो जाते हैं। परन्तु बहुत समय तक दर्शक केवल उसके सूर्यास्तकी रंग-बिरंगी शोभाको ही देखते रहते हैं और उसके क्षणिक रंगोंके दुःखद रहस्यको नहीं समझ पाते। सत्ता हस्तांतरित होनेके ठीक पहले कांग्रेसका भी यही हाल हुआ। पं. नेहरूने सतहके नीचे पैदा हुई सड़ांधको देखा। उन्हें चिन्ता हुई । अपने एक पत्रमें उन्होंने गांधीजीको लिखा:

किसी हद तक सारे भारतमें परिस्थितियां बहुत असंतोषजनक हैं। कुछ ऐसी विघातक मनोवृत्ति काम कर रही है, जो हर दिशामें हमारे काम पर असर डालती है। यह बीमारी सारे कांग्रेस संगठनको लगी हुई है और हमें—जो सरकारमें हैं—ऐसा समय ही नहीं मिलता जिसे हम अपने सामने खड़ी होनेवाली तात्कालिक समस्याओंके सिवा और किसी काममें लगा सकें। पत्रमें बहुत लिखना कठिन है, परन्तु मैं आपको यह अनुभव कराना चाहता हूं कि कुछ बातोंमें स्थिति निरन्तर अधिक और अधिक बिगड़ती जा रही है और मुझे इसका बहुत दुःख होता है। [पं. नेहरूका पत्र गांधीजीको, ३० जनवरी, १९४७]

उन्होंने आगे लिखा: "मुझे सबसे ज्यादा चिन्ता कांग्रेस संगठनकी तेजीसे बिगड़ती हुई . . . स्थितिके बारेमें है। हममें से जो लोग सरकारमें हैं, उन्होंने कांग्रेसके कार्यमें कुछ भी समय नहीं दिया है, न वे दे सकते हैं। जनताके साथ हमारा सम्पर्क छूट रहा है।" [पं. नेहरूका पत्र गांधीजीको, १० फरवरी, १९४७] परन्तु कोई चीज इससे भी ज्यादा अशान्तिकारक थी: **"जब हमारी अपनी दृष्टि ही बिलकुल स्पष्ट नहीं है और अलग अलग दृष्टिबिन्दुओंके बीच खींचतान होती है तब समस्यासे निबटना और भी कठिन हो जाता है।"** [पं. नेहरूका पत्र गांधीजीको, ३० जनवरी, १९४७] (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

किन्तु पं० नेहरू अपनी सारी दूरदर्शिता और कुशाग्र बुद्धिके होते हुए भी यह नहीं देख सके कि कुछ प्रवाह, जिनके बारेमें वे इतने चिन्तित थे, उस नीतिका अनिवार्य परिणाम थे, जो कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओंने प्रान्तोंमें और बादमें केन्द्रमें सत्ता ग्रहण करनेके समयसे अपनाई थी; और इस बीमारीका एकमात्र इलाज वही था जिसे शायद वे स्वीकार करनेको तैयार नहीं थे। गांधीजीने भी उस समय यह इलाज अपनाने पर बहुत जोर नहीं दिया; क्योंकि यह मंझधारमें घोड़े बदलने जैसी बात होती। और जब उन्होंने अपनी पार्थिव यात्राके अन्तिम दिन उसे सचमुच उनके सामने रखा तब उसे चुपकेसे ताकमें रख दिया गया। (देखिये खण्ड -४, अध्याय - ४)

गांधीजी अपने समयमें कांग्रेसके कठोर गुरु बन कर रहे। लम्बे समय तक वे उसके एकमात्र "तानाशाह" रहे। परन्तु उनकी तानाशाही प्रेमकी, सेवाकी तानाशाही थी। वह कभी किसीको खटकती नहीं थी। जब कभी वे कांग्रेसको अपने साथ सहमत नहीं कर पाते तब वे उसमें से निकल जाते थे, परन्तु उसे कमजोर करनेके लिए नहीं बल्कि बाहरसे उसकी अधिक उपयोगी सेवा करनेके लिए। इसलिए

कांग्रेसी नेता जब उनसे सहमत नहीं होते, तब भी वे उनसे मार्गदर्शन लेते रहते थे और गांधीजी समान लक्ष्यकी पूर्तिमें उनका मार्गदर्शन करते रहते थे।

कांग्रेसके अधिवेशन आरंभमें तो एक वार्षिक प्रदर्शनके रूपमें ही होते थे। ऐसी कांग्रेसको गांधीजीने कार्यके एक कार्यक्षम, सुसम्बद्ध तथा अत्यन्त अनुशासनपूर्ण साधनका रूप दे दिया था। उन्होंने कांग्रेसको सत्य और अहिंसा पर आधारित विचारधारा और राजनीतिक तत्त्वज्ञान प्रदान किया तथा सामुदायिक कार्रवाईका ऐसा कार्यक्रम दिया, जिसे तथाकथित कमजोरोंके बलसे शक्ति मिलती थी। लाखों लोगोंकी इस शक्तिको जागृत करने और उसे राजनीतिक कार्यमें लगानेके लिए आत्मशुद्धि, आत्म-अनुशासन, त्याग तथा बलिदान द्वारा प्रत्येक व्यक्तिको वह सर्वसामान्य श्रेष्ठ तत्त्व अपनेमें उत्पन्न करना होता है, जो सबके भीतर होता है और जिसे लाखों-करोड़ों लोग प्रकट कर सकते हैं। इसके लिए जरूरी था कि कांग्रेस-जन अहिंसा और उसके अनिवार्य परिणाम – आत्मोत्सर्ग – की जीवन-प्रणालीको स्वीकार करें और उसका पालन करें। शुरू शुरूमें जब कांग्रेस वनवासमें थी और उसके पास सामुदायिक अहिंसक कार्रवाईके सिवा ब्रिटिश साम्राज्यवादसे लड़नेके लिए और कोई पृष्ठबल नहीं था तब तो कांग्रेस-जन उस शक्तिके लिए आवश्यक शर्तें किसी न किसी तरह पूरी करते थे। १९३७ में कांग्रेसके द्वारा प्रान्तोंमें पद-ग्रहण करनेके बाद भी यह स्थिति बहुत-कुछ बनी रही। जो लोग सरकारमें गये उन पर हानिकारक असर पड़ा। सत्ताकी छीना-झपटी कांग्रेस संगठनमें घुसने लगी। समय समय पर गांधीजीको लगाम खींचनी पड़ती थी। [यह एक नमूना है: "मुझे अपनी यह राय जाहिर करनेमें कोई हिचकिचाहठ नहीं हुई कि कांग्रेसके मंत्रियोंने अपने लिए जो वेतन लेना निश्चय किया है, वह हमारे – अर्थात् संसारके इस सबसे अधिक दरिद्र देशके – पैमानेको देखते हुए बहुत ही अधिक है। . . . हिन्दुस्तानकी वार्षिक औसत आमदनी ४ पौंड और इंग्लैंडकी ५० पौंड है। दुर्भाग्यसे हमें अभी भी कुछ समय तक अंग्रेजी विरासतका बोझ ढोना ही पड़ेगा। यथाशक्ति प्रयत्न करने पर भी हम आज आदर्श पैमाने पर नहीं पहुंच सकते । ये तनखाहें और भत्ते अब बदले नहीं जा सकते । अब प्रश्न यह है कि क्या ये मंत्री, उनके सेक्रेटरी और धारासभाओंके सदस्य खूब परिश्रम करके अपनेको इन ऊंची तनखाहोंके पात्र सिद्ध कर देंगे ? क्या धारासभाओंके सदस्य भी राष्ट्रकी सेवामें अपना पूरा समय लगायेंगे और अपनी सेवाओं तथा समयका ठीक ठीक हिसाब पेश करेंगे ? कोई यह कल्पना करनेकी गलती न करे कि जैसा हम करना चाहते हैं या जैसा होना चाहिये वह सब हो गया है। . . . इतना काफी नहीं होगा कि

मंत्रीगण स्वयं सादगीसे रहें और स्वयं कड़ा परिश्रम करें। उन्हें यह भी ध्यान रखना होगा कि उनके मातहत काम करनेवाले विभाग भी ठीक उसी तरह काम करें जैसा वे चाहते हैं। . . . न्याय सस्ता और जल्दी मिलना चाहिये। आज वह अमीरोंके विलासकी वस्तु और जुएका खेल बन गया है। पुलिसका भय मिट जाना चाहिये और उसे जनताकी मित्र बन जाना चाहिये। शिक्षामें ऐसी क्रांति होनी चाहिये कि वह साम्राज्यवादी शोषकोंकी जरूरतें पूरी करनेके बजाय गरीबसे गरीब ग्रामवासियोंकी जरूरतें पूरी करे।" – [हरिजन, २१ अगस्त, १९३७, पृ. २२०] परन्तु कांग्रेसके चोटीके नेता सरकारोंसे बाहर रहे। उन्होंने इन वृत्तियों पर नियंत्रण रखा। सब जानते थे कि ब्रिटिश सत्ताके साथ गंभीर संग्रामका समय आ रहा है और उसमें गांधीजीका अहिंसक नेतृत्व ही राष्ट्रको विजय प्राप्त करा सकता है। अन्तमें अपने अंतिम सहारेके रूपमें सब उन्हींको अपना एकमात्र पथदर्शक मानते थे।

परन्तु सितम्बर १९४६ में केन्द्रमें अन्तरिम सरकार बन जानेके बाद चित्र बदल गया। कांग्रेसके चोटीके नेता अब स्वयं सत्तारूढ़ हो गये थे। राज्यतंत्रका पृष्ठबल उनके हाथमें था। अब अहिंसाके सारे तत्त्वज्ञानको स्वीकार करनेकी जरूरत नहीं रही। यद्यपि कम या अधिक काल तक बहुतोंने अनुशासनके कदमके रूपमें उसके सिद्धान्तों पर अमल किया था, फिर भी अनिश्चित कालके लिए "खून, पसीना और आंसू" का तरीका अपनानेको वास्तवमें बहुत थोड़े लोग तैयार थे। यह सबको मालूम हो गया था कि १९४२ में जब सरकारका दमन-चक्र पूरी तरह कांग्रेस संगठन पर चला था तब अपनी अन्तिम नजरबन्दीके दौरान कांग्रेसके कुछ बड़ेसे बड़े लोगोंने सचसुच कह दिया था कि "दुबारा ऐसा कभी नहीं" होगा। यद्यपि किसीने यह कहा होता कि वे पुनः वनवासमें जानेसे डरते हैं, तो उन्होंने उसका विरोध किया होता (और सच्चे दिलसे ही किया होता)। फिर भी उनके अन्तिम अनुभवका दरअसल उनके दृष्टिकोण और राजनीतिक तत्त्वज्ञान पर असर पड़ चुका था, चाहे वे इसे स्वीकार करते या न करते अथवा इसका उन्हें भान भी रहा हो या न रहा हो । जब अहिंसक शक्तिका विकास करनेकी आवश्यकता नहीं रही या बहुत कम हो गई, तब स्वभावतः खादी और "रचनात्मक अहिंसा" का आधार बननेवाली सब बातें पीछे चली गईं और जिसे "राजनीतिक कार्रवाई" कहा जाता है उस पर अधिकाधिक अवलम्बन रखा जाने लगा।

ब्रिटिश सत्ताने राहतकी सांस लेकर इस परिवर्तनका स्वागत किया। गांधीजीका सत्याग्रह हमेशा उन्हें घबराहटमें डाल देता था। गांधीजीकी अतिशय नम्रतासे वे चकित हो जाते थे। गांधीजीकी

असाधारण सरलतासे वे परेशान हो उठे थे, जब उन्होंने बिलकुल सच्चे दिलसे कहा कि भारतमें अंग्रेजी राज्य निरी बुराई है। थोड़ी-बहुत भलाई उससे हुई हो तो वह संयोगवश हुई है और बुराई तो उसमें बुनियादी और अनिवार्य रूपमें है; अंग्रेजोंसे भारतकी साम्प्रदायिक समस्या हल करनेकी नैतिक योग्यता नहीं है, क्योंकि खुद उन्हींने जाने अनजाने इस समस्याको पैदा किया है; ब्रिटिश राज्य द्वारा स्थापित शान्तिसे तो अराजकता ज्यादा अच्छी है; अंग्रेजोंको चाहिये कि वे भारतको भाग्यके भरोसे छोड़ कर चले जायं; यह प्रेमपूर्ण सलाह उनके अपने हितमें है और यह सलाह देनेमें मैं उनके हितैषी और मित्रका काम कर रहा हूं। उन्होंने अंग्रेजोंके अत्यन्त झूठे दावोंको भी ज्योंका त्यों स्वीकार करके उनकी कूटनीतिकी धारको भोंथरा कर दिया था। और जब उन्होंने विश्वास दिलाया कि वे दावे सच्चे दिलसे किये जा रहे हैं तब अपना भय और संदेह भी उन्होंने अंग्रेजोंसे नहीं छिपाया। गांधीजीने यह कह कर उनका ब्रह्मास्त्र भी उनसे छीन लिया कि ईश्वरके लिए अपनी फौज और पुलिसको भारतसे ले जाइये अथवा अपने ही पास रख लीजिये, क्योंकि स्वाधीनताके लिए संग्राम करनेवाले भारतकी रक्षाके लिए उनकी सचमुच जरूरत नहीं है; अगर आप भारत छोड़कर चले जायं और कांग्रेसके विरोधी दलको भी आप सत्ता सौंपें, तो मैं उसका स्वागत करूंगा। अन्तमें जब अन्तिम उपायके रूपमें अहिंसक सामुदायिक कदम उठा कर, जिसने गणितके सारे हिंसाबों और संभावनाके सारे नियमोंको झुठला दिया, गांधीजी अरण्य-वासमें चले गये तो अंग्रेज भारी उलझनमें पड़ गये। कैद होकर गांधीजीने अपनी तपस्यासे जेलकी दीवारोंको चमका दिया और वहां जाकर अपनी मुक्तिकी स्थितिसे अधिक दुर्जेय बन गये । उन्होंने अंग्रेजोंकी राजनीतिक विजयोंको नैतिक पराजयोंमें बदल दिया। उनकी अहिंसा अज्ञान्तिकारक तत्त्व बन गई। नदीके पाटमें खड़े अवरोधोंकी तरह अहिंसा घटनाओंकी सारी धाराको अदृश्य किन्तु सफलतापूर्वक बदल देती थी; उसने अंग्रेजोंको उनके हठ तथा प्रतिष्ठाकी चट्टानों पर सुरक्षित और सूखा तो रखा था, परन्तु उनके चारों ओरका सारा दृश्य बदल जाता था और ऐसी नई मजदबूरियां पैदा हो जाती थीं, जिनके कारण उन्हें अपनी राजनीतिक और कूटनीतिक विजयोंका लाभ उन लोगोंको दे देना पड़ता था, जो लड़ाईमें उनके हाथों हारे हुए दिखाई देते थे। गांधीजी हारे या जीते, परन्तु अंग्रेज हमेशा ही पराजित होते थे। उनके शास्त्रागारमें कोई ऐसा शस्त्र नहीं था, जिससे वे गांधीजीके शस्त्रका मुकाबला कर पाते।

इसलिए अंग्रेज दूसरे ऐसे लोगोंसे व्यवहार करना ज्यादा पसन्द करते थे, जो उनकी भाषा बोलते थे, उनके हथियारोंसे लड़ते थे, उनकी भूमि पर उनसे मिलते थे, उनके ही नियमोंसे खेल खेलते थे। उदाहरणके लिए, १९४५ में हुए पहले शिमला-सम्मेलनके दौरान प्रधान सेनापतिने लॉर्ड वेवेलके कहनेसे अपने एक अधिकारीको गांधीजीके पास भेजा, ताकि वह उन्हें ब्रिटिश भारतीय सेनाकी संख्या और व्यवस्थाके बारेमें सारे तथ्य बताये। गांधीजीने उस वर्णनमें केवल शिष्टाचारके नाते दिलचस्पी ली। ज्यों ही वह अधिकारी गया त्यों ही जो कागज उसने उन्हें सौंपे थे उन सबको बिना पढ़े उन्होंने अपनी फाइलके नीचे रख दिया। परन्तु लॉर्ड माउन्टबेटनको कांग्रेसी नेता अच्छे शिष्य मालूम हुए। जब लॉर्ड माउन्टबेटनने उनके समक्ष भारतका विभाजन होने पर या अन्य स्थितिमें देशके संरक्षणके विषयमें भाषण दिया तब वे आश्चर्य- चकित होकर श्रद्धालु विद्यार्थियोंकी तरह उनका भाषण सुनते रहे। बस, सर्वत्र यह खबर पहुंच गई कि ये लोग ऐसे हैं जिनके साथ सौदा किया जा सकता है। उस बेढब बूढ़ेको तो उच्चासन पर बिठा दिया गया, उसकी प्रतिभा और "अचूक सूझबूझ" की प्रशंसा की गई, उससे सलाह ली गई, उसकी बात आदर और ध्यानके साथ सुनी गई – और अंतमें उसे एक ओर हटा दिया गया। परन्तु जितना ही वे उस बूढ़ेसे दूर हटते थे उतनी ही उन्हें उसकी जरूरत पड़ती थी, क्योंकि अन्तमें ध्येयकी सिद्धि तो वही करा सकता था। वह अपने लिए कुछ नहीं चाहता था, देने और सेवा करनेके लिए ही वह सदा उत्सुक रहता था—"ईर्ष्याका उसमें लेश भी नहीं था, वह निरभिमान था, कभी रोष नहीं करता था, . . . कभी अशिष्टता नहीं करता था, अपने लिए कोई अधिकार नहीं मांगता था, अवज्ञा या अपमानको हंसते हंसते पी जाता था, . . . किसीकी कलई खोलते समय सौ बार सोचता था, अच्छी बातों पर विश्वास करनेके लिए सदा उत्सुक रहता था, सदा आशावादी और सदा धैर्यवान रहता था।"

५

आधी शताब्दीके राजनीतिक संग्रामके दौरान गांधीजीको मालूम हो गया था कि प्रणाली या तंत्र मनुष्यसे अधिक बलवान होता है और दोनोंके बीच संघर्ष होने पर प्रणाली या तंत्र सामान्यतः मनुष्यको सदा ही हजम कर लेता है। उनके पुराने साथी भिन्न वातावरणमें, भिन्न लोगोंके बीच और भिन्न साधनों द्वारा काम कर रहे थे, इसलिए उनके विचार भिन्न हो गये थे, नयें संबंध बन गये थे, और उनके साथ साथ नई वफादारियां भी पैदा हो गई थीं। अब वे कभी कभी वही बातें करते थे, जिनकी ब्रिटिश शासनमें

वे निन्दा कर चुके थे। गांधीजीको यह परिवर्तन देखकर दुःख होता था। पं. नेहरूको एक पत्रमें उन्होंने लिखा:

> मैं चाहता हूं कि तुम मुझे पंजाबकी दुर्घटनाओंके बारेमें जो कुछ बता सकते हो बताओ। मैं उनके बारेमें जो कुछ अखबारोंमें छपने दिया जाता है उसके सिवा और कुछ नहीं जानता। और उस पर मेरा पूरा अविश्वास है। मैं पुरानी "पर्दा डालनेकी नीति" से भी सहमत नहीं हूं। आश्चर्यकी बात है कि देश कैसे उन्हीं उपायोंको अपना रहा है, जिनकी ब्रिटिश शासनके दिलोंमें आलोचना की जाती थी। अवश्य ही इसके पीछेका असली कारण मुझे मालूम है। परन्तु वह मुझे जंचता नहीं। [गांधीजीका पत्र पं. नेहरूको, २० माचे, १९४७]

कांग्रेसी नेता अपने प्रशासनिक कर्तव्योंके भी गुलाम बनते जा रहे थे। उनमें से उन्हें सांस लेनेकी फुरसत भी मुश्किलसे मिल पाती थी। गांधीजीने उनकी दुर्दशा देखी। गांधीजीको उन पर दया आती थी। अप्रैल १९४७ के पहले सप्ताहमें दिल्ली पहुंचनेके बाद उन्होंने एक पत्रमें लिखा: "मुझे यहां आये ४ दिन हो गये, परन्तु कुछ मिनटसे अधिक मैं सरदारसे मिल नहीं पाया हूं। . . . कभी कभी मुझे लगता है कि यहां सारी मंडलीमें शायद मैं ही एक ऐसा आदमी हूं, जिसके पास फुरसतका समय है।"

नेताओंको अक्सर ऐन वक्त पर निर्णय और कार्य करना पड़ता था, इसलिए पहलेसे गांधीजीकी सलाह लेना मुश्किल हो जाता था। परन्तु इससे ज्यादा सन्देह तो यह होता है कि उन्हें यह खयाल रहता था कि हमें अपने निर्णयोंके परिणाम भुगतने होंगे और इसलिए हमेशा गांधीजीसे सलाह लेकर काम करना उनके लिए कठिन हो गया था। अत: गांधीजीसे परामर्श किये बिना अथवा उन्हें सूचना दिये बिना ही वे महत्त्वपूर्ण फैसले कर लेते थे। दूसरा मार्ग फिरसे वनवासमें जानेका और नये सिरेसे अहिंसक मार्ग पर चलनेका था। सत्ताके तौर-तरीकोंके आदी हो जानेके बाद यह परिवर्तन आसान नहीं था। गांधीजी आदेश देते तो वे यह भी कर लेते। परन्तु गांधीजी ऐसा नहीं चाहते थे। उसमें अंतरकी श्रद्धाका अभाव होता । नेताओंको अपने भीतर यह श्रद्धा पैदा करनी पड़ती। गांधीजीके मनमें सबसे ज्यादा डर इसी बातका रहता था कि वे कहीं अपने साथियों पर भाररूप बनकर उनकी सूझबूझसे काम करनेकी वृत्ति और निर्णयकी स्वतंत्रताका गला न घोट दें। साथियोंके सामने जो कठिन समय आ रहा था, उसमें

यांत्रिक आज्ञा-पालनसे काम नहीं चल सकता था और अहिंसाके सजीव नियममें उसका कोई स्थान नहीं हो सकता था।

तो इस भूमिकामें कांग्रेस वर्किंग कमेटीने गांधीजीसे सलाह लिये बिना मार्च १९४७ के पहले सप्ताहमें पंजाबको मुस्लिम बहुमतवाले और हिन्दू बहुमतवाले क्षेत्रोंमें बांट देनेका अपना प्रस्ताव पास किया। प्रस्ताव पास होनेके बाद लगभग एक पखवाड़े तक कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओंकी ओरसे कोई समाचार नहीं आये। २० माचको एक पत्रमें गांधीजीने पं. नेहरूको लिखा :

> मैं बहुत दिनोंसे तुम्हें लिखकर पूछनेका इरादा कर रहा था कि पंजाबके विभाजन पर कार्यसमितिके प्रस्तावका क्या हुआ। मैं इसके पीछेका कारण जानना चाहता हूं। मुझे उसके बारेमें बोलना है। पूरे तथ्योंके अभावमें मुझे बहुत ही सावधानीसे बोलना पड़ा है। कृपलानीने मद्रासमें एक प्रश्नके उत्तरमें कहा कि संभव है यह सिद्धान्त बंगाल पर भी लागू किया जाय। एक प्रमुख मुस्लिम लीगीने मुझसे पूछा . . . कि यदि वह मुस्लिम बहुमतवाले प्रान्तों पर लागू होता है, तो बिहार जैसे कांग्रेसी बहुमतवाले प्रान्त पर क्यों नहीं लागू होना चाहिये? मेरे खयालसे कार्यसमितिके प्रस्तावका असली कारण मुझे मालूम नहीं था। उसे जाननेका मौका भी नहीं मिला । मैं अपना ही विचार बता सकता था और वह साम्प्रदायिक कारणों तथा दो राष्ट्रोंके सिद्धान्त पर आधारित किसी भी विभाजनके विरुद्ध था। जबरन् तो कुछ भी हो सकता है, परन्तु स्वेच्छापूर्ण संगतिके लिए बुद्धि और हृदय दोनोंसे अपील करनी चाहिये। स्वेच्छापूर्वक किये जानेवाले कार्यमें जबरदस्ती या जबरदस्तीके प्रदर्शनके लिए कोई स्थान नहीं होता ।

सरदार पटेलको गांधीजीने उसी दिन लिखा: “हो सके तो आप मुझे अपना पंजाब-सम्बन्धी प्रस्ताव समझानेकी कोशिश कीजिये। मैं उसे समझ नहीं सकता।”

सरदार पटेलने २४ मार्चको उत्तर दिया:

> पंजाब-संबंधी प्रस्ताव आपको समझाना कठिन है। वह अत्यन्त गहरे विचार-विमशके बाद पास किया गया था। जल्दबाजीमें अथवा पूरे विचारके बिना कुछ भी नहीं किया गया है। हमें तो अखबारोंसे ही मालूम हुआ कि आपने उसके विरुद्ध अपने विचार प्रकट किये हैं। परन्तु आपको जो ठीक लगे उसे कहनेका अधिकार तो आपको है ही ।

पंजाबकी स्थिति बिहारसे कहीं ज्यादा खराब है। सेनाने नियंत्रण अपने हाथमें ले लिया है। इसके परिणामस्वरूप ऊपर ऊपरसे मामला कुछ शान्त हो गया मालूम होता है। परन्तु कोई नहीं कह सकता कि कब आग फिर भड़क उठेगी। ऐसा हुआ तो मुझे डर है कि दिल्ली भी उससे अछूती नहीं रहेगी। परन्तु यहां तो हम निबट ही लेंगे।

दूसरे दिन पं. नेहरूने गांधीजीको लिखा:

पंजाबके विभाजनके बारेमें हमारे प्रस्तावकी बात यह है कि वह हमारे पिछले निर्णयोंका स्वाभाविक परिणाम है। पहले वे नकारात्मक हुआ करते थे, परन्तु अब ठोस निर्णयका समय आ गया है। और हमारे विचार प्रकट करनेवाले प्रस्तावोंको केवल पास कर देनेका कोई अर्थ नहीं रह जाता। मेरा पक्का विश्वास है, और कार्यसमितिके अधिकांश सदस्योंका भी है, कि हमें तुरन्त इस विभाजन पर जोर देना चाहिये, ताकि वास्तविकता सामने आ जाय। असलमें जिन्नाके मांगे हुए विभाजनका यही एकमात्र उत्तर है। मैंने देखा कि पंजाबमें मुसलमानोंके सिवा सब लोग इस प्रस्तावके अनुकूल हैं। अभी तो कानूनमें कोई परिवर्तन किये बिना यह एक प्रशासनिक निर्णय है।

ऐसी बातकी पहलेके जमानेमें तो कभी कल्पना ही नहीं की जा सकती थी । जब गांधीजी भारतके एक सिरेसे दूसरे सिरे तक यात्रा कर रहे होते तब भी कांग्रेसी नेता कोई महत्त्वपूर्ण निश्चय करनेसे पहले गांधीजीकी सलाह लिये बिना नहीं रहते थे।

तीसरा अध्याय: विनाशके बीज

१

बंगालमें शहीद सुहरावर्दी कहावतके अनुसार विनाशके बीज बो रहे थे। जब गांधीजीने मार्च १९४७ के प्रथम सप्ताहमें बिहार जानेके लिए नोआखाली छोड़ा तब भी उनके मनमें शंका तो थी ही। वे अपने मिशन पर अधिक विश्वासके साथ जा सकते थे, यदि उन्हें यह अनुभव होता कि वे अपने पीछे शान्तिपूर्ण नोआखालीको छोड़कर जा रहे हैं। परन्तु ऐसा होना नहीं था।

गांधीजीके नोआखाली निवास-कालके अन्तिम दिनोंमें वहां नाजुक स्थिति पैदा हो गई थी। बंगाल सरकारने दंगोंके शिकार बने लोगोंके कष्ट-निवारण और पुनर्वासके लिए जो उपाय किये वे विलम्बसे किये गये थे, ढीले मनसे किये गये थे, गलत तरीकेसे सोचे हुए थे और उनका अमल भी ढुलमुल मनसे तथा संकुचित भावनासे किया जाता था। [उदाहरणार्थ, यह घोषणा की गई थी कि सवा छह प्रतिशत ब्याज पर साढ़े तीन सौ रुपयेका खेतीका कर्ज उन हिन्दुओंको, "जिनकी इतनी हानि हुई हो ", "८ हिस्सेदारोंके बीच सम्मिलित रूपसे" दिया जायगा। इस हिसाबसे प्रति व्यक्ति ४३ रुपये १२ आने होते थे और इसके लिए उसे ३५० रुपयेकी जमानत देनी पड़ती । इसके सिवा, बंगाल सरकारने पूरे नोआखाली जिलेके लिए दो लाख रुपये बरबाद हुए घरोंको फिरसे बनानेके लिए मंजूर किये थे। रामपुर थानेमें सरकारी रिपोर्टके अनुसार ८० से ९० प्रतिशत हिन्दू घरोंको आग लगाई गई थी (देखिए खण्ड-१, पृ. ३९२) । २००००० रुपयेमें से इस थानेके हिस्से केवल २० हजार रुपये आते थे। हर बरबाद घरके लिए २५० रुपयेकी सहायताके हिसाबसे यह मदद केवल ८० पीडित परिवारोंको मिल सकती थी] ठक्कर बापा तकका धैर्य छूट गया। उन्होंने ३ दिसम्बर, १९४६ को गांधीजीको लिखा, "मेरे खयालसे अल्पसंख्यक कौमके साथ इससे अधिक निर्दय मजाक नहीं किया जा सकता। सरकार . . . यथासंभव कमसे कम कार्य करना चाहती है। सारी शालीनताको ताकमें रख दिया गया है। मेरे जीमें आता है कि अपनी कमजोर आवाजसे लोगोंको मैं सलाह दे दूं कि वे सरकारसे मिलनेवाली हर चीजको ठुकरा दें और उसे बिलकुल मंजूर न करें। "

चटगांव विभागके पूर्वगामी पुनर्वास-कमिश्नर ए. एस. लार्किनने ऐसे आदेश जारी कर दिये थे कि जब तक उपद्रव-पीड़ित लोगोंकी "अन्तिम रूपमें पुनर्वास" की व्यवस्था न हो जाय तब तक निराश्रित-

शिविरोंमें अन्नदान जारी रखा जाय। परन्तु उनके उत्तराधिकारी एक मुसलमान अफसरने इस नीतिको उलट दिया, और यद्यपि रामगंज क्षेत्रके उपद्रव-पीड़ित लोगोंको अभी तक मकान बनानेका सामान, कारीगरोंको औजार तथा काश्तकारोंको पशु और खेतीका सामान मुहैया नहीं किया गया था, तो भी १ फरवरी, १९४७ से शिविरोंमें "सूखा" अन्न देना अचानक बन्द कर दिया गया और उसके **बजाय दोनों कौमोंके लिए** "आजमाइशी राहत-कार्य" खोल दिये गये।

यह विचित्र बात थी। परन्तु इसके परिणाम और भी विचित्र हुए। भारतीय अकाल कानूनके अनुसार आजमाइशी राहत-कार्य आम तौर पर तब शुरू किये जाते हैं जब सर्वत्र दुर्भिक्ष हो। मौजूदा मामलेमें राहत "मिट्टी-काम" के आधार पर दी गई। परन्तु उपद्रवोंके अधिकांश शिकार इस तरहकी मेहनतके आदी नहीं थे। परिणाम यह हुआ कि पीड़ितोंके लिए तो राहत एक तरहसे बंद कर दी गई और उनके उत्पीड़कोंके लिए खोल दी गई। चांदपुर उप-विभागमें एक अधिकारीने ऐसी सूचना दी कि कष्ट-निवारणका कार्य उन लोगोंके परिवारोंके लिए भी किया जाय, **जो मुकदमा चलानेके लिए पुलिसकी हवालातमें बन्द हैं अथवा जो "हालके दंगोंके सिलसिलेमें फरार हैं**।" इससे पता चलता था कि अधिकारियोंकी हमदर्दी किनके साथ थी। इस कार्रवाईने उपद्रव-पीड़ित समुदायकी हिम्मत और भी तोड़ दी। इसके अलावा, यह विचित्र कार्यविधि ऐसे क्षेत्रमें लागू की गई जहां उपद्रव-पीड़ित लोगोंका और आम आबादीका अनुपात २ और ९ का था। इससे सरकारी कष्ट-निवारण कार्य लगभग एक ढकोसला जैसा बन गया, क्योंकि उस समय अन्न और वस्त्रकी मात्रा सारे पीड़ित क्षेत्रके लिए काफी नहीं थी।

इस नीतिके अनुसार ४ मार्च तक तमाम बड़े कष्ट-निवारण शिविर बन्द कर दिये गये। आजमाइशी राहत-कार्योंमें लगभग ३० हजार आदमी नौकर थे। वे भी मार्चके मध्य तक बन्द हो जानेवाले थे। टिपरा, नोआखाली और कलकत्तेके विविध शिविरोंसे लगभग ६० हजार निराश्रित अपने अपने गांवोंको वापस भेज दिये गये थे। उन्हें १५ दिनका राशन मुफ्त दिया गया। पिछले पुनर्वास-कमिश्नरने ऐसी सूचना की थी कि जो शरणार्थी अपने गांवोंको लौट आयं उनका राशन समाप्त होनेके बाद सूखे अन्नदान (ड्राय डोल्स) के मामलेमें उन्हें "स्थानीय अन्न-समितियोंकी दया पर नहीं छोड़ना चाहिये।" परन्तु नोआखालीके जिला-कन्ट्रोलरने एक सूचना निकाली कि संशोधित राशनिंग प्रणालीके अनुसार वितरणका जो कार्य आजमाइशी राहत-योजनाके अनुसार शुरू किया गया था, वह "मान्य किये गये" फुटकर व्यापारियों द्वारा होना चाहिये। ये व्यापारी अधिकांश स्थानीय मुसलमान थे और हिन्दुओंके लिए उनकी दुश्मनी

सबको मालूम थी। इस प्रकार हिन्दुओंको उसी खतरेका सामना करना पड़ा, जिससे पुनर्वास-कमिश्नरने उन्हें बचानेकी कोशिश की थी।

मुसलमान मजिस्ट्रेट लूट और हत्याके अभियोगोंमें गिरफ्तार किये गये मुसलमानोंकी जमानत खुले हाथों मंजूर करते थे, किन्तु जिन हिन्दुओंके खिलाफ मुसलमानोंने बदलेमें झूठे मामले चला दिये थे उन पर ऐसे वारंट जारी किये गये थे जिनकी वजहसे वे जमानत पर छोड़े नहीं जा सकते थे। आगजनी और हत्याके गंभीर मामलोंकी ठीक तरहसे जांच नहीं की जाती थी। बदनाम अपराधियोंको गिरफ्तार नहीं किया जाता था, भले ही वे उपद्रव-पीड़ित समुदायके लोगोंको डराते-धमकाते रहें। जिन अपराधियों पर दंगों सम्बन्धी घृणित अपराधोंके अभियोग लगाये गये थे, उन्हें दण्ड नहीं दिया जाता था। विभिन्न क्षेत्रोंके मुसलमानोंने इस स्पष्ट हेतुसे हिन्दुओंके बहिष्कारका संगठित आंदोलन शुरू कर दिया था कि दंगा-फसाद करनेवाली टोलियोंके सरदारोंको छोड़ देनेकी अर्जियों पर हिन्दुओंसे मजबूरन् हस्ताक्षर कराये जा सकें।

नोआखालीसे बिहार जानेके पहले गांधीजीने बंगालके मुख्यमंत्रीको एक पत्र भेजा। उसमें लिखा था:

> कल जब मैंने तुरंत बिहार जानेके अपने इरादेकी घोषणा की तब हिन्दुओंमें डर फैल गया। उन्होंने कहा कि हमें अक्तूबरकी तरह सताये जानेका भय है। मैं आशा करता हूं कि उनका यह भय निराधार सिद्ध होगा और आप उसे मिटानेके लिए जो कुछ हो सकता है वह सब करेंगे।
>
> यह कहा जाता है कि राशनके रूपमें जो भी मदद दी जाती है, वह सब १५ तारीखसे बन्द कर दी जायगी। यदि यह सूचना सच निकली तो पीड़ित लोगोंको व्यापक कष्ट होगा, जिससे उन्हें बचाया जा सकता है। राहत देनेवाला सरकारी तंत्र बहुत धीरे धीरे काम करता है।
>
> मकान बनानेका सामान काफी मात्रामें नहीं है। जुलाहोंके पास बुनाईके लिए सूत नहीं है। मछुओंके पास जाल बनानेको सूत नहीं है। बढ़इयोंके पास औजार नहीं हैं। किसानोंके पास बैल नहीं हैं; बोनेके लिए बीज नहीं हैं। ठककर बापाने हैमचरके व्यापारियोंकी कठिनाई बताते हुए कहा कि अपना कामकाज शुरू करनेके लिए उन्हें कर्ज मिलना चाहिये। . . . आशा है, कर्ज मंजूर

करनेमें देर नहीं की जायगी। मेरी यह जोरदार सिफारिश है कि ऐसे मामलोंमें व्याज नहीं मांगना चाहिये।

यहां ऐसी प्रबल भावना है कि जहां तक मजदूरोंका संबंध है, मुसलमानोंने हिन्दुओंका बहिष्कार कर रखा है। अलबत्ता, मैंने कह दिया है कि कोई सरकार किसी कौमको दूसरी कौमके लिए परिश्रम करनेको मजबूर नहीं कर सकती। आलोचकोंको जबरदस्तीका विरोधकरनेवाला मेरा कथन माननेमें कोई कठिनाई नहीं है। परन्तु उनका कहना यह है कि हिन्दुओंके बहिष्कारको आपकी सरकार पसन्द करती है, प्रोत्साहन भी देती है। मैं आशा करता हूं कि मेरी यह जानकारी बिलकुल गलत होगी। [गांधीजीका पत्र शहीद सुहरावर्दीको, १ माचे, १९४७]

परन्तु कष्टदायक समाचार गांधीजीको बिहारमें भी मिलते रहे। मुस्लिम लीगने २२ मार्चका दिन पाकिस्तान-दिवसके रूपमें मनानेका निश्चय किया था। इससे नोआखालीके हिन्दुओंमें घबराहट फैल गई। गांधीजीने मुस्लिम लीग और बंगाल सरकारसे वह दिन मनानेकी बात छोड़ देनेकी अपील की। उन्होंने शहीद सुहरावर्दीको एक तार भेजा: "मैं यहां (बिहारमें) काममें डूबा हुआ हूं। इसलिए दौड़कर नोआखाली नहीं जाना चाहता। . . . आशा है, आप उदार और सही व्यवहार करेंगे।" [गांधीजीका पत्र शहीद सुहरावर्दीको, २० मार्च, १९४७] शहीद सुहरावर्दीने उन क्षेत्रोंमें "खुली सभाओं, प्रदर्शनों और जुलूसों" की मनाहीका आदेश जारी कर दिया जहां निषेधाज्ञाएं पहलेसे ही लगी हुई थीं और हिन्दुओंमें फिरसे विश्वास स्थापित करनेके लिए अपने एक साथीको नोआखाली भेज दिया। [शहीद सुहरावर्दीका पत्र गांधीजीको, २२ मार्च, १९४७] जाहिर है कि निजी तौर पर सभाएं करने पर कोई आपत्ति नहीं थी । इससे बात और बिगड़ गई। गांधीजीने शहीदको लिखा:

मैंने आपकी प्रेस-विज्ञप्ति देखी है। . . . मुझे स्वीकार करना चाहिये कि उससे मुझे बहुत सन्तोष नहीं हुआ। क्या हम बंगालके उन भागोंमें पाकिस्तान-दिवस मनानेकी सभाएं कर सकते हैं, जहां जाब्ता फौजदारीकी धारा - १४४ लागू नहीं है या जहां कोई और निषेधाज्ञा नहीं है? और यदि सभाएं घरोंमें की जा सकती हों, तो क्या उनके सार्वजनिक सभाओंसे कहीं ज्यादा खतरनाक साबित होनेकी संभावना नहीं है? [गांधीजीका पत्र शहीद सुहरावर्दीको, २२ मार्च, १९४७]

खाद्यमंत्रीने, जिन्हें बंगालके मुख्यमंत्रीने नोआखालीमें "विश्वासकी पुनर्स्थापनाके लिए" भेजा था, खुद अपनी ही सरकार द्वारा निकाली हुई निषेधाज्ञाको भंग करके पाकिस्तान-दिवस सम्बन्धी सार्वजनिक सभामें भाषण दिया । उनकी नकल औरोंने भी की । ऐसी एक सभामें दिये गये भाषणकी कुछ बातें ये थीं: (१) हिन्दू अपने घरोंसे इसलिए नहीं भागे कि उनका दमन हुआ था, परन्तु मुसलमानोंको दुनियाकी नजरमें गिरानेके लिए भागे थे; (२) हिन्दुओंके घरोंसे चोरी होनेकी खबरें अधिकतर झूठी थीं; (३) हिन्दू झूठे बयान देकर कष्ट-निवारण कार्यका लाभ उठा रहे हैं; और (४) हिन्दुओंने मुसलमानोंका शोषण और उत्पीड़न किया और उन्हें कंगाल बना दिया; इसके लिए हिन्दुओंको अब जागृत मुसलमानोंके हाथों कष्ट उठाना पड़ा – इसका कोई इलाज नहीं है।

आगजनी और लूटपाटकी वारदातें बढ़ती ही गईं। यह जानकर गांधीजीने सतीशचन्द्र दासगुप्तको तार दिया: "आपके तमाम स्पष्ट परन्तु दुःखद तार मिले; हरनवाबूके भी मिल गये। स्थिति ऐसी मालूम होती है कि या तो हिन्दू नोआखाली छोड़ दें या धर्मान्धताकी आगमें भस्म हो जायं। आशा है, आप मुझे कोई चुनाव करनेकी सलाह देनेके लिए वहां नहीं बुलायेंगे। साथियोंसे सलाह करके तत्परतासे काम कीजिये ।" [गांधीजीका पत्र सतीशचन्द्र दासगुप्तको, ६ अप्रैल, १९४७] चूंकि बंगाल सरकारकी तरफसे तुरन्त असरकारक कार्रवाई होनेकी कोई आशा नहीं दिखाई देती थी, इसलिए गांधीजीने अपने और सतीशचन्द्र दासगुप्तके बीचका तार-व्यवहार तथा शहीद सुहरावर्दीको भेजा हुआ अपना तार अखबारोंमें छपवा दिया। सुहरावर्दीने इसके उत्तरमें बंगालके पत्रोंमें उनके प्रकाशनकी मनाही कर दी और अपनी कार्रवाईको इस बिना पर उचित बताया कि पत्रोंमें उनके प्रकाशित होनेसे "दूसरा दावानल" भड़क उठता। [शहीद सुहरावर्दीका पत्र गांधीजीको, ९ अप्रैल, १९४७] उन्होंने यह भी कहा कि जहां तक मुझे मालूम है, नोआखालीकी परिस्थितियां साधारण हैं!

गांधीजीका पत्र शहीद सुहरावर्दीको

(पटना)

१८ अप्रैल, १९४७

मैं आपके गर्भित आक्षेपोंकों स्वीकार नहीं कर सकता। मैंने कभी "पर्दा डालने" की नीतिको नहीं माना है। झूठे समाचार प्रकाशित करानेको मैं मानवताके प्रति घोर अपराध मानता

हूं। यदि सच्चे समाचारोंसे दावानल भड़क उठे, तो मानना होगा कि समाजमें और उसके नेताओंमें कुछ न कुछ बुराई है।

मैंने नोआखालीसे आये हुए तार तभी अखबारोंमें छपवाना शुरू किया जब आपसे सुनवाईकी कोई आशा नहीं रह गयी और जब नोआखालीसे बाहर होनेके कारण मुझे लाचारी महसूस हुई। . . . कदाचित् मेरे नोआखालीमें होनेसे भी स्थितिमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। मेरे वहां रहनेसे इतना ही होता कि मुझे इस बातका सन्तोष रहता कि नोआखालीमें रहकर मैं वहांके लोगों और अपने साथियोंके दुःख-सुखमें शरीक हूं।

मुझे इससे आश्चर्य होता है कि आप श्री सतीशचन्द्र दासगुप्तके दिये हुए तथ्यों पर अविश्वास करते हैं। संभव है, अपराधियोंका कभी भी पता न लगे, परन्तु आगजनी और लूटके तथ्यों पर कोई शंका नहीं हो सकती; और न इस बारेमें शंका हो सकती है कि अपराधी किस कौमके हैं। अपराधी अपनी तलाशके काममें सत्ताधारियोंको मात कर दें, तो भी **शासक यदि अपराधोंको उचित ढंगसे निबटानके कार्यमें असफल सिद्ध हों तो वे शासन करनेका अधिकार खो देते हैं – फिर वे लोकतंत्रवादी हों अथवा निरंकुश हों, विदेशी हों या स्वदेशी हों**। (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

उत्तरमें शहीद सुहरावर्दीने लिखा : "स्थिति इतनी बुरी नहीं है जितनी श्री सतीशचन्द्र दासगुप्तने बतायी है या जितनी बुरी होनेका आपको भय है।" मैं जो उपाय कर रहा हूं, उनसे स्थिति सुधरेगी। "अधिकारियोंको अधिक सावधान रहने और जरा भी शिथिलता न दिखानेकी चेतावनी दे दी गई है। इस दृष्टिसे आपके तारोंसे (जो अखबारोंमें छपे हैं) कुछ लाभ हुआ होगा, परन्तु उन तारोंके प्रकाशनके बिना भी अधिकारियोंको बुलानेका मेरा इरादा था।" [शहीद सुहरावर्दीका पत्र गांधीजीको, २६ अप्रैल, १९४७] उनके पत्रका शेष भाग चातुर्यपूर्ण विवादास्पद मुद्दोंसे भरा हुआ था:

मैं "पर्दा डालने" की नीतिको नहीं मानता। . . . जांचके बिना यह जानना कठिन है कि कौनसी खबर झूठी और कौनसी सच्ची है; और यदि आप यह मानते हैं . . . कि झूठे समाचारोंका छपना मानवताके प्रति अपराध है, तब तो निराधार समाचारोंको सच्चे समाचारोंके तौर पर फैलानेसे पहले बहुत बड़ी सावधानी रखनेकी जरूरत है।

आपने कहा है कि "यदि सच्चे समाचारोंसे दावानल भड़क उठे, तो मानना होगा कि समाजमें और उसके नेताओंमें कुछ न कुछ बुराई है।" . . . क्या आप किसी भी तरहसे यह सुझाना चाहते हैं कि समाज और उसके नेताओंमें कोई बुराई नहीं है ? . . . आपने नोआखाली और बिहार दोनोंको देख लिया। . . . जब तक प्रतिशोध और द्वेषकी भावना हिन्दुओं और मुसलमानोंके दिलसे मिट नहीं जाती तब तक **सच्चे होने पर भी समाचारोंको फैलानेमें सावधानी रखनी पड़ती है**। . . . ये ऐसे व्यावहारिक मामले हैं, जिनका सामना करना पड़ता है; सिद्धान्तवादी बननेसे काम नहीं चल सकता।

बंगालके मुख्यमंत्री इस बातको समझ नहीं सके कि गांधीजीको अपनी शिकायतें उन्हें सुनानेमें किस कारणसे "निराश होना पड़ा" । स्थानीय अधिकारियोंसे पूछताछ किये बिना वे (मुख्यमंत्री) कुछ नहीं कर सके होते । उन्होंने प्रांतीय विधान-सभाके कुछ मुस्लिम सदस्योंसे नोआखालीकी कुछ घटनाओंकी जांच करनेकी विनती की थी। "उन्होंने कुछ घटनाओंकी जांच की है। . . . उन्हें लगता है कि आगजनीके बहुतसे मामले, जो वैसे भी बहुत छोटे हैं, सच्चे नहीं हैं। उनका कारण या तो हिन्दू स्वयंसेवकोंके एक वर्गकी साजिश है – वे तनाव कायम रखना चाहते हैं, क्योंकि उससे उन्हें बंगाल सरकारको बदनाम करनेमें मदद मिलती है और बंगालके विभाजनके पक्षमें उनकी दलील भी मजबूत होती है; अथवा इन घटनाओंका कारण कुछ लोगोंका लोभ है, जो सोचते हैं कि मामूली घरोंको जला देनेसे हमें कुछ मुआवजा मिल जायगा और वह मुआवजा हमारे नुकसानसे ज्यादा होगा।" उन्होंने आगे कहा कि मैं किसी भी रायको सोचे-विचारे बिना पकड़े रखना पसन्द नहीं करता। क्या आप नहीं समझते कि (नोआखालीके गांधी-शिविरसे निकलनेवाले साइक्लोस्टाइल दैनिक बुलेटिन 'दिन-लिपि' में) श्री सतीशचन्द्र दासगुप्तके रोजाना खबरें छापनेसे, . . . जिनकी जांच वे नहीं कर लेते, डर और घबराहट मिटनेके बजाय बने रहते हैं?" पत्रमें आगे लिखा था:

आपका अन्तिम कथन यह है कि अपराधी अपनी तलाशके काममें सत्ताधारियोंको मात कर दें, तो भी शासक यदि अपराधोंको उचित ढंगसे निबटानेके कार्यमें असफल सिद्ध हों तो वे शासन करनेका अधिकार खो देते हैं – फिर वे लोकतंत्रवादी हों अथवा निरंकुश हों, विदेशी हों या स्वदेशी हों। आपके इस कथनको आपके सबसे ज्यादा वफादार अनुयायी भी स्वीकार नहीं करेंगे। . . . क्योंकि अपराध दुनियाके सब भागोंमें होते ही हैं और अपराधोंका पता न लगने पर

तथा उनका ठीक ढंगसे निबटारा न हो सकने पर भी किसी न किसीको शासन करना ही पड़ता है। नोआखालीमें जो घटनाएं हुईं वे उस प्रान्तका ही अपराध नहीं हैं। वह एक ऐसा अपराध है जिसके लिए सारे भारतका राजनीतिक तनाव . . . जिम्मेदार है। किन्तु उसका तात्कालिक कारण कलकत्तेका हत्याकांड और रक्तपात था। . . .

पत्रके अन्तमें यह उपदेश था: "मुझे लगता है कि आप यह अनुभव नहीं करते कि भारतको अभी हृदय-शुद्धिकी दिशामें काफी लंबी मंजिल तय करनी है; तब कहीं वह फिरसे मानवतापूर्ण बनेगा और मानव-जाति इस बात परसे हमारा मूल्यांकन करेगी कि हमने संदेह, अविश्वास और वैरभावको मिटानेके लिए कितना योगदान किया है।"

शाब्दिक आडंबरका तो यह उत्तम उदाहरण है। इतनी ही बात है कि जैसा खुद उनके विभागीय कमिश्नरकी रिपोर्टने सिद्ध कर दिया, मुख्य-मंत्रीके इस कथनका वास्तविकतासे कोई संबंध नहीं था। एक ऐसे मामलेमें, जो गंभीर और व्यावहारिक दृष्टिकोणकी अपेक्षा रखता था, सुहरावर्दीने "सिद्धान्तकी बातें करके" संतोष कर लिया, हालांकि वे खुद अपने पत्रमें गांधीजीको लिख चुके थे कि इससे "हमारा काम नहीं चल सकता"।

उसी समय मुख्यमंत्रीने सतीशचन्द्र दासगुप्तको लिखा: "दोनों कौमोंके बीच मित्रता स्थापित करनेके लिए मैं अत्यन्त उत्सुक हूं। . . . 'दिन-लिपि' नामक आपके पत्रने, जिसमें आपको दी गई कोई भी खबर छप जाती है, मेरी रायमें घबराहट और आतंक बढ़ानेका ही काम किया है। . . . मुझे खेद है कि आप अभी तक स्थानीय मुसलमानोंको विश्वास स्थापित करनेके उनके प्रयत्नोंके लिए कोई श्रेय नहीं देते। . . . मुस्लिम नेताओंकी राय है कि स्वेच्छासे राहत-कार्य करनेवाली संस्थाएं हिन्दुओं और मुसलमानोंको अलग रख रही हैं।" [शहीद सुहरावर्दीका पत्र सतीशचन्द्र दासगुप्तको, २७ अप्रैल, १९४७] इसके सिवा, "आशा है, आप मुसलमानोंको संभाव्य शत्रुके बजाय मित्र समझ कर उनसे बात करेंगे।" [वही] उन्होंने आगे कहा, मैं यह सुझाव दे रहा हूं, क्योंकि मैं उस कामकी बहुत कद्र करता हूं, जो नोआखालीका गांधी-शिविर कर रहा है।

इसका उत्तर गांधीजीकी अनुमतिसे सतीशचन्द्र दासगुप्तने यह भेजा:

सतीशचन्द्र दासगुप्तका पत्र मुख्यमंत्रीको,

१० मई, १९४७

जब मैं यह कह सकूंगा कि स्थानीय मुसलमानोंसे आम तौर पर इतनी मदद मिल रही है कि हिन्दुओंके दिलोंसे सारा डर और सन्देह दूर हो गया है तब मुझे सबसे ज्यादा खुशी होगी। मुझे दुःख है कि अभी तक ऐसी स्थिति नहीं है। . . .

रही बात 'दिनलिपि' की। वह एक ऐसा परिपत्र है, जो केवल कार्यकर्ताओं और मित्रोंको ही भेजा जाता है और उसके द्वारा उन्हें हम सबकी प्रवृत्तियोंसे परिचित रखा जाता है। उसमें अधिकृत समाचारोंके सिवा और कोई चीज नहीं दी जाती। आपके किसी कर्मचारीने उसके बारेमें किसी अतिशयोक्तिकी शिकायत नहीं की है।

स्वयंसेवकोंके विरुद्ध शिकायतोंके बारेमें मेरा सुझाव है कि अनुचित व्यवहारके प्रत्येक मामलेको प्रकट करना चाहिये और उसके बारेमें कानूनके अनुसार कार्रवाई होनी चाहिये। . . . मैं विश्वास दिला सकता हूं कि कोई खास शिकायत होगी, तो उसे दूर करानेके लिए फौरन कार्रवाई की जायगी। हम यहां सेवा करने आये हैं, न कि शान्तिके कार्यमें बाधा पहूंचाने।

आपने मुझे सलाह दी है कि मुसलमानोंको "संभाव्य शत्रु" के बजाय मित्र समझ कर मैं उनसे बात करूं। मैं मुसलमानोंको अपना ही अंग समझता हूं । न तो मैं उन्हें "संभाव्य शत्रु" समझता हूं, और न समझ सकता हूं।

२

बंगाल सरकारकी प्रबल इनकारकी और हलके मनसे कर लिये जानेवाले आत्म-संतोषकी नीतिने नोआखालीकी स्थितिको खतरेके कितने निकट पहूंचा दिया था, यह एक "अत्यन्त गोपनीय" रिपोर्टसे स्पष्ट हो गया था। यह रिपोर्ट चटगांव विभागके कमिश्नर एच. टी. बारेट, आई. सी. एस., ने मौके पर जांच करनेके बाद मई १९४७ के दूसरे सप्ताहमें नोआखालीकी स्थिति पर बंगाल सरकारको भेजी थी:

ऊपर ऊपरसे देखनेवाले आदमीको जिलेकी हालत बहुत कुछ साधारण मालूम होती है। अधिकांश खेतोंमें 'औस' धान और सनकी हरियाली दिखाई देती है; बाकीके खेतोंमें हल चल रहे हैं। बाजार और हाट हमेशाकी तरह काम कर रहे हैं और हिन्दू-मुसलमान किसी जाहिरा डरके बिना आजादीके साथ घूमते-फिरते देखे जा सकते हैं। लेकिन ऊपरी सतहके नीचे निश्चित तनाव है और हिन्दुओंमें असुरक्षितताकी भावना है। . . . हिन्दू, विशेषतः भद्र (मध्यम) वर्गके हिन्दू, अक्तूबरके उपद्रवोंमें बुरी तरह हिल गये थे और अभी तक उनमें साहसका पुन: संचार नहीं हुआ है। यद्यपि उनमें से बहुतोंको मुसलमानों द्वारा दी जा रही खुली धमकियों और छोटे छोटे अत्याचारों और उत्पीड़नोंसे भयग्रस्त रखा जाता है, फिर भी वे इन मामलोंकी खबर पुलिस थानोंमें या स्थानीय अधिकारियोंको नहीं देते – इस डरसे कि कहीं इस बातकी जानकारी मुसलमानोंको हो गई तो उनकी हालत पहलेसे भी बुरी हो जायगी। किन्तु कभी कभी वे कष्ट-निवारण कार्य करनेवाले स्थानीय राजनीतिक कार्यकर्ताओंको इन बातोंकी सूचना देते हैं। . . . लेकिन यदि बादमें सरकारी जांच की जाय तो वे लोग अधिकतर इस बातसे इनकार कर देंगे कि उनकी बताई घटनायें कभी हुई हैं अथवा उनके द्वारा वे सरकारके ध्यानमें छायी गई हैं। ऐसे अनेक उदाहरणोंमें सब कोई जानते हैं कि ऐसी घटनायें वास्तवमें हुई हैं; और ऐसे मुसलमान मौजूद हैं, जो उनके बारेमें जानते हैं और जो यह स्वीकार करेंगे कि घटनाएं सचमुच हुई हैं। इस प्रकार गुप्त समाचार देने और बादमें तथ्योंसे इनकार कर देनेका रवैया अपना कर हिन्दू यदि सफलतापूर्वक कुछ करते हैं तो इतना ही कि वे अपनी साख गंवा देते हैं। परन्तु उनका नैतिक साहस बिलकुल टूट गया है। . . .

इस रिपोर्टके अनुसार जिस एक बातने " हिन्दुओंकी निराशा और मुसलमानोंकी उत्पाती और आक्रमणकारी वृत्ति" को बढ़ानेमें सबसे ज्यादा हाथ बंटाया वह थी अक्तूबरके उपद्रवोंसे पैदा होनेवाले मामलोंको निबटानेकी अधिकारियोंकी कार्य-पद्धति । ऐसे मामलोंके आंकड़ोंके विश्लेषणसे मालूम होता था कि १५ अप्रैल, १९४७ तक १५२९ में से ८६२ मामले अंतिम रिपोर्ट तक पहूंचे थे और केवल १६४ मामलोंमें अभियोग लगाये गये थे। ५६६ मुलजिम अभी तक फरार थे, "जिनमें कई तो दंगाइयोंके सबसे खतरनाक नेता" थे और ६७७ गिरफ्तार किये गये अभियुकतोंमें से केवल ५० ही हवालातमें रहे ।

स्वाभाविक स्थितिमें बहुत बड़ी संख्यामें मामले अंतिम रिपोर्ट तक पहुंचने चाहिये थे और ऐसे मामलोंकी बड़ी संख्यासे हिन्दुओंके मनमें डर पैदा न होता या सिविल अधिकारियोंको चिन्ता न होती, यदि दंगाइयोंके सारे नेता और ज्ञात हत्यारे गिरफ्तार कर लिये जाते और हिन्दुओंको यह विश्वास हो जाता कि इन व्यक्तियोंके विरुद्ध पूरी दृढ़तासे मुकदमे चलाये जायंगे। परन्तु ऐसा हुआ नहीं । और हिन्दुओंको अब ऐसा लगता है कि पुलिस असली अपराधियोंका पता लगा कर उन्हें सजा दिलानेका गंभीर प्रयत्न नहीं कर रही है; और मुसलमानोंको, जिनसे कहा गया था कि उन पर मुकदमे नहीं चलाये जायंगे, इस बातका विश्वास है कि उनका कुछ बिगड़ेगा नहीं। . . .

कमिश्नरके कथनानुसार जिलेके मुसलमान तीन अलग अलग श्रेणियोंमें विभक्त किये जा सकते थे। पहली श्रेणीमें आनेवाले मुसलमानोंकी संख्या थोड़ी थी। वे हिन्दुओंके प्रति मित्रभाव रखते थे। अधिकांश मुसलमान दूसरी श्रेणीमें आते थे। यह वर्ग मुस्लिम लीगका पक्का हिमायती था और हिन्दुओंकी जिलेमें जो प्रतिष्ठा थी उसे मिटानेके लिए उत्सुक भी था; परन्तु वह इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए हिंसात्मक उपायोंके पक्षमें नहीं था। किन्तु हिन्दुओंको छोटे छोटे कष्ट पहूंचाते और तंग करनेमें उसे आपत्ति नहीं थी,

और यदि हिन्दुओंका उत्पीड़न कुछ उग्र रूप ग्रहण कर ले तो यह वर्ग उसकी उपेक्षा करनेको तैयार हो जायगा—जब उसे यह लगे कि ऐसा न करनेसे वह मुसलमानोंमें अप्रिय हो जायगा या बदनाम हो जायगा । यह वर्ग मुंहसे साम्प्रदायिक मेलजोल और शान्तिकी बातें तो खूब करेगा और अक्सर बाहरसे हिन्दुओंके साथ मित्रता भी दिखायेगा। परंतु उपद्रवोंको रोकनेमें या हिन्दुओंको बचानेमें वह कोई भाग नहीं लेगा; इतना ही नहीं, अफवाहोंके असरमें और समयके प्रवाहमें बहकर वह दंगोंमें भाग भी ले सकता है और दूसरोंको ऐसा करनेमें प्रोत्साहन दे सकता है। यूनियन बोर्डोंके अनेक सदस्य इसी वर्गके हैं। तीसरी श्रेणी सबसे खतरनाक है। इस श्रेणीमें वे मुसलमान हैं, जो धर्मान्धता, आर्थिक ईर्ष्या या व्यक्तिगत शत्रुताके कारण हिन्दुओंसे द्वेष रखते हैं और उनका सफाया कर देना चाहते हैं। साधारणत: यह वर्ग बलशाही नहीं होता, परन्तु परिस्थितियोंने उसे आज ताकतवर बना दिया है और उसे यह लाभ मिल गया है कि जिलेका गुण्डातत्त्व उसके साथ हो गया है। इस तत्त्वको दंगोंमें आसानीसे धन और सत्ता मिलनेकी

संभावना दिखाई देती है। इस श्रेणीमें आनेवाले बहुतसे आदमी जोशीले वक्ता होते हैं और अपनी हिंसक वृत्तिके कारण भीड़को उभाड़ कर क्रोधसे पागल बना सकते हैं।

परन्तु स्थानीय मुसलमान और पुलिस यह दलील देनेकी बड़ी कोशिश कर रहे थे कि आगजनीका "अपराध" जिलेमें "हमेशा सामान्य" रहा था। इस पर कमिश्नरका यह कहना था कि "वह आज जितना व्यापक है उतना पहले कभी नहीं रहा।" यह भी दलील दी गई थी कि अपराधोंकी जो वृद्धि हालमें हुई, उससे हिन्दुओंके बराबर ही मुसलमानोंको भी कष्ट सहन करना पड़ा और इस वृद्धिमें कोई साम्प्रदायिक कारण नहीं था। इसका खण्डन कमिश्नरने यों किया था:

> यह सरासर झूठ है। यद्यपि हिन्दुओंसे मुसलमानोंकी संख्या इस जिलेमें साढ़े चार गुनी है (४ १/२ : १), फिर भी अधिकांश अपराध हिन्दू घरोंमें हुए। आगजनीकी वारदातें पिछले आठ सप्ताहोंमें ही हिन्दुओंके यहां यदि ३ हुईं, तो मुसलमानोंके यहां १ हुई। दूसरे शब्दोंमें, आबादीके हिसाबसे हिन्दू और मुस्लिम पीड़ितोंका सही अनुपात १३ १/२ : १ है। इसी तरह लूटपाटके बारेमें पीड़ित घरोंका अनुपात ९ हिन्दू और १ मुसलमानका है। अलबत्ता, यह सही है कि बहुतसे हिन्दू मुसलमानोंसे ज्यादा सम्पन्न हैं और इसलिए आर्थिक दृष्टिसे एक मुसलमानके घरकी अपेक्षा एक हिन्दूके घरको लूटना अधिक लाभदायक है। परन्तु इसमें जरा भी शक नहीं कि आगजनीकी जो घटनाएं हुईं वे ज्यादातर साम्प्रदायिक कारणसे हुई और दूसरे अनेक मामलोंमें मुस्लिम घरोंकी अपेक्षा हिन्दू घर पसन्द किये गये, क्योंकि उनके मालिक हिन्दू थे और इसलिए अपराध क्षम्य समझा जाता । अपराधोंका अधिक वार हिन्दुओं पर हिन्दू होनेके कारण ही हुआ है और इस कथनकी पुष्टिमें यदि अधिक दलील चाहिये तो वह इस बातसे मिल जायगी कि पिछले आठ हफ्तोंमें कमसे कम पांच घटनायें हिन्दुओंके पवित्र स्थानोंको भ्रष्ट करनेकी हुई हैं।

शहीद सुहरावर्दीने नोआखालीमें गांधीजीके साथ अपने व्यंग्यपूर्ण पत्र-व्यवहारमें शिकायत की थी कि स्थानीय हिन्दू "सच्चे अपराधियों" के विरुद्ध कोई जानकारी नहीं दे रहे हैं और जो शिकायतें सचमुच पेश की जा रही हैं वे दुर्भावनापूर्ण हैं। बारेटकी रिपोर्ट यह थी: "यह माननेके लिए कारण है कि उपद्रवों सम्बन्धी मुकदमोंमें मुद्दइयोंको मुसलमान लोग धमकियां दे देकर राजीनामे लिख देनेको मजबूर कर रहे हैं।"

हो यह रहा है कि मुसलमानोंका एक वर्ग हिन्दुओंकी निराशा तथा लाचारीसे भरी दशाका लाभ उठाकर उनको अपमान और धमकियों द्वारा इतना दबा देना चाहता है कि वे पस्तहिम्मत होकर उनके वश हो जायं। इसके बाद वे हिन्दुओंकी सम्पत्ति पर मौज उड़ाते हैं और उन्हें नीची जातिका समझ कर उनके साथ वैसा ही बरताव करते हैं। चलते-फिरते हिन्दुओंको मलाऊन (अभिशप्त) और काफिर कह कर पुकारना मामूली बात हो गई है। कभी कभी मुसलमानोंके दल उनकी तलाशी लेकर जो जीमें आता है वही उनसे छीन लेते हैं। ऐसी घटनाएं भी हुई हैं कि हिन्दू लोग बाजारसे जो सौदा खरीद कर घर ले जा रहे थे वह छीन लिया गया। हिन्दुओंकी बाड़ियोंसे नारियल और सुपारियां तोड़ कर ले जाना एक मामूली बात है। धमकियों द्वारा स्वीकृति लेकर हिन्दू घरोंसे टीनकी चादरें और इमारती लकड़ी अक्सर उठा ली जाती हैं। हिन्दू परिवारोंके मवेशियोंकी गोठानसे रस्सी तुड़ाकर लुप्त हो जानेकी आदत हो गई है। हिन्दुओंके धानके पौधे जड़से उखाड़ कर फेंक दिये जाते हैं। यदि कोई पीड़ित हिन्दू थानेमें इन घटनाओंकी रिपोर्ट करता है, तो उसके कष्ट बढ़ जाते हैं; और ऐसे उदाहरण भी हैं कि ऐसी रिपोर्टोंके कारण पीड़ितोंकी झोंपड़ियां जला दी गई हैं। जिन सिनेमा-घरोंके मालिक हिन्दू हैं उन्हें बन्द करवा देनेकी कोशिश की जा रही है और यद्यपि जिलेमें अधिकांश जुलाहे हिन्दू (नाथ) हैं, तो भी यह मांग की जा रही है कि ५० प्रतिशत करघोंके परवाने मुसलमानोंको मिलें । बाजारोंसे हिन्दू व्यापारियोंको निकाल देनेकी चाल चली जा रही है। . . . मुसलमानोंके लिए जगह करनेके लिए लंबे समयसे धन्धा करते आ रहे हिन्दू दुकानदारोंको मंडियोंसे निकाला जा रहा है। जिन हिन्दुओंने अपने मकान फिरसे बना लिये हैं, उनसे (स्त्रियों तकसे) कहा गया है कि उन्हें इन घरोंमें नहीं रहने दिया जायगा और उनके लिए जिला छोड़ कर चले जाना बेहतर होगा। . . . इसमें से बहुत कुछ उत्पीड़न छोटी छोटी बातों तक ही सीमित है, फिर भी वह अराजकता तो है ही; और इससे सिद्ध होता है कि अक्तूबरके उपद्रवोंसे पहले जिलेमें जो जहर फैलाया गया था वह अभी तक मिटा नहीं है। . . .

बंगालके मुख्यमंत्री और उनके साथियोंने "बाहरी संस्थाओं" पर यह आक्षेप लगाया था कि वे पुनर्वासके कार्यमें रुकावट डालती हैं और हिन्दुओं तथा मुसलमानोंके बीच "साधारण संबंध" फिरसे स्थापित होनेमें बाधक होती हैं। इस कारणसे उन्होंने यह मांग की थी कि बाहरके तमाम कार्यकर्ताओंको

नोआखालीसे हटा दिया जाय । बारेटने इसके विपरीत सिद्ध किया था कि बंगाल सरकारकी पुनर्वास-नीतिकी अपर्याप्तता ही वास्तवमें दोषी है:

> संभवत: निर्माण-सामग्रीकी कमीके कारण जिन लोगोंको मकान बनानेके लिए आर्थिक सहायता मिली है, उनमें से ५० प्रतिशतसे कमको सरकारने निर्माण-सामग्री दी है। यह सामान स्थानीय मंडीसे ही अनाप-शनाप कीमत पर मिल सकता है और इसमें सन्देह नहीं कि यदि सरकार काफी सामान उपलब्ध कर दे तो पुनर्वासकी प्रक्रिया तेज हो जाय । ऐसे किस्से फैलाये गये हैं कि जिन हिन्दू परिवारोंको मकान बनानेका सामान दिया गया है, उन्होंने उसे काले बाजारमें बेच दिया है। संभव है कि ऐसी घटनाएं हुई हों, परन्तु यह जोखिम तो उठानी ही पड़ेगी। मुझे विश्वास दिलाया गया है कि इस प्रकारकी घटनाओंकी संख्या नगण्य है। इसी तरह एक आरोप, जो नोआखालीमें मुसलमान बहुधा लगाते हैं, यह है कि हिन्दू लोग मुसलमानोंको फंसानेके लिए अपने ही घरोंको जला देते हैं और इस प्रकार मकान बनानेके लिए आर्थिक सहायता प्राप्त कर लेते हैं। ऐसे आरोपों पर बिलकुल विश्वास नहीं करना चाहिये । हिन्दुओंकी हिम्मत इतनी टूट गई है कि वे ऐसी कार्रवाईके परिणामोंका खतरा नहीं उठा सकते; और मकानके जलनेसे जो असुविधा होती है उसके अलावा यह भी संभव नहीं कि जितनी हानि होती है उतनी ही आर्थिक सहायता सरकारसे मिल जायगी।

वे दो बदनाम भगोड़े, जिन्होंने दंगोंमें प्रमुख भाग लिया था, गुप्त रूपमें पीड़ित क्षेत्रमें लौट आये थे। वे रातको सभाएं करके लोगोंसे कहते फिरते थे कि "उन्होंने पिछले उपद्रवोंमें तमाम हिन्दुओंको न मार कर भूल की थी; अगली बार वे ऐसी गलती नहीं करेंगे ।" फिर भी अधिकारियोंके सामने अनेक बार शिकायतें करनेके बावजूद उन्हें गिरफ्तार नहीं किया गया:

> वे अभी तक आजाद रह कर ऐसी बातें कह सकते हैं, इससे हिन्दुओंका एक प्रकारसे और मुसलमानोंका दूसरे प्रकारसे नैतिक पतन हो रहा है; और यद्यपि अधिकतर मुस्लिम आबादी डरसे या सहानुभूतिसे इनकी गतिविधियोंकी सूचना नहीं देगी, फिर भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये दोनों आदमी हफ्तों पहले गिरफ्तार किये जा सकते थे। स्थितिके इन पहलुओंसे जो अविश्वास पैदा हुआ है, उसमें राजनीतिक दबावके कारण लोगोंको जमानत पर

छोड़नेकी मजिस्ट्रेटोंकी शिथिलतासे वृद्धि हुई है। और जो लोग जमानत पर छोड़ दिये गये हैं उन पर पुलिसकी सख्ती न रहनेसे और जो लोग गवाहोंके काममें हस्तक्षेप करते हैं उनकी जमानतें रद्द करनेका दबाव न डालनेसे भी अविश्वास बढ़ा है। ३० अप्रैलके अन्त तक केवल तीन जमानतें रद्द की गई हैं। जिलेकी स्थितिसे सम्पर्क रखनेवाले किसी भी व्यक्तिको यह संख्या हास्यास्पद मालूम हुई है। यदि थोड़ा भी विश्वास फिरसे स्थापित करना है, तो यह सबसे महत्त्वकी बात है कि इस स्थितिमें सुधार किया जाय।

सबसे बुरी बात यह थी कि जिलेके भीतरी भागमें जो घटनाएं हो रही थीं, उन पर पुलिस आंखें बन्द किये हुए थी: "जिलेके गुप्तचर विभागका काम या तो ठप हो गया है या वह जान-बूझ कर निष्क्रिय बना हुआ है और सूचनाका अभाव इतना उल्लेखनीय है कि यह सन्देह हुए बिना नहीं रहता कि जब पुलिसके हाथमें जानकारी आ जाती है तब भी वह आंखें बन्द कर लेती है। जातकारीको इस तरह बिलकुल दबा देनेसे जिला-मजिस्ट्रेटको परेशानी होती है।... इस प्रकारके आत्म-संतोषसे ही तो पिछले अक्तूबरमें प्रचंड हत्याकांड हुआ था और इससे वही विपत्ति फिर आ सकती है।"

इसके बाद भी स्थानीय पुलिस अधिकारियोंकी राय थी कि नोआखालीकी परिस्थितियां "बिलकुल सामान्य" हैं; वे सारा दोष जिलेमें गांधीजीके कार्यकर्ताओंकी उपस्थिति पर थोपते थे। [नोआखालीके पुलिस-सुपरिन्टेन्डेन्टका पत्र सतीशचन्द्र दासगुप्तको, २८ जुलाई, १९४७] इन सब बातोंका असर यह हुआ कि हिन्दुओंके एक वर्गमें यह भावना गहरी हो गई कि मुस्लिम लीगके शासनमें हमारे लिए कोई सलामती या सुरक्षितता संभव नहीं है और हमारा उद्धार इसीमें है कि भारतीय संघके भीतर बंगालके हिन्दू बहुमतवाले प्रदेशोंका एक अलग राज्य बना देनेकी मांग की जाय। जब यह मांग सामने आई तो शहीद सुहरावर्दीने ज्वारको रोकनेका बड़ी देरसे एक प्रयत्न किया। उन्होंने नोआखालीमें सुरक्षाके उपाय दृढ़ कर दिये, जो गुंडे जमानत पर छूटनेके समयसे अल्पसंख्यक समुदायके लोगोंको डरा-धमका रहे थे उनकी जमानतें रद्द कर दीं और जिन पर दंगोंके दौरान गंभीर अपराधोंके अभियोग लगे हुए थे उन पर मुकदमे चलानेके आदेश जारी कर दिये। परन्तु देर बहुत हो गई थी, आगमें घी पड़ चुका था और स्थानीय मुसलमान, नोआखालीकी मुस्लिम लीग और जिला-प्रशासनके स्थानीय अधिकारी, सबने मिल कर इस ऐन वक्तकी कोशिशको – जो आधे मनसे की गई थी – बेकार बना दिया और बंगालके मुख्यमंत्रीको जो उन्होंने बोया था उसे काटनेकी स्थितिमें ला पटका।

३

नोआखालीमें गांधीजीके साथियोंकी प्रवृत्ति उनके बिहार चले जानेके बाद दो भागोंमें बांट दी गई। पहले दौरमें हमारा मुख्य प्रयत्न यह रहा कि व्यक्तिगत सम्पर्कके द्वारा आतंक-पीड़ित लोगोंमें गांधीजीका श्रद्धा, निर्भयता और अहिंसाका सन्देश पहूंचाया जाय। दूसरे दौरमें अहिंसक संगठनके लिए आधार पैदा करनेके खातिर उनमें रचनात्मक कार्य आरंभ करके इसी कामको बढ़ाया गया। इसके परिणाम अत्यन्त उत्साहवर्धक आये ।

गांधीजीके नोआखालीसे जानेके थोड़े अर्से बाद स्पेशियल रिलीफ कमिश्नरने एक दिन कुछ चिन्ताके साथ मुझसे पूछा : "आपको मालूम है कि कासिमअली हालमें ही इस इलाकेमें चुपकेसे लौट आया है? उसने लगभग ढाई सौ आदमियोंकी एक निजी सेना संगठित कर ली है। उसके आदमी रातको सभाएं करते हैं और वहां हथियारबन्द पहरेदार रखे जाते हैं। उन्हें बिजलीके टॉचे, हरे कुर्ते, खाकी पतलून और फौजी सिपाही पहनते हैं वैसे साफे दिये जाते हैं।" एक पत्रमें उन्होंने मुझें लिखा : "मुझे स्थानीय लोगोंने बताया है कि आप गोपाइरबागमें अकेले रातें गुजार कर अपने लिए बड़ा खतरा उठा रहे हैं।" [बी. बागचीका पत्र प्यारेलालको, १ अप्रैल, १९४७] कुछ दिन बाद वे खुद संयोगवश इन लोगोंकी एक टोलीमें फंस गये और बाल-बाल बच कर निकले। कासिमअलीका नाम लेते ही लोगोंके चेहरे डरके मारे पीले पड़ जाते थे। माताएं अपने बच्चोंको डरानेके लिए उसके नामका हौआ खड़ा करती थीं। गोपाइरबागके भयंकर हत्याकांडके बाद उसकी गिरफ्तारीका वारंट निकाला गया था। (देखिये खण्ड-२, पृ. ३२) तभीसे वह फरार था।

मेरे रिलीफ कमिश्नरसे मिलनेके तीन दिन बाद बुर्के पहने हुए आदमियोंकी एक टोली पड़ोसके एक गांवके दो घरोंमें घुस गयी और कासिमअलीके नामसे छुरा दिखा कर क्रमश: ढाई सौ और सवा सौकी रकम ऐठ कर ले गयी। इसके बाद पासके ही दूसरे गांवमें भी ऐसी घटना हुई।

पहले स्थान पर हुई घटनाके दूसरे दिन सुबह मैं इस अत्याचारके शिकार बने लोगोंसे मिलने गया। अपने साथ मैं उन लड़कों और लड़कियोंकी एक मंडलीको ले गया, जिन्हें हम निर्भयताकी तालीम दे रहे थे। एक पीड़ित व्यक्ति तो भयसे विव्हल होकर गुमसुम हो गया था। वह डरके मारे कांप रहा था और ठीक तरहसे बात भी नहीं कर पाता था। मैंने वहांके मुसलमानोंके साथ रोषसे नहीं परन्तु दुःखसे

बातें कीं। मैंने कहा: "यह सारे गांवके लिए शर्मकी बात है कि बाहरके आदमियोंकी एक टोली साहस करके आयी और इस प्रकार आपके बीचमें रहनेवाले किसी व्यक्तिको उसने इस तरह सताया। परन्तु मेरे खयालसे उससे भी बड़ा कलंक पीड़ितों द्वारा दिखाई गई कायरताका है। यदि गांवमें एक आदमी भी ऐसी कायरता दिखाता है, तो वह आप सबके लिए शर्मकी बात है।"

मेरी बात उनको लग गई। उनका स्थानीय देशप्रेम जागृत हो गया। उनमें से कुछने उस अपराध पर रोष प्रगट किया और "उन लोगोंको सबक सिखानेके लिए" मिलजुल कर कोई उपाय करनेकी बात भी की। फिर मैंने एक एक करके मेरे साथ आये हुए लड़कों और लड़कियोंको बुलाया और सारी मंडलीको सुना कर उनसे पूछा: "तुम पीड़ितोंके स्थानमें होते, तो क्या करते ?"

एक लड़कीने जवाब दिया: "मैं सहायताके लिए लोगोंको पुकारती ।"

मैंने उससे कहा: "परन्तु गुंडा फौरन तुम्हारा गला काट देता।"

उसने निःसंकोच उत्तर दिया: "क्या आपने हमें नहीं बताया है कि किसी दिन तो हम सबको मरना ही पड़ेगा ? कोई भी दो बार नहीं मर सकता ।"

दूसरी लड़की बीचमें ही बोल उठी: "मैं सहायताके लिए नहीं चिल्लाऊंगी । मैं उस गुंडेसे कहूंगी : तुम मेरा गला काट कर जो चाहो सो ले जा सकते हो। परन्तु किसी दिन तुम भी मरोगे और तब तुमको सब कुछ छोड़ कर जाना होगा और तुम्हारे सिर पर पापका भार ही उठानेको रह जायगा।"

१२ वर्षके एक छोटे लड़केने जवाब दिया: "हमारे गांवमें अमुक आदमीने दंगाइयोंको रुपया दिया, फिर भी उन्होंने उसे मार डाला। मैं उन्हें रूपया नहीं दूंगा। वे मुझे मार सकते हैं।"

उनके स्वाभाविक, सहज और जोरदार उत्तर सुन कर मुझे भी आश्चर्य हुआ । इससे पीड़ितोंके परिवारोंकी स्त्रियोंमें उत्साह और हिम्मत आ गई और वे अपने मर्दोंको साहस रखनेकी प्रेरणा देने लगीं। मुसलमान ये सब बातें ध्यानसे देख रहे थे। उनमें से एकने मेरे पास आकर कहा: " मैं स्वीकार करता हूं कि जब आपने अपने शिविरमें ये प्रवृत्तियां शुरू कीं तब मुझे आपके मकसद पर शक था। मैं उसे समझा नहीं था। अब मैं समझ गया कि आप क्या करना चाहते हैं। मैं इसकी कदर करता हूं। हम सबको अपने गांवसे कायरताको मिटानेके लिए सहयोगसे काम करना चाहिये। जो घटना हुई है उससे सारे गांवका

अपमान हुआ है। किसी एककी इज्जत पर हाथ डाला जाता है, तो उससे सारे गांवकी इज्जतको धक्का पहुंचता है।"

*

मुसलमान किसानों द्वारा हिन्दुओंकी खेतीके जिस बहिष्कारकी चर्चा पहले (देखिये खण्ड -२, पृ. ११८) की गई थी, वह इस समय तक फैलते फैलते जिलेके हमारे हिस्सेमें भी आ गया था। हिन्दू किसानोंके पास हल चलानेवाले मवेशी नहीं थे। दंगोंके दिनोंमें उनके खेतीके औजार भी छीन लिये गये थे। खेतीके मजदूर मुख्यतः मुसलमान थे। दंगे करानेवाले 'हिटलर' और उसके सहायकोंका असर, उनके जेलकी हवालातमें बन्द रहते हुए भी, खास तौर पर इस क्षेत्रमें बहुत था। उनके गुर्गे इधर-उधर घूम रहे थे और हिन्दुओंसे कहते थे कि जब तक उनके नेता जेलमें बन्द हैं तब तक कोई मुसलमान हिन्दुओंका काम नहीं करेगा; हिन्दुओंको मुस्लिम अभियुक्तोंके विरुद्ध की गई शिकायतें वापस लेनी होंगी और उनकी रिहाईकी अर्जी पर दस्तखत करने होंगे।

खाद्य-पदार्थोंकी मात्रा कम हो रही थी और उनके भाव बढ़ रहे थे। इस संकटका सामना करनेके लिए सरकारको विवश होकर राहतके लिए राशनकी "नियंत्रित भावों" वाली दुकानें खोलनी पड़ी थीं। मैं जुम्मेकी नमाजके बाद स्थानीय मस्जिदमें मुसलमानोंसे मिला और उनसे कहा कि आपके बहिष्कारसे और कुछ चाहे हो या न हो, लेकिन उससे आपके खाली बरतनोंमें चावल तो नहीं भरेगा। यदि बहिष्कार सफल हुआ तो उसका बुरा असर आप पर ही पड़ेगा। परन्तु हमने निश्चय कर लिया है कि आप जो अपने हाथों अपने पैरों पर कुल्हाड़ी चला रहे हैं उससे आपको बचाया जाय। हम फावड़ोंसे खेती करेंगे और देखेंगे कि इस बार हाथकी मेहनतसे इतनी जमीनमें खेती हो जितनीमें पहले कभी नहीं हुई थी।

दूसरे दिन हमने कार्यारम्भ कर दिया। बीमारों और अपंगोंके सिवा हमारी छावनीके सभी पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों तकने उसमें भाग लिया। जो मिट्टी नहीं खोद सकते थे वे खाने लायक कन्द और मूल, जो जमीन खोदनेसे निकल आते थे, इकट्ठे करनेमें मदद देते थे। उस दिन कुछ परिवारोंमें खाना बनानेका काम स्थगित रहा। एक सप्ताहसे कम समयमें ही खेतीके लिए उपलब्ध सारी जमीन खोद ली गई। हमारी नकल हमारे पासके गांवके लोगोंने भी की। जल्दी ही पांच और गांवोंकी तरफसे वहां भी यह आन्दोलन शुरू करनेका हमसे अनुरोध किया गया। उद्घाटन-समारोहमें सातों गांवोंके ५०० से अधिक

स्त्री, पुरुष और बच्चे शरीक हुए। वह दृश्य अविस्मरणीय था। दो दोकी कतारमें चल कर वे रामधुन गाते हुए अलग अलग दिशाओंसे सभास्थल पर एकत्र हुए । रास्तेमें कोई दर्जन भर मुस्लिम लड़कियां भी उनके साथ मिल कर सहगानमें शरीक हो गईं। स्थानीय मुसलमान और मुस्लिम लड़कियां देखती रहीं, जब कि सारी मंडली अपने साथ लाये हुए खुदाईके औजारोंसे काम करने लगी। जिन स्त्रियोंने इस काममें भाग लिया उनमें से कुछ जमींदार परिवारोंकी भी थीं। उन्हें अपने किसानोंके खेत खोदते देखकर काश्तकारोंको बड़ी प्रेरणा मिली।

इस प्रकार सारे गांवोंमें दो खुदाइयां फावड़ोंसे कर दी गईं। तीसरी खुदाईका समय आनेसे पहले मुसलमानोंने बहिष्कार उठा देनेका फैसला किया । उनमें से कुछ यह शिकायत भी करने लगे कि हिन्दू लोग मुसलमान मजदूरोंका बहिष्कार कर रहे हैं! बादमें हमें ४ जोड़ी बैल और ५१ फावड़े कष्ट-निवारण कार्य करनेवाली संस्थाओंसे दानमें मिल गये। परन्तु हमारी सबसे मूल्यवान सम्पत्ति तो स्वावलम्बन और सहयोगका वह पाठ था जो लोगोंने सीख लिया और वह प्रेम-बन्धन था जो उनमें उत्पन्न हो गया।

*

मार्च १९४७ के तीसरे सप्ताहमें एक दिन मैं बहुत देरसे घर लौटा। दिनभरके परिश्रमपूर्ण कार्यक्रमसे थक कर चूर हो गया था, इसलिए हमारे शिविरके खुले सहनमें ताड़की चटाई पर आराम करनेके लिए मैं लेट गया। जल्दी ही मुझे गहरी नींद आ गई। एक घंटा भी सोया नहीं होऊंगा कि गोपाइरबाग नामक पड़ोसवाले गांवसे एक संदेशवाहक आया। उसका चेहरा बहुत पीला दिखाई देता था। उसने कहा : गांधी-शिविरवालोंके साथ सहयोग करनेके दंडस्वरूप एक मालीके मकानको "घंटे भरके भीतर" कासिमके आदमियोंने आग लगानेकी धमकी दी है। जिस परिवारको धमकी दी गई है, उसके आदमी बहुत घबरा रहे हैं। क्या आप वहां चल सकते हैं? मैं एक साथीको लेकर चल पड़ा। जब हम वहां पहूंचे तो हमने देखा कि स्त्रियां, पुरुष और बच्चे सहनके बीचमें जमा हैं और इस तरह सिसकियां भर रहे हैं, मानो उनका हृदय विदीर्ण हो जायगा। मैंने उस परिवारके लोगोंसे कहा : मैं रात भर आपके साथ रहूंगा। कोई बुरी बात हुई तो हम सब मिल कर उसका सामना करेंगे। इससे उनमें कुछ हिम्मत आई। रातको और तो कुछ नहीं हुआ, लेकिन प्रातःकाल हमारे उद्धारके लिए पहूंचा उससे पहले हम सबको मच्छरोंने काट काट कर मुर्दा-सा बना दिया।

दूसरे दिन फिर वह धमकी दी गई। मैं फिर वहां गया। इस बार मैंने छावनीसे एक स्त्री और १०-१२ वर्षकी दो छोटी लड़कियोंको अपने साथ ले लिया। रास्तेमें सामनेकी तरफसे आती हुई मुसलमानोंकी एक ठोली हमें मिली । पहले तो कोई ध्यान दिये बिना मैं उनके पाससे गुजर गया, परन्तु पता नहीं क्या प्रेरणा हुई कि मैं लौट कर उनके पास पहूंचा और उनसे पूछा: "कहांसे आ रहे हो?"

"गोपाइरबागसे ।"

"कहां जा रहे हो?"

"अपने घर।"

"घर कहां है?"

कोई जवाब नहीं दिया गया। मुझे संदेह हुआ । मैंने अपनी टॉर्च निकाली और जिस आदमीसे मैं बात कर रहा था उसके मुंह पर पूरा प्रकाश डाला । फिर एक एक करके सबके चेहरों पर डाला, तो क्या देखता हूं कि वे सब ठीक वैसे ही हरे कुर्ते, खाकी पतलून और फौजी सिपाहियों जैसे साफे पहने हुए थे, जैसे स्पेशियल रिलीफ कमिश्नरने मुझे बताये थे। वे अभी भी मेरे प्रश्नका उत्तर देनेसे इनकार कर रहे थे, इसलिए मैंने उनसे कह दिया कि मैंने तुम्हारे चेहरे ध्यानसे देख लिये हैं और आज रातको इस क्षेत्रमें कोई बुरी घटना हुई, तो उसके लिए तुम जवाबदेह होगे।

मालीके घरमें फिरसे कुछ नहीं हुआ। किन्तु दूसरे दिन प्रातःकाल मुझे मालूम हुआ कि वहांके मुसलमान बड़े उत्तेजित हो रहे हैं, क्योंकि कासिमके आदमियोंने यह अफवाह फैलाई है कि पिछली रातको सड़क पर मुझे कुछ मुस्लिम स्त्रियां मिली थीं और मैंने उनका अपमान किया था। मुझ पर यह दोषारोपण किया गया था कि मैंने उनके बुर्के उठा कर उनके चेहरों पर टॉचकी रोशनी डाली थी। इससे मुझे इस बातका स्पष्ट संकेत मिल गया कि उस रात मुझे किसकी टोली मिली थी।

अब तक कासिमसे सम्पर्क स्थापित करनेके मेरे सारे प्रयत्न विफल हुए थे। उसके आदमियोंको यह कहनेकी सूचना मिली थी कि दंगोंके बादसे वह पड़ोसमें दिखाई ही नहीं दिया। बेशक, यह बात सच नहीं थी। मैंने उस क्षेत्रके लोगोंकी सभा करनेका निश्चय किया। मैं जानता था कि उसके आदमी सभामें आयेंगे । यह बतानेके बाद कि कासिमसे संपर्क स्थापित करनेके मेरे प्रयत्न कैसे असफल रहे, मैंने कहा, यदि यही हाल रहा तो इसका अनिवार्य परिणाम यह होगा कि जिन मुसलमानोंका दंगोंमें हाथ रहा है

और बादमें जो जमानत पर छोड़ दिये गये हैं, उनकी जमानतें या तो रद्द कर दी जायंगी या मियाद पूरी होने पर दुबारा नहीं ली जायंगी और अधिकारियोंको मजबूर होकर सुरक्षाके उपाय ज्यादा कड़े करने पड़ेंगे। साथ ही मैंने एक और आदमीसे सम्पर्क स्थापित किया, जिसे मैं कासिमअलीके निकटके साथीके रूपमें जानता था, परन्तु जो किसी न किसी तरह मेरे साथ बड़ी दोस्ती बताता था। उसने मुझे एक संकेत दिया: "तीसरे पहर २ और ३ बजेके बीच आप कासिमके घर जाइये। वहां आपको कासिमका भाई मिलेगा, जो यूनियन बोर्डका अध्यक्ष है। उससे यह न कहिये कि मैंने आपको भेजा है। आप उससे वही बात कहिये, जो आपने उस दिन सभामें कही थी। अगर कासिम वहां हुआ तो शायद आप उससे भी मिल सकेंगे।"

मैंने वैसा ही किया जैसा मुझे कहा गया था। अलबत्ता, मुझे बताया गया कि कासिम यहां नहीं है। मैंने उसके भाईसे कहा : "अच्छा तो तुम उससे कह देना कि मैं उसका दोस्त बन कर आया था, दुश्मन बन कर नहीं । उसके नाम पर ऐसी हरकतें की जा रही हैं, जिनसे उसका नुकसान ही हो सकता है। मुझे अफसोस है कि मैं उसकी ओरसे अधिकारपूर्वक यह नहीं कह सकूंगा, जैसी कि उससे मिलनेके बाद कहनेकी आशा मैंने रखी थी, कि जो लोग उसके नाम पर गैर-कानूनी काम कर रहे हैं वे उसके दोस्त नहीं हैं। मेरी तरफसे उसे यह भी विश्वास दिला देना, अगर विश्वास दिलानेकी जरूरत हो तो, कि सुधारक होनेके नाते मैं कभी जासूसका काम नहीं कर सकता। मैं विश्वासघात करके उसे पुलिसके हाथोंमें कभी नहीं सौंपूंगा । मैं स्वयं तो आत्मरक्षाके लिए भी पुलिसकी मदद न लेनेके लिए प्रतिज्ञाबद्ध हूं । मैं किसीके विचार-परिवर्तनमें ही दिलचस्पी रखता हूं, न कि गिरफ्तारी अथवा सजामें।" इसके बाद मैंने यह कह कर बिदा ली कि मैं अपने साथी विश्वरंजनके शिविरमें जा रहा हूं, जो पासमें ही है।

विश्वरंजनके शिविरमें पहूंचे मुझे मुश्किलसे १० मिनट हुए होंगे कि कासिमके घरसे एक संदेशवाहक यह कहनेके लिए आया कि वह "अभी ही पहूंचा है" और हमसे मिलना चाहता है। ठीक यही आशा रखी थी।

कुछ ही मिनट बाद हम एक गोरे, ऊंचे और अच्छी कटी हुई दाढ़ीवाले नौजवानसे बातें कर रहे थे। उसके सभ्य, सुसंस्कृत व्यवहार और आकर्षक तौर-तरीकेका प्रभाव उस समय तक हम पर पड़ता है जब तक उसके हाव-भावमें एकाएक आनेवाला परिवर्तन इस बाहरी शिष्टताके पीछे रही किसी

विचित्रताको प्रकट नहीं करता। नोआखालीके आतिथ्यके नियमोंके अनुसार उसने हमें आग्रह करके कच्चे नारियलका ताजा पानी पिलाया। जब उसके आदमी अपने दाव (हंसिये) से कच्चा नारियल काट रहे थे, तब मैं मन ही मन कह रहा था कि दंगोंके दिनोंमें इन्हीं दावोंसे कितने निर्दोष मानवोंके टुकड़े किये गये होंगे ! उन घातक हथियारों परसे मेरी आंखें किसी भी तरह हटती ही नहीं थीं। कासिमने यह देख लिया। फिर मेरे मनके मंथनको मानो ताड़ कर वह बोला : "अगर आप कहना चाहें तो इस इलाकेमें सारी दुष्टताको जन्म देनेवाला मैं हूं।" मैं बोला : "लोग ऐसा ही कहते हैं।" कासिमने अपनी बात जारी रखी: "दत्तापाड़ामें गांधीजीकी प्रार्थना-सभासे लौटते हुए जो नौजवान गायब हो गया था, उसे मैंने ही ठिकाने लगाया था। (देखिये खण्ड- २, पृ. ३८) उसके पास हमें रिवाल्वर मिली थी। मैं वह रिवाल्वर आपको भी दिखा सकता हूं। . . ."

मैंने पूछा: "वही जिससे तुमने उसका काम तमाम किया था ?"

वह मुस्कुराया । उसके बहुत सफेद दांतोंकी पंक्ति चमक उठी।

उसने कहा, आपके आनेसे मैं अपनेको "सम्मानित" हुआ मानता हूं। जबरदस्ती धर्म-परिवर्तन करने, स्त्रियोंकी लाज लूटने और बच्चोंको मारनेके कामोंकी मैं निन्दा करता हूं। मैं "शुद्ध हत्या" के पक्षमें हूं। मैं स्वीकार करता हूं कि गिरफ्तारीसे बचनेके लिए मैं भागता फिरता हूं । अगर आप मुझे इसका विश्वास करा दें कि जो कुछ मैंने किया वह "गलत" था, तो मैं खुले तौरसे अपना अपराध स्वीकार करके पुलिसके आगे आत्मसमर्पण कर दूंगा। "हमने हिन्दुओंके साथ वही व्यवहार किया, जिसके वे पात्र थे। मुसलमानोंके सारे कष्टोंकी जिम्मेदारी उन पर है। उन्होंने हम पर अत्याचार किये हैं। बेशक, हमने दंगेके दिनोंमें साम्प्रदायिक भावनाओंको भड़काया। परन्तु क्या आप समझते हैं कि हमें अपने प्रयत्नमें सफलता मिल जाती, यदि हिन्दू (अमीर और मुसलमान 'गरीब' न होते ? धर्म-परिवर्तन कराना गलत है। हमें उन सबको मार ही डालना चाहिये था। अगली बार हम यह गलती नहीं करेंगे ।" फिर वह सिक्खोंके विरुद्ध उबल पड़ा और उन्हें शाप देने लगा: " सिक्खोंका तो सफाया ही करना होगा। हम उन्हें चबा जायंगे।" बादमें पंजाब और उत्तर-पश्चिम सीमाप्रांतमें जो कुछ वास्तवमें हुआ, उसे देखते हुए यह कथन अर्थपूर्ण था।

मैं कासिमके इस जंगली उबालको चुपचाप सुनता रहा। कासिम आगे बोला : "जहां तक हिन्दुओंका संबंध है, मैं पूरा पागल हूं।"

"तुमने अपने रूपका सच्चा वर्णन किया है।"

वह कहता गया: "जब किसी हिन्दूसे मैं मिलता हूं तो उसे मारे बिना मुझसे रहा ही नहीं जाता।"

मैं मनोरंजन भरी हंसीके साथ उसकी आंखोंमें आंखें डाल कर देखने लगा । वह संभल गया: "नहीं, नहीं मेरा मतलब आपसे नहीं है। आप तो दूसरी ही तरहके आदमी हैं।" फिर आंखें मटका कर बोला : " आपको मालूम है कि आपके खिलाफ क्या शिकायत है?"

"यही न कि मैंने उस दिन एक मुसलमान औरतका बुर्का खोल कर उसके मुंह पर टॉचेकी रोशनी डाली थी?"

"नहीं, इससे भी ज्यादा। आपने उसे खाईमें धकेल दिया।"

"मुझे पता नहीं था कि नोआखालीमें मुस्लिम स्त्रियोंको आधी रातमें आम रास्तों पर घूमनेकी आदत है।"

"मैं उसे पेश कर सकता हूं; वह अन्दर मौजूद है, बशर्ते कि वह बाहर आना मंजूर कर ले।"

"जो 'औरतें' उस दिन मुझे मिलीं वे तो हरे कुर्ते, खाकी पतलून और फौजी सिपाहियोंके साफे पहने हुई थीं। उनमें से एककी आधी कटी हुई मूंछें भी थीं!"

वह हंसा। "आप उन्हें पहचान सकते हैं?"

"मैं समझता हूं कि पहचान सकता हूं।"

"क्या मैं उनमें से एक हूं?"

"तुम उस रात बाहर निकले थे?"

उसने एक ओर अर्ध्द गोलाकारमें बैठे हुए अपने आदमियोंकी एक टोलीकी तरफ इशारा करके पूछा : "इस टोलीमें से कोई उनमें था?"

मैंने बदलेमें पूछा: "उस दिन जो लोग बाहर भेजे गये थे, वे सब क्या यहां मौजूद हैं ?" वह फिर हंसा। अन्तमें बोला : "नहीं, सारी दुनिया कहे तो भी आपके लिए मैं वह बात नहीं मानूंगा और मैं मान भी लूं तो दुनिया नहीं मानेगी।"

अब वह विषय बदल कर बोला: "बिहारके मुसलमानोंके लिए गांधीजीने जो कुछ किया, उसके लिए मेरे दिलमें उनकी बड़ी इज्जत है। मुझे कहना पड़ेगा कि जब वे यहां थे तब मुझे उनके इरादोंके बारेमें शक था। परन्तु वहां उन्होंने जो कुछ किया उससे मेरा सिर आदरसे उनके सामने झुक जाता है। और मैं वही कर रहा हूं जो खुद लीगियोंने मुझे बताया है और जो मैंने स्वयं आंखोंसे देखा है। मैं बिहार हो आया हूं; हां, पंजाब और पेशावर तक सीमाप्रान्तमें भी हो आया हूं।

फिर उसने बात बदली और मेरे साथी विश्वरंजन सेनके विरुद्ध शिकायत करना शुरू कर दिया। उसने मांग की कि उसका शिविर गोपाइरबागसे अवश्य हटा लिया जाय । वह हिन्दुओंको मुसलमानोंकी हत्या करनेके लिए उभाड़ रहा है और इस कामके लिए वहां उसने बीस आदमी जमा कर लिये हैं। "अगर वह नहीं हटेगा, तो मैं खुद वहां जाकर उसे मार डालूंगा ।

मैंने उससे कहा: "तुम ऐसी कोई बात नहीं करोगे ।" मैंने यह भी कहा : "मुझे भरोसा है कि तुम्हारा ऐसा इरादा भी नहीं है। कुछ लोग जितने भयंकर वास्तवमें होते हैं उससे अधिक दीखनेकी कोशिश करते हैं। मैं तुमसे कहता हूं कि विश्वरंजन तो मक्खीको भी नहीं मार सकते। तुमको पहले मुझे मारना होगा। अगर तुम अपनी धमकी वापस नहीं लोगे, तो मुझे खुद वहां जाकर रहना पड़ेगा। इसके सिवा, यह सच नहीं है कि उन्होंने अपने आसपास बीस आदमी इकट्ठे कर लिये हैं। उनकी छावनीमें तीन आदमियोंसे अधिक नहीं हैं। मैं चौथा हो जाऊंगा।"

उसने कहा: "मैं इस जगहसे हजार आदमी मेरी इस बातका समर्थन करनेवाले पेश कर सकता हूं।

मैं बोला: "अगर तुम ऐसा कर सकते हो, तो इससे यही सिद्ध होगा कि इस स्थानमें तुम्हें एक हजार आदमी झूठी गवाही देनेवाले मिल सकते हैं।"

उस समय रातके लगभग साढ़े ग्यारह बज गये थे। जब मैं चलने लगा तो उसने एक व्यक्तिगत अनुरोध करके मुझे आश्चर्यमें डाल दिया। उसके आदमियोंमें से एकको जमानत पर छोड़ा गया था। उसकी मियाद खतम हो गई थी। उसने मुझसे कहा: क्या आप पुलिस-सुपरिन्टेन्डेन्ट या जिला-मजिस्ट्रेटको पत्र लिख कर उससे नई जमानत लेनेकी अर्जीका समर्थन कर सकते हैं? "जिला-मजिस्ट्रेट

आपकी बात मानता है । मैं इस आदमीकी निर्दोषताका प्रमाण दे सकता हूं। उसे केवल मेरे साथ सम्बन्ध रखनेके कारण ही कष्ट दिया जा रहा है।"

मैं असमंजसमें पड़ गया। बातचीतके पिछले भागमें उसकी आंखोंमें एक ऐसी चमक थी, जिसमें उस शिष्ट अनुरोधके पीछे छिपी हुई धमकी मालूम होती थी। मैंने उससे कहा कि मुझे पहले जांच करके भरोसा कर लेना पड़ेगा कि वह आदमी निर्दोष है और उसकी जमानतकी मियाद बढ़ा दी जाय तो वह फिरसे शरारत नहीं करेगा। इसके लिए मुझे कल फिर आना होगा, क्योंकि अब तो लगभग आधी रात हो चुकी है।

परन्तु कासिमने कहा कि यह चीज अभी यहीं करनी पड़ेगी। कल सुबह तो उस आदमीको पुलिसमें जाकर रिपोर्ट देनी होगी; और अगर उसकी जमानतकी मियाद बढ़ायी न गई, तो वह फिर पुलिसकी हवालातमें रख दिया जायगा । मैं खुद आपको स्थानीय हिन्दुओंके पास ले जाऊंगा और वे सब उसकी निर्दोषताका प्रमाण आपको देंगे। मैंने कहा कि मैं नहीं चाहता कि तुम मेरे साथ चलनेकी तकलीफ उठाओ।

"अच्छी बात है। तब मैं अपने तीन आदमियोंसे कह दूंगा कि वे जहां आप चाहें आपको ले जायं।" यह कह कर उसने अपने तीन चुने हुए आदमियोंको बुलाकर मेरे साथ जानेकी सूचना की।

सीधे शब्दोंमें इसका यह अर्थ था कि जब तक उसका काम मैं न कर दूं तब तक उनका कैदी बन कर रहूं। लेकिन अपने विचार मनमें रख कर मैंने कासिमसे कहा कि इसकी जरूरत नहीं, क्योंकि मैं अपना रास्ता जानता हूं। फिर भी तुम अपने आदमियोंसे कह दो कि वे मेरी आवाजके भीतर रहें, ताकि जब जरूरत हो मैं उन्हें बुला सकूं।

इससे वह खुश दिखाई दिया और उसने अपने आदमियोंको मेरे पीछे रहकर मेरे कहे अनुसार चलनेकी आज्ञा दी।

फिर मैं अपने साथीको लेकर वहांके हिन्दू निवासियोंमें घूम लिया। उनमें से एकके बागमें कोई एक दर्जन हिन्दुओंको इकट्ठा करके मैंने कासिमके आदमियोंसे बाड़ीके दरवाजे पर पहरा लगानेको कह दिया। फिर मैंने प्रत्येकसे अलग अलग मुलाकात की, ताकि वे अपने दिलकी बात मुझे खुले मनसे बता दें और जो कुछ मुझसे कहें उसके प्रकट हो जानेका उन्हें कोई डर न रहे।

मुझे जल्दी ही पता चल गया कि इस आदमीकी जमानतकी मियाद बढ़नेका उन्हें जितना भय था उससे ज्यादा भय बदलेकी उन कार्रवाइयोंका था, जो जमानतकी मियाद बढ़ाई न जाने पर की जायंगी। मैंने तुरन्त कासिमके नाम खत लिख दिया कि इस प्रश्न पर अलग अलग रायें हैं और मौजूदा हालतमें मैं कानूनी कार्रवाईमें दखल देनेकी जिम्मेदारी नहीं ले सकता ।

जब मैं बागसे बाहर आया तो कासिम खुद अधीर होकर बाहर इंतजार कर रहा था। ऊपर आकाशमें अत्यन्त उज्ज्वल चांद चमक रहा था। मैंने कासिमको अपना खत दिया। उसे पढ़े बिना ही उसने जेबमें रख लिया और मुझे धन्यवाद दिया। उसके मकान पर मैंने देखा कि लगभग दो दर्जन मुसलमानोंकी एक टोली जमा थी। उसने कहा: ये लोग यह मांग करने आये हैं कि स्थानीय कांग्रेसका कार्यालय तोड़ दिया जाय और टीनकी जिन चादरोंसे वह बना है वे इनमें बांट दी जायं। पहले मुसलमानोंने कांग्रेसको चन्दा दिया था, इसलिए यह मकान उन्हींका है!

मैं कासिमसे बोला: अब हम प्रत्यक्ष मिल लिये हैं, इसलिए आशा है कि हम बार बार मिलते रहेंगे।

इस बीच उसने मेरा पत्र निकाल कर पढ़ लिया था। उसने कहा: "तो मेरी बातका कोई नतीजा नहीं आया। मेरे तीन कीमती घंटे बरबाद हो गये।" मैंने उससे कहा: मैं तुम्हारे आदमियोंकी जमानतकी अर्जियोंकी चर्चा करने नहीं आया हूं और मेरा भी समय कीमती है।

इसके बाद मैं बिदा लेकर चला आया।

दो सप्ताह बाद कासिमके आदमियोंकी एक टोलीने दिन-दहाड़े आम रास्ते चलते एक लड़केको पकड़ कर एक चायकी दुकानमें कैद कर दिया। स्थानीय हाईस्कूलके भूतपूर्व मुख्य अध्यापकको दुकानके सामनेसे जाते देखकर लड़का सहायताके लिए चिल्लाया और भागनेकी कोशिश करने लगा, मगर उसे घसीट कर वापस ले जाया गया। अध्यापकने पकड़नेवालोंसे लड़केको छोड़ देनेके लिए अनुनय-विनय की और उनसे पूछा कि उसे गैर-कानूनी ढंगसे क्यों पकड़ रखा है। सफाईमें उन्होंने भेड़िये और मेमनेके जैसा एक किस्सा गढ़ लिया कि लड़का "सिरके लिए सुगंधित तेल" की शीशी खरीदने आया था और गल्लेकी पेटीमें से उसने दस रुपयेका एक नोट चुरा लिया, जब कि मालिक कहींसे शीशी लाने गया था।

"चायकी दुकान पर बालोंका तेल लेने भला कोई क्यों आयेगा ?"

"नहीं, नहीं, हमारी भूल हो गई। उसने सिगरेटकी डिब्बी मांगी थीं।"

मैंने मौके पर पहुंच कर सुझाया कि लड़केका नाम-पता लिखकर उसे छोड़ देना चाहिये और उसके खिलाफ पुलिसमें शिकायत दर्ज करा देनी चाहिये। परन्तु उन्होंने कहा, हमें इसे गांवके चौकीदारके साथ थानेमें भेजना चाहिये। मैंने अपने एक कार्यकर्ताको पुलिसके पास भीतरी स्थिति बतानेके लिए भेज दिया। हमारे कार्यकर्ताको थानेमें देख कर उन लोगोंकी हिम्मत पस्त हो गई और वे अपने कैदीको छोड़ कर भाग गये ।

एक सप्ताह बाद एक अत्यन्त गंभीर घटना हुई। हमारे गांवके एक सम्पन्न जमींदारको बदमाशोंकी एक टोलीने, जब वह दत्तापाड़ा कष्ट-निवारण शिविरमें जा रहा था, पकड़ लिया और उसका रुपया-पैसा और छतरी छीन ली। शिविरमें पहुंच कर उसने शिकायत दर्ज करा दी। दो घंटेमें ही यह खबर बदमाशोंके पास पहुंच गई। वापस जाते हुए उसे वही टोली उड़ा कर ले गई। वह बच कर निकल भागा। एक मुसलमानने उसे अपने घरमें शरण दी। परन्तु कासिमके आदमियोंने उसका पता लगा लिया और वे उसे एकके बाद एक कोई आधा दर्जन अलग अलग स्थानोंमें ले गये। कुछ जगहों पर उसे ५०-६० धमकानेवाले आदमियोंकी टोलियां मिलीं, जो घातक हथियारोंसे सुसज्जित थे।

शामको जमींदारके भाईने मेरे शिविरमें आकर सारी कहानी सुनाई। अंधेरा पड़नेके बाद विश्वरंजन और मैं उसका पता लगानेको निकले । चूंकि मेरी टॉर्चका गोला उड़ गया था, इसलिए पहले हम पासके एक स्थान पर चले गये जहां कांग्रेसका शिविर था। हमें मालूम हुआ कि उड़ाया हुआ आदमी वहां लाया गया है और एक मस्जिदमें नजरबन्द है। उसके कुछ संबंधियोंने पकड़नेवालोंसे सम्पर्क कर लिया था और वे रुपया देकर उसे छुड़ानेकी बातचीत कर रहे थे। परन्तु मस्जिदमें जांच करने पर हमें पता चला कि उसे थोड़ी ही देर पहले वहांसे हटा दिया गया है। जहां कहीं हम गये यही किस्सा दोहरा दिया गया कि हम देरसे पहूंचे । आधी रातके करीब हमें दो मुसलमान मिले।

"कहांसे आ रहे हो?" मैंने पूछा।

"जीबनगरसे ।"

यह वही जगह थी जहां हमसे अन्तमें कहा गया था कि पकड़े हुए जमींदारको दूसरी जगह ले गये हैं। परन्तु जीबनगर पहुंचने पर हमें फिर कहा गया कि हमारे पहुंचनेके ठीक पहले ही उसे दूसरी जगह ले गये हैं। भगाये हुए व्यक्तिके भाईकी हिम्मत टूटने लगी। उसने कहा, इससे तो रूपया देकर उसे छुड़ा लेना बेहतर होगा। हमने उससे कहा, तो आप अपने रास्ते जा सकते हैं। हम इसमें शरीक नहीं हो सकते।

दूसरे दिन सुबह हम उस जमींदारसे खुद मिले। उसके रिश्तेदारोंने चार सौ रुपया देकर और दो सौ रुपये अधिक देनेका वादा करके उसे छुड़ा लिया थात। उससे यह वचन ले लिया गया था कि वह पकड़नेवालोंके नाम प्रकट नहीं करेगा और अधिकारियोंके सामने यह बयान देगा कि उसे भगाया नहीं गया था, परन्तु वह किसी रिश्तेदारके घर दावत खाने गया था! वह सिरसे पैर तक थर-थर कांप रहा था। उसने हमसे सहायताकी याचना की । मैंने उससे कहा, आपको पहले मुझे एक गवाहके सामने सच्चा बयान लिख कर देना होगा। बयान उसने लिख दिया।

एक पुलिस-अफसर, जो मुसलमान था, इतने ही में जांचके लिए वहां आ पहूंचा। उसके बारेमें यह कहा जाता था कि वह "कांग्रेसियों" और गांधी-शिविरके कार्यकर्ताओंको गालियां देता है और "कोई वारदात न होने पर" झूठा मामला गढ़ लेनेके लिए उन पर मुकदमा चलानेकी धमकी दे रहा है। मैंने उससे कहा, आप चल कर खुद गुंडोंका शिकार बने हुए जमींदारको देख लीजिये । "वह तो डरके मारे होश-हवास खो बैठा है और उसके दिमागका संतुलन बिगड़ गया है।

पुलिस-अधिकारीने चिढ़ कर जवाब दिया: " ऐसी हालत होनेका कोई कारण नहीं है। उसने तो बयान दिया है कि उसे भगाया ही नहीं गया; वह एक रिश्तेदारके यहां भोजन करने गया था।" मैंने अधिकारीसे कहा: "मैं अभी उससे मिला हूं ।" और मैंने पिछली रातके अपने सारे साहसोंका किस्सा उसे सुनाया; यह भी बताया कि किस तरह बेचारेसे वचन लिया गया है कि वह भगाये जानेकी बातसे इनकार करेगा और पकड़नेवालोंने जो कुछ उसे सिखा-पढ़ा दिया है वही कहेगा। मैंने कासिमके आदमियोंकी टोलीको, जो हमारे चारों ओर जमा हो गई थी, बता कर यह भी कहा: "आप सारी घटना पर जानबूझ कर सफेदी पोतना न चाहते हों, तो इन आदमियोंकी मौजूदगीमें आप उसका बयान नहीं ले सकते।" उन लोगोंमें कुछ जमींदारको पकड़नेवाले भी थे और वह आदमी भी था जो पिछली रातको

हमें जीबनगरके रास्तेमें मिला था। उसकी आंखें पिछली रातके शिकार पर काले नागकी तरह जमी हुई थीं। पुलिस-अधिकारी हक्काबक्का रह गया। उसने कहा: "अच्छी बात है, मैं उसका बयान इन लोगोंके सामने दर्ज नहीं करूंगा। उसकी बात मैं बन्द कमरेमें सुनूंगा।" परन्तु टोलीने चिल्ला कर कहा कि बयान वहीं उनके सामने दर्ज होना चाहिये। उन्होंने पुलिस-अधिकारीसे मेरे अंग्रेजीमें बातचीत करने पर भी रोषपूर्ण आपत्ति की, क्योंकि वे यह भाषा नहीं जानते थे। सबसे आश्चर्यकी बात तो यह थी कि इसके बाद पुलिस-अधिकारीने बिना कोई सफ़ाई दिये उस गंभीर वचनको भंग कर दिया, जो उसने थोड़ी ही देर पहले दिया था और कासिमकी टोलीके सामने ही भगाये हुए जमींदारका बयान लिखा। नतीजा यह हुआ कि कुदरती तौर पर उस बेचारेने वही कहानी दोहरा दी, जो उसकी रिहाईकी शर्तके रूपमें धमकियां देकर उसे पढ़ा दी गई थी। ज्यों ही उसे सुरक्षितता अनुभव हुई उसने अपना बयान वापस ले लिया। किन्तु गुंडोंकी टोली बाकीका रुपया मांग मांग कर उसे तंग करती रही। इस मामलेकी रिपोर्ट चटगांव विभागके कमिश्नरसे की गई। उसने जांच करनेका वचन दिया। इस मामलेमें फंसे हुए आदमियोंमें से एक आदमी बादमें सतीश दासगुप्तके पास आया। उसने अपना अपराध स्वीकार किया और भविष्यमें नेकचलन रहनेका वादा किया और विनती की कि उसे बचा लिया जाय। परन्तु जांचका कोई परिणाम नहीं निकला। मुद्दईके बयानमें शायद उसके मनकी असंतुलित अवस्थाके कारण कुछ छोटी-मोटी त्रुटियां रह गई थीं, जिनका फायदा उठा लिया गया। अपराधी साफ साफ बच गये और अन्तमें उस बेचारे जमींदारको भाग कर सलामती खोजनी पड़ी।

*

ऐसा दीखता है कि मानव स्वभावको अक्सर अपने चारों ओरके निसर्गके जीवनका रंग लगता है। नोआखालीमें जंगली पक्षियोंके राजा गरुड़ने अपना उदाहरण प्रस्तुत किया है। पंखोंसे अलंकृत वनका वह राजा किसी पेड़की ऊंची चोटी पर बैठ कर अपने उच्च स्थानसे गर्मीकी लंबी दुपहरीमें नीचे फैले अपने एकछत्र और विशाल राज्य पर मुकुटधारी राजाकी तरह आधी बन्द आंखोंसे दृष्टिपात करता है। इतनेमें ही नीचेके पेड़ोंसे चूं-चूंकी आवाज आती है। गरुड़को इसमें अपनी राजाशाहीका अपमान लगता है। वह एक भयंकर, जोरकी, कानोंको चीरनेवाली चीख मारता है। चूं-चूंकी आवाज तुरन्त बन्द हो जाती है। जंगलमें फिरसे मृत्यु जैसी निस्तब्धता छा जाती है। बलशाली गरुड़ प्रसन्न होकर पुनः अपने आत्मतोषका आनंद लेनेके लिए तंद्राग्रस्त हो जाता है।

हमारे चारों ओर जो घटनाएं हो रही थीं, उनका सम्पूर्ण चित्र इसमें मिल जाता है। १९४७ के मार्चके अन्तिम सप्ताहमें और अप्रैलके आरम्भमें नोआखालीके हमारे भागमें हिन्दुओंके विरुद्ध बहुसंख्यक कौमकी तरफसे डर फैलानेका संगठित आन्दोलन पूरे जोरों पर चल रहा था। जब बंगाल विभाजन आन्दोलनके प्रभावसे सुहरावर्दी सरकार कानून और व्यवस्थाके तंत्रको कड़ा करने लगी – क्योंकि इस आन्दोलनसे बंगालके मुख्यमंत्रीकी सर्वसत्ताधारी बंगालकी महत्त्वाकांक्षी योजनाकी सफलताके लिए खतरा पैदा हो रहा था (देखिये अध्याय-८) – तो दंगाइयोंके जो सरदार और दूसरे अपराधी दंगोंमें भाग लेनेके कारण पुलिसकी हवालातमें बन्द थे उनके सहायकोंकी क्रियाशीलता अतिशय बढ़ गई। इससे पहले उनका लक्ष्य हिन्दुओंको नोआखाली छोड़नेसे रोकनेका रहा था। उन्हें इस बातका डर था कि हिन्दू उनके पंजेसे निकल कर उनके विरुद्ध शिकायत दर्ज करायेंगे। नोआखालीमें हिन्दू उनकी देखरेखमें रहेंगे तो वे सुरक्षित रहेंगे। अब उनकी नीति हो गई थी कि डरा-धमका कर हिन्दुओंसे शिकायतें वापस कराई जायं या उन्हें भागनेको विवश किया जाय, जिससे मुकदमोंमें वे अपराधियोंके विरुद्ध गवाही न दे सकें।

उन्होंने ऐसी अफवाहें फैलानेकी कार्य-पद्धति अपनाई कि जल्दी ही नोआखालीमें पहलेसे भी भयंकर आतंक फैलनेवाला है। हमारे गांवसे लगे हुए एक गांवमें एक भूतपूर्व मुसलमान अध्यापिका हिन्दू स्त्रियोंसे यह कहती पाई गई कि मुझे तुम्हारी बड़ी चिन्ता हो रही है, क्योंकि आगामी दंगोंमें औरतोंको भगाने या उनका धर्म-परिवर्तन करनेके बजाय सबको मौतके घाट उतारनेका आदेश निकल चुका है। एक और गांवमें एक मुसलमानने दया दिखाते हुए एक बुढ़ियासे, जो अपने पोखरमें मछलियां पकड़ रही थी, पूछा : "तुम कब तक इस तरह मछलियां पकड़नेकी आशा रखती हो ?" किन्तु बूढ़ी माई पर उसका कोई असर नहीं हुआ । उसने उत्तर दिया: "जब तक जिऊंगी तब तक ।" एक और गांवमें एक मुसलमानने अपने हिन्दू पड़ोसियों- को मित्रतापूर्ण सलाह दी कि समय रहते भाग जाओ। मेरे गांवसे लगे हुए एक गांवमें कलकत्तेसे हाल ही लौटा हुआ एक मुसलमान लोगोंसे यह कहता पाया गया कि वहां तो यह भावना फैली हुई है कि कलकत्तेका अभी पूरा बदला नहीं लिया गया है और प्रान्तीय राजधानीमें पूरा पूरा बदला लेनेकी तैयारियां हो रही हैं। यह समाचार सुनकर मैं अपने शिविरके कुछ आदमियोंके साथ उस मुसलमानके पास गया। आमना-सामना होने पर वह टालमटूल करने लगा: मैं ऐसी बात कैसे कह सकता हूं? मैंने कहा: अवश्य ही नहीं कह सकते और नहीं कहनी चाहिये। परन्तु

प्रश्न यह है कि तुमने सचमुच यह बात कही या नहीं ? इस पर उसने चुप्पी साध ली। परन्तु जिन लोगों पर वह धौंस जमानेकी कोशिश कर रहा था, उन्हें उसके खिसियाने चेहरेको देखकर खुशी हुई। अंधेरा बढ़ रहा था। जब हम अपने शिविरको लौट रहे थे तब किसीने, शायद स्वयं अपराधीने, सुपारीके कुंजमें छिप कर हम पर मिट्टीके ढेले फेंके । परन्तु अब हमारे साथियोंने सीख लिया था कि ऐसी बातोंसे घबराना नहीं चाहिये। हमारी मंडलीकी एक स्त्रीने आक्रमणकारीको बाहर आनेकी चुनौती दी और उसके छिपनेके स्थानकी तरफ वह झपटी। पत्तोंकी खड़खड़ाहटसे पता चल गया कि तीसमारखां साहब बहादुरीसे नौ दो ग्यारह हो गये !

४

गांधीजी हमसे बार-बार कहते थे और हमें भी जल्दी ही इसकी प्रतीति हो गयी कि अन्तमें हमारे नोआखाली मिशनकी सफलता इस बात पर निर्भर रहेगी कि हम दोनों कौमोंकी साहसपूर्ण, निःस्वार्थ और प्रेमपूर्ण सेवा द्वारा बहुसंख्यक कौमकी सद्भावनाओंको कितना जागृत कर सकते हैं और हिन्दू कौमसे उसकी कायरता किस हद तक छुड़वा सकते हैं। लेकिन जब मुस्लिम बहिष्कारको हिन्दुओंकी खेतीसे आगे बढ़ा कर तमाम हिन्दू प्रवृत्तियों पर लागू कर दिया गया, तो मुसलमानोंसे सम्पर्क बढ़ाना हमारे लिए दिनोंदिन कठिन होता गया। हमें ऐसा मालूम होने लगा मानो हम किसी अज्ञात क्षेत्रमें रहते हैं, जिसके चारों ओर शंका-कुशंका और शत्रुताकी ठोस दीवार खड़ी है। ऐसे वातावरणमें हम केवल आशा और श्रद्धासे अवसरकी प्रतीक्षा कर सकते थे।

अन्तमें एक अवसर मिल गया। कालू मियां नामका एक मुसलमान किसान लगातार लंबे अर्से तक 'मेपाक्रीन' की गोलियां खानेसे लगभग अंधा हो गया था। वह भरी जवानीमें था और साफ, खुले दिलका आदमी मालूम होता था। इससे उसकी बड़ी बड़ी, खुली हुई परन्तु दृष्टिहीन आंखोंकी करुणता और भी बढ़ गयी थी। जब मुस्लिम कौम गांधीजीसे अलग हो गयी थी तब वे कहा करते थे कि 'जो मुट्ठीभर मुसलमान अब भी मेरे साथ जुड़े हुए हैं, उनकी सेवा द्वारा उनके साथ एकता साध कर मैं साम्प्रदायिक एकताके अपने आदर्शकी पूर्ति करूंगा।' मैंने कालू मियांको अपनी देखरेखमें रख कर उसे विटामिन, डिब्बेका दूध और अन्य पौष्टिक भोजन देना शुरू किया। भोजन मैं खास तौर पर तैयार कराता था और स्वयं ही उसे परोसता था, ताकि उसकी भलमनसाहतका फायदा उठा कर उसके रिश्तेदार उसे

भोजनसे वंचित न रखें । मैं अपने ही हाथों उसे वाष्पस्नान और मिट्टी-स्नान कराता था, गीली चादरमें रखता था और कई तरहकी मालिशोंका भी उपचार करने लगा था।

मेरे हर्षका कोई ठिकाना नहीं रहा जब एक दिन कालू मियां प्रसन्न मुद्रा लिये मेरे पास आया और कहने लगा कि पहले मैं १०-१५ हाथके फासले पर उठी हुई उंगलियां नहीं गिन सकता था, परन्तु अब मैं आसानीसे उन्हें गिन सकता हूं। उसने आह भर कर यह भी कहा: " परन्तु इससे क्या फायदा, अगर मैं नारियलके पेड़के नीचे खड़ा होकर लटकते हुए नारियल न गिन सकूं और बिना झुके जमीन पर उगनेवाले सनके पौधोंके डंठल साफ साफ न देख सकूं ?" नारियल तोड़ने और सन काटनेसे ही उसे रोजी मिलती थी।

जब मैं हिन्दुओंकी खेतीके बहिष्कारके विषयमें स्थानीय मुसलमानोंको समझाने गया, तो कालूको अपने साथ ले गया। मैंने उनसे पूछा: "यह आदमी तुम्हारा ही भाई है। इसको तुम्हारे बहिष्कारसे कैसे लाभ पहूंचेगा? इसका ईमानदारीका धंधा छीन लेना क्या मनुष्य और ईश्वरके प्रति पाप नहीं है ? क्या तुम इसे और कोई काम दोगे, अथवा इसे खिलानेकी जिम्मेदारी लोगे ?" इसका जवाब तो उन्होंने नहीं दिया, परन्तु उनमें से कइयोंके हृदयमें गहरा मंथन शुरू हो गया।

कालू हमारे साथ उस समय तक रहा जब तक कि वह अपना धंधा साधारण रूपमें फिरसे न करने लगा। उसका इलाज चाहे मेरे निसर्गोपचारसे हुआ हो, अथवा स्वस्थ होनेकी प्राकृतिक प्रक्रियासे हुआ हो, अथवा दोनोंको मिलाकर हुआ हो, परन्तु उसका तो यही पक्का विश्वास था कि वह महात्माके आशीर्वादसे अच्छा हुआ है। इस विश्वाससे उसको कोई चीज हिला नहीं सकती थी। [एक साथी कार्यकर्ताने, जो अभी अभी नोआखालीसे लौटे थे, मुझसे कहा कि किस प्रकार कालू मियां कुछ समय पहले मर गया और किस प्रकार अन्त समय तक वह अपने मित्रों और सम्बन्धियोंको यह बताता रहा कि महात्माजीके आशीर्वादसे उसे फिरसे दृष्टि प्राप्त हुई है] वह सद्भावनाका जीता जागता सेतु बन गया और जब हमारे आसपासका वातावरण फिर विषाक्त हो गया तब उसीके कारण हम अनेक मुसलमानोंके हृदयों तक पहुंच सके और उनके भीतर सब सीमाओंको लांघनेवाली मानवताके प्रति और गांधीजीके शान्ति-मिशनके प्रति फिरसे श्रद्धा उत्पन्न कर सके और उसे पुष्ठ बना सके।

शंकाशील आदमी यह पूछ सकता है कि इससे क्या फर्क पड़ता है? ऐसे व्यक्तिगत कृत्योंसे घटना-चक्र कैसे बदल सकता है ? इन प्रशनोंसे जीवन-संबंधी संकीर्ण दृष्टि प्रकट होती है। अनुभव यह बताता है कि प्रेमधर्मका पालन यदि छोटे पैमाने पर भी किया जाता है, तो वह खमीरकी तरह फैलता है और शांत तथा अदृश्य रूपमें काम करनेसे उसका असर और भी गहरा होता है। उससे तात्कालिक नाटकीय परिणाम भले न निकलें – यद्यपि जब वह पर्याप्त मात्रामें तीव्र होता है तब उससे होनेवाले परिणाम अत्यन्त नाठकीय होते हैं – परन्तु वह एक ऐसी नई हवा, ऐसा नया वातावरण उत्पन्न कर देता है और उसमें ऐसी बातें होती हैं तथा घटनायें ऐसा मोड़ लेती हैं, जिसकी अन्यथा कल्पना भी नहीं की जा सकती । कमसे कम हममें से उन लोगोंके लिए यह बात समझना कठिन न होना चाहिये, जिन्होंने भारतमें अपनी आंखोंके सामने बार-बार चमत्कार होते देखा है।

शर्त यही है कि सारी प्रवृत्ति प्रेमके नियमसे जुड़ी हुई होनी चाहिये। हमारे यहां यह शक्ति गांधीजीमें थी। सत्याग्रहके नेतामें यह शक्ति हमेशा होनी चाहिये। जो उसके साधन हैं उनके लिए इतना काफी है कि उनमें अनुशासन हो और योजनाके बतानेवाले और चलानेवालेकी इच्छा और हेतुके साथ एकरूपता हो; और सबसे बड़ी बात तो यह कि उसके हेतु और कार्य-पद्धतिके बारेमें उन्हें समझ और अंतर्दृष्टि हो। हमें अपने आचरणमें रहनेवाले दोषोंका पूरा भान था। परन्तु उसका सिद्धान्त अटल रूपमें सच्चा था। जो चाहे वह इसकी परीक्षा स्वयं कर सकता है। जब मनुष्यके जीवनमें दयाकी ज्योति जागृत हो जाती है तब उसके सारे डर भाग जाते हैं और उसकी शक्तिसे पूर्ण होकर लड़खड़ाते हुए अपूर्ण मानव-प्राणी भी चमत्कारी परिणाम सिद्ध कर सकते हैं।

इसके बाद एक और अवसर आ गया। एक दिन मार्गमें मुझे एक मुस्लिम बालक मिला। उसके बिना धुले कपड़ोंसे दुर्गन्ध आ रही थी। उसकी खोपड़ीमें फोड़े-फुंसी हो रहे थे। मैंने प्यारसे उसका गाल थपथपाया और अपने साथ उसे शिविरमें ले गया। रास्तेमें दो और लड़के उसके साथ हो गये। उनकी दशा भी उससे अच्छी नहीं थी। शिविरमें पहुंचते पहुंचते ७-८ लड़के-लड़की हो गये। लड़कियोंके बाल उलझे हुए और जुओंसे भरे थे। सबकी उम्र ५ और ८ वर्षके बीच थी। मैंने अपनी दो पुरानी धोतियां फाड़ कर ऐसे टुकड़े तैयार किये, जिन्हें नहानेके बाद गीले कपड़े सूखने तक लड़कियां पहन सकें। लड़कोंको तो एक बार तालाबमें पड़ जानेके बाद कपड़ोंकी उतनी ही परवाह रही जितनी उनके आसपासकी मछलियोंको थी।

हमारे शिविरकी स्त्रियोंने लड़कियोंको संभाल लिया। हम सबने मिल कर उनके शरीर पर साबुन लगाकर उन्हें मला, उनके कपड़ोंको धोकर सुखा दिया और उनके फोड़े-फुंसियोंको नीमकी पत्तियोंके गरम पानीसे साफ़ कर दिया। फिर उनके बालोंमें कंघी कर दी और उनके नाखून काट दिये। साथ ही हमने उन्हें एक एक मुट्ठी मुरमुरे, कच्चे खोपरेके ठुकड़े और खट्टे-मीठे अपने आप पैदा होनेवाले जलपाई (जैतून) देकर साफ-सुथरी दशामें घर भेज दिया।

हमें आशा थी कि जिन्हें हमने नहलाया था और जिनके कपड़े हमने धोये थे उन बालकोंको बादमें माता-पिता साफ-सुथरे रखेंगे। परन्तु दो हफ्ते बाद हमने देखा कि जिन्हें हमने साफ-सुथरा कर दिया था, वे फिर अपनी मूल स्थितिमें पहुंच गये हैं। शायद उनके माता-पिताको लगा होगा कि चूंकि उनके बच्चोंकी देखभाल हम कर रहे हैं इसलिए वे अपनी जिम्मेदारीसे मुक्त हो गये। लड़कियोंके बाल फिर उलझ गये और जुओंसे भर गये । हमने उनके कपड़ोंकी मरम्मत कर दी थी। नतीजा यह हुआ कि उनके माता-पिताने पुराने कपड़ोंके चिथड़े हो जाने पर भी उन्हें नये कपड़े नहीं दिये। समझाने-बुझानेसे काम न चला। उनकी दलील यह थी कि उनके पास साबुन या कपड़े खरीदनेके पैसे नहीं हैं। हमने समझ लिया कि जब तक हम बच्चोंके माता-पिताको शिक्षा न दें और वे हमारे साथ सहयोग न करें तब तक हम बच्चोंको शिक्षा नहीं दे सकते।

सतीशचन्द्र दासगुप्तके सोदपुर आश्रम (कलकत्ता) में एक बार गांधीजी गये तब हमें केलेके पत्तोंकी राखसे बने साबुनका नमूना दिखाया गया था। इस राखमें क्षार होता है। नोआखालीमें केला अपने आप उगता है और बढ़ता है। उसके सूखे पत्तों और ठूंठोंको ठिकाने लगानेकी वहां एक समस्या है। केलेकी राखका क्षार उसे चौगुने पानीमें घोल कर और पानीको निथार कर अलग किया जा सकता है। कलईके चूनेके साथ उबालनेसे निथारे हुए पानीमें स्वच्छ कास्टिक सोडा पैदा हो जाता है। उसमें वनस्पति तेल डालनेसे जैसा तेल काममें लें उसीके अनुसार सख्त या नरम साबुन बन जाता है। साबुनका यह सारा मसाला नोआखालीमें आसानीसे मिल सकता था। हमने लोगोंको यह क्रिया सिखा दी और थोड़े ही दिनोंमें कई लोग अपना अपना साबुन तैयार करने लगे।

बच्चोंको अच्छे तौर-तरीकों और अच्छी आदतोंकी शिक्षा देने और स्वावलम्बन सिखानेके लिए हमने बुनियादी शालाएं स्थापित कीं। विभिन्न घरेलू दस्तकारियों पर उनका आधार रखा और हाथ-कताई

तथा उससे सम्बन्धित प्रक्रियाओं पर खास जोर दिया । गांधी-शिविरके मुख्य कार्यालय काजिरखिलकी बुनियादी शालामें प्रत्येक बालकने महीने भरके समयमें अपने लिए अपनी ही कताईके सूतसे एक आधी बांहका कमीज, एक चड्डी और एक टोपी बनवा ली। अपनी बनाई हुई वर्दीमें वे दूसरी ही तरहके प्राणी दिखाई देते थे और उन्हें भी ऐसा ही अनुभव होता था।

माता-पितामें घर करके बैठी हुई जड़ता और उदासीनताको मिटाना इतना आसान नहीं था। मेरे कार्यक्षेत्रमें पहले पांच और बादमें सात गांव थे । वहांके जो लोग हमसे सहयोग कर सकते थे, उनकी हम हर मंगलवारको बारी-बारीसे एक-एक गांवमें सभा करते थे। अपने गांवोंसे रवाना होनेके पहले विभिन्न टोलियोंके लोग नियमित पंक्तियां बना लेते थे। स्त्रियां और पुरुष, लड़के और लड़कियां अलग अलग पंक्तियोंमें व्यवस्थित, अनुशासित ढंगसे रामधुन गाते और ताल देते हुए सभाके स्थान पर पहुंचते थे।

हमारी सभाएं तकली पर आध घंटेके मौन कताई-यज्ञसे शुरू होती थीं। जो लोग कातना नहीं जानते थे, उनसे तुनाई करनेको कहा जाता था। नये आनेवालों अथवा संयोगसे आ पहुंचनेवालोंको, जो तुनाई भी नहीं कर सकते थे, धुनाईके लिए रुई साफ करनेको दी जाती थी। इससे सैकड़ों घंटोंकी धुनाईकी मेहनत कम होती थी और पूर्ण अनुशासनकी शिक्षा मिलती थी; साथ ही अपने सुधारके लिए एक समान प्रयत्नमें सक्रिय सहयोग देनेकी भावना भी प्रत्येकमें उत्पन्न होती थी। कताईके समय पूर्णतया मौन रखा जाता था। यह सावधानी रखी जाती थी कि अन्तमें सूतका एक भी धागा

या रुईका एक भी लोंदा पड़ा हुआ न रह जाय । हम गन्दगी और बरबादी नहीं होने देते थे। चूंकि सामुदायिक अहिंसाकी शक्ति छोटेसे छोटे प्राणीमें भी छिपी हुई आत्माकी शक्तिको सफलतापूर्वक संभालने और उसका उपयोग करने पर निर्भर है, इसलिए हर छोटी चीजका महत्त्व है। इसलिए अहिंसाकी, खास तौर पर सामुदायिक अहिंसाकी, तैयारीके संदर्भमें इन छोटी छोटी बातोंको करनेमें पूर्णताका होना सफलताके लिए अत्यावश्यक है। इस संबंधमें संगठनकर्ताओंकी ओरसे बरती जानेवाली असावधानी अथवा उनकी अक्षमता घातक सिद्ध होती है। असलमें यही वह चीज है जिससे देखते ही पता लग जाता है कि कोई कार्य सच्चा है या झूठा।

हमारी सभाओंमें सैद्धान्तिक प्रश्नोंकी चर्चा नहीं होती थी। संबंधित लोगोंके दैनिक जीवनको स्पर्श करनेवाली तात्कालिक समस्याओं पर ही विचार किया जाता था। बातचीतका लक्ष्य समस्याओंका व्यावहारिक हल निकालना होता था। इससे हम सब – हिन्दू और मुसलमान – भाईचारे और स्वेच्छापूर्ण सहयोगके एक समान बन्धनमें बंधते थे।

हमने भयका प्रतिकार करनेके लिए एक मनोरंजन तथा शौकके रूपमें कताई आरंभ की थी। कताई करनेके लिए हम कोई ५० पुरुष, स्त्रियां और बच्चे तीन गांवोंसे आकर एक विनष्ट मंदिरके सामने रोज इकट्ठे होते थे। उन सबने दंगोंके दिनोंमें बहुत कष्ट भोगे थे और सब एक ऐसे भयकी स्थितिमें जी रहे थे, जो उनके ज्ञानतंतुओंको छिन्नभिन्न कर सकता था। कताई इसका उत्तम उपाय सिद्ध हुई। कताई बांसकी तकलियों पर की जाती थी और कातनेवाले तकली अपने ही हाथसे बना लेते थे। धूनाई तुनाईके जरिये होती थी। जब कपास काममें ली जाती थी तब उसकी ओटाई भी किसी यंत्रके बिना हाथसे ही कर ली जाती थी।

हमारे प्रत्येक सम्पर्क और प्रत्येक प्रवृत्तिका मूलभूत ध्येय वास्तवमें शिक्षात्मक होता था, इसलिए औजारोंका बनाना इस प्रक्रियाका उतना ही महत्त्वपूर्ण भाग था जितना कि उनका उपयोग करना सीखना। इसलिए जब हमें बच्चोंको कताई सिखानी पड़ी तो हमने उन्हें तकलियां भी नहीं दीं; हमने उन्हें चाकूसे बांसकी अपनी तकली बनाना सिखा दिया। इसी प्रकार कपासके गालेमें रहे बिनौलेके चारों तरफकी रुईको एकसा करनेकी क्रियासे आरंभ करके इस प्रश्नको उनके दैनिक अनुभवकी भाषामें रख कर हम उन्हें ऐसी प्रेरणा देते थे, जिससे वे रुई पींजने और कातनेकी क्रियाके पीछे रहे रहस्यको स्वयं ही समझ लें । इसके बाद उनकी जागृत बनी हुई जिज्ञासा-वृत्ति और आविष्कार-शक्ति बाकीका काम कर लेती थी। उदाहरणके लिए, कंधी करनेसे बिखरे हुए बाल कैसे व्यवस्थित बन जाते हैं, इससे धूनाईका अर्थ उनकी समझमें आ जाता था। यह काम वे अपनी उंगलियोंसे या लकड़ीकी छुरीसे या मछलीके जबड़ोंकी कंधीसे या अन्तमें अपनी ही बनाई हुई धुनकीसे कर सकते थे। बालोंकी चोटी गूंथने और तंतुओंका सूत बट लेनेमें जो साम्य था वह इतना स्पष्ट था कि उसे वे समझे बिना नहीं रह सकते थे। उन्होंने अपनी उंगलियोंसे सूतका तार निकालना सीख लिया। लगातार बट देनेके लिए वे सुपारीमें या कच्ची मिट्टीके बनाये गोलेमें या गोल ठीकरीमें एक डंडी लगा देते थे और अपनी उंगलियोंके झटकेसे उसे घुसा देते थे। सूत एक निश्चित लम्बाई तक कत जाने और तकली पर लपेट लिये जानेके बाद

फिसल न जाय, इसके लिए डंडीके सिरे पर दोहरे बटे हुए सूतका फंदा लगा कर वे कामचलाऊ आंकुड़ा बना लेते थे। बिनौलेसे रुईको अलग करनेके लिए वे एक गोल सली और लकड़ीके तख्तेका उपयोग करते थे और बांसको चीर कर उसकी एक फरचट और अनन्नासके पत्तेके तंतुको बट कर धुनकी बना लेते थे। बादमें केवल एक दाव, एक हाथकी करवत और बसूलीसे वे अपने लिए बांसके चरखे तैयार कर लेते थे। हम प्रत्येक परिवारसे एक बांस दानमें लेकर बांस जमा कर लेते थे। दो बांसोंसे ५ चरखे बन जाते थे। काजिरखिल शिविरके कारखानेमें सतीशचन्द्र दासगुप्तनें टिनके दो सांचे बनवा दिये थे। इस सामानसे कोई नौसिखुआ भी थोड़ीसी तालीमके बाद दो दिनमें तीन चरखे बना सकता था। एक बांस देनेवाला आदमी सिर्फ आठ आनेके पैसे मजदूरीके देकर चरखा ले सकता

था। दूसरे लोगोंको डेढ़ रुपया देना पड़ता था। हमारे शिविरके लड़के और लड़कियां सांचोंकी प्रतीक्षा किये बिना भी अपने लिए अपने ही हाथसे अच्छे काम देनेवाले चरखे बना लेते थे। सौभाग्यसे नोआखालीमें भारतके कुछ अन्य भागोंकी तरह दिखावटी जीवन-प्रणाली और एक ही सांचेमें ढली हुई शिक्षा-प्रणाली, जो अंग्रेजोंको प्रिय थी, लोगोंकी हाथकी कारीगरीको नष्ट नहीं कर पाई थी। हमारे केन्द्रमें कई हाथ-करघे बेकार पड़े थे। उन्हें निकाल कर उनकी मिट्टी और जाले साफ करके उनसे काम लिया जाने लगा। पहले ज्यादातर मिलका सूत बुननेमें उनका उपयोग किया जाता था। उसके बदले अब हाथका सूत बुननेमें लोगोंको बहुत कठिनाई नहीं हुई।

स्वावलम्बनके लिए कताईको प्रोत्साहन देनेके लिए हमने अपने कष्ट-निवारण वस्त्र-भण्डारसे एक साड़ी प्रत्येक उस कत्तिनको मुफ्त देनेका निश्चय किया, जो एक साड़ी बुननेके लिए जरूरी सूत अपने हाथका कता हुआ लाती थी। कताई और उससे सम्बन्धित प्रक्रियाएं सीखनेके लिए मुस्लिम लड़के और लड़कियां भी अधिकाधिक संख्यामें हमारे पास आने लगे। उन्हें भी हमने सम्बन्धित कष्ठ-निवारण संस्थाओंकी विधिवत् स्वीकृति लेकर वही सुविधाएं और विशेषाधिकार दे दिये। कुछ ही मासमें सारा स्थान चरखेके संगीतसे गूंजने लगा और चारों ओर फैली हुई कपड़ेकी सख्त कमीके समय जो लोग आत्म-कल्याणकी हमारी योजनाओंके साथ सहयोग करते थे, उनके सुन्दर नये वस्त्रोंकी ओर सभीका ध्यान आकर्षित होने लगा।

५

"अरे, जरा ज्यादा, और वह कितना ज्यादा बढ़ जाता है! और जरा कम, और वह कितना ज्यादा घट जाता है!" इन पंक्तियोंकी सचाई नोआखालीके हमारे मिशनके दौरान बार-बार हमारे हृदयों पर अंकित होती थी। जैसे-जैसे वर्ष आगे बढ़ा और वसन्त निकल कर गरमी आई वैसे वैसे अन्नकी कमीकी समस्या तीव्र होती गई। अन्नदान और आजमाइशी कष्ट-निवारण कार्य पहले ही बन्द कर दिया गया था; और वर्षा ऋतुमें भारी बाढ़ आ गई । बाढ़में तरकारीकी क्यारियां और पानकी बाड़ियां बह गयीं और लोगोंके रोजीके थोड़ेसे जो साधन बचे थे उनमें से एक यह भी उनके हाथसे चला गया । अन्य सब तूफानोंका बहादुरीसे सामना करनेके बाद केवल आर्थिक संकटके कारण विवश होकर हिजरत करनेका खतरा उनके सामने खड़ा हो गया।

मैंने जिला-अधिकारियोंसे अपने केन्द्रोंके लिए नियंत्रित भाव पर ७५ मन धान प्राप्त कर लिया। दो मन धानसे फटकनेके बाद लगभग साढ़े बयालीस सेर चावल निकलता था। देखरेखकी जरूरत न रखनेके लिए हमने तय कर दिया कि जो कोई एक मन चावल फटक कर दे देगा, उसे एक रुपया मजदूरीका दिया जायगा; बाकी चावल वे खुद रख लें। उनकी मजदूरीकी कीमत और बढ़ानेके लिए हमने उनकी मजदूरीको १६ रुपये मनके नियंत्रित भावसे चावलमें बदल देना स्वीकार किया। वैसे चोर बाजारमें चावल ४० रुपये मन बिक रहा था। वही एकमात्र दूसरा साधन था, जहांसे अधिकांश लोग खुले तौर पर चावल ला सकते थे और लाते थे। हमने एक ही शर्त लगाई थी कि इस रियायतसे लाभ उठानेके लिए प्रत्येक स्त्री और पुरुषको कताई, पढ़ाई और लिखाई सीखनी पड़ेगी। चूंकि फटकनेसे पहले धानको उबाल कर सुखाना पड़ता था, इसलिए दोनों प्रक्रियाओंके बीच उन्हें पढ़ना, लिखना और कातना सीखनेके लिए आसानीसे समय मिल जाता था। ये तीनों विषय हमारे केन्द्रमें काम करनेवाले सभी लोगोंको सिखानेकी जिम्मेदारी हमने ले ली । बाकीके चावलका उपयोग हमने ग्राम-सुधारकी एक स्वावलम्बी योजनाको कार्यान्वित करनेमें कर लिया। जो कोई सड़कों और तालाबोंकी पाल बनाने और मरम्मत करनेके लिए अथवा तालाबोंसे घासपात हटाने अथवा बेलोंके जालसे रुंधी हुई नहरोंको –ये बेलें नहरोंमें इतनी अधिक फैल गई थीं और उनके मार्गको रोक रही थीं कि नावमें एक स्थानसे दूसरे स्थानकी यात्रा कठिन हो गई थी –साफ करनेके लिए स्वेच्छासे दो घंटे श्रमदान कर देता, उसे नियंत्रित भावसे एक सेर चावल मिल सकता था। इस प्रकार हमने अपने क्षेत्रमें दर्जनों तालाबोंकी पालों तथा

मीलों लंबे रास्तों और जलमार्गोंको सुव्यवस्थित कर दिया। इससे यातायात अधिक सुगम हो गया, जिससे हिन्दू-मुसलमान दोनोंको बड़ी राहत मिली ।

जब धानका यह भण्डार समाप्त हो गया, तो मैंने दूसरा ५० मन धान प्राप्त कर लिया। वर्षों पहले एक मित्रने मुझे ५०० रुपये भेंट किये थे, जो अभी तक मेरे पास पड़े थे। मैंने उनका उपयोग करके एक स्थानीय मुसलमानके द्वारा पड़ोसकी साप्ताहिक अनाज-मंडीसे उसके लिए और हमारे लिए धान खरीद लिया। इस मंडीके थोक भावमें और स्थानीय मंडीके फुठकर भावमें अढ़ाई रुपये मनका अन्तर था। धान कूटनेके लिए देकर और बार-बार यही काम करवा कर हम तीन महीनेसे अधिक समय तक लगभग पैंतीस परिवारोंका गुजर चलाते रहे। अन्तमें हमारे पास चौंसठ रुपये और कुछ आनेकी खालिस बचत रह गई।

अक्तूबरके महीनेमें विविध गांधी-शिविरोंमें चल रही विभिन्न प्रवृत्तियोंकी कल्पना करानेके लिए मेरे केन्द्रमें एक प्रदर्शनी लगाई गई। योजनाके अनुसार किये गये कामका हिसाब लगाने पर मालूम हुआ कि मेरे केन्द्रमें १७१ मनुष्योंने २४ अप्रैलसे २० जुलाईके दरमियान ३९८६ मानव-घंटोंका श्रमदान किया । जो काम किया गया उसमें और बातोंके अलावा हर तालाबोंकी सफाई और मरम्मत तथा जलमार्गों पर बांसके और लकड़ीके १० पुल बनाना भी शामिल था। कनु गांधीके मातहत चलनेवाले पड़ोसी केन्द्रमें ३९९ मनुष्योंने, जितमें ४७ मुसलमान थे, लगभग तीन मील लंबी सड़क और पगडंडियां बनानेके लिए ८६३२ मानव-घंटोंकी मेहनत की। विश्वरंजनने गोपाइरबागके आसपासके अपने इलाकेमें आतंक फैला हुआ होने पर भी १६८ मनुष्योंसे, जिनमें लगभग २३ मुसलमान थे, तालाबोंकी मरम्मत और सड़कोंके निर्माण वगैराके लिए ४५०० मानव-घंटोंका परिश्रम कराया । उनके केन्द्रमें स्वावलम्बनकी कताई करनेवालोंने अपने लिए कपास मुहैया करनेको ११० देवकपासके पेड़ लगा लिये। कनु गांधी अपनी नियमितता और अनुशासन, जागरूकता और शिविर चलानेके अनुभव तथा खादीकी प्रक्रियाओंमें श्रेष्ठ तकनीकी कुशलताके कारण इन सारी प्रवृत्तियोंमें सबसे आगे निकल गये – खास तौर पर खादीके काममें।

और यह सब काम केवल ५०० रुपयेकी छोटीसी रकमका समझदारीसे समयके अनुकूल उपयोग करनेसे हो गया। साथमें थोड़ी दूरंदेशी और संगठन तथा सबसे अधिक पीड़ितोंके प्रति उत्कट प्रेम तथा एकता और तादात्म्यकी भावना तो थी ही।

अहिंसाके पालनमें प्रायः ऐसी स्थिति सामने आती है जब आगेकी सारी प्रगति अवरुद्ध-सी दीखने लगती है और प्रवृत्तिकी संभावना भी लुप्त-सी मालूम होती है। तब मनुष्यको शक्तिके लिए अपने भीतरी साधनोंका सहारा लेकर आगे बढ़ना पड़ता है; और इससे भी महत्त्वकी बात तो यह है कि प्रवृत्तिक नये माध्यम और कार्यकी नयी पद्धतियां खोजनी पड़ती हैं। किसी एक व्यक्तिके लिए निरा आत्मानुशासन उसका कार्य चालू रखने तथा उत्साह न गिरने देनेके लिए काफी हो सकता है। दृढ़ बुद्धिवाद दूसरे व्यक्तिके लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है। मानवतावाद तीसरे व्यक्तिको टिकाये रख सकता है। बुद्धिपूर्ण धार्मिक विश्वास किसी चौथेको प्रेरक शक्ति प्रदान कर सकता है। परन्तु इनमें से कोई भी वस्तु मनुष्यको टिकाये रखनेके गुणमें आन्तरिक अनुभव पर आधारित ईश्वर-श्रद्धाकी बराबरी नहीं कर सकती। ईश्वरका अस्तित्व चट्टानकी तरह सुदृढ़ आश्रय प्रदान करता है। अन्तिम विश्लेषणमें तो सारी बात मनुष्यके अपने स्वभाव, तालीम, पृष्ठभूमि, शिक्षा-दीक्षा और परम्परा पर आकर टिक जाती है। परन्तु अनुशासन चाहे शारीरिक हो या बौद्धिक, वह सच्चे अर्थमें सृजनशील नहीं है; वह आंतरिक शून्यतासे पैदा होनेवाले निरुत्साहको नहीं मिटा सकता । केवल प्रेम – ईश्वर और उसके प्राणियोंका प्रेम – ही सच्चा सहारा है। एकमात्र वही सृजनशील है। वह अच्छे कार्योंसे या ऐसे व्यक्तिके सत्संगसे मनुष्यमें पैदा हो सकता है, जो उस प्रेमसे परिपूर्ण है; अथवा जिसे संयोग या भाग्य कहते हैं उससे भी मनुष्यको प्रेम प्राप्त हो सकता है। किसीको पूर्वजन्मके पुण्यसे भी वह मिल सकता है। लेकिन एक साधना ऐसी है – उसे गांधीजीने रसायन कहा था – जो सबके लिए सुलभ है। उनकी अपनी अमर वाणी यह थी :

> जब कभी तुम्हारे मनमें शंका पैदा हो या तुम अपना ही अधिक विचार करो तब यह कसौटी अपने सामने रखो । जिस गरीबसे गरीब और दुर्बलसे दुर्बल मनुष्यको तुमने देखा हो उसका चेहरा याद करो और अपने दिलसे पूछो कि जो कदम तुम उठाने जा रहे हो वह उस मनुष्यके लिए किसी प्रकार उपयोगी होगा? क्या उसे तुम्हारे कदमसे लाभ होगा ? उसे अपने जीवन और भाग्य पर फिरसे काबू पानेमें उससे सहायता मिलेगी ? दूसरे शब्दोंमें, क्या वह लाखों भूखों और अध्यात्म-पिपासु लोगोंको स्वराज्यकी दिशामें ले जायगा ? उसके बाद तुम देखोगे कि तुम्हारी शंका और . . . तुम्हारा व्यक्तित्व विलीन हो गये हैं।

यदि हम पहले अपने भीतर और फिर बाहर देखें, तो हमें पता लगेगा कि ऐसे असंख्य लोग हमेशा रहते हैं जो हमसे कम भाग्यशाली हैं। असलमें इस संसारमें इतना गरीब, इतना पिछड़ा हुआ या

इतना परित्यक्त कोई व्यक्ति नहीं है, जिसे ढूंढ़ने पर कोई न कोई ऐसा न मिल जाय जो उससे अधिक गरीब, अधिक पिछड़ा हुआ और अधिक परित्यक्त न हो। हमें भौतिक साधनों, बुद्धि, सामाजिक प्रतिष्ठा, व्यक्तिगत प्रभाव, सम्पर्क, कुशलता तथा दूसरे गुणोंका जो लाभ प्राप्त है, उसका उपयोग हम यदि उन लोगोंकी दया सुधारनेमें करें, जो इन बातोंमें हमसे थोड़े भी नीचे हैं, तो हम पर निराशा अथवा पराजयकी भावना कभी सवार नहीं होगी। ऐसा किया हुआ प्रत्येक कार्य हमें अगले कार्यका संकेत देगा और अहिंसाके शक्तिस्रोतके निकट ले जायगा। जो थोड़ेसे व्यक्ति इस मार्ग पर चलेंगे, वे बहुत हो जायंगे – एक अच्छी शक्ति बन जायंगे। अहिंसाकी शक्तिसे सम्बद्ध होकर वे निर्णयके समय "धरतीको ऊंचा उठाकर उसे दूसरे भ्रमण-मार्गमें घुमानेवाले तुलायंत्र (लीवर) का कार्य करेंगे।"

कमसे कम उनके अपने क्षेत्रमें तो ऐसा हो ही सकता है।

६

जो बच्चे सामूहिक रामधुन कीर्तनके लिए गांवोंकी प्रात:कालीन परिक्रमा पर हमारे साथ चला करते थे, उनसे मैंने पूछा: "तुममें से कितनोंको घरसे निकलनेके पहले कुछ खानेको मिला है?" केवल दो-तीन ही हाथ 'हां' कहनेको उठे। बाकीके पेट उस समय तक – लगभग ग्यारह बज जाने पर भी – खाली ही थे। आजमाइशी कष्ट-निवारण कार्यसे (देखिये खण्ड - २, पृ. ११७) होनेवाली उनकी और उनके माता-पिताकी सारी कमाई तो चावल और दूसरे अत्यावश्यक पदार्थोंके बढ़ते हुए भाव ही खा जाते थे। उनकी भूखकी पुकार मेरा हृदय विदीर्ण कर देती थी, यद्यपि वे काम करनेको तैयार और उत्सुक थे और केवल मुट्ठीभर मुरमुरों और नारियलके थोड़ेसे गूदेसे उनके पेटका गढ़ा भर सकता था। यहां भी आवश्यकता आविष्कारकी जननी सिद्ध हुई। नारियलका तेल निकालनेका उपाय मुझे सूझ गया।

नोआखालीमें नारियलका तेल निकालनेका घरेलू धंधा उतना ही सार्वत्रिक था जितना भोजन बनाना। नारियलके गूदेके (खोपरेके नहीं) दांतेदार दरांतीसे टुकड़े कर लिये जाते थे, थोड़ेसे पानीमें वे टुकड़े गूंध लिये जाते और कपड़ेसे छाननेके बाद उस मिश्रणको निचोड़ कर 'दूध' निकाल लिया जाता था। बची हुई छूंछ या 'छोबा' में बिना चर्बीवाले मांसकी तरह प्रोटीन खूब होता है। दूधको खुली कढ़ाईमें गरम करनेसे तेल निकल आता है। यह बढ़िया खुशबूदार तेल रातको जाड़ेमें रखा रहे, तो जम कर ठोस हो जाता है। छूंछको और अधिक पकानेसे नारियलका मक्खन या मलाई (मचका) निकल आती है। यह

पनीरकी तरह बहुत मीठा पदार्थ होता है और उसमें प्राकृतिक शक्कर, प्रोटीन, खनिज पदार्थ और चर्बी खूब होती है । उससे जितनी भूख लगती है उतनी ही शक्ति भी बढ़ती है।

नोआखालीमें यह आम रिवाज है कि घर पर कोई मेहमान या मिलनेवाला आवे तो आतिथ्यके चिह्नके रूपमें उसे कच्चे नारियलका पानी दिया जाता है। हमने निश्चय किया कि आगेसे इसके बजाय हम जाकर हरएक घरसे एक पका हुआ नारियल बच्चोंके लिए भेंटस्वरूप लेंगे। इस प्रकार प्राप्त किये हुए नारियलोंका हम उनसे तेल निकलवायेंगे, उसे गांवमें फेरी लगा कर बेच देंगे या अपने कामके लिए खरीद लेंगे और उसकी आयसे बच्चोंके लिए मुरमुरे खरीदेंगे। मुरमुरोंके साथ नारियलकी छूंछ और नारियलका मक्खन देनेसे उनका आज कलसे अधिक प्राणवान बनेगा।

जब कष्ट व्यापक हो गया तो हमने अपने प्रयोगका क्षेत्र बढ़ा दिया। मेरे शिविरके आसपासके पांचों गांवोंमें जो लोग हमसे सहयोग करनेको तैयार थे, उन सबकी हमने सभा की और उनसे कहा: अगर आप लोग हमारे कहने पर चलें तो आपमें से किसीको न तो भूखों मरनेकी नौबत आयेगी और न भूखों मरनेके डरसे घर छोड़नेकी। और इतने पर भी अगर भूखों मरनेकी नौबत आई, तो हम खुशीसे अपनी रोटी आपके साथ बांट कर खा लेंगे। हमारी परिचित एक अंग्रेज महिला अक्सर गांधीजीसे कहा करती थी कि नारियल प्रकृतिका पूर्ण आहार है और मैं महीनों तक दो नारियल रोज खाकर तन्दुरुस्त रही हूं। कुछ स्थानीय लोगोंने भी हमारे सामने गवाही दी कि दो पके नारियलोंके साथ मुट्ठीभर चावल और हरी तरकारी खाकर उन्होंने १९४३ के अकालके अत्यन्त नाजुक दिन काट दिये थे।

हमने हिसाब लगाया कि नारियलकी छूंछ और नारियलके मक्खनमें तेलके सिवा नारियलका सारा पोषक तत्त्व मौजूद रहता है। तेल कुदरती स्थितिमें मानवकी आवश्यकतासे अधिक मात्रामें होता है। छूंछका पानी निकाल कर सुखा लेने पर उसमें यदि नमक मिला दिया जाय, तो लंबे समय तक रखने पर भी वह खराब नहीं होती। उसमें थोड़ासा ताड़का गुड़ मिला देनेसे उसकी रक्षा भी हो जाती है और स्वाशिष्ट मिठाई भी बन जाती है। पहले छूंछ फेंक दी जाती थी या मवेशियोंको खिला दी जाती थी। हमने लोगोंसे कहा कि उसे धूपमें सुखा कर उसका संग्रह कर लें, ताकि उससे उनके चावलके अल्प राशनकी पूर्ति हो सके।

यह योजना हमें एक बहुधंधी सहकारी समिति बना कर उसके जरिये कार्यान्वित करनी थी। सदस्योंको नारियलके तेल पर सेरके ४ रुपये दिये जाते थे और जो लोग सदस्य नहीं थे उन्हें केवल

तीन रुपये दिये जाते थे। सदस्यताकी एक शर्त यह थी कि उन्हें अपने और अपने परिवारके कपड़ेके विषयमें स्वावलंबी बन जाना चाहिये। कारण, ऐसी जेबमें रुपया डालनेसे कोई लाभ नहीं था, जिसके छेदका फायदा कपड़ेकी चोर-बाजारी करनेवाले व्यापारीको मिले। पहले यह छेद बन्द करना पड़ा। इसके लिए प्रत्येक सदस्यको कताई और उससे संबंधित प्रक्रियाएं सीखनी पड़ती थीं और उसके परिवारके लोगोंको भी ऐसा ही करना पड़ता था तथा परिवारके प्रत्येक व्यक्तिको देवकपासके कमसे कम ४ पेड़ लगाने पड़ते थे। इन पेड़ोंकी कपास सहकारी समितिकी सम्पत्ति मानी जाती थी और वह उसे लेकर खुदके लिए कातनेवालोंको बांट देती थी। जब तक तेलका उत्पादक अपनी उगाई हुई निश्चित कपास देकर सदस्यताकी योग्यता प्राप्त नहीं कर लेता था तब तक समितिको दिये हुए एक सेर तेल पर मिलनेवाला रुपया अतिरिक्त शेयरकी पूंजीके तौर पर समितिमें अमानतके रूपमें जमा रखा जाता था।

किरानेके कुछ व्यापारियोंने हमारे तेलके लिए पांच रुपये सेर देना चाहा। परन्तु हमने उनका प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया, क्योंकि वे यह आश्वासन देनेके लिए तैयार नहीं थे कि तेलमें मिलावट नहीं की जायगी। कुमिल्लाका अभय आश्रम गांधी-शिविरोंकी तरह ही रचनात्मक काम करनेवाली एक संस्था था। उसकी तरफसे डॉ. नृपेन बोसने एक साहसपूर्ण प्रस्ताव हमारे सामने रखा कि हम जितना भी तेल तैयार करेंगे वह सब वे ४ रुपये सेरके बाजार-भावसे खरीद लेंगे। हम अत्यधिक प्रसन्न हो गये । हमारा तेल निकालनेका काम कोई व्यापारिक साहस नहीं था। वह बुनियादी तौर पर नैतिक साहसका कार्य था। हम मुहरबन्द डिब्बोमें ही तेल देते थे। हर डिब्बे पर उसकी शुद्धताका, ठीक वजनका और तेलके ताजा होनेकी गारन्टीके लिए डिब्बेको सीलबन्द करनेकी तारीखका प्रमाणपत्र होता था। उत्पादकोंकी तरफसे खोपरेका बनावटी तेल हम पर न थोपा जा सके, इसके लिए हमने यह शर्त और लगा दी कि हर बार तेलके साथ छूंछ और मक्खन भी अच्छी तरह पानी निकालकर और उसमें नमकका पुट देकर भंडारमें रखनेके लिए लाया जाय।

उत्पादनका काम १७ अप्रैल, १९४७ को शुरू हुआ । पहले पखवाड़ेका उत्पादन ४ सेर तेलसे कुछ अधिक हुआ। सातवें और आठवें, अंतिमसे पहलेके सप्ताह और अंतिम सप्ताहमें कुछ उत्पादन क्रमशः २६६ और ३०४ सेर हुआ और उसकी कीमत १२१६ रूपये और १९६४ रुपये क्रमशः हुई । तेलके उत्पादनकी कुल मात्रा लगभग ५० डिब्बे हुई, जिसकी कीमत ३८०० रुपये हुई। अन्तिम मंजिलोंमें इससे

१३० परिवारोंको काम मिला, जिनमें से ९७ हिन्दू और ३३ मुसलमान परिवार थे। इससे एक स्त्री अपना घर छोड़े बिना दो रुपये रोजसे कुछ अधिक रकम कमा लेती थी। योजनाके दो महीनोंके कार्यकालमें १६०० रुपयेसे कुछ अधिककी रकम गरीबोंकी जेबमें गई । इसके सिवा, सहकारी समितिमें लगभग ९०० रुपयेकी शेयर-पूंजी भी जमा हो गई। एक महीनेके कामके बाद कुछ स्त्रियोंने अपने जीवनमें पहली ही बार २० और ३० रुपये बचा लिये। किन्तु हमारे मिशनकी दृष्टिसे सबसे मूल्यवान लाभ यह हुआ कि सहकारी समितिके सदस्योंमें भाईचारे और मेलजोलकी वृत्ति पैदा हो गई। जब तेल जलमार्गसे चांदपुर भेजना पड़ता था और रास्तेमें उसके लुट जानेका खतरा था तब हमारे गांवके एक बलवान आदमीने खुद ही अपनी नावमें तेल ले जानेका भार उठा लिया। वह शेखी मारता था: "हमारे तेलको कौन छू सकता है !" और सचमुच बसु मियांकी देखरेखमें जानेवाले तेलको छूनेकी हिम्मत किसीने नहीं की ।

प्रयोगकी संभावनाएं यहीं खतम नहीं हो गईं । नारियलकी डोरी और नारियलके छिलकेसे बने रस्सेकी नोआखालीमें सब जगह मांग थी, क्योंकि वहां झोंपड़ियां बनानेके सामानके रूपमें ये दोनों चीजें अनिवार्य थीं और ढाई रुपये सेर बिकती थीं। सतीश दासगुप्तने अनेक प्रयोग करके एक बहुत सादी प्रक्रिया ढूंढ निकाली, जिससे नारियलकी नरेलीसे तरह तरहकी सुन्दर और उपयोगी चीजें बनाई जा सकती थीं – हुक्के, शक्कर रखनेके बरतन, तश्तरियां और बटन वगैरा। नरेलीको ऊंचे दबाववाली भापके द्वारा तरह तरहके आकार लेने लायक नरम भी बनाया जा सकता था। नोआखालीमें जंगली अंजीरका सूखा पत्ता बहुत पाया जाता है। उससे रगड़ कर और तेज सान पर चढ़ा कर नरेलीको बहुत चमकदार बनाया जा सकता था। नरेलीसे बना तैयार माल चमक और सुन्दरतामें कछुएकी ढालके बने पदार्थोंकी बराबरी करता था। आगे चल कर गांधीजीके कहने पर मैंने लेडी माउन्टबेटनको काजिरखिलमें तैयार किया हुआ नारियलकी नरेलीका एक सुन्दर चायका प्याला भेंट किया था। उन्होंने मुझे बादमें बताया कि उस प्यालेका उनके व्यक्तिगत बहुमूल्य भंडारमें प्रमुख स्थान है।

*

जब चावलकी कमी अतिशय तीव्र हो गई तब नोआखालीमें शकरकन्द दो आने सेर और चावल चौदह आने सेर बिकता था। शकरकन्दका केलरी (गर्मी देनेवाला तत्त्व) मूल्य चावलका लगभग एक-तिहाई होता है। फिर भी चावलकी ४२ प्रतिशत कीमत पर उससे हमें इतनी केलरी मिल सकती थी।

हमने हिसाब लगा कर अकालका आहार-क्रम बना लिया। उसमें ५ औंस चावल, १ औंस पानी निकाली हुई और नमकका पुट दी हुई छूंछ और मक्खनका मिश्रण, १० औंस शकरकन्द और १२ औंस लौकी, खीरा या हरी तरकारियां होती थीं और सबको मिला कर खिचड़ी पका ली जाती थी। यह मिला-जुला खाद्य पदार्थ बड़ा स्वाशिष्ट और पौष्टिक होता था और इससे हमारा काम अच्छी तरह चलता था। नोआखालीमें पास-पड़ोसके कई ग्रामवासियोंके सम्मिलित भोजनका आयोजन करनेका बड़ा रिवाज था। हमारे अकालके आहार-क्रमको लोकप्रिय बनानेके लिए हमने यह नियम बना लिया था कि हम उन्हीं समारोहोंमें जायंगे, जहां हमारा बताया हुआ आहार परोसा जायगा। हमारा यह भी आग्रह था कि प्रत्येक आमंत्रित व्यक्ति अपने अपने हिस्सेका चावल, शकरकन्द और नारियलकी छुंछ तथा मक्खनका मिश्रण ले आये। साथ ही, तथाकथित सवर्ण लोगोंके साथ साथ अनुसूचित जातियोंको भी बुलाया जाता था। कोई भदभाव नहीं रखने दिया जाता था। पहले सम्मिलित भोजन बरबादी और फिजूलखर्चीका सूचक हुआ करता था। इस प्रणालीसे वह लोगोंकी शिक्षाका माध्यम बन गया।

हमारी स्वावलम्बन और आत्म-निर्भरताकी योजनाके अनुसार मेरे केन्द्रके सेवाक्षेत्रमें आनेवाले पांच गांवोंमें देवकपासके पूर्ण विकसित ६५० पेड़ और ३२० पौधे लगाये गये थे। उनका अनुमानित उत्पादन १९५० पौंड रुई था, जो ८७०० वर्गगज कपड़ेके बराबर होती थी। इसके अलावा, उन्होंने खानेके लिए ३५० मन कन्दमूल पैदा कर लिये। हमें कलकत्ता और पूनाके अपने बीजके कुछ परिचित व्यापारियोंसे तरकारियोंके बीजोंकी कुछ पेटियां भेंट-स्वरूप मुफ्त बांटनेके लिए मिल गई थीं। अपने कुछ केन्द्रोंमें हमने इन बीजोंसे पौदकी क्यारियां लगा लीं और लोगोंसे कह दिया कि हम उन्हें तरकारीके पौधे लगानेके लिए दे देंगे, यदि इस बीच निरीक्षणके लिए निश्चित दिन तक वे क्यारियां खोद कर तैयार कर लेंगे, उनमें खाद डाल देंगे और उनके आसपास बाड़ लगा लेंगे। पौधे लगानेका काम हमारी अपनी देखरेखमें होता था। इसके बाद हमने खुरपने-खोदने, निंदाई करने और कीड़े मारने वगैराकी क्रियाओंके लिए किसानोंका कामचलाऊ पंचांग बना दिया। हमने सब गांवोंमें आलस्य, गफलत या पौधोंकी अज्ञानपूर्ण सार-संभालको रोकनेके लिए क्यारियोंके निरीक्षणकी एक नियमित प्रणाली भी जारी कर दी। उस मौसममें हमारे परिश्रमका पुरस्कार हमें तरकारियोंकी विपुल फसलके रूपमें मिला । इससे हमें अन्न-संकटको पार करनेमें बड़ी मदद मिली।

नोआखालीके सरकारी अधिकारियोंने भी यह घोषणा कर दी थी कि बाढ़के कारण हुए नुकसानको देखते हुए इस जाड़ेमें तरकारीके बीज मुफ्त बांटे जायंगे। उनकी योजना सफल न होने पर कुछ जिला-अधिकारी हमारे पास आये और उन्होंने अपने लिए तरकारियोंके बीज और पौधे मांगे। हमने खुशीसे उन्हें दिये।

नोआखालीमें आम, फनस और केला अपने आप विपुल मात्रामें होता है । असलमें ऐसा मालूम होता है कि प्रकृति वहां पागल होकर अपनी समृद्धि लुटाती है। वहां ऐसी बेलें हैं जिनकी जड़ों और तने दोनोंमें आलू लगता है, फुटबॉल जितने बड़े खट्टे नींबू (बताबी लेबू) लगते हैं, जैतून (जलपाई), आमलकी और हरीतकीके जंगलके जंगल खड़े हो जाते हैं। ऊपर बताये हुए फल तो होते ही हैं। भविष्यमें अन्नकी कमीका सामना करनेके लिए हमने निश्चय किया कि हम फनसके बीजोंको – उन पर ऐसी प्रक्रिया करके जिससे वे सड़ें नहीं – जमा करनेकी व्यवस्था करेंगे। ये बीज बहुत पोषक होते हैं। आमकी गुठली जब सुखा कर पीस ली जाती है और बार-बार पानीमें धोकर उसका तीव्र अम्ल तत्त्व (टेनिक एसिड) दूर कर दिया जाता है तब उससे आटेका काम लिया जा सकता है। इसी तरह कच्चे केलेको सुखा कर और पीस कर आटा बनाया जा सकता है और पका केला तथा फनस और आमका गूदा भी धूपमें सुखा कर सुरक्षित रखा जा सकता है। बादमें सतीश दासगुप्तने एक बहुत ही सादी पद्धति निकाली, जिसे ग्रामवासी भी सीख सकते थे और मछली पालनेके पोखरोंमें मछलीका उत्पादन बढ़ानेमें उसका उपयोग कर सकते थे।

*

१२ जून, १९४७ को नारियलका तेल बनाना हमें अचानक स्थगित कर देना पड़ा, क्योंकि हमें मालूम हुआ कि जब तक हम विशेष अनुमति प्राप्त न कर लें तब तक रेलवे अधिकारी हमारे मालको ले जानेकी सुविधाएं नहीं देंगे । ऐसी अनुमति प्राप्त करें उसके पहले ही कोचीनका सस्ता खोपरेका तेल – जिसका आना कुछ समय तक रुक गया था – फिर बाजारमें खूब आने लगा। प्रतियोगिताके आधार पर हमारे प्रयोगको फिरसे जारी करनेकी सफलताका दारमदार इस बात पर था कि तेलके सिवा नारियलकी अन्य सारी चीजोंका भी आर्थिक दृष्टिसे पूरा उपयोग किया जाय। इसके लिए हमें कुछ मशीनोंकी जरूरत थी। ये मशीनें बनवानेमें समय लगता। तब तक गाड़ी चालू रखनेके लिए कुछ न कुछ करना जरूरी था। नोआखालीके कई भागोंमें 'शाती' नामका एक प्रकारका कन्द विपुल प्रमाणमें पैदा

होता है। कद्दूकश पर इसे छीला जाता है। फिर उसे पानीमें भिगोकर और बार-बार धोकर उसका कड़वा तत्त्व दूर कर दिया जाता है। उसके बाद छिलकोंको सुखा कर बारीक पीस लिया जाता है और कपड़ेसे छान लिया जाता है। इस प्रकार तैयार किया हुआ 'शाती' चूर्ण बंगालमें बीमारों और कमजोरोंके लिए बहुत अच्छा आहार माना जाता है और व्यापक क्षेत्रमें आसानीसे बिक जाता है। हमने केन्द्र पर दिये जानेवाले 'शाती' चूर्णके दाम रुपये सेरके हिसाबसे देनेकी घोषणा की। कलकत्तेके हमारे एक परिचित व्यापारीने मुनाफा लिये बिना हमारा सारा चूर्ण खरीद कर बेच देनेका वचन दिया था। हमने उस मौसमके लिए ५०० मन चूर्ण तैयार करनेका लक्ष्य निर्धारित किया था। कन्द इकट्ठा करने और लाने-ले जानेके लिए हमने अपने शिविरकी कई नावें ग्रामवासियोंको सौंप दी थीं।

इस मंजिल पर मुझे गांधीजीके बुलाने पर दिल्ली जाना पड़ा। इस कारण १० मन चूर्ण ही इकट्ठा किया जा सका। उससे उत्पादकोंको मजदूरीके अलावा ५७९ रुपयेकी रकम मिली।

७

मेरे केन्द्रके सेवाक्षेत्रमें बसे एक गांवके लोगोंने अपने विनष्ट मंदिरको फिरसे बनाने और उसमें प्रतिमाकी प्राण-प्रतिष्ठाका समारोह करनेका निश्चय किया था। उन्होंने राशनिंग अफसरके नाम एक पत्र मुझसे मांगा, जिससे उन्हें अपनी मूर्तिके लिए आसनका कपड़ा मिल सके। पहले तो यही बुरी बात थी कि उन्हें अपनी नग्नता ढंकनेके लिए राशनिंग प्रणाली पर अवलम्बित रहना पड़ता था और अब उनके मन्दिरके देवके लिए भी "राशन" पर निर्भर रहनेकी स्थिति आ गई ! यह बात असह्य थी। मैंने उनसे कहा कि जितना भी तकलीका सूत उन्होंने और उनके बच्चोंने काता है, उसे इकट्ठा कर लें। मुझे लगा कि उसका बुना हुआ कपड़ा कितना ही मोटा और असमान क्यों न हो, उनके भगवान राशनके कपड़ेकी अपेक्षा इस कपड़ेसे अधिक प्रसन्न होंगे। मेरे कहे अनुसार तकलीका सारा सूत जमा कर लिया गया और दोहरा करके उससे एक दो-सूती कपड़ेका टुकड़ा बुनवा लिया गया। इस ४ हाथ लम्बे और २६ इंच चौड़े कपड़ेको एक स्थानीय हरिजन जुलाहेने, जो संयोगवश स्वयं देवका भक्त था, तैयार किया।

इसके बाद उन्होंने उत्सवके प्रसादकी मिठाई बांटनेके लिए पैसे इकट्ठे करना चाहा। मैंने उनसे कहा कि भगवानकी कृपा पैसेसे नहीं खरीदी जाती | वह तो "खून, पसीना और आंसुओं" से प्राप्त होती है। आप अपने लिए रोज तेल बनाते हैं। क्या आप एक दिन अपने भगवानके लिए प्रेमपूर्ण परिश्रम नहीं

कर सकते ? उन्होंने यह परिश्रम करना मंजूर कर लिया। तदनुसार ढाई सौ नारियल खरीद कर उसी रोज शामको अलग अलग परिवारोंमें बांट दिये गये और पुरुष, स्त्रियां और बच्चे ऐसी खुशी और जोशके साथ काममें लग गये कि देखते ही बनता था। आधी रात तक अधिकांश घरोंमें चूल्हे जलते रहे। खर्च काठ कर उस तेलकी शुद्ध आय १६ रुपयेसे अधिक हुई। उसमें से मिठाईके लिए ४ रुपयेका गुड़ खरीद लिया गया। उत्पादनकी दूसरी चीजों अर्थात् नारियलकी मलाई और छूंछके स्वाशिष्ट संदेश बना कर संध्याके समारोहमें इतना प्रसाद बांटा गया कि हरएकने पेट भर कर खाया। फिर भी १२ रुपयेकी खालिस बचत हुई। यह दरिद्र-नारायणकी अपने भक्तोंके लिए भेंट थी!

मन्दिरको ग्रामीणोंने स्वयं अधिकतर अपने श्रमदानसे ही फिर बना लिया । कुर्सीकी मिट्टी पासके तालाबसे खोद ली गई। इससे तालाब गहरा और ज्यादा अच्छा हो गया। जिन चटाइयों पर भक्त-समुदाय बैठता था, उन्हें गांवकी एक निराश्रित विधवाने अपने ही अहातेमें उगे हुए बेंतसे बुन दिया। उत्सवके एक अंगके रूपमें ही गांववालोंने अपने तालाबसे जल-वनस्पति साफ कर दी और उसके टूटे हुए किनारोंकी मरम्मत करके पानीके किनारे तक ले जानेवाली सीढ़ियां ठीक कर दीं। उत्साह इतना अधिक था कि गांववाले रातको देर तक मेहनत करते रहे । उनमें कुछ मलेरिया-पीड़ित लोग भी थे। उत्सवके बाद जन-समूहको इस घटनाका महत्त्व समझाते हुए मैंने कहा: देखिये, आपके निर्जीव ठाकुरको आपके प्रेमपूर्ण परिश्रमने कैसे सजीव ईश्वर बना दिया है! वह आपकी रक्षा तभी करेगा जब आप उसके प्रति वफादार बने रहेंगे। ईश्वरने आपका त्याग नहीं किया था, जैसी कि आपमें से कुछ लोगोंने शिकायत की है। इसके विपरीत, आपने ही तुच्छ-सी पार्थिव सम्पत्ति और अपने अस्तित्वके लिए ईश्वरको बेच दिया था। आप लोगोंमें से कुछ यह भी कहते बताये जाते हैं कि ईश्वरका न्याय तो सो

गया। मैं कहता हूं कि अगर आप अपने दिलोंको टटोलें, तो आपको पता चलेगा कि ईश्वर, कड़ा न्यायाधीश, तो जागता ही रहा है, जब कि आपने समझ लिया कि वह सो गया है। उसको धोखा नहीं दिया जा सकता। उसने आपके पापोंको अपने अटल न्यायके तराजूमें तौल लिया और आपके साथ वही व्यवहार किया, जो आपने अपने अभागे भाइयोंके साथ किया था। आपने जिनको दबाया और अपनेसे अलग रखा, उनको दुबारा छातीसे लगा कर ही आप ईश्वरसे क्षमादान और दयाकी आशा रख सकते हैं। अभी तो आपने उसे खो दिया है। यदि आप आगेसे उसके प्रति वफादार रहने और फिर कभी अपने प्राण बचानेके लिए अपनी श्रद्धा और सम्मानको न बेचनेकी प्रतिज्ञा करें, तो ईश्वर आपके पास फिर आ

जायगा और आपके बीच रह कर फिर आपकी रक्षा करेगा। आपने रामनामकी छत्रछायामें रह कर साम्प्रदायिक उथल-पुथलके बादकी अराजकता और आतंकके अन्धकार-पूर्ण दिवस काट दिये। आज आपने जो कुछ किया उससे आपकी श्रद्धा मूर्तिमन्त हो गई है। आपके सामने एक खतरनाक भविष्य खड़ा है। संभव है कि भारतका विभाजन हो जाने पर पूर्व बंगालको सर्वसत्ताधारी बंगाल राज्यमें मिला दिया जाय अथवा वह पाकिस्तानमें चला जाय । दोनों ही सूरतोंमें आप भारतसे अलग हो जायंगे और आपकी यह स्थिति हो जायगी कि आप सदाके लिए अल्पसंख्यक कौम बन जायंगे और आपकी सुरक्षा और अस्तित्व पूरी तरह आपके भीतरी साधनों पर निर्भर रहेंगे। परंतु गांधीजीने हमें सिखाया है कि ईश्वरकी शरण लेकर एक व्यक्तिका अल्पमत भी बहुमतका रूप ले सकता है। हमारे आजके अनुभवने हमें बता दिया है कि यह काम कैसे किया जा सकता है:

> आज आपने ईश्वरकी जैसी सेवा की है वैसी सेवा करनेकी आप प्रतिज्ञा करें, तो आपका ईश्वर आपको केवल ऐसी श्रद्धासे ही परिपूर्ण नहीं कर देगा, जो सारे भयको भगा देगी, बल्कि अन्न-वस्त्र भी जुटा देगा और आपको कभी नंगा या भूखा नहीं रहना पड़ेगा।
>
> सबने दो मिनटका मौन रख कर यह प्रतिज्ञा ली।

दिसम्बर १९४७ में जब मैंने दिल्लीमें गांधीजीको जड़ ठाकुरजीके चेतन ईश्वर बन जानेकी कहानी सुनाई, तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। वहांसे आये हुए ताजे समाचारोंके अनुसार उस समय उस मन्दिरके सामने रोज ११ चरखे और २२ तकलियां चल रही थीं। पांचों गांवोंके कातनेवालोंके काते हुए सूतका कुल वजन एक मनसे अधिक हो गया था। प्रत्येक कातनेवालेको यह आशा थी कि एक महीनेमें उसके काते हुए सूतसे कपड़ेका कमसे कम एक टुकड़ा उसे मिल जायगा।

चौथा अध्याय : गांधीजी और नये वाइसरॉय

१

लॉर्ड वेवेलके बाद बर्माके लॉर्ड माउन्टबेटनको भारतका वाइसरॉय नियुक्त करना श्री एटलीका एक अत्यन्त प्रतिभासूचक कदम था। इस कार्यके लिए उनसे अधिक योग्य और कोई नहीं था। वे ब्रिटेनके राजवंशके एक सदस्य थे और उनकी युद्धकालीन सेवाओंको देखते हुए उनकी देशभक्ति पर कोई टीका या शंका नहीं कर सकता था। ये सब चीजें इस बातकी सबसे ज्यादा कारगर गारंटी थीं कि इंग्लैण्डकी मजदूर-सरकारने भारतमें ब्रिटिश हुकूमतका स्वेच्छासे अंत लानेका जो निर्णय किया था, उसके बारेमें कोई गलतबयानी नहीं हो सकती थी।

नये वाइसरॉयमें लगभग अलौकिक शक्ति थी। इसलिए वे भी गांधीजीकी तरह दिन-रात काम करनेके बावजूद हमेशा ताजे और मानसिक दृष्टिसे जागरूक रह सकते थे। 'मिशन विथ माउन्टबेटन' के लेखकने लॉर्ड माउन्टबेटनके नाश्तेका एक सजीव शब्दचित्र दिया है, जिसमें कहा गया है कि नाश्तेके समय आवश्यक पत्र लिखवानेका प्रयत्न, टोस्ट और चाय तीनों वाइसरॉयके मुखकी सेवाके लिए प्रतिस्पर्धा करते थे; और इस प्रतिस्पर्धामें सामान्यतः भोजनका दूसरा नम्बर ही होता था ! वे निश्चित और व्यवस्थित आदतोंवाले पुरुष थे। उन्हें तीक्षण तथा सर्वग्राही बुद्धिकत्ता और स्पष्ट, सतत तथा एकाग्र विचारकी अपार शक्ति वरदानमें मिली थी। इससे वे सीधे समस्याकी जड़ तक पहुंच जाते थे। अपनी तेजस्विता, काम करनेकी लगन और उत्साह और सूझबूझके कारण "वेल्सके राजकुमारके ये खुशमिजाज अनन्य साथी" १९२० के आसपासके वर्षोंमें "सैनिकोंके पूज्य वीर" [दि रीडर्स डाइजेस्ट, मार्च, १९४८] बन गये थे; और अन्तमें चर्चिलने इन्हीं गुणोंके कारण उन्हें दूसरे विश्वयुद्धमें दक्षिण-पूर्वी एशियाके प्रधान सेनापति-पद पर प्रतिष्ठित किया था। इन गुणोंके अलावा उनके नामके साथ मानसिक संतुलन, व्यक्तिगत आकर्षण और नैतिक उदात्तताके गुण भी सदाके लिए जुड़ गये हैं।

किन्तु कुछ बातोंमें लॉर्ड माउन्टबेटन और गांधीजीमें उल्लेखनीय विरोध था। माउन्टबेटन छह फुट दो इंच ऊंचे थे, कठोर थे भौर प्रसिद्धि, तड़क-भड़क, परेड, गणवेश वगैराके शौकीन थे और खेलोंमें सबसे आगे बढ़ जानेकी महत्त्वाकांक्षा रखनेवाले उत्साही खिलाड़ी थे । महात्माजीने, जहां तक मैं जानता हूं, एक ही बार खेलके मैदानमें कदम रखा था और वह अवसर शायद पूनाके आगाखान महलकी

नजरबन्दीके दिनोंमें आया था, जब उन्होंने साथी कैदियोंके लिए बैडमिंटन कोर्टका "उद्घाटन" किया था और पांचवीं या सातवीं कोशिशके बाद गेंदको गलत बाजूमें भेजनेमें सफल हुए थे !

दक्षिण-पूर्वी एशियाके प्रधान सेनापतिकी हैसियतसे माउन्टबेटनने युद्धकी व्यूह-रचना करनेकी एक प्रणाली बना ली थी। उसके अनुसार वे अपने कुछ चुने हुए साथियोंके साथ खुल कर विचार-विनिमय किया करते थे। उसी प्रणालीको वे भारतमें राजनीतिके क्षेत्रमें ले आये थे। प्रत्येक महत्त्वपूर्ण मुलाकातके बाद वे कुछ समय निकाल कर बातचीतके नोट्स लिखवा देते थे । उसके बाद उनकी दूसरी मुलाकात होती थी। इन नोट्सकी सूची तैयार होती थी, कई प्रतियां बनाई जाती थीं और उन्हें स्टाफके सदस्योंके पास भेजा जाता था, ताकि वे वाइसरॉयकी प्रत्येक गतिविधिकी जानकारी रख सकें । इसके विपरीत, गांधीजी अपने मंत्रीको – जो उनका बेटा, सहायक, रसोइया, जूतोंकी पालिश करनेवाला और हमाल सब कुछ था – महत्त्वपूर्ण राजनीतिक चर्चाके बीच किसी बीमार साथी या आश्रित व्यक्तिके किसी अंग पर निसर्गोपचारके लिए मिट्टीकी पट्टी रखने या कांग्रेस कार्यसमितिके सतत धूम्रपान करनेवाले किसी सदस्यके लिए कामचलाऊ राखदानीकी व्यवस्था करनेको भेज देते थे। इन बातोंको वे अपने राजनीतिक प्रयत्नमें दिये गये योगदानके रूपमें अधिक महत्त्व देते थे। एक (गांधीजी) अपने मिट्टीके झोंपड़ेमें, अपने आश्रमवासियोंके बीच घरका-सा वायुमण्डल अनुभव करते थे। दूसरे (माउन्टबेटन) को वाइसरॉय-भवनमें ही आनंद आता था, जहां ३४० कमरे थे, डेढ़ मील लम्बे भीतरी रास्ते थे, लाल वर्दीवाले नौकरों और सशस्त्र पहरेदारोंकी एक सेना थी और वाइसरीगल एस्टेट पर ७००० की आबादी थी।

यह अन्तर दोनोंकी कार्य-पद्धतियोंमें भी था। माउन्टबेटनकी प्रत्येक गतिविधि पहलेसे ब्योरेवार नियोजित होती थी, उसमें एक एक क्षणका हिसाब लगता था और बिलकुल नये ढंगकी विज्ञापन-कलासे वह सज्ज रहती थी। किसी भी महत्त्वपूर्ण समारोहमें जानेसे पहले वे अपने हिस्सेके कार्यका सावधानीसे पूर्णताकी हद तक अभ्यास करके देख लेते थे। उधर गांधीजीका इस सिद्धान्तमें अटल विश्वास था: "पहलेसे चिन्ता न करो कि तुम्हें क्या कहना है; समय पर जो सूझ जाय वही कहो ।" उनके तत्त्वज्ञानका सार हेनरी न्यूमैनके इस उद्गारमें आ जाता था: "मेरे लिए एक कदम काफी है।" वे कहा करते थे : "अगला कदम ईश्वर मुझे ठीक समय पर बता देगा, उससे एक क्षण भी पहले नहीं।"

वाइसरॉयके साथ चल रही बातचीतके दौरान कामसे भरपूर एक दिनका 'तैयारी' के रूपमें गांधीजीका कार्यक्रम प्रातः तीन बजेसे इस प्रकार था:

(१) अपने शान्ति-मिशनके सम्बन्धमें "करो या मरो" के कार्यक्रमके अनुसार नोआखालीके लोगोंके साथ अपना सम्बन्ध प्रतिदिन ताजा रखनेके लिए वे बंगाली लिपि लिखनेका नियमित अभ्यास करने बैठे; (२) मनुके प्रति अपने कर्तव्यके अंगके रूपमें उसे १० मिनट गीताका पाठ पढ़ाया; (३) बादशाह खानके साथ उनकी बीमारीकी चर्चा की और उनके लिए जड़ी-बूटीका उपचार बताया; (४) दैनिक कताई-यज्ञके रूपमें १९४ गज सूत काता; (५) अपने चार बरसके पोते गोपूके हावभावका आंखोंके इशारेसे तथा मुंहकी नकलसे जवाब दिया। वह उनके साप्ताहिक मौनके दिन अपने दादाके साथ "खेलने" आया था; (६) जो लोग यह चाहते थे कि गांधीजीकी शामकी प्रार्थना-सभामें कुरानकी आयतें न पढ़ी जायं, उत्तकी धर्मान्धताको शान्त करनेका प्रयत्न किया; और (७) एक महाराजाको, पं. नेहरूको और इंडोनेशियाके प्रधानमंत्री डॉक्टर जहरीरको बारी बारीसे समय और उचित सलाह दी; (८) एक हस्ताक्षर लेनेवालेकी तथा पंजाबसे आई हुई एक निराश्रित बहनकी दर्शनकी अभिलाषा पूरी की। गांधीजीकी नजरमें इन सब चीजोंका समान महत्त्व था। ये उनके दैनिक जीवनमें सत्य और अहिंसाके संपूर्ण पालनके लिए उनकी साधनाका अविभाज्य अंग थीं।

भारत आनेसे पहले माउन्टबेटनने सावधानी रख कर ब्रिटेनके विरोध-पक्षके नेताओंका सद्भाव प्राप्त कर लिया था। खास तौर पर जिनके समर्थनका आश्वासन उन्होंने पहले प्राप्त कर लिया था, उनमें चर्चिल भी थे। इसके अलावा, उन्होंने बुद्धिमत्तापूर्वक श्री एटलीसे मिल कर शुरूसे ही यह स्पष्ट करा लिया था कि भारतसे ब्रिटिश सत्ता हटा लेनेकी अवधि थोड़ीसे थोड़ी रखनी होगी। जब इस कार्यके लिए १९४८ का उत्तरार्ध प्रस्तावित किया गया तब उन्होंने सुझाया कि उत्तरार्धका अर्थ दिसम्बर १९४८ न होकर जून १९४८ होना चाहिये। अपनी नियुक्तिके उद्देश्यके बारेमें लेश-मात्र भी शंका न रहे, इसके लिए उन्होंने आग्रह किया कि उन्हें बहुत स्पष्ट आदेश दिया जाय । इस आदेशका मसौदा बनानेकी स्वतंत्रता उन्हें दी गई; और उसके मार्गदर्शक सिद्धान्त ये थे कि वे कैबिनेट-मिशनकी योजनाके अनुसार ब्रिटिश भारत और भारतीय देशी राज्योंके लिए "संभव हो तो ब्रिटिश राष्ट्र-मंडलके भीतर" एककेन्द्री (यूनिटरी) सरकार स्थापित करनेकी कोशिश करें । [एलन कैम्पबेल-जॉन्सन, 'मिशन विथ माउन्टबेटन', लंदन, १९५१, पृ. ३१] यदि १ अक्तूबर, १९४७ तक उन्हें ऐसा मालूम हो की "एककेन्द्री सरकारके आधार पर"

समझौता होनेकी संभावना नहीं है, तो वे ब्रिटिश सरकारको वे उपाय बतायें जो निश्चित तारीख पर सत्ताके हस्तांतरणके लिए किये जाने चाहिये। "ब्रिटिश राष्ट्र-मंडलके भीतर" शब्द उनके विशेष अनुरोध पर रखे गये थे और उनसे यह पता चलता है कि भारतमें बादमें वे किस दिशामें अपनी कूटनीति चलानेवाले थे।

दुर्भाग्यवश लॉर्ड वेवेलकी यह कमजोरी थी कि वे नौकरशाहीके कट्टरपंथी तत्त्वोंके ही चलाये चलते थे। इसका परिणाम उनके और भारतके लिए विनाशकारी सिद्ध हुआ। ब्रिटिश सरकारी अधिकारी हमेशा बहुत अनुदार रहे थे। उन्हें कभी आशा नहीं रही कि इंग्लैंडमें इतनी जल्दी मजदूर-सरकार सत्तारूढ़ हो जायगी और उनके पूज्य वीर चर्चिलको लड़ाईका अंत होने पर ब्रिटिश मतदाताओंकी तरफसे, चर्चिलका अपना अनुपम शब्द ही काममें लें तो, "जूता" मिलेगा। इन लोगोंकी हजार कोशिशोंके बावजूद जो महान राजनीतिक परिवर्तन हो गये, उनके अनुकूल ये अपने आपको नहीं बना सके। माउन्टबेटनने अपने साथ अपनी पसन्दके कुछ और ब्रिटिश अधिकारी भी ले आनेकी सावधानी रखी। इस मंडलीमें लॉर्ड इस्मे और सर एरिक मीएविले जैसे अनुभवी महारथी भी थे। इसमे दूसरे महायुद्धके दौरान चर्चिलके दाहिने हाथ थे और मीएविले किसी समय भूतपूर्व वाइसरॉय लॉर्ड विलिंगडनके निजी सचिव थे, जब इस्मे उनके सैनिक सचिवका काम करते थे। भारतके ब्रिटिश कर्मचारियोंका सातत्य और हार्दिक सहयोग बनाये रखनेके लिए उन्होंने लॉर्ड वेवेलके निजी सचिव जॉर्ज एबेलको अपने पद पर बना रहने दिया। विज्ञापनके कामको भी उन्होंने भाग्यके भरोसे नहीं छोड़ा। वाइसरॉयके साधारण कर्मचारी-मंडलके अलावा वे अपने साथ एलन कैम्पबेल-जॉन्सनको अपना प्रेस-अधिकारी बना कर ले आये थे। जॉन्सन पहले उनके युद्ध-सम्बन्धी डायरियोंके लेखक और रक्षक रह चुके थे; और बादमें उन्होंने 'मिशन विथ माउन्टबेटन' नामक पुस्तक लिखी। अंतमें लॉर्ड माउन्टबेटनकी व्यक्तिगत कूटनीतिके शस्त्रागारका व्यूह-रचनाकी दृष्टिसे अतिशय महत्त्वपूर्ण "गुप्त शस्त्र" थीं लेडी माउन्टबेटन। वे अपने आपमें एक वीरांगना और चोटीकी समाजसेविका थीं। उन्होंने अपने अचूक कौशल, स्त्री-सुलभ हार्दिक सहानुभूति और सूक्ष्म विवेकके कारण उस गुणको पूरा कर दिया, जिसकी उनके साहसी पतिको सबसे ज्यादा जरूरत थी। माउन्टबेटनके कठिन कार्यकालमें अनेक अवसरों पर इस महिलाने देवदूतकी तरह उनकी रक्षा की।

२

२२ मार्च, १९४७ को भारत पहुंचते ही लॉर्ड माउन्टबेटनने पहला काम यह किया कि जिन्ना और गांधीजीको दो पत्र लिखकर उन्हें मिलने बुलाया। जब वाइसरॉयका निमंत्रण गांधीजीके पास पहूंचा, तब वे बिहारके पटना जिलेमें उपद्रव-पीड़ित क्षेत्रोंका दौरा कर रहे थे। दूसरे दिन उन्होंने उत्तर दिया :

> इस समय बिहारसे निकलनेके बारेमें आपने मेरी कठिनाईका सही अन्दाज लगाया है। लेकिन मैं आपके ममतापूर्ण निमंत्रणको टालनेका साहस नहीं कर सकता। अभी तो मैं बिहारके एक अशान्त प्रदेशके लिए रवाना हो रहा हूं। इसलिए यदि मैं दिल्लीके लिए रवाना होनेकी ठीक तारीख नहीं बता सकूं, तो मुझे क्षमा करें। मैं बिहारके इस तीसरे दौरेसे २८ तारीखको लौटूंगा। इसलिए ता. २८ के बाद मैं जल्दीसे जल्दी यहांसे निकलनेकी व्यवस्था करूंगा। [गांधीजीका पत्र लॉर्ड माउन्टबेटनको, २६ मार्च, १९४७]

गांधीजी ३० मार्चको पटनासे दिल्लीके लिए रवाना हुए। उन्होंने तीसरे दर्जेमें यह यात्रा की। लॉर्ड माउन्टबेटनने उन्हें लानेके लिए अपना निजी यॉर्क विमान भेजना चाहा था, परन्तु गांधीजीने उनका प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। इसी प्रकार उन्होंने विशेष रेलगाड़ीका सुझाव भी अस्वीकार कर दिया। परन्तु उनके दलकी एक महिलाको सनक सवार हुई। उसने सदाकी भांति एक डिब्बेके बजाय मंडलीके लिए दो डिब्बे सुरक्षित करा लिये । इसके लिए उसे शीघ्र ही आंसू बहाने पड़े । अगले स्टेशन पर स्टेशन-मास्टरको बुलाया गया । महात्माजीने उसके सामने खेद प्रगट किया कि उनके लिए दूसरे मुसाफिरोंको अत्यावश्यक जगहसे वंचित रखा गया। बेचारे स्टेशन-मास्टरने कमी पूरी करनेके लिए दूसरा डिब्बा जोड़ देनेका प्रस्ताव रखा। परन्तु उसका तो सवाल ही नहीं था। अतिरिक्त डिब्बा खाली कर दिया गया और महात्माजीके अपने डिब्बेमें भी बैठनेवालोंकी भीड़ हो गई !

गांधीजीके साथ मंत्रीका काम कर सके ऐसा कोई नहीं था। उनके कार्यमें सहायता करनेवाले सब लोग या तो नोआखालीमें या बिहारमें छोड़ दिये गये थे। इसलिए अपने मंत्रीका अधिकांश कार्य वे स्वयं ही देखते थे । एक निष्ठावान साथीने अपने बहरेपनके इलाजके लिए अमेरिका जानेकी अनुमति गांधीजीसे मांगी थी। उसे महात्माजीके अपने ही हस्ताक्षरोंमें रेलसे लिखा हुआ उत्तर मिला : “तुम अपने ऑपरेशनके लिए अमेरिका जानेकी बात कैसे सोच सकते हो, जब कि भारतमें तुम्हारे जैसे असंख्य

लोग वहां जानेकी बात नहीं सोच सकते? जो कुछ उपचार तुम्हें भारतमें मिल सकता है, उससे तुम्हें सन्तोष करना चाहिये और रामनामकी सहायता लेनी चाहिये ।"

गांधीजीको रेलसे उतारनेके लिए दिल्लीके पास एक छोटेसे स्टेशन पर व्यवस्था की गई थी। भंगीबस्तीके अपने निवास-स्थानकी ओर जाते हुए उन्होंने मोटरसे उतरकर अपना सुबहका घूमना पूरा कर लिया। घूमना वे कभी नहीं छोड़ते थे। उनकी अपार शारीरिक और मानसिक स्फूर्तिके सदा बने रहनेका यही रहस्य था।

उसी दिन अर्थात् ३१ मार्च, १९४७ को तीसरे पहर तीन बजे वाइसरॉयसे गांधीजीकी पहली भेंट हुई। उसमें राजनीतिकी बहुत थोड़ी चर्चा हुई। वाइसरॉय गांधीजीके प्रारम्भिक जीवन, उनकी शिक्षा, उनके इंग्लैंड-निवास और दक्षिण अफ्रीका तथा भारतमें उनके अहिंसक संग्रामोंके सारे हाल जानना चाहते थे। उधर गांधीजी भी वाइसरॉयके संपूर्ण व्यक्तित्वका परिचय पानेके लिए उतने ही उत्सुक थे। शायद दोनोंको इस बातकी मौन प्रतीति हो गई थी कि भारत और ब्रिटेन-सम्बन्धी प्रश्नके शान्तिपूर्ण निबटारेका यह एक तरहसे अन्तिम अवसर है। गांधीजी वाइसरॉयकी सचाई, सज्जनता और उदात्त चरित्रसे बहुत प्रभावित होकर लौटे।

दूसरे दिन गांधीजी सदाकी भांति ३ बजे प्रातःकाल उठ बैठे, यद्यपि पिछली रात वे बहुत देरसे सोये थे। ५ बजे राजकुमारी अमृतकौर उनसे मिलने आईं। उनके बाद साढ़े छह बजे मौलाना आजाद आ गये। इस कारण सुबहके घूमने और मालिशमें विलम्ब हो गया। इसकी कमी मालिशका समय घटा कर पूरी की गई। इसी समय वे आराम करते और एक झपकी लेते थे। परन्तु उस समय पंडित नेहरू आ गये। मालिशकी मेजके पास कुर्सी लगा दी गई और मुलाकात और मालिश साथ साथ होती रही। मालिश पूरी होने पर गांधीजी नहाने ही वाले थे कि इतनेमें राजाजी आ गये । महात्माजी स्नानके टबमें लेटे रहे और दोनोंकी बातचीत चलती रही। इसी बीच समय बचानेके लिए मनु गांधी उनकी हजामत बनाती रही। राजाजीसे कुछ विनोद किये बिता नहीं रह गया: "तो तुम अपने प्रसिद्ध दादाका अवैतनिक नाई बन गई हो!" इस थोड़ेसे विषयान्तरसे प्रकृतिको मौका मिल गया और महात्माजीने स्नानके टबमें लेटे लेटे कुछ मिनट अच्छी नींद ले ली ! जब वे स्नानागारसे बाहर निकले तब डॉ. राजेन्द्रप्रसाद उनसे

मिलनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे। दोनोंकी मुलाकात नाश्तेके समय हुई । नाश्ता पूरा हुआ ही था कि ९ बजे सरदार पटेल गांधीजीको वाइसरॉयकी मुलाकातके लिए लेने आ पहूंचे ।

इसी पृष्ठभूमिमें वाइसरॉयके बागमें बनी अटारी पर खुलेमें दोनोंकी मुलाकात हुई। वसन्त ऋतुका प्रात:कालीन सुहावना, ठंडा और स्फूर्तिप्रद समय था। हल्के मोती-जैसे धुंधमें सूर्य मंद मंद चमक रहा था। मुगल गार्डनकी फूलोंकी क्यारियोंमें रंग-बिरंगे फूल खिल रहे थे।

मुलाकातके बीचमें ही मनु तथा गांधीजीके एक मंत्री ब्रजकृष्ण चांदीवाला महात्माजीका दोपहरका खाना ले आये।

परिचय होनेके बाद वाइसरॉयने मनुसे कहा: "तुम बड़ी भाग्यवान लड़की हो। मेरी लड़की कहती है कि मि. गांधीके साथ तुम्हारे फोटो देखकर उसे ईर्ष्या होती है। मैं उसे तुम्हारी प्रार्थना-सभामें भेजूंगा।"

जब महात्माजी खाना खा रहे थे और वाइसरॉय चाय पी रहे थे तब एक अंगरक्षक अधिकारीने दोनोंका एकसाथ फोटो ले लिया।

गांधीजीने वाइसरॉयसे पूछा : "क्या इस बीच मनु बागमें घूम सकती है, ताकि हम बिना बाधाके अपनी बातचीत जारी रख सकें ?"

वाइसरॉयने उत्तर दिया: "जरूर !" फिर मनुको संबोधित करते हुए उन्होंने कहा: "यह सब तुम्हारा ही है; हम तो केवल ट्रस्टी हैं। हम इसे तुम्हारे हाथोंमें सौंपने आये हैं।"

गांधीजीने हंसते हुए कहा: "कोई हथियार न छिपा रखे हों, इसकी जांचके लिए आप इसकी तलाशी ले सकते हैं।"

वाइसरॉयने मुस्करा कर उत्तर दिया: "मुझे पूरा विश्वास है कि आपकी शिष्याके लिए हथियारकी जरूरत नहीं हो सकती।"

बातचीत उसी स्थानसे फिर शुरू की गयी जहां पहले दिन वह छोड़ी गयी थी। वाइसरॉयने गांधीजीसे कहा: "ब्रिटिश नीति सदा यह रही है कि ताकतके सामने कभी न झुका जाय; परन्तु आपकी अहिंसा जीत गई। हमने निर्णय कर लिया है कि भारतके अहिंसक संग्रामके परिणाम-स्वरूप हम भारत

छोड़ कर चले जायं।" अन्तमें जब गांधीजीसे भारतके गतिरोधका अपना हल मांगा गया, तो गांधीजीने उसे पेश किया। उससे वाइसरॉयको आश्चर्य हुआ ।

गांधीजीने वही बात दोहराई जो वे पहले कई बार कह चुके थे। उन्होंने कहा कि जिन्ना या मुस्लिम लीग सारे हिन्दुस्तानको पाकिस्तान बना लें तो भी मुझे उसकी परवाह नहीं, बशर्ते कि यह काम बुद्धिको अपील करके किया जाय, न कि हिंसाकी धमकी देकर । पहले मेरी यह राय थी कि यह काम अंग्रेजोंके भारतसे चले जानेके बाद ही अच्छी तरह किया जा सकता है, और सिद्धान्त-रूपमें आज भी मेरी यही राय है, परन्तु मेरे वर्तमान प्रस्तावका केन्द्रबिन्दु यह है कि मैं माउन्टबेटनकी – वाइसरॉयके रूपमें नहीं परन्तु मनुष्यके रूपमें – मध्यस्थतामें इस बातके लिए तैयार हूं कि जिन्नासे केन्द्रमें अपनी पसन्दकी सरकार बनानेके लिए और सत्ताके हस्तांतरणसे पहले भी स्वीकृतिके लिए उनकी पाकिस्तानकी योजना प्रस्तुत करनेके लिए कहा जाय । कांग्रेस जिन्ना सरकारका पूरे दिलसे समर्थन करेगी। साथ ही, चूंकि अब मुस्लिम लीगकी सरकार हो जायगी, इसलिए उसके पास संगठित अराजकताके वे आन्दोलन – जो उसने कुछ प्रान्तोंमें छेड़ रखे हैं – जारी रखनेके लिए कोई बहाना नहीं रहेगा। ये आन्दोलन उसे बंद कर देने होंगे। इसके अलावा, चूंकि वाइसरॉयने यह घोषणा कर दी है कि वे केवल न्याय करने पर तुले हुए हैं और **ताकतके सामने जरा भी झुका नहीं जायगा**, इसलिए यदि लीग इस प्रस्तावको स्वीकार न करे तो यही प्रस्ताव आवश्यक परिवर्तनोंके साथ कांग्रेसके सामने रखा जाना चाहिये । दोनों पक्षोंको प्रसन्न रखनेका प्रयत्न करनेकी पुरानी नीति छोड़नी होगी ।

वाइसरॉय यह मार्ग ग्रहण करनेमें असमर्थ थे। उनकी स्वाभाविक पसन्दगी उन्हें मिले हुए आदेशकी शर्तोंके अनुसार ऐसे हलके पक्षमें थी "जिससे इस प्रकारका सद्भाव बना रहे कि भारतीय दल राष्ट्र-मंडलके भीतर रहना चाहें ।" अपने मूल रूपमें यह एक प्रशंसनीय और योग्य भावना थी। परन्तु इतिहासकी एक विचित्र विडम्बनाने उसमें एक दुःखद गर्भितार्थ भर दिया था। जिन्ना किसी ऐसी योजनाको फूठी आंखसे भी देखनेको तैयार नहीं थे, जिसमें भारतको अप्रत्यक्ष रूपमें एक इकाई मनवानेकी गन्ध आती हो; और ब्रिटिश कर्मचारियोंमें यह "साधारण राजनीतिक मान्यता" थी कि सत्ता हस्तांतरित होने पर "पाकिस्तान ब्रिटिश साम्राज्यवादका अन्तिम मोर्चा बनेगा" और "कांग्रेसकी ब्रिटिश-विरोधी भावना तेजीसे अपना प्रभुत्व जमा लेगी।" [एलन कैम्पबेल-जॉन्सन, "मिशन विथ माउन्टबेटन', लंदन, १९५१, पृ. १२९] कांग्रेसकी ब्रिटिश-विरोधी भावनाकी बात जल्दी ही एक गलत पूर्वाग्रह सिद्ध हो

गई और वाइसरॉयके कमसे कम एक ब्रिटिश सलाहकारने अपने एक भारतीय साथीके समक्ष यह बात स्वीकार की, जब उन्होंने स्वाधीनता-दिवस पर वाइसरॉय-भवनके झरोखेसे देखा कि विशाल भारतीय जन-समूहने अपने प्रथम गवर्नर-जनरल लॉर्ड माउन्टबेटनका प्रचंड जयघोषसे जो स्वागत किया उससे क्षण भरके लिए भारतीय नेता पृष्ठभूमिमें चले गये। परन्तु कुछ समयके लिए तो उनके चिरपोषित प्रिय पूर्वाग्रहकी ही जीत हुई और उन्होंने अपना सारा जोर गांधीजीकी योजनाके विरुद्ध लगा दिया। गृह-युद्धके दावानलके खतरेके अलावा, इस योजनाके फलस्वरूप उन्हें मजबूर होकर कांग्रेस और लीगके बीच चुनाव करना पड़ता और लॉर्ड मोलके शब्दोंमें कहें तो राष्ट्र-मंडलके थैलेमें से एक न एक "पैकेट" को अलग कर देना पड़ता। लॉर्ड माउन्टबेटनको लगा कि वे शंकास्पद बातके लिए व्यावहारिक बातको खतरेमें नहीं डाल सकते थे, चाहे पहला हल आदर्श ही क्यों न दिखाई देता हो। और इसलिए वे सब एक ऐसी गहरी करुण दुर्घटनामें फंस गये, जिसने संपूर्ण परिस्थितिको अपनी पकड़में ले लिया और जिसमें ब्रिटिश सरकार अपने ही घोषित इरादोंको विफल बनानेके लिए जाने-अनजाने सहयोग दे रही थी। ग्रीक दुःखान्त नाटकके पात्रोंकी तरह वे अपने पूर्वजोंके पापोंके शिकार हो गये, जिनके परिणामोंसे बचनेका कोई मार्ग नहीं था। गांधीजीने वाइसरॉयसे यह बात कही, जो उन्हें क्रूर लगी होगी, "फूट डाल कर राज्य करने" की ब्रिटिश नीतिने ऐसी स्थिति पैदा कर दी है, जिसमें ब्रिटिश शासन चालू रहनेका – अब अंग्रेजोंने समझ लिया है कि यह बिलकुल संभव नहीं है – एकमात्र विकल्प यह है कि अंग्रेज "भारत छोड़ो" की मांगकी यथार्थता स्वीकार करके भारतको भाग्यके भरोसे छोड़कर बिना शर्त यहांसे चले जायं । जिस "साम्प्रदायिक त्रिकोण" के निर्माणमें अंग्रेजोंने स्वयं मदद की, उसमें शांति-स्थापकका पार्ट अदा करनेका काम उनका नहीं है।

३

गांधीजीने वाइसरॉयके सामने जो योजना रखी, उसकी रूपरेखा यह है:

१. श्री जिन्नाको मंत्रि-मंडल रचनेका विकल्प दिया जाय।

२. मंत्रि-मंडलका चुनाव पूरी तरह श्री जिन्नाके हाथोंमें छोड़ दिया जाय। उसके सदस्य सब मुसलमान हों या गैर-मुस्लिम हों अथवा भारतीय जनताके सब वर्गों और सब धर्मोंके प्रतिनिधि हों।

३. श्री जिन्ना यदि इस प्रस्तावको मान लें, तो कांग्रेस उदारता और सचाईके साथ तब तक सहयोग देनेका आश्वासन देगी, जब तक कि श्री जिन्नाके मंत्रि-मंडलके सारे कार्य समग्र भारतीय जनताके हितमें होंगे ।

४. कौनसी बात सारे भारतके हितमें है या नहीं है, इसके एकमात्र निर्णायक लॉर्ड माउन्टबेटन अपनी निजी हैसियतमें होंगे।

५. श्री जिन्ना लीगकी ओरसे या उनके बनाये हुए मंत्रि-मंडलमें जिन दलोंका प्रतिनिधित्व होगा उनकी ओरसे यह विश्वास दिलायेंगे कि जहां तक उनका सम्बन्ध है, वे सारे भारतमें शान्तिकी रक्षाका पूरा प्रयत्न करेंगे।

६. नेशनल गार्डस या और किसी किस्मकी खानगी सेना नहीं होगी ।

७. इस योजनाकी चारदीवारीके भीतर श्री जिन्ना सत्ता हस्तांतरित होनेसे पहले भी पाकिस्तानकी योजना स्वीकृतिके लिए पेश करनेको पूर्ण स्वतन्त्र रहेंगे, बशर्ते वे अपने अनुयायियोंकी बुद्धिको अपील करनेमें सफल हों न कि शस्त्रबलको – वह शस्त्रबल जिसका वे इस हेतुके लिए सदा निषेध करते हैं। इस प्रकार इस मामलेमें किसी प्रान्त या उसके किसी भाग पर कोई जबरदस्ती नहीं होगी।

८. केन्द्रीय धारासभामें कांग्रेसका निर्णायक बहुमत है। परन्तु कांग्रेस केवल लीगका कोई प्रस्ताव होनेके कारण ही अपने बहुमतका लीगके खिलाफ उपयोग नहीं करेगी, बल्कि लीगी सरकार द्वारा पेश किये हुए प्रत्येक प्रस्तावका हृदयसे समर्थन करेगी, बशर्ते कि वह सारे भारतके हितमें हो। वह हितमें है या नहीं, इसका निर्णय व्यक्तिके नाते, न कि ब्रिटिश सम्राट्के प्रतिनिधिकी हैसियतसे, लॉर्ड माउन्टबेटन करेंगे।

९. यदि श्री जिन्ना इस प्रस्तावको नामंजूर कर देते हैं, तो यही प्रस्ताव उचित परिवर्तनोंके साथ कांग्रेसके सामने रखा जाय।

वाइसरॉयको यह योजना "आकर्षक" प्रतीत हुई और उन्होंने सुझाया कि गांधीजी इसकी चर्चा उनके प्रधान अधिकारी लॉर्ड इस्मेसे कर लें, ताकि इसमे उसे उपयुक्त स्वरूपमें रख दें। परन्तु जहां

गांधीजीने इसका अर्थ यह समझा कि वाइसरॉय इस योजनाको एक विधिवत् समझौतेके रूपमें लेखबद्ध कराना चाहते हैं, वहां मालूम होता है कि वाइसरॉय और उनके सलाहकार इस बीच किसी और ही निर्णय पर पहूंचे। वाइसरॉयको लगा कि यह जाने बिना ही कि इस योजनाके और क्या विकल्प हैं और दूसरे दलोंके इसके बारेमें क्या विचार हैं, गांधीजीकी योजनाकी लगभग हिमायत करनेके लिए प्रेरित हो जानेमें उन्होंने जरूरतसे ज्यादा जल्दी दिखाई है।

५ अप्रैल, १९४७ को इस योजना पर वाइसरॉयके कमचारी-मंडलमें चर्चा हुई और यह कहा गया कि "यह तो पुराना ही पतंग बिना किसी दुराव-छिपावके उड़ा दिया गया है।" [वही, पृ. ५५] सबकी राय यह हुई कि "माउन्टबेटनको महात्माके साथ संधिवार्तामें न फंस कर केवल उनका परामर्श सुनना चाहिये।" [वही]

१९३१ का गांधी-अर्विन समझौता हुआ तभीसे नई दिल्लीके ब्रिटिश अधिकारी समझते थे कि महात्माके साथ समझौता करके लॉर्ड अर्विनने पहले दर्जेकी राजनीतिक भूल की है और वैसी भूल फिर कभी नहीं होनी चाहिये । ऐसी किसी योजनाके प्रति सरदारका विरोध सबको मालूम था और वाइसरॉयके सलाहकारोंको विश्वास था कि सरदार अपनी बात पर डटे रहेंगे । परन्तु अधिकारियोंको घबराहटमें डालनेवाली यह भीति थी कि शायद पंडित नेहरू महात्माके असरमें आ जायं, यदि उन पर यह छाप बनी रही कि वाइसरॉय महात्माकी योजनाके पक्षमें हैं। पंडित नेहरूके नाम एक पत्रमें गांधीजीने "चारों ओरके उस वायुमंडलका उल्लेख किया, जो भारतीय तत्त्वोंने खड़ा किया है" और जो वाइसरॉय पर और "हममें से किसी पर भी हावी हो सकता है।" [गांधीजीका पत्र पं. नेहरूको, ७ जून, १९४७] ये मित्र ब्रिटिश अधिकारियोंको गैर-जिम्मेदारीभरी सलाह देने, "अफवाहें" फैलाने और भारतीय नेताओंके बारेमें, उनकी व्यक्तिगत कमजोरियोंके बारेमें तथा उनकी आंतरिक गुट-बंदीके बारेमें "गुप्त जानकारी" देनेके लिए तत्पर रहते थे। इस सबके कारण ब्रिटिश अधिकारियोंके मनमें अथवा वाइसरॉयके मनमें भारतीयोंके चरित्रके बारेमें बहुत आदर-भाव तो पैदा नहीं ही हुआ होगा। इनमें से कुछ लोगोंने बादमें भारतीय नेताओंके सामने ऐसे प्रस्ताव रखनेका श्रेय भी लिया, जिन्हें वे पहले देश-विरोधी बताकर उनकी निन्दा कर चुके थे। लॉर्ड माउन्टबेटनके कहने पर ५ अप्रैलको तीसरे पहर इस प्रश्न पर वाइसरॉयके कर्मचारी-मंडलमें फिर चर्चा हुई। दिनके अंतमें जो निर्णय हुआ वह यह था कि "**गांधी कांग्रेस पर बहुत असर डालने लगें** उससे पहले नेहरूके सामने यह स्पष्ट कर देना अत्यावश्यक है कि माउन्टबेटनने गांधी-

योजनाको स्वीकार नहीं किया है और उसकी सावधानीसे जांच करनेकी जरूरत होगी ।" [एलन कैम्पबेल-जॉन्सन, 'मिशन विथ माउन्टबेटन'; लंदन, १९५१, पृ. ५७] (मोटे टाइप मैंने किये हैं।) तदनुसार वाइसरॉयके पुनर्विचारके बाद निर्धारित मतसे पंडित नेहरूको सुसज्ज कर दिया गया। जब वे उस दिन लॉर्ड इस्मेके एक नोटके साथ गांधीजीसे मिले, तो उनके पास "गांधीजीकी योजना पर कमसे कम एक भारी आपत्ति" जरूर थी। गांधीजी इससे हतोत्साह नहीं हुए। चूंकि अभी तक उन पर यही छाप थी कि वाइसरॉय पूरी तरह उनके साथ हैं, इसलिए उन्होंने वाइसरॉयको आशाके साथ लिखा कि हम दोनोंका यदि एक विचार हो, तो पंडित नेहरूकी कठिनाई दूर की जा सकती है। उत्तरमें गांधीजीको सूचित किया गया कि वाइसरॉय अपनी इसी मूल नीति पर चलना चाहते हैं कि कोई मार्ग अपनानेसे पहले उन्हें इस समस्याके बारेमें अधिकसे अधिक जानकारी प्राप्त करनी चाहिये। इस प्रकार जिस मित्रताका इतना सुखद श्रीगणेश हुआ था, उसे शुरूमें ही गहरा धक्का लग गया।

गांधीजीका पत्र लॉर्ड इस्मेको,

५ अप्रैल, १९४७

पंडित नेहरूने मुझे वह चीज दी, जिसे आपने एक योजनाकी रूपरेखा बताया है। मैंने जिसे पढ़ा वह तो सिर्फ उन मुद्दोंकी नकल है, जो मैंने जल्दीमें लिखवाये थे । परन्तु मैंने तो वाइसरॉय महोदयकी बातसे यह समझा था कि जो मुद्दे मैंने लिखवाये थे, उनके अनुसार आप समझौतेका एक मसौदा तैयार करेंगे। . . .

लॉर्ड इस्मेका पत्र गांधीजीको,

६ अप्रैल, १९४७

मेरा खयाल है कि मैंने जो छोटासा नोट पिछले शुक्रवारको तैयार किया था, उसके स्वरूपके बारेमें कुछ गलतफहमी हुई है। मैंने तो यह समझा था कि लॉर्ड माउन्टबेटनने . . . आपसे पूछा था कि अपनी योजनाके बारेमें मुझसे बातचीत करनेके लिए क्या थोड़ा और समय निकालनेकी कृपा आप करेंगे, ताकि मैं एक और छोटासा नोट तैयार कर सकूं और उसमें योजनाके मुख्य पहलुओंका सामान्य सार दे दूं। उनका यह इरादा नहीं था . . . कि मुझे कोई

विधिवत् या विस्तृत योजना तैयार करनेकी कोशिश करनी चाहिये। . . . वे इसका समर्थन करते हैं कि उनकी इच्छाओंका मैंने ठीक अर्थ समझा है।

गांधीजीका पत्र लॉर्ड इस्मेको,

६ अप्रैल, १९४७

इस विचारने ही कि लॉर्ड माउन्टबेटनके और आपके साथ मित्रता होते ही कोई गलतफहमी हो सकती है, मेरे मनमें इस विषयमें गंभीर शंका भर दी है कि जो भार मैंने अपने कमजोर कन्धों पर ले लिया है, उसे वहन करनेका सामर्थ्य मुझमें है या नहीं। . . . मैं इतना ही कह सकता हूं कि यदि मैं बहुत सादी बातोंको भी गलत समझ लेता हूं, तो मेरे समझने या ध्यान देनेकी शक्तिमें जरूर कोई खामी होगी । मैं इस प्रश्न पर हमारी बातचीत उद्दत करना नहीं चाहता, परन्तु एक बातका उल्लेख करना चाहता हूं; वह यह कि वाइसरॉय महोदयने मेनन (रिफॉर्म्स कमिश्नर वी. पी. मेनन) का आपके सामने जिक्र किया था और कहा था कि उनसे मिल कर आपको कोई चीज तैयार करनी चाहिये और मैं आपको वे मुद्दे दे दूं जिनके आधार पर आप मसौदा तैयार करेंगे। . . .

यह लिखनेके बाद बादशाह खान मेरे कमरेमें आ गये और मैं देखता हूं कि लॉर्ड माउन्टबेटनके साथ हुई बातचीतका जो वर्णन मैंने किया है उसका वे समर्थन करते हैं और यह भी कहते हैं कि जब हम आपके ऑफिसमें गये तब मैंने आपसे कहा कि मुझे तो आपको वे मुद्दे ही देने थे, जो मुझे जल्दीमें सूझे थे, ताकि आप और आपके मसौदा बनानेवाले लोग समझौतेका मसौदा तैयार कर सकें।

लॉर्ड माउन्टबेटनका पत्र गांधीजीको,

७ अप्रैल, १९४७

इस्मेने मुझे उनके नाम लिखा आपका ६ अप्रैलवाला पत्र दिखाया है और हम दोनोंको यह सोच कर बड़ी अशान्ति हुई है कि हमारा कोई कार्य या कोई दोष आप जो बड़ा भार अपने कंधों पर वहन कर रहे हैं उसे किसी तरह बढ़ाये । इसलिए मैं आपको यह व्यक्तिगत स्पष्टीकरण भेजना ठीक समझता हूं।

पिछले शुक्रवारको तीसरे पहर जब हम जुदा हो रहे थे तब मैंने कहा था कि आपकी योजनामें मेरे लिए कई आकर्षण हैं और . . . मैंने इस्मेसे कहा कि वे उसकी खास खास बातोंका एक नोट तैयार कर लें और मैंने उन्हें रिफॉर्म्स कमिश्नरसे गुप्त रूपमें बात कर लेनेका अधिकार दिया । मुझे बहुत अफसोस है कि मेरे इस कथनसे आपका यह खयाल हो गया कि मैं आपकी योजनाको विधिवत् समझौतेकी शकल देना चाहता था।

हमने जिन अनेक वार्तालापोंका आनन्द लिया है उनके दौरान मैंने आपको समझाया है कि मेरा लक्ष्य उस समय तक पूरी तरह खुला दिमाग रखनेका रहा है और है, जब तक कि सब दलोंके बीच सहमति करानेके उद्देश्यसे मैं महत्त्वपूर्ण भारतीय राजनीतिक नेताओंसे चर्चा करनेका लाभ प्राप्त न कर लूं, ताकि देशमें फिरसे शान्ति स्थापित हो जाय और सत्ता हस्तांतरित करनेके लिए कोई सर्वसम्मत आधार प्राप्त किया जा सके। जब ये प्रारंभिक वार्ताएं पूरी हो जायंगी तब मुझे निश्चय करना होगा कि मैं सम्राट्की सरकारको क्या सिफारिश करूं; और ऐसा करनेसे पहले आपसे अधिक चर्चा करनेके आपके प्रेमपूर्ण प्रस्तावका मैं अवश्य लाभ उठाऊंगा ।

गांधीजीका पत्र लॉर्ड माउन्टबेटनको,

८ अप्रैल, १९४७

७ तारीखके आपके दोनों पत्रोंके किए अनेक धन्यवाद । पहलेके बारेमें मुझे यह कहते खुशी होती है कि मुझे कोई गलतफहमी हुई भी हो तो आपका यह पत्र पढ़ने पर उसका कोई महत्त्व नहीं रहता।

लॉर्ड इस्मेके नाम लिखे गांधीजीके ५ अप्रैलवाले पत्रका अन्तिम भाग इस प्रकार था: “मैं यह भी कह दूं कि पंडित नेहरूको मेरी योजनाकी रूपरेखा पर कमसे कम एक भारी आपत्ति है। परन्तु मैं यहां उसका उल्लेख करके आपको कष्ट नहीं दूंगा। यदि रूपरेखा वाइसरॉय महोदयको काम देने लायक मालूम होती हो, तो एक बार फिर उनकी सेवामें उपस्थित होकर पंडित नेहरूकी आपत्तिकी चर्चा मैं करना चाहूंगा।”

किन्तु यह नौबत आई ही नहीं। कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओंकी गाड़ी उस समय तक अटल गतिसे लॉर्ड माउन्टबेटनके ध्रुवतारेको लक्ष्यमें रखकर चलने लगी थी। खास तौर पर लॉर्ड वेवेलकी सत्ताके

हस्तांतरणकी योजनाके प्रभावसे कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओंके विचारोंमें कुछ समयसे धीरे धीरे परिवर्तन हो रहा था। उस योजनाका मुख्य लक्षण यह था कि प्रान्तवार सत्ता हस्तांतरित कर दी जाय और वर्तमान केन्द्रको विघटित कर दिया जाय। इसके साथ ही छह सौसे अधिक भारतीय देशी राज्य स्वाधीन घोषित कर दिये जायं। मुस्लिम लीगी प्रान्त स्वेच्छापूर्ण सम्बन्धमें जुड़चर एक अलग राज्य बन जायं, यद्यपि उस समयकी स्थितिमें इससे भारतीय यूनियनको सारा बंगाल और शायद पंजाब भी खो देना पड़ता। देशके कुछ भागोंमें, जहां उस समय केन्द्रका शासन था, कोई संस्थापित सत्ता न रह जाती और प्रशासनमें, सेनामें तथा पुलिसमें गुटबन्दीका बोलबाला होकर भीतरी फूट बढ़ती और देशभरमें अंधाधुंधी व अव्यवस्था फैल जाती। कांग्रेसी नेताओंके लिए ये संभावनाएं अशांतिकारक थीं। धीरे धीरे उनका मत इस तरफ मुड़ने लगा कि मुस्लिम लीगी प्रान्तोंको अलग राज्य बना लेने दिया जाय (क्योंकि इसे किसी तरह रोका नहीं जा सकता था) और साथ ही पंजाब और बंगालके बंटवारेकी मांग की जाय। कांग्रेसके एक वर्गके मानसका चित्र सरदार पटेलके एक पत्रमें मिलता है, जो उन्होंने लॉर्ड माउन्टबेटनके भारत पहुंचनेसे पहले ४ मार्च, १९४७ को बंबईके एक मित्रको लिखा था:

> यदि लीग पाकिस्तानके लिए आग्रह करती है, तो एकमात्र विकल्प पंजाब और बंगालका विभाजन ही रह जाता है। लीग सारा पंजाब या बंगाल नहीं ले सकती। . . . मैं नहीं समझता कि ब्रिटिश सरकार बंटवारेके लिए सहमत होगी। अन्तमें वह समझ जायगी कि सबसे मजबूत दलके हाथमें भारतकी सरकारकी बागडोर सौंपनेमें ही बुद्धिमानी है। वह ऐसा न करे तो भी पूर्व बंगाल, पंजाबका एक भाग, सिन्ध और बलूचिस्तानको छोड़ कर सारे भारतका एक बलशाली केन्द्र हो और केन्द्रके अधीन पूरा स्वशासन हो, तो वह इतना शक्तिशाली होगा कि बाकीके भाग अन्तमें अपने आप उसमें आ जायंगे। [सरदार पटेलका पत्र कानजी द्वारकादासको, ४ मार्च, १९४७]

बंगालके दो टुकड़े करनेकी योजनाकी तरफ डॉ. अमिय चक्रवर्तीने नोआखालीके एक जंगलमें फरवरी १९४७ के अन्तिम सप्ताहमें ही गांधीजीका ध्यान खींचा था। गांधीजीको इससे बहुत दुःख हुआ था। उस समय जो बात हल्की-सी कानाफूसी तक सीमित थी, वह अब "खुली पुकार" बन गई थी। ४ अप्रैलको केन्द्रीय विधानसभाके बंगाली हिन्दू सदस्योंके हस्ताक्षरसे एक निवेदन वाइसरॉयके सामने प्रस्तुत किया गया। उसमें भारतीय संघ (इंडियन यूनियन) के भीतर पश्चिम बंगालका एक अलग स्वायत्त

प्रांत बनानेकी मांग की गई; उसमें इस बातकी तात्कालिक आवश्यकताकी ओर भी ध्यान दिलाया गया कि संक्रमण-कालमें बंगालके दोनों भागोंके लिए एक गवर्नरके मातहत दो प्रादेशिक प्रशासन हों और उनके लिए अलग मंत्रि-मंडल रचे जायं। उसमें यह भी कहा गया कि अधिक रक्तपातको रोकनेके लिए यह कदम जरूरी है। उसी दिन बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीकी कार्यकारिणीने यह प्रस्ताव पास किया: "यदि सम्राट्की सरकारका विचार अपनी सत्ताको बंगालकी मौजूदा सरकारके हाथोंमें सौंप देनेका है, तो चूंकि यह सरकार बंगालको एक अलग सर्वसत्ताधारी राज्य बनाने पर तुली हुई है और उसकी रचना एक साम्प्रदायिक दलकी सरकारके तौर पर हुई है, इसलिए बंगालके जो भाग भारतीय संघके भीतर रहना चाहते हैं उन्हें वहीं रहने देना चाहिये और भारतीय संघके भीतर उनका एक अलग प्रान्त बना देना चाहिये।"

गांधीजीने कांग्रेस कार्यसमितिको बहुत समझाया कि मैंने वाइसरॉयको जिस योजनाकी रूपरेखा दी थी उसे स्वीकार कर लिया जाय। वातावरण अकुलाहट बढ़ानेवाला था, मिजाज ऊंचे चढ़ गये थे, उग्र चर्चायें होती थीं, विचार स्पष्ट नहीं थे, उत्तेजना फैली हुई थी। गांधीजी और बादशाह खान अंग्रेजोंकी छत्रछायामें किसी भी तरहके विभाजनके विरोधी थे। गांधीजीकी दृष्टिमें कांग्रेस पंजाब और बंगालका विभाजन करनेके लिए अंग्रेजोंसे कहे, यह हार स्वीकार करनेके समान था। वे विभाजनके सारे तर्कके विरुद्ध थे। विभाजनसे हमारी कठिनाइयां हल नहीं होंगी; इसके विपरीत जो पहलेसे मौजूद हैं वे और बढ़ जायंगी तथा नई पैदा हो जायंगी। परन्तु न तो गांधीजी कांग्रेस कार्यकारिणीको समझा सके और न कांग्रेस कार्यकारिणी गांधीजीको समझा सकी। दूसरे दिन गांधीजीने वाइसरॉयको सूचना दे दी कि कांग्रेस कार्यकारिणीको अपने मतकी बनानेमें मुझे सफलता नहीं मिली है। उनका और उनके साथियोंका मार्ग अलग अलग होनेका समय आ गया था।

गांधीजीका पत्र लॉर्ड माउन्टबेटनको,

११ अप्रैल, १९४७

पंडित नेहरूके साथ थोड़ी थोड़ी देरके लिए कई बार और एक बार एक घंटे तक मेरी अकेलेमें बातें हुई हैं। और फिर कल रातको कांग्रेस कार्यसमितिके कई सदस्योंके साथ उस योजनाके बारेमें मेरी चर्चा हुई, जिसकी रूपरेखा मैंने आपके सामने रखी थी और जिसके समस्त

गूढ़ार्थ मैंने उन्हें समझा दिये थे। मुझे अफसोसके साथ कहना पड़ता है कि बादशाह खानके सिवा मैं उनमें से किसीको भी अपनी बात समझानेमें सफल नहीं हुआ।

मैं नहीं जानता कि पंडित नेहरूकी बुद्धि और हृदयको अपनी बात समझानेमें असफल होनेके बाद मेरी इच्छा इस बातको आगे बढ़ानेकी होती या नहीं होती। परन्तु पंडितजी इतने भले हैं कि उन्हें तब तक संतोष नहीं हुआ जब तक कि कांग्रेस कार्यसमितिके उपस्थित थोड़ेसे सदस्योंके साथ सारी योजनाकी चर्चा मैंने नहीं कर ली । मुझे बड़ा दुःख हुआ कि प्रत्येक दृष्टिकोणसे मेरी योजनाके ठीक होनेका मैं उन लोगोंको विश्वास नहीं करा सका । वे भी मुझे अपनी स्थितिसे नहीं डिगा सके, यद्यपि प्रत्येक दलीलके लिए मैंने अपना दिमाग खुला रखा था। इसलिए मुझे आपसे यह कहना पड़ता है कि समझौतेकी चर्चामें आप मुझे शरीक न करें।

जो कांग्रेस-जन अन्तरिम सरकारमें हैं, वे प्रौढ़ और अनुभवी हैं, राष्ट्रके तपे हुए सेवक हैं और इसलिए जहां तक कांग्रेसके दृष्टिकोणका संबंध है, वे संपूर्ण सलाहकार बन सकेंगे।

स्वर्गीय सी. एफ. एन्ड्रूजने जो स्थान लिया वह स्थान लेना मैं अभी भी बहुत पसन्द करूंगा। वे अपने सिवा दूसरे किसीके प्रतिनिधि नहीं थे। और यदि आपको गुणवत्ताकी दृष्टिसे मेरी सेवाकी कभी जरूरत हो, तो वह हमेशा आपको मिलेगी ।

उपरोक्त परिस्थितिमें आपकी अनुमति प्राप्त होने पर संभव हुआ तो कल मैं पटनाके लिए रवाना हो जाना चाहता हूं।

१२ अप्रैलको गांधीजी पटना चले गये। दूसरे दिन उन्होंने गाड़ीमें से सरदार पटेलको लिखा :

मैं आपसे एक बात पूछना चाहता था, परन्तु समय न होनेके कारण पूछ नहीं सका। . . . मैं समझता हूं कि अब मुझे कुछ न कुछ 'हरिजन' में लिखना चाहिये। . . . मैं यह भी देखता हूं कि हमारे विचारोंमें व्यापक और बार-बार मतभेद पैदा होता है । ऐसी सूरतमें क्या यह वांछनीय है कि मैं अपनी व्यक्तिगत हैसियतमें भी वाइसरॉयसे मिलूं ?

इस पर अनासक्त होकर आप विचार करें और अपने सामने देशका हित ही रखें। चाहें तो दूसरोंसे भी इस बारेमें चर्चा कर लें। आपके मनमें इस बातकी जरा भी शंका नहीं होनी

चाहिये कि मैं कोई शिकायत कर रहा हूं। मैं तो यही सोचता हूं कि देशके सर्वोच्च कल्याणकी दृष्टिसे मेरा क्या कर्तव्य है। संभव है कि करोड़ों लोगोंके कामकाजकी व्यवस्था करते हुए आप वह चीज देख सके हों, जो मैं नहीं देख पाता। मैं आपकी जगह होऊं तो शायद मैं भी वही करूं और कहूं जो आप करते और कहते हैं।

इस प्रकार माउन्टबेटन, कांग्रेस कार्यसमिति और मुस्लिम लीग – सब अलग अलग कारणोंसे और एक-दूसरेसे मतभेद रखते हुए भी सब मिल कर एक ही नारा लगाने लगे और "राष्ट्रकी आवाज" गांधीजीकी जन्मभूमिकी ऊंची राजनीतिके पटांगणमें "अरण्यकी आवाज" बन गई। सरोजिनी नायडूने अपनी मातृ-सहज अंतःप्रेरणासे इस परिस्थितिकी तीव्र करुणताको समझ लिया, गांधीजीके नितान्त आध्यात्मिक एकाकीपनको अनुभव कर लिया और उस चौड़ी खाईको देख लिया, जिसने उन्हें मित्रों और विरोधियों दोनोंसे अलग कर दिया था और जिसके कारण ७८ वर्षकी उम्रमें वे पुन: बिहारमें अकेले विचरण करनेके लिए जा रहे थे। बिहारकी यह भूमि आज तो विनष्ट ग्रामों और भग्न मानव-सम्बन्धोंकी भूमि बनी हुई थी; परन्तु २५ वर्ष पूर्व गांधीजीने वहीं भारतीय राजनीतिमें प्रवेश किया था और एक ऐसे जीवनका आरम्भ किया था, जिसने एक ही पीढ़ीके अल्पकालमें उनके देखते देखते देशका कायापलट कर दिया था। सरोजिनी नायडूने उन्हें लिखा:

प्रिय धर्मयात्री,

मुझे मालूम हुआ है कि आप फिर बिहारके अपने चुने हुए विषादपूर्ण मार्गकी यात्राके लिए प्रस्थान कर रहे हैं।

आपका विषादपूर्ण सार्ग करोड़ों पीड़ित मानव-हृदयोंके लिए आशा और सान्त्वनाका मार्ग हो सकता है। आपकी धर्मयात्रा कल्याणकारी हो !

मैं अब भी अत्यन्त कमजोर हूं, अन्यथा आपको बिदा देनेके लिए हरिजन-बस्ती पहुंच जानेकी कोशिश करती।

परन्तु आपको न देखने पर भी आप जानते हैं कि मेरा प्रेम और मेरी श्रद्धा सदा आपके साथ है।

आपकी अम्माजान,
सरोजिनी

४

वाइसरॉयके साथ चल रही बातचीतका एक गौण विषय माउन्टबेटनकी छत्रछायामें जिन्ना और गांधीजीके हस्ताक्षरोंसे साम्प्रदायिक शान्तिके लिए एक सम्मिलित अपील निकालनेका था। लॉर्ड वेवेलने अक्तूबर १९४६ में नोआखालीके लिए रवाना होनेसे ठीक पहले ऐसा ही प्रस्ताव गांधीजीके सामने रखा था। गांधीजीको ऐसा लगा कि वह प्रस्ताव गलत आदमीके सामने रखा गया है। परन्तु उसके बाद परिस्थितियां बदल गयीं। दोनों पक्षोंने अमानुषिक कृत्य करके अपनेको कलंकित कर लिया था। गांधीजीकी पुरानी आपत्ति तो अब भी दूर नहीं हुई थी। परन्तु लॉर्ड माउन्टबेटनकी यह दलील थी कि गांधीजी अपील पर हस्ताक्षर नहीं करेंगे, तो जिन्ना भी नहीं करेंगे । उनके अपील पर हस्ताक्षर कर देनेसे देशके आम लोगोंमें विश्वास पैदा होगा और हत्याकांडको रोकनेमें मदद मिलेगी। इस दलीलके सामने गांधीजी "ना" नहीं कह सके। वह अपील इस प्रकार थी:

> हम हाल ही हुए अराजकता और हिंसाके उन कृत्यों पर गहरा दुःख प्रगट करते हैं, जिन्होंने भारतकी नेकनामी पर भारी कलंक लगा दिया है और निर्दोष लोगोंको बड़ीसे बड़ी विपत्तिमें फंसा दिया है – भले ही आक्रमणकारी कोई भी रहे हों और शिकार कोई भी हुए हों।
>
> राजनीतिक उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए बल-प्रयोगकी हम सदाके लिए निन्दा करते हैं और भारतकी सभी कौमोंसे अनुरोध करते हैं कि वे किसी भी विचारकी हों, फिर भी सब प्रकारके हिंसा और अव्यवस्थाके कृत्योंसे दूर रहें और वाणी तथा लेखन दोनोंके द्वारा ऐसे कृत्योंको भड़कानेसे बचें।

इस अपील पर गांधीजीने देवनागरी, फारसी और रोमन लिपियोंमें हस्ताक्षर किये; जिन्नाने केवल अंग्रेजीमें किये । गांधीजीने इस पर बहुत जोर दिया कि आचार्य कृपलानी कांग्रेसके अध्यक्ष हैं, इसलिए अपील पर जिन्नाके साथ उनके हस्ताक्षर होने चाहिये; क्योंकि कांग्रेसकी तरफसे बोलनेका अधिकार कृपलानीको ही है, जैसा कि मुस्लिम लीगकी तरफसे बोलनेका अधिकार जिन्नाको है। अपील पर कांग्रेस-अध्यक्षके हस्ताक्षर न होनेका यह अर्थ होगा कि जिन्नाका यह कथन एक तरहसे मान लिया गया है कि हिन्दू और मुसलमान दो राष्ट्र हैं – गांधीजी एकके प्रवक्ता हैं और जिन्ना दूसरेके । परन्तु इस मुद्दे पर जिन्ना नहीं झुके । लॉर्ड माउन्टबेटनने जिन्नासे सीधा प्रश्न किया कि शान्तिके लिए सम्मिलित

अपील निकालनेसे मुस्लिम लीगको "राजनीतिक हानि" तो नहीं होगी। इसका उत्तर जिन्नाने नकारात्मक दिया था। माउन्टबेटनने पं. नेहरूको समझाया कि इस मुद्दे पर आपको अड़ना नहीं चाहिये – कमसे कम इससे मुझे जिन्नाकी नेकनीयतीकी परीक्षा लेनेका मौका मिल जायगा। उचित-अनुचितकी दृष्टिसे पंडित नेहरू गांधीजीके साथ पूरी तरह सहमत थे, परन्तु इस दलीलके सामने वे माउन्टबेटनके साथ हो गये। इस सम्बन्धमें गांधीजी और वाइसरॉयके बीच हुआ तार-व्यवहार इस प्रकार था :

लॉर्ड माउन्टबेटनका तार गांधीजीको,

१३ अप्रैल, १९४७

हिंसा आदिके कृत्यों पर दुःख प्रकट करनेवाली जिस अपील पर दिल्ली छोड़नेसे पहले आपने हस्ताक्षर किये, उस पर हस्ताक्षर करनेके लिए मि. जिन्ना पूरी तरह तैयार हैं, बशर्ते कि इस अपील पर आपके और उनके ही हस्ताक्षर हों। चूंकि आपने यह बताया था कि आपके खयालसे श्री कृपलानीके हस्ताक्षर भी अपील पर होने चाहिये – यद्यपि मैं समझता हूं कि इसे आपने कोई शर्त नहीं बनाया था, इसलिए आपका पत्र आने तक मैं अपीलको प्रकाशित नहीं करा रहा हूं। पं. नेहरू इस प्रश्नको मेरे विवेक पर छोड़नेको तैयार हैं, परन्तु मुझे लगता है कि आपके विचार मुझे जरूर जान लेने चाहिये। यदि अपील पर केवल आपके ही हस्ताक्षर नहीं होंगे, तो जिन्ना भी नहीं करेंगे। इसलिए मेरा आपसे अनुरोध है कि आप इस बातसे सहमत हो जायं।

गांधीजीका तार लॉर्ड माउन्टबेटनको,

(पटना) १४ अप्रैल, १९४७

मेरी राय है कि कांग्रेस-अध्यक्षको भी अपील पर हस्ताक्षर करने चाहिये। कांग्रेस-अध्यक्षको अलग रखनेका कारण आपको जानना चाहिये। परन्तु अन्तिम निर्णय मैं आप पर और पंडितजी पर छोड़ता हूं।

लॉर्ड माउन्टबेटनका तार गांधीजीको,

१५ अप्रैल, १९४७

आपको यह सूचना देते हुए मुझे प्रसन्नता होती है कि पं. नेहरूने भी निर्णय मुझी पर छोड़ देना स्वीकार कर लिया है। मैं यह अपील निकालना इतना महत्त्वपूर्ण समझता हूं कि मैंने यही उत्तम समझा कि वह आपके और मि. जिन्नाके हस्ताक्षरोंसे ही प्रकाशित हो ।

माउन्टबेटनके इस कदमका कुछ मिलाकर यह नतीजा हुआ कि एक ऐसी अस्वाभाविक स्थिति लंबे समय तक बनी रही, जिसमें हिंसाके प्रयोगसे लीगको अपार लाभ होता रहा। यदि अपील उभय पक्षके स्वाभाविक प्रयत्नोंके फलस्वरूप निकाली जाती, तो उस पर अमल होनेकी थोड़ी संभावना तो भी रहती । परन्तु जिन परिस्थितियोंमें अपील निकली उनसे तो मुस्लिम लीगको कूटनीतिके शतरंज पर एक और चाल चलनेका ही मौका मिला । मुस्लिम लीगके मुखपत्र 'डॉन' की टिप्पणी इस विषयमें आंखें खोलनेवाली थी:

भारतके दो राष्ट्रोंके नेताओंने जिस नाटकीय अपील पर हस्ताक्षर किये हैं, उसके प्रकाशित करनेका ढंग निराला है। परन्तु उसमें ऐसी कोई चीज नहीं है, जो कायदे आजमने किसीकी प्रेरणाके बिना पहले ही न कहीं हो । . . .

इसके बादका दूसरा कदम बहुत देर किये बिना और तर्कशुद्ध क्रममें उठाया जाना चाहिये। हम "तर्कशुद्ध" शब्द पर जान-बूझ कर जोर दे रहे हैं, क्योंकि इस तरहकी अपीलको जनता तक पहूंचानेके लिए वाइसरॉयका कायदे आजम और मि. गांधीको **चुनना** ही यह **स्वीकार करनेके बराबर है कि इस सन्दर्भमें एक नहीं, परन्तु दो आवाजोंको बोलना चाहिये। यदि यह नहीं माना जाता कि भारतमें दो जातियां हैं, दो राष्ट्र हैं, जो अपने अपने नेताकी ही बात मानते हैं, तो यह क्यों जरूरी है कि ऐसी अपील दो नेता निकालें** ? [डॉन, १८ अप्रैल, १९४७] (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

'डॉन' ने यह भी लिखा:

गांधीजीको वाइसरॉयने समझा लिया है कि वे राजनीतिक उद्देश्योंकी पूर्तिके साधनके रूपमें हिंसाकी "सदाके लिए" निन्दा करें, परन्तु महात्माके राजनीतिक उत्तराधिकारी और

अनुगामीको वे अभी तक नहीं समझा सके हैं। [डॉन, २२ अप्रैल, १९४७] (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

लीगसे यह आशा रखना कि वह उस एकमात्र "पिस्तौल" को फेंक देगी, जिसके लिए जिन्नाका दावा था कि लीगने उसे बना लिया है, गगन-विहार करना होता । परन्तु गांधीजीने अपने मनको समझा लिया कि यदि मुस्लिम लीग सच्चे दिलसे अपील नहीं निकाल रही है, तो भी चूंकि सम्मिलित अपील माउन्टबेटनके कहनेसे निकाली गई है इसलिए एक प्रकारसे वाइसरॉय उसमें हिस्सेदार बन जाते हैं और उस पर पूरा अमल करानेका भार उन पर आ जाता है; और इस कर्तव्यका पालन किये बिना वे नहीं रहेंगे। इसके बाद वाइसरॉयने बताया कि उन्हें यह फलितार्थ स्वीकार नहीं है, यद्यपि उन्होंने गांधीजीसे कहा था कि साम्प्रदायिक शान्ति स्थापित करानेमें वे भरसक सहायता देंगे। कुछ भी हो, गांधीजीको लगा कि इतना काफी नहीं है। परन्तु न तो उस समय और न बादमें वे वाइसरॉयकी राय बदलवा सके। इसलिए शान्तिकी वह अपील कागज पर ही धरी रह गई और गांधीजीने उस पर अनेक बार निराशा प्रगट की।

पांचवां अध्याय : पूर्वका संदेश

१

१९४७ के साचे मासके अंतिम सप्ताहमें इंटर-एशियन रिलेशन्स कान्फरेन्सने दिल्लीके पुराने किलेमें अपना अधिवेशन किया, तब जिसकी समृद्ध और विविधतापूर्ण कथा भारतके पुराण काल तक पहुंचती थी उस पुराने किलेकी पुरानी हड्डियोंमें नये प्राणोंका संचार हो उठा। वहां २२ देशोंके लगभग २५० प्रतिनिधि इकट्ठे हुए थे। वे संसारकी आधीसे अधिक आबादीका प्रतिनिधित्व करते थे। सम्मेलत इस बातका प्रतीक था कि एशियामें एक निश्चित "एशियाई भावना" विकसित हो रही है और एशियाके लोगोंकी तीव्र इच्छा है कि विशेष रूपमें दूसरे विश्वयुद्धके बाद दुनियाके कार्य-व्यापारका जो विकास हुआ उसमें वे अपना उचित भाग लें। "एक विश्व" का दृष्टिकोण रखनेवाले पंडित नेहरूने इस सम्मेलनमें अपना हृदय लगा दिया था और वे इस बातके लिए बहुत उत्सुक थे कि गांधीजी भी उसमें उपस्थित रहें। उन्होंने फरवरीके अन्तिम सप्ताहमें गांधीजीको लिखा: "हमारे यहां एशियाके सभी देशोंके प्रतिनिधियोंका सम्मेलन हो रहा है। आप नहीं आयेंगे . . . तो आपकी अनुपस्थितिसे सबको बड़ा दुःख होगा।" [पं. नेहरूका पत्र गांधीजीको, २४ फरवरी, १९४७] परन्तु गांधीजी इस सम्मेलनके खातिर भी भारतके जन-साधारणकी सेवासे अलग होना नहीं चाहते थे। उन्होंने उत्तर दिया : "आगामी मार्चका अन्तिम सप्ताह अभी तो मेरे लिए बहुत दूरकी बात है। ईश्वर चाहेगा तो सम्मेलनमें आनेके लिए वह रास्ता निकाल देगा।" [गांधीजीका पत्र पं. नेहरूको, ६ फरवरी, १९४७] अन्तमें लॉर्ड माउन्टबेटनका उनसे मिलनेका निमंत्रण गांधीजीको दिल्ली ले आया और वे सम्मेलनकी अंतिम दो बैठकोंमें भाग ले सके ।

यह अपने ढंगका अनोखा सम्मेलन था और जैसा गांधीजीने कहा: "हम सभी एशियावालोंके लिए एक महान घटना थी।" पश्चिम, पूर्व और दक्षिणके लगभग सभी देशोंके प्रतिनिधि, जिनमें अरब देशोंके, तिब्बत और मंगोलियाके, दक्षिण-पूर्व एशियाके देशोंके तथा सोवियत संघके एशियाई गणतंत्रोंके प्रतिनिधि भी थे, सम्मेलनमें आये थे। विभिन्न यूरोपियन और अमेरिकन सरकारोंने इस सम्मेलनमें बड़ी दिलचस्पी ली थी और सम्मेलनमें उपस्थित रहनेके लिए अपने प्रेक्षक भेजे थे। इस बातसे सबको निराशा हुई कि जापानका प्रतिनिधित्व सम्मेलनमें नहीं था, क्योंकि अमरीकी सेनाके अधिकारमें

होनेसे जापानियोंको ऐसे हेतुओंके लिए देश छोड़नेकी अनुमति नहीं दी जाती थी। सम्मेलनमें मुस्लिम लीगके प्रतिनिधिकी अनुपस्थिति खास तौर पर लोगोंका ध्यान खींचती थी। वह समग्र एशियासे सम्बन्ध रखनेवाली बातमें भी अपनी ईर्ष्याको छिपा नहीं सकी। ऐसी आशा रखी जा सकती थी कि कमसे कम इस सम्मेलनको तो भारतके सभी समूह और वर्ग समान भूमिकाके रूपमें स्वीकार करेंगे। इसके बजाय लीगने सम्मेलनको "हिन्दू कांग्रेस द्वारा एशियाई लोगोंका भावी नेता बननेके लिए आगे बढ़ कर किया जानेवाला लगभग खुला राजनीतिक प्रयत्न कहा।" उसने इस बात पर खेद प्रकट किया कि "मुस्लिम देशोंकी अनेक संस्थाएं भी झांसेमें आकर इस सम्मेलनमें शरीक हो गईं!" [केन्द्रीय विधान-सभामें मुस्लिम लीग दलका वक्तव्य, १९ मार्च, १९४७; 'दि इंडियन एन्युअल रजिस्टर', १९४७, खण्ड-१, पृ. २९८] मुस्लिम लीगने यह रुख इस सत्यके बावजूद दिखाया कि यह सम्मेलन कांग्रेसके निमंत्रण पर नहीं किया गया था; न किसी सम्बन्धित देशकी सरकारकी छत्रछायामें किया गया था। वह सम्पूर्णतः निजी आधार पर ही किया गया था। उसका एकमात्र उद्देश्य यह था कि विभिन्न एशियाई देशोंके प्रमुख पुरुष और स्त्रियां एक ही मंच पर एकत्र होकर आपसमें सम्पर्क बढ़ायें और अपनी सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित करें। दि इंडियन कौंसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स, जिसकी तरफसे यह सम्मेलन किया गया था, एक अराजनीतिक संस्था थी। राजनीतिक समस्याओंको, खास तौर पर विवादास्पद स्वरूपकी अथवा किसी देशके भीतरी मामलोंसे सम्बन्ध रखनेवाली समस्याओंको, जान-बूझकर सम्मेलनकी विषय-सूचीसे बाहर रखा गया था। कौंसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्सके अराजनीतिक स्वरूपके दरजेको कोई हानि न पहूंचे इस खयालसे प्रारम्भमें ही यह स्पष्ट कर दिया गया था कि सम्मेलनमें कोई विधिवत् प्रस्ताव पास नहीं किया जायगा और न किसीसे कोई सिफारिश ही की जायगी।

गांधीजीके आनेसे बहुत पहले ही सभा-मंडप खचाखच भर गया था। सम्मेलनके अन्तमें प्रतिनिधियों और दर्शकोंकी लगभग १० हजारकी संख्या दुगनी हो गई। जब पं. नेहरूके साथ गांधीजीने सम्मेलनमें प्रवेश किया तो सारी सभाने उठकर उनका स्वागत किया और जब वे पहले दिन वापस गये तो फिर सबने उठ कर उन्हें बिदा दी। मंच पर सुन्दर सजावट की गई थी। पीछेकी ओर एशियाका एक बड़ा नकशा लगा हुआ था, जिसमें विभिन्न देशोंकी राजधानियां, आबादी, हवाई मार्ग, प्राकृतिक साधन-सम्पत्ति, झंडे और राजचिह्न दिखाये गये थे। बिखरनेसे पहले सम्मेलनने एशियाई सम्बन्धोंकी एक संस्था

(एशियन रिलेशन्स ऑर्गेनिज़ेशन) बनानेका निश्चय किया । पं. नेहरू सर्वसम्मतिसे उसकी प्रोविज़नल जनरल कौंसिलके अध्यक्ष चुने गये।

अजरबैजनके प्रतिनिधिने गांधीजीसे एक प्रश्न किया: क्या 'एक विश्व' के आदर्शमें आपका विश्वास है और क्या आजकी परिस्थितियोंमें वह सफल हो सकता है ? गांधीजीने उत्तरमें कहा; "यदि यह संसार एक विश्व न बने, तो मैं इसमें जीना पसन्द नहीं करूंगा। मैं अवश्य चाहूंगा कि मेरे जीवन-कालमें ही यह सपना सच्चा हो जाय।" इस पर देर तक और बार बार तालियां बजीं। विभिन्न एशियाई देशोंसे जो प्रतिनिधि आये थे, उनसे गांधीजीने आग्रहपूर्वक कहा : "एक विश्वके आदर्शकी पूर्तिके लिए आपको पूरी कोशिश करनी चाहिये। यदि आप अटल निश्चयके साथ काम करेंगे, तो कोई शंका नहीं कि हम अपनी ही पीढ़ीमें इस स्वप्नको सिद्ध कर लेंगे।"

उन्होंने पूछा, एशियाई प्रतिनिधियोंको किस चीजने यहां एकत्र किया है ? क्या जिस यूरोपने भूतकालमें आपका शोषण किया, उससे अथवा अमेरिकासे या दूसरे अ-एशियाई लोगोंसे लड़ाई करने या बदला लनेके लिए आप यहां एकत्र हुए हैं? "मैं जोर देकर कहता हूं कि 'नहीं' । यह भारतका मिशन नहीं है। यह अफसोसकी बात होगी यदि भारत तत्त्वतः अथवा मुख्यतः अहिंसक साधनोंसे स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके बाद उस स्वतन्त्रताका उपयोग संसारके दूसरे भागोंको दबानेमें करे।"

चीनके प्रतिनिधि डॉ. हान लीवूने गांधीजीको "भारतकी आत्मा", "एशियाका प्रकाश" और "विश्वके एक महापुरुष" के रूपमें संबोधित करके उनसे कुछ शब्द कहनेका अनुरोध किया। गांधीजीने सुझाया कि सम्मेलन प्रतिवर्ष अथवा २ या ३ वर्षोंमें एक बार होना चाहिये। "अगर आप मुझसे पूछें कि कहां होना चाहिये, तो मैं कहूंगा कि भारत ही वह स्थान है । भारतके लिए मेरे इस पक्षपातको आप क्षमा कर देंगे ।"

किन्तु उनके अपने ही शब्दोंने उन्हें दुःखपूर्वक गहरे विचारमें डुबा दिया। भाई-भाईकी लड़ाईसे विदीर्ण बना हुआ भारत उन्हें क्या सन्देश दे सकता है? ये प्रतिनिधि यहांसे जानेके बाद अपने साथ भारतकी क्या छाप ले जायंगे ? इसके बाद उन्होंने जो कुछ कहा उसमें सच्चा आत्मनिरीक्षण झलकता था: "हम नहीं जानते कि अपने बीच हम शान्ति कैसे रखें । हम सोचते हैं कि हमें जंगलके कानूनका आश्रय लेना चाहिये । मैं नहीं चाहता कि आप अपने अपने देशमें हमारा यह अनुभव अपने साथ ले जायं

। मैं चाहता हूं कि इसे आप यहीं गाड़ कर चले जायं । भारत अपनी स्वाधीनताके किनारे खड़ा है। हम अपने स्वामी स्वयं बनना चाहते हैं। परन्तु हम अपने स्वामी स्वयं कैसे बनेंगे ? मैं नहीं जानता; मुझे विश्वास है कि पंडित नेहरू भी नहीं जानते; मुझे विश्वास है कि खान साहब (खान अब्दुल गफ्फार खां) भी नहीं जानते। हम तो इतना ही जानते हैं कि सब अपना अपना कर्तव्य पालन करें और परिणाम ईश्वरके हाथमें छोड़ दें । मनुष्य अपने भाग्यका स्वामी स्वयं ही माना जाता है, परन्तु यह बात अंशतः ही सच है । मनुष्य अपने भाग्यका निर्माण वहीं तक कर सकता है जहां तक वह महाशक्ति उसे ऐसा करने देती है, जो हमारे सारे इरादों और हमारी सारी योजनाओंको धूलमें मिला कर अपनी ही योजनाएं चलाती है। मैं उस शक्तिको अल्लाह, खुदा या गॉडके नामसे न पुकार कर सत्यके नामसे पुकारता हूं। सम्पूर्ण सत्य उस महाशक्ति – सत्य – के हृदयमें ही विराजमान है। सत्यको प्राप्त करना असंभव है; वह ऐसी वस्तु है जिसके पास हम पहुंच नहीं सकते । एक महान अंग्रेजने मुझे यह विश्वास करना सिखाया था कि ईश्वर अज्ञेय है। वह उसी हद तक ज्ञेय है जिस हद तक हमारी मर्यादित बुद्धि जाती है। एशियाके विभिन्न भागोंसे आये हुए आप सब जो महानुभाव यहां एकत्र हुए हैं, उन्हें यहांसे इस मिलनकी मधुर स्मृतियां अपने साथ ले जानी चाहिये और सत्यके उस महान भवनका निर्माण करनेका प्रयत्न करना चाहिये।"

दूसरे दिन जब गांधीजी पहूंचे तब ईरानका प्रतिनिधि बोलनेके लिए खड़ा हो गया था। सम्मेलनकी अध्यक्षता करनेके लिए सरोजिनी नायडू अपनी रोगशय्या छोड़कर आई थीं। उन्होंने ईरानी वक्तासे जरा ठहर जानेको कहा, क्योंकि वे चाहती थीं कि "महात्मा गांधी भी उनकी मधुर छठादार फारसी सुन लें।" इंडोनेशियाई गणतंत्रके प्रधानमंत्री डॉ. जहरीरके बाद गांधीजीने प्रतिनिधियोंको संबोधित किया: "मित्रो, आपने सच्चा भारत नहीं देखा है और आपका सम्मेलन सच्चे भारतके बीचमें नहीं हुआ है। बड़े बड़े शहर सच्चा भारत नहीं हैं। भारतके विभिन्न भागोंमें आप जो रक्तपात होता हुआ देख रहे हैं, वह अवश्य ही लज्जास्पद है। लेकिन आप बड़ी गलती करेंगे और दूसरोंको भी गुमराह करेंगे, यदि आप अपने साथ यह छाप लेकर जायंगे कि आपने सच्चा भारत देख लिया है, जब कि आपने देखे तो भारतके कुछ बड़े शहर ही हैं। यदि आप सच्चे भारतको देखना चाहते हैं, तो वह दर्जन भर बड़े शहरोंमें देखनेको नहीं मिलेगा; सच्चा भारत आपको ७ लाख गांवोंमें मिलेगा, जहां भारतके ३८ करोड़ आदमी रहते हैं, जो तेजहीन आंखोंवाले मानवोंके अभागे नमूने हैं।"

यहां गांधीजीने एक फ्रांसीसी कहानी सुनाई, जो उन्हें एक मित्रने दक्षिण अफ्रीकामें अंग्रेजी अनुवाद करके दी थी । एक बार तीन फ्रांसीसी वैज्ञानिक सत्यकी खोजमें निकले। उनमें से एक भारतमें चला आया। वह उस समयके तथाकथित नगरोंमें गया और वहां तथाकथित उच्च जातिके लोगोंसे मिला । परन्तु उसे कुछ लाभ नहीं हुआ। अन्तमें जिस सत्यकी खोज वह कर रहा था वह उसे एक छोटेसे गांवमें एक "अछूत" की छोटीसी झोंपड़ीमें मिला ।

> आपको गांवोंका दृश्य आकर्षक नहीं लगेगा। परन्तु वे (गांव) ही भारत हैं। आपको गोबरकी ढेरी (घूरे) को नीचेसे कुरेद कर देखना होगा। इन गोबरकी ढेरियोंके बीच आपको गरीब भंगी मिलेंगे । उनमें ज्ञानका सारतत्व आपको मिलेगा। . . . पश्चिमको ज्ञान पूर्वसे मिला है। ज्ञानियोंमें से सर्वप्रथम ज्ञानी जरथुस्त पूर्वके ही थे। उनके बाद बुद्ध हुए। वे भी पूर्वके ही, भारतके थे। मूसा फिलस्तीनके थे। फिर ईसा आये। ईसाके बाद मुहम्मद आये। एशियाके इन पुरुषोंकी बराबरी करनेवाले एक भी पुरुषको मैं नहीं जानता। फिर क्या हुआ ? ईसाई धर्म जब पश्चिममें चला गया तो वह कुरूप हो गया।

परन्तु एशिया संसारको तभी सन्देश दे सकता है, जब हम स्वयं समझ लें कि वह सन्देश क्या है। वह सन्देश, पूर्वका सन्देश, एशियाका सन्देश, यूरोपके चश्मेसे देख कर नहीं सीखा जा सकता। "यदि आप पश्चिमको कोई सन्देश देना चाहते हैं, तो वह प्रेम और सत्यका सन्देश होना चाहिये। मैं चाहता हूं कि आप यह विचार अपने मनमें लेकर जायं कि एशियाको प्रेम और सत्यके द्वारा पश्चिमको जीतना है।

> लोकतंत्रके इस युगमें, गरीबसे गरीबकी जागृतिके इस युगमें, आप यह सन्देश अधिकसे अधिक जोरके साथ फिर दे सकते हैं। आपका शोषण किया गया है इसलिए बदला लेकर नहीं किन्तु प्रेमके द्वारा आप पश्चिमकी विजय पूरी कीजिये। मुझे विश्वास है कि यदि हम सब मिलकर हृदयसे – न कि केवल मस्तिष्कसे – उस सन्देशके रहस्यको समझें, जो पूर्वके ज्ञानी पुरुष हमारे लिए छोड़ गये हैं, और यदि हम उस महान सन्देशके सचमुच योग्य बन जायं, तो पश्चिमकी विजय पूर्ण हो जायगी और उस विजयका स्वयं पश्चिमके लोग भी प्रेमसे स्वागत करेंगे।

आज पश्चिम सयानेपनके लिए तरस रहा है। वह अणुबमकी वृद्धिसे निराश हो रहा है, क्योंकि अणुबमकी वृद्धिसे केवल पश्चिमका ही नहीं परन्तु सारे संसारका संपूर्ण विनाश हो जायगा। ऐसा लगता है कि बाइबलकी भविष्य-वाणी सच्ची होने जा रही है और प्रलय होने जा रहा है। भगवान इस प्रलयसे हमें बचाये। इस पापसे न केवल सारे एशियाका, परन्तु सारे जगतका उद्धार करना आपका कर्तव्य है। यही बहुमूल्य विरासत आपके धर्मगुरुओंने और हमारे धर्मगुरुओंने हम सबके लिए छोड़ी है।

गांधीजीकी दृष्टिमें रजमात्र कार्यका पहाड़ जितने विचारसे अधिक मूल्य था। जब वे सम्मेलन छोड़कर गये तब उनके मनमें क्या विचार भरे थे ? सम्मेलनमें उनका प्रचण्ड उत्साहसे जो स्वागत हुआ था उसके विचार उनके मनमें नहीं थे, एशियाके प्रतिनिधियोंके हृदयमें उमड़ती हुई नई आशाके विचार भी उनके मनमें नहीं थे, सदियोंकी गाढ़ निद्राके बाद फिरसे जाग्रत हुआ तथा शक्तिसे उमड़ता एशिया प्रतीक्षा कर रहे जगतको सनातन, कालातीत तथा नित्य-नवीन पूर्वके अत्यन्त प्राचीन ज्ञानका सन्देश तथा अपनी समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा प्रदान कर सकता है – ऐसी मोहक संभावनाके विचार भी उनके मनमें नहीं थे; उनके मनमें केवल यही विचार भरे थे कि उनके अपने देश भारतकी जनता उस संस्कृति और परम्पराका सच्चे रूपमें किस हद तक प्रतिनिधित्व करती है। जब वे सभा-मंडपसे निकले तो अपने एक साथीसे बोले : "तुमने देखा कि दूसरे देशोंके प्रतिनिधि सादे ढंगकी योग्य वेशभूषामें सज्ज थे और अपने अपने देशकी संस्कृतिको प्रकट करते थे, जब कि हमारे अपने दर्शक और काम पर नियुक्त स्वयंसेविकाएं रेशमकी पोशाक पहने हुए थीं और उनके होठों पर पश्चिमी ढंगका लिपस्टिक तथा चेहरों पर पाउडर लगा था। क्या यह अटपटा चित्र नहीं था ? मुझे लज्जाका अनुभव होता है। मेरा हृदय हर्षसे नाच उठता, यदि बे स्वयंसेविकाएं कांग्रेसकी स्वयंसेविकाओंकी तरह सादे खादीके गणवेशमें होतीं।"

२

एशियाई सम्मेलनके उपान्त्य अधिवेशनसे लौट कर गांधीजी शामकी प्रार्थना-सभामें समय पर पहुंच गये । पंजाबकी भयंकर घटनाओंके समाचारोंसे लोगोंकी भावनाएं बुरी तरह उत्तेजित हो गई थीं। रावलपिंडी और दूसरे स्थानोंसे हजारों निराश्रित आने लगे थे और वे जो कहानियां सुनाते थे उनसे लोगोंके हृदय और ज्यादा उत्तेजित हो उठे थे। प्रार्थनामें कुरानकी आयत आरम्भ ही हुई थी कि एक

हिन्दुसभाई नौजवान उठकर चिल्लाया : "यह हिन्दू मन्दिर है, हम आपको यहां मुस्लिम प्रार्थनाकी आयत नहीं गानें देंगे।" कुछ लोग बाधा डालनेवाले युवकको सभासे जबरदस्ती निकालने लगे, परन्तु गांधीजीने हस्तक्षेप किया: "जब तक एक भी व्यक्ति आपत्ति करता है तब तक मैं प्रार्थना आगे नहीं बढ़ाऊंगा। मैं विरोधी अल्पमतको पूरी स्वतन्त्रता देना चाहता हूं।" नौजवानने रास्ता बना कर मंच तक पहुंचनेकी कोशिश की, परन्तु दूसरोंने उसे रोक दिया। गांधीजी मंचसे उतर कर उससे बीचमें मिलने गये और बोले : "मेरे और इस नौजवानके बीच कोई न आये।" इस पर भीड़ क्षुब्ध हो गई और आपत्ति करनेवालेको सभासे बाहर निकाल दिया गया। गांधीजीने गहरे दुःखके साथ सभासे कहा : "वह युवक गुस्सेमें था। गुस्सा थोड़े समयका पागलपन है। परन्तु आपका और मेरा काम यह है कि पागलपनका जवाब पागलपनसे न देकर हम सयानेपनसे दें। मैं बिहारसे आ रहा हूं। वहां मैंने अपनी आंखोंसे देखा है कि जब पागलपन सवार हो जाता है तब लोग क्या कुछ कर गुजरते हैं। उससे मेरा सिर शर्मके मारे झुक गया है।"

दूसरे दिन प्रार्थना शुरू होनेसे पहले गांधीजीने सभासे पूछा, किसीको कोई आपत्ति है? एक युवक खड़ा हो गया और उसने पहले दिनवाली आपत्ति दोहरायी : "यह हिन्दू मन्दिर है। . . . "

गांधीजी : "मन्दिर तो भंगियोंका है। मन्दिरके संरक्षकोंको ही आपत्ति करनेका अधिकार है। परन्तु उन्होंने आपत्ति नहीं की है।

युवक : "यह सार्वजनिक पूजास्थान है। यदि आप कुरानकी आयतें पढ़ना चाहें, तो आपको दूसरी जगह जाना होगा।"

गांधीजी : "मैं अत्यन्त नम्रतासे फिर कहता हूं कि मैं भंगीका कास करनेके कारण तुम्हारी अपेक्षा भंगियोंकी ओरसे बोलनेका ज्यादा अधिकार रखता हूं। तुमने तो शायद अपने जीवनमें कभी टट्टी साफ नहीं की होगी और न तुम अब करनेको तैयार होगे।"

उपस्थित लोग चिल्लाये : "हम चाहते हैं कि प्रार्थना चलती रहे । एक व्यक्तिको क्या अधिकार है कि वह बाकी सबकी इच्छाके विरुद्ध प्रार्थनाको रोक दे? कृपा करके प्रार्थना आगे चलाइये।"

गांधीजीने युवकसे अपीकू की: "हजारों लोग चाहते हैं कि प्रार्थना हो । अगर तुम दुराग्रह करोगे, तो इन्हें बहुत निराशा होगी। क्या तुम्हें यह शोभा देता है ?"

वह युवक बैठ गया। परन्तु उसके स्थान पर दूसरा युवक खड़ा होकर आग उगलने लगा: "आप मस्जिदमें जाकर गीताके श्लोकोंका पाठ क्यों नहीं करते ?"

गांधीजी : "तुम्हें जोशमें आनेकी जरूरत नहीं है । तुम अपनी अविचारपूर्ण धर्मान्धतासे हिन्दू धर्मका भला नहीं कर रहे हो, बल्कि उसका विनाश ही निकट ला रहे हो। हिन्दू धर्म सहिष्णुता और उदारताकी पराकाष्ठाका द्योतक है। ये बादशाह खान हैं। तुम्हें ऐसे भक्तको देखना हो, जिसका रोम-रोम ईश्वर-परायण हो, तो उसे तुम इनमें देख सकते हो। उनके लिए भी तुम्हारे मनमें आदर नहीं है? परन्तु जैसा मैं पहले ही कह चुका हूं, कोई बच्चा भी आपत्ति करेगा तो मैं प्रार्थना आगे नहीं बढ़ाऊंगा।"

"आप पंजाब क्यों नहीं जाते ?"

[सभामें फिर चिल्लाहट और शोरगुल मचता है।]

"तुम निकल जाओ । हम चाहते हैं कि प्रार्थना हो।"

कुछ लोग अधीर होकर प्रार्थनामें हस्तक्षेप करनेवालेको मारने-पीटनेकी धमकियां देने लगे । गांधीजीने उनको मना कर दिया।

विरोध करनेवाला चिल्लाया : "मैं पांच मिनट चाहता हूं।"

गांधीजी : "तुम केवल हां या ना कह कर अपनी इच्छा प्रगट कर सकते हो; और मैं उसे मान लूंगा।"

युवक : "आप यहां मुस्लिम प्रार्थना नहीं कर सकते।"

गांधीजी : "बहुत अच्छा। . . . सब लोग शान्त और चुप रहें। कल मैं फिर यही प्रश्न पूछूंगा और छोटेसे बच्चेको भी यह अधिकार होगा कि वह केवल 'नहीं' कह कर मुझे प्रार्थना करनेसे रोक दे।" यह कह कर वे प्रार्थना-भूमिसे चले गये और अपने कमरेके भीतर एकान्तमें उन्होंने प्रार्थना की । केवल उनकी मंडलीके लोग ही उसमें उपस्थित रहे। प्रार्थना हो रही थी उस समय पं. नेहरू कमरेमें आये और किसीका ध्यान खींचे बिना मंडलीके साथ बैठ गये।

तीसरे दिन गांधीजी प्रार्थना-भूमि पर जा रहे थे तब उनके हाथमें एक पत्र दिया गया। कहा जाता है कि वह मेहतर-संघके अध्यक्षका था। उसका आशय यह था कि वे नहीं चाहते कि गांधीजी भंगीबस्तीमें ठहरें। जांच करने पर वह निरा छल साबित हुआ। गांधीजीने सभाको दुःखके साथ यह बताया : "मेरे जैसे बूढ़ेके साथ यह कितना निर्दय मजाक है। वे मुझसे कहते हैं कि मैं कुरानकी आयतें न पढ़ूं तो ही वे मुझे प्रार्थना-सभा करने देंगे । क्या मुझे अपनी इच्छानुसार प्रार्थना करनेकी भी स्वतन्त्रता नहीं है?" फिर गांधीजीने लोगोंको समझाया कि यदि भारी बहुमत प्रार्थनामें बाधा पहूंचानेकी धमकी देता, तो मैं अवश्य उनके रोषका सामना करके प्रार्थना करता । "परन्तु मैं देखता हूं कि आपत्ति करनेवाले मुट्ठीभर लोग ही हैं। यदि मैं अधिक संख्याके बल पर उन्हें दबा कर प्रार्थना करूं, तो यह भक्तिकी नहीं, शैतानकी विजय होगी । प्रार्थनाका लक्ष्य मनुष्योंके हृदयोंमें शान्तिकी स्थापना करना है, न कि अल्पमतको दबाना या उसे कुचल देना।" फिर उन्होंने पूछा, सभामें किसीको आपत्ति है? उत्तरमें तीत व्यक्ति खड़े हो गये ।

गांधीजी : "मैं विरोधके सामने सिर झुकाता हूं। प्रार्थना नहीं होगी ।"

जब वे जानेको उठे तो सभाकी तरफसे फिर चिल्लाहट हुई कि प्रार्थना कीजिये ।

गांधीजी : "आज नहीं । आपत्ति करनेवालोंकी संख्या आज बढ़ गई है । यह अच्छा है। परन्तु मैं आज शहीद होनेका आनन्द नहीं ले सकता। मुझे दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य करना है।

उन्होंने दुःखपूर्वक यह भी कहा: "नोआखालीमें लोगोंने मुझे रामधुन गानेसे कभी नहीं रोका । जिन्हें आपत्ति होती वे लोग प्रार्थना-सभासे चले जाते थे।...अब देखना कि पुलिस आपत्ति करनेवालोंको तंग ना करे।"

इस प्रकार प्रतिदिन अहिंसाकी नई परीक्षा होती थी। चौथे दिन गांधीजी इस विचारके साथ जागे : "शामकी प्रार्थनामें अभी तक विरोध क्यों बना हुआ है? " उन्होंने मनुसे कहा, अहिंसा और सत्यकी मेरी साधना मेरी ही भूलसे नहीं, परन्तु मेरे साथियोंकी त्रुटियोंसे भी असफल हो सकती है। तू प्रार्थना-सभाएं चलाती है, इसलिए तू अपने मनसे पूछ कि जो श्लोक तू बोलती है, वे तेरे हृदयसे पूरी श्रद्धाके साथ निकलते हैं या नहीं ? यदि तेरी प्रार्थना सीधी हृदयसे निकले, तो प्रार्थना-सभाओंमें होनेवाला धर्मान्ध विरोध बन्द हो जाना चाहिये। यदि तेरी प्रार्थना पूर्ण श्रद्धाके फलितार्थोंको पूरा करती हो, तो फिर क्या

बात है कि तुझे बार बार नकसीर छूटती है ? तुझे अपनी श्रद्धाको वास्तविक बनानेके लिए अधिक साधना करनी चाहिये; और उसकी बाह्य परीक्षा यह होगी कि तेरी नकसीर तुरन्त बन्द हो जाय ! गांधीजी चिन्ताके भारसे दबे जा रहे थे। मौलाना साहबसे बात करनेके बाद वे दुःखके साथ बोले : "मालूम होता है ईश्वर मुझे बहुत दिन नहीं जीने देगा।"

अन्तमें गांधीजीकी तपस्या सफल हुई। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघका एक नेता उस दिन शामको उनके पास आया और यह विश्वास दिला गया कि प्रार्थना-सभाओंमें अब बाधा नहीं डाली जायगी। लेकिन जब गांधीजीने प्रार्थना-सभामें फिर पूछा कि किसीको आपत्ति है, तो एक नवयुवकने हाथ उठा दिया। वह कुछ कह सके उससे पहले ही एक और युवक खड़ा हो गया। वह हिन्दू महासभाका सदस्य था। वह सभाको समझाने लगा: "महात्माजीने हमसे कहा है कि एक बच्चा भी आपत्ति करेगा, तो वे अपनी प्रार्थना-सभा जारी नहीं रखेंगे। . . . यह लज्जाकी बात है कि पिछले तीन दिनसे हमारे असभ्य विरोधके कारण वे अपनी प्रार्थना-सभा नहीं कर सके हैं। मैं आपसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूं कि अब प्रार्थनामें कोई बाधा न डाली जाय। अगर हम असहमत भी हों, तो शोभनीय ढंगसे अपनी असहमति प्रकट करनेके अन्य अनेक उपाय हमारे पास हैं।"

जब वह युवक अपनी बात पूरी कर चुका तो गांधीजीने फिर पूछा: "यदि किसीको आपत्ति हो, तो वह अपने निषेधाधिकारका अभी भी उपयोग कर सकता है।" इसके बाद सभामें बिलकुल खामोशी छा गई। पहला आपत्ति-कर्ता बैठ गया, परन्तु दूसरा उठा।

गांधीजी : "बहुत अच्छा, मैं अपनी हार मान लेता हूं। परन्तु यह सभाजनोंकी हार नहीं है। उनकी हार तो तभी होगी जब वे तुम्हारे साथ क्रोध, गाली-गलोच या मारपीटसे पेश आयंगे।"

हिन्दुसभाई मित्र फिर खड़े हुए और उन्होंने आपत्ति-कर्ताको समझाया । वह पिघल गया: "मैं अपना विरोध वापस लेता हूं । आप प्रार्थना कर सकते हैं ।"

इस प्रकार चौथे दिन प्रार्थना हुई। गांधीजीने अपने प्रार्थना-प्रवचनमें कहा : "कोई यह न समझे कि हमने पिछले तीन दिन तक प्रार्थना नहीं की है। वाणीसे हमने प्रार्थना नहीं की, परन्तु हृदयसे तो की ही है; और वही प्रार्थनाका अधिक परिणामकारी भाग है। इसमें विरोध करनेवालोंने भी, अनजाने ही सही, सहायता दी है। उनके विरोधसे मुझे आत्म-निरीक्षणमें जितनी सहायता मिली उतनी पहले कभी

नहीं मिली थी। आपको यह पूछनेका लोभ हो सकता है कि मैं इन छोटी छोटी बातोंमें इतना समय और इतनी शक्ति क्यों लगाता हूं, जब कि लॉर्ड माउन्टबेटनके साथ सन्धि- वार्ताएं हो रही हैं, जिन पर राष्ट्रके भाग्यका आधार है। मैं आपको बता दूं कि मेरे लिए कोई चीज बड़ी नहीं है और कोई छोटी नहीं है। सबका मेरी दृष्टिमें समान महत्त्व है। **नोआखालीमें, बिहारमें, पंजाबमें, दिल्लीमें और इस प्रार्थना-भूमिमें भी अखण्ड भारतके युद्धमें रोज हार-जीत होती है**। यहांके आजके अनुभवने मुझे और जगहोंकी सफलताकी कुंजी दे दी है।

उसके बाद प्रार्थना-सभाएं किसी विघ्नके बिना चलती रहीं। ४ और ५ अप्रैलको उनमें लोगोंकी हाजिरी एक एक लाखसे अधिक कूती गई थी।

३

गांधीजीका भंगीबस्तीमें ठहरनेका छोटासा सीधासादा कमरा सबके लिए यात्राका धाम बन गया। ऐसे अनेकों लोग, जिन्हें उनके दर्शन करने या चरण-स्पर्श करनेका मौका नहीं मिला, उनकी अनुपस्थितिमें उनके बैठनेकी चटाईके आगे प्रणाम करके सुख-सन्तोष प्राप्त कर लेते थे । एक दिन दो बहुत बूढ़ी निराश्रित स्त्रियां पंजाबससे आईं। एक हिन्दू थी, दूसरी मुसलमान। विवाहके बादसे ही दोनों पड़ोसिने और सहेलियां रही थीं। उनके पति भी आपसमें सगे भाईके समान थे। जब उपद्रव शुरू हो गये तो हिन्दू स्त्रीको अपने लड़केके दो बच्चोंके साथ प्राण लेकर भागना पड़ा। उसके लड़के और बहूका पता नहीं लग सका। मुस्लिम बहनके कोई बाल-बच्चा नहीं था और वह हिन्दू स्त्रीके बच्चोंको अपना ही समझती थी। जब हिन्दू स्त्री घर छोड़कर भाग आई, तो मुस्लिम बहनने भी उसके साथ आनेका निश्चय किया । दोनों एक निराश्रित छावनीमें ठहरी हुई थीं। वे गांधीजीके दर्शन करना चाहती थीं, परन्तु उनसे कह दिया गया कि दर्शन शामको प्रार्थनाके समय ही हो सकते हैं। उन्होंने सिसकते हुए कहा: "मगर बेटा, हम तो उनके पैर छूना चाहती हैं। हम चाहती हैं कि महात्माजी हमारे बच्चोंको आशीर्वाद दें। हमें बताओ महात्माजी कहां बैठते हैं।" बताने पर उन्होंने अत्यन्त पूज्य भावसे गांधीजीकी चटाईके सामने माथा टेक कर अपनेको धन्य समझा । गांधीजी वाइसरॉयसे मिल कर लौटे, तब दोनों उनकी प्रतीक्षा कर रही थीं। उन्होंने महात्माजीके दोनों हाथ पकड़ कर अपने "सम्मिलित" बच्चोंके सिर पर आशीर्वादके लिए रख दिये। उनमें से एक ७ वर्षका लड़का था और एक ४ वर्षकी लड़की थी। इन

सामान्य लोगोंमें सच्ची हिन्दू-मुस्लिम एकताके अपने आदर्शको मूर्तिमंत हुआ देखकर गांधीजी पर गहरा असर हुआ। इस एकताको सिद्ध करनेके लिए ही तो उन्होंने अपनी जानकी बाजी लगा रखी थी।

एक और दिन रावलपिंडीके निराश्रितोंकी एक मंडली आई। उन्होंने अपनी जो दुःखगाथा वर्णन की, वह हृदय-विदारक थी। लगभग एक हजार लोगोंमें से केवल १६ बचे थे और वह भी छिप कर। वे बोले : "हे अहिंसाके अवतार, अब आप ही बताइये हम जिंदा भी कैसे रहें ? लोगोंसे आप कहते हैं कि हथियार छोड़ो। परन्तु पंजाबमें तो मुसलमान हिन्दुओंको देखते ही मार डालते हैं। आपके पास पंजाब जानेके लिए समय भी नहीं है। क्या आप चाहते हैं कि हम भेड़ोंकी तरह कत्ल हो जायं ? यदि मरना ही हो, तो अपनी जान हमें महंगी कीमत पर तो देनी चाहिये।"

गांधीजी : "यदि सारे पंजाबी दूसरोंको मारे बिना मर जायं, तो पंजाब अमर हो जायगा। परन्तु आप हथियार उठा लेते हैं और जब हार जाते हैं तो मेरे पास आते हैं। ऐसी हालतमें मैं आपकी क्या मदद कर सकता हूं? यदि आप मेरी बात सुनें, तो मैं यहां बैठे बैठे भी पंजाबमें शान्तिकी पुनर्स्थापना कर सकता हूं। एक हजार आदमियोंने प्राण तो दे दिये, परन्तु बहादुरोंकी तरह नहीं दिये। यह और भी दुःखकी बात है। कितना अंतर पड़ जाता, यदि उन्होंने वीरता दिखा कर अहिंसक रीतिसे स्वेच्छापूर्वक अपना बलिदान दे दिया होता। अहिंसाके साथ आप विरोध कर सकते हों तो कीजिये; किन्तु यदि बहादुरोंकी अहिंसा आपमें न हो, तो हर तरहसे लड़ते हुए मर जाइये। परन्तु कायर न बनिये।"

*

एशियाई सम्मेलनके कुछ विदेशी प्रतिनिधि और दर्शक अपने अपने घर लौटनेसे पहले गांधीजीसे बिदा लेने आये। उनमें से कुछ लोग भेंट लाये थे। तिब्बतके प्रतिनिधिने एक बढ़िया गालीचा, भगवान बुद्धकी मूर्तियां और रेशमके कपड़े भेंट किये। मुलाकातियोंके साथ कई छोटी छोटी जापानी लड़कियां भी थीं। उनमें से एकको प्रेरणा हुई, "मैं भी कोई चीज महात्माजीको भेंट क्यों न करूं?" वह कमरेके एक कोनेमें चली गई। उसने जल्दीसे अपने रूमालका एक सुन्दर बठुआ बना कर गांधीजीके सामने रख दिया। गांधीजी बोले: "मैं इसका क्या करूं ? मेरे पास तो इसमें रखनेके लिए एक पाई भी नहीं है।" जब एक दुभाषियेने गांधीजीके ये उद्‌गार उस लड़कीको जापानी भाषामें समझाये, तो लड़कीके निर्दोष मुख पर निराशा छा गई। परन्तु उसने हिम्मत न हारी। एक चक्कर लगा कर उसने

अपने मित्रोंसे १०० रुपये इकट्ठे कर लिये, चुपकेसे बटुएमें रख दिये और विजयके गर्वसे उसे हाथमें लिये लौट आई । गांधीजीने भेंट स्वीकार कर ली और खिलखिला कर बोले : "बेटी, यह रुपया इस देशकी तुम्हारे जैसी छोटी छोटी लड़कियोंकी भलाईमें खर्च होगा।" चीनी बच्चोंने गांधीजीकी धोतीके लिए हाथकते और हाथबुने रेशमके दो टुकड़े भेंट किये और गांधीजीने अपने दोपहरके भोजनमें से गेहूंके खाखरे, किशमिश और खांड़ देकर उन्हें अत्यन्त प्रसन्न कर दिया ! बर्मी बच्चे एक छोटासा सन्दूक और अंगूठी लाये थे। एक और छोटी बच्ची एक छोटासा चरखा लेकर आयी, जिसे महात्माजी स्वयं चला रहे थे। महात्माजीके हाथोंमें चरखा रख कर वह आनन्दसे कांपते स्वरमें बोली : "ये राष्ट्रपिता कात रहे हैं !"

४ अप्रैलकी शामको पं. नेहरू मिस्रके प्रतिनिधियोंको गांधीजीसे मिलाने लाये । उनमें से एकने ये प्रश्न पूछे: "(१) अंग्रेज भारत छोड़कर चले जायं तो भी क्या आप उन्हें भारतमें सैनिक सुविधाएं देंगे ? (२) स्वाधीनता प्राप्त करतेके बाद क्या भारत आपकी अहिंसाकी नीति पर चलता रहेगा ? (३) भारतकी स्वाधीनता प्राप्त करनेके लिए क्या आप अमरीकी सहायताका स्वागत करेंगे ? " पहले प्रश्नके उत्तरमें गांधीजीने कहा : "कुछ विशेष परिस्थितियोंमें मैं यह कल्पना कर सकता हूं कि ब्रिटेन स्वाधीन भारतसे ऐसी प्रार्थना करे और मित्रके नाते अपने अस्तित्वके लिए यह रियायत चाहे । मुझे आशा है कि उस स्थितिमें भारत पिछले अन्यायोंकी स्मृतिसे प्रभावित हुए बिना उस अनुरोधके उचित-अनुचित होने पर विचार करेगा।" भारतकी स्वाधीनता-प्राप्तिके लिए अमेरिकाकी सैनिक सहायताके बारेमें गांधीजीने दृढ़तासे कहा : "स्वाधीनताकी प्राप्तिके लिए विदेशी सहायता लेनेका मैं कभी विचार नहीं कर सकता। मुझे पता नहीं कि स्वाधीनताके बाद भारतकी राष्ट्रीय नीति क्या होगी। परन्तु मेरा विश्वास है कि एक दिन ऐसा आयेगा जब संसार शांतिकी खोजमें भारतका दरवाजा खटखटायेगा और भारत तथा एशिया संसारको प्रकाश देंगे। मैं नहीं जानता कि जो दावानल हमारे चारों ओर फैलना चाहता है, उससे बच कर मैं वह दिन देखनेको जीवित रह सकूंगा या नहीं । परन्तु आप सब तो नौजवान हैं, आप उसे देखनेके लिए जीवित रहेंगे।" प्रतिनिधियोंको गांधीजीने "नौजवान" कहा इसलिए सब हंस पड़े।

दूसरे दिन कुछ यूरोपियन दर्शक डॉ. जहरीरके साथ आये। उनमें से एकने गांधीजीसे स्वतंत्र भारतकी आर्थिक नीतिके विषयमें उनकी कल्पना-सम्बन्धी एक प्रश्न पूछा । गांधीजीने जवाब दिया: "मुझे आशा है कि हम दूसरोंका शोषण करके कभी धनी बनना नहीं चाहेंगे, क्योंकि हम खुद इस अनुभवसे गुजर चुके हैं। उदाहरणके लिए, हम अपना तैयार कपड़ा किसी ऐसे पड़ोसी देशको सहायता

देनेके लिए निर्यात कर सकते हैं, जिसके यहां कपड़ेकी कमी हो। परन्तु यह सहायता मित्रकार्यके रूपमें हम करेंगे, औद्योगिक दृष्टिसे पिछड़े हुए राष्ट्रका शोषण करनेके लिए नहीं।" और औद्योगिक दृष्टिसे उन्नत पश्चिमी देशोंके लिए भी गांधीजीका यही सन्देश था "काश, पश्चिमी सत्ताएं भारतको शोषणका पात्र न समझ कर ऐसा देश समझना सीख लें, जिसकी स्वाधीनताका उन्हें इसलिए आदर करना चाहिये कि वह शस्त्रबलके बिना प्राप्त की गई है ! यदि हममें तकनीकी ज्ञानका अभाव है, तो वे हमें वह ज्ञान पारस्परिक सहायताकी वृत्तिसे, न कि अनाप-शनाप कीमत लेकर, दे सकते हैं । . . . जो ईसाई धर्म पश्चिमसे भारतमें आया वह एक मिश्रणवाला धर्म था। यदि ईसाई मिशन गरीब ग्रामजनोंकी मानवतापूर्ण सेवा करने यहां आयें और धर्म-परिवर्तनका हेतु अपने सामने न रखें, तो ग्रामजन सदा ही आपके कृतज्ञ रहेंगे और ईसाई मिशन स्वयंको ईसा मसीहके सच्चे उत्तराधिकारी तथा सच्चे प्रतिनिधि सिद्ध करेंगे।"

आगन्तुकों पर गांधीजीकी इन बातोंका बड़ा प्रभाव पड़ा : "आपसे मिल कर हम धन्य हो गये। ईसाने 'गिरि-प्रवचन' (सर्मन ऑन दि माउन्ट) में जो मार्ग बताया है वह 'न्यू टेस्टामेन्ट' के पृष्ठोंसे निकाल कर आप हमें दिखा रहे हैं। आपने सत्य और अहिंसाके विषयमें जो कुछ कहा है, उसका हम पर गहरा असर पड़ा है। आपके देशके प्रति हमारी कठोर उदासीनताके विषयमें आपने जो कुछ कहा वह भी सच है। आपसे मिल कर हमें जो अदभुत अनुभव हुआ उसे हम अपने साथ ले जायंगे और अपने देशवासियोंको आपका सन्देश पहूंचायेंगे। हम अच्छी तरह समझते हैं कि विदेशी राज्यके कारण ही आपका देश अमानुषिक हत्याकाण्डका शिकार हो रहा है और आप जैसे संतको और आपके राजनीतिक उत्तराधिकारी पंडित नेहरूको इतना दुःख हो रहा है। हम आपके स्वास्थ्य और दीर्घ जीवनके लिए प्रार्थना करते हैं।"

यह एक मर्मस्पर्शी दृश्य था कि एक तरफ तो गांधीजीसे मिलने आनेवाले विदेशी प्रतिनिधि उनके प्रति गहरा भक्तिभाव प्रदर्शित करें और दूसरी तरफ उनके अपने ही अनेक देशवासी सारा विवेक खो बैठें । उन्होंने प्रत्येक मुलाकातीसे उपयुक्त बात कही । तिब्बतियोंसे उन्होंने बुद्धके अमर सन्देशको पुनर्जीवित करनेका अनुरोध किया। अरबोंके साथ उन्होंने सहानुभूति प्रकट की, परन्तु यहूदियोंके साथ प्रेम और समझदारीका व्यवहार करनेको कहा । यहुदियोंको उनकी यह सलाह थी कि वे आतंकवादी तरीके छोड़ दें । गांधीजीने राष्ट्रीय भूमिकी उनकी आकांक्षाओंके प्रति सहानुभूति प्रकट की, परन्तु यह कहा कि यदि उनके दावेके अनुसार वह कोई आध्यात्मिक आदर्श हो तो उसे प्राप्त करनेके लिए अरबोंके

प्रति उन्हें सद्भावना और मित्रताका विकास करना चाहिये, न कि साम्राज्यवादी सत्ताओंके हस्तक्षेप द्वारा उसे प्राप्त करना चाहिये। इण्डोनेशिया और वियेटनामवालोंको उन्होंने समझाया कि जो चीज तलवारसे प्राप्त की जाती है वह तलवारसे ही नष्ट हो जाती है। बल-प्रयोगके आधार पर किसी स्थायी वस्तुका निर्माण नहीं किया जा सकता।

एक प्रतिनिधि बोला: "आज तक ऐसा दूसरा व्यक्ति हमने कभी नहीं देखा।" दूसरेने कहा: "हमें गांधीजीसे मिलनेका सौभाग्य न मिलता, तो हमारी भारतकी यात्रा अधूरी ही रह जाती।" एक महिला बोली: "ऐसा नेता पाकर आप धन्य हो गये। अगर हमें ऐसा नायक मिल जाता, तो हमें किसीको मारना न पड़ता।"

४

६ अप्रैलको राष्ट्रीय सप्ताह शुरू हुआ। १९१९ में इसी दिन रौलट कानूनके विरुद्ध सत्याग्रह छेड़ा गया था। उस दिन भारतभरमें उपवास और प्रार्थनाएं करके यह दिवस मनाया गया था। उससे जन-समूहमें जो स्वाभाविक उत्साह पैदा हुआ, वह आत्माको हिला देनेवाला दृश्य था। वह भारतमें उत्पन्न हुई जागृतिका द्योतक था; देशके जन-साधारणने अपनी शक्तिको और अहिंसाके सुप्त बलको पहचान लिया था। उसके एक सप्ताह बाद जलियांवाला बागका हत्याकाण्ड हुआ था। उसमें हिन्दुओं, मुसलमानों और सिक्खोंका निर्दोष रक्त एकसाथ बहा। वह भारतके अहिंसक स्वातंत्र्य-संग्रामके आरंभका प्रतीक था। इन घटनाओंकी यादगारमें गांधीजीने ६ से १३ अप्रैलके बीचके दिनोंको राष्ट्रीय सप्ताहके रूपमें मनानेकी परम्परा स्थापित की थी। यह सप्ताह पहले और आखिरी दिन उपवास रख कर और प्रार्थनाएं करके तथा सारे सप्ताह रचनात्मक प्रवृत्तियोंका सधन कार्यक्रम रखकर मनाया जाता था। कार्यक्रममें सामूहिक सफाई, हरिजन-सेवा, साम्प्रदायिक एकता और सामुदायिक कताई सम्मिलित थी। ५ अप्रैलको अपने प्रार्थना-प्रवचनमें इसका उल्लेख करते हुए गांधीजीने दोहराया कि चरखा और उसके साथ जुड़ी हुई विचारधारा और जीवन-पद्धति ही देशके उद्धारका और हृदयमें शान्ति अनुभव करनेका एकमात्र राजमार्ग है। उन्होंने बताया कि किस प्रकार अन्य सब साधनोंके व्यर्थ सिद्ध होने पर चरखेसे कई भाइयोंको आध्यात्मिक शांति और सान्त्वना मिली। उन्होंने भविष्यवाणी की कि यदि आप आपसमें लड़ते रहे, तो स्वाधीनताका सुनहरा फल आपके हाथसे निकल जायगा। अगर पाकिस्तानका अर्थ केवल मुसलमानोंका ही देश किया गया, तो वहां जहरकी नदियां बहने लगेंगी। मेरी कल्पनाका भारत

प्रेमकी नदियोंसे सींची जानेवाली भूमि होगा । मेरा यह दावा है कि मुझे विषको भी अमृत बनानेवाले रसायनका रहस्य मालूम है। परन्तु इसके लिए मुझे आपका सहयोग चाहिये ।

संयोगसे वही दिन चार्ल्स एन्ड्रूजका श्राद्धदिवस भी था। गांधीजीने अपने भाषणके अन्तमें भारतके उस हितैषी और मानव-जातिके सेवककी भूरि-भूरि प्रशंसा की: "वे सच्चे अंग्रेज होते हुए भी हृदयसे भारतीय थे।"

राष्ट्रीय सप्ताहके दौरान एक राष्ट्रवादी मुस्लिम नेता और गांधीजीके बहुत पुराने मित्र ख्वाजा अब्दुल मजीद उनसे मिलने आये। भारतके विभाजनकी संभावनासे वे बहुत दुःखी थे, परन्तु अपना दुःख हंसीमें उड़ा देनेकी कोशिश करते थे। हंसनेका बहाना करके उन्होंने गांधीजीकी मंडलीके एकसदस्यसे कहा : "बुढ़ापेमें बापूजी अब हमें हिन्दुस्तानसे बाहर धकेलने जा रहे हैं। जब भारतका विभाजन हो जायगा तब मैं आपकी शरणमें आ जाऊंगा। आप हिन्दुओंको मेरी हत्या नहीं करने देंगे।" ये वचन उन्होंने विनोदमें कहे । गांधीजीने ये वचन सुन लिये। वे बोल उठे : "कोई धर्मान्ध आपको मार डाले तो मैं खुशीसे नाचूंगा ! मेरा दुर्भाग्य यही है कि मेरे पास आपके जैसे बहुत आदमी नहीं हैं, जो बहादुरीसे मर जायं मगर क्रोध न करें। अगर मेरे पास आप जैसे आधे दर्जन लोग भी हों, तो बातकी बातमें हमें निगल जानेकी धमकी देनेवाली कौमी आगकी ज्वालायें बुझ जायं और भारतमें शान्ति फैल जाय ।" गांधीजीको क्या मालूम था कि नौ महीने बाद यही मुसलमान मित्र उनके शरीर पर फातिहा पढ़ेंगे, जब वह एक धर्मान्धकी गोलियोंसे छिद कर निर्जीव पड़ा होगा !

शामकी प्रार्थना-सभामें गांधीजीने ख्वाजा साहबकी स्नेहपूर्ण प्रशंसा की और कहा : "खुशहाल होते हुए भी ये दिलसे फकीर हैं, खादीके प्रेमी और अहिंसाके पुजारी हैं। कोई इनके प्राण लेने आये तो ये क्रोधका एक शब्द भी मुंहसे नहीं निकालेंगे, लेकिन अल्लाहका नाम रटते रटते मर जायेंगे।" मुझे याद है कि सन् १९२० के आसपास असहयोग आन्दोलनके दिनोंमें जब मैं अलीगढ़ गया था तब इन्हींके घर ठहरा था। मेरे साथ उन दिनों एक स्वामीजी थे। उन्होंने तब तक मुसलमानके हाथके खानेसे परहेज करना नहीं छोड़ा था। इस पर रोष प्रगट करनेके बजाय ख्वाजा साहबने अत्यंत स्वाभाविकता और सद्भावसे उनके लिए एक ब्राह्मण रसोइया रख दिया। कोई सारी मुस्लिम कौमकी निन्दा या उससे घृणा कैसे कर सकता है, जब उसने भारतको बादशाह खान और ख्वाजा अब्दुल मजीद जैसे सपूत दिये है?

जब कौमी पागलपन चारों ओर फैल गया और मुस्लिम लीगके प्रचारसे गुमराह होकर बहुतसे मुसलमान कुछ समयके लिए गांधीजीसे अलग हो गये तब खिलाफत और असहयोग आंदोलनके उज्ज्वल युगके जो थोड़ेसे पुराने मुसलमान साथी उनके साथ रह गये, उन्हें गांधीजीने बड़ी दृढ़तासे अपनी आत्माके साथ चिपकाये रखा था । गांधीजीकी दृष्टिमें समूची मुस्लिम कौमके, इस्लामके उत्तम अंशके और सच्ची राष्ट्रीय एकताके प्रतीक ये ही लोग थे। उन्होंने प्रार्थना-सभासे कहा: यदि आप बादशाह खान और ख्वाजा अब्दुल मजीदसे कड़वे वचन बोले बिना हंसते हंसते दुश्मनके हाथों मरनेकी कला सीख लें, तो आपका पुनर्जन्म होगा और जो दावानल आज देशको जलाकर भस्म कर देना चाहता है उसीमें से हमारे सपनोंका भारत जन्म लेगा।

*

१९४७ का गरमीका मौसम दिल्लीके पुराने निवासियोंकी स्मृतिमें भी सबसे ज्यादा गरम था । दिनके अधिक भागमें झुलसा देनेवाली लू चलती थी। गांधीजीको अपने सिर पर गीला टुवाल रखकर बैठना पड़ता था (यही उनका वातानुकूलन था!) परन्तु ग्रीष्म ऋतुका उन पर इतना बुरा परिणाम नहीं होता था जितना कि साम्प्रदायिक संघर्षका । घटना-चक्र जिधर जा रहा था उससे उनके भीतर धधकती आग उनकी आत्माको खाये जा रही थी।

ऊपरसे गांधीजी सदाकी भांति शांत तथा स्वस्थ दिखाई देते थे और सतत काममें लगे रहते थे, परन्तु उनका मन सतत उनकी आत्मामें समाये हुए इस महाप्रश्नका उत्तर ढूंढ़ता रहता था: साम्प्रदायिक द्वेषके फैलते हुए दावानलको अहिंसासे कैसे नियंत्रणमें लाया जाय ? उत्तकी डाकमें एक पत्र आया, जिस पर पता लिखा था "मुहम्मद गांधी"। एक और पत्रमें उन्हें "सम्प्रदायवादी" बताया गया था और तीसरे पत्रमें "जिन्नाका गुलाम"। इससे उनका मनोरंजन ही होता था। "लोगोंने ही मुझे महात्माकी पदवी दी थी। अब ये विशेषण भी उन्हींकी देन हैं। मैं दोनोंका समान स्वागत करता हूं।"

अपने एक प्रार्थना-प्रवचनमें इन पत्रोंका उल्लेख करते हुए गांधीजीने कहा : "मेरा सत्यके उस सन्देशमें विश्वास है, जो संसारके समस्त धर्मगुरुओंने दिया है। मैं निरन्तर ईश्वरसे यह प्रार्थना करता हूं कि अपने निन्दकोंके प्रति भी मेरे मनमें कभी क्रोधका भाव न आये और यदि मैं किसी हत्यारेकी गोलीका भी शिकार बन जाऊं तो भी मैं रामका नाम जपते जपते अपने प्राण त्यागूं। यदि अंतिम क्षणमें भी मेरे

आक्रमणकारीके प्रति क्रोधका शब्द या अपशब्द मेरे मुंहसे निकल जाय, तो इतिहासमें दंभी माना जानेसे मुझे सन्तोष होगा। संसार आज ऐसे ढोंगियोंसे भरा है। मेरी मृत्युसे ही इस बातका निश्चय होगा कि मैं मुहम्मद गांधी हूं, जिन्नाका गुलाम हूं, हिन्दू धर्मका विनाशक हूं या उसका सच्चा सेवक और रक्षक हूं। हमें प्रतिशोध या बदलेकी दृष्टिसे सोचना बन्द कर देना चाहिये। केवल सर्वशक्तिमान ईश्वर ही प्रतिशोध और बदला ले सकता है। हमें ईश्वरका इनकार करके उसका स्थान हड़पना नहीं चाहिये। क्या हम पारस्परिक हिंसासे एक-दूसरेको ऐसी भूमिमें नष्ट कर देंगे, जिसकी रक्षा अमर हिमालय करता है और जिसका सिंचन पवित्र तथा प्राणदायिनी गंगा और यमुना करती हैं? मेरी हार्दिक प्रार्थना है कि ईश्वर मुझे ऐसी करुण घटनाका या अपनी रक्षाके लिए ब्रिटिश सेनाकी सहायता मांगनेकी शर्मका साक्षी बननेके लिए जिन्दा न रखे।"

*

युद्धके विषय पर अपने एक भाषणमें रस्किनने महिला श्रोताओंको सम्बोधित करते हुए एक बार कहा था – भाषणमें उन्होंने महिलाओंको "सैनिकोंकी आत्मारूप पत्नियां और कन्यायें" तथा "अपनी संतानोंको युद्धमें समर्पण करनेवाली मातायें" कहा था – कि मैं समझ नहीं सकता कि आप युद्धकालीन पागलपनके वश इतनी क्यों हो जाती हैं, जब कि इस भीषण नर-संहारमें सबसे अधिक हानि आपकी ही होती है। मैं तो "हथोड़ेकी चोटोंकी उस स्वर-लहरीमें खुशीसे शरीक हो जाता, जिससे तल्वारोंको पीट कर हल बनाये जाते हों।" परन्तु ऐसा न हो सकनेका कारण "हम पुरुषोंका" दोष नहीं, बल्कि पूरी तरह आप लोगोंका दोष है। "यूरोप भरमें सारी दरिद्रता, सारे दुःख और सारे युद्धकोपका सच्चा और अन्तिम कारण सिर्फ यह है कि आप स्त्रियां कितनी ही भली, कितनी ही धार्मिक और अपने स्नेही जनोंके लिए कितना ही त्याग करनेवाली क्यों न हों, तो भी आप इतनी स्वार्थी और विचार-शून्य हैं कि अपने निकटतम क्षेत्रोंसे बाहरके किसी प्राणीके लिए आप कष्ट नहीं उठा सकतीं।" रस्किनने अपने भाषणके अन्तमें नीचेके अर्थपूर्ण उद्गार प्रगठ किये:

> आप जानती हैं, या आप सोचें तो जान सकती हैं, कि ऐसी हर लड़ाईने, जिसके विषयमें आपने सुना है, अनेक विधवाओं और अनाथोंको पैदा किया है। उनके साथ सच्चे अर्थमें शोक मनानेके लिए हममें से किसीमें भी पूर्ण सहानुभूति नहीं है। परन्तु और कुछ नहीं तो उनके साथ

> शोक मनानेके लिए बाह्य चिह्न तो हम धारण कर ही सकते हैं। हृदयमें ईश्वरके प्रति श्रद्धा रखनेवाली प्रत्येक ईसाई महिला प्रतिज्ञा करे कि ईश्वरके मरे हुए प्राणियोंके लिए वह कमसे कम बाहरी शोक मनायेगी। . . . सभ्य यूरोपके उच्च वर्गकी प्रत्येक महिला इतना व्रत ले ले कि जब तक कोई भी निर्दय युद्ध चल रहा हो तब तक वह गहरे काले वस्त्र पहनेगी और कोई रत्न अथवा आभूषण धारण नहीं करेगी। कोई भी बहाना ढूंढ़ कर इस व्रतको तोड़गी नहीं। मैं आपसे कहता हूं कि . . . आप इतना करें तो कोई युद्ध एक सप्ताह भी नहीं टिकेगा।

गांधीजी, जो बहुत बातोंमें रस्किनसे सहमत थे, एक कदम आगे बढ़ गये थे। उन्होंने अपने आश्रमकी स्त्रियोंसे कहा कि तुम्हारी गुलामी और पराधीनताके मूलमें रही पारिवारिक चिन्ताओं और हितोंके एकांगी तथा संकुचित घेरेसे बाहर निकलनेके लिए तथा अधिक विशाल सामाजिक दृष्टिका विकास करनेके लिए तुम्हें अपनी दीवारें गिरा देनी चाहिये, अलग अलग पारिवारिक रसोई-घर उठा देने चाहिये और मिलकर सम्मिलित भोजनालयका काम संभाल कर उसे सारे आश्रमके लिए चलाना चाहिये। इसीके स्वाभाविक परिणाम-स्वरूप तुम्हें दूसरे बच्चोंको अपने घरोंमें रखना चाहिये और अपने बच्चोंको दूसरोंकी देखभालमें रख देना चाहिये। गांधीजीका दावा था कि यदि स्त्रियां अपने संकुचित दृष्टिकोणको छोड़ दें, अपने छोटेसे परिवारको ही अपना विश्व न बना लें; और अपनी "पारस्परिक काम-वासना" को शुद्ध करके ऊंची भावनामें बदल लें तथा अपनी सामाजिक जिम्मेदारियोंके व्यापक सन्दर्भमें उस शक्तिको अनुभव कर लें – जो जाग्रत रहकर पालन की जानेवाली अहिंसामें होती है, तो वे पृथ्वी पर न्याय और शान्तिका राज्य स्थापित करनेका साधन बन जायंगी, जिसके लिए प्रकृतिने उनका निर्माण किया है।

एक अमरीकी महिलाके साथ बातचीत करते हुए गांधीजी बोले : "यह सिद्ध करना अमरीकी स्त्रियोंका काम है कि संसारमें स्त्रियां कितनी बड़ी शक्ति हो सकती हैं। परन्तु यह तभी हो सकता है जब आप पुरुषोंके फुरसतके समयका खिलौना न रहें। आपको स्वतंत्रता मिली हुई है। आप शान्तिकी शक्ति तभी बन सकती हैं जब आप उस झूठे विज्ञानकी बाढ़में बहनेसे इनकार कर दें, जो भोग-विलासको गौरव प्रदान कर रहा है। आज यह भोग-विलास पश्चिमको खाये जा रहा है। इसके बजाय आपको अपना मन अहिंसाके शास्त्रकी तरफ लगाना चाहिये, क्योंकि क्षमा आपका स्वभाव है। पुरुषोंकी नकल करके आप न तो पुरुष बत सकती हैं और न अपने सच्चे स्वरूपके अनुसार काम करके अपनी ईश्वर-प्रदत्त

प्रतिभाका विकास कर सकती हैं। ईश्वरने स्त्रीको अहिंसाकी शक्ति पुरुषसे अधिक दी है। वह मूक होनेके कारण और भी अधिक प्रभावशाली है। यदि स्त्रियां केवल अपनी ऊंची शक्तिको अच्छी तरह समझ लें, तो वे अहिंसा-धर्मकी स्वाभाविक संदेशवाहिनी हैं।"

अमरीकी महिला पर गांधीजीकी बातका गहरा असर हुआ। उसने कहा : "यदि दुनियामें कोई एक पुरुष ऐसा है जो स्त्री-जातिको उद्धारका मार्ग बता सकता है तो वह आप हैं। हमारा बड़ा सौभाग्य है कि आपमें इस कार्यकी तीव्र रगनके साथ साथ उसके उपायका ज्ञान भी है। हम अनुभव करती हैं कि आज आपने हमसे जो कुछ कहा है वही अणुबमकी चुनौतीका एकमात्र उत्तर है। हम आपके सन्देशको सदा अपने हृदयोंमें अंकित करके रखेंगी।"

जानेके लिए उठते उठते उसने पूछा: "आप हमारे देशमें क्यों नहीं आते ?"

जब मेरा अपना घर जल रहा हो तब मैं वहां कैसे आ सकता हूं ? लेकिन यदि आप यहां आ जायं और अपनी अहिंसासे भारतमें फैल रहे दावानलको रोक दें, तो भारतके आजाद होने पर मैं बड़ी खुशीसे आपके देशमें जा सकता हूं।"

विदेशोंसे आनेवाले अधिकांश लोगोंका गांधीजीके प्रति इतना पूज्य भाव था कि जब उन्हें कुर्सी दी जाती थी तो बहुतसे उस पर बैठते नहीं थे और आदत न होने पर भी आग्रहपूर्वक भारतीय ढंगसे जमीन पर पलथी मार कर ही बैठते थे। उनमें से कुछ लोग कमरेसे जाते समय पिछले पांवों लौटते थे, ताकि गांधीजीकी तरफ उनकी पीठ न हो।

दो दिन बाद कार्यकर्त्रियोंकी एक मंडलीने गांधीजीसे पूछा : स्त्रियोंको स्त्रियोंमें ही कार्य करना चाहिये अथवा पुरुषोंमें भी। गांधीजीने उत्तर दिया : मैं यह नहीं मानता कि किसी भी क्षेत्रमें पुरुषों और स्त्रियोंका कृत्रिम अलगाव हो। परन्तु यह स्पष्ट है कि आवश्यक योग्यतावाली कार्यकर्त्रियोंकी बड़ी कमीको देखते हुए और भूतकालमें पुरुषोंकी उपेक्षाके कारण स्त्रियोंमें जो विशाल कार्य करनेके लिए पड़ा है उसका विचार करके जो भी कार्यकर्त्री मिल सके उसकी बहुत समय तक केवल स्त्रियोंकी ही सेवाके लिए जरूरत होगी। मैं नहीं चाहता कि स्त्रियां पुरुषोंकी नकल करें अथवा उनके साथ प्रतियोगितामें पड़ें। स्त्रियां और पुरुष हर बातमें समान तो हैं, परन्तु भिन्न भी हैं। वे एक-दूसरेकी कमी

पूरी करने और शक्ति बढ़ानेके लिए उत्पन्न किये गये हैं। एक-दूसरेके प्रति उनका आचरण मुक्त और स्वाभाविक होना चाहिये, परन्तु साथ ही उसमें अनुशासन और नियमन भी पर्याप्त मात्रामें रहना चाहिये।

उन्होंने ग्राम-स्वराज्य पर गांधीजीके विचार जानने चाहे। गांधीजीने उनसे कहा कि इसकी कुंजी अहिंसा है – खास तौर पर उसके रचनात्मक स्वरूपमें । "आजकल बहुतसे रचनात्मक कार्यकर्ता, जो अहिंसामें श्रद्धा रखते थे, उसके साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। परन्तु वे सब सत्य, अहिंसा, खादी, ग्रामोद्योग और ऐसी ही दूसरी रचनात्मक प्रवृत्तियोंका परित्याग कर दें और मैं अकेला रह जाऊं, तो भी मैं उनमें अपनी श्रद्धा पुकार पुकार कर व्यक्त करूंगा; क्योंकि भारतीय जन-साधारणके उद्धारका अन्य कोई साधन मुझे नजर नहीं आता। तकनीकी विज्ञानने जो अद्भुत प्रगति की है उसके बावजूद मेरा यह दावा है कि अहिंसामें निहित शक्तिकी बराबरी कोई शक्ति नहीं कर सकती। संभव है कि अन्तमें भारत शस्त्रास्त्रके मार्ग पर चला जाय । परन्तु मेरा दृढ़ विश्वास है कि यदि भारतके स्त्री-पुरुष वीरता और अहिंसाके साथ मृत्युका सामना करनेका साहस अपनेमें उत्पन्न कर लें, तो वे शस्त्रास्त्रकी शक्तिका उपहास और तिरस्कार करते हुए जन-साधारणकी दृष्टिसे विशुद्ध स्वाधीनताका ऐसा आदर्श सिद्ध कर सकते हैं जो दुनियाके लिए एक मिसालका काम देगा। इसमें स्त्रियां नेतृत्व कर सकती हैं, क्योंकि वे आत्म-पीड़नकी जीती-जागती मूर्ति हैं।"

*

एक विद्वान और ऊंचे पद पर काम करनेवाले मित्रने गांधीजीको लिखा था कि अंग्रेज कर्मचारियों और अंग्रेज व्यापारियोंसे आपको सावधान रहना चाहिये; उनका सोचने-विचारनेका तरीका अभी तक वही पुराना है। नये वाइसरॉयने अपने इरादोंके बारेमें कोई शंका नहीं रहने दी थी। परन्तु यह डर व्यापक रूपमें फैला हुआ था कि उनके इरादों पर वे शक्तियां कहीं पानी न फेर दें, जिन्होंने पहले भी कई बार ब्रिटिश लक्ष्योंको विफल कर दिया था। यह भय निराधार भी नहीं था। लॉर्ड माउन्टबेटनके लिए भी ब्रिटिश उच्चाधिकारियों और स्थायी नौकरीवालोंको यह बता देना अनिवार्य हो गया था कि ब्रिटिश योजनाओं और इरादोंके पीछे कितनी उत्कटता है।

स्वाधीनताके उषाकाल और सूर्योदयके बीचके समयमें भारतकी आत्मामें जो डर भर गये थे, उन्हें प्रकट करते हुए १० अप्रैलकी शामको गांधीजी बोले :

"लोगोंके मन अस्वस्थ और विचलित हो रहे हैं।" वे मुझसे पूछते हैं कि भारतमें जो विविध ब्रिटिश स्वार्थ जमे हुए हैं, उनके संगठित असहयोगको देखते हुए क्या लॉर्ड माउन्टबेटन अपने कर्तव्यका पालन कर सकेंगे ? अथवा उन्हें विवश होकर अपना वचन वापस ले लेना पड़ेगा ? मौजूदा परिस्थितियोंमें कुछ भी संभव है। स्वतंत्रताका उषाकाल तो हो गया है, परन्तु अभी तक हमें उसके सूर्योदयके प्रकाशका अनुभव नहीं होता । हम नहीं जातते कि जो उषाकाल हम देखते हैं वह सच्चा है या झूठा । हम आशा और भयके बीच कांप रहे हैं। हमारे हृदय शंकासे भरे हुए हैं। अभी तक अंग्रेज अधिकारी और व्यापारिक हित हमारी पीठ पर सवार रहे हैं। मैं उनसे कहे देता हूं कि अब समय आ गया है जब उन्हें हमारी पीठ परसे उतरनेका निश्चय कर लेना चाहिये। वाइसरॉयने घोषणा कर दी है कि अगले वर्ष ३० जून तक भारतसे हट जानेका अंग्रेजोंने अंतिम निर्णय कर लिया है। उनकी घोषणाको ब्रिटिश पार्लियामेन्टकी संपूर्ण सत्ताका समर्थन प्राप्त है। चर्चिल और उनका दल इस बात पर तुले हुए दिखाई देते हैं कि लड़े बिना हार स्वीकार न की जाय। परन्तु लड़ाई हो या न हो, ब्रिटिश सत्ताको भारतसे जाना पड़ेगा। मैंने यह चेतावनी इसलिए दे दी है कि कोई गलत रास्ते पर जानेवाले तत्त्व हों तो वे रुक जायं, विचार करें और बुरे रास्ते पर न चलें।

मुझसे यह भी कहा गया है कि आजके साम्प्रदायिक उत्पातोंके पीछे ब्रिटिश अधिकारियों और व्यापारी वर्गका हाथ है। लॉर्ड माउन्टबेटनको यह अंदेशा हो गया है कि इन लोगोंके विरुद्ध जो आरोप लगाया जा रहा है वह अंतमें कहीं सच्चा न साबित हो। भारतके ब्रिटिश तत्त्वोंका यह फर्ज है कि वे वाइसरॉयकी शंकायें दूर कर दें।

लॉर्ड माउन्टबेटनके मिशनकी सफलता ब्रिटिश व्यावसायिक हितों, ब्रिटिश सेना और भारतमें ब्रिटिश सिविल अधिकारियोंके निष्ठापूर्ण सहयोग पर निर्भर है। जो कुछ उनके बारेमें कहा जा रहा है वह सच हो तो दुःखद है; और वे लोग न तो भारतकी जनताके प्रति वफादार हैं और न अपनी ही जनताके प्रति वफादार हैं। मैं उनसे अपील करता हूं कि सत्ताके शांतिपूर्ण हस्तांतरणमें वे वाइसरॉयकी सहायता करें । मुझे आशा है कि अंग्रेज भारतसे मित्रोंके रूपमें जायंगे, न कि शत्रुओंके रूपमें।

अपने ही लोगोंको गांधीजीकी सलाह यह थी कि वे उस जालसे सावधान रहें जो उनके लिए बिछाया जा रहा है, उसमें फंसें नहीं और न अपने आपमें आशा या श्रद्धाको छोड़ें; परन्तु केवल ईश्वर पर और अपने भीतरी बल पर आधार रखें।

५

गांधीजीका मन अब फिर बिहारकी तरफ मुड़ा। यदि वे बिहारको ठीक कर सके, तो दूसरा सब कुछ ठीक हो जायगा। उन्होंने डॉ. राजेन्द्रप्रसादसे कहा : "मैं यहां हूं, परन्तु मेरा हृदय बिहारमें है।" डॉ. राजेन्द्र प्रसादका खयाल था कि शायद अब गांधीजी दिल्लीके कामको हानि पहूंचाये बिना बिहार वापस जा सकते हैं।

दोपहरमें गांधीजीको पता लगा कि डॉ. राजेन्द्रप्रसादको तेज बुखार हो आया है। यह समाचार पाकर तुरन्त उन्होंने निश्चय किया कि राजेन्द्रबाबूको सूचना दिये बिना देखने जायं। खाद्यमंत्रीके घरवालोंको आश्चर्य हुआ, सबसे अधिक आश्चर्य खाद्यमंत्रीको हुआ। बीमार पतिकी देखभालका काम सुशील पत्नीके हाथमें सौंप कर गांधीजीने उनसे कहा कि पतिदेव जरूरतसे ज्यादा काम करनेका आग्रह रखते हैं इसलिए पत्नीको कुछ अधिक "गृह-शासन" उन पर करना चाहिये ! उन्होंने हंस कर पूछा : "तुम्हारे भले पतिमें बिहारी नम्रता होते हुए भी क्या अक्सर उन्होंने तुम पर पतिकी सत्ता नहीं चलाई है ? तो अब उन पर पत्नीकी थोड़ी सत्ता चलानेकी तुम्हारी बारी है!" उस विनोद पर सारा कमरा हंसीसे गूंज उठा और पल भरमें रोगी और सारे परिवारको दवाका वह स्फूर्तिदायी डोज़ मिल गया, जो सारे डॉक्टरोंकी दवाइयोंसे भी नहीं मिल सकता था।

बीमार साथीकी सेवा-शुश्रूषा करनेकी सूचनायें देनेके बाद गांधीजी जल्दी ही अपने निवास-स्थान पर लौट आये, क्योंकि वहां बेशुमार काम उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। एक मित्रकी लड़की उनके साथ बिहार जाना चाहती थी। अमीर घरका लालन-पालन होने पर भी उसने गांधीजीके तात्कालिक छोटेसे कर्मचारी-मंडलमें काम करनेकी इच्छा प्रगट की थी। प्रत्येक व्यक्ति पर उसके परिश्रम और कर्तव्य-पालनकी अच्छी छाप पड़ी थी। परन्तु गांधीजी लोगोंको अपने बूतेसे बाहर काम करनेके लिए कभी प्रोत्साहन नहीं देते थे। उन्होंने लड़कीको धीरेसे याद दिलाया: मेरे साथ चलना खांडेकी तेज धार पर चलना है। "जो लोग मेरी मंडलीमें होते हैं उन्हें जमीन पर सोने, मोटे कपड़े पहनने, बड़े सवेरे उठने,

सादा और स्वाद-रहित भोजन करने और टट्टी तक साफ करनेको तैयार रहना चाहिये। यदि तुम्हें इन सब बातोंके योग्य बनना है, तो जब मैं आश्रम जाऊं तब मेरे साथ चलना। तब तक जब जब मैं दिल्लीमें रहूं तब मेरी सेवा करके तुम्हें सन्तोष मान लेना चाहिये।"

दक्षिण अफ्रीकासे आये हुए दो मित्र डॉ. नायडू और नायकरके साथ बातचीत करते हुए गांधीजीने कहा: "अब भारत स्वाधीनताके द्वार पर खड़ा है। परन्तु यह स्वाधीनता वैसी नहीं है जैसी मैं चाहता था। यदि भारतका विभाजन हो जाय और दोनों भागोंमें अल्पसंख्यकोंको सलामती, सुरक्षा और समान व्यवहारका अनुभव न हो, तो मेरी दृष्टिसे वह स्वाधीनता नहीं होगी। . . . इस समय जो घटनाएं हो रही हैं, यदि वे ही स्वाधीनताके बाद होनेवाली घटनाओंकी पूर्व-सूचना हों, तो हमारा भविष्य उज्ज्वल नहीं है। इसलिए मुझे बेचैनी होती है । परन्तु मैं भविष्यको ईश्वरके कल्याणकारी हाथोंमें छोड़कर सन्तोष कर लेता हूं।"

शामकी प्रार्थनामें अपने बिहार जानेकी सूचना देते हुए गांधीजी बोले : "लोग मुझसे पूछते हैं कि मैं पंजाब क्यों नहीं जाता। मैं अपने आपसे पूछता हूं कि पंजाब जाकर मैं और क्या करूंगा ? आज सिक्ख कहते हैं कि वे बलपूर्वक पाकिस्तानका प्रतिकार करेंगे। उन्हें कहना यह चाहिये कि उनका बच्चा बच्चा मर जायगा, लेकिन वे बलके सामने नहीं झुकेंगे। यह सीधी-सादी बात समझानेके लिए मेरा पंजाब जाना जरूरी नहीं । नोआखाली तो मैं अन्तःकरणकी आवाजके वश होकर गया था। वही आवाज मुझे बिहार ले गई। यदि मैं बिहार और नोआखालीमें अपनी अहिंसाको इस प्रकार सिद्ध कर सकूं कि सारे भारतमें आग धधकती रहने पर भी बिहार और नोआखाली पर उसका कोई असर न पड़े, तो इससे सारा दृश्य बदल जायगा । तब मेरी आवाज पंजाबके हिन्दुओं, मुसलमानों और सिक्खों तक पहुंच कर उनका पागलपन छुड़ा देगी, यद्यपि मैं सशरीर उनके बीच न रह सकूंगा । इसके विपरीत, इधरसे उधर भागदौड़ करनेका कोई नतीजा नहीं निकलेगा । इसी प्रकार यह सोचना मेरा निरा अहंकार होगा कि मेरे रहनेसे ही दिल्लीमें राजनीतिक घटना-चक्र पर नियंत्रण रह सकता है। इस व्यर्थके प्रयत्न या आशामें मैं दिल्ली रुका रहूं, तो दूसरी जगह मैं अपने कर्तव्यका पालन नहीं कर सकूंगा।" अपना कथन जारी रखते हुए गांधीजीने कहा :

> गीता हमें शिक्षा देती है कि निष्ठापूर्वक स्वधर्मका पालन करके हमें सन्तोष मानना चाहिये। बिहार और नोआखाली आज मेरे स्वाभाविक सेवाक्षेत्र हैं। वहांका कर्तव्य छोड़कर यदि

मैं दूसरी जगहके कार्यके लालचमें फंस जाऊं, चाहे वह कितना ही अधिक आकर्षक क्यों न हो, तो यह खतरनाक होगा । इसके विपरीत, जहां मेरे स्वाभाविक कर्तव्यका तकाजा हो वहां रह कर मैं दिल्ली और पंजाब दोनोंकी सेवा करूंगा ।

मैं कहीं भी रहूं, फिर भी मैं बार-बार एक ही बात कहूंगा कि सत्य और अहिंसाका मार्ग ही हमारा एकमात्र मार्ग है। यदि विरोधीको मारे बिना और क्रोध या दुर्भाव रखे बिना स्वयं मरनेका आदर्श भारतमें कहीं भी सिद्ध हो सकता हो, तो मेरा विश्वास है कि हमारी सारी समस्याएं हल हो जायंगी और भारतका उद्धार हो जायगा । हम अपना फर्ज अदा कर दें। अपने ही लिए हम विनाशके बीज न बोयें। यदि हमारा लेखा साफ है, तो संसारका निर्णय पाकिस्तानको धर दबायेगा और पाकिस्तान अपने ही अन्यायके बोझसे दब कर टूट जायगा। सत्याग्रही अपने प्रेमसे सारे संसारको जीत लेता है। सत्याग्रह स्वयं कार्य करता है; उसे किसीके सहारेकी जरूरत नहीं।

प्रार्थना-सभाके बाद मद्रासके एक सज्जन तामिलमें हस्ताक्षर लेनेके लिए गांधीजीके पास आये । गांधीजीने वर्षों पहले दक्षिण अफ्रीकामें थोड़ी तामिल सीखी थी। उन्होंने यह प्रयत्न करनेकी बात स्वीकार की, परन्तु कहा कि तामिल हस्ताक्षरके लिए सामान्य फीससे दुगनी लगेगी ! थोड़े प्रयत्नसे वे तामिल हस्ताक्षर करनेमें सफल हो गये। उन्होंने पूछा, "यदि कोई भूल न रही हो, तो आपको दस रुपये और देने चाहिये । देंगे न?" उन सज्जनने कहा: "मेरे पास इससे ज्यादा रुपये नहीं हैं।" गांधीजीने आग्रहपूर्वक उनसे कहा : "तो आप कल लाकर दे दीजिये। मुझे आप पर भरोसा है।" उन मित्रने अपनी उंगलीसे एक सोनेकी अंगूठी निकाली और रूपयोंके बजाय उसे आगे बढ़ा दिया। इतने ही में पं. नेहरू आ पहूंचे : "तो आपने फिर अपना वही धंधा शुरू कर दिया! मुझे बताया गया था कि तामिल चेट्टी दुनियामें सबसे होशियार व्यवसायी होते हैं, परन्तु . . . ।" चेट्टी मित्र बीचमें ही बोले : "नहीं साहब, दूसरोंकी जेब खाली करानेकी कलामें महात्माजीकी बराबरी कोई नहीं कर सकता । मैं अपनी हार मानता हूं ।"

गांधीजीने पलट कर कहा : "नहीं, उलटे आपने तो बड़ी होशियारीका सौदा कर लिया । आप अपने साथ गरीबोंके अमूल्य आशीर्वाद ले जा रहे हैं।"

उन मित्रने प्रणाम करके गांधीजीके पैर छूते हुए कहा : "महात्माजी, मेरे लिए तो आपका ही आशीर्वाद बहुत है। और किसी आशीर्वादकी मुझे जरूरत नहीं है।"

बादशाह खानका मन बहुत उदास और भारी हो रहा था। जबसे भारतका अहिंसक स्वातंत्र्य-संग्राम आरंभ हुआ था तभीसे उन्होंने और उनके खुदाई खिदमतगार संगठनने अपना भाग्य कांग्रेसके साथ जोड़ दिया था। स्वतंत्रता-प्राप्तिके लिए उन्होंने सारी शक्ति लगा दी थी। लेकिन अब ऐसा लग रहा था कि वे भारतके नहीं रह जायंगे। मुस्लिम लीगके साथ विचारधाराका भेद होनेके कारण उन्हें पाकिस्तानमें भी कोई जगह नहीं मिलेगी । उन्होंने दुःखपूर्वक कहा : "हम दोनोंकी नजरमें अछूत हो जायंगे। लेकिन जब तक महात्माजी हैं मुझे कोई चिन्ता नहीं।" गांधीजीमें उनकी ऐसी अटल श्रद्धा थी। उनकी तबीयत अच्छी नहीं थी, परन्तु वे दवा नहीं लेना चाहते थे। उन्होंने दवा लेना तभी स्वीकार किया जब गांधीजीने उनसे कहा कि देशकी सेवा करनेके लिए उन्हें पहले स्वस्थ हो जाना चाहिये। गांधीजीके दिल्ली-निवासके अन्तिम दिन बादशाह खानको बुखार था, परन्तु रातको उन्होंने पहलेकी तरह ही गांधीजीके हाथ-पैर दबानेका आग्रह रखा। गांधीजीने मना किया तो उन्होंने जवाब दिया: "आज आखिरी दिन है इसलिए मुझे दवा लेने दीजिये। इससे मैं अच्छा हो जाऊंगा ।" अब गांधीजी इनकार न कर सके। दूसरे दिन दोनों एक-दूसरेसे अलग हो गये।

छठा अध्याय : फिर नये सिरेसे आरंभ

१

राजधानीकी दम घोंटनेवाली गर्मी और इससे भी ज्यादा दम घोंटनेवाले राजनीतिक वातावरणमें रहनेके बाद बिहार पहुंच कर गांधीजीको फिरसे शांति अनुभव हुई। इसका कारण यह नहीं था कि बिहारका मौसम कम कष्टदायी था या वहांका राजनीतिक दृश्य बहुत मनोहर था। परन्तु वहां वे, उन्हींके शब्दोंमें कहें तो, "नये सिरेसे अपना काम शुरू कर सकते थे।" वे सब वर्गोंके नेताओंको समझा कर हार चुके थे। न तो कांग्रेस, न मुस्लिम लीग और न अंग्रेज ही उनकी सलाह पर चलनेको तैयार थे। यदि कोई चीज इस स्थितिमें भारतके विभाजनको संभवत: रोक सकती थी तो वह थी समग्र स्थितिमें मौलिक परिवर्तन । केवल शाब्दिक प्रतीतिके जादूसे ही नहीं किन्तु आम जनतामें परिवर्तित परिस्थितियोंको जन्म देकर गांधीजी भूतकालमें भारतके बुद्धिजीवी लोगोंके तथा चोटिके राजनीतिज्ञोंक मानसको विचार और कार्यकी नई पद्धतियां स्वीकार करने योग्य बना सके थे। अब वे ऐसा वातावरण बनानेमें लग गये, जिससे राजनीतिक दलोंको मजबूर होकर फिरसे सोचना पड़े । बहुत समय नहीं रह गया था। सच तो यह है कि जिन आदर्शोंका उन्होंने अपने जीवनमें सेवन किया था और जिनके लिए निरन्तर कार्य किया था, उन सबके विरुद्ध तेजीसे ज्वार चढ़ रहा था। परन्तु व्यवहारवाद गांधीजीका तत्त्वज्ञान कभी नहीं रहा । सफलताके लोभसे न तो उन्होंने कभी कार्य किया और न असफलताके कारण वे कार्यसे कभी विमुख हुए । उनसे ज्यादा कोई नहीं जानता था कि जीवनके एक एक क्षणका सदुपयोग कैसे किया जाय । उन्हें बिहारमें तीन सप्ताहसे भी कम रहना था। फिर भी सोई हुई अन्तरात्माओंको जगाने तथा समय रहते लोगोंको अपना अपना कर्तव्य पूरा करके अवसरकी शोभा बढ़ानेकी प्रेरणा देनेके सर्वोपरि प्रयत्नमें वे मन-प्राणसे जुट गये।

अपराधियोंको उनका अपराध समझाना ज्यादा आसान था, परन्तु अत्याचारोंके शिकार बने हुए लोगोंको गलत उपायों और गलत रवैयोंका खतरा समझाना बहुत कठिन था। एक दिन मुस्लिम लीगियोंका एक दल गांधीजीसे मिलने आया। गांधीजीने लीगियोंके सामने अपना यह दृढ़ विश्वास फिर दोहराया कि केवल अंग्रेज भारतसे चले जायं, तो बहुत संभव है कि देशके सब लोग एक हो जायंगे। "मुस्लिम लीग यह क्यों नहीं समझ सकती कि सबके लिए पहली चीज भारतकी गुलामीका अन्त करना

है? या तो मुसलमान भारतको अपना घर समझते हैं या नहीं समझते। यदि समझते हैं तो निर्दोषोंका यह मूर्खतापूर्ण संहार बन्द हो जाना चाहिये, अंग्रेजोंको भारतसे हटाना चाहिये और हमारी अपनी सरकार स्थापित हो जानी चाहिये । उसके बाद या तो हम एक-दूसरेको समझा कर अथवा जरूरत हुई तो आपसमें लड़ कर देशके विभाजनके सवालकों हल कर सकते हैं। परन्तु वह स्वच्छ लड़ाई होगी, कायरतापूर्ण मारकाट नहीं होगी। इसके विपरीत, यदि मुसलमान भारतको अपना घर नहीं मानते, तब तो विभाजनका प्रश्न ही नहीं उठता।"

मुस्लिम लीगी मित्रोंने उत्तर दिया: "हम भी मारकाटकी निन्दा करते हैं।"

"तब आपको स्थानीय मुस्लिम लीगकी तरफसे इस आशयका एक वक्तव्य निकालना चाहिये और जिन्ना साहबको लिखना चाहिये । यह मुस्लिम लीगकी सच्ची सेवा होगी और इससे निराधार संदेहका वातावरण दूर होगा।"

गांधीजीने उन्हें पूरा एक घंटा दिया। उन्होंने हर बात पर 'हां' कहा और जिन्नाको लिखनेका वादा किया। उनके चले जानेके बाद गांधीजी बोले : उन्होंने अनेक अच्छे भाव प्रकट किये हैं, फिर भी मुझे अंदेशा है कि उसका कोई नतीजा नहीं निकलेगा ।

यही हाल जमीयत-उल-उलेमाका था, जो मुस्लिम मौलवियों और धर्मशास्त्रियोंकी राष्ट्रीय संस्था थी। गांधीजीने उनके एक दलसे कहा : आपको उन अन्यायोंकी चिन्ता नहीं होनी चाहिये जो हिन्दुओंने किये हैं, बल्कि आपके सहधर्मियोंने हिन्दुओंके प्रति जो अन्याय किये उनकी चिन्ता होनी चाहिये । आपको मुसलमानों द्वारा किये हुए अत्याचारोंकी निन्दा करनी चाहिये और गलती करनेवाले हिन्दुओंको उनके अपने धर्मबन्धुओंके निर्णय पर छोड़ देना चाहिये : "हिन्दुओंमें जाकर आप केवल मौखिक वचनों द्वारा नहीं किन्तु उचित कार्य द्वारा उनका डर दूर कीजिये। उनको इस्लामके उत्तम स्वरूपके दर्शन कराइये । अगर राष्ट्रवादी मुसलमान यह काम प्राणोंकी बाजी लगाकर भी करेंगे, तो वे भारतीय मुसलमानोंकी सेवा करेंगे, इस्लामकी प्रतिष्ठा बढ़ायेंगे और ईश्वर उनको अपने उत्कृष्ट आशीर्वाद देगा।"

"अब बताइये, आपमें से कितने इस मिशनको हाथमें लेनेके लिए तैयार हैं ?"

उत्तरमें नीरव शांति फैली रही । अन्तमें उनमें से एक बोला : "हमारे भाई जो कुछ कर रहे हैं वह बेशक बुरा है। लेकिन हमने कभी उनका समर्थन नहीं किया।"

गांधीजीने उत्तरमें कहा: "इसीका तो मुझे दुःख है; हम सदा अपनी ही दृष्टिसे सोचते हैं। हमें समझना यह हैं कि भारतमें किसीका भी किया हुआ अपराध हम सबका अपराध है; उसमें हमारा भी हिस्सा है।"

गांधीजीको चिन्ता हुई। यदि भारतीय मुसलमान मुस्लिम लीगके गलत नेतृत्वका अनुसरण करके अपनेको भारतमें पराये समझते रहे और वैसा ही व्यवहार करते रहे, तो वे अपने गैर-मुस्लिस पड़ोसियोंको, जिनके बीचमें उन्हें – पाकिस्तान हो या न हो – रहना है, सदाके लिए अपने शत्रु बना लेंगे और फिर कोई उनकी सहायता नहीं कर सकेगा । उनके साथ गांधीजीकी सहानुभूति थी और चूंकि सहानुभूति थी इसलिए उनके साथ दृढ़ता और स्पष्टताका व्यवहार करना वे और भी महत्त्वपूर्ण समझते थे। एक मुस्लिम लीगी मित्रको उन्होंने एक पत्रमें लिखा: "जो मुसलमान भारतको अपना घर समझते हैं वे शौकसे हमेशा यहां रह सकते हैं और उनकी पूरी रक्षा करना सरकारका फर्ज होगा। साथ ही मुसलमानोंको भी अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि अगर वे अपने दिलोंमें हिन्दुओंके प्रति द्वेषभाव रखते रहेंगे, तो पाकिस्तान कायम होने पर भी भारतीय मुसलमानोंका भविष्य खतरेमें रहेगा। मेरे पास ऐसी शिकायतें आई हैं कि मुस्लिम बहुमतवाले प्रदेशोंमें अल्पसंख्यक कौमको सतानेमें बिहारके मुसलमानोंका निष्क्रिय समर्थन और सहानुभूति है। यदि यह सच हो तो मुझे इसका परिणाम अच्छा नहीं दिखाई देता।"

जमीयत-ए-इस्लामियाके कुछ लोग गांधीजीकी मंडलीकी एक महिलाको पर्देवाली मुसलमान स्त्रियोंसे मिलने ले गये। उन स्त्रियोंके मनमें कटुता भरी थी। महिलाने उन्हें सुझाया कि अगर आपमें से कुछ बहनें नोआखाली जाकर वहांकी हिन्दू स्त्रियोंकी हालत खुद देखें, तो आपकी कटुता कम हो जायगी । यह सुझाव पूरे सद्भावके साथ दिया गया था। उसकी तहमें विचार यह था कि किसी भी स्त्रीके साथ अन्याय किया जाय, तो वह भारतीय नारी-जातिके प्रति अन्याय होगा और इसलिए हिन्दू-मुसलमान सबको उसका प्रतिकार करना चाहिये । परन्तु जमीयतवालोंको यह भी बुरा लगा, यद्यपि उन्हें समझाया गया कि गांधीजीने यही बात नोआखालीके हिन्दुओंसे भी कही थी। जब गांधीजीने यह बात सुनी तो उन्हें दुःख हुआ । उन्होंने जमीयतवालोंसे कहा कि मुझे मुस्लिम स्त्रियोंसे मिलने दिया जाय, परन्तु वे इसके लिए रजामन्द नहीं हुए। ऐसा लगा कि उन्हें मुस्लिम कटुताको मिटानेकी अपेक्षा उसका दुरुपयोग करनेमें अधिक रस था और वे पुराने घाव भरनेको उत्सुक नहीं थे। गांधीजीने डॉक्टर महमूदसे कहा :

"यह आत्मनाशका मार्ग है ।" आपको और आपके जैसे राष्ट्रवादी मुसलमानोंको मुस्लिम लीग और गैर-लीगी मुसलमानोंको द्वेषके मार्गसे विमुख करनेकी और पुरानी कटुताको उनके दिलोंसे दूर करनेकी विशेष चिन्ता होनी चाहिये ।

नोआखालीमें कार्यकी अधिकताके कारण गांधीजी अक्सर रातको दो बजे उठ जाया करते थे। सतत प्रवासका जोर तो उन पर पड़ता ही था। परन्तु बिहारमें उनकी आन्तरिक पीड़ा इस कारण वहांसे अधिक थी कि अन्याय करनेवाले उनके अपने सहधर्मी थे। एक दिन एक-व्यक्ति, जिसने दंगोंमें भाग लिया था, अपना अपराध स्वीकार करने उनके पास आया। गांधीजीने उससे कहा : "भूलका उत्तम पाश्चात्ताप यह है कि उसे फिर कभी न किया जाय। पापको स्वीकार करनेमें एक दिनकी भी देर नहीं करनी चाहिये। जब हम उसे छिपानेकी कोशिश करते हैं, तो असली मूलमें झूठका पाप और जोड़ देते हैं, जो उससे भी बुरी बात है। इससे तो हम पापके दलदलमें और गहरे फंस जाते हैं। गुप्त पाप पके हुए फोड़ेके समान है। यदि हम जोरसे दबा कर पीपको निकाले दें, तो फोड़ा जल्दी बैठ जाता है और अच्छा हो जाता है। नहीं तो पीप अन्दर ही अन्दर फैलता रहता है और उससे हमारी मौत भी हो सकती है। मनुष्य पापमें कितना ही गहरा डूब जाय, परन्तु यदि उसे अन्तिम क्षण भी सच्चा पाश्चात्ताप हो, तो परम दयालू परमेश्वर उसे क्षमा कर देगा। अत्यन्त पतितका भी उद्धार हो सकता है। जरूरत इतनी ही है कि आर्त हृदयसे प्रार्थना की जाय। सबकी भलाईके लिए प्रार्थना करना सबसे उत्तम प्रार्थना है।" गांधीजीने भूतपूर्व अपराधीसे कहा : अगर तुममें पुलिसके आगे आत्म-समर्पण करनेका साहस नहीं है, तो मेरी मंडलीके किसी आदमीको लूटका माल लौटा दो और प्रायश्चित्तके रूपमें अपने आपको हिन्दू-मुस्लिम-एकताके कार्यमें समर्पित कर दो।

दो दिन बाद गांधीजीने हिन्दुओंके एक वर्गको बुरी तरह आड़े हाथों लिया । उन्होंने गांधीजीसे शिकायत की थी कि एक ऐसे क्षेत्र पर दण्ड-कर लगा दिया गया है, जहांके लोग भगोड़ोंकी गिरफ्तारियां करानेमें अधिकारियोंकी सहायता नहीं करते। गांधीजीने उनसे कहा: "न्यायसे भागनेवालोंको शरण देना आपकी कितनी बड़ी बेवफाई है ! आप शिकायत करते हैं कि दंगाइयोंके दुष्कर्मोंके लिए निर्दोष लोगोंको सताया जा रहा है, परन्तु जब सरकार अपराधियोंकी गिरफ्तारीमें लोगोंका सहयोग प्राप्त करनेके लिए कार्रवाई करना चाहती है तब आप शोर मचाते हैं। यह सच है कि जो लोग फरार

होनेवालोंको आसरा दे रहे हैं वे बहुत थोड़े हैं, परन्तु उपाय आपके हाथमें है। आप सच्चे अपराधियोंको सामने लायें, ताकि बहुतसे लोगोंको थोड़ोंके पापका दण्ड न भोगना पड़े।"

*

बिहारमें आनेके बाद गांधीजीने जान-बूझ कर और किसी भी विषयमें दिलचस्पी न लेकर अपनेको हिन्दू-मुस्लिम-समस्या तक सीमित कर लिया था। परन्तु इसीके अविभाज्य अंगके रूपमें उन्हें किसानोंका सवाल हाथमें लेना पड़ा। यह कठिन और पेचीदा सवाल था। जब संयोगवश जमींदार कोई मुसलमान और काश्तकार हिन्दू होते तब मामला और भी विकट बन जाता था।

बंगालके साथ साथ बिहार भी लॉर्ड कार्नवॉलिस (१७८५-९३) के स्थायी बन्दोबस्तका शिकार हो गया था। उसमें जमींदार राज्यको बंधा हुआ लगान अदा कर देते थे। इससे उन्हें अपने किसानोंके साथ हर तरहकी मनमानी करनेकी छूट मिल जाती थी । कांग्रेसने १९१७ के चम्पारन सत्याग्रहके समयसे ही किसानोंके ध्येयको अपना लिया था। परन्तु बालिग मताधिकारकी संभावनाके कारण दूसरे राजनीतिक दल भी किसानोंका समर्थन प्राप्त करनेके प्रयत्नमें पीछे नहीं रहे । अपनी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा सिद्ध करनेके लिए उन्होंने अधिकारोंकी रट लगानेका सरल उपाय तो आजमाया, परन्तु उनके साथ जुड़े हुए कर्तव्यों पर भार देनेका कम रुचिकर किन्तु बुद्धिमत्तापूर्ण मार्ग नहीं अपनाया। नतीजा यह हुआ कि चारों ओर अव्यवस्था फैल गई। जमींदारोंने काश्तकारोंको जबरन् बेदखल करनेकी कोशिश की और उन्हें तरह तरहसे तंग किया; उधर किसानोंने जमींदारोंकी जमीन पर कब्जा करनेका प्रयत्न किया। उन्होंने जबरदस्ती खेतोंमें खड़ी फसलें काट लीं, जमींदारोंको लूटा और हिंसाके और भी काम किये।

गांधीजी इससे अत्यधिक चिन्तित हो गये। लोगों पर स्वतंत्रताकी प्रतिक्रिया इस ढंगकी नहीं होनी चाहिये थी। उन्होंने हिंसा-मार्गके खतरोंसे लोगोंको बार बार सचेत किया। जमींदारोंके एक शिष्ट-मंडलने गांधीजीसे शिकायत की कि किसानों और मजदूरोंमें अराजकता बढ़ रही है। गांधीजीने उनसे कहा : ऐसी अराजकता एक अपराध है और इसका बुरा फल स्वयं किसानोंको भोगना पड़ेगा। परन्तु साथ ही आप भी सावधान हो जाइये कि जो कुछ आप लोगोंके बारेमें कहा जा रहा है वह सच हो, तो आपके दिन भी अब गिनतीके ही रह गये हैं। ब्रिटिश राज्यमें आपने लम्बे समय तक किसानों और

मजदूरोंका शोषण किया है। अब आप उसे जारी नहीं रख सकते। यदि आप सच्चे अर्थमें गरीब किसानोंके संरक्षक बन जायं, तो आपका भविष्य उज्ज्वल है।

दूसरे दिन एक किसान-नेता आये। उन्हें यह शिकायत थी कि पिछले दिनके गांधीजीके उद्गारोंसे किसानों और मजदूरोंके प्रति अन्याय हुआ है; वास्तवमें जमींदार ही अपना पुराना दमन जारी रख रहे हैं। गांधीजीने उत्तर दिया: यह सच हो तो भी किसानों और मजदूरोंके लिए जमींदारोंके अपराधका अनुकरण करनेके लिए कोई कारण नहीं । वे तो पृथ्वीके नमक हैं। यदि नमक ही अपना खारापन त्याग दे, तो नमकमें यह गुण कहांसे पैदा किया जायगा ? वे यदि अपने अधिकारोंको स्थापित करना चाहते हैं, तो इसका सच्चा मार्ग हिंसाका आश्रय लेना नहीं बल्कि अपने कर्तव्योंका पूर्ण पालन करके जमींदारोंकी शुभेच्छा तथा सहकार प्राप्त करना है। जमींदारों और पूंजीपतियोंका सफाया करना मुश्किल नहीं है, क्योंकि वे तो मुट्ठीभर ही हैं। परन्तु यदि वे इस मार्गको अपनायेंगे, तो अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मारेंगे। "इतिहास हमें यह पाठ सिखाता है कि जो दूसरोंका नाश करना चाहते हैं, वे स्वयं भी नष्ट हो जाते हैं।" जमींदारोंका अत्याचार और आर्थिक शोषण अवश्य बन्द होना चाहिये और उन्हें मजदूरोंको पूरी मजदूरी देनी चाहिये। यह उन्हें मजबूर होकर करना पड़ेगा, यदि किसान अपने इकरारनामेकी शर्तोंके अनुसार ईमानदारीसे पूरी मेहनत करें । अन्यथा जमींदार सबकी सहानुभूति खो बेठेंगे। भारतके विकासकी आजकी स्थितिमें ऐसा करनेसे उनका काम नहीं चल सकता। इसलिए मुझे आशा है कि किसान अहिंसाके उस मूल्यवान अनुभवको सुरक्षित रखेंगे, जो चंपारन सत्याग्रहके दौरान अपने अनुशासन तथा संयमसे उन्होंने प्राप्त किया था और जिसने निलहोंके राज्यमें चले आ रहे सौ वर्ष पुराने अत्याचारको समाप्त कर दिया था।

*

गांधीजीके खयालसे विभाजनकी छाया इस बातकी निशानी थी कि कांग्रेस-जनोंमें पर्याप्त अहिंसा नहीं थी। उन्हें कांग्रेसी कार्यकर्ताओंमें यह वृत्ति देखकर खेद होता था कि आलोचनासे वे चिढ़ते हैं और जो उनसे मतभेद रखते हैं उनकी नीयत पर शक करते हैं। गांधीजी उन्हें यह समझानेका कोई मौका नहीं चूकते थे कि सत्याग्रहीमें कितना उच्च कोटिका सारासार विवेक और संयम होना चाहिये और अहिंसाका आदर्श उनके आपसी दैनिक सम्बन्धोंमें उनसे क्या क्या अशाएं रखता है। उन्होंने कांग्रेसी

कार्यकर्ताओंके एक दलसे कहा: "विज्ञानमें ऐसे तराजुओंका उपयोग होता है जिनसे रेतके एक दानेके दस लाखवें भागका अन्तर भी मालूम हो जाता है। इसी प्रकार सत्याग्रहीको अपने भीतर ऐसी नैतिक शक्ति (संवेदनशीलता) पैदा कर लेनी चाहिये कि सत्य और अहिंसाके आदर्शसे बालके दस लाखवें भाग जितना भी विचलित होनेका पता लग जाय । उसे किसी व्यक्तिके प्रति व्यक्तिगत पूर्वाग्रह या भावनामें बहना नहीं चाहिये। इसी प्रकार कोई व्यक्ति उसकी टीका करे इसीलिए उसे टीकाकारको अपना विरोधी नहीं मानना चाहिये अथवा उस पर यह दोषारोपण नहीं करना चाहिये कि वह व्यक्तिगत पूर्वाग्रह अथवा अरुचिसे ऐसा करता है। मतभेदके कारण ऐसा नहीं होता कि मित्र हमारा मित्र न रह जाय, भाई भाई न रह जाय या मां मां न रह जाय। सत्याग्रहीको तथ्योंकी परीक्षा और जांच वैज्ञानिकके जैसी सावधानी और तटस्थताके साथ करनी चाहिये। पूरे प्रमाणके बिना किसी निर्णय पर पहुंचना हिंसा है। कारण, अनुभव बताता है कि कभी कभी जो चीज पहले पहले देखनेसे हमें स्पष्ट प्रतीत होती है, वह बादके अनुसंधानसे गलत मालूम हो सकती है। इसलिए सत्य और अहिंसाके पुजारीको कोई चीज मान कर नहीं चलना चाहिये, बल्कि सब दृष्टिकोणोंके लिए अपना मस्तिष्क खुला रखना चाहिये। उसे अपने दृष्टिकोणमें जाग्रत और वैज्ञानिक रहना चाहिये तथा सतत सत्यकी शोधमें रंगे रहना चाहिये । इस वैज्ञानिक तटस्थताके साथ सहानुभूतिका गुण भी मिला रहना चाहिये। कारण, सहानुभूति रखनेका अर्थ ही समझना है।" भारतीय राजाओंको ही लीजिये। "उनकी निन्दा करनेसे कोई लाभ नहीं। वे जैसे हैं वैसा परिस्थितियोंने उन्हें बनाया है। उन्हें हम प्रेमसे जीत सकते हैं। सहानुभूतिपूर्ण समझसे कठोरतम पूर्वाग्रह भी दूर हो सकते हैं। शुरूमें ब्रिटिश अधिकारी चार्ल्स एन्ड्रूजको गहरे अविश्वासकी नजरसे देखते थे, कभी कभी वे उनके साथ असभ्य व्यवहार भी करते थे। परन्तु एन्ड्रूजको कभी रोष नहीं आया। वे प्रयत्न करते रहे और उन्होंने कभी आशा नहीं छोड़ी । अन्तमें ब्रिटिश अधिकारियोंको अपनी भूल मालूम हो गई और उसके लिए उन्हें अफसोस हुआ।"

गांधीजीने कुछ उत्कट भावनापूर्ण उपदेश स्त्रियोंको – हिन्दू और मुसलमान दोनोंको – दिये थे। उन्होंने उनसे कहा: अपनी लाचारी आप छोड़ दीजिये । आपके लिए कायर अथवा भीरू होना अपने सौंपे हुए ट्रस्टको धोखा देना है। आप अबला नहीं हैं। भारतके प्राचीन इतिहासमें अद्वितीय वीरांगनाओंके उज्ज्वल उदाहरण भरे हैं। हिन्दू स्त्रियोंकी एक मंडलीसे, जो उनसे मिलने आई थी, गांधीजीने कहा: "आप आज देशकी शकल बदल सकती हैं, यदि आप अपनी परम्पराके प्रति सच्ची हों। आपको ईश्वरने जो

महान शक्ति, कष्ट न पहूंचा कर स्वयं कष्ट सहन करनेकी शक्ति और अडिग रहकर अन्यायका प्रतिकार करनेकी शक्ति दी है, उसे काममें लेनेका साहस आपमें होना चाहिये।" मेरा हृदय स्त्रियोंके लिए रोता है, क्योंकि साम्प्रदायिक पागलपनमें सबसे अधिक कष्ट उन्हींको सहन करने पड़े हैं। परन्तु मुझे लगता है कि उन्हें दोषसे सर्वथा मुक्त नहीं माना जा सकता। यदि वे माताओं, पत्नियों और बहनोंके नाते पुरुषों पर अपना प्रभाव पूरी तरह डालती, तो जो शर्मनाक करतूतें हुई उन्हें रोका जा सकता था। इसके बजाय कुछ स्त्रियोंने अपने पुरुषों द्वारा मुस्लिम स्त्रियोंके प्रति किये गये अपराधोंके लिए यहां तक कहा कि जो कुछ मुसलमानोंने किया उसका यह उचित बदला है। मुस्लिम स्त्रियोंने भी ऐसा ही किया। मैं उन्हें चेतावनी देता हूं कि उन्होंने अपने प्रियजनोंको घरसे बाहर जिस "नीतिमत्ता" का आचरण करनेके लिए प्रोत्साहन दिया है, उसी "नीतिमत्ता" का जब वे अपने घरमें भी आचरण करेंगे तब उसके बुरे फल उन्हें भोगने पड़ेंगे। "मैं उस लज्जाजनक दृश्यको देखनेके लिए जिन्दा नहीं रहना चाहता, जब स्त्रियां भारतकी प्राचीन संस्कृतिको कीचड़में साननेका साधन बनेंगी।

कुछ समय बाद पर्दानशीन मुसलमान औरतोंका एक दल गांधीजीसे मिलने आया। गांधीजीने उनसे कहा: स्त्रियोंके पतनका कारण यह है कि उनमें श्रद्धाका ह्रास हो गया है। प्रार्थनाको अंधविश्वास समझा जाता है। उसकी हंसी उड़ानेका भी फैशन हो गया है। परन्तु अहिंसक ढंगसे मरनेकी कलाके लिए श्रद्धाका साहस चाहिये और श्रद्धा मनुष्यमें प्रार्थनासे ही आती है। "आप ईश्वरको किसी भी नामसे पुकार सकती हैं – तत्त्व एक ही है। उससे एक ही नियम प्रकट होता है।" प्रेमकी शक्तिका प्रमाण एक घरेलू उदाहरणसे मिलता है, जिसे आप सब जानती हैं । माता-पिता लड़कीको एक बिलकुल अनजान आदमीके साथ ब्याह देते हैं। वह जिस परिवारमें रहने जाती है उसीको अपना बना लेती है। वह जल्दी ही नये घरकी स्वामिनी बन जाती है। यह सब उसके प्रेमपूर्ण हृदयके कारण संभव होता है। उसका संपूर्ण आत्म-समर्पण और प्रेम सबके हृदयोंको जीत लेता है। यदि स्त्रियां अपने इस प्रतिदिनके अनुभवका उपयोग समाजके सम्बन्धमें करें, तो समाज पर उनका वैसा ही शासन चलेगा जैसा एक नवयुवतीका अपने परिवार पर चलता है। यदि मुस्लिम स्त्रियां हिन्दू स्त्रियोंको अपनी बहनें मानना सीख लें, तो दोनों ऊपर उठेंगी। "आपकी यह प्रार्थना होनी चाहिये कि भगवान आपको वह बल दे, जो प्रार्थना और आत्मोत्सर्गसे प्राप्त होता है, ताकि आप अपने देशकी सेवा कर सकें और मौका आने पर देशके लिए मर सकें।"

२

जबसे गांधीजी नोआखाली और बिहारके अपने शान्ति-मिशनमें व्यस्त हो गये तबसे वे रचनात्मक कार्य करनेवाली अपनी विभिन्न संस्थाओंके कार्यकर्ताओंसे नहीं मिल सके थे। इस क्षतिको पूरा करनेके लिए अप्रैल १९४७ के अन्तिम सप्ताहमें इन संस्थाओंकी अनेक सभाएं पटनामें रखी गईं।

पहली सभामें बुनियादी शिक्षाकी समस्याओंकी चर्चा हुई। गांधीजी अपने सारे जीवनमें वस्तुतः एक शिक्षकका ही भाग अदा करते रहे थे। उनके हाथोंमें स्वाधीनताकी लड़ाई शिक्षाकी दोहरी प्रक्रिया बन गई – जन-साधारणको वे अहिंसक कष्ट-सहन और संगठनकी शिक्षा देते रहे और शासकोंको उन लोगोंके प्रति न्याय करनेकी, जो कष्ट देनेकी इच्छा तक न रखकर न्यायके लिए कष्ट उठानेको तैयार थे। इसलिए राष्ट्रीय शिक्षाकी सही प्रणाली पर न केवल अहिंसक स्वातंत्र्य-संग्रामके मार्गका बल्कि स्वयं भारतीय स्वाधीनताके भविष्यका भी आधार था। प्रश्न यह था कि भारतीय स्वाधीनता संसारके लिए प्रकाश-स्तंभ और वरदान सिद्ध होगी और एक ऐसी समाज-व्यवस्थाकी रक्तहीन सिद्धिका मार्ग बतायेगी, जिसमें सबको सम्पूर्ण विकासका समान अवसर मिलने तथा अत्याचार और भयसे मुक्त रहनेका आश्वासन होगा; अथवा उस स्वाधीनताके कारण व्याधिग्रस्त और पीड़ित संसारकी अनेक समस्याओंमें एक और ऐसी समस्याका भार बढ़ा देगी, जो न हल हुई है और न हल हो सकेगी ? भारतमें जिस प्रकारकी विश्वविद्यालयीन शिक्षा आज प्रचलित है, वह तो "जीवन-नाशक" है। उससे कोई लाभ नहीं होता; और सच तो यह है कि लाभकी अपेक्षा उससे हानि अधिक होती है। "विश्वविद्याल्योंस निकलनेवाले स्नातक अपने लिए कलर्कोंकी नौकरी ढूंढ़नेके सिवा और किसी चीजका विचार नहीं कर सकते । मेरे सामने ऐसे युवकोंके उदाहरण हैं, जो विश्वविद्याल्यकी डिग्रियां रखते हुए भी मेरी रायमें बिलकुल अशिक्षित हैं।" मेरा खयाल है कि हमारी शिक्षा-प्रणालीके दोष दूर करनेका एकमात्र उपाय यह है कि शिक्षा बुनियादी उद्योगों द्वारा दी जाय । यह कायापलट कलमके एक झटकेसे, मनमाने आदेशोंसे, चर्चाओंसे अथवा उपदेशोंसे भी नहीं किया जा सकता। परन्तु जो लोग सत्ताके स्थानमें बैठे हैं – जैसे कांग्रेसी मंत्री, विधान-सभाओंके लोक-प्रतिनिधि और सरकारी अधिकारी – वे यदि शरीर-श्रम करके कोई उदाहरण उपस्थित करें, चाहे रोज एक घंटा ही इसके लिए दें, तो इससे ऐसा वातावरण पैदा होगा जो सम्पूर्ण शिक्षा-पद्धतिमें क्रांति उत्पन्न कर देगा।

गांधीजीने नई तालीम अथवा शिक्षाकी अपनी नयी पद्धतिके बारेमें यह कल्पना की थी कि "वह एक ऐसी शान्त, सामाजिक क्रांतिका अग्रदूत होगी, जिसमें अत्यन्त दूरगामी परिणाम भरे होंगे।" नई तालीम पश्चिमी ढंगकी शिक्षाकी तरह मुख्यतः भौतिकवादी नहीं है, जिसमें शिक्षक बालकके मन और शरीरकी पहले चिन्ता करता है और आत्माको दूसरा स्थान देता है। नई तालीमका लक्ष्य "शरीर, मन और आत्मा तीनोंमें संतुलन" स्थापित करना है। नवीन भारतके सामने जो भगीरथ कार्य पड़ा है उसके लिए उसे योग्य बनाने और करोड़ों लोगोंके लिए थोड़ेसे थोड़े समयमें पूर्ण स्वाधीनता सिद्ध करनेकी क्षमता भारतमें उत्पन्न करनेके लिए नई तालीम जैसा और कोई उपाय नहीं है। विदेशी सरकार द्वारा प्रचलित शिक्षा-प्रणाली विदेशी प्रभुत्वको चिरस्थायी बनाने और देशके शोषणमें सहायक होनेके लिए निकाली गयी थी। उसने ऐसे लोगोंका एक वर्ग पैदा कर दिया, जो अपने ही देशमें विदेशी बन गये, "जिनका रक्त और रंग तो भारतीय है, परन्तु जिनकी रुचि, मत, नैतिक आचरण और बुद्धि अंग्रेजी है।" [शिक्षा पर मैकॉलेके अभिप्राय] अंग्रेजी शिक्षाने भारतकी धन-दौलतको हर लिया, भारतकी संस्कृतिकी जड़ें कमजोर कर दीं, उसकी भाषाओंको विपन्न बना दिया और उसकी सन्तानोंमें ऐसी मनोवृत्ति पैदा कर दी जिससे वे अपनी जंजीरोंसे ही प्यार करने लगीं ।

इसके विपरीत, नई तालीमका लक्ष्य था भारतके अहिंसक स्वातंत्र्य-संग्रामके साधन तैयार करना और "ऐसी अहिंसक तथा शोषणहीन समाज-व्यवस्था" की स्थापना करना जिसमें सबके लिए स्वतंत्रता और समानताका आश्वासन हो। बुनियादी तालीमके कार्यकर्ताओंसे गांधीजीने कहा: जिस बालकको नई तालीमका लाभ मिला है वह साहसी, स्वस्थ और सेवा करनेके लिए उत्सुक होना चाहिये। उसमें धोखेबाजी और इसी तरहके दोष नहीं होने चाहिये और गांवोंमें जाकर ग्रामवासियोंकी सेवा करने और वे जो भी मोटा-झोटा खानेको दें उसे खानेकी तैयारी होनी चाहिये। "जो कुछ उसने सीखा हो उसका उसके दैनिक जीवनमें दर्शन होना चाहिये, उसके आसपासके वातावरण पर उसकी छाप पड़नी चाहिये और अपने जैसे दूसरे नौजवान उसे पैदा करने चाहिये । बुनियादी शिक्षा पानेवाले नौजवानके बारेमें मेरी यह कल्पना है।" बुनियादी शिक्षकके बारेमें मेरी यह कल्पना है कि वह कारीगर और शिक्षक होना चाहिये। "उसकी स्त्री और बच्चे भी उसी तरह कारीगर होंगे और प्रेम तथा सेवाके श्रममें उसका हाथ बंटायेंगे। इसी तरह शिक्षकों और आम लोगोंमें सच्चे सहयोगकी भावना पैदा होगी और नई तालीमका संदेश भारतके कोने-कोनेमें फैल जायगा।"

गांधीजीसे पूछा गया था कि नई तालीममें कताईके स्थान पर खेती बुनियादी उद्योग क्यों नहीं हो सकता ? उनका उत्तर यह था कि मैंने कताईका उद्योग इसलिए सुझाया है कि खेतीमें कताई जैसी शैक्षणिक संभावनायें नहीं हैं। "उदाहरणके लिए, उसमें कताईकी तरह कुशलताका विकास नहीं होता। नई तालीमका कार्य केवल कोई धंधा सिखाना नहीं है, बल्कि उसके द्वारा समग्र मानवका विकास करना है। यद्यपि मैं खेतीके साथ नई तालीमका आरम्भ नहीं करता, फिर भी अन्तमें खेती आ ही जाती है। मेरी कल्पनाकी शालामें विद्यार्थी तथा शिक्षक दोनों मिल कर जो भी चीज जरूरी होगी उसकी व्यवस्था करेंगे। आज तो भारतकी यह दशा है कि गांवमें जो लोग साग-भाजी उत्पन्न करते हैं, वे उसे उपयोगमें नहीं ले सकते । त्रावणकोरके लोग नारियल पैदा करते हैं, परन्तु वे अपना माल इकट्ठा करके शहरोंमें भेज देते हैं जहां उनसे तरह तरहकी चीजें तैयार की जाती हैं या शहरोंमें बनी चीजें खरीदनेके लिए पैसा मिलता है। गांववाले न तो अपने नारियलोंका खुद उपयोग करते हैं, न उनसे तरह तरहकी चीजें तैयार करते हैं। नई तालीमका शिक्षण प्राप्त किये हुए लोग ऐसी फसलें उत्पन्न करेंगे, जिनकी उन्हें अपने उपभोगके लिए या तरह तरहकी चीजें तैयार करनेके लिए खुद जरूरत होगी। इससे शिक्षा अपने आप मुफ्त और सार्वत्रिक हो जायगी ।" कताईकी बात यह है कि मैं कोई उसकी जड़ पूजा करनेको नहीं निकला हूं । "मुझे आप यदि कोई दूसरा ऐसा काम बता दें जिससे देशके ४० करोड़ लोगोंकी सामूहिक दरिद्रता और अर्ध-बेकारीकी समस्या हल हो जाय, तो मैं उस हलको छोड़ दूंगा जो मैंने पिछले ५० सालोंसे बताया है और अपनी गलती मान लूंगा। उसका बड़ा गुण यह है कि वह सादी है, सस्ती है और सार्वत्रिक है। मैं यह स्वीकार करता हूं कि यदि वस्त्र-स्वावलम्बन सिद्ध करनेके लिए ८ घंटेकी कताई आवश्यक हो, तो खादीको मरना होगा । अन्य सारी आवश्यकताओंकी उपेक्षा करके कोई कताईमें रोज ८ घंटे नहीं लगा सकता। परन्तु मेरा यह दावा है कि रोज केवल एक घंटा सब लोग कातें, तो भारत न केवल विदेशी कपड़ेसे, बल्कि भारतीय मिलोंके कपड़ेसे भी पूर्णतया मुक्त हो जायगा।"

गांधीजीने विस्तारसे समझाया कि नई तालीमका आदि और अन्त कताई और सफाईमें ही नहीं है। "उसे बुद्धिकी वृद्धि और शुद्धि तथा शरीर और आत्माका विकास करना चाहिये । अथवा यों कह लीजिये कि यदि आप कताई और सफाईके जरिये बालककी शारीरिक और आध्यात्मिक शक्तियोंका विकास नहीं कर सकते, तो आप अपना काम नहीं जानते।"

गांधीजीसे पूछा गया: बुनियादी शिक्षामें धार्मिक शिक्षाका क्या स्थान होगा ? उन्होंने उत्तर दिया कि मैं नहीं मानता कि धर्मनिरपेक्ष राज्यको धार्मिक शिक्षासे कोई वास्ता रखना चाहिये अथवा वह उसकी यथोचित व्यवस्था कर सकता है। क्योंकि यदि वह धार्मिक शिक्षा देनेकी कोशिश करे और कुछ लोग गलत प्रकारकी धार्मिक शिक्षा देना चाहें, तो वह इसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकता। "जब तक धार्मिक शिक्षा कानून और व्यवस्था तथा सदाचारके लिए हानिकारक न हो, तब तक जो लोग ऐसी शिक्षा देना चाहते हैं वे अपनी जिम्मेदारी पर दे सकते हैं। सरकार तो सब धर्मोंके लिए सामान्य और सब दलोंको मान्य हो ऐसा नीतिशास्त्र ही सिखा सकती है।"

एक शिक्षकने गांधीजीसे पत्र लिख कर पूछा था कि समस्या बने हुए बच्चोंके साथ हिंसा किये बगैर कैसे पेश आया जाय। गांधीजीने जवाब दिया कि शिक्षकको शारीरिक दंडके त्यागके साथ इसका आरम्भ करना चाहिये । "इसके बजाय जो बालक आपकी देखरेखमें है उसके साथ तादात्म्य स्थापित करके सजीव सम्बन्ध खड़ा करना चाहिये और अपने आपको दण्ड देकर उसे दंड देना चाहिये। जब बच्चा शिक्षकको अपने लिए कष्ट भोगते देखेगा, तो उस पर वांछित प्रभाव पड़ जायगा और वह सुधर जायगा।" प्रसंगवश उन्होंने बताया कि दक्षिण अफ्रीकाके अपने समग्र निवास-कालमें मुझे बहुतसे हिन्दू और मुसलमान लड़कों और लड़कियोंकी देखभाल करनी पड़ती थी, परन्तु मुझे केवल एक ही अवसर ऐसा याद आता है जब मैंने किसी बालकको पीटा हो। मैंने अहिंसक उपायोंको हमेशा अधिक परिणामकारी पाया है।

नेशनल वार एकेडेमीकी कार्यसमितिके सुझाव पर भारत सरकारके केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार मंडलने यह सिफारिश की थी कि प्रान्तों और देशी राज्योंको ऐसी शालाएं खोलनी चाहिये जहां लड़के और लड़कियां रहें और सैनिक अधिकारियोंको चरित्र और नेतृत्वके जिन गुणोंकी जरूरत हो उनका विकास अपनेमें कर सकें। ये संस्थाएं नेशनल वार एकेडेमीकी "पोषक" संस्थाओंकी तरह काम करें। इससे नई तालीमकी जड़ ही कट जाती थी, क्योंकि उसका मर्म अहिंसा है। गांधीजीको लगा कि यह हर प्रकारसे गलत निर्णय है। उन्होंने हिन्दुस्तानी तालीमी संघके मंत्रीको एक पत्रमें लिखा: "मेरे विचारमें हमें लंबे समय तक ठहरना होगा, तब कहीं इस मुद्दे पर राष्ट्रव्यापी निर्णय हो सकेगा। अन्यथा हम संसारके लिए वरदान बननेके बजाय अभिशाप बन जायंगे। नेता जन्म लेते हैं, वे बनाये नहीं जाते। पूर्ण स्वाधीनता

स्थापित होनेसे पहले ही राज्यको इस मामलेमें इतनी जल्दी क्यों करनी चाहिये ?" [हरिजन, २३ मार्च, १९४७, पृ. ७६]

मद्रासके शिक्षामंत्री सहशिक्षाका प्रश्न सामने लाये। उनका मुद्दा यह था: मुझे बच्चों और बड़ोंकी, जो अपने मनको जानते हैं, सहशिक्षा पर आपत्ति नहीं, परन्तु मैं सरलतासे प्रभावित होनेवाली आयुके लड़के-लड़कियोंको सहशिक्षा देनेके पक्षमें नहीं हूं। इसी आयुमें अधिकांश लड़कियां प्रशिक्षण शालाओंमें जाती हैं । गांधीजी इससे सहमत नहीं थे: "अगर आप अपनी शालाओंमें सहशिक्षा रखें और प्रशिक्षण शालाओंमें न रखें, तो वे समझेंगे कि कहीं कोई खराबी है। मैं अपने बच्चोंको यह खतरा उठाने दूंगा। हमको किसी न किसी दिन स्त्री-पुरुषके सम्बन्धोंके बारेमें यह मनोवृत्ति दूर करनी होगी । उदाहरणोंके लिए हमें पश्चिमकी ओर नहीं देखना चाहिये । यदि शिक्षक बुद्धिशाली, शुद्ध और नई तालीमकी भावनासे परिपूर्ण होंगे, तो कोई खतरा नहीं रहेगा । कुछ दुर्घटनाएं हो भी जायं तो हमें उनसे डर नहीं जाना चाहिये। वे तो कहीं भी होती हैं।" अपने आश्रममें मैं ऐसे खतरोंसे कभी डरा नहीं और सिंहावलोकन करने पर लगता है कि इससे कुछ मिला कर लाभ ही हुआ है। परन्तु अपने स्वभावके अनुसार गांधीजीने अन्तिम निर्णय स्वयं प्रश्नकर्ता पर ही छोड़ दिया। "यद्यपि मैं इस प्रकार साहससे बात करता हूं, फिर भी संभव है कि मुझे इसके साथ जुड़े हुए खतरोंका पूरा खयाल न हो । आप एक जिम्मेदार मंत्री है। आपको स्वयं सोचना चाहिये और उसके अनुसार कार्य करना चाहिये ।"

भारतके अहिंसक संग्रामके दौरान सभी वर्गोंकी स्त्रियोंने घरोंकी चार-दीवारीसे बाहर निकल कर और पुरुषोंके साथ कंधेसे कंधा मिलाकर संग्राममें भाग लिया और ऐसा करते हुए अपनी भी स्वतंत्रता प्राप्त कर ली । हजारों लड़कों और लड़कियोंने भी इस संग्राममें हिस्सा लिया। वे साथ साथ काम करते थे और बड़ीसे बड़ी आजादीसे आपसमें मिलते-जुलते थे। अनेक पुराने निषेध उन दिनों ढीले पड़ गये। कुछ बिलकुल तोड़ दिये गये। गांधीजीने चेतावनी दी थी कि यदि आजादीका परिणाम नैतिक अनुशासनहीनतामें आया, तो इससे लोगोंमें घृणाकी भावना उत्पन्न होगी और अपनी माताओं, बहनों, पत्नियों और पुत्रियोंको इस संग्राममें शरीक होने देनेमें उन्हें संकोच होगा। वे बार बार कहते थे कि सत्याग्रहका पालन आंतरिक अनुशासनके विकास पर ही सर्वथा निर्भर है, जैसे सैनिक सफलताका सारा आधार बाहरसे लादे हुए अनुशासन पर होता है। इस प्रकार आजादी और भीतरी अनुशासनका

समन्वय सिद्ध करना एक समस्या बन गया है, जिसका सामना नई तालीमके क्षेत्रमें शिक्षाशास्त्रियोंको करना है।

अन्य बातोंकी तरह गांधीजी यौन-विषयक नैतिकताके क्षेत्रमें भी मूल कारणका स्पर्श किये बिना बाह्य लक्षणोंको दबानेके आसान उपायके विरुद्ध थे। पश्चिमके प्रभाव तथा बाहरसे लाये हुए अधूरे विज्ञानके प्रसारके कारण हम एक ऐसी दुनियाके बीच जी रहे हैं, जिसे विलियम जेम्सने "अनेक विश्व" कहा है। नतीजा यह होता है कि हमारा व्यक्तित्व विभक्त हो जाता है। अक्सर हमारे भीतरी और बाहरी जीवनमें परस्पर विरोध होता है। इसकी तरुण पीढ़ीके विकासशील मानस पर अनिवार्य प्रतिक्रिया होती है। जिन भूतोंको हम अपने भीतर पालते हैं उनसे हम उस समय डर जाते हैं, जब वे हमारे बच्चोंके जीवनमें पुनः प्रकट होते हैं। इसलिए गांधीजीने कहा कि यदि माता-पिता और शिक्षक अपने विचार-जगतमें और व्यक्तिगत जीवनमें वे सब स्वेच्छाचार छूटसे करते रहें, जिन्हें वे समाजमें बुरा कहते हैं, तो कृत्रिम निषेधोंका पालन करानेसे बालकोंमें दम्भ और विकृति, मानसिक असंतुलन और शारीरिक रोग पैदा होंगे। माता-पिताओं और शिक्षकोंके लिए सही मार्ग यह है कि वे स्वयं अपने जीवनकी परस्पर विरोधी बातोंकों मिटा कर शुद्ध आचरण और व्यवहारकी वही मिसाल कायम करें, जिस पर वे अपने बच्चोंको चलाना चाहते हैं। मानसिक स्वास्थ्य स्वतंत्रताके वातावरणमें ही संभव हो सकता है, अस्वाभाविक बन्धनोंके वायु-मंडलमें कभी नहीं।

३

कांग्रेसके सत्ता ग्रहण कर लेनेसे रचनात्मक कार्य करनेवाली संस्थाओं और केन्द्रीय कांग्रेस सरकारके पारस्परिक संबंधका प्रश्न सामने आया । गांधीजीकी यह राय थी कि अब अपनी ही सरकार है, इसलिए यदि रचनात्मक कार्य करनेवाली संस्थाओंको पहलेकी तरह जनतासे चन्दा एकत्र करनेके लिए इधर-उधर घूमना पड़े तो यह खेदकी बात होगी । सरकारको चाहिये कि उनके कार्यके लिए जितना भी पैसा जरूरी हो वह सब दे । अन्यथा भी, उदाहरणार्थ, यदि तालीमी संघ देखे कि सरकारी सहायता काफी मात्रामें नहीं मिल रही है, तो उसे अपने प्रयोगका क्षेत्र सीमित कर लेना चाहिये, परन्तु आत्म-निर्भरताके सिद्धान्तका तो दृढ़तासे पालन करना ही चाहिये । आत्म-निर्भरता नई तालीमका ध्येय नहीं है, परन्तु उसकी कार्य-क्षमताकी कसौटी है। यदि नई तालीमका संचालन ठीक ढंगसे किया जाय, तो

आत्म-निर्भरता उसका अनिवार्य परिणाम होना चाहिये । अपने समय और शक्तिको शिक्षाके काममें न लगाकर चन्दा इकट्ठा करनेमें लगाना कर्तव्य-विमुखता होगी। मैं इस प्रथाके बिलकुल विरुद्ध हूं कि शिक्षा-संस्थाओंके लिए बड़ी धनराशि सुरक्षित रहे । "हमें प्रारम्भिक खर्चके लिए आवश्यक रकमसे ही शुरुआत कर देनी चाहिये और फिर कमसे कम तीन वर्षके लिए किसीसे एक पाई भी न मांगनेका निश्चय कर लेना चाहिये। यदि इस अवधिके अन्तमें हम प्रयोगको स्वावलम्बी नहीं बना सकें, तो अधिक अच्छा यह होगा कि हम खुले रूपमें अपनी हार स्वीकार करें। इसमें कोई शर्म नहीं होनी चाहिये। इससे केवल हमारी सच्ची विनम्रता ही प्रकट होगी और हमारी प्रामाणिकताकी छाप ही लोगों पर पड़ेगी।"

गांधीजीसे पूछा गया: यदि सरकार हमसे किसी खास क्षेत्रमें सरकारी आधार पर बुनियादी शिक्षाके प्रयोग हाथमें लेनेको कहे, तो हमारा क्या रुख होना चाहिये ? गांधीजीने उत्तर दिया कि आपको अपने बूतेसे बाहरकी जिम्मेदारी लेनेमें सावधान रहना चाहिये; अन्यथा आप सरकारके लिए विषम स्थिति पैदा कर देंगे और स्वयं बदनाम हो जायंगे। उत्तम बात यही है कि आप अपनी मर्यादाएं जानें और उनका खयाल रख कर ही आगे बढ़ें।

गांधीजी रचनात्मक कार्यकी विभिन्न संस्थाओंके प्रति कांग्रेसी मंत्रि-मंडलोंका रुख देखकर दुःखी होते थे। ये संस्थाएं कांग्रेसकी बनाई हुई थीं। परन्तु राजनीतिमें अत्यधिक फंसे रहनेके कारण कांग्रेसने उनमें बहुत दिलचस्पी नहीं ली। शुरूमें जब कांग्रेस वनवासमें थी और कांग्रेस-जनोंके पास न तो आदमी थे, न पैसा था और न बड़ी बड़ी योजनाओंको हाथमें लेनेका ज्ञान और कुशलता ही थी, तब वे इच्छा-अनिच्छासे रचनात्मक कार्यमें जुटे रहते थे। इतने पर भी परिणाम बहुत अच्छा निकला था। इसके बाद वे सत्तारूढ़ हो गये और सत्ताका नशा बड़ा मादक सिद्ध हुआ। "आजके लक्षणोंसे ऐसा मालूम होता है कि इसे पचानेमें उन्हें बहुत समय लगेगा।" गांधीजीने चेतावनी दी कि अब भी बहुत देर नहीं हुई है। कांग्रेस अपने संगठनको साफ-स्वच्छ और व्यवस्थित करके टूटनेसे बच सकती है। परन्तु यदि कांग्रेस-जन वर्तमान अवसरसे लाभ नहीं उठायेंगे, तो **फिर कुछ ही समयमें अवसर हाथसे निकल जायगा और साम्यवादका ज्वार उन्हें आ दबोचेगा। मुझे यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि भारतमें खूनकी नदियां बहेंगी और ऐसा हत्याकांड होगा जिसकी आज आप कल्पना भी नहीं कर सकते** ।" बिहारके मंत्रियोंसे उन्होंने कहा: "जो कुछ हो रहा है उसे देखते हुए मैं अपने कर्तव्यके विषयमें बहुत तीव्रतासे विचार कर रहा हूं। याद रखिये, आपको जो ताज पहनाया गया है वह हीरोंका नहीं, बल्कि कांटोंका ताज है।"

प्रान्तोंमें कांग्रेसी मंत्रि-मंडलों और कांग्रेस-संगठनके बीच तथा रचनात्मक कार्यकी संस्थाओं और मंत्रि-मंडलोंके बीच सुमेल नहीं था। रचनात्मक कार्यकर्ताओंको यह शिकायत थी कि कांग्रेसी मंत्रि-मंडल रचनात्मक कार्यमें काफी सहायता नहीं देते । गांधीजीकी भी यह भावना थी, और वे चिन्तित थे कि दोनोंमें कोई मनमुटाव उत्पन्न न हो। **रचनात्मक कार्यका यह कर्तव्य है कि वह सरकारके हाथ मजबूत करे। यदि सरकार उससे लाभ उठाना न चाहे या उदासीन रहे, तो इस कारण रचनात्मक कार्यकर्ताओंको मनमें कोई कटुता नहीं रखनी चाहिये । ऐसा करना अहिंसाको न मानना होगा; और अहिंसा तो रचनात्सक कार्यकी आत्मा है**। अग्रगामियोंके नाते उनका काम आगे बढ़ना, सहयोगकी वृत्तिसे सरकारके रास्तेकी रुकावटें दूर करना और रचनात्मक कार्यके द्वारा जन-साधारणमें अहिंसाकी शक्तिका निर्माण करके देशकी राजनीतिको ढालना है। **सरकारी पैसे पर बहुत अधिक आधार रखनेसे इस बातका खतरा है कि रचनात्मक कार्यका क्रान्तिकारी स्वरूप विलीन हो जाय** । रचनात्मक कार्यको बदलती हुई राजनीतिका दास नहीं बन जाना चाहिये । आपको सरकारी सहायता तभी लेनी चाहिये जब वह आपकी शर्तों पर मिलती हो । परन्तु यदि वह आपकी आशासे कम हो या बिलकुल न मिले, तो आपको न तो निराश होना चाहिये, न नाराज होना चाहिये।

> हमें एक महासागर पार करना है। हमारी परीक्षाका समय आ गया है। गरजते हुए बादल आकाशमें मंडरा रहे हैं। हमारे चारों ओर घना कोहरा फैला हुआ है। हमारे देशके कामकाजके जहाजकी पतवार आज जिनके हाथमें है उनसे अधिक कुशल कर्णधार उसे संतुलित रखने अथवा उसे चलाकर हमें सुरक्षित स्थान पर पहूंचानेके लिए मिल नहीं सकते। यह समय दोष-दर्शनका नहीं है। हम सबको कमर कसकर तैयार हो जाना है और इस कार्यमें भरसक योग देना है।

नवनिर्मित शान्ति-समितिके सदस्योंसे गांधीजी बोले : “हम सब स्वाधीनता चाहते हैं। कांग्रेसने इसके लिए अथक परिश्रम किया है और जबरदस्त कुर्बानियां दी हैं। मुझे भय है कि हम कांग्रेस-संगठनके प्रति उदासीन भावसे वफादार रहे हैं । इसके बजाय कांग्रेसको तोड़ देना या छोड़ देना बेहतर होगा । उसे धोखा देकर हमें उसकी अनुपम सिद्धि पर पानी नहीं फेरना चाहिये ।”

लोगोंके हृदयोंसे पूर्वाग्रह और राग-द्वेष, सम्प्रदायवाद, व्यक्तिगत ईर्ष्या और ऐसे ही अन्य दोष निकाल कर उन्हें शुद्ध करना एक भगीरथ कार्य था। कांग्रेस-जनोंके भीतरी मतभेदोंके कारण सार्वजनिक जीवनका स्तर गिर गया था। इसके फलस्वरूप अव्यवस्था, अनुशासनहीनता और कर्तव्यके प्रति उदासीनताकी भावना सब जगह बढ़ रही थी। गांधीजीने कांग्रेस-जनोंको समझाया कि सत्ताके हस्तान्तरणके साथ आप लोगों पर जो महान दायित्व आ जायगा, उसके लिए अपने भीतरसे सारी हीन भावनाओंको निकाल कर आप अपनेको तैयार कर लीजिये। आपको वह विशेष कौशल और ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये, जिससे आप जन-साधारणकी अधिक फलदायी सेवा कर सकें। स्वाधीनता प्राप्त होने पर सबको अपने आप वह परिवर्तन महसूस होगा, जो गैर-जिम्मेदार, विदेशी नौकरशाही सत्ताके स्थान पर अहिंसक लोकतांत्रिक स्वशासनकी स्थापनासे होता है। अन्तमें गांधीजीने कहा कि मैं इस आशामें जीवित रहूंगा कि "स्वशासनके अमलसे हमारे भीतर दायित्वकी स्वाभाविक वृत्ति जाग्रत होगी और हमारे कई वर्तमान रोगोंका इलाज हो जायगा।"

*

कांग्रेसियोंमें भूतकालके बलिदानोंकी वजहसे स्थापित हितकी भावना पैदा हो, इसे गांधीजी खतरनाक मानते थे; उसी प्रकार वे इस विषयमें भी जाग्रत थे कि रचनात्मक कार्य करनेवाले लोगोंमें संकीर्ण मनोवृत्ति उत्पन्न न हो। गांधीजीने अपने एक साथीको पत्रमें लिखा: "अब चूंकि स्वराज्य आ रहा है, इसलिए उसके पोषणके लिए हमें प्रत्येक व्यक्तिके सहयोग और सेवाकी जरूरत है। १९४२ में 'क' ने भारतके बाहर मेरे ही बारेमें नहीं, बल्कि बेचारी कस्तूरबाकी बीमारी और मृत्युके विषयमें भी दूषित प्रचार किया। परन्तु आज हमें उनकी प्रतिभाका भी उपयोग करना चाहिये और हम कर रहे हैं। यही बात रचनात्मक कार्यकी संस्थाओंके लिए लागू होती है। हमें पुराने पूर्वाग्रह छोड़ देने चाहिये। हमें सबकी शक्तिका उपयोग करना चाहिये, ताकि हमारा बल बढ़े।"

गांधीजीने अखिल भारत चरखा-संघकी बैठकमें यह सुझाया था कि एक प्रसिद्ध वस्त्र-उद्योगपतिकी पत्नीको संघके संरक्षक-मण्डलमें ले लिया जाय। यद्यपि वे एक मिल-मालिककी पत्नी थीं, फिर भी उन्होंने देशहितके लिए अपनेको पूरी तरह समर्पित कर दिया था; और वह भी किसीके कहने पर नहीं बल्कि अपनी ही अन्तरात्माकी प्रेरणासे। गांधीजीको लगता था कि ऐसी महिलाको शामिल

कर लेनेसे उन्हें मिल-मालिक वर्गके विचार-परिवर्तनमें सहायता मिलेगी । उन्होंने कहा : "वे बहन एक अनुभवी कार्यकर्त्री हैं, आदर्श पत्नी तथा माता हैं, और एक करोड़पतिकी पत्नी होने पर भी सादगी और वैराग्यकी मूर्ति हैं।" किन्तु चरखा-संघके संरक्षकोंने आपत्ति उठाई कि ऐसा मार्ग अपनाना संघके विधानके विरुद्ध होगा, क्योंकि उसका नियम है कि कोई मिल-मालिक या मिलके कपड़ेका व्यापारी चरखा-संघका संरक्षक नहीं हो सकता। फिर भी आपका आग्रह होगा तो हम उन्हें नियुक्त कर देंगे । परन्तु गांधीजी कभी अपने साथियोंसे ऐसी कोई बात करनेके लिए नहीं कहते थे, जो उन लोगोंके हृदय और मस्तिष्कको न जंचे । इसलिए उन्होंने इस बात पर अधिक जोर नहीं दिया। उन बहनको गांधीजीने एक पत्रमें लिखा : " मैंने कुछ समयसे अक्सर यह देखा है कि अपने साथियों पर मेरी बातका वह असर नहीं होता, जो पहले कभी हुआ करता था । एक प्रकारसे यह मुझे अच्छा लगता है। संभव है, पहले मैं उनकी बुद्धिको कुंठित करता था और अब उसे स्वतन्त्रता सिली है। अथवा क्या मेरे विचार समयानुकूल नहीं हैं? कुछ भी हो, तुमसे तो मैं यही आशा रखता हूं कि तुम यह समझ कर कि वास्तवमें तुम चरखा-संघकी संरक्षक ही हो, खादीशास्त्रके विकासमें दिलचस्पी लेती रहोगी और यह दिखा कर कि एक करोड़पतिकी पत्नीको भी अत्यन्त उत्साही खादी-कार्यकर्ताओंके बराबर ही खादीसे प्रेम हो सकता है, शंकाशीलोंकी शंका और डरको झूठा साबित कर दोगी।"

अन्तिम बैठक पटनाके सदाकत आश्रमके कार्यकर्ताओंकी हुई और उसके साथ विभिन्न रचनात्मक कार्य करनेवाली संस्थाओंके कार्यकर्ताओंसे चल रही गांधीजीकी बातचीतका अंत हुआ । गांधीजीने उन्हें समझाया कि उद्योग, अर्थशास्त्र और सरकार, इन तीनोंके विकेन्द्रीकरणकी उनकी कल्पनाके पीछे कौनसा शास्त्र है। केन्द्रीकरणके विपरीत विकेन्द्रीकरणसे दीर्घ जीवन और सामाजिक स्थिरता उत्पन्न होती है। इसकी तुलना उन्होंने घरमें खाना बनानेकी प्रथासे की और कहा : **"समय और विज्ञानके आगे बढ़ जाने पर भी यह प्रथा बनी हुई है।"** उन्होंने जोर देकर कहा कि **मूलभूत आत्म-निर्भरता और स्वावलम्बन "व्यक्तिगत और सामूहिक अहिंसाकी कुंजी"** है।

इसके बाद हरिजन सेवक संघके कार्यकर्ताओंकी बैठक हुई। उसमें चुनौती देनेवाला एक बड़ा सवाल पेश किया गया। हरिजन पूछ रहे थे कि यदि सवर्ण हिन्दू "छूत" और "अछूत" की समानताका दावा सच्चे हृदयसे करते हैं, तो उन दोनोंमें विवाह क्यों नहीं होते ? सवर्ण हिन्दुओंकी ओरसे इसका क्या जवाब होना चाहिये ? गांधीजीने उत्तर दिया कि हरिजनोंको यह प्रश्न पूछनेका अधिकार है। मैं तो उनकी

यह बात पहले ही स्वीकार कर चुका हूं। विवाह सर्वथा व्यक्तिगत बात है। कोई व्यक्ति किसी व्यक्तिको उसकी इच्छाके विरुद्ध विवाह करनेके लिए मजबूर नहीं कर सकता । लेकिन जातिके आधार पर ऐसे अन्तर्विवाहोंके लिए कोई मनाही नहीं होनी चाहिये। आपको याद होगा कि मैंने बहुत पहले यह नियम बना लिया है कि दो पक्षोंमें से एक पक्ष यदि हरिजन न हो, तो ऐसे किसी विवाहमें न तो मैं उपस्थित रहता हूं और न उसे आशीर्वाद देता हूं । स्पर्शमात्रसे भ्रष्ट करनेवाली अस्पृश्यता अब भूतकालकी वस्तु बन गई है। अब तो हरिजनोंका सांस्कृतिक और आर्थिक उत्थान करनेकी जरूरत है, ताकि "छूत" और "अछूत" के सब भेद मिट जायं।

४

सुकरातने स्वयंको ईश्वर द्वारा राज्यको दी हुई "एक प्रकारकी गोमक्खी" कहा था । उन्होंने कहा था कि "अपने विशाल आकारके कारण मंद गतिसे चलनेवाले उम्दा घोड़ेकी तरह" राज्यको निरन्तर डंक मार कर जाग्रत रखनेकी जरूरत रहती है। कांग्रेस-जनों तथा कांग्रेसी मंत्रियोंको भी गांधीजी इसी प्रकारकी गोमक्खी लगे हों और उन्हें "नींदमें से एकाएक जगानेके लिए" कभी कभी कुंभकर्णकी तरह वे घबरा उठे हों, तो आश्चर्यकी बात नहीं है। लेकिन गांधीजी दूसरा कुछ कर ही नहीं सकते थे। निर्णयका समय तेजीसे निकट आ रहा था। अन्तिम घड़ी लगभग आ पहुंची थी। एक दिन मिलने आई हुई दो अंग्रेज महिलाओंसे बातचीत करते हुए गांधीजीने कहा : "यद्यपि ब्रिटिश सत्ता शीघ्र हटा ली जायगी, फिर भी **भारत तब तक वास्तवमें स्वतंत्र नहीं होगा जब तक भारतके लोगों पर विदेशी संस्कृति, विदेशी भाषा और विदेशी रहन-सहनका प्रभुत्व रहेगा। "इससे हमारा जीवन-स्तर अकारण खर्चीला और बनावटी हो गया है। जब तक हम इससे मुक्त नहीं हो जाते तब तक हम वास्तवमें स्वतंत्र नहीं होंगे**।" [मनु गांधी, 'बिहारनी कोमी आगमां', अहमदाबाद, १९५६, पृ. २२६] यदि स्वाधीनतामें प्रशासनका स्वरूप ब्रिटिश राज्यसे कुछ भी भिन्न होना है, तो इस बारेमें उदाहरण प्रस्तुत करना कांग्रेसी मंत्रियों और विधान-सभाके सदस्योंका काम है। **यदि लोगोंको परिवर्तनका अनुभव नहीं हुआ, तो कोई क्रान्तिकारी उत्साह अथवा सामूहिक लगन उनमें पेदा नहीं होगी । और आम लोगोंका ऐच्छिक और उत्साहपूर्ण सहयोग न होनेसे ब्रिटिश सत्ताकी सहायताके बिना वे अपनी समस्याएं हल नहीं कर सकेंगे। इसके लिए उन्हें भारी कीमत चुकानी पड़ेगी, जैसा कि उन्हें पहले ही दुःखद अनुभव हो चुका है।**

अंग्रेज महिलाओंके चले जानेके बाद बिहारके मंत्री आ गये। गांधीजीने स्वाधीन भारतमें भारतीय मंत्रियों और गवर्नरोंके बारेमें अपनी कल्पना उनके समक्ष इस प्रकार प्रकट की :

१. जहां तक हो सके मंत्री और गवर्नर भारतकी बनी हुई वस्तुएं ही काममें लें। अपने और अपने परिवारके लोगोंके लिए खादीका ही उपयोग करें और अहिंसाका चक्र चलता रखनेके लिए नियमित कताई-यज्ञ करें।

२. उन्हें नागरी और फारसी दोनों लिपियां सीख लेनी चाहिये, आपसमें अंग्रेजीका व्यवहार छोड़ कर अपनी प्रान्तीय भाषाका उपयोग करना चाहिये। तमाम सरकारी कामकाजके लिए हिन्दुस्तानी उनका माध्यम होनी चाहिये और उसीमें उनके तमाम कार्यालय-आदेश तथा परिपत्र निकलने चाहिये, जिससे हिन्दुस्तानी अपने आप भारतकी राष्ट्रभाषा बन जाय।

३. अस्पृश्यता, जात-पात, भेदभाव और पक्षपातसे उन्हें बिलकुल मुक्त रहना चाहिये। किसी भी उच्च सत्ताधारीको अपने भाई, बेटे या सामान्य नागरिकके प्रति – चाहे वह कारीगर हो या मजदूर – समान भाव रखना चाहिये।

४. उनका व्यक्तिगत जीवन सादगीका नमूना होना चाहिये। उन्हें कमसे कम एक घंटे रोज शरीर-श्रम करना चाहिये। इसके लिए वे कताई करें अथवा भंगीका काम करें या अन्नकी कमी पूरी करनेमें देशको सहायता देनेके लिए अनाज या तरकारियां पैदा करें।

५. उन्हें बंगलोंमें नहीं रहना चाहिये और न मोटरें रखनी चाहिये। उन्हें सीधे-सादे मकानोंमें रहना चाहिये, मोटर-गाड़ीका उपयोग वे कर सकते हैं, लेकिन बहुत कम और खास कारणोंसे।

६. एक ही जगह या एक-दूसरेके निकट रह कर मंत्री, उनके परिवार और कर्मचारी-मंडल परस्पर निकट सम्पर्कमें आयेंगे। इससे उनमें अच्छा समन्वय रहेगा।

७. उन्हें और उनके घरके लोगोंको यथासंभव नौकर न रख कर घरेलू कामकाज खुद ही कर लेना चाहिये।

८. खास तौर पर आजके आर्थिक संकटको देखते हुए, जिसमें से देश और देशकी जनता आज गुजर रहे हैं, सजावटका महंगा विदेशी सामान, सोफे, कुर्सियां और टेबल वगैरा काममें नहीं लेना चाहिये।

९. मंत्रियोंको तमाम बुराइयों और दुर्व्यसनोंसे दूर रहना चाहिये। यदि वे सादा जीवन और ऊंचे विचारका उदाहरण उपस्थित करें, तो उन्हें अंग-रक्षकोंकी जरूरत नहीं होगी। लोग स्वयं ही उनकी सब तरहसे रक्षा कर लेंगे और उन्हें लोगोंके विरुद्ध सुरक्षाके उपाय करनेकी आवश्यकता नहीं होगी ।

अन्तमें उन्होंने कहा: "संभव है, मेरा यह विचार अरण्य-रोदन ही सिद्ध हो। **परन्तु मैं चुप नहीं रह सकता, क्योंकि मैं इतिहासमें यह नहीं लिखवाना चाहता कि आज देशमें मेरे चारों ओर जो घटनाएं हो रही हैं उनका मैं मौन साक्षी रहा, मैंने उनका कोई विरोध नहीं किया** । इस मामलेमें उदाहरण प्रस्तुत करना डॉक्टर राजेन्द्रप्रसादके बिहारका काम है।" [देखिये खण्ड-४, प्रकरण-५ भी]

दूसरे दिन कुछ कार्यकर्ताओंके साथ बातचीत करते हुए उन्होंने फिर यही विषय छेड़ा। वे बोले : यदि भारत सरकार एक पाईका भी अनावश्यक व्यय करे, तो मैं कहूंगा कि वह ब्रिटिश सरकारसे अच्छी नहीं । अगर मेरी चले तो मैं "सरकारके किसी दफ्तरमें एक विदेशी पिन भी" बरदाश्त न करूं। अगर भारतके बने पिन नहीं मिल सकते, तो हमें पिनोंके बिना काम चलाना चाहिये। उसके बजाय कागजात सूई-धागेसे सीकर एकसाथ रखे जा सकते हैं। "मैं तो यहां तक कहता हूं कि मंत्रिगण वफादारीकी जो शपथ लेते हैं उसमें भी ये सब गूढ़ार्थ निहित हैं। परन्तु मैं तो चाहता हूं कि उन्हें इस आशयकी एक अलग शपथ दिलाई जाय कि वे व्यक्तिगत और दफ्तरकी जरूरतोंके लिए स्वदेशी माल ही काममें लेंगे। यदि मैं बिहारका मुख्यमंत्री होऊं तो मेरा पहला काम होगा कि तमाम सरकारी नौकरों और आम लोगोंके लिए खादी पहनना अनिवार्य कर दूं। और ऐसा मैं खादी-भण्डारोंसे खादी खरीदनेका नियम बना कर नहीं परन्तु यह नियम बनाकर करूं कि राशन-कार्ड रखनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको उस कार्ड पर तभी अनाज मिलेगा जब वह प्रतिदिन आधा घंटा कताई करेगा।"

उन्होंने कहा : मेरे लिए यह बात स्पष्ट है कि हम सब कातना-बुनना सीख लें, तो कपड़ेके मामलेमें मिलों पर आधार न रखते हुए हम स्वयं ही आत्म-निर्भर नहीं हो जायंगे, बल्कि संसारको भी कपड़ा मुहैया कर सकेंगे । यह तो गणितका सादा हिसाब है। और यदि यह सब जानते हुए भी मंत्रिगण इतना-सा भी

नहीं करा सकें, तो उनसे क्या लाभ और उनकी राजनीतिका क्या मूल्य? मुझे यह डर है कि जो सीधी-सादी बातें हैं और जिनके हल बहुत आसानीसे निकल सकते हैं, उन्हें भी अनावश्यक रूपमें कठिन और पेचीदा बनानेकी हमारी आदत हो गई है। जरूरत खर्चीली और लंबी-चौड़ी मशीनरीकी या ऊंचे वेतनवाले टेकनीशियनों और विशेषज्ञोंकी नहीं है, परन्तु सीधी-सादी व्यावहारिक बुद्धिकी और साथ ही जन-साधारणमें जाकर उनके दुःख-सुखमें शरीक होने, उनकी दृष्टिसे सोचने और उनका विश्वास प्राप्त करनेके दृढ़ संकल्पकी है। हमें उन्हें अपने स्वयंके उदाहरणसे सिखाना चाहिये कि जिन चीजोंकी उन्हें सख्त जरूरत है, लेकिन जिनका अभी तक अभाव है, उन्हें तुरन्त कैसे प्राप्त किया जा सकता है। ऐसा करनेसे आम लोग स्वयं ही अनुभव कर लेंगे कि साधारण मनुष्योंका युग आ पहूंचा है ।

*

मौसम बहुत गरम था। गांधीजीको बार बार अपना शरीर गीले तौलियेसे पोंछना पड़ता था और अपने माथे पर गीला कपड़ा लपेट कर रखना पड़ता था। उनके भले यजमान डॉ. महमूद इस कामके लिए पानी ठंडा करनेको कुछ बरफ मंगाना चाहते थे, परन्तु गांधीजीने विरोध किया । जो बात वे मंत्रियोंसे कह रहे थे, उसीका छोटासा दृष्टान्त देकर बोले: भारतकी ग्रीष्म ऋतुमें पानी ठंडा करनेका उत्तम उपाय यह है कि मिट्टीके घड़ेके चारों ओर गीला कपड़ा लपेट कर रख दिया जाय । "इससे पानी खूब ठंडा हो जाता है और बरफके पानीकी तरह उसके उपयोगसे जुकाम होनेका खतरा नहीं रहता।"

बिहारके मंत्रियोंको सबसे कड़ा सबक कुछ दिन बाद गांधीजीसे मिला । गांधीजीके पास एक शिकायत यह आई थी कि उनकी उपस्थितिमें मंत्रियोंने जो पुनर्वास-नीति स्वीकार की थी, उस पर सच्चे हृदयसे, सरल भावसे अमल नहीं किया जा रहा है। वे प्रामाणिकतासे अपना कर्तव्य नहीं पालते, इस तरह उन पर किये जानेवाले सन्देहसे भी गांधीजीको गहरी चोट लगती थी। उन्होंने मंत्रियोंसे कहा : "मुझे बताया जाता है कि मंत्रिगण मुझे कहते एक बात हैं और करते दूसरी हैं। इस तरह न तो हम स्वतंत्रता प्राप्त कर सकते हैं और न उसकी रक्षा कर सकते हैं। अगर आप सिर्फ मेरी खुशामद करनेके लिए हां कर देते हैं, तो आप मेरे प्रति, अपनी जनताके प्रति और आप पर रखे गये विश्वासके प्रति झूठे सिद्ध होते हैं। मैं कभी भूल न करनेका दावा नहीं करता। मैं जो कुछ कहता हूं वह आपको न जंचे, तो आपको स्पष्ट कह देना चाहिये और मुझे अपनी भूल समझानेका प्रयत्न करना चाहिये । जब आप

वास्तवमें मेरी भूल मानते हों उस समय मेरी हां में हां मिला कर आप मेरे साथ अन्याय करते हैं और अपनेको भी गलत स्थितिमें रखते हैं। आपको अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि पंजाब, बिहार और बंगालमें जो घटनाएं हो रही हैं, वे भारतीय स्वाधीनताके लिए बाधक बन रही हैं।"

कोई व्यक्ति गांधीजीके जितना अधिक निकट होता था उसके प्रति गांधीजी उतने ही अधिक कठोर व्यवहार करते थे। बिहारके मंत्री उनके पुराने साथी और सहयोद्धा थे और दोनोंके बीच गहरे स्नेह-संबंध थे। उनसे काफी प्राप्त करके भी गांधीजी उनसे अधिकाधिक प्राप्त करनेकी आशा रखते थे; और जिस ढंगसे वे शायद और किसीसे बात न करते उस ढंगसे बिहारके मंत्रियोंसे बात करनेका विशेषाधिकार काममें लेनेमें उन्हें कोई संकोच नहीं होता था। परन्तु शायद बादमें गांधीजीको महसूस हुआ होगा कि मंत्रियोंके पक्षका पूरा विचार किये बिना उनके बारेमें राय बना कर उन्होंने अन्याय किया है। उनके बिहार-निवासके अन्तिम दिन जब मंत्रिगण फिर उनसे मिले, तो गांधीजीने यह कह कर अपनी स्थिति सुधार ली: मैंने पिछली बार जो कुछ कहा था उसे निन्दा न समझ कर आपके लिए मेरी उत्कट चिन्ताका माप ही समझना चाहिये। "मुझे आशा नहीं है कि आपसे अच्छे दूसरे साथी मुझे मिल सकते हैं। मैंने आप पर बड़ी बड़ी आशाएं लगा रखी हैं। इसलिए जब मैं किसीको सकारण आपकी आलोचना करते हुए सुनता हूं तब मुझे चोट पहुंचती है।"

*

जब मानव-स्वभाव इतना नीचे गिरता दिखाई दे रहा था तब भारतके भविष्य तथा अहिंसाकी शक्तिमें श्रद्धा बनाये रखनेके लिए सामान्य कोटिकी आंतरिक अडिगता अपेक्षित नहीं होती । परन्तु बाहरी अन्धकार जितना ही घना होता था उतनी ही गांधीजीकी आन्तरिक दृष्टि स्पष्ट और श्रद्धा अडिग व दृढ़ होती जाती थी। उन्होंने कुछ कांग्रेसी कार्यकर्ताओंसे कहा: अणुबमके आगमनसे मेरा यह विश्वास प्रबल ही हुआ है कि अहिंसाका शास्त्र ही एकमात्र वह शस्त्र है, जो अन्तमें अणुबमको हरायेगा और दूसरे सारे शस्त्रोंको बेकार बना देगा। "अहिंसा आत्मबल है और आत्मा अविनाशी, अपरिवर्तनशील और नित्य-शाश्वत है। अणुबम भौतिक शक्तिकी पराकाष्ठा है और इसलिए भौतिक जगत पर लागू होनेवाला जर्जरता, ह्रास और मृत्युका नियम उस पर भी लागू होता है। हमारे धर्मशास्त्र इसके साक्षी हैं कि जब

आत्म-बल हमारे भीतर पूरी तरह जाग्रत हो जाता है तब वह अजेय बन जाता है। परन्तु पूर्ण जागृतिकी कसौटी और शर्त यह है कि वह हमारे रोम-रोममें समा जाय और हमारे प्रत्येक श्वासके साथ प्रगट हो।"

एक विदेशी मुलाकातीके साथ बातचीत करते हुए गांधीजीने कहा कि यद्यपि मेरी कल्पनाकी अहिंसा मैं अपने लोगोंमें उत्पन्न नहीं कर सका हूं, तो भी मैं जानता हूं कि अहिंसाके द्वारा ही भारतीय जन-साधारणको सुख मिल सकता है। "रूस लोकतंत्रमें विश्वास रखता था, लेकिन उसमें भी साम्राज्यवादी धाराएं प्रकट होने लगी हैं। यह अतिशय दुःखकी बात है। इसका एकमात्र प्रतिकार अहिंसा है, वही संसारको बचा सकती है।" मेरा विश्वास है कि स्वाधीन भारत सारी दुनियाके साथ मित्रता करना चाहेगा और पुरानी शिकायतें मनमें नहीं रखेगा। "स्वाधीनताका उपयोग करनेमें हम गलतियां कर सकते हैं या कठिनाइयां हमें घबराहटमें डाल सकती हैं। कभी कभी हमें निराशाका भी अनुभव हो सकता है और कड़वे अनुभव भी हमें होंगे। इससे मैं नहीं डरता। हम अपनी भूलोंसे सीखेंगे। परन्तु कांग्रेस यदि सत्य और अहिंसाके आदर्शोंसे हट जायगी, तो उसकी शक्ति और प्रतिष्ठा चली जायगी। **लेकिन कोई भी संस्था जबरदस्तीसे अहिंसक नहीं बनाई जा सकती । अहिंसा और सत्य संविधानमें लिखनेकी बातें नहीं हो सकतीं। उन्हें स्वेच्छासे अपनाना होता है। उन्हें हमारे शरीरसे लगे हुए भीतरी कपड़ोंकी तरह हमारे स्वभावका अंग बन जाना चाहिये, अन्यथा वे परस्पर विरोधी वस्तुएं बन जाती हैं**।"

एक मित्रको उन्होंने लिखा: "आप कांग्रेसके बारेमें जो कुछ कहते हैं उसे जानकर मुझे गहरा दुःख होता है। हम इस आशासे जियें कि भगवानकी दयाकी विजय होगी और शैतानको पदभ्रष्ट होना पड़ेगा।" [मनु गांधी, 'बिहारनी कोमी आगमां' , अहमदाबाद, १९५६, पृ. २५५]

५

गांधीजीको हिन्दू महासभाके अनुयायियोंकी तरफसे गोरक्षाके बारेमें कई पत्र मिले थे । उनका तर्क यह था कि गोभक्षक होनेके कारण मुसलमान हिन्दुओंके "स्वाभाविक शत्रु" हैं। गांधीजी अपनेको उत्कट गोरक्षक समझते थे । वे कहते थे कि गोरक्षा "हिन्दू धर्मका केन्द्रबिन्दु" [यंग इंडियां, ६ अक्तूबर, १९२१, पु. ३१८] है, "हिन्दू हृदयकी प्रियतम सम्पत्ति" [यंग इंडिया, ८ जून, १९२१, पृ. १८२] है और "संसारके लिए हिन्दू धर्मका वरदान" [यंग इंडिया, ६ अक्तूबर, १९२१, पृ. ३१८] है। परन्तु तथाकथित

गोरक्षकोंकी उन लोगोंके प्रति, जो गोरक्षामें विश्वास नहीं रखते – खास तौर पर मुसलमानोंके प्रति – शत्रुता उन्हें कभी समझमें नहीं आई। वे इस व्यवहारको गोरक्षाके महान आदर्शका उपहास मानते थे ।

पश्चिममें गांधीजीके तत्त्वज्ञानके किसी पहलूके बारेमें शायद इतनी गलतफहमी नहीं है जितनी गोरक्षाके प्रति उनके रुखके बारेमें। इसलिए इस विषयकी यहां विस्तारसे चर्चा करना ठीक होगा।

हिन्दू धर्म जिस गोरक्षाका आदेश देता है वह क्या है? क्या वह गायको यांत्रिक ढंगसे बचानेका अथवा किसी भी तरह बचानेका आदेश है ? और क्या सारी गायोंको किसी तरह चन्द्रलोकमें पहूंचा दिया जाय अथवा, जैसा कि एक गैर-जिम्मेदार मसखरेने एक बार सुझाव दिया था, यदि सब गायोंमें सूअरकी लसी पिचकारीसे भर दी जाय और इस तरह मुसलमानोंके लिए उन्हें निषिद्ध या अखाद्य बना दिया जाय, तो क्या गोसेवाका आदर्श पूरा होगा ? कतई नहीं। गांधीजीके मतानुसार यह गोरक्षाके सच्चे अर्थका इनकार होगा, विडंबना होगी।

भारतके एक महाकाव्य 'रघुवंश' में एक प्रसिद्ध कथा है, जिससे गोरक्षाके आदर्शका भीतरी अर्थ प्रगट होता है। रामके एक पूर्वज राजा दिलीप निस्संतान थे। उन्होंने अपने गुरु वशिष्ठ ऋषिकी सलाह मांगी। उन्होंने राजासे कहा: तुम्हारी अभिलाषाकी पूर्तिके लिए तुम्हें देवताओंकी गाय सुरभिको प्रसन्न करना होगा; क्योंकि तुमने एक बार अनजाने उसका अपमान कर दिया था और उसने तुम्हें शाप दे दिया था। राजाने अपने सब नौकरोंको दूर कर दिया और ऋषिके निर्देशानुसार गायको जंगलमें ले जाकर उसकी सेवा और रक्षा करने लगा। उसके प्रेमकी शक्ति इतनी महान थी कि जब उसने जंगलमें प्रवेश किया तो वनकी अग्नियां "वर्षाकी झड़ीके बिना ही शान्त हो गईं और वृक्ष फल-फूलोंसे लद गये तथा बलवान पशुओंने दुर्बलोंको सताना छोड़ दिया।"

इस प्रकार "२१ दिन" बीत गये। अपने रक्षककी भक्तिकी परीक्षा लेनेके लिए, जब राजा चारों ओरके पहाड़ी दृश्यके सौन्दर्यका चिन्तन करनेमें डूबा हुआ था तब, गाय हिमालयकी एक गुफामें चली गई। जाते ही वहां रहनेवाले सिंहने उसे पकड़ लिया। गायकी करुण पुकार सुन कर राजाने सिंहको मारनेके लिए अपने धनुष पर बाण चढ़ाया, परन्तु एकाएक उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि किसी जादूसे उसके हाथ जड़वत् हो गये हैं। राजाकी विवशता देखकर सिंहने उसकी हंसी उड़ाते हुए कहा : मैं सामान्य सिंह नहीं हूं । भगवान शिवका सेवक कुंभोदर हूं । शिवके आशीर्वादसे मुझ पर कोई शस्त्र नहीं चल

सकता। "इसलिए तुम अपना व्यर्थ प्रयत्न छोड़ कर घर लौट जाओ। . . . किसी योद्धाको किसी ऐसे प्राणीकी, जिसकी रक्षा शस्त्रोंसे न हो सके, रक्षा न कर सकनेमें कोई लज्जा या अपमान अनुभव करनेकी आवश्यकता नहीं ।" राजाने उत्तर दिया: "मैं जानता हूं कि मैं लाचार हूं । परन्तु एक वस्तु फिर भी मेरे पास है। मैं गायके बदलेमें तुझे अपना शरीर देता हूं। तू मेरे मांससे अपनी भूख मिटा ले और गायको छोड़ दे।" सिंहने समझाया : "यदि तुम दयासे प्रेरित होकर यह सब कर रहे हो, तो तुम्हारा निर्णय गलत है; क्योंकि अपनी मृत्युसे तो तुम एक ही गायको बचाओगे, जब कि कई वर्ष जीवित रह कर तुम अपनी प्रजाके पिताके नाते सब कष्टोंसे उसकी रक्षा करोगे। इसके विपरीत, यदि तुम्हें अपने गुरुकी अप्रसन्नताका भय है, तो तुम उन्हें कलशके समान बड़े तथा दूधसे भरे हुए स्तनोंवाली करोड़ों गायें भेंट करके प्रसन्न कर सकते हो।" राजाने सिंहसे अनुनय-विनय की: "कृपा करके मेरे शरीरको स्वीकार कर ले, परन्तु मेरे नामको जीवित रहने दे ।" सिंहने उत्तर दिया : "तथास्तु !" इस पर राजा अपनी बाहें फैला कर मांसके लोंदेकी तरह उस हिंस्त्र प्राणीके आगे लेट गया, ताकि सिंह उसे खा जाय। परन्तु सिंहके भयंकर पंजेके प्रहारके बजाय – जिसकी उसने आशा रखी थी – उस पर स्वर्गसे पुष्पवर्षा होने लगी और आकाशवाणी हुई : "वत्स, उठ, तेरी प्रतिज्ञा पूरी हुई।" राजा उठ बैठा । उसने देखा कि गाय उसके सामने खड़ी है –"वह राजाको अपनी माताके समान दिखाई दी, उसके स्तनोंसे दूध उमड़ा पड़ता था और सिंह कहीं दिखाई नहीं देता था।"

राजाकी परीक्षा पूरी हुई और गायने राजाके सामने इस घटनाका रहस्य प्रकट कर दिया। राजाकी भक्तिकी परीक्षा लेनेके लिए गायने ही सिंहकी माया पैदा की थी। उसकी प्रतिज्ञा पूरी होनेके लिए न तो राज्य-कोष खाली करनेकी जरूरत थी और न बाहुबल प्रकट करनेकी; परन्तु उस परम प्रेमके पालनकी जरूरत थी, जो हिंस्त्र पशुओंको वशमें कर सकता है और जंगलकी अग्निको बुझा सकता है – परन्तु इसकी चरम सीमा तब होती है जब कोई दूसरेके प्राण बचानेके लिए स्वयं अपने प्राण दे देता है।

जिस गायकी सेवा और रक्षाका आदेश हिन्दू धर्मने दिया है, वह गाय केवल पशु नहीं है; वह गाय ऐसी है जिसका हिन्दुओंके पवित्र ग्रन्थोंमें "पृथ्वीकी पीड़ाकी मूर्ति" के रूपमें वर्णन किया गया है और जो ईश्वरके सिंहासनके सामने तभी पुकार करती है जब पृथ्वी पर पापका भार बढ़ जाता है। यह

एक आध्यात्मिक आदर्श है और उसकी सिद्धिका साधन तप और आत्म-शुद्धि है। दूसरे शब्दोंमें, इसीको विश्वव्यापी प्रेम कहते हैं।

*

हमारे युगमें पश्चिमको सब जीवोंके प्रति पूज्य भावका तत्त्वज्ञान सिखानेका श्रेय श्वीट्ज़रको है। यह उनकी एक महानतम सिद्धि मानी जाती है कि उन्होंने अपने नीतिशास्त्रमें पेड़ों और पशुओंकी सार-संभालको भी सम्मिलित किया है। "यदि हम जीवनको उसके विविध स्वरूपोंमें आगे बढ़ाते हों, तो हमारा यह व्यवहार नैतिक है। यदि हम जीवनका नाश करें अथवा जीवोंकी जिजीविषाको निष्फल बनायें, तो हमारा यह व्यवहार अनैतिक है।" [अमेरिकन पत्रिका 'न्यू आउटलुक' , जनवरी १९५०, पृ. २] श्वीट्ज़रका तत्त्वज्ञान इस प्रकार समझाया गया है: "प्राणि-जगतमें जीवका जीवके साथ संघर्ष चला करता है। फिर भी मानव-प्राणी इस क्षेत्रसे परे हैं। और उनके भीतर जीवन दूसरे जीवनके प्रति जाग्रत रहता है और इस प्रकार परस्पर विरोधी जिजीविषाओंके प्रति वह जाग्रत बनता है। एक-दूसरेको उसी सार्वभौम जिजीविषाके अंग स्वीकार करके मानव-प्राणी जीवनके प्रति पूज्य भावके नैतिक सिद्धान्तमें समाधान प्राप्त करते हैं।" [वही, पृ. ४] इससे यह उप-सिद्धान्त निकलता है कि "जब सब प्रकारके प्राणियोंका (जिनमें पशु और पेड़ भी शामिल हैं) आदर किया जाता है, तो सब राष्ट्रोंको अपना जीवन जीनेका समान अधिकार होना चाहिये। . . . आक्रमणकारी राष्ट्र-वाद ऐसी भूमिका पर ही संभव है जहां राष्ट्रीय जिजीविषा रखनेवाला कोई मानव अपने जैसे ही अन्य मानवोंके विषयमें नैतिक दृष्टिसे जाग्रत नहीं होता ।" [वही, पृ. ३-४]

गांधीजीका गोरक्षाका आदर्श उनके विश्वव्यापी अहिंसाके तत्त्वज्ञानसे सम्बद्ध था। "मेरे लिए गायका अर्थ सारा मनुष्येतर जगत है। गायके द्वारा मनुष्यको प्राणिमात्रके साथ तादात्म्य स्थापित करनेका आदेश दिया गया है।" [यंग इंडिया, ६ अक्तूबर, १९२१, पृ. ३१८] इसलिए गोरक्षाका अर्थ है "दुर्बलों और असहायोंकी रक्षा।" [यंग इंडिया, ८ जून, १९२१, पृ. १८२] गांधीजीने कहा: "इसलिए तर्कसंगत बात यह है कि जो हिन्दू गायकी रक्षता करता है, उसे सभी पशुओंकी रक्षा करनी चाहिये।" [यंग इंडिया, ११ नवम्बर, १९२६, पृ. ३९१]

श्वीट्ज़रके सामने जीवमात्रके प्रति पूज्य भावके सिद्धान्त और उसके पूर्ण पालनमें विरोध आया, तो उन्होंने अपने लिए उस विरोधको इस प्रकार मिटा लिया: "जो किसान अपनी गोचर-भूमिमें गायें चरानेके लिए हजारों फूलोंको कुचल देता है, उसे घर लौटते समय यह सावधानी जरूर रखनी चाहिये कि वह विचारहीन मनोरंजनके लिए रास्तेका एक भी फूल न तोड़े; क्योंकि ऐसा करके वह आवश्यकताका दबाव न होने पर भी जीवनके प्रति अन्याय करता है।" [अमेरिकन पत्रिका 'न्यू आउटलुक', जनवरी, १९५०, पृ. ५]

गांधीजी मानते हैं कि जो हिन्दू गायकी रक्षा करता है, उसे सम्पूर्ण रूपमें सुसंगत रहनेके लिए प्रत्येक प्राणीकी रक्षा करनी चाहिये। "परन्तु सब बातोंका विचार करते हुए हम उसकी गोरक्षा पर केवल इसीलिए आपत्ति नहीं कर सकते कि वह दूसरे प्राणियोंकी रक्षा नहीं कर पाता। इसलिए विचारणीय प्रश्न यही है कि उसका गायकी रक्षा करना ठीक है या नहीं । और उसका ऐसा करना अनुचित नहीं है, यदि आम तौर पर प्राणियोंको न मारना उस व्यक्तिका धर्म समझा जाय, जो अहिंसामें विश्वास करता है।" [यंग इंडिया, ११ नवम्बर, १९२६, पृ. ३९१] गायकी रक्षा सर्वव्यापी अहिंसाके सिद्धान्तके पालनमें गांधीजीके लिए पहला कदम था, न कि अंतिम। "जो मनुष्य अन्य प्राणियोंकी भी रक्षा कर सकता है वह यदि गोरक्षा करके ही रुक जाता है, तो वह हिन्दू धर्मका घटिया नमूना है। . . . गोरक्षा तो ऐसी छोटीसे छोटी चीज है, जिसकी उससे आशा की जाती है।" [वही]

गांधीजीने अपने लिए तो इसका कारण मालूम कर लिया था कि विशेष देखभालके लिए भारतने गायको ही क्यों चुना ? "भारतमें गाय मनुष्यका उत्तम साथी है। वह भारतकी कामधेनु है। . . . मानव-विकासमें गोरक्षा मुझे एक अत्यन्त अद्भुत घटना प्रतीत होती है। इससे मनुष्य अपनी जातिके परे पहुंच जाता है। . . . गाय दयाकी मूर्तिमन्त कविता है। इस सुशील प्राणीमें हमें दया ही उमड़ती दिखाई देती है। वह लाखों भारतीय मानवोंके लिए माताके समान है। गायकी रक्षाका अर्थ है ईश्वरकी समस्त मूक सृष्टिकी रक्षा।" [यंग इंडिया, ६ अक्तूबर, १९२१, पृ. ३१८]

गोरक्षाके आदर्शके और भी सामाजिक तथा आर्थिक पहलू हैं, जिनका सम्बन्ध अहिंसक समाज-व्यवस्थाकी "स्थायी अर्थ-रचना" के साथ है। इनकी चर्चा इस पुस्तकमें अन्यत्र की गई है। (देखिये खण्ड-४, अध्याय-४)

इस कल्पनाके अनुसार गोरक्षा तलवार दिखा कर नहीं की जा सकती । जिन ऋषियोंने गोरक्षाको हिन्दुओंका परम धर्म बताया है, उन्होंने यह भी कहा है कि उसके पालनसे मोक्ष मिलता है। यह बात समझमें नहीं आती कि केवल गाय-पशुको बचानेसे ही मोक्षकी प्राप्ति कैसे हो सकती है:

> मोक्षके लिए तो मनुष्यका अपने आसक्ति, घृणा, क्रोध और ईर्ष्या आदि विकारोंसे पूरी तरह मुक्त होना जरूरी है। . . . जिस गोरक्षासे मोक्ष मिल सकता है, उसमें तो प्राणिमात्रकी रक्षा सम्मिलित होनी ही चाहिये। इसलिए मेरी रायमें अहिंसाके सिद्धान्तका छोटेसे छोटा भंग, जैसे किसी दुर्बलसे दुर्बल और तुच्छसे तुच्छ प्राणीको भी दुःख पहूंचानेके लिए कठोर शब्द कहना, गोरक्षाके सिद्धान्तका भंग होगा। . . . [यंग इंडिया, २९ जनवरी, १९२५, पृ. ३९]

गोरक्षाकी इस व्याख्याके अनुसार गायकी रक्षा करनेका मार्ग है गायके लिए अपने प्राणोंकी बाजी लगाना। गांधीजी कहते हैं कि हिन्दू मुसलमानोंके हाथों होनेवाले गोवधको न रोक सकें, तो वे कोई पाप नहीं करते। परन्तु गायकी रक्षाके लिए जब वे मुसलमानोंसे लड़ते हैं तब वे गंभीर पाप करते हैं। "कोई हिन्दू राज्य भी उसकी प्रजाका कोई भाग जिन्हें धार्मिक मानता हो ऐसे हेतुओंसे किये जानेवाले गोवधको तब तक नहीं रोक सकता जब तक प्रजाके उस भागके सयाने लोगोंके बहुमतकी स्वीकृति उसे न मिले; शर्त सिर्फ इतनी ही है कि यह गोवध गुप्त रूपमें किया जाय और उसके पीछे हिन्दुओंको भड़काने या उनका दिल दुखानेका आशय न हो।" [यंग इंडिया, ७ जुलाई, १९२७, पृ. २१८] हिन्दुओंको अपनी तपस्या, आत्मशुद्धि और आत्मत्यागके द्वारा गायकी रक्षा करनेका आदेश दिया गया है। "गायको बचानेके लिए भी अपने किसी मानव-बंधुको मारना हिन्दू धर्म नहीं है।" [यंग इंडिया, २८ जुलाई, १९२१, पृ. २३६]

परन्तु व्यवहारमें गोरक्षाने नीचे उतरकर मुसलमानोंके साथ चलनेवाले एक स्थायी झगड़ेका रूप ले लिया है। गांधीजीने कहा है कि सही दृष्टिसे समझ लेने पर गोरक्षाका अर्थ होगा "अपने प्रेमसे मुसलमानोंको जीतना।" [यंग इंडिया, ६ अक्तूबर, १९२१, पृ. ३१८] परन्तु इसके बजाय उससे साम्प्रदायिक दंगे भी भड़क उठते हैं। गांधीजीने गोरक्षाके नाम पर हुए तमाम दंगोंको "उन्मादपूर्ण मिथ्या प्रयास" [यंग इंडिया, २९ मई, १९२४, पृ. १८१] कहा है।

गांधीजीका दृढ़ विश्वास था कि जो अच्छा नीतिशास्त्र है वह अच्छा अर्थशास्त्र भी होना चाहिये और जो अच्छा अर्थशास्त्र है वह अच्छा नीतिशास्त्र भी होना चाहिये। तद्नुसार उन्होंने गोरक्षाका एक ऐसा अर्थशास्त्र तैयार कर दिया, जिसमें "धर्मके नाजुक पहलू" का भी अपने आप समावेश हो जाय। उनका सुझाव था कि गोवधको आर्थिक दृष्टिसे असंभव बनाया जा सकता है और बनाया जाना चाहिये। परन्तु दुर्भाग्यसे सारी दुनियामें एक भारत ही ऐसा देश है जहां हिन्दुओंका यह पवित्र पशु हत्याके लिए सबसे सस्ता हो गया है। वैज्ञानिक पालन-पोषण व देखभालसे गायका दूध दुगुना किया जा सकता है। अगर गायके मल-मूत्रका कंपोस्ट खादके लिए सदुपयोग किया जाय, तो उसकी कीमतसे गायके पालन-पोषणका खर्च पूरा हो सकता है और होना चाहिये। इसी प्रकार दूधके व्यापारके मुनाफेसे और मुर्दा मवेशियोंके चमड़े, हड्डियों, मांस, चर्बी और सींग वगैराका आर्थिक दृष्टिसे लाभप्रद उपयोग करनेसे इतनी आमदनी हो सकती है कि बूढ़े पशुओंका भरण-पोषण हो जाय और उन्हें कसाईखाने भेजने अथवा भूख और उपेक्षासे मरनेके लिए घरसे खदेड़नेकी जरूरत न पड़े । इसलिए गांधीजीने हिन्दुओंसे कहा कि वे पशुओंके मृतदेहोंका उपयोग करनेके विरुद्ध प्रचलित परम्परागत पूर्वाग्रहको छोड़ दें, गोरक्षाकी दृष्टिसे ही चलनेवाले दुग्धाल्योंका दूध, मक्खन वगैरा काममें लें, स्वाभाविक मौत मरनेवाली गायोंके ही चमड़ेसे इसी कामके लिए स्थापित चर्मालयोंमें तैयार किये गये सामानका उपयोग करें, दूसरे चमड़ेसे बनाया गया सामान कुछ सस्ता हो तो भी काममें न लें और इस प्रकार गोमांसके लिए होनेवाले गोवधको महंगा बना दें।

परन्तु इस प्रकार यह प्रश्न आर्थिक दृष्टिसे हल करने जैसा होने पर भी गोरक्षाकी प्रेरणा देनेवाला हेतु सर्वथा स्वार्थपूर्ण नहीं होता, "यद्यपि स्वार्थपूर्ण विचार इसमें घुस अवश्य जाते हैं।" [यंग इंडिया, ११ नवम्बर, १९२६, पृ. ३९१] जब बर्नार्ड शॉ गांधीजीसे लंदनमें मिले तब उन्होंने अपने विशिष्ट ढंगसे सारी बातको थोड़ेमें इस तरह रख दिया : "गाय बूढ़ी हो जाय तब उसे कसाईखानेमें भेज देना उतनी ही बड़ी नीचता है, जितनी बड़ी नीचता हमारी मांके बीमार पड़ जाने पर अथवा उसकी प्रजोत्पत्ति बंद हो जाने पर उसे फांसी चढ़ा देना है !" यदि गोरक्षाका आधार "शुद्ध स्वार्थ पर होता तो उसका पूरा उपयोग बन्द हो जाने पर दूसरे देशोंकी तरह हिन्दुस्तानमें भी गायको मार दिया जाता। परन्तु हिन्दू गाय भारी बोझ बन कर रहे तो भी उसे मारेगा नहीं।" [वही]

जिन लोगोंकी यह कल्पना थी कि हमारे जैसी धार्मिक भावना न रखनेवालोंसे घृणा करनेसे हमारे धर्मकी सेवा हो सकती है – जब कि वे स्वयं अपनी पूजनीय वस्तुके प्रति प्रेम दिखानेके लिए कुछ भी न करते हों – उनकी धर्मांधताके तर्कहीन तथा आत्मघाती स्वरूपको दिखानेके लिए गांधीजी निर्मम तर्कका उपयोग करते थे। गांधीजीके पास कट्टर गोरक्षकोंके पत्र आये थे। उनका उल्लेख करते हुए अपने एक प्रार्थना-प्रवचनमें उन्होंने अपना यह विचार फिर दोहराया कि बहुतसी तथाकथित गोरक्षक संस्थाएं वास्तवमें "गोवध करनेवाली संस्थाएं" होती हैं। सच्ची गोरक्षामें उदारता, हृदयकी विशालता, सहिष्णुता तथा असहायों और निर्दोषोंकी रक्षाके लिए आत्मोत्सर्ग करनेकी क्षमताकी पराकाष्ठा होनी चाहिये। परन्तु गाय और उसकी सन्तानके प्रति जितना दुर्व्यवहार और जितना अत्याचार "गोरक्षक" भारतमें होता है उतना संसारमें और कहीं नहीं होता। यह दुर्व्यवहार हत्यासे भी बुरा है। अंग्रेजोंका राष्ट्र गोमांस-भक्षियोंका राष्ट्र है। इसी प्रकार अन्य पश्चिमी राष्ट्र भी सब गोमांस-भक्षक हैं। उनमें से कुछ तो गोमांसका बहुत बड़ी मात्रामें निर्यात करते हैं। परन्तु कोई गोरक्षक उन्हें "हिन्दुओंका स्वाभाविक शत्रु" नहीं समझता। इसके विपरीत, मैं ऐसे बहुतसे लोगोंको जानता हूं, जो अपनेको हिन्दू कहते हैं परन्तु जिन्हें इंग्लैंड या और कहींसे मंगाया हुआ गोमांसका सत (बीफ एक्सट्रेक्ट) लेनेसे कोई परहेज नहीं होता । खिलाफत आन्दोलनके दिनोंमें मुसलमानोंने स्वेच्छासे हजारों गायोंकी रक्षा की, जब कि साम्प्रदायिक संघषंसे वास्तवमें अधिक गायें मारी गईं :

> दूसरोंके दोष निकालनेकी अपेक्षा अपनी ही त्रुटियां दूर करनेमें शक्ति लगाना कहीं अच्छा है। आज तो आपके अपने धर्मका भवन टूट रहा है। यदि आप उसकी बुनियादें ठीक कर लें, तो बाकी सब अपने आप ठीक हो जायगा । हम गायके शरीरको सजा कर उसकी पूजा करते हैं, परन्तु उसके बछड़ेसे दूधकी आखिरी बूंद भी छीन लेते हैं और जब गायको ठीक ढंगसे खिलाने-पिलानेकी बात आती है तो कंजूस बन जाते हैं; और जब गोमाता बूढ़ी और अपंग हो जाती है तब उसे बेचकर कसाईखाने भेज देते हैं, अथवा भूखसे तड़प तड़प कर मर जानेके लिए उसे घरसे निकाल देते हैं। कोई इन बातोंकी सचाईको चुनौती दे सकता हो तो मेरे सामने आये। हम दूसरोंकी निन्दा करनेमें ही बहादुर हैं और अपने दोषोंके बारेमें उदार बन जाते हैं। मैंने आज जो बातें कही हैं उन पर आप अच्छी तरह विचार कीजिये, आत्म-निरीक्षण कीजिये; तब आपको

इस प्रश्नका सच्चा उत्तर मिल जायगा कि गायका सच्चा शत्रु कौन है और किसके विरुद्ध आपका धर्मयुद्ध होना चाहिये। [प्रार्थना-प्रवचन, २५ अप्रैल, १९४७]

६

गांधीजी एक महान आध्यात्मिक गुरु थे, फिर भी उन्होंने कोई नया धर्म नहीं चलाया। उन्होंने यही शिक्षा दी कि सब अपने अपने धर्मका पूरा पालन करें और दूसरोंके धर्मोंकी उत्तम बातें आत्मसात् कर लें, तो विभिन्न धर्मोंके माननेवालोंको पूर्णता प्राप्त हो सकती है। इसी प्रकार पृथ्वी पर शान्ति और मानव-जातिमें सद्भाव स्थापित करनेका हमारा सपना पूरा होगा । लड़ाई-झगड़ेका युग समाप्त हो जायगा और छिन्नभिन्न मानव-परिवारमें पुन: पहलेकी एकरागता स्थापित हो जायगी। यह सर्वधर्म-समभावके आधार पर ही हो सकता है। गांधीजीकी सामूहिक प्रार्थना-सभाओंमें सब धर्मोंको समान समझने और सबका समान आदर करनेका प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता था। परन्तु इससे कुछ धार्मिक नेंताओंके मिशनरी उत्साहको सन्तोष नहीं होता था। वे बार बार गांधीजीको ज्ञानका प्रकाश दिखाने और नियमित रूपसे अपने धर्ममें लानेकी कोशिश करते थे।

मुसलमानोंके अहमदिया सम्प्रदायकी संस्था जमीयत-ए-अहमदिया-इस्लामियाने उन्हें इस्लाम स्वीकार करनेका निमंत्रण दिया। गांधीजीके बिहारके निवास-कालके अन्तिम दिनोंमें जमीयत-ए-इस्लामने अधिक सूक्ष्म ढंगसे ऐसा प्रयत्न किया। उनके प्रतिनिधिने गांधीजीको समझाया कि उनका लक्ष्य मुसलमानोंको कुरानकी सच्ची भावना पर चलाना है। गांधीजीको उनके लक्ष्योंसे सहानुभूति थी। उन्होंने पटनामें गांधीजीको अपनी सभामें बुलाया । वे खुशीसे गये । २६ अप्रैलको शामका साधारण प्रार्थना-प्रवचन छोड़ दिया गया । अध्यक्षके खासे लम्बे भाषणमें बराबर यह प्रच्छन्न सुझाव बना रहा कि इस्लाम ही एकमात्र सच्चा धर्म है और गैर-मुस्लिमोंको (जिनमें उस संध्याके सम्माननीय अतिथि भी शामिल थे) उसका प्रकाश ग्रहण करना चाहिये ! भाषणमें गैर-मुसलमानोंका उल्लेख इतनी बार आया कि लगता था मानो उस समारोहका मुख्य उद्देश्य उन्हें ज्ञानका प्रकाश दिखाना था। गांधीजीको यह भाषण अच्छा नहीं लगा। उन्होंने तो यह मानकर सभामें आना स्वीकार किया था कि संस्थाका उद्देश्य इस्काममें सुधार करना और मुसलमानोंसे पैगम्बरकी नसीहतों पर अमल कराना है। परन्तु बिहारमें

मुसलमानोंकी आबादी केवछ १३ या १४ प्रतिशत थी। गांधीजीको बहुसंख्यक कौमके सदस्यके नाते लगा कि जहां कहीं उन्हें बुलाया जाय वहां पूरी नम्रताके साथ जाना उनका फर्ज है।

दूसरे दिन शामकी प्रार्थना-सभामें इस घटनाका उन्होंने उल्लेख किया । अपने अप्रिय अनुभवके बारेमें उन्होंने एक शब्द भी नहीं कहा । इससे पहले ही कटु बनी हुई साम्प्रदायिक भावना और भी कड़वी हो जाती। इसके बजाय उन्होंने श्रोताओंसे वही कहा जो डॉ. महमूदके सचिवने बताया था – अर्थात् जमीयत-ए-इस्लामके सदस्य संयमी हैं और सादा जीवन बितानेवाले हैं और उनके पास मुसलमानोंके लिए आत्मशुद्धि और आत्म-साक्षात्कारका सन्देश है। अन्तमें गांधीजीने कहा कि धर्मको तलवार कभी जीवित नहीं रखती, ईश्वर-परायण मनुष्य ही उसे जीवित रखते हैं। राम, गॉड या अल्लाह किसी भी नामसे ईश्वरकी पूजा की जाय, वही पूजाका सच्चा विषय है। उसे उपहारोंसे प्राप्त नहीं किया जा सकता; पवित्र आचरणके उपहार द्वारा ही उसे प्राप्त किया जाता है। विश्वव्यापी प्रेम हिन्दू धर्मका सार है। इसी उपायसे हिन्दू धर्म या कोई भी धर्म जीवित रह सकता है।

२८ अप्रैलकी प्रार्थना-सभामें एक लिखित सन्देश द्वारा गांधीजीने इस शिक्षाको आगे बढ़ाया: "आपको यह जान कर आश्चर्य होगा कि मुझे ऐसे पत्र मिलते रहते हैं, जिनमें मुझ पर यह आरोप लगाया जाता है कि मुसलसानोंके मित्रका काम करके मैंने हिन्दू हितोंको हानि पहूंचाई है। यदि मेरे साठ वर्षके सार्वजनिक जीवनसे प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिला, तो मैं शब्दोंसे लोगोंको यह विश्वास कैसे करा सकता हूं कि मुसलमानोंका मित्र बननेकी कोशिश करके मैंने अपनेको एक सच्चा हिन्दू ही सिद्ध किया है और हिन्दुओंकी तथा हिन्दू धर्मकी सच्ची सेवा की है? सभी धर्मोंकी सच्ची शिक्षाका सार यह है कि सबकी सेवा करना और सबका मित्र बनना चाहिये और बिना भेदभावके ईश्वरकी समग्र सृष्टिकी सेवाके द्वारा ईश्वरकी सेवा करनी चाहिये; क्योंकि ईश्वरकी सृष्टिसे अलग रहकर ईश्वरकी सेवा नहीं की जा सकती । यह पाठ मैंने अपनी मांकी गोदमें सीखा था। आप मुझे हिन्दू कहनेसे इनकार कर सकते हैं। मेरे पास इसका कोई बचाव नहीं । मैं केवल इकबालकी प्रसिद्ध पंक्तियां ही उद्धृत करूंगा : 'मजहब नहीं सिखाता आपसमें बैर रखना।' अपने मित्रोंके प्रति मित्रताका भाव रखना बहुत आसान है। परन्तु जो अपनेको हमारे शत्रु समझते हों उनसे मित्रता करना ही सच्चे धर्मका सार है। दूसरा सब तो घटिया सौदाभर है।" इसी प्रार्थना-सभामें उन्होंने घोषणा की :

मेरे अन्तरका नाद मुझे आदेश देता है कि मैं अपनेको अल्प-संख्यकोंकी सेवामें समर्पित कर दूं। जब हिन्दू और मुसलमान अपना वैर भूल जायंगे तब मेरा नया जन्म होगा। ईश्वर ही जानता है कि मेरी यह अग्नि-परीक्षा मुझे अन्तमें कहां ले जायगी। मनुष्य तो अपने कर्तव्यका ही पालन कर सकता है और आवश्यक हो तो उसके पालनमें अपने प्राण दे सकता है। ईश्वर सर्वशक्तिमान है। वही सब-कुछ है। हम तो केवल शून्य हैं।...इसलिए इस बातका कोई महत्त्व नहीं कि मैं यहां दिल्लीमें रहूं या और कहीं रहूं। वह जहां ले जायगा वहीं मैं जाऊंगा; और जहां कहीं मैं रहूंगा वहां उसीकी इच्छा पर चलूंगा।

रातको साढ़े नौ बजे गांधीजी सोये। भयंकर गरमीके कारण उन्होंने अपना भोजन कमसे कम कर दिया था। इस कारण उन्हें बहुत कमजोरी आ गई थी । अचानक उन्हें याद आया कि उन्होंने दैनिक कताई नहीं की हैं। उनके स्वास्थ्यका खयाल करके उनके सेवकोंने जान-बूझ कर उन्हें कताईका स्मरण नहीं दिलाया था। परन्तु जागनेके बाद दैनिक यज्ञको छोड़ देना उनके लिए अकल्पनीय था। वे अपने बिस्तरसे निकले, कताईकी दैनिक मात्रा पूरी की और फिर सो गये। उनका रक्तचाप बहुत नीचे उतर गया था।

*

गांधीजीका ऐसे वर्गहीन, समतावादी समाजमें दृढ़ विश्वास था, जिसमें अमीर-गरीब, ऊंच-नीचका कोई भेद न हो। कुछ बातोंमें वे कट्टर समाजवादियोंसे भी आगे जाते थे, क्योंकि वे अनिवार्य समाजोपयोगी शरीर-श्रमसे किसीको भी मुक्त करनेके लिए तैयार नहीं थे। "यदि मनुष्य काम न करे, तो वह खाये भी नहीं ।" वे यह भी मानते थे कि सभी तरहके कामका – चाहे वह शारीरिक हो या बौद्धिक – मेहनताना बराबर होना चाहिये । परन्तु प्रचलित समस्याओंके बारेमें वे अव्यावहारिक समाजवादी दृष्टिकोणको स्वीकार नहीं करते थे। वे यह भी नहीं मानते थे कि "भले बननेकी किसीको भी आवश्यकता न पड़े ऐसी सम्पूर्ण समाज-व्यवस्थाके स्वप्न" देखनेसे ही समाजकी पुनर्रचना की जा सकती है। इसके विपरीत, उनका यह अत्यन्त दृढ़ मत था कि विशेषाधिकारको मिटानेका एकमात्र उपाय यह है कि हम खुद उसे छोड़ दें। उनका समाजवाद सर्वोदयके सिद्धांतके पालनसे निकला था। कट्टर समाजवादी उनके दावेको नहीं मानते थे, परन्तु वे कहते थे कि मैं आपसे ज्यादा अच्छा समाजवादी हूं । उन्होंने गरीबों,

छोटेसे छोटे लोगों और दीन-दुःखियोंके साथ एक होकर और उनके दुःखोंमें शरीक होकर जीवन-भर समाजवाद पर अमल किया था; दूसरी ओर जो लोग अपनेको समाजवादी कहते थे वे समाजवादके सपने देख कर और समाजवादकी बातें करके सन्तोष मान लेते थे और "सबके समाजवादी बनने" तक सुख-चैनका जीवन जीते रहते थे।

गांधीजीने अपने बिहारके निवास-कालमें एक दिन अपने एक साथीसे कहा : "समाजवादका आदर्श कोई नयी शोध नहीं है। वह गीतामें भी मिलता है। इसका अर्थ यह है कि हमें अपनी कमसे कम जरूरतसे ज्यादा कोई चीज अपने पास नहीं रखनी चाहिये और आजीविकाके साधनोंको ईश्वरके प्राणियोंमें बराबर बांटकर उनका उपयोग करना चाहिये। इस आदशेकी पूर्तिके लिए किसी बड़े संगठनकी जरूरत नहीं । कोई भी व्यक्ति स्वयं अपनेसे आरम्भ करके इसका पालन कर सकता है। पहली बात यह है कि जितनेकी हमें सख्त जरूरत हो उससे अधिक अपने पास न रखा जाय। इस प्रकार बैंकमें अपना खाता रखना इस आदर्शके अनुरूप नहीं होगा। अपने जीवन पर सतत कठोर चौकीदारी करना पहली महत्त्वकी बात है। अकेला एक व्यक्ति भी यदि अपने जीवनमें यह आदर्श पूरी तरह उतार लेता है, तो वह सारे समाज पर प्रभाव डाल सकता है। सच्चे अर्थमें अपनी सम्पत्ति और बुद्धिका संरक्षक बन जाना ही सच्चा समाजवाद है। परन्तु आज तो समाजवादका अर्थ यह हो गया है कि दूसरे लोगोंकी सम्पत्ति जबरन् छीन ली जाय। यह सच्चे समाजवादकी विडम्बना है।"

कुछ समय पश्चात् पन्द्रह विद्यार्थियोंका एक दल गांधीजीसे मिलने आया । उस समय उनका सोमवारका मौन था। ये विद्यार्थी अपनेको समाजवादी कहते थे। गांधीजीने उनके प्रश्नोंके उत्तर कागजके टुकड़ों पर लिख दिये। उन्होंने लिखा: समाजवादकी दिशामें पहला कदम है आलस्य और शरीर-श्रमकी अरुचिको छोड़ देना। "अब मुझे बताओ, तुममें से कितनोंके घर पर नौकर है? " विद्यार्थियोंने स्वीकार किया कि कुल मिलाकर एक घरमें कमसे कम एक नौकर जरूर है। गांधीजीने उनसे पूछा: "और तुम दूसरोंसे गुलामी करा कर भी अपनेको समाजवादी कहते हो! यह अजीब प्रकारका समाजवाद है, जिसे मुझे कहना चाहिये कि मैं नहीं समझा सकता । अगर तुम मेरी सुनो तो मैं कहूंगा कि किसी वादमें तुम न फंसो। प्रत्येक वादका अध्ययन करो। जो पढ़ो उस पर विचार करके उसे हजम करो और उसमें से तुम्हें जंचे उस पर खुद अमल करनेकी कोशिश करो । लेकिन ईश्वरके लिए किसी वादको स्थापित करनेका प्रयत्न मत करो। समाजवादके पालनमें पहला कदम अपने हाथ-पैरोंका उपयोग सीखना है।

समाजसे हिंसा और शोषणका मुंह काला करनेका एकमात्र यही निश्चित उपाय है। हमें उस समय तक समाजवादकी बातें करनेका हक नहीं है जब तक हमारे बीच और हमारे चारों ओर भूख, बेकारी और ऊंच-नीचका भेद मौजूद है।"

फिर गांधीजीने उनके लिए व्यावहारिक समाजवादका एक बुनियादी कार्यक्रम तैयार कर दिया: (१) सुबह उठकर अपना बिस्तर समेटो, (२) नाश्ता तैयार करनेमें और परोसनेमें सहायता दो, (३) घरको झाड़ने और साफ करनेमें मदद करो, (४) अपने कपड़े खुद धोओ, (५) बरतन साफ करने और मलनेमें अपनी माताओं और बहनोंकी सहायता करो, (६) अपनी जरूरतके कपड़ोंके लिए रोज कातो, (७) अपनी पुस्तकों और कागजोंको साफ-सुथरा रखो, और (८) पचास रुपयेकी फाउण्टेन पेनके बजाय दो आनेकी निबवाली कर्म काममें लो।

अन्तमें गांधीजीने विद्यार्थियोंसे कहा : अगर दूसरोंसे बात करने या उन्हें उपदेश देनेके बजाय तुम इस प्रकार समाजवादका अमल करोगे, तो तुम स्वयं प्रथम समाजवादी बन कर अपने निकटके पड़ोसमें समाजवादी समाज उत्पन्न कर दोगे। "फिर तुम्हें किसीको समाजवादी 'बनाने' की जरूरत नहीं रहेगी। तुम्हारा यह उदाहरण ही वह काम कर लेगा; और इससे भी बड़ी बात यह होगी कि तुम्हारे चिर-पीड़ित माता-पिताओंको बहुत राहत मिल जायगी। तुम उन पर भार नहीं रहोगे।"

*

कांग्रेसी समाजवादियोंके लिए गांधीजीके हृदयमें कोमल भाव था। वर्गहीन समाजकी स्थापनाका उनका कार्यक्रम गांधीजीको बहुत पसन्द था। परन्तु उन्हें भय रहता था कि कांग्रेसी समाजवादी इस सम्बन्ध में गलत दिशासे आरंभ कर रहे हैं। देशकी बदली हुई स्थितिमें सबके लिए समाजवादकी दिशामें पहला कदम यह था कि साम्प्रदायिक और राष्ट्रीय एकताके लिए प्रयत्न किया जाय और सारे देशके भलेके लिए मिलकर काम किया जाय। परिस्थितियां बदल गई हैं, इसलिए परिस्थितियोंके साथ उत्तकी कार्य-पद्धति भी बदलनी चाहिये। अब तोड़-फोड़, वर्गयुद्ध और अड़ंगेबाजीके उन्हीं पुराने, निकम्मे और जीर्णशीर्ण उपायोंसे चिपटे रहनेसे काम नहीं चल सकता, जो ब्रिटिश राज्यमें अपनाये गये थे।

उन्होंने कांग्रेसी समाजवादियोंको सावधान किया कि केवल स्वाधीनतासे ही भारतमें नया स्वर्ग और नई धरती नहीं आ जायगी। उससे तो केवल ऐसी कुछ बाधायें दूर हो जायंगी, जिनके बीच हमें पहले काम करना पड़ता था; और इस प्रकार वास्तविक रचनात्मक प्रयत्नका रास्ता साफ हो जायगा। कांग्रेसी समाजवादियोंका एक दल देशके विभाजनकी योजनाकी घोषणासे पहले २७ मई, १९४७ को दिल्लीमें गांधीजीसे मिलने आया था। गांधीजीने उनसे कहा था: अगर आप समाजवादी व्यवस्था स्थापित करनेके बारेमें गंभीर हैं, तो इसका सबसे सीधा और जल्दीका रास्ता यह है कि गांवोंके गरीब लोगोंके बीच जाकर बस जाइये, उनकी तरह रहिये, उनके साथ आठ घंटे काम कीजिये, गांवोंकी बनी चीजें ही काममें लीजिये, गांवोंकी निरक्षरता और अस्पृश्यताको मिटाइये और स्त्रियोंको अपना दर्जा ऊंचा उठानेमें सहायता दीजिये। "अगर आप अविवाहित हैं और शादी करना चाहते हैं तो किसी गांवकी लड़कीको अपनी जीवन-संगिनीके रूपमें पसन्द कीजिये।" अगर ये सब बातें आप सच्चे दिल और ईमानदारीसे करेंगे, तो आपके उदाहरणका प्रभाव आम लोगोंमें फैल जायगा। यही बात कांग्रेसजनों पर लागू होती है। गांधीजीने आगे कहा, आपको यह नहीं भूलना चाहिये कि सारी त्रुटियोंके होते हुए भी कांग्रेस ही एक ऐसी संस्था है, जो सचमुच राष्ट्रीय है। उसने किसी दल या गुटके साथ तादात्म्य स्थापित नहीं किया है। मुझे विश्वास है कि अगर समाजवादी ग्रामोत्थानकी कोई योजना तैयार करें, जो केवल कागजी न हो, परन्तु अमलमें उतारने जैसी हो – तो कांग्रेसी सरकारें उनको सहारा देंगी और पंडित नेहरू स्वयं उनका गुणगान करेंगे। परन्तु मैं देखता हूं कि जिस समय सम्प्रदायवादकी चुनौती आपके सामने है और आपके पूरे ध्यानका तकाजा करती है, ऐसे समय भी आपको मुख्य चिन्ता हड़तालें करानेकी रहती है। अंग्रेजोंके विरुद्ध लड़ी गई लड़ाईमें राजनीतिक हड़तालें ठीक थीं, परन्तु जब वे अपने ही देशवासियोंके विरुद्ध कराई जाती हैं तब वे बिलकुल बेमानी हो जाती हैं। जो लोग सत्ताको संभाले हुए हैं उनसे यदि सत्ताके लिए आप टक्कर लेना चाहते हों, तो उनसे अधिक बुद्धि, अधिक त्याग और अधिक सेवाका प्रमाण आप लोग दीजिये। आपको किसी भी प्रकार मौजूदा तनावोंको बढ़ाना नहीं चाहिये, न नये तनाव पैदा करने चाहिये। "आपमें बुद्धि है, प्रतिभा है, सूझ-बूझ है और देशभक्ति है। ये सब चीजें गांवोंको दीजिये और प्राणदायक रचनात्मक प्रवृत्ति द्वारा सच्चे अर्थमें ग्रामीण लोगोंको शिक्षित कीजिये, ताकि वे कानूनको अपने हाथमें लेकर आत्म-विनाशके मार्ग पर अग्रसर न हों, जो आपकी और उनकी स्थितिको पहलेसे भी ज्यादा बुरी बना देगा। संभव है, आज यह बात आपकी समझमें न आये,

परन्तु किसी दिन, शायद मेरे मर जानेके बाद, आप इसे समझेंगे। अब तक हमारे यहांके लोग गूंगे और अंधे जैसे थे। हमें वे अपना हाथ पकड़ कर चलाने देते थे। परन्तु यदि आप चारों ओर नजर नहीं रखेंगे, तो ऐसा समय आयेगा जब आपके भाषण कोई नहीं सुनेगा और आपको खाली हवामें भाषण देने होंगे । कारण, समाज बिनमांगे उपदेशों पर नहीं निभ सकता; महत्त्व बातोंका नहीं, कामोंका होगा।"

समाजवादी मित्र इस विषयमें तो सहमत थे कि गांधीजीके रचनात्मक कार्यक्रससे असमानताएं मिटानेमें सहायता मिलेगी, परन्तु इस बातसे उनका विरोध था कि इससे लोगोंका "जीवन-स्तर" ऊंचा उठानेमें मदद मिलेगी। गांधीजीने उनसे कहा: मैं लोगोंका जीवन-स्तर ऊंचा उठानेके आदर्शमें तो आपसे सहमत हूं, परन्तु उसकी कुछ मर्यादाएं हैं। पहली चीज पहले होनी चाहिये । उदाहरणार्थ, मैं कलाका प्रेमी हूं। मैं चाहूंगा कि सब बच्चोंको नृत्य और संगीतकी शिक्षा मिले। परन्तु यह उनके जीवनका एक अभिन्न अंग हो जाना चाहिये, न कि उनका बाह्य श्रृंगार। मैं तथाकथित कला और संस्कृतिकी उन सारी प्रवृत्तियोंको निःसंकोच निषिद्ध कर दूंगा, जिनसे लोगोंका नैतिक बल शिथिल होता हो। इसी प्रकार मैं भारी कर लगाकर हानिकारक विलासकी सामग्री और व्यसन बन जानेवाली दवाओं पर अंकुश लगा दूंगा; तमाम कपड़ेकी मिलों और बिजलीसे चलनेवाली आटेकी और तेलकी मिलोंको मैं बन्द कर दूंगा। परन्तु मैं यह भी देखूंगा कि प्रत्येक गांव अपनी सारी अत्यावश्यक वस्तुएं, जैसे अन्न, वस्त्र, दूध, शाक और फल खुद पैदा कर ले और सब लोगोंको ये पदार्थ पर्याप्त मात्रामें मिल जायं। स्वावलम्बनको प्रोत्साहन देनेके लिए मैं पुरस्कार और विजय-चिह्न (ट्राफी) दूंगा और जो गांव इस सम्बन्धमें उदाहरण उपस्थित करेंगे उन्हें कुछ करोंसे मुक्त कर दूंगा।

गांधीजीने यह भी कहा : औद्योगिक युगके कृत्रिम जीवनने नर-नारियोंकी जीवन-शक्तिको नष्ट कर दिया है। अभूतपूर्व विकृतियां पैदा करके उसने विज्ञानकी सिद्धियोंको बहुत-कुछ बेकार बना दिया है। अपने बचपनके दिन याद करके गांधीजीने अपने जन्मस्थान काठियावाड़की स्त्रियोंका आदर्श चित्र प्रस्तुत किया । उन्होंने कहा : ये स्त्रियां पानी भरने सूर्योदयके समय नदी पर जाती थीं और प्रातःकालीन सूर्यकी नवीन किरणोंका लाभ उठाती थीं। उसके बाद खेतोंमें स्वास्थ्य-वर्द्धक श्रम करती थीं और भजन गाते गाते अपने घरोंमें चक्की चला कर आटा पीसती थीं। इससे उनके शरीर और आत्मा दोनोंमें जीवन-शक्तिका संचार होता था। कार्यमें उन्हें आनन्द आता था। वह कोई बेगार नहीं थी, जिसमें फुरसत और

सिनेमा तथा नाटक-घरोंमें प्राप्त रोमांच द्वारा राहत पानेकी जरूरत हो । उन्होंने हंसकर कहा, यदि मैं भारतका प्रधानमंत्री होता और मेरी बात चलती, तो मैं आपको सिर्फ कताईका ही थियेटर देता !

समाजवादियोंमें से एक मित्रने गांधीजीसे पूछा: "लेकिन आपको भारतका प्रधानमंत्री बननेसे रोकता कौन है ? यदि आप आगे आयें तो आपका विरोध करनेवाला कौन है ?"

गांधीजी : "सबसे पहले तो आप हो करेंगे !"

समाजवादियोंका तर्क यह था कि समाजवादके बिना लोकतंत्रका कोई अर्थ नहीं है। गांधीजी सम्पत्तिके समान वितरणके आदर्शके बारेमें तो उनके साथ सहमत थे ही, परन्तु वे एक कदम और आगे जाते थे। उन्होंने कहा: न तो लोकतंत्र और न समाजवाद विशुद्ध अहिंसाके वातावरणके बिना स्थापित किया जा सकता है। समाजवादियोंकी कार्य-पद्धति तथा मूल्य-विषयक दृष्टिमें और गांधीजीकी कार्य-पद्धति तथा मूल्य-विषयक दृष्टिमें जो फर्क था, उसे गांधीजी कभी छिपाते नहीं थे।

एक बार जब ऐसी ही चर्चा चल रही थी तब लुई फिशरने गांधीजीसे कहा: "परन्तु आप भी समाजवादी हैं और वे भी समाजवादी हैं।"

गांधीजीने जवाब दिया : "मैं समाजवादी हूं, वे नहीं हैं। . . . मेरा दावा तब भी कायम रहेगा जब उनका समाजवाद मर जायगा।"

"आपके समाजवादसे आपका क्या मतलब है ?"

"मैं अंधों, बहरों और गूंगोंकी राख पर चढ़ कर आगे नहीं बढ़ना चाहता । उनके समाजवादमें कदाचित् इन लोगोंके लिए स्थान नहीं होगा। . . . मैं अपने व्यक्तित्वकी सम्पूर्ण अभिव्यक्तिके लिए स्वतंत्रता चाहता हूं। . . . मैं चाहूं तो मुझे स्वर्ग तक सीढ़ी लगानेकी छूट होनी चाहिये । . . . दूसरे समाजवादमें व्यक्तिको स्वतंत्रता नहीं होती। उसमें आपका अपना कुछ नहीं होता। आपका अपना शरीर अथवा व्यक्तिगत इच्छा भी नहीं होती ।"

"हां, लेकिन समाजवादमें मात्राके भेद हैं। मेरे समाजवादका उसके संशोधित रूपमें यह अर्थ है कि राज्य सब चीजोंका स्वामी नहीं होता।"

"क्या आपके समाजवादमें राज्य आपके बच्चोंका स्वामी नहीं होता और उन्हें अपनी इच्छानुसार शिक्षा नहीं देता ?"

"यह तो सभी राज्य करते हैं ।"

"तब आपका समाजवाद दूसरे किसी समाजवादसे भिन्न नहीं है।"

"वास्तवमें आपकी आपत्ति तानाशाहीके लिए है।"

"परन्तु समाजवाद या तो तानाशाही है या केवल आरामकुर्सी पर बैठनेवालोंका तत्त्वज्ञान है।"

"समाजवादी वही चाहते हैं जो आप चाहते हैं – अर्थात् स्वतंत्र जगत । साम्यवादी यह नहीं चाहते।"

"जैसा मैंने समझा है, साम्यवाद समाजवादका ही स्वाभाविक परिणाम है।"

"आप ठीक कहते हैं। एक समय ऐसा था जब दोनोंमें भेद नहीं किया जा सकता था। परन्तु आज समाजवादी साम्यवादियोंसे बहुत भिन्न हैं।"

"आपके कहनेका यह अर्थ है कि आप स्टालिनके ढंगका साम्यवाद नहीं चाहते।"

"परन्तु भारतीय साम्यवादी तो भारतमें स्टालिनके ढंगका साम्यवाद ही चाहते हैं और इस कामके लिए आपके नामका उपयोग करना चाहते हैं।"

"इसमें वे सफल नहीं होंगे।"

*

मार्क्सवादके प्रति भी उसके पूर्व-कल्पित सिद्धान्तों तथा सर्वस्पर्शी कथनोंके कारण गांधीजीका वही अविश्वासका रवैया था। पूनाकी अपनी नजरबन्दीके समय मार्क्सवादी साहित्यका विस्तृत पठन करनेके बाद वे बोले : "रा खयाल है कि मार्क्सकी अपेक्षा मैं मार्क्सवादकी अधिक अच्छी विवेचना करता, बशर्ते मुझमें उनके जैसा पांडित्य होता – जो कि नहीं है। वे सादी बातोंको भी कठिन बनाकर दिखानेमें कुशल हैं।"

'ए हैण्डबुक ऑफ मार्क्सिजम' नामक पुस्तके आरंभके कोरे पृष्ठ पर उन्होंने लिख दिया: "सब प्रत्येकके लिए और प्रत्येक सबके लिए।" "सबसे उनकी सामर्थ्यके अनुसार लिया जाय और सबको उनकी जरूरतके अनुसार दिया जाय।" यह उन्हें मार्क्सकी शिक्षाका निष्कर्ष दिखाई दिया। किन्तु इस उद्देश्यकी पूर्तिका एकमात्र मार्ग अथवा सर्वोत्तम मार्ग मार्क्सवाद नहीं है।

मैंने गांधीजीसे मार्क्सवादी तत्त्वज्ञानके कुछ पहलुओंके बारेमें उनका मूल्यांकन जाननेकी कोशिश की । मैंने शैतानका वकील बनकर उनसे पूछा: "क्या सामाजिक घटनाओंको समझनेमें इतिहासका आर्थिक निरूपण और ज्ञानप्राप्तिका भौतिकवादी सिद्धान्त मार्क्सका प्रमुख योगदान नहीं है ?"

गांधीजीने मेरी बात अधिक स्पष्ट करनेको कहा । मैं बोला : "मार्क्सने हमें बताया कि हमारी विचारधाराएं, हमारी संस्थाएं और नैतिक मापदण्ड, हमारा इतिहास, कला, रूढ़ियां और धर्म तक हमारे आर्थिक वातावरणकी उपज हैं।"

उन्होंने आपत्ति की: "मैं इससे सहमत नहीं हूं कि हमारी विचारधाराएं, नैतिक मापदण्ड और मूल्य सर्वथा हमारे भौतिक वातावरणके ही परिणाम हैं और उसके बाहर उनका कोई विशुद्ध आधार नहीं है। इसके विपरीत, जैसे हम होते हैं वैसा ही हमारा वातावरण बन जाता है।"

क्या बुनियादी शिक्षाकी वर्धा-योजनाका आधार यह धारणा नहीं है कि हाथकी हेतुपूर्ण प्रवृत्ति हमारे विचारोंको ही नहीं, हमारे सारे व्यक्तित्वको भी ढालती है? क्या यह योजना मार्क्स द्वारा प्रतिपादित ज्ञानप्राप्तिके भौतिकवादी सिद्धान्तके बहुत निकट नहीं आ जाती ?"

"परन्तु मार्क्सवादी श्रम करनेवाले हाथको बिलकुल हटा कर उसकी जगह यंत्रको देना चाहते हैं? उनकी दृष्टिमें मनुष्यके हाथका कोई उपयोग नहीं है। मार्क्सके मतानुसार हाथके श्रम पर निर्भर करना श्रमिककी गरीबी और गुलामीका प्रतीक और उसका मूल कारण है । इस दुर्दशासे मजदूरका उद्धार करना यंत्रका काम है। इसके विपरीत, मेरी राय यह है कि यंत्र उसे गुलाम बनाता है और हाथका वुद्धिपूर्वक उपयोग करनेसे ही श्रमिकको स्वतंत्रता और सुख दोनों प्राप्त होते हैं।"

"यह तो सच है, परन्तु . . ."

गांधीजीने अपनी बात जारी रखी: "मार्क्सवादी कुछ ऐसा समझते हैं कि विचार 'मस्तिष्कसे झरनेवाला रस' है और मन या चित्त 'भौतिक वातावरणकी प्रतिक्रिया' है। मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकता। पदार्थ और मन दोनोंसे ऊपर और परे वह ईश्वर है। यदि मुझे उस चेतन सिद्धांत का अपने भीतर भान है, तो कोई मेरे मनको बांध नहीं सकता। शरीरको नष्ट किया जा सकता है, किन्तु आत्मा अपनी स्वतन्त्रता घोषित करेगी । यह मेरे लिए सिद्धान्त नहीं, अनुभवसिद्ध तथ्य है ।"

मैंने दलील की: "मार्क्सवादी भी यह मानते हैं कि व्यक्ति अपने भौतिक वातावरणसे ऊपर उठ सकता है, परन्तु वर्ग (क्लास) का व्यवहार तो मूलतः उसी वातावरणसे निश्चित होता है। जब तक आर्थिक वातावरण नहीं बदल दिया जाता तब तक वर्ग-व्यवहार नहीं बदल सकता । पूंजीपतिका कायापलट करनेके लिए पूंजीवादी व्यवस्थाको नष्ट करना पड़ेगा।"

गांधीजी : "जो बात, एक व्यक्ति कर सकता है, उसे करनेके लिए लोगोंके सारे वर्गको भी प्रोत्साहित किया जा सकता है। यह तो सच्ची कार्य-पद्धति ढूंढ़ निकालनेका प्रश्न है । हमारा सारा अहिंसक असहयोग आन्दोलन, जिसका लक्ष्य ब्रिटिश शासक-वर्गका विचार-परिवर्तन करना है, इसी धारणा पर आधारित है। वर्ग-संघर्षके प्रश्नका मेरा उत्तर संरक्षकता (ट्रस्टीशिप) है।"

फिर मैंने इतिहासकी आर्थिक प्रेरणाके मार्क्सवादी सिद्धान्तको लिया । युद्ध पूंजीवादी व्यवस्थामें व्यक्तिगत सम्पत्तिकी संस्थाका अनिवार्य परिणाम है। गांधीजीने पहलेको अस्वीकार कर दिया और दूसरेसे असहमति प्रकट की : "नहीं, केवल आर्थिक तत्त्व ही सब-कुछ नहीं है। अन्तमें तो अदृश्य शक्ति ही घटना-चक्रको संचालित करती है – उन घटनाओंका निर्माण करनेवाले मनुष्योंके मनमें भी। मान लो कि हिटलरकी आज मृत्यु हो जाय, तो आजके इतिहासका सारा क्रम ही बदल जायगा। इसी तरह मान लो कि भूकम्प या प्राकृतिक संकटके कारण सारे पूंजीपतियोंका नाश हो जाय, तो वर्गयुद्धक इतिहास कुछ इस प्रकार बदल जायगा, जिसकी इतिहासकी आर्थिक व्याख्या करनेवालोंने कभी कल्पना भी नहीं की होगी । यदि चैम्बरलेनके बजाय कोई अधिक प्राणवान व्यक्ति इंग्लैंडका प्रधानमंत्री होता अथवा यदि चैम्बरलेनने ऐन वक्त पर राजनीतिक साहसकी कमी न दिखाई होती, तो वर्तमान युद्धका इतिहास कुछ और ही न होता ?"

मैं बीचमें ही बोला: "मार्क्सवादी कहते हैं कि युद्धका अन्त करनेके लिए हमें केवल व्यक्तिगत सम्पत्तिकी संस्थाका ही अन्त करना होगा। आपने भी तो सिखाया है कि सम्पत्तिका अहिंसक जीवन-प्रणालीके साथ कोई मेल नहीं बैठता।"

गांधीजी : "यह आंशिक रूपमें ही सत्य है। क्या ट्रॉयकी हेलन ट्रोजन युद्धका कारण नहीं थी ? क्या राजपूतोंकी लड़ाइयोंका व्यक्तिगत सम्पत्तिकी संस्थासे कोई सम्बन्ध था ? नहीं, युद्धका खातमा करनेके लिए हमें कुछ और भी करना पड़ेगा। हमें परिग्रह-वृत्ति, छोभ और काम-वासना तथा अहंकारको अपने हृदयोंसे निकाल देना होगा । समाजसे युद्धको हटानेके लिए हमें अपने भीतर युद्ध करना होगा।"

मैंने अपने तर्कका ढंग बदल दिया: "बेशक, मार्क्सके बताये हुए उपाय गलत हैं। लेकिन समाज पर बुरा असर डालनेवाले रोगका उन्होंने जो निदान बताया है, उसका उपयोग हम समस्याको ठीक तरहसे समझनेमें और उस रोगका सही इलाज ढूंढ़नेमें नहीं कर सकते ? उदाहरणार्थ, क्रमिक प्रगतिवाद पर, समाजमें मौलिक परिवर्तन करनेके लिए केवल संसदीय कार्रवाईकी व्यर्थता पर तथा सीधी कार्रवाईकी जरूरत पर उनके विचारोंको लीजिये; एक दृष्टिसे तो अल्पमतकी तानाशाहीके उनके सिद्धान्तको भी ले लीजिये, यद्यपि वह निन्द्य है। आपने भी सिखाया है कि छोटे छोटे सुधार क्रांतिके लिए मारक सिद्ध होते हैं और जब कोई पद्धति कुछ मिला कर दूषित बन जाती है तब असहयोग ही उसका एकसात्र उपाय रह जाता है; उस स्थितिमें बुद्धिोको अपील करना ही काफी नहीं होता, जब तक कि उसके पीछे कोई प्रभावशाली पृष्ठबल न हो। और क्या एक तरहसे प्रत्येक सुधारकको आवश्यक रूपमें तानाशाह और प्रत्येक सुधारवादी संस्थाको तानाशाही चलानेवाली संस्था नहीं बन जाना पड़ता ? चूंकि सुधारकको नेतृत्व करना होता है, इसलिए उसे बहुमतसे आगे चलना पड़ता है; वह बहुमतके इशारों पर नहीं चल सकता। वह बहुमतके शासनके आगे कैसे झुक सकता है ? मेरा आशय यह है कि मार्क्स एक ही प्रभावशाली पृष्ठबलको अर्थात् हिंसाको – बलप्रयोगको – जानते थे । यदि उन्हें अहिंसाकी या सत्याग्रहकी शक्तिका पता होता, तो वे हिंसाके स्थान पर अहिंसाको अपना लेते। हमारे अपने ही समयमें भी उद्योग अब भापसे चलनेके बजाय तेल और बिजलीसे चलने लगे हैं।"

गांधीजी : "मैंने लोगोंको यह भी कहते सुना है कि पुरानी मशीनोंको एक प्रकारकी शक्तिके बजाय दूसरी शक्तिसे चलाने योग्य बनानेकी अपेक्षा उन्हें निकाल देना अधिक सस्ता पड़ता है। इस

चर्चामें हिंसा और अहिंसाके बीचका अन्तर बुनियादी है। इससे तो मार्क्सवादी सिद्धान्तकी जड़ ही कट जाती है। अगर हम बुनियादको बदलते हैं, तो ऊपरकी सारी इमारतको हमें बदलना ही होगा।

"मैं सहमत हूं। परन्तु आपने अहिंसाको गीतासे निकाला है। मुझे मार्क्सवादी विश्लेषणमें आपके अहिंसक असहयोगकी पद्धतिका प्रबल समर्थन मालूम होता है।"

गांधीजी : "जो लोग अहिंसामें विश्वास नहीं करते वे गीताका मेरा अर्थ स्वीकार नहीं करते और जो अहिंसामें विश्वास करते हैं उन्हें उस अर्थकी जरूरत नहीं। तुम्हारे अर्थको पक्के मार्क्सवादी मार्क्सवाद-विरोधी बतायेंगे । वह उन्हें नहीं जंचेगा।"

मार्क्सवादियोंसे मेरा झगड़ा यह है कि भौतिक संतोषोंके जिस स्वर्गको वे अपना अंतिम लक्ष्य मानते हैं वह यदि पृथ्वी पर सिद्ध हो जाय, तो भी उससे मानव-जातिको सन्तोष और शान्ति नहीं मिलेगी। परन्तु क्या हम मार्क्सवादकी उत्तम बातोंका उपयोग करके अपने सामाजिक उद्देश्योंकी पूर्तिमें उत्से लाभ नहीं उठा सकते ?"

थोड़ी और चर्चाके बाद गांधीजीने कहा : "तुम इसे मार्क्स पर अपना मौलिक निबन्ध बनाकर प्रस्तुत कर सकते हो। शायद इससे उन लोगोंको सत्याग्रहकी साधनाके लिए मार्ग मिल जाय, जिनमें आध्यात्मिक पृष्ठभूमिका अभाव होगा।" परन्तु मैं गांधीजीके इस मतको नहीं बदल सका कि मार्क्सवादमें जो अच्छी बातें हैं वे मौलिक अथवा उसीकी विशेषता नहीं हैं और जो उसकी अपनी विशेषता है वह आवश्यक रूपमें अच्छी नहीं है। थोड़ीदेर बाद उन्होंने यह भी कहा: "मार्क्सकी शिक्षा प्राणवान तो इसी बातसे बनी है कि वे सारी मानव-जातिको अखण्ड और एक मानते थे और वर्गोंके विभाजनोंसे ऊपर उठकर उन्होंने संसारके गरीब, पीड़ित, मेहनतकशोंके ध्येयको अपना ध्येय बना लिया था। परन्तु ऐसा करनेवाले वे अकेले ही नहीं हैं। उनके सिवा दूसरे लोगोंने भी वही काम किया है।"

गांधीजीने इस बातको स्वीकार नहीं किया कि मार्क्सने समाजका कोई निरपेक्ष विज्ञान निर्माण किया है अथवा स्वतःसिद्ध समाज-विकासके नियम खोज निकाले हैं। मार्क्सवादी व्यवस्था भी एक निश्चित उद्देश्यकी – जिसे मार्क्स वांछनीय मानते थे –पूर्तिके लिए एक साधन तैयार करनेका प्रयत्न ही है।

अन्तमें गांधीजीने कहा: "हम मार्क्सकी आलोचना कर सकते हैं, परन्तु वे एक महापुरुष थे, इससे कौन इनकार कर सकता है ? सामाजिक व्याधियोंका उन्होंने जो विश्लेषण किया अथवा उनका जो इलाज बताया वह सही हो सकता है या नहीं भी हो सकता । मैं उनके आर्थिक सिद्धान्तोंको स्वीकार नहीं करता, परन्तु इतना मैं जानता हूं कि गरीबोंको पीसा जा रहा है। इसके लिए कुछ न कुछ करना ही होगा। मार्क्सने अपने ढंगसे यह कार्य किया था। उनमें सूक्ष्म बुद्धि थी, विद्वत्ता थी और प्रतिभा थी।"

*

विलियम मॉरिस कलाके द्वारा समाजवाद तक पहूंचे थे। उन्होंने सारगर्भित ढंगसे बताया है कि भौतिक सुविधाओं और फुरसतकी प्राप्ति मात्रसे मानव-जातिको कोई लाभ नहीं होगा, यदि साथ ही नई व्यवस्था व्यक्तिके लिए स्वतंत्रता, आंतरिक शान्ति, आत्माभिव्यक्तिके आनन्द तथा एकरागताको निश्चित नहीं बनाती। वे शरीर-श्रमको कलाका विरोधी न मान कर उसकी अभिव्यक्तिमें सहायक मानते थे और मानवको पशु बनानेवाले श्रमके द्वारा भौतिक पदार्थोंके उत्पादनसे उन्हें घृणा थी। उनमें यह देखनेकी अन्तर-दृष्टि भी थी कि किस प्रकार राज्यके स्वामित्ववाली केन्द्रित उत्पादन-प्रणालीके द्वारा संपत्तिकी विपुलता प्राप्त करनेसे मानव-जातिकी शान्ति और स्वतंत्रता खतरेमें पड़ सकती है।

मॉरिसने अपनी पुस्तक 'दि अर्थली पेरेडाइज़' में लिखा है :

> यह बताना जरूरी है कि कुछ ऐसे भी समाजवादी हैं, जिनका यह विचार नहीं है कि जीवन तथा आवश्यक श्रमके संगठनकी समस्या किसी ऐसे विशाल राष्ट्रीय केन्द्रीकरणके द्वारा हल की जा सकती है, जिसका काम एक तरहके जादूसे होता हो और जिसके लिए कोई अपनी जिम्मेदारी महसूस न करता हो। इसके विपरीत, प्रशासनके घटकका इतना छोटा होना आवश्यक है कि उसकी छोटी छोटी बातोंके लिए प्रत्येक नागरिक अपना दायित्व अनुभव करे और उनमें दिलचस्पी ले । व्यक्ति राज्य नामधारी निराकार वस्तुके कंधों पर जीवनके व्यवहारको डालकर अलग नहीं हो सकते, परन्तु उन्हें एक-दूसरेके साथ जागरूक सम्बन्ध रखकर उसे चलाना होगा । सच्चे साम्यवादका लक्ष्य स्थितिकी समानताके साथ जीवनकी विविधता भी है और इन दोनोंकी एकता ही वास्तविक स्वतंत्रताको जन्म दे सकती है। जिस व्यापारिक युद्धको हम खतम करना चाहते हैं, आधुनिक राष्ट्र उसकी कृत्रिम युक्तियां मात्र हैं और उसके साथ वे भी

विलीन हो जायंगे। अन्तिम बात यह है कि कला शब्दका उसके व्यापक और उचित अर्थमें उपयोग करें, तो कला जीवनका कोई ऐसा पुछल्ला मात्र नहीं जिसके बिना स्वतंत्र और सुखी मनुष्योंका काम चल सकता हो; वह मानव-सुखकी आवश्यक अभिव्यक्ति और उसका अनिवार्य साधन है।

इसे समाजवाद पर गांधीजीके अपने विचारोंका अधिकृत वर्णत समझा जा सकता है, यद्यपि उन्होंने मॉरिस कृत 'दि अर्थली पेरेडाइज़' को कभी पढ़ा नहीं था। यह सादृश्य और भी गहरा जाता है। गांधीजीकी तरह मॉरिसको भी समाजवादकी सिद्धिके उपायके रूपमें युद्धसे और सब तरहकी हिंसासे घृणा थी। वास्तवमें उन्होंने इस बातका स्पष्ठ संकेत किया था कि ऐसा कोई प्रयत्न निश्चित रूपसे निष्फल सिद्ध होगा, क्योंकि उसमें साधन और साध्यका स्वाभाविक विरोध है। उन्होंने लिखा: "मुझे सभी प्रकारके युद्ध और हिंसासे धार्मिक घृणा है।" उन्होंने यह भी कहा: "मैंने सद्भाव और न्यायके बीज बोनेको अपना कर्तव्य बना लिया है, जिससे भावी क्रांति – जो सामाजिक होगी – हिंसाको कार्यक्रमका अनिवार्य अंग बनाये बिना की जा सके।"

गांधीजीका समाजवादियोंसे जो वाद-विवाद हुआ उसके परिणाम-स्वरूप उनकी तरफसे यह मांग हुई कि गांधीजी ऐसे समाजवाद पर, जो भारतीय परिस्थितियोंके अनुकूल हो, अपने अन्तिम विचारोंका निश्चित सार बतायें और ऐसा मार्ग दिखायें जिससे वह समाजवाद स्थापित किया जा सके । यह काम उन्होंने जुलाई १९४७ में 'हरिजन' में दो लेख लिखकर किया :

> समाजवाद एक सुन्दर शब्द है। जहां तक मैं जानता हूं, समाजबादमें समाजके सब सदस्य बराबर होते हैं – न कोई नीचा होता और न कोई ऊंचा। किसी मनुष्यके शरीरमें सिर इसलिए ऊंचा नहीं होता कि वह सबसे ऊपर है और पांवोंके तलुवे इसलिए नीचे नहीं होते कि वे जमीनको छूते हैं। जिस प्रकार मनुष्यके शरीरके सारे अंग बराबर हैं, उसी प्रकार समाज-रूपी शरीरके सारे अंग भी बराबर हैं। यही समाजवाद है।
>
> इस वादमें राजा और प्रजा, धनी और गरीब, मालिक और मजदूर सब बराबर हैं। इस तरह समाजवादका अर्थ है अद्वैतवाद। उसमें द्वैत या भेदभावकी गुंजाइश ही नहीं है।

सारी दुनियाके समाज पर नजर डालें तो हम देखेंगे कि हर जगह द्वैत ही द्वैत है। एकता अथवा अद्वैत कहीं नामको भी नहीं है। . . . मेरे अद्वैतवादमें सब एक हो जाते हैं; एकतामें समा जाते हैं।

इस स्थिति तक पहुंचनेके लिए हम एक-दूसरेकी ओर ताकते न बैठें। जब तक सारे लोग समाजवादी न बन जायें तब तक हम कोई हलचल न करें, अपने जीवनमें कोई फेरफार न करके केवल भाषण देते रहें, पार्टियां बनाते रहें और बाज पक्षीकी तरह जहां शिकार मिल जाय वहां उस पर टूट पड़ें – यह समाजवाद नहीं ही है । समाजवाद जैसी भव्य वस्तु झड़प मारनेसे तो हमसे दूर ही जानेवाली है।

समाजवादका आरम्भ पहले समाजवादीसे होता है। यदि! एक भी ऐसा समाजवादी हो, तो उस पर शून्य बढ़ाये जा सकते हैं। पहले शून्यसे उसकी स्थिति दस गुनी हो जायगी। उसके बाद बढ़ाया जानेवाला प्रत्येक शून्य पहलेकी संख्याको दस गुनी बढ़ाता जायगा। लेकिन यदि पहला केवल शून्य ही हो, तो उसके आगे कितने ही शून्य क्यों न बढ़ाये जायें, उनकी कीमत शून्य ही रहेगी। शून्योंको लिखनेमें केवल श्रमकी और कागजकी बरबादी ही होगी।

यह समाजवाद अत्यन्त शुद्ध वस्तु है। अतः इसे सिद्ध करनेके साधन भी अत्यन्त शुद्ध होने चाहिये। अशुद्ध साधनोंसे मिलनेवाली वस्तु भी अशुद्ध ही होगी। इसलिए राजाको मारकर राजा और प्रजा एकसे नहीं बन सकेंगे । मालिकका सिर काटकर मजदूर मालिक नहीं हो सकेंगे।

कोई व्यक्ति असत्यसे सत्यको नहीं पा सकता। सत्यको पानेके लिए सदा सत्यका आचरण करना ही होगा। अहिंसा और सत्यकी तो जोड़ी है न ? कभी नहीं। सत्यमें अहिंसा छिपी हुई है और अहिंसामें सत्य। इसीलिए मैंने कहा है कि सत्य और अहिंसा एक ही सिक्केके दो पहलू हैं। दोनोंकी कीमत एक है। केवल पढ़नेमें ही अन्तर है। एक ओर अहिंसा है, दूसरी ओर सत्य। पूर्ण पवित्रताके बिना अहिंसा और सत्य निभ ही नहीं सकते। **शरीर अथवा मनकी अपवित्रताको छिपानेसे असत्य और हिंसा ही जन्म लेंगे**। (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

इसलिए केवल सत्यवादी, अहिंसक और पवित्र समाजवादी ही विश्वमें या हिन्दुस्तानमें समाजवादकी स्थापना कर सकता है।

लक्ष्यका स्वरूप तथा वे योग्यतायें, जो उस लक्ष्य तक पहुंचनेके लिए उसे सिद्ध करनेवालोंमें होनी चाहिये, बतानेके बाद गांधीजीने साधनोंका वर्णन किया है। "समाजवादीको सत्य और अहिंसाकी मूर्ति होना चाहिये। और इसके लिए ईश्वरमें उसकी जीती-जागती श्रद्धा होनी चाहिये।" किन्तु सत्य और अहिंसाका यंत्रवत् पालन करना कसौटीके समय काम नहीं देता:

इसीलिए मैंने कहा है कि सत्य ही परमेश्वर है। यह ईश्वर चेतनामय शक्ति है। हमारा जीव उसीसे बना है। वह जीव शरीरमें रहता है, परन्तु वह स्वयं शरीर नहीं है। इस महान शक्तिसे इनकार करनेवाला मनुष्य अपनेमें बसनेवाली इस अखूट शक्तिके उपयोगसे वंचित रह कर अपंग बन जाता है। वह पतवार-रहित नौकाके समान इधर-उधर टकराता है और अन्तमें कहीं भी पहूंचे बिना नष्ट हो जाता है। ऐसे लोगोंका समाजवाद उन्हें कहीं भी नहीं ले जाता। करोड़ों लोगों तक उसके पहुंचनेकी तो बात ही दूर है।

इससे दोहरा प्रश्न खड़ा होता है: "क्या ईश्वरमें श्रद्धा रखनेवाले कोई समाजवादी नहीं होंगे ? और यदि हों तो समाजवाद सिद्ध क्यों नहीं किया जा सका ? ईश्वर-भक्त तो आजसे पूर्व अनेक हो गये हैं; उन्होंने समाजवादी राज्य स्थापित क्यों नहीं किया ?"

गांधीजी स्वीकार करते हैं कि इन दो शंकाओंका सचोट उत्तर देना कठिन है। फिर भी मैं मानता हूं कि ईश्वरमें श्रद्धा रखनेवाले समाजवादीको ऐसा कभी नहीं लगा होगा कि उसके समाजवाद और उसकी ईश्वर-श्रद्धामें कोई सम्बन्ध है। इसके विपरीत, "यह कहना भी उतना ही सलामत है कि ईश्वर-भक्तोंको समाजवादकी जरूरत ही मालूम न हुई हो । ईश्वर-भक्तोंके रहते हुए भी दुनियामें अंधविश्वास कहां नहीं देखनेमें आते ?"

जब विलियम मॉरिसके सामने यह बात रखी गई कि समाजवाद केवल देवदूतोंके समाजमें ही सफल हो सकता है और जब वैसा समाज स्थापित हो जायगा तब समाजवादकी जरूरत ही नहीं रह जायगी, उन्होंने उत्तर दिया: "मैं नहीं मानता कि संसारका उद्धार किसी प्रणालीसे हो सकता है – मैं तो इसी बात पर जोर देता हूं कि जो प्रणालियां भ्रष्ट हो जायं उन पर आक्रमण करनेकी जरूरत है।"

विलियम मॉरिसने इसका विचार नहीं किया था कि अपनेको विफल करनेवाले उपायोंका आश्रय लिये बिना यह काम कैसे हो सकता है। यहां गांधीजी इस समस्याको हाथमें लेकर इसका उत्तर देते हैं :

> इसका उत्तर सत्य – जो ईश्वर है – और सत्याग्रह – जो समग्र मानव-समस्याओंको हल करनेकी गुरुकुंजी है – के गर्भित सम्बन्धमें निहित है। सत्याग्रहके नियमोंकी अभी भी शोध चल रही है। जब यह शोध पूरी हो जायगी तब सम्पूर्ण समाजवाद एक आदर्श नहीं रहेगा, बल्कि दृढ़ यथार्थका रूप ले लेगा।
>
> वास्तविकता यह है कि इस महान शक्ति तथा इसकी संभावनाओंका ज्ञान परिश्रम-पूर्ण शोधका विषय रहा है। मेरा यह दावा है कि इसी शोधमें से सत्याग्रहकी शोध हुई है। किन्तु मैं यह दावा नहीं करता कि सत्याग्रहसे सम्बन्ध रखनेवाले सारे नियम बन गये हैं या प्राप्त हो गये हैं। मैं यह भी नहीं कहता कि सत्याग्रहके सारे नियम मैं जानता हूं। लेकिन इतना मैं निर्भयतासे और दृढ़तासे कह सकता हूं कि सत्याग्रहके उपयोगसे प्राप्त करने योग्य प्रत्येक वस्तु प्राप्त की जा सकती है। सत्याग्रह ऊंचेसे ऊंचा और अचूक साधन है, महानसे महान शक्ति है। मेरी रायमें समाजवाद तक पहुंचनेका सत्याग्रहके सिवा दूसरा कोई मार्ग नहीं है।
>
> सत्याग्रहके द्वारा समाजके समस्त राजनीतिक, आर्थिक और नैतिक रोगोंको दूर किया जा सकता है।

७

२९ अप्रैल बिहारमें गांधीजीके निवास-कालका अंतिम दिन था। इससे दो दिन पहले उनकी मंडलीकी दो लड़कियां अपनी प्रातःकालीन प्रार्थनाके लिए उठी नहीं थीं। इससे गांधीजी विचारमें पड़ गये। उन्होंने लड़कियोंको धीरजसे समझाया: "दूसरी कोई भी चीज छोड़ी जा सकती है, परन्तु प्रार्थना नहीं छोड़ी जा सकती। प्रार्थना आत्मशुद्धिका साधन है। हम उसकी उपेक्षा करेंगे, तो हमारे अन्तःकरणमें धूल, रेत और जाले जम जायंगे और उसे मलिन तथा दूषित कर देंगे।"

आत्म-परीक्षणका विचार गांधीजीके मनमें मालिशके समय भी चल रहा था। वे बोले: "प्रकृतिने हमें अपनी परीक्षा करने और अपनी त्रुटियोंका हिसाब लगानेके लिए कैसा सुलभ उपाय दे दिया है !"

अपनी मालिश करनेवाली लड़कीको उसके बिखरे हुए बालोंकी सामनेकी दीवार पर पड़नेवाली परछाईं दिखाकर उन्होंने यह कहा: "उस छायाकी तरफ देखो। जैसा पदार्थ वैसा प्रतिबिम्ब। इन सब बातोंसे प्रकट होता है कि **जैसे हम होते हैं वैसा ही हमारे चारों ओरका विश्व हो जाता है। अपने वातावरणके कारण और निर्माता हमीं हैं; अन्य कोई नहीं। स्वयंको जानना, अपने छिपे हुए दोषोंको जानना और उन्हें सुधारना अपने आसपासके वातावरणको सुधारनेकी कुंजी है**। आज सुबह मैंने आश्रम-नियमोंके पालनमें जो शिथिलता देखी, उसके लिए मेरी कोई त्रुटि, आश्रमके प्रशिक्षणकी मेरी प्रणालीमें कोई दोष जिम्मेदार होना चाहिये।"

अपने कुछ साथियोंके साथ गांधीजीका ब्रह्मचयेके प्रश्न पर जो विवाद हुआ था, उसका उल्लेख करते हुए वे बोले : "मैं चारों ओर अतिशयोक्ति और असत्यसे घिरा हुआ हूं । मेरी बड़ीसे बड़ी कोशिशोंके बावजूद मुझे इसका पता नहीं चलता कि सत्य कहां है। इसके लिए मुझे पुरानी मित्रताएं छोड़नी पड़ी हैं, परन्तु उसका मुझे अफसोस नहीं है। मेरे लिए यह ईश्वरके अधिक निकट पहुंच जानेकी निशानी है कि मैं तीव्रतम विरोधके होते हुए भी इस नाजुक प्रश्न पर स्पष्ठ और निर्भय होकर सबको लिख सकता हूं और सबके सामने बोल सकता हूं, और जिन ग्यारह व्रतोंको मैंने स्वीकार किया है उनका जरासी भी घबराहट या बेचैनी महसूस किये बिना मैं पूर्ण पालन करता हूं। साठ वर्षकी साधनाने अन्तमें मुझे सत्य और शुद्धताका वह आदर्श सिद्ध करने योग्य बनाया है, जिसे मैंने सदा अपने सामने रखा है।"

२९ तारीखकी शामको अपने प्रार्थना-प्रवचनमें गांधीजीने बिहारसे विदा लेते हुए लोगोंसे अनुरोध किया कि मेरे प्रति अपना स्नेह आप साम्प्रदायिक एकताके लिए काम करके दिखाइये, न कि रेलवे स्टेशनों पर भीड़ करके। "इस उम्रमें मुझसे भीड़की चिल्लाहट सहन नहीं होती। इसके सिवा, मुझे जय-जयकार सुननेसे घृणा है। वे मेरी नाकमें दुर्गन्ध पैदा करते हैं, जब मैं सोचता हूं कि ये जयघोष करते हुए हिन्दुओंने निर्दोष मुस्लिम नर-नारियोंकी हत्यायें की थीं, जैसे अल्लाहो-अकबरके नारे लगाकर मुसलमानोंने हिन्दुओंकी हत्या की थी। ईश्वरका नाम लेकर निर्दोषों पर अत्याचार करनेसे अधिक बड़ा कोई पाप मैं नहीं जानता ।"

दूसरा भाग

विभाजनकी लड़ाई

सातवां अध्याय : दुबारा मोर्चे पर

१

इस प्रकार गांधीजी जब बिहारमें व्यस्त थे तब माउन्टबेटन अपनी योजनाओंके साथ आगे बढ़ रहे थे। भारतमें आनेके बाद पहले पखवाड़ेके अन्त तक वे इस निर्णय पर पहुंच चुके थे कि यदि सत्ताका हस्तान्तरण शान्तिपूर्ण ढंगसे होना है, तो मुस्लिम लीगकी भारतके विभाजनकी मांग स्वीकार करनी पड़ेगी और वही तर्क उन प्रान्तों पर लागू करना पड़ेगा जहां दोनों कौमोंकी संख्या बराबर है – अर्थात् पंजाब और बंगाल । शांतिपूर्ण हस्तान्तरणसे दोनों दलोंको राष्ट्र-मंडलके भीतर रहनेकी प्रेरणा भी मिलेगी।

अप्रैलके मध्य तक माउन्टबेटनने अपनी योजनाकी मोटी रूपरेखा तैयार कर ली थी। फिर उन्होंने स्थानीय अधिकारियोंके नाते गवर्नरोंका एक सम्मेलन अपनी अपनी प्रतिक्रियाएं बतानेके लिए बुलाया। सम्मेलनसे पहले माउन्टबेटनकी योजनाकी रूपरेखा इस प्रकार थी :

(१) भारतीय दल सहमत हो जायं, तो भारतका विभाजन किया जाय;

(२) प्रान्तोंको सामान्यतः अपने अपने भविष्यका निर्णय करनेकी स्वतन्त्रता दी जाय;

(३) मतदानके लिए बंगाल और पंजाबका काल्पनिक विभाजन किया जाय;

(४) आसामके सिलहट जिलेको, जहां मुस्लिम बहुमत है, यह अधिकार दिया जाय कि वह चाहे तो बंगालके विभाजनसे पैदा होनेवाले मुस्लिम प्रान्तमें सम्मिलित हो जाय; और

(५) उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्तमें आम चुनावों द्वारा निर्णय कराया जाय कि वह भारतके किस भागमें सम्मिलित होना चाहता है।

कठिनाई यही थी कि उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्तमें डॉ. खान साहबके नेतृत्ववाला कांग्रेसी मंत्रि-मंडल जिन्नाके दो राष्ट्रोंवाले सिद्धान्तका और उस सिद्धान्त पर आधारित मुस्लिस लीगकी पाकिस्तानकी मांगका कट्टर विरोधी था । उसकी स्थिति अपने पद पर इतनी सुदृढ़ थी कि वैधानिक दीखनेवाले उपायोंसे उसे पदच्युत नहीं किया जा सकता था। परन्तु ऐसा कोई हल, जिससे सीमाप्रान्त पाकिस्तानसे

बाहर रह जाता, लीगको मंजूर नहीं था। दूसरी ओर, कांग्रेस सीमाप्रान्तीय मंत्रि-मंडलके साधारण कामकाजमें कोई हस्तक्षेप सहन करनेको तैयार नहीं थी। इसलिए माउन्टबेटनकी योजनाकी सफलताके लिए कोई ऐसी वैधानिक युक्ति खोजना आवश्यक हो गया, जिससे लीगको उसकी मनचाही चीज भी मिल जाय और सीमाप्रान्तीय मंत्रि-मंडलके सामान्य कार्यमें हस्तक्षेपकी कांग्रेसकी आपत्ति भी टल जाय। अपनी योजनाके सीमाप्रान्त-सम्बन्धी भागका मार्ग साफ करनेके लिए माउन्टबेटन अप्रैलके अंतिम सप्ताहमें सीमाप्रान्त गये। वहांसे वे ३० अप्रैलको राजधानी लौटे।

यहां हम थोड़ा पीछे लौटकर कुछ बातोंका विचार कर लें । ६ अप्रैल, १९४७ को माउन्टबेटनके साथ एक मुलाकातमें जिन्नाने जल्दीसे "भारतकी शस्त्रक्रिया" करनेकी मांग की थी। माउन्टबेटनने उनसे कहा कि शस्त्रक्रियासे पहले हमेशा "बेहोशीकी दवा" दी जाती है। १४ अप्रैलवाली शान्तिकी सम्मिलित अपील पर गांधी-जिन्नाके हस्ताक्षर कराना और कांग्रेस-अध्यक्षको उससे अलग रखना उनकी "शस्त्रक्रियासे पहले बेहोशी लानेकी क्रिया" थी। फिर भी सीमाप्रान्तमें लीगका "सीधी कार्रवाई" का आन्दोलन जारी रहा । इस पर माउन्टबेटनकी जिन्नासे कई बार झड़प हुई। जिन्नाके पास उत्तरमें पेश की जाने जैसी शिकायतें तैयार थीं और उन्होंने सारा दोष प्रान्तकी "कृत्रिम स्थिति" पर डाल दिया। माउन्टबेटनने उनसे यहां तक कह दिया कि आपकी "शिकायतों" का (विभाजनकी मांगका नहीं) विचार न होने देनेका सबसे कारगर तरीका यह है कि आप हिंसाको चालू रहने दें। बार-बार जिन्ना यह वचन देते थे कि वे हिंसाको बन्द करनेकी भरसक कोशिश करेंगे, परन्तु उसके बाद कोई ठोस कार्रवाई नहीं होती थी। जिन्नाको न तो राजी किया जा सकता था और न उनकी उपेक्षा की जा सकती थी, इसलिए यह निर्णय किया गया कि संभव हो तो खान साहबके मंत्रिमंडलको त्यागपत्र देनेके लिए राजी करके मुस्लिम लीगके क्षोभका कारण दूर करनेकी कोशिश की जाय । परन्तु डॉ. खान साहबने त्यागपत्र देनेसे इनकार कर दिया। इसलिए माउन्टबेटनको सीमाप्रान्तमें आम चुनावोंका आश्रय लेना पड़ा। और इसलिए १ मईको लॉर्ड इसमे माउन्टबेटनकी योजनाका मसौदा लेकर लन्दन चले गये, ताकि सम्राट्की सरकारके साथ सलाह-मशविरा करके उसे अंतिम रूप दिया जा सके। उनके साथ जॉर्ज एबेल गये थे।

माउन्टबेटनके पास इसका एक विकल्प भी था। वह था औपनिवेशिक आधार पर संक्षोधित रूपमें कैबिनेट-मिशनकी योजनाको पुनर्जीवित करना। उसका सार यह था कि "हिन्दुस्तान और पाकिस्तान" के प्रतिनिधियोंको इकट्ठा करके "समानताके आधार पर केन्द्रमें संधिवार्ताएं कराई जायं

।" इससे मुस्लिम लीगका यह विरोध दूर हो जाता कि कैबिनेट-योजनाके अन्तर्गत केन्द्रमें "हिन्दू बहुमतके कारण मतदानमें उसकी हार होगी।" साथ ही इससे बंगाल और पंजाबके विभाजनसे पैदा होनेवाली कठिनाइयां – जिनमें सिक्खोंका पेचीदा सवाल भी था — टल जायंगी और भारतीय एकताका आभास भी बना रहेगा ।

बेशक, यह कैबिनेट-मिशनकी मूल योजना जैसी कोई चीज नहीं थी, जिसे कांग्रेसने समझा और स्वीकार किया था। कांग्रेसको ऐसे संघ (यूनियन) से कोई लाभ नहीं था, जिसमें अल्पमत बहुमत पर हमेशा निषेधाधिकार भोगता रहे और जिसके पूर्ण विकसित लोकतांत्रिक प्रणालीका रूप लेनेकी कभी संभावना तक न रहे। वह देशको भीतरसे कमजोर और बाहरसे नपुंसक बना देता। कांग्रेसी नेताओंके सामने दुविधा उपस्थित हो गई। इससे गांधीजीके साथ परामर्श करना जरूरी हो गया।

पंडित नेहरूका पत्र गांधीजीको,

२३ अप्रैल, १९४७

आप जानते हैं कि कांग्रेस कार्येसमिति १ मईको यहां (दिल्लीमें) मिल रही है। मेरी बड़ी इच्छा है कि उस समय आप यहां रहें। मईके पहले सप्ताहमें भविष्यके लिए माउन्टबेटनकी योजना तैयार हो जानेकी संभावना है। इसका महत्त्व स्पष्ट है। उससे हमारे भविष्यका निर्माण होगा। उनका इरादा यह है कि उस समय तक योजनाकी एक मोटी रूपरेखा तैयार कर ली जाय – ताकि उस पर विस्तृत चर्चा की जाय और ब्रिटिश सरकारको बतानेके बाद उसे अन्तिम-स्वरूप दिया जाय। उन्हें मईके तीसरे सप्ताह तक ये सारी प्रक्रियाएं पूरी कर लेनेकी आशा है। इस कार्यक्रमके अनुसार मईका पहला सप्ताह बहुत महत्त्वका होगा और हम सब चाहते हैं कि आप सलाह और मार्गदशनके लिए हमारे पास रहें। इसलिए मुझे आशा है कि आप उस समय यहां आ सकेंगे।

*

श्री एटलीने २० फरवरी, १९४७ की अपनी घोषणामें अंग्रेजोंके भारतसे चले जानेकी अंतिम तारीख निश्चित कर दी थी। उस समय मुस्लिम लीगने उन प्रान्तोंमें, जिन्हें वह पाकिस्तानके लिए मांगती

थी, सत्ता हथियानेके लिए "सीधी कार्रवाई" की मुहिम छेड़ रखी थी। इसके बाद मेजर व्याटने, जो कैबिनेट-मिशनके एक सचिव बन कर भारत आये थे, 'दि न्यू स्टेट्समैन एण्ड नेशन' में लिखा कि अंग्रेजोंको "असंदिग्ध शब्दोंमें" घोषणा कर देनी चाहिये कि किसी ऐसे प्रान्तमें, जहां अल्पमत पूरी आबादीके लगभग आधेके बराबर हो, किसी प्रान्तीय सरकारको पूरी सत्ता नहीं सौंपी जा सकती । उन्होंने कहा कि ऐसी घोषणासे "मुस्लिम लीगका यह श्रम तुरन्त दूर हो जायगा कि वह अंग्रेजोंकी मध्यस्थतासे सारे बंगाल और पंजाबको हथिया सकती है और कदाचित् वह अनुभव कर लेगी कि उसकी पाकिस्तानकी मांग अब निरर्थक है।" मेजर व्याटने चेतावनी दी कि अगर सरकार निकट भविष्यमें ही ऐसा कार्यक्रम निश्चित नहीं कर देगी, तो "**१९४८ के उत्तरार्धमें भारतमें गृहयुद्ध और सामूहिक आतंकका साम्राज्य फैल जायगा**।" (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

चेतावनीका दूसरा स्वर श्री आर. जी. केसीने निकाला। वे किसी समय बंगालके गवर्नर रह चुके थे। उन्होंने अपनी पुस्तक 'एन ऑस्ट्रेलियन इन इंडिया' में, जो मार्च १९४७ में लन्दनसे प्रकाशित हुई थी, लिखा: "मैं बहुत अच्छी तरह यह अनुभव करता हूं कि भारतके मुसलमानोंकी समस्याका कोई न कोई हल निकालना ही पड़ेगा। **परन्तु मेरा विश्वास है कि वह हल पाकिस्तान नहीं है**। . . . मैं नहीं मानता कि दोनों कौमोंके बीचके मतभेद इतने बड़े हैं – अथवा मुझे कहना चाहिये कि इतते स्थायी रूपमें बड़े हैं – कि इस समस्याको हल करनेके लिए भारतके टुकड़े करना जरूरी हो। कुछ भी हो, मेरा दृढ़ विश्वास है कि इससे समस्या हल नहीं होगी। . . . यदि एक बार भारतका अंग-भंग कर दिया गया, तो इस घावको भरनेमें पीढ़ियोंका समय लग जायगा।" (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

केसीने आगे लिखा कि पाकिस्तानके निर्माणसे शायद अल्पमतकी एक समस्या – कमसे कम कागज पर – हल हो जाय, परन्तु इससे अल्पमतकी अन्य समस्याएं पैदा हो जायंगी, जो हल होनेवाली समस्यासे "कुछ ही कम वास्तविक" होंगी :

> इसका नतीजा यह होगा कि लगभग ८ करोड़ गैर-मुस्लिम (मुख्यतः हिन्दू) आबादी मुस्लिम प्रभुत्ववाली सरकारकी दया पर निर्भर रहेगी। मि. जिन्ना यह दावा तो करते हैं कि मुस्लिम बहुमतवाले क्षेत्रोंको शेष भारतसे अलग हो जानेका अधिकार रहे, परन्तु वे पाकिस्तानके एवजके रूपमें सामान्यतः भारतके मुसलमानोंके लिए संरक्षणोंकी उपयोगिताको

नहीं मानते। पाकिस्तानमें हिन्दुओंको ऐसी चीजसे सक्तोष करना होगा, जो भारतमें वहांके मुसलमानोंके लिए पूरी तरह अच्छी नहीं है। . . . पाकिस्तानके पीछे मुख्य हेतु आर्थिक है। . . . मि. जिन्ना और मुस्लिम लीगके नेता यह सब समझते हैं, . . . यद्यपि वे . . . दो जातियोंकी भाषामें बोलते हैं। . . . मुसलमानोंके लिए आर्थिक प्रगति करनेका एकमात्र उपाय यह है कि वे शिक्षा प्राप्त करें और हिन्दुओंके साथ सफल स्पर्धा करना सीखें। इसका मतलब यह है कि उन्हें बहुत कड़ी मेहनत करनी पड़ेगी और इसमें लम्बा समय लगेगा। यह परिणाम आसानीसे या राजनीतिक उपायोंसे सिद्ध नहीं किया जा सकता।

केसीने आगे लिखा है कि प्रत्येक पक्षके "प्रचंड संख्यावाले जामिन" दूसरे पक्षमें रहेंगे, इसलिए यह मान लेना अनुचित न होगा कि यदि पाकिस्तानमें हिन्दुओंके विरुद्ध मुसलमानोंकी तरफसे भेदभावका बरताव होगा, तो हिन्दू बहुमतवाले भागोंमें मुसलमानोंके विरुद्ध तुरन्त प्रतिशोधकी कार्रवाई होगी । एक चीजसे दूसरी चीज पैदा हो सकती है और भेदभावकी इस प्रतियोगिताके परिणाम दोनों पक्षोंके लिए दुर्भाग्यपूर्ण और अप्रिय हो सकते हैं। इसलिए अन्तमें केसी कहते हैं कि इस बातकी निश्चित संभावना है कि "पाकिस्तानका परिणाम पाकिस्तानकी सवर्ण हिन्दू आबादीके लिए और हिन्दुस्तानकी मुस्लिम आबादीके लिए अत्यन्त हानिकारक सिद्ध हो।"

प्रख्यात ब्रिटिश पत्रकार और लेखक एच. एन. ब्रेल्सफोर्डने 'दि न्यू स्टेट्समैन एण्ड नेशन' में एक लेख लिख कर भारतके विभाजनके प्रस्तावको "ऐसा प्रतिगामी कदम बताया, जिसे मुस्लिम लीगके अनुयायियोंके बाहर कोई पसन्द नहीं करता।" आगे चल कर उन्होंने लिखा: "इससे राजनीतिक और आर्थिक एकताका वह मुख्य वरदान नष्ट हो जाता है, जो ब्रिटिश शासनने भारतके लोगोंको प्रदान किया था। . . . परन्तु हममें से अधिकतर लोग जिस कारणसे पाकिस्तानके विचारको नापसन्द करते हैं वह तो यह है कि उसका अर्थ होता है धार्मिक राज्यकी किसी प्रकारकी मध्यकालीन कल्पनाकी दिशामें प्रत्यावर्तन। . . . मुस्लिम जनताको मुक्तिकी ओर ले जानेवाले मार्ग पर गलत दिशामें मोड़ दिया गया है। उनकी जरूरतें वही हैं जो उनके हिन्दू पड़ोसियोंकी है।"

३ मईको 'मान्चेस्टर गार्डियन' ने एक सम्पादकीय लेखमें लिखा: "शान्तिके लिए अथवा कमसे कम गृहयुद्धको टालनेके लिए पाकिस्तानके रूपमें बहुत बड़ी कीमत चुकाई जा रही है।" कुछ दिनों

बाद उसने फिर लिखा कि यों तो "प्रत्येक कल्पनीय हल पर गम्भीर आपत्तियां उठाई जाती हैं, परन्तु सबसे सीधा-सादा हल वह होगा जिसका मि. गांधी और मि. पटेल समर्थन करते हैं – वह यह है कि हमें अपने अधिकार और जिम्मेदारी पंडित नेहरूकी सरकारको सौंप देनी चाहिये और उसे संविधान-सभाके प्रति उत्तरदायी बना देना चाहिये; और मुस्लिम लीगके साथ देशका विभाजन करने या न करनेका सवाल निबटानेका काम उसी पर छोड़ देना चाहिये।"

६ मईको ब्रिटिश लोकसभाके सदस्य फेनर ब्रॉकवेने लन्दनसे एक वक्तव्यमें कहा कि भारतके आंतरिक मतभेद भारतीय लोगोंके लिए प्रथमः महत्त्व रखते हैं और वे उनके द्वारा ही दूर किये जा सकते हैं। "क्योंकि ब्रिटिश पार्लियामेन्ट उनके निर्णयका मार्गदर्शन अथवा नियंत्रण करनेकी कोशिश करेगी, तो वह ऐसी **आवश्यकतासे अधिक चिन्ता प्रगट करेगी, जिससे कठिनाइयां दूर होनेके बजाय संभवतः अधिक बढ़ेंगी**।" (मोटे टाइप मैंने किये हैं।) ब्रिटिश सरकार उनमें पूर्ण विश्वास प्रकट करके अधिक कारगर सहायता पहूंचा सकती है। ऐसा सफलतापूर्वक करनेके लिए ब्रिटिश सरकारको पहले – जून १९४८ में पूरी सत्ता हस्तांतरित न हो जाय तब तक – अन्तरिम सरकारको "वास्तवमें ऐसी स्वाधीन सरकार समझना चाहिये, जिसके पास पूरी सत्ता होगी और जिसमें वाइसरॉयका स्थान किसी भी उपनिवेशके गवर्नर-जनरलके समान होगा।" साथ ही यह भी निर्विवाद रूपसे स्पष्ट कर दिया जाना चाहिये "कि संविधान-सभाको, जिसकी सदस्यता जनताके सब वर्गोंके लिए खुली है, तमाम प्रान्तोंकी भारतीय सरकारका भावी स्वरूप निश्चित करनेका पूरा अधिकार है।"

मेजर-जनरल सर डैशवुड स्ट्रेटेलने, जो ४४ वर्ष तक भारतीय सेनामें अलग अलग पदों पर काम कर चुके थे, और भी स्पष्ट बातें कहीं। 'डेली टेलिग्राफ' में लिखते हुए उन्होंने कहा कि सत्ता हस्तांतरित करनेकी तारीख नियत करनेका निर्णय "कदाचित् सही" था। परन्तु नियंत्रण सौंपनेकी पद्धतिसे "मुस्लिस लीगके दुराग्रहको प्रोत्साहन मिलेगा।" मेरे खयालसे "इस कठिन समस्याको सुलझानेका एकमात्र मार्ग" यह है कि ब्रिटिश मंत्रि-मंडल यह कह दे कि वह संविधान-सभा द्वारा चुने हुए लोगोंको सरकारकी बागडोर सौंप देगा, और इस प्रकार मुस्लिम लीगको उसमें शरीक होनेके लिए मजबूर करे। मेरे इस पत्रका उद्देश्य भारतके बारेमें ब्रिटिश जनताको "सीधी सच्ची बातें" बता देना है, क्योंकि "अल्पसंख्यकोंके पक्षका समर्थन करनेकी उत्सुकतामें ब्रिटिश जत्तताके सामने मुस्लिम लीगका बहुत ही भ्रामक चित्र रखा गया है।"

सरदार पटेलने अपनी मुंहफट शैलीमें कह दिया कि तटस्थ रहने परन्तु सत्तासे चिपके रहनेकी ब्रिटिश नीति गृहयुद्धको प्रोत्साहन देनेका ही मार्ग है। केन्द्रीय सरकारको "जैसी वह अभी है" [सरदार पटेलका अखबारी वक्तव्य, ९ मई, १९४७] उसी रूपमें सत्ता सौंप दी जाय, तो "एक सप्ताहके अन्दर देशमें शान्ति हो जायगी।" भारतीय अंतरिम सरकार औपनिवेशिक सरकारकी तरह काम करने लगे और वाइसरॉय बाहर रहें, तो इससे हिंसक कृत्य तुरन्त बन्द हो जायंगे; क्योंकि औपनिवेशिक शासन-कार्यके साथ केन्द्रीय सरकार सुदृढ़ केन्द्र बना लेगी और अव्यवस्था व अराजकताको दबा देनेके लिए उसके पास आवश्यक सत्ता होगी । "तीसरे पक्ष – जिसे दोनोंमें से कोई भी पक्ष अपील कर सके – के हस्तक्षेपके अभावमें कांग्रेस और मुस्लिम लीग अपने मतभेद तुरन्त सुलझा लेंगी। यदि किसी प्रश्न पर मंत्रि-मंडलमें संघर्ष होगा, तो बहुमतकी सत्ता चलेगी। . . . कांग्रेसकी स्थिति सदा यह रही है कि जो समूह अथवा जो प्रदेश भारतीय संघ (इंडियन यूनियन) के भीतर नहीं रहना चाहता उसे वह दबा कर नहीं रखेगी।

. . . हमने जिन्नासे कहा था कि यह प्रश्न संयुक्त राष्ट्रसंघके पास भेज दिया जाय। उन्होंने कहा: 'नहीं ।' हमने उनसे मध्यस्थ बननेको कहा, तो भी उन्होंने 'नहीं' कह दिया।"

ब्रिटिश सरकारके सामने – केवल इस उप-महाद्वीपकी शान्ति और प्रगतिके लिए ही नहीं किन्तु स्वयं भारतीय मुसलमानोंके अंतिम हितके लिए भी — ये स्पष्ट चेतावनियां, सलाहें तथा भारतके विभाजनके विकल्प मौजूद थे, फिर भी अल्पसंख्यक वर्गोंके बारेमें उसकी अत्यधिक चिन्ताकी जीत हुई, जिसका उल्लेख जनरल स्ट्रेटेल और फेनर ब्रॉकवेने किया था और जिसे इसके पूर्व गांधीजीने पुरानी ब्रिटिश साम्राज्यवादी परम्पराका नया रूप कहा था। ब्रिटिश सरकारने ऐसी स्थिति खड़ी होने दी जो सभी दलोंके लिए, जिनमें लॉर्ड माउन्टबेटन भी सम्मिलित थे, विवश करनेवाली सिद्ध हुई और ब्रिटिश सत्ताने स्वयं अपनी उदार न्यायवृत्तिके विरुद्ध जाकर भी भारतकी एकताको छिन्नभिन्न करनेका निर्णय कर डाला।

ब्रिटिश सत्ता भारतमें न खुद शासन करती थी, न दूसरोंको करने देती थी। मुस्लिम लीगके नामजद प्रतिनिधियोंके अन्तरिम सरकारमें बने रहनेके सवालका कभी ईमानदारीसे सामना नहीं किया गया। इसलिए कानून और व्यवस्था-सम्बन्धी स्थिति इतनी तेजीसे बिगड़ी कि लन्दनकी रॉयल एम्पायर सोसायटीके सामने एक भाषणमें लॉर्ड इस्मेने यह स्वीकार किया कि भारत आनेसे पहले उनका यह

खयाल था कि अंग्रेजोंके भारत छोड़नेकी क्रिया पूरी करनेके लिए जून १९४८ की अन्तिम तिथि "अत्यधिक जल्दी" रख दी गई है, परन्तु भारत पहुंचने पर उनका यह विचार होने लगा कि वह तारीख लगभग "अत्यधिक विलम्बवाली" है। भारतका प्रशासन-तंत्र डांवाडोल हो रहा था और "दिल्लीमें तथा प्रान्तोंकी राजधानियोंमें साम्प्रदायिक कटुता इतनी अधिक तीव्र हो गई थी जिसकी मैं कभी कल्पना भी नहीं कर सकता था।"

उसी भाषणमें उन्होंने तटस्थ होकर कहा कि इतिहासमें पहले कभी किसी "मिश्र सरकारने एक-दूसरेके साथ सहयोग न करनेका इतना दृढ़ निश्चय नहीं किया था" जितना केन्द्रकी अन्तरिम सरकारने किया है। लेकिन उन्होंने आसानीसे इस तथ्यका उल्लेख करना छोड़ दिया कि स्वयं ब्रिटिश सत्ताने ही भारत पर यह असंभव स्थिति लादी थी, हालांकि न केवल कांग्रेसियोंका बल्कि गैर-कांग्रेसियोंके बड़े वर्गोंका भी इसके लिए सम्मिलित विरोध था। वास्तवमें, मुस्लिम लीगके अलावा लगभग सभी राष्ट्रवादी वर्ग इसका विरोध करते थे।

अवश्य ही यह स्थिति लॉर्ड माउन्टबेटनकी उत्पन्न की हुई, चाही हुई अथवा पसन्द की हुई नहीं थी। इस परिस्थितिमें सरकारको कामकाज करने देनेका एकमात्र वैकल्पिक हल गांधीजीकी योजनाको स्वीकार करना था (देखिये पृष्ठ १०१) । परन्तु इस योजनाके बारेमें नई दिल्लीका अधिकारीवर्ग और मुस्लिम लीग इतने शंकालु थे कि एक हद तक इसी कारणसे कांग्रेसने भी उसे अस्वीकार कर दिया था। माउन्टबेटनको लगा कि मौजूदा परिस्थितिमें सबसे अच्छी बात वे यही कर सकते हैं कि भारतीय दलोंको किसी न किसी तरह सहमत करके स्वयंको मिले हुए आदेशके अनुसार सत्ताको जल्दी हस्तांतरित कर दें। इसमें उन्हें उज्ज्वल सफलता मिली । यह माउन्टबेटनकी कूटनीतिकी अनोखी विजय तो थी, परन्तु क्या यह माउन्टबेटनके मिशनकी भी विजय थी ?

किन्तु उस कालकी गतिविधियोंका हम सिंहावलोकन करें तो यह कहा जा सकता है कि ऐतिहासिक बलोंकी – जिन्होंने इस महान नाटकके प्रत्येक पात्रको अपनी परिस्थितियोंकी कठपुतली मात्र बना दिया था – परस्पर अतिक्रियामें माउन्टबेटनने अपना पार्ट उत्कृष्ट सफलतासे पूरा किया। वे अपनी बुद्धिके अनुसार ही काम कर सकते थे और गांधीजीको इससे संतोष था, क्योंकि वे न तो इससे अधिक किसीसे कुछ चाहते थे और न अधिककी आशा रखते थे।

जिस ढंगसे माउन्टबेटनने अन्तमें सारी बातोंका प्रबन्ध किया, उसके लिए भारतीय नेताओंने उनके प्रति अपनी कृतज्ञता भी प्रकट की । किन्तु उनकी कृतज्ञता ऐसी थी जिसके लिए, एक अंग्रेज कवि-सम्राट्के शब्दोंमें, माउन्टबेटनको अक्सर शोक-संतप्त रहना पड़ा है।

नवम्बर १९४७ के दूसरे सप्ताहमें सरदार पटेलने छत्तीसगढ़ राज्यके प्रतिनिधियोंके सामने नागपुरमें भाषण करते हुए पर्देके पीछे होनेवाली कुछ घटनाओंका उल्लेख किया – जिनके कारण सरदारके विचार बदल कर देशके विभाजनकी कल्पनाके पक्षमें हो गये थे। पूर्वी राज्य-समूह (ईस्टर्न स्टेट्स एजेन्सी) की बस्तर रियासतमें विपुल मात्रामें प्राकृतिक साधन-सम्पत्ति उपलब्ध थी। जब अन्तरिम सरकारमें सरदारने देशी राज्य सम्बन्धी विभागका काम संभाला, तो उन्हें पता चला कि पोलिटिकल डिपार्टमेन्टके अधिकारी सचमुच इस साधन-सम्पत्तिको लंबे पट्टे पर निजामके पास गिरवी रखनेकी तैयारी कर रहे हैं। सरदारने दृढ़ता दिखाई और संबंधित कागजात अधिकारियोंसे मंगवाये । बात माननेमें तो नहीं आयेगी, लेकिन यह सच है कि पहले तो पोलिटिकल डिपार्टमेन्टने ये दस्तावेज देनेसे इनकार कर दिया। जब अन्तमें ये दस्तावेज पेश करनेको उन्हें मजबूर किया गया तब उन्होंने यह कह कर बच निकलनेकी कोशिश की कि चूंकि कानूनके अनुसार वे बस्तरके नाबालिग राजाके संरक्षक हैं, इसलिए उन्हें ऐसा करार करनेका अधिकार है। उन्हें स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया गया कि आप तो अब जा रहे हैं, इसलिए आपको "अपने संरक्षितोंकी चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं है" । सरदारने अपने भाषणमें आगे कहा :

> मुझे तो उसी समय इस बातका पूरी तरह भान हुआ कि हमारे हितोंको पोलिटिकल डिपार्टमेन्टकी चालबाजियोंसे हर तरह किस हद तक नुकसान पहूंचाया जा रहा है; और मैं इस नतीजे पर पहूंचा कि इन लोगोंसे जितनी जल्दी हमारा पिंड छूटे उतना ही अच्छा है। मैं इस परिणाम पर पहूंचा कि देशके विभाजनका खतरा उठाकर भी इन विदेशियोंको जल्दीसे जल्दी भारतसे हटाना ही इसका एक उत्तम मार्ग है। उसी समय मुझे यह भी लगा कि देशको सुरक्षित और सबल बनानेका एक ही उपाय है और वह है शेष भारतको एकताके सूत्रमें बांध देना।

२५ नवम्बर, १९४८ को बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयमें दिये गये एक और भाषणमें फिरसे उन्होंने यही विषय लिया : "मुझे लगा कि अगर हम भारतका विभाजन स्वीकार नहीं करेंगे, तो भारतके अनेक

टुकड़े हो जायंगे और वह पूरी तरह नष्ट हो जायगा। मंत्रीपदके मेरे एक सालके अनुभवने मुझे इसका दृढ़ विश्वास करा दिया था कि जिस ढंगसे हम आगे बढ़ रहे हैं, वह हमें सर्वनाशकी ओर ले जायगा। फिर तो हमें एक नहीं, अनेक पाकिस्तान देने होंगे। हर सरकारी दफ्तरमें छोटासा पाकिस्तानी केन्द्र खड़ा हो जायगा।

नवम्बर १९४९ में संविधान-सभामें बोलते हुए सरदार पटेलने इसकी ज्यादा तफसीलों पर प्रकाश डाला। वे यह बताती हैं कि अंग्रेजोंने जो दो ब्रह्मास्त्र अंत तक अपने हाथमें रख छोड़े थे, उनका उन्होंने इतनी सफलतासे उपयोग किया कि भारतके नेताओंको सत्ताके शीघ्र हस्तांतरणका हेतु पूरा करनेके लिए अपने चिर-सेवित भारतीय एकताके आदर्शका बलिदान देनेके लिए मजबूर हो जाना पड़ा। इनमें से एक अस्त्र था सुरक्षित अधिकारों और सरकारी नौकरों पर नियंत्रण; और दूसरा अस्त्र था देशी राज्योंके सम्बन्धमें उनकी सार्वभौम सत्ता। "आपने देख लिया कि पंजाबमें क्या हो रहा है। जिन पांच जिन्होंमें विनाश-लीला चल रही थी, उनमें पांच अंग्रेज अफ़सरोंके हाथमें सत्ता थी और वहां कुछ नहीं किया जा सकता था। मैंने गुडगांवके जिला-मजिस्ट्रेटका तबादला करानेकी कोशिश की । लेकिन मुझे सफलता नहीं मिली और वहांके अंग्रेज अफसरने ऐसे प्रमुख कांग्रेसियोंको गिरफ्तार करके जेलमें डाल दिया, जिनका कोई अपराध नहीं था। उन्हें जामिन बनाकर जेलमें रखा गया था। उस अधिकारीका दुःसाहस इतना बढ़ गया था कि वकील-सभाके अध्यक्षने उनकी निर्दोषताके आधार पर उनकी रिहाईके लिए आवेदन-पत्र दिया, तो जिला-मजिस्ट्रेटने उस पर लिख दिया कि वे जामिनके तौर पर जेलमें रखे गये हैं ! मुझे बड़ा आघात लगा। . . . मैंने उससे पूछा: 'क्या आपने लोगोंको गिरफ्तार करके जामिन बना रखा है ?' उसने कहा: 'नहीं, आपसे किसने कहा ?' सौभाग्यसे वह कागज मेरे पास था जिस पर उसने बंदियोंके जामिन होनेकी बात लिखी थी। मैंने वह कागज उसे दिखाया। उसने पूछा: 'आपको यह कैसे मिला ?' मैंने कहा: 'प्रश्न यह नहीं है। यह आपका लिखा है या नहीं ?' उसके बाद मैंने जोरदार प्रयत्न किया। मैंने पंजाबके तत्कालीन गवर्नरको लिखा और वाइसरॉयको समझाया, परन्तु उसे हटानेमें मुझे कठिनाई हुई। और आप जानते हैं कि गुडगांव और इन दूसरे जिलोंमें कैसा विनाश हुआ है । सिर्फ पंजाबकी ही बात नहीं, दूसरे स्थानों पर भी बहुतसी ऐसी बातें की गईं। यह समय तो ऐसा था जब मामूली-सी बात भी महत्त्वपूर्ण प्रश्नका निर्णय कर सकती थी और भारत हमारे हाथसे निकल सकता था। तब हमने आग्रह किया कि ऐसी स्थिति आ गई है जब सत्ता तुरन्त हस्तांतरित होनी चाहिये, फिर

कुछ भी क्यों न हो । इसके बाद हमने त्यागपत्र देनेका निश्चय किया। इसी समय लॉर्ड माउन्टबेटन आ गये। . . . मैंने अन्तिम उपायके रूपमें विभाजनको स्वीकार किया; उस समय हम ऐसी हालतमें पहुंच गये थे कि उसे स्वीकार न करते तो सब-कुछ हमारे हाथसे निकल जाता। सरकारमें पांच या छह सदस्य मुस्लिम लीगके थे। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया था कि वे विभाजन करानेके लिए ही सरकारमें आये हैं। हमने ऐसी नौबत आने पर पाकिस्तानको स्वीकार किया। हमने निश्चय किया कि पाकिस्तान इस शर्त पर स्वीकार किया जा सकता है कि पंजाबका विभाजन हो . . . और बंगालका विभाजन हो। . . . श्री जिन्ना कटा-पिटा विकलांग पाकिस्तान नहीं चाहते थे, परन्तु उन्हें लाचार होकर उसे स्वीकार करना पड़ा। . . . **मैंने यह शर्त भी रखी कि दो महीनेके भीतर सत्ता हस्तान्तरित कर ही दी जानी चाहिये** और इस अवधिमें ब्रिटिश पार्लियामेन्टको एक कानून पास कर देना चाहिये, बशर्ते यह आश्वासन दे दिया जाय कि **ब्रिटिश सरकार भारतीय देशी राज्योंके प्रश्नमें हस्तक्षेप नहीं करेगी** । हमने कहा: 'हम इस प्रश्नसे निबट ,लेंगे; इसे आप हम पर छोड़ दीजिये; आप किसीका पक्ष न लीजिये। सार्वभौम सत्ता (पैरेमाउन्टसी) को दफना दीजिये।' " (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

इधर पंजाबमें "सीधी कार्रवाई" की असफलतासे मुस्लिम लीगके वरिष्ठ नेता थोड़े ठंडे पड़ गये। अगर वे लोग अपनी जिद पर अड़े रहते, तो जून १९४८ के अन्तमें पाकिस्तानमें शामिल करनेके लिए उन्हें संभवतः सिन्ध, बंगाल और बलूचिस्तानके प्रदेश ही मिलते। पंजाबका मामला संदिग्ध था, क्योंकि वहां गवर्नरका शासन था और उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्तमें लीग अपनी स्थिति तभी सुधार सकती थी जब गवर्नर खान साहबके मंत्रि-मंडलको बरखास्त करते और नये चुनाव कराये जाते। अंग्रेजोंके सद्भावके बिना इनमें से एक भी चीज नहीं हो सकती थी; क्योंकि उस मंत्रि-मंडलको प्रान्तीय विधान-सभामें उस समय भी निश्चित बहुमत प्राप्त था। यह संभावना देखकर मालूम होता है कि जिन्नाने "कीड़ोंका खाया हुआ, विकलांग पाकिस्तान" स्वीकार कर लिया। यदि लीग पंजाब और बंगालके विभाजनकी बात मान लेती, तो ब्रिटिश सत्ता सीमाप्रान्तमें फिरसे चुनाव करानेकी उसकी मांगको मान सकती थी अथवा और कोई तरकीब निकालती जिससे लीगको वह प्रान्त पाकिस्तानमें मिलानेका एकमात्र अवसर मिल जाता।

इस प्रकार वह स्थिति पैदा कर दी गई जिसमें दोनों पक्ष ऐसी योजनाको माननेके लिए तैयार हो गये, जिसे दोनों ही पूरी तरह पसन्द नहीं करते थे, और फिर भी दोनों ही जिसका प्रतिकार करनेकी

स्थितिमें नहीं थे; और भारतका विभाजन उन्हीं लोगोंकी अनुमतिसे हो गया, जिन्होंने यह कह कर विभाजनकी निन्दा की थी कि यह ब्रिटिश साम्राज्यवादके हितमें भारतको बंटा हुआ और कमजोर रखनेकी एक चाल है।

इस नाजुक हालतमें कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओंके सामने जो स्थिति थी, उसका चित्र कलकत्तेके एक दैनिक पत्रके दिल्ली स्थित प्रतिनिधि द्वारा भेजे गये संवादके नीचे लिखे अंशोंसे प्रगट होता है। यह संवाद मई १९४७ के दूसरे सप्ताहमें प्रकाशित हुआ था :

> स्थितिका मेरा अंदाजा यह है . . . कि पंजाब और उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्तमें जिस ढंगकी "सीधी कार्रवाई" हुई, उसीका दिल्ली भी जल्दी ही केन्द्र बन सकता है। . . . भारत सरकारके संचार-विभाग (कम्युनिकेशन्स डिपार्टमेन्ट) ने जल्दीसे जल्दी दिल्लीकी टेलीफोन-व्यवस्थाके उच्च श्रेणीके यूरोपियन, हिन्दू और सिक्ख अधिकारियोंको हटाकर और उनकी जगह मुसलमानोंको बैठा कर सारे महत्त्वपूर्ण पदोंका संपूर्ण मुस्लिमीकरण कर दिया है। . . . तमाम व्यूहात्मक तथा मुख्य पदों पर मुस्लिम अधिकारी रख दिये गये हैं, ताकि पंजाब और उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्त जैसी विशेष परिस्थिति दिल्लीमें भी खड़ी हो जाय, तो दिल्लीके भिन्न भिन्न भागोंके बीचका और दिल्ली तथा भारतके अन्य भागोंके बीचका टेलीफोन-व्यवहार बिलकुल उनके नियंत्रणमें रह सके।

पुलिस-विभाग, सूचना-विभाग तथा प्रतिरक्षा-विभागमें भी महत्त्वपूर्ण पद "प्रारंभिक न्याय" की व्यवस्थाके अन्तर्गत (देखिये खण्ड-१, पृ. ३४३) मुसलमानों या मुस्लिम लीगके पक्षपातियोंके हाथमें थे। अन्तरिम सरकारके लीगी सदस्योंके पास जो विभाग थे उनमें वित्त-विभाग भी था। कांग्रेसने यह विभाग लीगके अन्तरिम सरकारमें आने पर इसलिए छोड़ दिया था कि वह गृह-विभाग, प्रतिरक्षा-विभाग तथा विदेश-विभाग – जिसकी चकाचौंध अन्य विभागोंसे अधिक थी परन्तु जो शायद (उस समय) आजसे आधा भी महत्त्वपूर्ण नहीं था – अपने हाथोंमें रख सके । वित्त-विभाग मुस्लिम लीगके हाथमें होनेसे वह कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओंके लिए उससे ज्यादा सिरदर्द पैदा कर सकी, जिसकी उन्होंने कभी कल्पना की थी।

मुस्लिम लीग और उसके समर्थक देशभरमें षड्यंत्रोंका जो व्यापक जाल फैला रहे थे, उसका ताजा सबूत बराबर मिलता रहा। कुछ सेनानायक, जो बर्मामें जापानी पंक्तियोंके पीछे ब्रिगेडियर विंगेटके नेतृत्वमें काम कर रहे थे, तोड़फोड़के काम करते पाये गये। वे भारतमें कैसे घुस आये, यह एक रहस्य ही था। हथियारोंका नाजायज व्यापार तेजीसे चल रहा था। वह अंग्रेज और हिन्दुस्तानी सैनिक अधिकारियोंकी जानकारी और कभी कभी सक्रिय सहयोगके बिना नहीं हो सकता था। वह एक खुली बदनामीका विषय बन गया था। नाजायज हथियारोंके गुप्त भंडार नागपुर, जबलपुर, कानपुर और अन्य कई स्थानों पर पाये गये। एक जगह तो एक हजारसे ऊपर स्टेनगनें मिलीं। बादमें कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओंको पोलिटिकल डिपार्टमेन्टके बुरे काममें साझीदार बननेका एक लिखित प्रमाण मिल गया कि वह किस प्रकार कुछ राजाओंसे मिल कर भारतकी एकताको भंग करनेके षड्यंत्र रचनेमें लगा हुआ था। अन्य बातोंके साथ साथ एक सुनियोजित योजनाका पता लगा, जिसके अनुसार कुछ राज्यों द्वारा बड़ी मात्रामें हथियारोंका वितरण करके सारे भारतमें मुक्ति-दिवस मनानेकी तैयारियां हो रही थीं। इन सब बातोंको देखते हुए, पंडित नेहरूके शब्दोंमें कहें तो, कांग्रेसके नेतागण अन्तमें इसके लिए राजी हो गये कि "सिरदर्दको मिटानेके लिए सिरको ही काट दिया जाय !"

*

१ मईको पटनासे भंगीबस्ती पहुंच कर गांधीजीने पंडित नेहरूके साथ एक घंटे तक तत्कालीन स्थितिकी चर्चा की। गांधीजीका दृढ़ मत था कि कांग्रेसको लीगसे बाजी मार ले जानेके लिए अंग्रेजोंके साथ कूटनीतिका खेल नहीं खेलना चाहिये। अंग्रेजोंसे कोई रियायत हासिल करनेके लिए हमें भारतकी एकताको बेचना नहीं चाहिये, बल्कि यह मांग करनी चाहिये कि अंग्रेजोंको दुरंगी नीति छोड़ कर सीधा-सच्चा व्यवहार करना चाहिये, सत्ताका हस्तान्तरण होने तक देशभरमें सख्तीके साथ कानूनका शासन चलाना चाहिये और जो दल इस मामलेमें गलती करे या सहयोग न दे उसके साथ बातचीत करनेसे इनकार कर देना चाहिये; और अगर अंग्रेज इसके लिए तैयार न हों तो हमें इस खेलसे बाहर निकल कर उस समयकी प्रतीक्षा करनी चाहिये जब अंग्रेज भारत छोड़ कर चले जायंगे और भारतीय दल आपसमें निबटारा करनेके लिए स्वतंत्र हो जायंगे।

परन्तु कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओंको भय था कि अगर सारी बातें निरुद्देश्य गतिसे चलने दी गईं, तो फूट और अव्यवस्थाकी वे ताकतें हमको दबा लेंगी, जो इस समय संगठित हो रही हैं। कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओंकी "छोटी बुराई" को चुननेकी दलील गांधीजीको जंचती नहीं थी। उन्होंने बताया कि जिन्नाकी इस घोषणाका कि पाकिस्तानमें अल्पसंख्यकोंकी पूरी रक्षा की जायगी, पालनकी अपेक्षा भंग ही अधिक हो रहा है। ब्रिटिश सत्ताका फर्ज है कि वह दोषी पक्षकी निन्दा करे, परन्तु इसके लिए वह तैयार नहीं है। इससे मुझे उसकी नीयत पर शक होता है। अगर कांग्रेस विभाजनका तर्क स्वीकार करती है, तो अन्तमें इसका परिणाम संघर्ष होगा और भारत छिन्नभिन्न हो जायगा, जिसके लिए भावी पीढ़ियोंको भारी कीमत चुकानी होगी। [प्रार्थना-प्रवचन, १ मई, १९४७]

उसी दिन शामको अपने प्रार्थना-प्रवचनमें गांधीजी बोले : मेरी रायमें वाइसरॉय और जिन्ना दोनोंका सम्मान इसमें सन्निहित है – वाइसरॉयका इसलिए कि उन्हींने शांतिकी सम्मिलित अपील निकलवाई थी। जिन्ना यह दलील नहीं दे सकते कि उनके अनुयायी उनकी अपीलको नहीं मानते। इससे तो उनके पैरों तलेकी सारी जमीन ही निकल जायगी, क्योंकि वे अखिल भारतीय मुस्लिम लीगके निर्विवाद अध्यक्ष हैं और लीगका यह दावा है कि वह अधिकांश मुस्लिम आबादीका प्रतिनिधित्व करती है। लीगकी सत्ता कहां रह जाती है, यदि मुसलमान उसका राजनीतिक लक्ष्य – जो एक शब्दमें पाकिस्तान है – सिद्ध करनेके लिए हिंसाका आश्रय लेते हैं ? क्या ब्रिटिश सरकार बुद्धिबलके बजाय शस्त्रबलके सामने झुकेगी ? वाइसरॉयने शपथपूर्वक यह घोषणा की है कि ताकतके सामने झुककर कोई चीज नहीं दी जायगी। सम्मिलित अपील निकालनेका कोई अर्थ नहीं रह जाता, यदि यह निश्चित न हो कि दोनों हस्ताक्षरकर्ताओंके लिए उसके शब्दोंके संपूर्ण अर्थका पालन करना धर्म है।

> क्या मैं वाइसरॉयसे यह पूछ सकता हूं कि वे इन सब चीजोंके मौन साक्षी क्यों रहते हैं? मैं या जिन्ना साहब जो भी सम्मिलित अपीलका पालन करानेमें दोषी हो, उससे वे जवाब तलब क्यों नहीं करते ? और अगर अंग्रेज हिन्दुओं और मुसलमानोंको एक-दूसरेके साथ शान्तिपूर्वक नहीं रख सकते, तो वे दोनोंको आपसमें निबट लेनेके लिए स्वतंत्र छोड़ कर भारतसे चले क्यों नहीं जाते ?

उन्होंने आगे कहा: लेकिन अगर अंग्रेज भारतको न छोड़ें, तो इसका उत्तर तलवार उठाना नहीं होगा। "आप बड़ी भूल करते हैं यदि आप यह सोचते हैं कि अंग्रेज ताकतके सामने झुक जायंगे। और यह आपके लिए भी एक बोधपाठ होना चाहिये । अगर आप अंतिम आदमी तक मरना सीख लें, तो आपसे जबरदस्ती कोई कुछ नहीं ले सकता।"

३ मईको लॉर्ड माउन्टबेटनके साथ गांधीजीकी जो मुलाकात हुई, उसमें उन्होंने इस मामलेकी उनसे चर्चा की । वाइसरॉयने उनसे और जिन्नासे शान्तिकी जो सम्मिलित अपील निकलवाई थी, उसका गांधीजी द्वारा किया गया गूढ़ार्थ वाइसरॉयको मान्य नहीं था; दोनोंने स्वतंत्रतासे और स्वेच्छासे उस पर हस्ताक्षर किये थे। वे दंगोंके जारी रहनेकी जिम्मेदारी विभाजित करने और दोषी पक्षका नाम लेनेको भी तैयार नहीं थे। उनका कहना था कि आजकी स्थितिमें उससे कोई लाभ नहीं होगा। उनको केवल यही चिन्ता थी कि जल्दीसे जल्दी शान्तिपूर्वक भारतीयोंके हाथोंमें सत्ता हस्तांतरित कर दी जाय। वे इसके लिए बहुत ही उत्सुक थे कि भारतकी एकता बनी रहे । यदि साम्प्रदायिक झगड़े जारी रहते हैं, तो यह ब्रिटेन अथवा भारत दोनोंके लिए श्रेयकी बात नहीं होगी। उन्होंने गांधीजीको यकीन दिलाया कि भारतमें ब्रिटिश सत्ताके अंतके समय मेरी उत्तम कोशिशोंके बावजूद अगर झगड़े होते रहे, तो मैं सेनाका उपयोग करनेमें संकोच नहीं करूंगा । गांधीजीके खयालसे फिलहाल इतना ही काफी था।

वाइसरॉयसे मिल कर लौटे तो गांधीजीने शामकी प्रार्थना-सभामें कहा कि वाइसरॉय एक प्रसिद्ध जल-सेनापति हैं। "इस हैसियतसे वे अहिंसामें तो विश्वास नहीं करते, परन्तु उन्होंने मुझे बार बार यह विश्वास दिलाया कि वे ईश्वरमें विश्वास करते हैं और अपनी अन्तरात्माके आदेशानुसार चलनेका सदा प्रयत्न करते हैं।" इसलिए लोगोंको पिछली बातें भूल कर नये वाइसरॉयके इरादोंकी ईमानदारी पर विश्वास करना चाहिये और उनके रास्तेमें रुकावटें पैदा नहीं करनी चाहिये।

इस प्रकार कुछ समयके लिए संकट पर विजय प्राप्त कर ली गई। परन्तु इससे इन दोनोंके दृष्टिकोणोंका गहरा अंतर सामने आया। अप्रैल १९४७ के पहले सप्ताहमें एक छोटीसी घटना हुई, जिससे वह पूर्ण प्रकाशमें आ गया। सारे पंजाबमें अराजकताका ज्वार आया हुआ था। नोआखालीमें फिर हिंसाकाण्ड शुरू हो गया था। गांधीजी इस बारेमें माउन्टबेटनकी सलाह चाहते थे कि पंजाबके मित्रोंके आग्रहपूर्ण पत्रोंके उत्तरमें वे वहां जायं या नहीं । "पंडित नेहरू तो सहमत हैं। लेकिन मैं चाहूंगा कि आप

मेरा पथ-प्रदर्शन करें।" [गांधीजीका पत्र लॉर्ड माउन्टबेटनको, ७ अप्रैल, १९४७] इसके सिवा, "हिंसाका यह विस्फोट ब्योरेकी ही बात नहीं है। **अगर इसे अभी नहीं रोका जा सकता, तो चौदह महीने बाद इसे नहीं ही रोका जा सकेगा**।" [वही] (मोटे टाइप मैंने किये हैं।) इसका उत्तर वाइसरॉयने यह दिया : "मैं बिलकुल सहमत हूं कि ये उपद्रव केवल ब्योरेकी बात नहीं हैं। **हमें करना यह है कि दलोंके बीच केन्द्रमं समझौता हो जाय और संभव हो तो हिंसाके विरुद्ध एक संयुक्त मोर्चा बन जाय**।" [लॉर्ड माउन्टबेटनका पत्र गांधीजीको, ७ अप्रैल, १९४७] (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

यह मतभेद अन्त तक बना रहा। दोनों पक्षोंको खुश रखनेकी ब्रिटिश नीति जारी रही और उसके साथ साथ "सम्मिलित मोर्चे" की झूठी आशामें हिंसा करनेवालेके साथ मिल कर हिंसाको नियंत्रणमें रखनेकी कोशिश चलती रही। उधर मृत्युसंख्या बढ़ती गई और उसने देशको एक विशाल बारूदखानेका रूप दे दिया।

२

१ मईकी शामको कांग्रेस कार्यसमितिकी बैठक हुई। गांधीजीने उसमें बहुत दिलचस्पी नहीं दिखाई। उन्हें लगा कि मेरे और कार्यसमितिके बाकी लोगोंके बीच दृष्टिकोणका इतना बड़ा भेद है कि चर्चामें मेरे भाग लेनेसे कोई लाभ नहीं होगा। परन्तु कार्यसमितिके सदस्य उनके बिना काम चलानेको तैयार नहीं थे। इसलिए गांधीजीने उपस्थित रहना स्वीकार कर लिया।

कार्यसमितिके निर्णयमें विभाजनका सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया था। उस निर्णयका क्रियात्मक भाग पंडित नेहरू द्वारा वाइसरॉयके नाम लिखे गये पत्रमें इस प्रकार था :

> जिन प्रस्तावोंको, मेरे खयालसे, लॉर्ड इसमे लन्दन ले जा रहे हैं, उनके सम्बन्धमें हमारी समिति विभाजनके उस सिद्धान्तको स्वीकार करनेके लिए तैयार है, जो कि निश्चित रूपसे निर्धारित क्षेत्रोंको लागू होनेवाले आत्म-निर्णयके अधिकार पर आधारित है।
>
> इसमें बंगाल और पंजाबका विभाजन आ जाता है। जैसा कि आप जानते हैं, संयुक्त भारतके विचारसे हम लोगोंको उत्कट लगाव है, परन्तु हमने संघर्ष और मजबूरीको टालनेके लिए भारतके बंटवारेको मान लिया है। इस विभाजनको अमलमें लानेके लिए उन लोगोंकी इच्छाओं और हितोंकी पूर्तिका हर प्रयत्न करना चाहिये, जिन पर विभाजनका असर पड़ेगा। ऐसे

विभाजनसे पहले भी और विभाजनकी बातको छोड़ दें तो भी, हालकी घटनाओंने बंगाल और पंजाब दोनोंके प्रशासनिक बंटवारेको स्पष्ट और महत्त्वपूर्ण आवश्यकता बना दिया है। [पंडित नेहरूका पत्र लॉर्ड माउन्टबेटनको, १ मई, १९४७]

पंडित नेहरूने अपने पत्रमें यह भी लिखा: "किसी ऐसी प्रान्तीय सरकारका, जो वैध रूपमें रची गई है और जिसके साथ बड़ा बहुमत है, अंत कर देने और आतंकवादके कारण नये चुनाव करानेके किसी भी प्रस्तावको पराजयकी स्वीकृति समझ कर उसका प्रतिकार करना चाहिये।" स्पष्ट ही यह उल्लेख योजनाके सीमाप्रान्तसे सम्बन्धित भागके विषयमें था। इस योजनाकी चर्चा कांग्रेसी नेताओंके साथ सामान्य रूपमें ही हुई थी। मूल रूपमें यह योजना उन्हें दिखाई नहीं गई थी। पंडित नेहरूके पत्रमें जो संकेत था, उसमें एक बड़े राजनीतिक संकटके बीज विद्यमान थे। (देखिये अध्याय - १२)

अब भी गांधीजी यह स्वीकार नहीं करते थे कि विभाजन ही भारत की समस्याका एकमात्र हल है अथवा अव्यवस्था और अराजकताके डरसे हमें उसे स्वीकार कर लेना चाहिये। १९४७ के मार्चमें ही उन्होंने इस बारेमें अपना मत ब्रिटिश समाचार-पत्रिका 'कैवलकेड' के नाम भेजे एक सन्देशमें प्रकट कर दिया था। जब उनसे यह पूछा गया कि जून १९४८ तक अंग्रेजोंके भारतसे हट जानेके निर्णय पर आपके मनमें क्या प्रतिक्रिया हुई, तब उन्होंने जवाब दिया था कि पूर्ण स्वाधीनताके बिना कोई व्यवस्थित शान्ति सम्भव नहीं है। इस स्वाधीनतामें भारतसे अंग्रेजी सेना और प्रभावका हटना भी सम्मिलित है। लादी हुई शान्तिसे तो मानव-सम्बन्धोंमें गड़बड़ी ही हो सकती है :

> इसलिए भारतमें सजीव शान्तिकी स्थापनाके लिए नादानीभरा लड़ाई-झगड़ा अनिवार्य है। . . . जब कोई पक्ष रक्षाके लिए ब्रिटिश सत्ताकी तरफ नहीं देख पायेगा, तो यह झगड़ा जल्दी मिट जायगा। किसी महान राष्ट्रको जबरन् हतवीर्य बनानेका यही दुःखद परिणाम हो सकता है। बेशक, बहुत कुछ दारमदार कमसे कम हानि होने देनेकी भारतीय बुद्धिमानी पर रहेगा। जिस समय सम्बन्ध-विच्छेद हो रहा है उस समय ब्रिटिश राजनीतिज्ञों और भारतके ब्रिटिश निवासियोंकी ईमानदारी और दूरदर्शिताकी एकसी जरूरत है। मुझे अफसोसके साथ कहना पड़ता है कि ब्रिटिश वक्तव्यों और वचनों पर भारतीय जनताका अविश्वास बहुत गहरा हो गया

है; और शायद वह उचित है। इसलिए इस नाजुक मौके पर अंग्रेजोंका व्यवहार बिलकुल स्पष्ट और असंदिग्ध होना चाहिये।

अपने मनमें तो गांधीजीको विश्वास था कि यदि अंग्रेज शासक और अंग्रेज उच्च अधिकारी ईमानदारी और सचाईका खेल खेलें, तो देशमें कोई अव्यवस्था और अराजकता नहीं होनी चाहिये। लेकिन मान लीजिये कि बुरीसे बुरी परिस्थिति खड़ी हो और मुझे अराजकता – जिसे भारतसे जा रहे अंग्रेज अपने पीछे छोड़ कर जा सकते हैं – और लादी हुई शांतिके बीच चुनाव करना पड़े, तो मैं बिना किसी संकोचके अराजकताको पसन्द करूंगा। **मैं किसी भी हालतमें शान्तिके मूल्यके रूपमें अंग्रेजोंके हाथों देशका विभाजन होना स्वीकार नहीं करूंगा**।

कांग्रेसके वरिष्ठ नेता इसके लिए तैयार नहीं थे। वह अदम्य साहस, जो असहयोग और सविनय अवज्ञाके दिनोंमें – जब वे केवल कष्ट-सहनकी शक्ति पर आधार रखते थे – उनके दृष्टिकोणका विशेष लक्षण था, पदसे मिलनेवाली सत्ता पर अधिकाधिक निर्भर रहनेके कारण भूतकालकी वस्तु बन गया था।

गांधीजीके मतकी मूलभूत सत्यताको ऐसी दिशासे समर्थन प्राप्त हुआ, जिसकी आशा नहीं थी। केन्द्रीय विधान-सभामें मद्रासके यूरोपियन समाजके भूतपूर्व प्रतिनिधि सर एफ. ई. जेम्सने मईके तीसरे सप्ताहमें लन्दनमें सार्वजनिक रूपसे कहा कि **जून १९४८ के बाद जब स्थितिको पेचीदा बनानके लिए कोई तीसरा दल भारतमें नहीं रहेगा – चाहे ऐसा करनेमें उसके इरादे कितने ही अच्छे रहे हों – तो आगे-पीछे देशका एकीकरण होकर रहेगा**। "उस स्थितिमें भारतका सामूहिक व्यक्तित्व जोर करेगा और अपने विविध और विभिन्न तत्त्वोंकी रक्षा करते हुए और उन्हें सुरक्षित रखते हुए वह ऐसे संघ (यूनियन) को जन्म देगा, जो भारतके उद्यम और प्रतिभाको जगतकी शान्ति, प्रगति और स्थिरताके लिए अपना अनोखा योगदान करने योग्य बनायेगा।" [दि हिन्दू, मद्रास, २० मई, १९४७]

इससे एक पखवाड़े पहले ५ मईको रायटरके विशेष संवाददाता डून कैम्पबेलने यह प्रश्न गांधीजीसे पूछा था: "क्या भारतका साम्प्रदायिक विभाजन अनिवार्य है ?" गांधीजीने उत्तर दिया था: "मैंने व्यक्तिगत रूपमें तो हमेशा 'नहीं' कहा है और अब भी मैं 'नही' कहता हूं।"

इसके बाद उनसे पूछा गया: "क्या आपकी भी यह राय है कि यदि जून १९४८ तक हिन्दू-मुसलमानोंके मुख्य मतभेद दूर न हुए, तो **नैतिक दृष्टिसे** अंग्रेजोंका हिन्दुस्तानमें ठहरना कर्तव्य हो जायगा ?"

इससे गांधीजीको पहली बार इस बातका संकेत मिला कि पर्देके पीछे चुपके चुपके कुछ समयसे कैसी विश्वासघाती बाजियां रची जा रही हैं। मालूम होता है किसी समय लॉर्ड माउन्टबेटनके दिमागमें भी यह संभावना रही थी, बशर्ते "भारतीय दल " ब्रिटिश सत्तासे भारतमें बने रहनेको कहें, यद्यपि इसे वे "बहुत ही अनहोनी-सी बात" [एलन कैम्पबेल-जॉन्सन, 'मिशन विथ माउन्टबेटन', लंदन, १९५१, पृ. ४४] मानते थे।

यदि यही हवाका रुख था, तो यह बहुत बुरी बात थी। गांधीजीने यह स्पष्ट कर दिया कि भारतमें अंग्रेजोंके जानेकी क्रिया–जिसे उन्होंने "ब्रिटिश राष्ट्रका उदात्ततम कार्य" कहा था–को यदि ईमानदारीसे और सम्पूर्ण रूपमें पूरा करना हो, तो वह निश्चित क्रमके अनुसार आंतरिक परिस्थितियोंकी परवाह किये बिना पूरी होनी चाहिये :

> यदि अंग्रेज आज चले जायं तो अच्छी बात होगी। १३ महीनोंका अर्थ तो भारतकी हानि ही होगा। मैं ब्रिटिश घोषणाकी उदात्ततामें शंका नहीं करता और न वाइसरॉयकी सचाईमें शंका करता हूं। परन्तु तथ्य तो तथ्य ही हैं। न ब्रिटिश मंत्रि-मंडल और न वाइसरॉय – चाहे वे कितने ही असाधारण व्यक्ति क्यों न हों – तथ्योंको बदल सकते हैं। और तथ्य ये है कि भारतको हरएक बातके लिए ब्रिटिश सत्ताकी तरफ देखनेकी तालीम दी गई है। अब भारतके लिए उस स्थितिसे एकाएक अपना मन हटा लेना संभव नहीं है।
>
> यह दलील कभी मेरी समझमें नहीं आई कि अंग्रेजोंको भारत छोड़नेकी तैयारी करनेके लिए इतने महीने चाहिये । इस समयमें यहांके सब दल ब्रिटिश मंत्रि-मंडल और वाइसरॉयकी तरफ देखेंगे। . . . ऐसी सूरतमें अंग्रेजी सत्ता और अंग्रेजी सेनाका १३ महीने तक भारतमें ठहरना वास्तवमें इस कार्यमें बाधक होगा, सहायक नहीं; क्योंकि हर आदमी सहायताके लिए उनके खड़े किये हुए भारी सैनिक तंत्रकी तरफ देखता है। बंगालमें, बिहारमें, पंजाबमें और उत्तर-पश्चिम

सीमाप्रान्तमें यही हुआ । हिन्दुओं और मुसलमानोंने बारी बारीसे कहा : "हमारी रक्षाके लिए ब्रिटिश सेनाको बुलाइये ।" यह बड़ा अपमानजनक दृश्य है।

मैंने यह बात पहले भी कई बार कही है। परन्तु बार बार कहनेसे उसका मूल्य कम नहीं होता, क्योंकि हर बार जब मैं इसे दोहराता हूं इसका बल बढ़ता है। वह बात है: अंग्रेजोंको अव्यवस्था **अथवा अराजकताकी स्थितिमें भारतको छोड़ कर जानेका खतरा उठाना होगा**। यह इसलिए कि भारतमें स्वराज्य नहीं रहा है। यह राज्य तो लोगों पर थोपा गया है। और जब आप स्वेच्छासे उस शासनको हटा लेते हैं, तो संभव है कि शुरू-शुरूमें कोई शासन ही न रहे। वह (व्यवस्थित शासन) स्थापित हो सकता था, यदि हमने हथियारोंके बल पर विजय प्राप्त की होती। आपको यहां जो साम्प्रदायिक झगड़े दिखाई देते हैं, उनका आंशिक कारण मेरी रायमें अंग्रेजोंकी मौजूदगी है। **अंग्रेज यहां न हों तो भी हमें बेशक आगमें से ही गुजरना होगा, परन्तु वह आग हमें शुद्ध करेगी** । (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

संवाददाता और गहरा उतरा। उसने पूछा: जून १९४८ के बाद आप हिन्दुस्तान और ब्रिटेनके बीच किस प्रकारके संबंधोंकी कल्पना करते हैं ? गांधीजीने भी असंदिग्ध और स्पष्ट उत्तर दिया: मैं ब्रिटेन और हिन्दुस्तानके बीच उत्तम मित्रतापूर्ण सम्बन्धोंकी कल्पना करता हूं – यह मान कर कि अंग्रेज सम्पूर्ण रूपमें भारतसे हट जायंगे और "उस क्रियाके पीछे उनकी पूर्ण प्रामाणिकता होगी – किसी भी प्रकारका मानसिक प्रतिबन्ध नहीं होगा।" वास्तवमें मुझे लगता है कि अंग्रेजोंके भारत छोड़नेके ढंग पर न केवल भारतकी शान्ति, परन्तु सारे संसारकी शान्ति भी निर्भर करेगी।

एक और प्रश्न गांधीजीसे किया गया: क्या आपका विश्वास है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ अपने वर्तमान रूपमें स्थायी शान्ति कायम रख सकता है ? गांधीजीने उत्तर दिया कि मुझे अन्देशा है कि संसार दूसरे बल-परीक्षणकी तरफ जा रहा है। "**परन्तु यदि भारतमें सब-कुछ ठीक रहे, तो संसारको दीर्धकालीन शान्ति सिल सकती है। इसका बहुत-कुछ आधार . . . ब्रिटिश राजनीतिज्ञता पर रहेगा**।" (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

दूसरे दिन समाजवादी नेता अरुणा आसफअली और अशोक मेहता गांधीजीसे मिलने आये। गांधीजी कांग्रेसी समाजवादियोंकी निर्भीकता, साहस और देशभक्तिकी बहुत कदर करते थे। यदि

गांधीजी इन लोगोंको अहिंसाके अनुशासन-बद्ध सिपाही बना कर पूरी तरह अपने साथ ले जा सकते और ये गांधीजीकी आशाएं पूर्ण कर पाते, तो विभाजनका प्रतिकार करनेके लिए एक लड़ाई और लड़ी जा सकती थी और भारतकी स्वाधीनता – जिस पर विभाजनका कलंग न लगा हो – का सपना सिद्ध हो जाता।

समाजवादी : "क्या पाकिस्तानका कोई विकल्प है ?"

गांधीजी : "पाकिस्तानका एकमात्र विकल्प अखण्ड भारत है। इसके लिए कोई मध्यम मार्ग नहीं है। आपने एक बार किसी प्रान्तके सम्बन्धमें विभाजनका सिद्धान्त स्वीकार कर लिया कि आप कठिनाइयोंके समुद्रमें पड़े । अखण्ड भारतके आदर्श पर दृढ़तासे डटे रह कर आप सब कठिनाइयोंको पार कर लेते हैं।

समाजवादी : "तो कांग्रेस स्पष्ट मार्गदशन क्यों नहीं देती ? "

गांधीजी : " क्योंकि वह अपनेको लाचार महसूस करती है। वह विभाजनके पक्षमें नहीं है। परन्तु वह कहती है, और बिलकुल ठीक कहती है, कि यदि पाकिस्तानकी मांग स्वीकार करनी ही है, तो बंगाल और पंजाबके गैर-मुस्लिम बहुमतवाले क्षेत्रोंके साथ और सिक्खोंके साथ न्याय होना चाहिये और जिस सिद्धान्त पर मुस्लिम लीग भारतका बंटवारा चाहती है उसी सिद्धांत पर इन दो प्रान्तोंका भी बंटवारा होना चाहिये । मैं इस विचारसे सहमत नहीं हूं। मेरी रायमें **कांग्रेसको किसी भी हालतमें विभाजन स्वीकार नहीं करना चाहिये । हमें अंग्रेजोंसे कह देना चाहिये कि वे बिना शर्त भारतसे चले जायं**। यदि वे हमारी बात न सुनें और हमारे विरोधके बावजूद देशका बंटवारा कर दें, तो हम जानते हैं कि हमें क्या करना चाहिये। जिस चीजको हम बुरी समझते हैं, उसके होनेमें हम सहयोग क्यों दें ?"

समाजवादी : "दूसरे शब्दोंमें आपका विचार यह है कि ब्रिटिश सत्ताको और तेरह महीने हिन्दुस्तानमें नहीं ठहरना चाहिये।"

गांधीजी : "बिलकुल ठीक । यदि उनका इरादा पूरी तरह प्रामाणिक हो, तो उन्हें इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये कि उनके बाद भारतका क्या होगा। भारत अपनी संभाल स्वयं करनेके लिए पूरी तरह समर्थ है। वे शुद्ध अन्त:करणसे भारत छोड़ सकते हैं।"

समाजवादी : "कांग्रेसी नेताओंने कहा है कि अंग्रेज कांग्रेस और लीगमें समझौता कराये बिना भारतसे नहीं जा सकते।"

गांधीजी : "मान लीजिए कि तेरह महीने बाद भी कांग्रेस और लीगमें कोई समझौता न हो सके, तो क्या यह बात निश्चित तारीखके बाद उनके भारतमें रुकनेका 'कारण' होगी ? इसलिए मैं कहता हूं: **वे अभी भारत छोड़कर चले जायं, नहीं तो तेरह महीने बाद भी उनके जानेकी बात संदिग्ध रहेगी** ।"

समाजवादी : "लेकिन वे जायं तो सत्ता किसे सौंपें ?"

गांधीजी : "वे सत्ता मुस्लिम लीगको या कांग्रेसको, किसीको भी सौंप दें। मुझे इसकी परवाह नहीं। यदि वे कांग्रेसको सौंपें तो कांग्रेस लीगके साथ न्यायपूर्ण समझौता कर लेगी। परन्तु यदि लीगको सौंपें तो भी कांग्रेसके लिए डरनेकी कोई बात नहीं है। इतनी ही बात है कि सत्ताका हस्तांतरण सम्पूर्ण हो और बिलाशर्त हो। जिस ढंगसे वे यह काम करेंगे, उससे उनकी सचाई और ईमानदारीकी परीक्षा होगी । अभी तक तो अंग्रेजोंने यह कहा है कि वे कांग्रेसकी अहिंसाके सामने झुके हैं। कांग्रेस द्वारा चलाये हुए अहिंसक संग्रामके कारण ही कैबिनेट-मिशन यहां भेजा गया और ब्रिटिश सरकारने भारतसे हट जानेकी प्रसिद्ध घोषणा की। यदि सचमुच ऐसा है, तो उन्हें कांग्रेसके हाथमें सत्ता सौंपनेमें कोई मुश्किल नहीं होनी चाहिये। परन्तु जहां तक मेरा अपना सम्बन्ध है, वे कांग्रेसकी उपेक्षा करके लीगको सत्ता सौंपनेके लिए स्वतंत्र हैं। उस स्थितिमें वे हिंसाकी शक्तिके सामने झुकेंगे, क्योंकि लीग हिंसामें ही विश्वास रखती है । तब हम अपनी अहिंसाको लीगकी हिंसाके विरुद्ध भी खड़ी करेंगे। अहिंसा केवल अंग्रेजोंसे ही कड़नेके लिए नहीं थी । इसका प्रयोग और क्षेत्र सर्वव्यापक है। हम किसीका रक्त बहाये बिना अपना ही निर्दोष रक्त बहा कर लीगसे निबट लेंगे और हमारी विजय होगी।"

समाजवादी : "आपकी स्थिति बिलकुल तर्कपूर्ण और सुसंगत है। आपने १९४२ में कहा था कि ब्रिटिश सत्ताको तुरन्त और बिना शर्त भारतसे हट जाना चाहिये। आप बदले नहीं हैं। इसमें हम पूरी तरह आपके साथ हैं। परन्तु कांग्रेसियोंका एक बड़ा वर्ग आज ब्रिटिश सत्ताके साथ मिल कर काम करनेकी दृष्टिसे सोचने लगा है।"

गांधीजी : "आप ठीक कहते हैं। मैं नहीं बदला हूं। मैं तभी बदलूंगा जब मैं अपनी गलती समझ लूंगा। लेकिन मैं अपनी कोई गलती नहीं देखता । इसके विपरीत, हर नये अनुभवके साथ मैं अपने मतमें दृढ़से दृढ़तर होता जा रहा हूं।"

समाजवादी : "देशी राज्योंके प्रश्न पर आपका क्या रुख है ?"

गांधीजीने उनसे कहा: कांग्रेसकी कुछ भी नीति रही हो, मैं स्वयं अब तक देशी राज्योंको बनाये रखनेके पक्षमें रहा हूं। परन्तु कुछ अर्सेसे मेरा रवैया इस सम्बन्धमें सख्त हो गया है। अंग्रेजोंने देशी राज्योंको सहिष्णुतापूर्वक रहने दिया है। कुछ बातोंमें उन्होंने राजाओंको बिलकुल अपनी मुट्ठीमें रखा था और कुछ बातोंमें उन्हें खुली छूट दे दी थी। यह सब अपने स्वार्थकी पूर्तिके लिए उन्होंने किया था। भारत छोड़नेसे पहले देशी राज्योंका प्रश्न निबटा देना उनका धर्म है। स्वाधीनताके बाद इस प्रश्नको निबटारेके लिए छोड़ देना घोर विश्वासघात होगा। उदाहरणके लिए, क्या निजामको यह छूट दी जा सकती है कि वे भारतके प्रति शत्रुतापूर्ण सिद्ध होनेवाली नीतिका अनुसरण करें अथवा अपने राज्यके भीतर भारी शस्त्रास्त्र बनानेके लिए कारखाने खड़े करें ? "हम राजाओंको नष्ट करना नहीं चाहते । वे शौकसे रहें। परन्तु अपनी प्रजाके सेवक बन कर रहें। . . . यदि अंग्रेज अप्रामाणिक नहीं हैं, तो उन्हें देशी राज्यों सहित सारे भारतसे हट जाना चाहिये और भारतके नकशेको अपरिवर्तित रहने देना चाहिये।"

समाजवादी : "हमारा क्या कर्तव्य है ?"

गांधीजी : "यदि आप लोग मेरे विश्लेषणसे सहमत हैं, तो आपको और जिन लोगों पर आपका प्रभाव है उन्हें भारतमें अहिंसाका वातावरण तैयार करनेमें मेरा साथ देना चाहिये । इस कार्यमें आपको साथ लेकर मुझे बड़ी खुशी होगी।

समाजवादी : "सारा देश आपके साथ है।"

गांधीजी : "हां, एक अर्थमें। लेकिन मेरे खयालसे 'सारे देश' में आप भी शामिल हैं। अब मुझे बताइये कि आपमें से कितने मेरे साथ हैं ? क्या अरुणा मेरे साथ है ? अशोक और अच्युत मेरे साथ हैं ? नहीं, आप नहीं हैं । कांग्रेस भी नहीं है । इसलिए मैं अपने रास्ते चलनेके लिए अकेला ही रह गया हूं, और मुझे इसमें सन्तोष है। अगर आप मेरे साथ चलनेका फैसला करते हैं, तो उसका मतलब मैं यह समझूंगा कि आपने किसीको मारे बिना स्वयं मरनेकी प्रतिज्ञा कर ली है और इस सिद्धान्तका परित्याग कर दिया है कि साधन कुछ भी हों, साध्य अच्छा होना चाहिये। जयप्रकाश, अरुणा, अच्युत और दूसरे लोगोंने १९४२ में जो जो काम किये, उनकी मैं प्रशंसा करता हूं। उन्होंने अपने प्राणोंके साथ खेलनेकी भी परवाह नहीं की। मैं उनकी निर्भयता और साहसकी प्रशंसा कर चुका हूं। परन्तु अब आपको वह ऊंचे दर्जेकी

हिम्मत अपनेमें पैदा करनी होगी, जिसकी किसीको मारे बिना स्वयं मरनेमें जरूरत होती है। उस आन्दोलनमें तोड़फोड़की गुंजाइश नहीं होती। आप शायद मुझसे सहमत न हों, परन्तु मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि बिहारके आम लोगोंको १९४२ में जो पाठ आपने पढ़ाया वह यदि न पढ़ाया होता, तो पिछले साल बिहारमें जो जुल्म होते देखे गये वे कभी न होते । मेरे लिए यह सन्तोषकी बात नहीं है कि जो लोग तोड़फोड़के कार्यक्रमके पुरस्कर्ता थे, उन्होंने खुद हिंसामें प्रत्यक्ष भाग नहीं लिया। उन्हें जानना चाहिये था कि एक बार जब हिंसाकी राक्षसीको मुक्त कर दिया जाता है तो उसका स्वभाव ही ऐसा है कि न तो फिर उसे रोका जा सकता और न किसी निश्चित मर्यादाके भीतर रखा जा सकता। सभी प्रकारकी हिंसाकी अनिवार्य प्रवृत्ति अति करनेकी होती है। इसलिए मैं फिर कहता हूं, और आखिरी सांस तक बार-बार कहता रहूंगा, कि हमारा काम लोगोंमें केवल निर्दोष कष्ट-सहन तथा आत्मत्यागकी भावना बढ़ाना है, न कि इसके विपरीत कोई काम करनेकी दिशामें उन्हें ले जाना ।

"मैं कलकत्ता जा रहा हूं। कुछ लोग मुझे वहां न जानेकी बात समझानेका प्रयत्न कर रहे हैं। वे कहते हैं कि वहां तो नोआखालीसे भी ज्यादा बुरी हालत है; और मुझे वहां ऐसे बदमाशोंसे पाला पड़ेगा, जो कुछ भी नहीं समझते। मैं उनसे कहता हूं कि इसी कारण तो मैं कलकत्ता जाना चाहता हूं। अगर ऐसा करते हुए मृत्यु आ जाती है, तो मैं उसका स्वागत करूंगा । ७८ वर्षके इस शरीरका इससे अधिक सदुपयोग और क्या हो सकता है ? मेरी मृत्युसे भ्रातृवध तुरन्त रुक जायगा।

"यदि आप लोग मेरे साथ सम्मिल्त होते हैं, तो आप सब चोटीके लोगोंको मेरे साथ मौतका सामना करनेके लिए मैं बुलाऊंगा । मेरा कोई दल नहीं है। परन्तु फिर आप ही मेरा दल बन जायंगे। आप पैदा हुए उससे बहुत पहले मैं समाजवादी था। आप बातें करनेवाले समाजवादी हैं। आपका आदर्श तो यह है कि भारतमें सबके पास मोटर-कार और बंगला हो। जब तक ऐसा नहीं होता तब तक आप आजकी तरह अपना कोई भी आराम छोड़े बिना जीते रहेंगे। इसके विपरीत, मेरा विश्वास यह है कि गरीबसे गरीब और छोटेसे छोटे आदमीके स्तर पर मैं अभी और यहीं जीवन जीने लगूं। मेरा समाजवाद आजका नहीं है। मैं तो जब दक्षिण अफ्रीकामें था तभीसे मैंने समाजवादी जीवन आरम्भ कर दिया था। तब भी तथाकथित मजदूर-दलीय समाजवादी लोग मेरे पास आया करते थे और मुझे अपने दलमें शरीक होनेके लिए कहते थे। परन्तु वे खुद मेरे ही दलमें शरीक हो गये, क्योंकि उन्होंने देख लिया कि सच्चे समाजवादका आधार अहिंसा ही हो सकती है।

"अगर आप मुझसे यह कहें कि आपका अन्तिम ध्येय तो अहिंसा है, परन्तु उसकी पूर्तिक लिए आपको हिंसक साधन इसलिए काममें लेने पड़ते हैं कि इस व्यावहारिक दुनियामें दूसरा कोई मार्ग नहीं है, तो मैं कहूंगा कि आप बड़े भ्रममें पड़े हुए हैं। इस प्रकार तो क्या जिन्ना भी अहिंसाके पुजारी होनेका दावा नहीं कर सकते, क्योंकि इस्लाममें स्पष्ट कहा गया है कि जो कमजोरको सताता है वह मुसलमान नहीं है ? परन्तु आप देखिये, यह चीज ऐतिहासिक इस्लामको कहां ले गई है ? जब आप एक बार हिंसाकी बाढ़को रोकनेवाले द्वार खोल देते हैं, तब उसे आप अंकुशमें नहीं रख सकते। वह आपको अपने आगे बढ़नेवाले ज्वारमें बहा ले जायगी। इसलिए मुझे आपसे एक ही बात कहनी है: १९४२ में जो निर्भयता आपका विशिष्ट लक्षण थी, उसे अंतिम परिणाम तक पहूंचा दीजिये। यही उसका उपयुक्त समय है। यदि आप इस समयको हाथसे निकल जाने देंगे, तो फिर कभी यह लौट कर नहीं आयेगा । दूसरोंको मारे बिना स्वयं मरनेकी कला सीख कर आप भारतके भाग्यको सुन्दर आकार दे सकते हैं। और कोई रास्ता इसका नहीं है।

परन्तु समाजवादी मित्रों पर उस समय 'नई अहिंसा' अथवा तोड़फोड़के तत्त्वज्ञानका गहरा जादू था। उनके युवकोचित अति-उत्साहको वह अपील करता था। वे गांधीजीके भीतरके निर्भय योद्धाके तो भक्त थे, परन्तु आत्म-संयमके आह्वानका उन पर कोई असर नहीं हुआ; जब कि गांधीजीकी युद्ध-प्रणालीमें आत्म-संयम परम आवश्यक था। उन्होंने गांधीजीके उद्गारोंमें अपनी योद्धावृत्तिके अनुकूल जितना था उतना ले लिया ।

समाजवादी : "क्या हम आपकी स्थितिका सार यह समझ सकते हैं कि अंग्रेज भारतको भगवानके भरोसे छोड़ कर तुरन्त बिना किसी शर्तके चले जायं ? "

गांधीजी : "आप मेरी स्थितिको इस तरह रख सकते हैं। और अगर इसका परिणाम अराजकता हो, तो उससे हमें डर नहीं जाना चाहिये । इस अग्नि-परीक्षामें से हम और भी बलवान होकर बाहर निकलेंगे।"

परन्तु गांधीजीके हृदयको दुःख हुआ। जैसे नोआखालीके उत्पातके समय उन्हें चटगांव शस्त्रागार पर धावा करनेवाले आतंकवादियोंके बारेमें अनुभव हुआ था, वैसे ही उन्होंने इस समय फिर

देखा कि परम्परागत बहादुरी उसके पुजारियोंके सामने संकट आने पर किसी कामकी नहीं होती। कांग्रेसी समाजवादी कौमी आगको बुझानेके लिए या बुझानेके प्रयत्नमें मिट जानेके लिए उसमें कूद पड़नेको तैयार नहीं थे। गांधीजीने समझ लिया कि साम्प्रदायिक पागलपन और उसके अनिवार्य परिणाम – विभाजन – के विरुद्ध उन्हें अकेले ही युद्ध करना होगा।

१ जून, १९४७ के 'हरिजन' में गांधीजीने लिखा: १०० वर्षकी गुलामीका अंत होने तथा स्वतंत्रताके आगमनके साथ भारतीय समाजकी सारी दुर्बलताएं ऊपर आने ही वाली हैं। परन्तु इसमें मुझे घबरानेकी कोई बात नहीं मालूम होती। "यदि ऐसे समय हम अपना आत्म-संतुलन बनाये रखेंगे, तो हरएक गुत्थी सुझ जायगी।" यह एक पौरुषयुक्त और तर्कपूर्ण स्थिति थी, जिसे कमसे कम सेनानायक वाइसरॉय तो समझ ही सकते थे और उसका आदर कर सकते थे। परन्तु इस मामलेमें गांधीजी बिलकुल अकेले थे। केवल अब्दुल गफ्फार खां उनके साथ थे। और लॉर्ड माउन्टबेटन इसे जानते थे। गांधीजीके प्रति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद सबसे अधिक वफादार थे, परन्तु वे भी पूरी तरह गांधीजीके साथ नहीं हो सके। एक अखबारी मुलाकातमें गांधीजीने कहा: "यदि भारतका विभाजन ही होना है, तो वह अधिकसे अधिक पूर्ण होना चाहिये और उसमें पंजाब और बंगालका विभाजन भी शामिल होना चाहिये, ताकि किसी विरोध या संघर्षके लिए कोई गुंजाइश बाकी न रहे।" और, "यदि उसमें सेनाके बंटवारेकी भी आवश्यकता हो, तो वह भी हो जाना चाहिये; और यह बंटवारा जितना जल्दी हो जाय उतना ही अच्छा।?"

माउन्टबेटन कोई गगन-विहारी परोपकार-परायण व्यक्ति नहीं थे, जो काल्पनिक बातोंमें आकर ऐसा कोई मार्ग ग्रहण करते जो उनकी व्यावहारिक राजनीतिकी दुनियामें अव्यावहारिक समझा जाता, जिसे मुस्लिम लीग नहीं चाहती, जिससे कांग्रेस बचना चाहती और जिसके लिए उनकी अपनी सरकार उन्हें कोई धन्यवाद न देती; क्योंकि उसमें भारतीय दलोंमें से एक या दोनोंके राष्ट्र-मंडलसे बाहर निकल जानेका खतरा रहता और यह भी उस समय जब कि उनके सामने ऐसा हल निकालनेकी उज्ज्वल संभावना थी, जिससे भारतीय दल एक तरहसे राष्ट्र-मंडलमें ही रहनेके लिए एक-दूसरेसे होड़ करने लगते। माउन्टबेटनने पहले ही हिसाब लगा लिया था कि "लगभग आधे भारतवासियोंके" प्रतिनिधियोंने "राष्ट्र-मंडलके भीतर रहनेकी इजाजत मांगी थी।" इनमें मुस्लिम लीग, अनुसूचित जातियां और राजा लोग तो थे ही, जो भारतमें ब्रिटिश सत्ताके तीन परम्परागत स्तंभ थे और जिन्हें इस कामके लिए ब्रिटिश

शासकोंने जान-बूझ कर सावधानीपूर्वक पीढ़ियोंसे तैयार किया था। माउन्टबेटन यह पूछनेकी स्थितिमें थे कि क्या इन दलोंका यह खयाल है कि राष्ट्र-मंडलके भीतर रहनेकी इच्छा प्रकट करके वे "ग्रेट ब्रिटेन पर कोई अहसान कर रहे हैं!" [वही, पृ. ७०]

अपनी बातचीतके शुरूमें ही जिन्नाने माउन्टबेटनसे कह दिया था कि आप पाकिस्तानकी मेरी योजनाकी हिमायत करेंगे, तो मैं पाकिस्तानको राष्ट्र-मंडलमें ले आऊंगा। गांधीजीने वाइसरॉयको यह चेतावनी दे दी थी कि अगर ग्रेट ब्रिटेन मजबूर होकर भारतके एक भागको दूसरे भागके विरुद्ध इस कारण सहायता देगा कि ग्रेट ब्रिटेनका दोनों भागोंके साथ भिन्न प्रकारका सम्बन्ध है, तो वह खतरा मोल लेगा। वाइसरॉयके बारेमें यह जानी हुई बात थी कि वे इस विचारके प्रबल पक्षपाती थे कि ब्रिटिश भारत सारा ही राष्ट्र-मंडलमें रहे, उसका कोई एक भाग राष्ट्र-मंडलमें न लिया जाय । परन्तु वाइसरॉयके कर्मचारी-मंडलके एक वर्गका यह दृढ़ मत था कि "नैतिक और भौतिक दोनों कारणोंसे भारतके किसी भागको-जो राष्ट्र-मंडलमें रहनेकी मांग करता हो – बाहर रखना वस्तुत: असंभव होगा" और सही बात तो यह है कि "सारे भारतका न हो तो एक भागका भी ब्रिटेन समर्थन करेगा तभी गृहयुद्धको टाला जा सकेगा।" यह भी दलील दी गई थी कि "पाकिस्तानको बाहर रखनेसे मध्यपूर्वसे लेकर सारे मुस्लिस समूह (ब्लॉक) के साथके सम्बन्ध खतरेमें पड़ जायंगे।" [वही, पृ. ८१]

अब रह गई कांग्रेस । अप्रैल १९४७ के उत्तरार्द्धमें जब सरदार पटेलको अंग्रेजों और मुस्लिम लीगके गुटके षड्यंत्रोंसे बहुत चिन्ता हो रही थी तब उन्हें बताया गया था कि अगर कांग्रेस अन्तरिम व्यवस्थाके रूपमें औपनिवेशिक स्वराज्यका दर्जा स्वीकार कर ले, तो अंग्रेजोंके भारतसे हटनेकी तारीखके बारेमें अटकल लगाई जा सकती है। इससे अंग्रेजोंके साथ सौदा करनेकी मुस्लिम लीगकी शक्ति भी छिन जायगी। मालूम होता है कि यह गोली निशाने पर लग गई। १ मईको वाइसरॉयके सचिवने खबर दी कि सरदार पटेल फिलहाल औपनिवेशिक स्वराज्यका दर्जा स्वीकार करनेको तैयार हैं। परन्तु अधिकृत रूपमें कांग्रेस संविधान-सभाके प्रभुसत्ताधारी स्वाधीन गणतंत्रवाले निश्चयसे बंधी हुई थी। इसने ब्रिटिश सरकारको बहुत परेशान नहीं किया। उसने चतुराईसे यह अनुमान लगा लिया कि इस कठिनाई पर विजय पानेके लिए केवल एक "लाज रखनेवाली योजना" कांग्रेसके सामने रखी जाय। अन्तमें कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओंकी – जो ऊंट निगल जानेके बाद मच्छरको निगलने पर नाक-भौं सिकोड़

रहे थे – अंतरात्माकी रक्षाके लिए "सम्राट्" और "साम्राज्य" शब्दको छोड़ कर वह योजना खोज ली गई।

कांग्रेसकी कार्यसमितिने सिद्धान्तके रूपमें विभाजनको स्वीकार करनेका निश्चय कर लिया उसके दो दिन बाद गांधीजीने डॉ. राजेन्द्रप्रसादके साथ बातचीत करते हुए कुछ विचार प्रकट किये, जो ताजी घटनाओंके कारण उन्हें अशान्त कर रहे थे। अपनी आदतके अनुसार उन्होंने बाहरकी घटनाओंको आंतरिक दृष्टिसे समझा कर कहा: "मुझे स्वीकार करना पड़ता है कि हमारी आजादीकी लड़ाई शुद्ध अहिंसा पर आधारित नहीं थी। यदि सारे कांग्रेस-जन सच्ची अहिंसाकी शर्तें ईमानदारीसे पूरी करते, तो आज हम अपनेको इस भयंकर अराजकताकी स्थितिमें न पाते। मुझे अधिकाधिक स्पष्ट होता जा रहा है कि जिसे हम अहिंसक लड़ाई मानते थे, वह वास्तवमें अहिंसक नहीं थी। अन्यथा सम्प्रदायवाद हमारे बीच अपना सिर न उठाता; अस्पृश्यता भूतकालकी वस्तु बन जाती; और अमीर-गरीब दोनों बिना किसी भेदभावके समान रूपसे शरीर-श्रम करते। ईर्ष्या, द्वेष और व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा हमारी भीतरी राजनीतिकी शकल न बिगाड़ देते। आज इतनी देर हो जाने पर भी यह पता लगाना हमारा कर्तव्य है कि हमने कहां गलती की है और हमें अपने कदम वापस हटा लेने चाहिये। जब तक विशुद्ध सत्य और अहिंसाका दीपक हमारे भीतर नहीं जलेगा तब तक हमें पूर्ण स्वराज्य प्राप्त नहीं हो सकेगा। . . . परन्तु आज तो सर्वत्र अधिक सेना और अधिक पुलिसकी ही पुकार उठ रही है।"

कुछ देर रुक कर गांधीजी फिर कहने लगे : "अहिंसाकी तालीमका यह तकाजा है कि हम मौतका डर बिलकुल छोड़ दें और अपनी सम्पत्ति, अपने परिवार – अपने सर्वस्वका त्याग करनेकी तैयारी रखें। दूसरे शब्दोंमें, हम गीतामें बताये गये आत्मत्यागके शिखर पर पहूंचें। अहिंसाके पुजारीको केवल ईश्वरसे ही डरना चाहिये और आत्माकी अमरतामें विश्वास रखना चाहिये । ऐसी अहिंसा मुंहसे नहीं सिखाई जा सकती। वह अनुभवकी शालामें ही विकसित और प्रमाणित की जा सकती है। हमारी अहिंसाकी परीक्षा हो गई और उसमें वह सफल नहीं हुई, अन्यथा कांग्रेसके तमाम चार आनेवाले सदस्य या तो मर जाते या अपने पड़ोसियोंके हत्याकांडको रोकनेमें लगे रहते; अपनी मां, पत्नी या बहनको बलात्कारके खतरेमें छोड़ कर वे कायरोंकी तरह अपनी सलामती नहीं खोजते । कायरताकी ऐसी कहानियां सुन कर मेरा सम्पूर्ण व्यक्तित्व कांप उठता है। . . . आज चारों ओर जो झूठ, दम्भ और धोखेबाजी चल रही है, उसके चलते हुए जीवित रहनेकी अब मेरी इच्छा नहीं है।"

राजनीतिक स्थितिमें दिनोंदिन तनाव बढ़ रहा था। इसका और बढ़ते हुए साम्प्रदायिक पागलपनका गांधीजीके मन पर बहुत भारी बोझ था। इसके परिणाम-स्वरूप उनका रक्तचाप आम तौर पर ऊंचा रहने लगा। परन्तु आशावाद उनकी श्रद्धाका अविभाज्य अंग था। जब उनसे पूछा गया कि क्या हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीचकी खाई स्थायी है और क्या वह पाटी नहीं जा सकती, तो उन्होंने जवाब दिया: "ऐसी कोई बात नहीं है; क्योंकि इसका तो यह अर्थ होगा कि दोनों धर्मोंमें से किसीमें भी कोई सत्य नहीं है।"

गांधीजीने यह आशा छोड़ी नहीं थी कि अभी भी अंग्रेज अवसरके अनुसार काम करेंगे। एक फ्रांसीसी मित्रके साथ बात करते हुए उन्होंने कहा : "मैं अंग्रेजोंके चरित्रका प्रशंसक हूं। यदि वे भारतके साथ न्याय करेंगे, तो संसारका नैतिक नेतृत्व उनके हाथमें रहेगा और अंग्रेजोंकी प्रतिष्ठा उनके विश्वव्यापी साम्राज्यके दिनोंसे भी अधिक ऊंची हो जायगी। फिर दुनिया उनसे सयानी सलाह लेने जायगी। यह विशेषाधिकार उन्हींको प्राप्त हो। मैंने उनके लिए कभी 'विश्वासघाती अंग्रेज' विशेषणका उपयोग नहीं किया है। . . . अंग्रेजोंमें महान गुण हैं।"

३

गांधीजीकी प्रार्थना-सभाओंमें लोगोंकी भीड़ इस बार पहलेसे भी अधिक रहती थी। परन्तु लोगोंके दिलोंमें दुःख और कसक भी अधिक थी। उनमें से बहुतोंने जो व्यक्तिगत कष्ट सहन किये थे, उनके कारण उनमें कटुता आ गई थी। कोई दिन ऐसा नहीं जाता था जब प्रार्थनामें कुरानकी आयतोंका पाठ आरम्भ होते ही श्रोताओंमें से कोई न कोई उठकर उसका विरोध न करता। प्रार्थना-सभाएं बन्द कर देनेका मतलब होता बुराईके सामने झुकना। उधर कुरानकी आयतोंका पाठ चालू रखनेसे आपत्ति करनेवालोंके साथ हिंसा होती । उनकी संख्या हमेशा थोड़ी होती थी । किन्तु समय कठिन था और गांधीजीको अत्यधिक सावधान रहना पड़ता था। इसलिए उन्होंने निश्चय किया कि कुरानकी आयतोंका पाठ यदि न करने दिया जाय, तो सम्पूर्ण प्रार्थना ही बन्द रखी जाय। उनकी प्रार्थना अविभाज्य थी। यह नहीं हो सकता था कि उसका एक अंश तो बोला जाय और एक अंश छोड़ दिया जाय। इससे विशाल बहुमतको बड़ी निराशा हुई। गांधीजीने इसका उपयोग भी लोगोंको यह सिखानेमें किया कि वे आपत्तिकर्ता या आपत्तिकर्ताओं पर आनेवाले समझमें आने लायक क्रोध पर नियंत्रण रखें; इसका

उपयोग वे लोगोंको रोज अनुशासन तथा सहिष्णुताका सबक सिखानेमें भी करते थे – ये गुण सच्ची प्रार्थनासे ही मनुष्यमें पैदा होते हैं।

गांधीजीने आपत्तिकर्ताओंको समझाया और पूछा : इन आयतोंमें ऐसी क्या बात है, जिस पर आपको आपत्ति है? फिर उन्होंने लोगोंको आयतोंका अनुवाद करके सुनाया :

शैतानसे बचनेके लिए मैं ईश्वरकी शरण लेता हूं।

हे ईश्वर ! मैं हर कार्य तेरा नाम याद करके आरंभ करता हूं।

तू दयालु और क्षमावान है।

तू विश्वका स्त्रष्टा है।

तू प्रभु और स्वामी है।

मैं केवल तेरी ही स्तुति करता हूं और तेरी ही सहायता चाहता हूं।

तू कयामतके दिन सबका इन्साफ करेगा।

मुझे सही मार्ग दिखा, वह मार्ग जिस पर सन्त चले हैं,

ना कि वह गलत मार्ग जो तुझे बुरा लगता है।

ईश्वर एक है।

वह नित्य है, सर्व-शक्तिमान है, अजन्मा है।

उसके समान दूसरा कोई नहीं है।

उसने सब वस्तुएं उत्पन्न की हैं; उसे किसीने उत्पन्न नहीं किया है।

लोगोंने इस अनुवादको बड़े ध्यानसे सुना । इससे भी बड़ी बात यह थी कि हिन्दुस्तानी अनुवाद पर किसीने आपत्ति नहीं की। परन्तु ज्यों ही आयतोंका अरबी पाठ शुरू हुआ कुछ लोग आपत्ति करने लगे। गांधीजीने धीरजसे इस आपत्तिके पीछे रही व्यर्थकी नादानी लोगोंको समझानेका प्रयत्न किया। उन्होंने कहा: यह एक महान प्रार्थना है। इसका एक-एक शब्द आपके हृदयोंमें अंकित हो जाय, तो आपका उत्थान होगा और आप ज्यादा अच्छे मानव बनेंगे। मैं नहीं मानता कि बंगाल और पंजाबमें कुछ

धर्मान्ध मुसलमानोंने दुष्कृत्य किये इसी कारण कुरान बुरा हो गया। बिहारमें हिन्दुओंने पागलपन किया। तो क्या इससे गीताकी महत्ता नष्ट हो गई ? मैं कदाचित् आपके इस संकोचको समझ सकता हूं कि आप अपराधी मुसलमानोंको अपने घरोंमें न आने दें। धर्मकी आंतरिक वृत्तिके तो यह भी बिलकुल विरुद्ध है। सब धर्म मनुष्योंको सिखाते हैं कि अपने शत्रुओंसे प्रेम करो। इसलिए किसी भी धर्मग्रन्थका, उस धर्मके अनुयायियोंके प्रति अपने हृदयोंमें द्वेष भरा होनेके कारण, पाठ न करना सभी सच्चे धर्मोंसे इनकार करना है। इससे हिन्दू धर्मकी रक्षा नहीं होगी, बल्कि उसका विनाश ही होगा।

*

कांग्रेस कार्यसमिति द्वारा भारतके विभाजनको स्वीकार कर लेनेसे गांधीजीका यह विचार पक्का हो गया कि उनका अपना स्थान दिल्लीके बजाय बिहार और नोआखालीमें है। स्वाधीनता एक भ्रम सिद्ध होगी, यदि इस बीच लोगोंने एक-दूसरेके साथ शान्तिपूर्वक रहना न सीखा। स्थानीय कार्यकर्ताओंकी एक मंडलीसे, जो उनसे मिलने आई थी, गांधीजीने कहा: "मैं तो उस पाकिस्तानका अर्थ बिलकुल नहीं समझ सकता, जिसकी स्थापनाके लिए निर्दोष लोगोंके रक्तकी नदियां बहानेकी जरूरत हो।"

वह अत्यन्त कष्टप्रद दिवस था। कलकत्तासे छन-छना कर अशान्तिकारक समाचार आये थे। वहांकी स्थिति तेजीसे बिगड़ रही थी। डेरा इस्माइल खांसे कुछ पठान आये और मुस्लिम लीगने वहां अराजकताका जो तांडव नृत्य खेला था उसका हाल रो रोकर सुनाया। ५ मईको गांधीजीने पं. नेहरूसे बातें कीं। इससे उन्हें लगा कि शायद कुछ दिनके लिए उन्हें कलकत्ता जाना पड़ सकता है।

गांधीजी और जिन्ना दोनोंको उस दिन माउन्टबेटनने क्रमसे मिलनेके लिए बुलाया। लेकिन संयोगवश वाइसरॉय-भवनमें दोनों एकसाथ हो गये। दोनोंकी उपस्थितिका लाभ उठाकर माउन्टबेटनने दोनोंको अपनी हाजिरीमें मिलानेकी व्यवस्था की। उसके फलस्वरूप गांधीजी जिन्नाके घर उस दिन शामको फिर उनसे मिले।

गांधीजीका पत्र लॉर्ड माउन्टबेटनको,

८ मई, १९४७

मैंने पिछले मंगलवारको कायदे आजम जिन्नाके साथ पौने तीन घंटेका समय बड़े आनन्दमें बिताया। हमने अहिंसा-सम्बन्धी सम्मिलित वक्तव्यके बारेमें बातचीत की। वे अहिंसा पर अपने विश्वासमें सुखद रूपसे दृढ़ थे। उन्होंने अपने अखबारी वक्तव्यमें, जिसका मसौदा उन्हींने बनाया था, उसे दोहराया है।

पाकिस्तान और देशके विभाजनके बारेमें भी हमने बातें कीं। मैंने उनसे कहा कि पाकिस्तानके प्रति मेरा विरोध पहलेकी तरह अब भी बना हुआ है और सुझाया कि अहिंसामें विश्वास होनेकी उनकी घोषणाको देखते हुए उन्हें अपने विरोधियोंके विचार समझा-बुझा कर, न कि बल-प्रदर्शनसे, बदलनेकी कोशिश करनी चाहिये। किन्तु इस बारेमें वे बिलकुल दृढ़ थे कि पाकिस्तानका प्रश्न चर्चाके लिए खुला नहीं है। **परन्तु तर्ककी दृष्टिसे अहिंसामें श्रद्धा रखनवालेके लिए कोई भी बात, ईश्वरके अस्तित्वकी बात भी, चर्चाके क्षेत्रसे बाहर नहीं हो सकती** । (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

सरदार पटेल गांधीजीके जिन्नासे मिलने जानेके विरुद्ध थे, क्योंकि इससे जिन्नाकी प्रतिष्ठा बढ़ती थी। दूसरे बहुतसे लोगोंका भी यही खयाल था। परन्तु गांधीजीने कहा: मैं जिन्नाको समझानेके लिए एक बार नहीं, जरूरत हुई तो पचास बार भी उनसे मिलूंगा। नम्रता कभी हानि नहीं पहूंचा सकती। उससे हमारे ध्येयकी प्रगति ही हो सकती है। मेरा यह भी खयाल नहीं है कि जिन्नाके पास जानेसे मैंने कुछ खोया है, क्योंकि जाकर मैंने राजनीतिक उद्देश्योंकी प्राप्तिके लिए हिंसाका प्रयोग न करनेकी उनकी प्रतिज्ञाको फिरसे जिन्नाके मुंहसे कहलवा दिया है।

७ मईको अपने प्रार्थना-प्रवचनमें जिन्नाके अखबारी वक्तव्यकी टीका करते हुए गांधीजी बोले : "जो लोग पाकिस्तान चाहते हैं उनसे घुटने टेक कर मैं प्रार्थना करता हूं कि वे मुझे यह समझा दें कि पाकिस्तान भारतके लाभके लिए है। वे अपनी बात लोगोंके सामने रखें और उन्हें समझायें कि इससे उनका क्या लाभ होगा। यदि वे उनकी बुद्धिको प्रभावित कर सकें, तो बहुत अच्छी बात है। लेकिन वे समझ लें कि ताकत दिखाकर वे एक इंच जमीन भी नहीं ले सकेंगे।"

उन्होंने आगे कहा : कांग्रेस कार्यसमितिनें एक तरहसे पाकिस्तानको मान लिया है, परन्तु उसकी मांग यह है कि भारतका बंटवारा यदि हो तो बंगाल और पंजाबके हिन्दू बहुमतवाले क्षेत्र उससे बाहर रखे जायं। मैं तो इसके भी विरुद्ध हूं। भारतके अंग-भंगके विचारमात्रसे मुझे कंपकंपी छूटती है। परन्तु इस विचारवाला मैं अकेला ही रह गया हूं। मैंने जिन्नासे साफ साफ कह दिया है कि भारतके अंग-भंगमें मैं भाग नहीं ले सकता और विभाजनकी किसी योजना पर मैं अपने हस्ताक्षर नहीं करूंगा।

यदि कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओंने भी गांधीजीकी तरह ही दृढ़ निश्चय दिखाया होता और उस समय तक पाकिस्तानके आधार पर ब्रिटिश सत्तासे बातचीत करनेसे इनकार कर दिया होता जब तक शान्तिकी सम्मिलित घोषणाके अनुसार और स्वयं ब्रिटिश सरकारकी 'ताकतके सामने झुककर कोई चीज नहीं दी जायगी' वाली घोषणाके अनुसार देशमें फिरसे शान्ति स्थापित न हो जाय, तो पाकिस्तानके प्रश्नका निबटारा बुद्धिको अपील करके ही होता। जब गांधीजीने लॉर्ड माउन्टबेटनके सामने केन्द्रमें सरकार बनानेके लिए लीगको आमंत्रित करनेकी अपनी योजना रखी तब उनका यही ध्येय था। परन्तु कांग्रेसके वरिष्ठ नेता उतना दृढ़ नैतिक रवैया नहीं अपना सके। नतीजा यह हुआ कि उनके पैरों तलेसे जमीन खिसकती गई। माउन्टबेटनसे यह आशा नहीं रखी जा सकती थी कि वे स्वयं कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओंसे भी अधिक सूक्ष्म दृष्टि इस मामलेमें रखें।

७ मईको गांधीजी कलकत्ता चले गये। बादशाह खान उन्हें रेलवे स्टेशन पर बिदा करने गये थे। बिदाईके समय गद्गद स्वरमें बादशाह खान बोले : "महात्माजी, मैं तो आपका सिपाही हूं । आपका शब्द मेरे लिए कानून है। मुझे आपमें पूरी श्रद्धा है। मुझे और किसीके सहारेकी जरूरत नहीं।"

पिछली रातको बादशाह खानकी तबीयत अच्छी न होने पर भी वे साढ़े दस बजे तक जागते रहे। जब उनसे कहा गया कि आप अपने पर बहुत जोर न डालें, तो वे दुःखके साथ बोले : "थोड़े ही दिनोंमें हम हिन्दुस्तानमें पराये हो जायंगे। हमारी आजादीकी लम्बी लड़ाईका अन्त यह होगा कि हम पाकिस्तानके मातहत हो जायंगे – बापूसे, भारतसे और आप सबसे दूर हो जायंगे। कौन जानता है, भविष्यमें हमारा क्या होगा ?" जब गांधीजीने उनके इन उद्गारोंके बारेमें सुना तो वे बोले : "सचमुच बादशाह खान फकीर हैं। स्वाधीनता आयेगी, लेकिन बहादुर पठानोंकी आजादी चली जायगी। उनके सामने भयंकर भविष्य है। परन्तु बादशाह तो ईश्वरके आदमी हैं।"

*

गांधीजी इस बारेमें जितना अधिक सोचते थे उतना ही उन्हें लगता था कि यह एक ऐसा गलत कदम उठाया जा रहा है, जिसके लिए अन्तमें सभीको भारी कीमत चुकानी होगी। उन्होंने आनेवाली विपत्तिको टालनेके लिए एक और प्रयत्न करनेका निश्चय किया। लॉर्ड माउन्टबेटनको उन्होंने एक व्यक्तिगत पत्र लिखा और उसे रास्तेके एक स्टेशनसे डाकमें डाला :

गांधीजीका पत्र लॉर्ड माउन्टबेटनको,

८ मई, १९४७

मुझे यह बात सूझ रही है कि गत रविवारकी मुलाकातमें मैंने जो कुछ कहा, मैं जो कुछ कहना चाहता था और समयाभावके कारण जो कुछ मैंने अधूरा छोड़ दिया था, उसका सार मुझे आपके सामने रख देना चाहिये।

१. इसके विपरीत कुछ भी क्यों न कहा जाय, अंग्रेजोंके लिए किसी भी तरह भारतके विभाजनका समर्थन करना प्रथम श्रेणीकी गलती होगी। विभाजन होना ही हो तो वह ब्रिटिश लोगोंके चले जानेके बाद हो और दोनों दलोंके आपसी समझौतेसे हो या सशस्त्र संघर्षसे हो – जो कायदे आजम जिन्नाके मतानुसार निषिद्ध है। झगड़नेवाले पक्षोंके बीच मतभेद पैदा होनेकी हालतमें अल्पसंख्यक वर्गोंकी रक्षाकी गारंटीके लिए एक पंच-न्यायालयकी स्थापना की जा सकती है।

२. इस बीच अंतरिम सरकार या तो कांग्रेस-जनोंकी बने या कांग्रेस द्वारा पसन्द किये हुए लोगोंकी हो, या मुस्लिम लीगके आदमियोंकी अथवा उसके पसन्द किये हुए लोगोंकी हो। आजकी तरह दोहरा नियंत्रण, जिसमें सहयोगी कार्य और सहयोगकी भावनाका अभाव है, देशके लिए हानिकारक है। दोनों पक्ष अपने पदको बनाये रखने और आपको खुश करनेके प्रयत्नमें अपनी सारी शक्ति खर्च कर देते हैं। मिलकर काम करनेकी वृत्ति न होनेसे सरकारकी नैतिक शक्ति कम होती है और कर्मचारियोंकी ईमानदारीके लिए खतरा पैदा होता है, जो अच्छे और सक्षम शासनके लिए अत्यावश्यक है।

३. इस स्थितिमें सीमाप्रान्त (अथवा किसी भी प्रान्त) में जनमत-संग्रह अपने आपमें एक खतरनाक चीज है। आपके सामने जो स्थिति खड़ी हो, उसका सामना आपको करना ही होगा। कुछ भी हो, मुख्य मंत्री डॉ. खान साहबको अलग रख कर कोई बात नहीं करनी चाहिये और न हो सकती है। ध्यान रखें कि यह पैरा तभी संगत होगा जब विभाजनको स्वीकार किया जाय।

४. मुझे निश्चित रूपसे यह लगता है कि पंजाब और बंगालका विभाजन हर हालतमें गलत है और लीगको उससे खामखाह दुःख होगा। ये और दूसरे सारे परिवर्तन अंग्रेजोंके भारतसे हट जानेके बाद हो सकते हैं, पहले नहीं; आपसी समझौतेकी बात दूसरी है। जब तक ब्रिटिश सत्ता भारतमें काम कर रही है तब तक देशमें शान्ति बनाये रखनेकी मुख्य जिम्मेदारी उसकी मानी जानी चाहिये। मौजूदा तनावके कारण वह तंत्र टूटता नजर आता है; और तनाव पैदा होता है तरह तरहकी ऐसी आशाएं खड़ी कर देनेसे, जो पूरी नहीं की जा सकतीं या पूरी नहीं की जानी चाहिये। शेष तेरह महीनोंके समयमें उनके लिए कोई स्थान नहीं है। यह अवधि कम करके बहुत लाभ उठाया जा सकता है, यदि सबके मन अंग्रेजोंके भारतसे चले जानेके एकमात्र कार्यमें लग जायं। जहां तक देश पर अंग्रेजोंके अधिकारका सम्बन्ध है, आप अकेले ही दूसरे सब काम छोड़ कर यह कर सकते हैं।

५. समुद्री युद्धकलाके निर्विवाद स्वामीकी हैसियतमें आपका कार्य महान था, परन्तु जो कार्य आपको अब करना है उसकी तुलनामें वह कुछ भी नहीं था। जिस एकाग्रता और स्पष्टताने आपको उस महान कार्यमें सफलता दी, उससे बहुत अधिक एकाग्रता और स्पष्टताकी इस कार्यमें जरूरत है।

६. अगर आपको अपने पीछे अव्यवस्था और अराजकताकी विरासत छोड़ कर नहीं जाना है, तो आपको अपना चुनाव कर लेना होगा और सारे भारतकी – जिसमें रियासतें भी शामिल हों – सरकार एक दलको सौंप देनी होगी। संविधान-सभाको भारतके उस भागके शासनका भी प्रबन्ध करना है, जिसका प्रतिनिधित्व मुस्लिम लीग या कुछ देशी राज्य नहीं करते।

७. पंजाब और बंगालका विभाजन न होनेका यह अर्थ नहीं कि इन प्रान्तोंमें अल्पसंख्यकोंकी उपेक्षा की जायगी। दोनों प्रान्तोंमें उनकी इतनी संख्या और शक्ति है कि उन पर ध्यान देना ही होगा। यदि लोकप्रिय सरकारें उन्हें खुश त कर सकें, तो अन्तरिम कालमें गवर्नरोंको सक्रिय हस्तक्षेप करना चाहिये।

८. सार्वभौम सत्ताका हस्तांतरण न हो सकनेका सिद्धान्त दुष्टतापूर्ण है, यदि उसका अर्थ यह है कि राजा लोग प्रभुसत्ताधारी हो जायं और स्वाधीन भारतके लिए खतरा बन जायं। भारतमें अंग्रेजोंकी सत्ता जहां भी चलती हो वहां वह अपने आप उनके उत्तराधिकारीके हाथमें आ जानी चाहिये। इस प्रकार देशी राज्योंके लोग ब्रिटिश भारतके लोगोंके बराबर ही स्वाधीन भारतके अंग बन जायेंगे । आजके राजा-महाराजा कठपुतलियोंके जैसे हैं, जो ब्रिटिश सत्ताकी प्रतिष्ठा तथा पोषणके लिए ही उत्पन्न किये गये हैं या सहन किये जाते हैं। उन्हें अपनी प्रजा पर जो अनियंत्रित अधिकार प्राप्त हैं, वे शायद ब्रिटिश ताज पर लगे सबसे बुरे कलंक हैं। नई व्यवस्थामें राजाओंको उतनी ही सत्ता हो सकती है जितनी संरक्षकोंको हो सकती है और जितनी संविधान-सभा द्वारा दी जा सकती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वे निजी सेना या हथियारोंके कारखाने नहीं रख सकते। उनमें जो भी योग्यता अथवा राजनीतिज्ञता हो, वह गणतंत्रको अर्पण होनी चाहिये और उनकी प्रजा तथा सारी जनताकी भलाईके लिए उसका उपयोग होना चाहिये। मैंने इतना ही बताया है कि रियासतोंके बारेमें क्या करना चाहिये। इस पत्रमें यह बताना मेरा काम नहीं कि वह कैसे किया जा सकता है।

९. इसी प्रकार **सिविल सर्विसका प्रश्न कठिन तो है, परन्तु घबरा देनेवाला नहीं है**। उसके अधिकारियोंको अभीसे सिखाना चाहिये कि वे अपनेको नई व्यवस्थाके अनुकूल बना लें। **वे पक्षपाती बन कर किसीका पक्ष नहीं ले सकते। उनमें जरासा भी सम्प्रदायवाद पाया जाय, तो उनके साथ सख्तीसे पेश आना चाहिये। उनमें जो अंग्रेज लोग हैं उन्हें जान लेना चाहिये कि उनकी वफादारी पुराने शासन और ग्रेट ब्रिटेनके बजाय नये शासनके प्रति होनी चाहिये**। अपने आपको शासक समझने और इसलिए श्रेष्ठ माननेकी आदतके स्थान पर लोगोंकी सच्ची सेवाकी वृत्ति उनमें पैदा होनी चाहिये। (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

गांधीजीका विचार बिलकुल स्पष्ट था कि वाइसरॉयको उस नाजुक मौके पर क्या करना चाहिये। उनका कहना था कि वाइसरॉय ब्रिटिश सरकारके प्रतिनिधि हैं। उस सरकारका आग्रह आरक्षित अधिकारोंको अपने हाथमें रखनेका रहा है। सेना पूरी तरह उसीके नियंत्रणमें है। इसलिए समस्याका अंतिम हल होने तक कानून और व्यवस्थाका राज्य दृढ़तासे बनाये रखना उसका नैतिक उत्तरदायित्व है, चाहे कांग्रेसी नेताओंका यह आग्रह हो या न हो। यदि आजकी स्थितिमें यह काम ब्रिटिश साधनोंके बाहरकी बात हो, तो वाइसरॉयको तुरंत सम्राट्की सरकारको सलाह देनी चाहिये कि वह बिना शर्त भारतसे हट जाय और जो दल उसे ज्यादा पसन्द हो उसे सारे भारतकी – जिसमें रियासतें भी शामिल हों – सत्ता हस्तांतरित कर दे। दूसरा मार्ग यह है कि अन्तरिम सरकारको फिलहाल पूर्णांग औपनिवेशिक सरकार मान लिया जाय। यह सुझाव कुछ ब्रिटिश पत्रकारों और पत्रोंने भी दिया है। एक और विकल्प है। संविधान-सभा विद्यमान है और पूरी तरह भारतकी प्रतिनिधि-संस्था है। सत्ता उसे भी सौंपी जा सकती है। **इसके लिए तो भारतीय दलोंकी स्वीकृतिकी भी जरूरत नहीं है**। और वाइसरॉयकी सलाह पर – वह जैसी भी हो – यदि ब्रिटिश सरकार ध्यान न दे, तो मैं यहीं चाहूंगा कि माउन्टबेटन इस्तीफा दे दें। उन्हें ऐसा मौका नहीं आने देना चाहिये कि आजकी अधिकाधिक बिगड़ती हुई स्थितिमें देशका विभाजन एक छोटी बुराई दिखाई दे और वे स्वयं भारतकी एकताके बलिदानमें सहायक बनें – वह एकता जिसके बारेमें ब्रिटिश सत्ताने भूतकालमें अक्सर दावा किया है कि भारतकी एकता उसकी उच्चतम सिद्धि है।

यह मार्ग अपनाया जाता और ब्रिटिश हथियारोंके संरक्षणमें अराजकताका निर्माण न होने दिया जाता, तो यह निश्चित है कि गांधीजीका विरोध होते हुए कांग्रेसी नेता अंग्रेजोंके हाथों विभाजनकी बुराई कभी स्वीकार न करते । और यह कल्पना की जा सकती है कि जब काम बिगाड़नेके लिए तीसरा दल नहीं रहता तब भारतका "सामूहिक व्यक्तित्व" स्वयं दृढ़तासे आगे आता। तब जिन दुःखद घटनाओंने बादमें भारतको घेर लिया था वे टल जातीं, बशर्ते कि ब्रिटिश अधिकारी अन्त तक उन पर किये गये विश्वासके प्रति वफादार रहते और खुले तौर पर पक्षपातकी वृत्ति न अपनाते अथवा ऐसा कुटिल रवैया न रखते कि ब्रिटिश स्वार्थ खतरेमें न हों तब "दोनोंको जहन्नुममें जाने दो।"

आपसी समझौता न होता तो जो लोग अपने देशकी राजनीतिक एकतामें विश्वास रखते थे वे उसे बचानेके लिए लड़ लेते। वह एक ऐसा ध्येय होता, जिसके लिए मनुष्यको जीना चाहिये और मरना चाहिये । इतिहासमें ऐसे उदाहरणोंका अभाव नहीं है कि राष्ट्र अव्यवस्था और कष्ट-सहनकी अग्नि-

परीक्षामें से शुद्ध, एकताबद्ध और बलवान हो कर निकले हैं। जैसा गांधीजीने कहा : "यदि लोगोंको आपसमें लड़ लेनेका अवसर मिले और वे वीरताका परिचय दें, तो वे न्यायसे काम लेंगे और अन्तमें स्वार्थके कारण ही आपसमें मेल कर लेंगे । इससे जो व्यक्ति एकताके लिए काम करना चाहता है उसे मौका मिल जायगा । अभी तो उसे कोई मौका नहीं मिलता और हृदयमें भरा हुआ द्वेष और घृणा इकट्ठे होते रहते हैं। वस्तुस्थिति यह है कि जब तक पुलिस और सेना मौजूद हैं तब तक दूसरे किसीके लिए कोई मौका ही नहीं है।" [गांधीजीका पत्र जमनादास गांधीको, २३ जून, १९४६]

यदि बीचमें अराजकताका काल भी आ जाता तो वह परस्पर शत्रुता रखनेवाले पड़ोसी औपनिवेशिक राज्योंमें – जिनके हित एक-दूसरेके विरुद्ध हों और जो आन्तर-राष्ट्रीय षड्यंत्रोंके अखाड़े बन सकते हों – भारतके विभाजनको रोकनेकी बहुत भारी कीमत नहीं होती। किसी भी हालतमें, भारत मुर्खतापूर्ण तथा अघोषित गृहयुद्ध और अंग-भंगकी भयंकरताओंसे बच जाता, जो स्वतंत्रतासे पूर्व और उसके पश्चात हमें देखनी पड़ीं और "लिखित इतिहासके सबसे बड़े देशान्तरण" का शिकार न होता। देशान्तरणका प्रवाह अभी तक बन्द नहीं हुआ है और उससे दोनों भागोंके सम्बन्ध सदा विषाक्त बने रहनेका खतरा है।

परन्तु यह मार्ग माउन्टबेटनने नहीं अपनाया या शायद वे इसके लिए स्वयंको तैयार नहीं कर सके। उनको यह लगा होगा कि सम्राट्के जिम्मेदार सेवकके नाते – वे जिस प्रकार अपनी जिम्मेदारीको समझते थे उसे देखते हुए – वे "आदर्श मार्ग" पर चल कर अपने उत्तरदायित्वको उस मार्गके साथ जुड़े हुए अज्ञात खतरोंमें नहीं डाल सकते, खास कर जब उनके हाथमें एक ऐसा हल आ रहा है जो उन्हें अधिक आसान और सुरक्षित दिखाई देता है। उनका यह अनुमान बिलकुल सही था कि वर्तमान स्थितिमें कांग्रेसके नेता कांटोंकी शय्यासे बचनेके लिए – जिस पर अंतरिम सरकारमें मुस्लिम लीगकी बाधा डालनेवाली नीतिने उन्हें सुला रखा है – तथा देशमें फैल रही अराजकतासे बचनेके लिए – जिसे केन्द्रकी अंतरिम सरकारके अंतर्गत रोकनेमें वे अपनेको असमर्थ पाते हैं – सत्ताके शीघ्र हस्तांतरणके बदलेमें देशके विभाजन तथा औपनिवेशिक दर्जेको बड़ी खुशीसे स्वीकार कर लेंगे । माउन्टबेटनका यह अनुमान भी सही था कि अंग्रेज अन्तमें जिन्नाकी जितनी जिदको सहनेके लिए तैयार हैं उससे ज्यादा जिन्ना अपनी जिदको नहीं खीचेंगे। जहां तक ब्रिटिश अधिकारियोंका सम्बन्ध था, उन्होंने ईमानदारीसे अपने मनको यह माननेके लिए राजी कर लिया था कि "वे तो साधु ही हैं।"

गांधीजीके पत्र पर वाइसरॉयकी जो प्रतिक्रिया हुई, वह एक साथीने कुछ दिन बाद उन्हें यों बताई थी: "मैं कल यहां (शिमला) आया और रातको वाइसरॉय-भवनमें मैंने खाना खाया। . . . उन्होंने कहा: "मुझ पर आपके बापूके पत्रका बड़ा प्रभाव हुआ है। यद्यपि और किसीकी अपेक्षा उनकी तरफसे मुझे ज्यादा सिरदर्द मिलता है, फिर भी मैं उनकी अन्तः- प्रेरणाकी प्रशंसा करता हूं। मैं बहुत चाहता हूं कि वे जो कहते हैं वही मैं कर सकूं, परन्तु हमेशा मेरी समझमें नहीं आता कि कैसे करूं; और इससे भी बड़ी बात तो यह है कि अन्तरिम सरकारके कांग्रेसी सदस्य उनसे सहमत नहीं हैं।' " परन्तु उनका निश्चय है कि वे गृहयुद्धको सिर नहीं उठाने देंगे। वे इससे सहमत हैं कि पाकिस्तान बुरी चीज है, परन्तु उन्हें लगता है कि कांग्रेसके वरिष्ठ नेता "अब उसके लिए बड़े उत्सुक हैं और उसे जल्दीसे जल्दी अस्तित्वमें देखना चाहते हैं"; उन्हें आशा है कि लीग अन्तमें खुद उसे छोड़ देगी। "आप (गांधीजी) . . . ही अकेले व्यक्ति थे, जो उसके विरोधमें खड़े रहे और वे (माउन्टबेटन) आपसे सहमत थे। मैंने पूछा कि पंजाब और बंगाल दोनोंमें एक शक्तिशाली मिश्र सरकार क्यों नहीं स्थापित की जा सकती और उन प्रान्तोंके अल्पसंख्यकोंके क्षेत्रोंमें फिलहाल हिन्दू या मुस्लिम अफसरोंकी प्रधानता क्यों नहीं हो सकती, ताकि डर दूर हो जाय; और बीचके समयमें वे (माउन्टबेटन) तो यह देखनेको हैं ही कि अन्याय न हो; तथा एक स्थायी पंच-न्यायालय भी हो सकता है। उन्होंने इसे स्वीकार किया, परन्तु बोले कि इसका अर्थ यह होगा कि हिन्दू बहुमतवाले प्रान्तोंमें भी मिश्र सरकारें हों। जवाहरलालने कहा था कि यह असम्भव है। मैंने उन्हें सरदारसे सलाह लेनेको कहा । उनका खयाल था कि कदाचित् सरदार जवाहरलालसे कम उदार होंगे। उन्होंने दोनोंकी बहुत प्रशंसा की और कहा कि दोनों बिलकुल भिन्न प्रकारके आदमी हैं, परन्तु निखालिस और सच्चे हैं और उनके साथ काम करना आसान है। जवाहरलाल अधिक उदार हैं . . . उनके (माउन्टबेटनके) साथ अक्सर वे सहमत होते हैं, परन्तु कहते हैं कि कांग्रेस कार्यसमितिको वे अपने साथ नहीं रख सकते । उन्होंने (माउन्टबेटनने) फिर कहा कि वे पाकिस्तानकी सम्पूर्ण कल्पनाके विरुद्ध हैं। वे सम्राट्की सरकारकी प्रतिक्रियासे पूरी तरह संतुष्ट नहीं हैं और इस बातके लिए संघर्ष कर रहे हैं कि सरकार आपके ढंग पर सोचने लगे।" उन्होंने बार बार "उस विरासतके लिए जो उन्हें मिली है और उस थोड़ेसे समयके लिए जिसमें उन्हें सारी बातें करनी पड़ रही हैं" दुःख व्यक्त किया।

आठवां अध्याय : अन्तिम मोर्चेकी लड़ाई : श्रद्धाकी दूसरी कसौटी

१

पटनाके रेलवे स्टेशन पर बिहारके मंत्रीगण गांधीजीसे मिलने आये। गाड़ीकी सीटी बजनेवाली ही थी। परन्तु उनकी बातें खतम नहीं हुई थीं। स्टेशन-मास्टर असमंजसमें पड़ गया। वह सकुचाता हुआ आया। उसने पूछा कि गाड़ी चलानेका संकेत दिया जाय ? गांधीजीने कुछ बिगड़कर जवाब दिया : "आप और किसी मुसाफिरके पास जाकर उससे आदेश नहीं लेते, तो फिर यह अपवाद क्यों ? आपको अपना कर्तव्य पालन करना चाहिये और मंत्रियोंसे डरना नहीं चाहिये । इससे आपका और उनका भला होगा। उन्हें नियमोंकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये, अन्यथा लोकतंत्र छिन्नभिन्न हो जायगा।"

स्टेशन-मास्टरने सादर प्रणाम किया और बिदा होते होते साहस करके कहा : "यदि आपकी तरह अनुशासन पालन करनेवाला एक भी व्यक्ति प्रत्येक विभागमें हो, तो सारे प्रशासनकी शकल ही बदल जाय। आप नहीं जानते कि बेचारे सरकारी नौकर अपने अफसरोंकी इच्छानुसार काम न करें, तो उन्हें क्या कीमत चुकानी पड़ती है। मेरी ४० सालकी नौकरीमें यह मेरा पहला अनुभव है कि किसीने अपने व्यक्तिगत उदाहरण द्वारा हमें निर्भय होकर कर्तव्य-पालन करनेका पदार्थ-पाठ पढ़ाया हो। इसीलिए न हम आपको राष्ट्रपिता कहते हैं।"

सिगनल दे दिया गया। गाड़ी गांधीजीको कलकत्तेकी दिशामें ले चली ।

सोदपुर आश्रम कलकत्तासे कोई १० मील दूर था। शहरमें कर्फ्यू लगा हुआ था। इससे कलकत्ताके लोगोंको गांधीजीकी प्रार्थना-सभाओंमें आनेमें बड़ी कठिनाई होती थी। इसलिए कई मित्रोंने उन्हें शहरमें अपने यहां ठहरने का निमंत्रण दिया। परन्तु गांधीजीने पहलेकी तरह सीधेसादे खादी प्रतिष्ठानको ही उसके आश्रमी वातावरणके कारण पसन्द किया।

संयोगसे उसी दिन रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी जन्म-जयंती थी। गांधीजीने अपने प्रार्थना-प्रवचनमें कविवरको हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पण की : महापुरुष कभी नहीं मरते। हमारे देशने सन्तों और ऋषि-मुनियोंकी एक भव्य परम्परा उत्पन्न की है। उनके उदात्त उपदेश हमारे लिए एक गौरवपूर्ण विरासत हैं। यदि हम उनके उपदेशों पर चलें, तो भारत संसारमें शान्तिभूमिके रूपमें प्रसिद्ध हो जाय।"

गांधीजी सैद्धान्तिक अथवा सामान्य बातोंसे संतुष्ट नहीं होते थे, इसलिए वे तुरन्त लोगोंके तात्कालिक कर्तव्यकी दृष्टिसे उपदेश देने लगे। उन्होंने कहा कि जिन्नाके साथ शान्तिकी संयुक्त अपील पर हस्ताक्षर करके मैंने अपने आपको दोनों पक्षोंकी तरफसे शान्तिरक्षाके लिए जामिन बना लय है। इसलिए बिहारके हिन्दुओं और नोआखालीके मुसलमानोंको याद रखना चाहिये कि यदि भविष्यमें उन्होंने पागलपन किया, तो उन्हें मेरे आमरण अनशनका सामना करना पड़ेगा।

बिड़लाकी मिलोंमें से एकमें उपद्रव हुआ। गांधीजी मजदूरोंके कट्टर हिमायती थे और उन्होंने खुद कई सफल हड़तालें कराई थीं। परन्तु कुछ दिनोंसे उन्हें यह देखकर गम्भीर शंकाएं होने लगी थीं कि जरासा भी बहाना मिलते ही हड़ताल कर बैठना फैशन बन रहा था। इसे वे मजदूरोंके हितके लिए हानिकारक समझते थे। मिल-मालिकोंमें टिकनेकी अधिक शक्ति होती है। वे काम बन्द कर सकते हैं। कभी कभी तो काम बन्द होनेका वे स्वागत करते हैं। परन्तु मजदूरों और उनके परिवारोंके लिए मजदूरी न मिलनेका अर्थ भूखों मरना होता है। गांधीजीने मिल-मजदूरोंको चेतावनी दी कि वे वर्गयुद्धको तीव्र बनाने अथवा कुछ विचारधाराओंको आगे बढ़ानेके लिए कठपुतलियोंका काम न करें। उन्हें गांधीजीकी सलाह यह थी कि वे मिल-मालिकोंके पास जायें, उनके सामने अपनी कठिनाइयां रखें, उनकी कठिनाइयां समझनेकी कोशिश करें और फिर दोनोंके लिए कोई लाभदायक हल निकालें।

२

शहीद सुहरावर्दीको बंगालमें अपने कियेका फल मिल रहा था। मुस्लिम लीगका एक वर्ग, जो बराबर भारतके विभाजनकी मांग करता रहा था, कटेछंटे पाकिसतानकी संभावनासे चिन्तित होने लगा था, जिससे आसाम तथा बंगालका औद्योगिक दृष्टिसे उन्नत भाग – जिसमें संभवतः कलकत्तेका बन्दरगाह और शहर भी शामिल रहता – अलग रहता और जिसमें पूर्वी भाग भारतीय संघके शक्तिशाली प्रान्तोंके समूह द्वारा पश्चिमी भागसे अलग कर दिया जाता । इस वर्गके नेता बंगालके मुख्यमंत्री शहीद सुहरावर्दी थे। बंगाल प्रान्तीय मुस्लिम लीगके मंत्रीका समर्थन शहीदको प्राप्त था। केन्द्रीय विधान-सभामें मुस्लिम लीग दलके उपनेता ख्वाजा नजीमुद्दीन भी उनके समर्थक थे।

शहीद सुहरावर्दी लम्बे समयसे यह सपना देख रहे थे कि बिहारके लोहे और कोयलेवाले कीमती क्षेत्रोंको सम्मिलित करके बृहत् बंगालका सर्जन किया जाय । अपनी महत्त्वाकांक्षाकी पूर्तिके लिए वे

लीगके "दो राष्ट्र" वाले सिद्धान्तका स्वरूप बदलनेको भी तैयार थे। एक अखबारी मुलाकातमें उन्होंने कहा : "दो राष्ट्रोंके सिद्धान्तकी पृष्ठभूमिमें मुख्यतः राजनीतिक विचार ही रहे हैं। परन्तु समान भाषा, आर्थिक सम्बन्ध, जातीय और ऐतिहासिक परस्परावलम्बन आदि कुछ और बातें भी होती ऐसी हैं . . . जिनका लोगों पर सीधा असर पड़ता है। . . . राष्ट्र किन किन तत्त्वोंसे बनता है, इस प्रश्न पर राजनीतिके प्रमुख प्राध्यापकोंकी भी कोई अन्तिम सम्मति नहीं है और भिन्न-भिन्न कसौटियोंसे भिन्न-भिन्न उत्तर मिलते हैं। इसलिए **दो राष्ट्रोंवाले सिद्धान्तमें अनुकूल संशोधन हो सकनेकी पुरी गुंजाइश होनी चाहिये,** ताकि उसे देश-कालके अनुकूल बनाया जा सके ।" [दि हिन्दू, मद्रास, १६ मई, १९४७] (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

पटसन पूर्व बंगालकी पैसा देनेवाली मुख्य पैदावार थी। परन्तु जो कारखाने इसे सोनेमें बदलते थे वे सब कलकत्तेके अन्दर या आसपास स्थित थे। पूर्व बंगालमें न तो कोई खनिज सम्पत्ति थी और न औद्योगिक विकासकी संभावना थी । अपने आपमें उसकी स्थिति एक "ग्राम्य पिछड़ी बस्ती" जैसी हो जाती । ९ मईको अखबारोंमें यह समाचार छपा कि जिन्नाको बंगालके मौजूदा संविधान-सभामें भाग लेनेमें "या उनकी पाकिस्तानकी योजनासे बाहर जानेमें" कोई आपत्ति नहीं है, "अगर पाकिस्तानका पश्चिमी भाग उन्हें दे दिया जाय।" [दि हिन्दू, मद्रास, ९ मई, १९४७]

बंगाली मुसलमानोंके बारेमें यह बात प्रसिद्ध थी कि वे प्रबल रूपमें विभाजनके पक्षमें कभी नहीं रहे । बंगालियोंको, हिन्दू-मुसलमान दोनोंको, बंगला भाषा और संस्कृति पर बड़ा गर्व था। बंगाली हिन्दुको मुस्लिम कवि नजरूल इस्लामकी कविता पर उतना ही गर्व था जितना किसी बंगाली मुसलमानको टागोरकी कविता पर था। भाषा और संस्कृतिके बन्धन राजनीतिक उथलपुथलके आघातोंके बाद भी बने रहे थे। जैसा बंगालके एक मुस्लिम लीगी मंत्रीने, जो गांधीजीके साथ नोआखाली गये थे, उनसे कहा था, अखण्ड भारतमें बंगालको मुसलमानों द्वारा नियंत्रित प्रान्त बना दिया जाय, तो स्थानीय मुसलमानोंको पूरा सन्तोष हो जायगा। उनका झगड़ा **सिर्फ** मुसलमानोंको भारतमें "आश्रित" का दर्जा दिये जानेके खिलाफ ही है। २९ अप्रैलको मद्रासके 'हिन्दू' के दिल्ली स्थित संवाददाताने खबर दी: "यह महत्त्वकी बात है कि जहां पंजाबके मुस्लिम लीगी अलग संविधान-सभाकी दृष्टिसे सोच रहे हैं, वहां बंगालके मुस्लिम लीगी मौजूदा संविधान-सभामें जाना चाहते हैं।"

बंगालके यूरोपियन वर्गकी पटसनमें बड़ी पूंजी लगी हुई थी। वे प्रांतका बंटवारा नहीं चाहते थे, क्योंकि पटसन पैदा करनेवाले जिलोंके चले जानेसे पटसनके व्यापार और उद्योगको हानि पहुंचती; और ये जिले पूर्व बंगालमें थे। राष्ट्रवादी हिन्दुओंका एक दल ऐसा था, जिसे बंगालके विभाजनमें बंगालका विनाश दिखाई देता था। इस दलके नेता शरतचंद्र बोस थे। इस दलके एक सदस्य कांग्रेसके प्रौढ़ अनुभवी कार्यकर्ता अखिलचन्द्र दत्त थे। हिन्दुओंके एक वर्गने बंगालके बंटवारेका आन्दोलन शुरू किया उसके बाद उन्होंने शीघ्र ही एक पत्रमें गांधीजीके सामने अपनी आत्मा उंड़ेल कर रख दी :

> बंगालके विभाजनके लिए एक आन्दोलन शुरू किया गया है, ताकि "हिन्दुओंके लिए एक वतन प्राप्त किया जाय"। यह पराजयकी मनोवृत्तिका परिणाम मालूम होता है। वास्तवमें यह आन्दोलन मुझे साम्प्रदायिक मालूम होता है। सम्प्रदायवादके विरुद्ध बेशक लड़ना चाहिये, परन्तु उत्तरमें हिन्दुओंके लिए वतन प्राप्त करनेका साम्प्रदायिक आन्दोलन चला कर नहीं। एक तरहसे यह आन्दोलन उस सिद्धान्तको मान लेता है, जिस पर पाकिस्तानकी मांगका सारा आधार है। इससे साम्प्रदायिक समस्या हल नहीं होगी, बल्कि बढ़ेगी और चिरस्थायी बनेगी। यह आन्दोलन इस बुनियादी स्थितिकी अवहेलना करता है कि सम्प्रदायवाद एक जल्दी ही गुजर जानेवाला दौर है और उसके बाद निश्चित रूपसे शीघ्र ही आर्थिक आधार पर राजनीतिक विभाजन होनेवाला है। . . . विभाजनका अनिवार्य परिणाम यह होगा कि सम्पन्न हिन्दुओंका एक वर्ग पूर्व बंगालसे पश्चिम बंगाल चला जायगा और गरीब सवर्ण हिन्दुओं और हरिजनोंको (जो ज्यादातर गरीब हैं) अपने जान-माल और इज्जतको बचानेके लिए मुसलमान बन जाना पड़ेगा। राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, भाषात्मक और सांस्कृतिक दृष्टियोंस विभाजन एक गलत कदम होगा। . . .
>
> युवावस्थामें मेरे भाग्यमें यह लिखा था कि मैं लॉर्ड कर्जन द्वारा प्रस्तावित बंग-भंगके खिलाफ लड़ूं। अब बुढ़ापेमें भाग्यचक्रके कारण मुझे अपने ही लोगोंके समर्थनसे होनेवाले विभाजनके विरुद्ध लड़ना पड़ता है। मैं . . . आपसे प्रार्थना करता हूं कि यह बुराई आगे बढ़े इससे पहले आप अपने विचार प्रकट कीजिये और सही रास्ता दिखाइये।

परन्तु इन विभिन्न तत्त्वोंके बीच एकमात्र समान वस्तु बंगालको अखण्ड रखनेकी इच्छा थी और चूंकि इस बातकी जरासी भी संभावना नहीं थी कि हिन्दू संयुक्त बंगालका पाकिस्तानमें मिल जाना स्वीकार करते अथवा मुसलसान उसका भारतीय संघमें बना रहना स्वीकार करते, इसलिए वे सब इस योजना पर सहमत थे कि एक "प्रभुसत्ताधारी संयुक्त बंगाल " की स्थापना हो और वह भारत तथा पाकिस्तान दोनोंसे स्वतन्त्र रहे।

राजनीतिक और नैतिक दोनों कारणोंसे गांधीजीने विभाजनका सदा विरोध किया था – फिर यह विभाजन केन्द्रमें हो अथवा प्रान्तोंमें। उन्होंने समझ लिया कि बंगालके विभाजनवादी नारे "मुसलमान भारतका अंग-भंग करना चाहते हैं, परन्तु हम उसके बजाय पाकिस्तानका अंग-भंग कर देंगे" के पीछे उत्कट देशप्रेमका जामा पहन कर पराजयवादी मनोवृत्ति ही काम कर रही है। बंगाली मित्रोंका दल इस सम्बन्धमें कुछ दिन पहले गांधीजीसे पटनामें मिलने आया था। उस दलसे उन्होंने कहा था: मुझे यह देखकर हैरानी होती है कि कुछ लोग लापरवाहीसे विभाजनको बच्चोंका-सा खेल समझते हैं। "वे यह समझते मालूम नहीं होते कि वे लाखों आदमियोंके प्राणोंके साथ जुआ खेल रहे हैं।" फिर दिल्लीमें गांधीजीने कहा: "में विश्वासके साथ कहता हूं कि प्रान्तोंके बंटवारेका सवाल **अंग्रेजोंके भारतसे चले जानेके बाद** हमें आपसमें शान्तिपूर्वक हल करना चाहिये। भाई-भाईके बीचका झगड़ा निबटानेके लिए किसी तीसरे पक्षको बीचमें लाना हमें शोभा नहीं देता। इससे हमारी कायरता ही प्रकट होती है। मुझे आश्चर्य होता है कि हम यह नहीं समझते कि तीसरे पक्षके इस हस्तक्षेपकी हमें क्या कीमत चुकानी पड़ेगी। आज तो हिन्दू और मुसलमान दोनों पागल हो गये हैं। परन्तु मुझे विश्वास है कि जब उन्मादकी बाढ़ उतर जायगी, तब कीचड़ और रेत पेंदेमें बैठ जायगी; उस समय पानी बिलकुल साफ और शुद्ध हो जायगा और सारे संसारको शान्तिका वरदान मिल जायगा। कारण, सारे दोषोंके होते हुए भी हमारे स्वातंत्र्य-संग्रामका सैद्धान्तिक आधार न्याय, शुद्धता, अहिंसा और सत्य पर है।"

बंगाल विधान-सभामें कांग्रेस दलके नेता किरणशंकर राय और डॉ. विधानचन्द्र रायने दिल्लीमें गांधीजीसे सलाह-मशविरा किया। किरणशंकर लॉर्ड माउन्टबेटनसे भी मिले। यद्यपि वाइसरॉयने आग्रहपूर्वक कहा कि वे खुद तो भारतके विभाजन और प्रान्तोंके बंटवारेके खिलाफ हैं, परन्तु उनका यह विचार है कि यदि भारतके विभाजनकी बात तय हो जाती है, तो बंगाल और पंजाबके बंटवारेके लिए कांग्रेसकी मांगका विरोध करना असंभव है। परन्तु उन्होंने कहा कि मेरा अपना झुकाव किसी भी तरफ

क्यों न हो, मैंने यह निश्चय कर लिया है कि मैं इस प्रश्नका निबटारा स्वयं लोगोंसे ही कराऊंगा । उनकी योजनाके अनुसार यह बात प्रान्तों पर छोड़ दी गई थी कि वे चाहें तो भारतीय संघमें या पाकिस्तानमें शरीक होनेके पक्षमें अथवा दोनोंमें ही शामिल न होनेके पक्षमें अपनी राय दें। बंगालके मामलेमें उन्होंने यह व्यवस्था सोची थी कि मतदानके प्रयोजनके लिए बंगाल प्रान्तीय विधान-सभाको पश्चिमी और पूर्वी दो समूहोंमें बांट दिया जाय। फिर प्रत्येक समूह अलग अलग मतदान करके बहुमतसे यह निर्णय करे कि वह भारतीय संघमें या पाकिस्तानमें शरीक होगा अथवा दोनोंमें ही शरीक नहीं होगा। वाइसरॉय जिलावार जनमत-संग्रहका विचार करनेको भी तैयार थे। उनकी यह भी राय थी कि यदि मुस्लिम लीग संमिलित निर्वाचन, मिश्र मंत्रि-मंडल तथा नौकरियोंमें ५०-५० के अनुपातके लिए अपनी सहमति व्यक्त करे, तो बंगाल कांग्रेसको यह प्रस्ताव स्वीकार कर लेना चाहिये – भले ही इससे बंगालका एक ऐसा प्रभुसत्ताधारी राज्य स्थापित होता हो, जो भारतीय संघ और पाकिस्तान दोनोंसे बाहर रहे।

३

जिस दिन गांधीजी सोदपुर आश्रममें पहूंचे उसी दिन शरतचन्द्र बोस उनसे मिलने आये। दूसरे दिन वे अपने साथ बंगाल मुस्लिम लीगके मंत्री अबुल हाशेमको भी लाये। गांधीजीको इस बातसे सहर्ष आश्चर्य हुआ कि हाशेमने संयुक्त बंगालके लिए "समान भाषा, समान संस्कृति और समान इतिहासको बंगालके हिन्दुओं और मुसलमानोंको मिलानेवाला आधार" बताया। बंगाली चाहे हिन्दू हो या मुसलमान वह बंगाली ही है। दोनोंको "१००० मील दूरसे" पाकिस्तानियों द्वारा शासित होनेके बारेमें एकसी घृणा है।

एक ऐसे व्यक्तिकी, जो पाकिस्तानके कट्टर समर्थकके नाते भारतकी एकताका विरोध करता था, इस देरसे की गई स्वीकृतिने गांधीजीमें सरल आशावादका भाव पैदा नहीं किया। उन्होंने लीगके मंत्रीसे सावधानीपूर्वक पूछा : क्या आप लोगों पर भूतकालमें ७ हजार मील दूरसे अंग्रेजोंने राज्य नहीं किया ? और जब लीगके मंत्रीने "पश्चिमके पाकिस्तानियों" द्वारा बंगालियोंके शासित होनेके बारेमें अपनी आपत्तिको दोहराया, तो गांधीजीने वही बात फिर कही और पूछा कि अपना एक अंग बनानेके बजाय अगर पाकिस्तान आपको "इस्लामी संस्कृति और धर्मके प्रचारके लिए एक स्वैच्छिक संघ" में

शरीक होनेके लिए निमंत्रण दे, तो क्या आपको पाकिस्तानके साथ मिलनेमें कोई आपत्ति होगी ? इस प्रश्नका मंत्रीने कोई उत्तर नहीं दिया।

गांधीजीने अपने तर्कको फिर पकड़ा। बंगालकी समान संस्कृति, जैसी वह टागोरमें व्यक्त हुई है और जिसका आपने अभी उल्लेख किया है, की जड़ें उपनिषदोंके तत्त्वज्ञानमें है और वह न केवल बंगालकी परन्तु सारे भारतकी समान विरासत है। इसलिए क्या प्रभुसत्ताधारी बंगाल शेष भारतके साथ "स्वेच्छापूर्ण संबंध" स्थापित करनेका विचार करेगा ? लीगके मंत्री फिर मौन रहे। परन्तु इसका आंशिक उत्तर १५ मईको बंगालके मुख्य-मंत्रीने दिया। दिल्लीमें हुई प्रेस-कान्फरेन्समें उनसे पूछा गया: क्या संयुक्त बंगाल भारतीय संघमें शामिल होना स्वीकार करेगा ? इस प्रश्नके उत्तरमें उन्होंने कहा कि बंगाल और भारतीय संघ दोनों पर समान रूपसे असर डालनेवाले सारे ही महत्त्वपूर्ण मामलोंमें कोई समझौता या व्यवस्था संभव होनी चाहिये, "चाहें तो आप इसे संधि कह लें या दूसरा कोई नाम दें।" परन्तु हर आदमी बंगालके मुख्यमंत्रीकी बात पर अविश्वास करता था। मुस्लिम लीगमें भी एक प्रभावशाली वर्ग बराबर उनके विरुद्ध रहा था और उन्हें संदिग्ध व्यक्ति समझता था। जिन्नाके दो राष्ट्रोंवाले प्रिय सिद्धान्तके साथ वे जैसा खिलवाड़ कर रहे थे उससे कायदे आजम या लीगके वरिष्ठ नेताओंके सामने अपनी साख जमानेमें उन्हें कोई मदद नहीं मिली। वे अथवा बंगाल मुस्लिम लीग एक ही उपाय द्वारा सफल होनेकी आशा रख सकते थे। और वह था बंगालके हिन्दुओंका समर्थन प्राप्त करना। परन्तु इन लोगोंके हृदयों पर तो उन्होंने ऐसे गहरे घाव किये थे, जिनका भरना या जिन्हें भूलना आसान नहीं था।

गांधीजीने मुसलमानोंको यह समझानेकी कोशिश की कि यदि स्थितिको बचाना हो, तो आप जैसा कहते हैं वैसा ही आपको करना चाहिये । मुसलमान विद्यार्थियोंके एक दलने आकर गांधीजीसे कहा : "आप बुद्ध और पैगम्बरकी अहिंसाकी परम्पराका पालन कर रहे हैं। आप ही कलकत्ता और बिहारको शान्ति प्रदान कर सकते हैं।"

गांधीजीने उन्हें वही सलाह दी, जो वे अन्यत्र मुसलमानोंको दे चुके थे: आपको नोआखाली जाना चाहिये और वहांके हिन्दुओंको शब्दोंके बजाय कार्यों द्वारा यह अनुभव करा कर कि मुसलमानोंके हाथमें उनका जान-माल और उनकी स्त्रियोंकी इज्जत पूरी तरह सुरक्षित है उन्हें पुन: आश्वस्त करना चाहिये । "आज आपके नेताओंके और आपके संगठनके नाम पर जो कलंक लग गया है, उसे धोना आपका काम

है।" वे कुछ भी कहे बिना गांधीजीकी बात सुनते रहे। ज्यों ही उन्होंने अपनी बात समाप्त की, विद्यार्थी यह कहकर खड़े हो गये : "जो भी हो सकता है हम करेंगे।" गांधीजीके कुछ कहनेसे पहले ही वे जल्दीसे आदाब (प्रणाम) कहकर चले गये।

गांधीजी अब तक इस प्रकारके अनुभवके काफी अभ्यस्त हो चुके थे। बादमें उन्होंने कहा: "शायद इसका कोई परिणाम नहीं निकलेगा । परन्तु एक बात होगी। अपना स्पष्ट कर्तव्य पूरा करनेके बजाय अतिशय प्रशंसा द्वारा मेरे कान भर कर अपनी व्याकुल अन्तरात्माको शान्त करनेकी प्रवृत्तिसे कमसे कम वे बचेंगे।

शामकी प्रार्थना-सभामें गांधीजीसे पुछा गया : बंगालके विभाजनके पक्षमें बढ़ रहे हिन्दू लोकमतको देखते हुए क्या यह विभाजन टल सकता है ? उन्होंने उत्तर दिया : यदि बंगालका विभाजन हुआ तो उसकी जिम्मेदारी हिन्दुओं पर नहीं बल्कि मुस्लिम बहुमत पर होगी, और उससे भी ज्यादा बंगालकी मुस्लिम लीगी सरकार पर होगी। मैं बंगालका मुख्यमंत्री होऊं, तो हाथ जोड़कर हिन्दुओंसे भूतकालको भूल जानेकी प्रार्थना करूं। मैं उनसे कहूंगा कि मैं उतना ही बंगाली हूं जितने आप हैं। धर्मका भेद हमें जुदा नहीं कर सकता। हम एक ही भाषा बोलते हैं और एक ही संस्कृतिके उत्तराधिकारी हैं। बंगालमें जो कुछ है वह हम दोनोंके लिए समान है। उसका हम दोनोंको गर्व होना चाहिये। अगर बंगालके मुख्यमंत्री ऐसा करें, तो मैं उनके साथ जगह जगह जाकर हिन्दुओंको समझानेकी जिम्मेदारी ले लूंगा; और मैं दावेसे कह सकता हूं कि अन्तमें एक भी हिन्दू बंगालकी एकताका विरोधी नहीं रह जायगा। अगर मैं सुहरावर्दी होऊं, तो हिन्दुओंसे कह दूं कि पहले मेरे शरीरके टुकड़े कर दो, तब बंगालके टुकड़े करनेका विचार करो। यदि बंगालके मुख्यमंत्रीमें बंगाल और बंगालियोंके लिए ऐसा प्रेम हो, तो कठोरसे कठोर हिन्दूका हृदय भी पिघल जायगा। विभाजनके जोशकी जड़में वह डर और सन्देह है, जिसने हिन्दुओंके हृदयको पकड़ लिया है। मैंने बंगालके हिन्दुओंके बारेमें जो कुछ कहा है वही बिहारके मुसलमानों पर लागू होता है। इसलिए मैंने बिहारके हिन्दुओंसे यह कहनेमें संकोच नहीं किया कि आपको मुसलमानोंके मनसे सारा भय और सन्देह मिटा देना चाहिये। कारण, मैं प्रेमधर्मकी सार्वभौम सत्तामें विश्वास रखता हूं, जो जाति, रंग, वर्ण और धर्मके किसी भेदको नहीं जानता।

दूसरे दिन ११ मईको शहीद सुहरावर्दी मुहम्मद अली और अबुल हाशेमको लेकर गांधीजीके पास सर्वसत्ताधारी बंगालके प्रश्नकी चर्चा करने आये। मुहम्मद अली बंगालके वित्तमंत्री (बादमें पाकिस्तानके प्रधानमंत्री) थे और हाशेम बंगाल मुस्लिम लीगके मंत्री थे। गांधीजीने शहीदको समझाया कि इसके लिए पूरे और सच्चे हृदय-परिवर्तनकी जरूरत है। वह आपके अपने आचरणमें और आपके प्रशासकोंके व्यवहारमें प्रकट होना चाहिये – अगर आप यह आशा रखते हैं कि बंगालके हिन्दू आपकी बातोंको गंभीरतासे लें। परन्तु बंगालके मुख्यमंत्रीकी राय थी कि कलकत्तेमें पहले ही शान्तिका राज्य स्थापित हो चुका है और बंगाल सरकारको कोई भी अन्यायका दोषी नहीं ठहरा सकता ! वे आपेसे बाहर हो गये, जब गांधीजीने उनसे कहा कि शासनके मुखियाके नाते बंगालमें हुई प्रत्येक मृत्युके लिए आपका नैतिक उत्तरदायित्व है; और बदलेमें उन्होंने गांधीजी पर यह आरोप लगाया कि सारे झगड़ेकी जड़ आप हैं !

बादमें गांधीजी बोले: "अजीब आदमी है ! उसे इसकी परवाह ही नहीं कि वह क्या कहता है। वह ऐसा चाहता है कि लोग उस पर भरोसा करें, क्योंकि जिस नवीन बंगालका वह निर्माण करना चाहता है वह सब कौमोंको समान व्यवहारका आश्वासन देगा। परन्तु भविष्य तो वर्तमानसे ही बनता है। कलकत्तेमें आज जो कुछ हो रहा है वही यदि आनेवाली घटनाओंका संकेत हो, तो यह सुहरावर्दीकी योजनाके लिए शुभ शकुन नहीं है।"

उन्होंने शहीदसे कहा कि अगर आप अपने नवीन बंगालके मामलेमें सचमुच गम्भीर हैं, तो जहां कहीं दंगा हो वहां आपको हुल्लड़बाजोंके बीच जाकर शरारतको रोकना चाहिये और जरूरत हो तो अपनी जानकी बाजी लगा देनी चाहिये। अगर आप एक दिनके लिए भी ऐसा करें, तो समूचा वायुमंडल, न सिर्फ कलकत्तेमें बल्कि सारे हिन्दुस्तानमें एकदम बदल जायगा।

शामको प्रार्थना-सभामें गांधीजीसे पूछा गया: क्या **विभाजित** भारतमें **अखण्ड** (अविभाजित) बंगाल हो सकता है ? उन्होंने उत्तर दिया: मेरा सदा यह मत रहा है कि भारतके विभाजनके प्रश्नका निर्णय भारतके हिन्दुओं और मुसलमानोंकी संयुक्त इच्छासे ही किया जा सकता है; कोई तीसरा पक्ष अपना निर्णय उन पर नहीं लाद सकता। इसी तरह बंगालके भविष्यका निर्णय भी बंगालके हिन्दुओं और मुसलमानोंकी संयुक्त इच्छासे ही हो सकता है। भारतका विभाजन कर दिया जाय तो भी बंगालके हिन्दू

और मुसलमान दोनों यदि मिलकर रहना चाहें, तो कोई तीसरा पक्ष उन पर विभाजन थोप नहीं सकता; और यह निश्चय भी वे ही करेंगे कि विभाजित भारतके किस भागमें वे सम्मिलित हों।

१२ मईको सुहरावर्दी अपने पहले दिनके साथियोंको लेकर फिर आये। गांधीजीने उनसे फिर वही बात कही कि बंगालके विभाजनको एक ही उपायसे रोका जा सकता है और वह यह है कि शान्तिकी जिस सम्मिलित अपील पर जिन्नाने हस्ताक्षर किये हैं उस पर उनसे अमल कराया जाय। इसके लिए बंगाल मंत्रि-मंडल और उसके मुखिया शहीद सुहरावर्दीको उसी ढंगसे काम करना होगा, जो मैंने कल सुझाया है। "यद्यपि मैं किसी खास कौमका प्रतिनिधि नहीं हूं, फिर भी आप देखते हैं कि मैं एड़ीसे चोटीका जोर लगाकर यह कोशिश कर रहा हूं कि बिहारके हिन्दू अपनी गलतीको स्वीकार करें और उसके लिए पश्चात्ताप करें। परन्तु आप तो मुसलमानोंके अधिकृत प्रतिनिधि हैं। क्या आपको भारतीय मुसलमानोंके बारेमें वही काम — जो मैं कर रहा हूं – बल्कि उससे भी ज्यादा काम नहीं करना चाहिये ? परन्तु आप यह दावा नहीं कर सकते कि आपने यह काम किया है। मुझे विश्वास है कि यदि बंगालका मंत्रि-मंडल पूरी सचाईसे काम करे, तो जिन्ना साहब और मुस्लिम लीगको विवश होकर उनका अनुसरण करना पड़ेगा।"

सुहरावर्दीने शिकायत की कि कोई हिन्दू मुझ पर भरोसा नहीं करता; धीरजसे मेरी बात तक नहीं सुनी जाती। तब मैं अपनी सचाईका विश्वास उन्हें कैसे दिलाऊं? उत्तरमें गांधीजीने एक चकित करनेवाला प्रस्ताव उनके सामने रखा, जिसका समर्थन बादमें लिखित रूपमें शहीदने किया :

> विभाजनके मामलेमें बंगालकी स्थितिकी गम्भीरताको मैं समझता हूं। आप जो कुछ कहते हैं उसमें यदि पूरी तरह ईमानदार हैं और आपके विरुद्ध जो शंकाएं हैं उन सबका निवारण मेरे सामने आप कर दें तथा यदि आप बंगालियोंके लिए – हिन्दुओं और मुसलमानोंके लिए – बंगालको अहिंसक उपायों द्वारा सदा अखण्ड बनाये रखना चाहते हों, तो मैं आपका अवैतनिक निजी सचिव बनकर उस समय तक आपके ही घरमें रहनेको बिलकुल तैयार हूं जब तक कि हिन्दू और मुसलमान भाई-भाईकी तरह – जैसे कि वे हैं – न रहने लग जायें।

जब सुहरावर्दी गांधीजीके कमरेसे निकले तो उनके मुंहसे ये उद्गार सुने गये : "कैसा पागलपनका प्रस्ताव है ! मुझे दस दफा सोचना पड़ेगा, तब कहीं इसके गूढ़ार्थ समझमें आ सकते हैं ।"

हिन्दू महासभाके नेता डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी १३ मईको गांधीजीसे मिले। वे सर्वसत्ताधारी बंगाल राज्यकी सारी कल्पनाके प्रबल विरोधी थे। १९ माचेको ही एक अखबारी वक्तव्यमें उन्होंने **अखण्ड भारतमें भी बंगालके विभाजनकी** मांग की थी। उनकी दलील यह थी कि सर्वसत्ताधारी बंगालका आन्दोलन यूरोपियन स्थापित स्वार्थोंकी प्रेरणासे हो रहा है, जिसके लिए उनके अपने कारण हैं।

गांधीजीने उनसे पूछा: "तो आपकी आपत्ति इस आन्दोलनके जन्मके कारण है?" डॉ. मुखर्जीने यह भय प्रकट किया कि अगर सर्वसत्ताधारी बंगाल राज्य बनने दिया जायगा, तो इस बातकी कोई गारंटी नहीं कि सुहरावर्दी विधान-सभामें उपलब्ध मुस्लिम बहुमतके बल पर बादमें उसे पाकिस्तानमें मिलानेके लिए चालबाजी नहीं करेंगे।

गांधीजीने उन्हें समझाया कि सर्वसत्ताधारी बंगालकी रचनामें सुहरावर्दीने "पारस्परिक अनुमति" का सिद्धान्त मान लिया है। इसलिए निर्णय विधान-सभाके सामान्य बहुमतसे न होकर दोनों कौमोंकी स्वीकृतिसे होगा और दोनों कौमें **अलग अलग** मतदान करके अपना बहुमत व्यक्त करेंगी। मैंने सुहरावर्दीको सुझाया है कि इस कामके लिए प्रत्येक कौमका दो-तिहाई बहुमत होना चाहिये। साथ ही, चूंकि मेरी योजनामें सर्वसत्ताधारी बंगालके संविधानमें बादमें होनेवाले परिवर्तनों पर भी यही कार्य-पद्धति लागू होगी, इसलिए प्रस्तावित योजनामें मुझे स्वयं तो भयका कोई कारण दिखाई नहीं देता। "यदि सुहरावर्दीको विधान-सभाके अधिकांश हिन्दू सदस्योंको अपने पक्षमें करना पड़े, तो क्या आप नहीं समझते कि बंगालकी मौजूदा साम्प्रदायिक परिस्थिति तुरन्त सुधर जायगी ?"

डॉ. मुखर्जीने पूछा: "मान लीजिये कि अधिकांश हिन्दू हिन्दुस्तानके साथ मिलना चाहें और अधिकांश मुसलमान पाकिस्तानके पक्षमें हों, तब क्या होगा ?"

गांधीजीने जवाब दिया: "तब बंगालका विभाजन होगा। परन्तु वह विभाजन बंगालके हिन्दू और मुसलमान निवासियोंके आपसी समझौतेसे होगा । वह जिन्नाके दो राष्ट्रवाले सिद्धान्तके आधार पर किसी तीसरे पक्षका किया हुआ विभाजन नहीं होगा।" चूंकि बंगालके लोगों – हिन्दू और मुसलमान – की बुनियादी एकताकी स्वीकृति सुहरावर्दीके प्रस्तावका आधार है और चूंकि बंगालके मुसलमान मुस्लिम लीगकी कल्पनाके पाकिस्तानमें संख्याकी दृष्टिसे प्रभावशाली होंगे, इसलिए बंगाल मुस्लिम लीगके द्वारा व्यवहारमें दो राष्ट्रवाले सिद्धान्तका खण्डन हो जाने पर, और वह भी जिन्नाकी सहमति और

अनुमतिके साथ हो जाने पर, उस सिद्धान्त पर आधारित पाकिस्तानकी योजनाका कुछ भी शेष नहीं रह जायगा।

यहां खुली कूठनीति – सद्भाव और सत्यकी कूटनीति – के द्वारा भारतके विभाजनको टालनेका एक मौका था। परन्तु डॉ. मुखर्जी और उनके मित्र "हिन्दू" बंगालके भविष्यके बारेमें अस्पष्ट भयोंसे पीड़ित थे।

गांधीजीसे उस दिन एक मित्रने पूछा: "हिन्दू हों या मुसलमान, हम अपनी संस्कृतिको और अपने आपको कैसे बचा सकते हैं?" उन्होंने शामको अपने प्रार्थना-प्रवचनमें इसका उत्तर दिया: "हमारी संस्कृतिकी रक्षा दूसरा कोई हमारे लिए नहीं कर सकता। हम अपनी ही बुद्धिमानीसे उसकी रक्षा कर सकते हैं अथवा अपनी ही मूर्खतासे उसका नाश कर सकते हैं।" इस प्रकार यदि बंगालकी एक संस्कृति है, और मेरा विश्वास है कि उसकी एक संस्कृति है, तो उसकी रक्षा करनेका काम बंगालके लोगोंका है।

इसके बाद उनसे पूछा गया: "जब ऊपर सब कुछ दूषित हो चुका हो तब नीचेके लोगोंकी अच्छाईसे क्या दुष्टताका सफल मुकाबला किया जा सकता है ?" यह कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओं पर, खास कर पंडित नेहरू पर, परोक्ष रूपसे आक्षेप किया गया था। गांधीजीने उत्तर दिया कि ऐसी परिस्थितिमें नीचेके लोगोंका कर्तव्य है कि ऊपरके गलत आदमियोंको हटा दें, जैसे आप छातेको अपने सिर परसे हटा देते हैं – जो आपके सिर पर दिखाई देता है, लेकिन आपके ही सहारे वहां टिका हुआ है। लोग पंडित नेहरूसे अथवा कांग्रेसके उच्च नेताओंसे असंतुष्ट हैं, तो वे उन्हें पदच्युत करके उनके स्थान पर दूसरे लोगोंको बिठा सकते हैं; क्योंकि सत्ता अन्तमें तो लोगोंके ही पास रहती है। इसी प्रकार यदि बंगालवाले सुहरावर्दीको अयोग्य पाते हैं, तो नीचेके लोग अहिंसक संगठनके द्वारा उन्हें अवश्य हटा सकते हैं। यह तर्क अप्रस्तुत है कि उन्हें मुस्लिम मतदाताओंने चुना था। सारी बातका सार यह है कि अगर नीचेके लोग अज्ञानी हैं, तो उनका शोषण होता रहेगा। ज्यों ही वे इस सत्यको समझ लेंगे कि चोटीका आधार पेंदा होता है त्यों ही सब ठीक हो जायगा। इसलिए मैं तो यह कहूंगा कि चोटीमें अगर कोई दोष है, तो पेंदेमें कोई बुनियादी दोष है। इसका उपाय यह है कि हमारी अज्ञानपूर्ण लाचारीको दूर किया जाय।

एक सप्ताह बाद २३ मईको शरतचन्द्र बोसने गांधीजीको पटनामें समाचार भेजे :

पिछले मंगलवारकी शामको (२० मई) मेरे घर पर एक सम्मेलन हुआ था। उसमें सुहरावर्दी, फजलुल रहमान (मंत्री), मुहम्मद अली (मंत्री), अबुल हाशेम (मंत्री – बंगाल प्रान्तीय मुस्लिम लीग, जो अब छुट्टी पर हैं), अब्दुल मलिक (बंगाल विधान-सभामें मजदूरोंके प्रतिनिधि), किरण (किरणशंकर राय) और सत्य बाबू (सत्यरंजन बख्शी) आये थे। हमने एक अस्थायी समझौता कर लिया, जिसकी एक प्रति आपके विचारके लिए इसके साथ है। पहचानके लिए अबुल हाशेमने और मैंने दूसरोंकी उपस्थितिमें उस पर हस्ताक्षर किये। अवश्य ही उसे कांग्रेस और मुस्लिम लीगके सामने रखना पड़ेगा । हमने जो चर्चायें कीं उनके रुखसे मुझे ऐसा लगता है कि जहां तक बंगालके कांग्रेस और मुस्लिम लीग संगठनोंका सम्बन्ध है, वे इस अस्थायी समझौतेका समर्थन करेंगे – सम्भव है यहां-वहां थोड़ा-बहुत सुधार किया जाय। . . . मेरा अब भी खयाल है कि अगर आपकी सहायता, सलाह और मार्गदर्शनसे दोनों संस्थाएं अस्थायी समझौतेकी दिशामें कोई अन्तिम समझौता कर लें, तो हम बंगालकी समस्याएं और साथ ही आसामकी भी हल कर लेंगे। शेष भारत पर भी इसकी बहुत अच्छी प्रतिक्रिया हो सकती है।

दूसरे दिन इसका उत्तर देते हुए गांधीजीने कुछ महत्त्वपूर्ण संरक्षणोंके छूट जानेकी ओर शरतबाबूका ध्यान खींचा, जो उन्होंने पटनाके लिए कलकत्ता छोड़नेसे पूर्व विस्तारसे शरतबाबूको समझाये थे :

इस मसौदेमें ऐसी शर्त लगानेवाली कोई बात नहीं है कि केवल बहुमतसे कोई काम नहीं किया जायगा। सरकारके प्रत्येक कार्यके पीछे मंत्रि-मंडलमें और विधान-सभामें हिन्दू अल्पमतके कमसे कम दो-तिहाई भागका सहयोग होना चाहिये। यह स्वीकार किया जाना चाहिये कि बंगालकी एक ही संस्कृति और एक ही मातृभाषा – बंगाली – है । यह बात निश्चित कर लीजिये कि विपरीत समाचारोंके बावजूद यह प्रस्ताव केन्द्रीय मुस्लिम लीगको स्वीकार है। यदि दिल्लीमें आपकी उपस्थिति आवश्यक हुई, तो मैं टेलीफोन या तारसे आपको सूचना दूंगा। मेरा इरादा कांग्रेस कार्यसमितिके साथ इस मसौदेकी चर्चा करनेका है।

लीगके मंत्रीसे सलाह-मशविरा करनेके बाद शरत बोसने अस्थायी समझौतेके पहले और दूसरे पैरेका सुधरा हुआ मसौदा भेजा और लिखा :

आपके इस सुझावके बारेमें कि सरकारके प्रत्येक कार्यके पीछे **मंत्रि-मंडल और विधान-सभाके कमसे कम दो-तिहाई हिन्दू सदस्योंका सहयोग होना चाहिये, मैं शहीदसे कोई चर्चा नहीं कर सका हूं**। वे आज तीसरे पहर विमान द्वारा दिल्ली जा रहे हैं। अगर मैं दिल्ली आया, तो उनसे मैं वहां इस विषयमें चर्चा कर लूंगा। इस बीच वे यदि आपसे मिलें, तो आप उनके सामने यह बात रखकर उनकी प्रतिक्रिया जान सकते हैं। (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

आपके इस सुझावके बारेमें कि यह बात स्वीकार की जानी चाहिये कि बंगालकी समान संस्कृति और समान मातृभाषा – बंगाली – है, मेरा कहना है कि पिछले जनवरीमें मैंने जो चर्चाएं आरम्भ की थीं और तबसे लगातार करता रहा हूं, वे इसी आधार पर की गई हैं कि बंगालकी समान संस्कृति और समान मातृभाषा है। इस आधारको चर्चा करनेवाले सभी दलोंने स्वीकार किया है। पिछले महीने शहीदने एक वक्तव्यमें यह बात स्वीकार की है। इसलिए शर्तोंमें इस स्वीकृतिको सम्मिलित करनेमें कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिये।

शहीद और फजलुल रहमान इन शर्तोंकी चर्चा जिन्ना और उनकी कार्यसमितिके साथ करेंगे। उनके साथ मेरी जो बातचीत हुई है, उससे मैं इस निष्कर्ष पर पहूंचा हूं कि यदि बंगालकी कांग्रेस और मुस्लिम लीग कोई समझौता कर लें, तो शायद जिन्ना उसमें बाधक नहीं होंगे।

किन्तु ऐसा मालूम होता है कि अन्त तक शरत बोस सुहरावर्दी या मुस्लिम लीगसे गांधीजीकी यह शर्त नहीं मनवा सके कि सरकारके प्रत्येक कार्यके पीछे मंत्रि-मंडल और विधान-सभाके कमसे कम दो-तिहाई हिन्दू सदस्योंका सहयोग होना चाहिये। इन कार्योंमें सर्वसत्ताधारी बंगाल संबंधी निर्णय और उसके बाद भारतीय संघ अथवा पाकिस्तानमें मिलनेका निर्णय सम्मिलित था। इसके स्थान पर संशोधित धाराओंमें कुछ मिलाकर दो-तिहाई बहुमतकी बात सामने आई। [शरतचन्द्र बोस और मुस्लिम लीगके सदस्योंके बीच हुए समझौतेका जो मसौदा तैयार किया गया था, उसकी संशोधित धाराएं इस प्रकार थीं : (१) बंगाल एक स्वतंत्र राज्य होगा। बंगालका स्वतंत्र राज्य शेष भारतके साथ अपने सम्बन्ध निश्चित करेगा। किसी संघमें शरीक होनेके प्रश्नका निर्णय बंगालके स्वतंत्र राज्यकी विधान-सभा दो-तिहाई बहुमतसे करेगी। (२) बंगालके स्वतंत्र राज्यके संविधानमें संयुक्त निर्वाचन और वयस्क मताधिकारके आधार पर बंगाल विधान-सभाके चुनावकी व्यवस्था रहेगी और हिन्दुओं तथा मुसलमानोंके लिए

आबादीके हिसाबसे स्थान सुरक्षित रखे जायंगे। हिन्दुओं और अनुसूचित जातियोंके हिन्दुओंके बीच स्थानोंका बंटवारा उनकी अपनी अपनी आबादीके हिसाबसे किया जायगा अथवा दोनोंकी किसी स्वीकृत पद्धतिसे किया जायगा। निर्वाचन-क्षेत्र विविध तत्त्वोंवाले होंगे और मतदान एकत्रित न होकर विभाजित होगा। जो उम्मीदवार चुनावमें पड़े हुए अपने ही समुदायके अधिकसे अधिक मत और दूसरे समुदायोंके कमसे कम २५ प्रतिशत मत प्राप्त करेगा, वह निर्वाचित घोषित कर दिया जायगा। यदि कोई भी उम्मीदवार इन शर्तोंको पूरा नहीं करेगा, तो वह उम्मीदवार निर्वाचित घोषित कर दिया जायगा, जिसे चुनावमें पड़े हुए अपने ही समुदायके दूसरे नम्बर पर सबसे अधिक मत प्राप्त होंगे और दूसरे समुदायोंके कमसे कम २५ प्रतिशत मत मिलेंगे। यदि पिछले वाक्यमें दी गई शर्तें कोई भी उम्मीदवार पूरी नहीं करेगा, तो जो उम्मीदवार सारे मतोंमें से अधिकसे अधिक मत प्राप्त कर लेगा उसे चुन लिया जायगा।]

४

आसाम डर गया। २३ मार्चको ही आसाम प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीकी कार्यसमितिने एक प्रस्ताव पास करके अपना भय प्रकट कर दिया कि यदि सर्वसत्ताधारी बंगालको सत्ताका एक वारिस बना दिया जायगा, तो आसाम भारतीय संघसे बिलकुल कट जायगा । आसामके मुख्यमंत्री गोपीनाथ बारदोलाईका संकटको प्रकट करनेवाला एक संदेश आया: "यदि बंगालको स्वतंत्र राज्यका दर्जा दे दिया जाता है, तो आसाम ... केन्द्रसे और केन्द्रके साथ जुड़नेवाले दूसरे प्रान्तोंसे कट जायगा और उसके लिए कोई समुद्री मार्ग नहीं रहेगा। ... इसलिए उस पर पूर्व और पश्चिम दोनों तरफसे हमले हो सकेंगे । ... आसामका भारतीय संघ (यूनियन) के साथ सम्पर्क रहना ही चाहिये । ... उसके लिए समुद्री मार्ग होना ही चाहिये। ..."

केवल इसी कारणसे अखण्ड सर्वसत्ताधारी बंगालके प्रश्न पर गांधीजीके रवैयेमें परिवर्तन न होता। ऐसा मालूम होता है कि उन्होंने सर्वसत्ताधारी बंगालके प्रश्न पर भारतकी एकताकी अंतिम लड़ाई लड़नेकी संभावनाको और अखिल भारतीय आधार पर लड़ाईका मोर्चा हार जाने पर भी बंगालके प्रश्न पर कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओंके लिए फिरसे युद्धक्षेत्र प्राप्त करतेकी संभावनाको दूर नहीं किया था । इसके लिए यह जरूरी था कि आसाम "स्वाधीनता की चुनौती" को स्वीकार करता और केवल अहिंसाकी शक्तिसे अपनी स्वतंत्रताकी रक्षा करनेका साहस करता । (देखिये खण्ड-२, पृ. १६९-७१) इसके लिए

आसाम तैयार नहीं था। कांग्रेसके वरिष्ठ नेता भी जिन दुर्भाग्यपूर्ण संभावनाओंकी ओर आसामके मुख्यमंत्रीने ध्यान खींचा था उनका खतरा उठानेके लिए तैयार नहीं थे। [आसाम और कांग्रेसके वरिष्ट नेताओंकी आशंकाओंको पूरी तरह समझनेके लिए हमें उस आश्चर्यजनक तर्कको याद करना होगा, जिसके आधार पर मुस्लिम लीगने आसामको पाकिस्तानमें शामिल करनेकी अपनी मांगको उचित बताया था। आसामको पाकिस्तानमें शामिल करनेकी मांगके दो कारण बताये गये थे: (१) आसाम "मुस्लिम क्षेत्र" के भीतर था। आम तौर पर हम "मुस्लिम क्षेत्र" उसे मानेंगे, जिसमें मुसलमानोंका बहुमत हो। परन्तु यहां आसाम ऐसा प्रान्त था, जिसमें मुसलमान अल्पसंख्यामें थे, फिर भी उसे पाकिस्तानमें इसलिए शामिल किया जा रहा था कि वह ऐसे प्रदेशमें पड़ता था, जिसे मुस्लिम लीग "मुस्लिम क्षेत्र" बनाना चाहती थी। (२) कबायली लोग, जिनकी संख्या २९ लाख थी, न केवल हिन्दू नहीं थे (जो बेहूदा बात थी) बल्कि "सभ्य जीवन" के अयोग्य भी थे। इससे आबादीके "सभ्य वर्ग" की संख्या १०९ लाखसे घट कर ८० लाख रह जाती । परन्तु चूंकि ४५ लाख हिन्दू फिर भी पूर्ण बहुमतमें रहते और मुसलमानोंसे उनकी संख्या अधिक होती – मुसलमानोंकी संख्या ३४.७५ लाख ही थी – इसलिए चायके बगीचों और तेलकी खानोंमें काम करनेवाले १५.२ लाख हिन्दू मजदूरोंको कुछ संख्यामें से और घटा दिया जाना चाहिये, क्योंकि वे वहांके "अधिवासी नहीं बने थे" और एक जगहसे जाकर दूसरी जगह बस जाते थे। इस प्रकार १०९ लाखकी आबादीमें ३४.७५ लाख मुसलमानोंका "बहुमत" हो जाता ! जैसा डॉक्टर राजेन्द्रप्रसादने बताया, इस तर्कमें एक ही त्रुटि थी। वह यह थी कि यदि यह तर्क अथवा ऐसा ही दूसरा तर्क भारतके दूसरे भागों पर लागू किया जाता, तो हिन्दू सारे भारतमें अल्पसंख्यक बन जाते, समूचा हिन्दुस्तान पाकिस्तान हो जाता और फिर अलग उत्तर-पश्चिमी और उत्तर-पूर्वी मुस्लिम क्षेत्र बनानेकी बिलकुल जरूरत ही नहीं रह जाती ! इन कारणोंमें जिन्नाने एक और कारण जोड़ दिया। वह यह कि "पाकिस्तानके सिवा आसामको और कहीं बिठानेका कोई रास्ता ही नहीं है। इसके लिए जलपाईगुड़ी और दार्जिलिंगके भारी हिन्दू आबादीवाले (इन जिलोंमें क्रमशः ७७ प्रतिशत और ९६ प्रतिशत हिन्दू आबादी थी) जिलोंको सबसे पहले पाकिस्तानमें शामिल करना होगा, क्योंकि वे संयोगवश ऐसे प्रान्तके हिस्से हैं जिस पर पाकिस्तानका दावा है। उसके बाद आसामको भी पाकिस्तानमें शामिल हो जाना चाहिये, क्योंकि इन दो जिलोंके निकल जानेके फलस्वरूप आसाम भारतीय संघसे कट जायगा।" जहां तक आसामका सम्बन्ध था, यह 'चित भी मेरी और पट भी मेरी' जैसी बात थी।]

इस समय तक वास्तवमें माउन्टबेटनकी पहली योजनाके मसौदेमें बड़े महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कर दिये गये थे। उन्होंने विकल्पका अधिकार प्रान्तोंसे छीन लिया था; हां, कांग्रेस और लीग दोनोंकी तरफसे इसकी मांग होती तो दूसरी बात थी। भारत और पाकिस्तान दोनोंके बाहर सर्वसत्ताधारी बंगालकी रचनाके विचार पर ध्यान देनेको जिन्ना तैयार थे, बशर्ते उसके बदलेमें उन्हें पूरा पंजाब मिल जाता; परन्तु यदि माउन्टबेटनकी योजनाके मसौदेके अनुसार पंजाबका बंटवारा होता तो वे तैयार नहीं थे और यदि इससे सीमाप्रान्तको प्रभुसत्ता मिलती तब तो वे बिलकुल ही तैयार नहीं थे।

शरत बोसके पैरों तलेसे जमीन धीरे धीरे खिसकने लगी। २८ मईको, माउन्टबेटनके लंदनसे लौटनेके दो दिन पहले, बंगाल प्रान्तीय मुस्लिम लीगकी कार्यसमितिने इस आशयका एक प्रस्ताव स्वीकृत किया कि न तो कार्यसमितिका और न उसके द्वारा नियुक्त उपसमितिका "उस प्रस्तावसे कोई सम्बन्ध है जो बंगालके लिए संविधान तय करनेके विषयमें पत्रोंमें प्रकाशित हुआ है" और वह "मुस्लिम लीगकी पाकिस्तानकी मांगका जोरदार समर्थन करती है।" उसी दिन कांग्रेस महासमितिके प्रधान सचिवने भी एक वक्तव्य निकाल कर संयुक्त सर्वसत्ताधारी बंगालकी स्थापनाके प्रस्तावसे इनकार कर दिया और बंगालका एक स्वतंत्र राज्य बनानेके बारेमें विरोध प्रकट कर दिया।

६ जूनको शरत बोस दिल्लीमें गांधीजीसे मिले और उनसे अपनी योजना पर कुछ अधिक विस्तारसे चर्चा की। उस समय तक लीग और कांग्रेस दोनोंने अधिकृत रूपमें माउन्टबेटनकी ३ जूनवाली विभाजनकी योजना स्वीकार कर ली थी और संयुक्त सर्वसत्ताधारी बंगालके प्रस्तावको तिलांजलि दे दी गई थी।

गांधीजीका पत्र शरत बोसको,

८ जून, १९४७

मैंने आपका मसौदा पढ़ लिया। अब मैंने इस योजनाकी चर्चा मोटे तौर पर पंडित नेहरू और सरदारके साथ कर ली है। दोनों इस प्रस्तावके घोर विरोधी हैं और उनकी राय है कि यह हिन्दुओं और अनुसूचित जातियोंके नेताओंमें फुट डालनेकी एक चाल ही है। उनके लिए यह केवल सन्देहकी नहीं, परन्तु लगभग दृढ़ विश्वासकी चीज है। उनका यह भी खयाल है कि अनुसूचित जातियोंके मत प्राप्त करनेके लिए पानीकी तरह रुपया खर्च किया जा रहा है। यदि

ऐसी बात है तो कमसे कम अभी तो आपको यह लड़ाई छोड़ देनी चाहिये। कारण, जो एकता भ्रष्टाचारके द्वारा खरीदी जायगी, वह खुले विभाजनसे बुरी होगी – क्योंकि वह इस बातकी स्वीकृति होगी कि दोनोंके दिल स्थायी रूपमें फट गये हैं और हिन्दुओंको दुःखद अनुभव हुए हैं। मैं यह भी देख रहा हूं कि भारतके दोनों भागोंके बाहर सत्ता हस्तान्तरित होनेकी कोई संभावना नहीं है। इसलिए जो भी व्यवस्था होगी वह कांग्रेस और लीगमें पहलेसे हुए समझौतेके आधार पर ही होगी। जहां तक मैं देख सकता हूं, आपको यह चीज नहीं मिल सकती। फिर भी यदि आपकी श्रद्धा उपरोक्त भ्रष्टाचार और चालबाजीकी बालू पर खड़ी नहीं है, तो मैं आपकी श्रद्धाको विचलित नहीं करना चाहता। यदि आपको पूरा विश्वास नहीं हो जाता कि इस सन्देहके लिए कोई कारण नहीं है और **आपको स्थानीय मुस्लिम लीगका लिखित आश्वासन और उसके साथ केन्द्रीय मुस्लिम लीगका समर्थन नहीं मिल जाता, तो आपको बंगालकी एकताकी लड़ाई छोड़ देनी चाहिये** और बंगालके विभाजनके लिए जो वातावरण पैदा हो चुका है उसमें बाधा डालना बन्द कर देना चाहिये। (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

उसी दिन शामको अपने प्रार्थना-प्रवचनमें गांधीजीने भ्रष्टाचार-सम्बन्धी आरोपोंका उल्लेख किया। उस पर शरत बोसका एक रोषपूर्ण तार आया, जिसमें खुली जांचकी मांग की गई: "अगर जानकारी झूठी दी गई है, तो देनेवालोंको दण्ड दिया जाय। अगर जानकारी सही है तो रिश्वत देने और लेनेवाले दोनोंको दण्ड दिया जाय ।" गांधीजीने उन्हें सांत्वना देनेकी कोशिदा की : "रिश्वत देने और लेनेवालोंको साधारण व्यक्ति कैसे दण्ड दे सकते हैं ? केवल लोकमतके न्यायालयमें ही उन्हें दण्ड दिया जा सकता है। शान्त और स्थिर रहिये ।" शरत बोस शान्त हो गये, परन्तु उनकी निराशा बनी रही ।

शरत बोसका पत्र गांधीजीको,

१४ जून, १९४७

मैं देखता हूं कि जवाहरलाल और वल्लभभाई दोनों इस प्रस्तावके घोर विरोधी हैं। उनकी इस रायसे मैं सहमत नहीं हो सकता कि यह सिर्फ हिन्दुओं और अनुसूचित जातियोंके नेताओंमें फूट डालनेकी ही चाल है। चूंकि मुस्लिम लीगके कुछ नेताओंसे पिछली जनवरीमें और उसके बाद कुछ कांग्रेसी नेताओंसे भी मेरी बातचीत हुई है, इसलिए मैं निश्चित रूपमें और दृढ़तासे

कह सकता हूं कि चालबाजी जैसी कोई बात नहीं थी। मैं समझ नहीं सकता कि जवाहरलाल और वल्लभभाईके यह कहनेका क्या अर्थ है कि उनके खयालसे अनुसूचित जातियोंके मत प्राप्त करनेके लिए अनाप-शनाप रुपया खर्च किया जा रहा है। तथ्योंसे तो निबटा जा सकता है, परन्तु केवल भावनासे या शंकासे कैसे निबटा जाय ? किन्तु इतना मैं जरूर कहूंगा कि यह भावना अथवा शंका कि अनुसूचित जातियोंके मत प्राप्त करनेके लिए रुपया खर्च किया जा रहा है बिलकुल निराधार है।

मेरी श्रद्धा अविचलित है और मैं बंगालकी एकताके लिए अपने नम्र ढंगसे काम करना चाहता हूं। विभाजनके पक्षमें जो धुआंधार मुहिम चलाई गई है उसके बाद भी मुझे इसमें कोई शंका नहीं है कि यदि जनमत संग्रह किया जाय, तो बंगालके हिन्दू बड़े बहुमतसे विभाजनके विरुद्ध अपनी राय देंगे। अभी तो बंगालकी आवाजका गला घोंट दिया गया है, परन्तु मुझे पूरी आशा है कि वह दृढ़तासे सामने आयेगी।

गांधीजीको शरत बोसके उद्देश्यके साथ पूरी सहानुभूति थी, परन्तु उन्होंने देख लिया कि उनकी यह योजना सफल नहीं होगी । कांग्रेसके वरिष्ठ नेंताओंके डरमें सार था। और सुहरावर्दीकी उद्देश्यकी पूर्ति करानेकी शक्ति अत्यंत संदिग्ध थी। वे दाव तो बड़े बड़े लगाते थे, परन्तु कायदे आजमका सामना करनेकी न तो उनमें शक्ति थी, न इच्छा ही। और जिन्ना मुस्लिम लीग कैम्पमें कोई बेकारकी बात सहन नहीं करते थे। इसलिए सुहरावर्दी खतरनाक रास्ते पर चलनेका प्रयत्न कर रहे थे। और शरत बोस तथा उनके मित्रोंमें दूरदर्शिताकी अपेक्षा उत्साह अधिक था, इस कारण वे अनजाने ही शहीदके निराशापूर्ण जुएमें फंस रहे थे। गांधीजीको चिन्ता होने लगी। बंगालको भूतकालमें इसी तरहके साधनों द्वारा किये गये "समझौतों" का काफी अनुभव हो चुका था। गांधीजीने शरत बोसको बताया कि यही उद्देश्य उसके साथ लगे हुए कोई खतरे उठाये बिना कैसे सिद्ध किया जा सकता है।

११ जूनको अपने प्रार्थना-प्रवचनमें गांधीजीने कहा: मुझे बंगालकी एकताकी रक्षामें अकेले खड़े रहनेकी परवाह नहीं, यदि रक्षा गौरव, प्रामाणिकता और दोनों पक्षोंकी इच्छाके साथ की जा सकती हो। मेरे लिए यह कोई राजनीतिक खेल या सौदा नहीं है; मैं सच्ची हार्दिक एकता चाहता हूं। यद्यपि प्रान्तीय मुस्लिम लीगने इस प्रस्तावको ठुकरा दिया है, फिर भी बंगालके मुसलमान यह आश्वासन – जिसके

साथ ठोस अमल जुड़ा हो – दे सकते हैं कि मुस्लिम बहुमतसे हिन्दुओंको डरना नहीं चाहिये; और बंगालका विभाजन नहीं होगा। **आजकी स्थितिमें भी हिन्दुओं, मुसलमानों और सिक्खों तथा दूसरी सारी कौमोंके लिए यह खुला है कि वे सब आपसमें मिल जायें और जहां तक भावी कदमोंका सम्बन्ध है वहां तक ३ जूनके वाइसरॉयके दस्तावेजको रद्दी कागजका टुकड़ा समझें**। ३ जूनवाली योजनाने कांग्रेस और लीगके बीच हुए समझौतेको लेखबद्ध करनेके सिवा और कुछ भी नहीं किया है। यह ऐसा समझौता है, जिसे दोनों ही पक्ष पसन्द नहीं करते। कांग्रेसके प्रवक्ताओंने यह स्पष्ट कर दिया है कि वे भारतके किसी भी विभाजनमें स्वेच्छासे हिस्सेदार नहीं बन सकते। कायदे आजम जिन्नाने इस समझौतेके बारेमें कोई उत्साह नहीं दिखाया, क्योंकि बंगाल और पंजाबका बंटवारा होनेवाला है। इसलिए मेरा सुझाव है कि कायदे आजमको अपनी सारी बातें प्रकट कर देनी चाहिये, ताकि दुनिया समझ ले कि मुस्लिम बहुमतके शासनसे अथवा पाकिस्तानसे उनका क्या मतलब है।

२१ जूनको गांधीजीने हरिद्वारसे शरत बोसको लिखा : "यह पत्र आपके १४ जूनके पत्रकी पहुंच है। जब भौगोलिक एकता भंग हो गई है तब (हार्दिक) एकताके लिए काम करनेका मार्ग मैंने बता दिया है।"

शरत बोसने प्रत्युत्तर दिया: "जो कुछ हुआ है उसके बावजूद हम सबको एकताके लिए काम करना होगा। यह तो ईश्वर ही जानता है कि हमारा काम सफल होगा या नहीं।"

३ जूनवाली योजना पर सब दलोंके हस्ताक्षर हो जानेके बाद भी शरत बोस अपना एकाकी प्रयत्न करते रहे। उन्होंने जिन्नाको सुझाया कि वे बंगाल विधान-सभाके मुस्लिम लीगी सदस्योंको बंगालके विभाजनके विरुद्ध और सर्वसत्ताधारी बंगालके पक्षमें संगठित मत देनेकी सूचना करें, ताकि माउन्टबेटनको मजबूर होकर अपनी योजना बदलनी पड़े :

कलकत्ता,

९ जून, १९४७

प्रिय जिन्ना,

. . . बंगाल अपने इतिहासके सबसे बड़े संकटमें से गुजर रहा है, परन्तु उसे अब भी बचाया जा सकता है। . . . मैं आपसे जो अनुरोध कर रहा हूं वह उन विचारोंके अनुसार है, जो

आपने हमारी मुलाकातके समय मेरे सामने प्रकट किये थे। परन्तु मुझे ऐसा लगता है कि अगर आप केवल अपने विचार अपने सदस्योंके सामने प्रकट कर दें और उन्हें ऐसी स्पष्ट सूचना न दें कि वे अपना मत किस प्रकार दें, तो स्थितिको बचाया नहीं जा सकता। . . . यदि सूचनाके अनुसार बंगाल विधान-सभाके सदस्य अपना संगठित मत दें . . . तो मेरे खयालसे लॉर्ड माउन्टबेटनको विवश होकर विधान-सभाके (यूरोपियनोंके सिवा) तमाम सदस्योंकी दूसरी सभा बुलानी पड़ेगी, जिसमें इस प्रश्नका निर्णय किया जा सकता है कि सारा प्रान्त अपनी स्वयंकी संविधानसभा चाहता है या नहीं।

आपका,

शरतचन्द्र बोस

परन्तु यह तो उस समयकी स्थितिमें "अब पछताये होत क्या जब चिड़ियां चुग गईं खेत" जैसी बात थी।

गांधीजीने भ्रष्टाचारका सार्वजनिक रूपमें जो उल्लेख किया उस पर सुहरावर्दीकी प्रतिक्रिया आशाके अनुसार अधिक तीव्र हुई: "मुझे अफसोस है कि आपके इस वक्तव्यने विचार्य विषयोंको भी गड़बड़ा दिया है। अखबार अतिशय प्रसन्नतासे आपके इस कथन पर टूट पड़े हैं कि संयुक्त बंगालकी योजना अप्रामाणिक है। मुझे आपसे किसी उत्तरकी आशा नहीं है और न यह आशा है कि इस पत्रका आप पर जरा भी असर होगा। परन्तु आपको अपनी प्रतिक्रिया बता देना मैं अपना फर्ज समझता हूं; क्योंकि आपके वक्तव्यसे ऐसी बुराई पैदा हो सकती है, जिसकी शायद कभी क्षतिपूर्ति न हो सके । इन शब्दोंके लिए आप मुझे क्षमा कीजिये। आपका मतलब किन लोगोंसे है यह ठीक ठीक बता न पानेके कारण आपने उन सब व्यक्तियोंको बदनाम कर दिया है, जिनका संयुक्त बंगालमें विश्वास है।" [शहीद सुहरावर्दीका पत्र गांधीजीको, १० जून, १९४७] पत्रके अन्तमें सुहरावर्दीने लाक्षणिकतासे लिखा था : "साथ ही मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि आपके लिए मेरे दिलमें गहरा आदर है।"

परन्तु गांधीजीने अपना उत्तर भेजा: "मुझे आपका लंबा और रोषपूर्ण पत्र मिला। मुझसे नाराज होनेके बजाय आपको मेरा आभारी होना चाहिये कि किसी शंकाकी गुंजाइश नहीं थी तो भी मैंने सारी शंका दूर कर दी है। . . . क्या आप यह अनुभव नहीं करते कि बंगालकी एकता जितनी आपको प्रिय है

उतनी ही मुझे भी प्रिय है? कांग्रेस और मुस्लिम लीगने जो विभाजन स्वीकार किया है, फिर वह कितना ही अनिच्छापूर्ण क्यों न हो, उसे **आप अब भी मिटा सकते हैं, यदि मुस्लिम लोकमत आपके पक्षमें हो और, जैसा मैंने हमारी मुलाकात आपको सुझाया था, आप नम्र बन कर हिन्दुओंको अपना बना लें** ।" [गांधीजीका पत्र शहीद सुहरावर्दीको, १२ जून, १९४७] (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

सुहरावर्दीका यह आखिरी क्रोधपूर्ण विस्फोट था। समयका प्रतिशोध निकट ही था, जिसने सबको आश्चर्यचकित करते हुए गांधीजीको अचानक बंगालके मुख्यमंत्रीके " मेरे प्यारे बापूजी" और बंगालके मुख्यमंत्रीको उनका "स्नेहाधीन शहीद" बना दिया।

५

गांधीजीकी अनेक चिन्ताओंमें अब एक और बढ़ गई। कुछ समयसे मनु गांधीकी तबीयत खराब रहने लगी थी। सोदपुरके निवास-कालकी अंतिम रात्रि (१३ मई) को वह अचानक बीमार हो गई। ओढ़नेके लिए काफी गरम कपड़े पास नहीं थे, क्योंकि गांधीजीका आग्रह सदा कम सामान साथमें रखनेका रहता था। सिर्फ एक पतली-सी शाल, एक सूती चद्दर और बिस्तरकी एक दरी थी। और ये सब काफी नहीं थे। एक पुराना मैला-सा ऊनी कम्बल कमरेके कोनेसे खींच कर और ओढ़ लिया गया। इसके बाद गांधीजी बार बार इस घटनाका उल्लेख करके कपड़ोंके बारेमें मनुष्यके घमंडका मजाक उड़ाया करते थे।

जब डॉ. विधानचन्द्र राय दूसरे दिन सुबह आये तो उन्होंने गांधीजीके चेहरे पर भारी थकावटके चिह्न देखे। उन्होंने सलाह दी कि सब मुलाकातें बन्द कर दी जायें और सप्ताहमें एकके बजाय दो दिनका मौन रखा जाय।

गांधीजी : "जब चारों ओर आग धधक रही हो तब आराम लेकर अपनी आयु बढ़ानेकी मेरी इच्छा नहीं है ।"

डॉ. राय : "बापू, आपके अपने लिए नहीं। लोगोंको आपकी सेवाकी सबसे अधिक आवश्यकता है।"

गांधीजी : "क्या लाभ है ? . . . न तो लोगोंके लिए और न सत्ताधारियोंके लिए अब मेरा कोई उपयोग है। ऐसी हालतमें 'करो या मरो' ही मेरे लिए अधिक शोभाकी बात है। मैं काम करते करते और

आखिरी दम तक ईश्वरका नाम लेते लेते मरना चाहता हूं। मुझे लगता है कि ईश्वर मेरी यह इच्छा पूरी करेगा।"

थोड़ी देर विचार करनेके बाद उन्होंने यह भी कहा : "आज तो अपने विचारोंमें मैं अकेला ही हूं। परन्तु मुझे अकेलापन महसूस नहीं होता । जब ईश्वर मुझे सब परिस्थितियोंमें दृढ़ और शान्त रहनेका बल और साहस देता है तब मुझे उसकी झांकी होती है। वह हमारे सामने मनुष्यके रूपमें प्रकट नहीं होता – क्योंकि वह निराकार है। परन्तु हम सब अपूर्ण प्राणी होते हुए भी उस समय ईश्वरका अनुभव करते हैं जब अपने जीवनमें हम प्रतिक्षण सावधान और जागरूक रहने तथा जीवनके सीधे और संकीर्ण मार्ग पर अचल गतिसे चलनेका सामर्थ्य प्राप्त करते हैं। **यह शक्ति उसीसे हमें मिलती है। वही यह शक्ति है**।"

मनुकी बीमारीका जिक्र करते हुए गांधीजी बोले कि यह इस बातकी निशानी है कि रामनाम उसके हृदय पर अभी दृढ़तासे अंकित नहीं हुआ है। और चूंकि वह सत्यकी शोधमें मेरे साथ है, इसलिए इसका अर्थ यह हुआ कि रामनाम मेरे हृदयमें भी पूरी तरह अंकित नहीं हुआ है। अन्यथा मेरी श्रद्धाका असर मनु पर भी पड़ना चाहिये था और उसकी बीमारीमें डॉक्टरों पर निर्भर रहनेकी आवश्यकता नहीं पड़नी चाहिये थी।

दोपहरको विद्यार्थियोंकी एक मंडली गांधीजीसे मिलने आई। उनकी इच्छानुसार उन्हें केवल २ मिनट देना गांधीजीने स्वीकार किया था, परन्तु दिये १० मिनट । उन्होंने सोचा कि जो समय मैंने ज्यादा दिया है उसकी क्षतिपूर्ति मुझे हरिजन-कार्यके लिए व्यापार करके और अपने हस्ताक्षरोंकी फीस उतनी ही बढ़ा कर करनी चाहिये । बिदाके समय उन्होंने कहा : "तुम लोग और कुछ करो या न करो, किन्तु राष्ट्रीय एकताके निर्माण-कार्यमें तुम्हें पूरा योग देना चाहिये। इसके लिए तुम्हें अपने हृदयसे सम्प्रदायवाद और जाति-पांतिकी सब भावनाएं निकाल देनी चाहिये और अपने सामने सदा कष्ट-पीड़ित गरीबोंका ही खयाल रखना चाहिये । अगर तुम इतना करोगे तो मैं समझ लूंगा कि मैंने आज तुम्हें जो समय दिया उसका सदुपयोग हुआ।"

जब विद्यार्थी जाने लगे तो छात्राओंमें से दोने अपनी उंगलियोंसे सोनेकी अंगूठियां उतार कर दरिद्र-नारायणके लिए गांधीजीको भेंट कर दीं।

नेहरूजीका एक तार आया। लॉर्ड माउन्टबेटन १७ मईको दिल्लीमें विभिन्न दलोंके नेताओंका जो सम्मेलन रखना चाहते थे, उसके संबंधमें सलाह-मशविरा करनेके लिए दिल्लीमें गांधीजीकी आवश्यकता थी । जब उन्होंने तार पढ़ा तो मन ही मन कहने लगे : "इस दुनियामें मानव एक यात्री है।" आगे उन्होंने कहा: "मेरे भाग्यमें भारतके इस सिरेसे उस सिरे तक भटकना ही लिखा है। मैं एक जगह तभी रह सकूंगा जब या तो भारत स्वतंत्र हो जायगा या मैं मर जाऊंगा।"

कलकत्तेसे चलनेके पहले उन्होंने शहरके उपद्रव-पीड़ित क्षेत्रोंका दौरा किया। कार्यवाहक मुख्यमंत्री मुहम्मद अली और बंगाल हिन्दू महासभाके मंत्री उनके साथ गये। तीसरे पहरकी धूप बहुत तेज थी। जब वे ५० मील मोटरमें घूम कर ढाई घंटेके बाद लौटे, तो उनकी छातीकी सामान्य गहरी लाली अंगारेकी तरह चमक रही थी। शामको साढ़े सात बजे वे पटनाकी गाड़ी पकड़नेके लिए रेलवे स्टेशन चले गये। अधिकांश स्टेशनों पर, जहां गाड़ी ठहरी, भीड़ने कोई अव्यवस्था पैदा नहीं की। परन्तु बर्दवानमें भीड़ बहुत ज्यादा थी। खिड़कीका एक कांच तोड़ दिया गया। अन्तमें शान्ति तब स्थापित हुई जब गांधीजीकी मंडलीके सदस्योंने और सब उपाय निष्फल सिद्ध होने पर भीड़से रामधुन गवाई।

दूसरे दिन मनुको तेज बुखार आ गया। उपांत्र (एपेंडिक्स) के स्थानमें तीव्र वेदना थी। उस दिन रातके साढ़े नौ बजे पटना मेडिकल अस्पतालमें उसके एपेंडिसाइटीसका ऑपरेशन किया गया। जंतु-नाशक जाली मुंह पर लगा कर गांधीजी ऑपरेशन पूरा हुआ तब तक बैठे रहे और एपेंडिक्स निकालनेके बाद उसे जांच कर पक्का विश्वास भी उन्होंने कर लिया; क्योंकि जिन प्राकृतिक चिकित्सकोंसे उन्होंने परामर्श किया था, उनका यह दृढ़ मत था कि मनुकी बीमारी एपेंडिसाइटीसकी बिलकुल नहीं है।

जब मनुको बेहोशीकी दवा सुंघाई जा रही थी तब गांधीजीने उसे सलाह दी: "संपूर्ण शक्तिसे रामनाम जपती रहना, सब ठीक हो जायगा।" उनका हाथ प्रेमसे उसके माथे पर बना रहा। जब तक साढ़े ग्यारह बजे उसे ऑपरेशन थियेटरसे रोगियोंके कमरेमें नहीं लाया गया तब तक गांधीजी वहांसे हटे नहीं। गांधीजी चाहते थे कि मनुको "गरीब आदमीकी बच्चीके लायक जनरल वार्ड" में ही रखा जाय। लेकिन अस्पतालके व्यवस्थापकोंको लगा कि इससे अस्पतालके सारे दैनिक कार्यक्रममें गड़बड़ी पैदा हो जायगी । जब गांधीजी बीमारको देखने जायंगे तब सब लोग वहां भीड़ लगा देंगे। इसलिए उन्होंने मनुको एक अलग कमरेमें रखना स्वीकार कर लिया ।

इससे एक और समस्या खड़ी हो गई। जिन रोगियोंको बिस्तर छोड़नेकी सख्त मनाही थी, वे अस्पतालके नियमोंकी और डॉक्टरोंके आदेशोंकी परवाह न करके दर्शनोंके लिए गांधीजीके पास जाकर भीड़ करने लगे । इससे अस्पतालके अधिकारी किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गये । गांधीजीने यह कह कर उन्हें इस संकटसे बचा लिया कि वे बीमारोंके वार्डोंका रोज एक चक्कर लगा लेंगे । बीमार प्रसन्न हो गये। उनसे भी अधिक प्रसन्न अस्पतालके कर्मचारीहुए कि उन्हें प्रतिदिन गांधीजीके दर्शन करनेका सौभाग्य मिलेगा। वे बीमारोंके वार्डोंको खूब साफ-सुथरा रखनेका विशेष ध्यान रखने लगे।

आठवें दिन मनुको अस्पतालसे छुट्टी मिली । इस अर्सेमें गांधीजी पर मानसिक और शारीरिक दोनों प्रकारका बड़ा तनाव रहा। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य मूलमें एक ही वस्तु है, इसलिए किसी साथीकी बीमारी उनके लिए सदा भारी संकट बन जाती थी। परन्तु मनुके उदाहरणमें केवल एक साथीने गांधीजीकी कृपा ही नहीं खोई थी, परन्तु गांधीजीकी अपनी श्रद्धाको भी प्राकृतिक चिकित्सामें विचलित कर दिया था। क्या उनकी उस श्रद्धाके लिए सत्यका कोई आधार था ? उनके सत्यरूपी ईश्वरने उनके सामने एक चुनौती रख दी थी। उसका उन्हें स्पष्ट और असंदिग्ध उत्तर देना था। इसलिए उन्होंने अपनी स्वाभाविक लगनके साथ प्राकृतिक चिकित्साके बारेमें सत्यकी शोध आरम्भ कर दी।

मनुके पिताको उन्होंने लिखा: "ईश्वरने मेरे अहंकारको उतार दिया है। जब मैं दिल्लीमें था तब भी मुझे एपेंडिसाइटीसका सन्देह हुआ था। लेकिन मैंने ऐसी आशा रखी थी कि वह मिट्टीके उपचारसे ठीक हो जायगा। परन्तु मिट्टीकी पट्टियोंसे मनुको कोई लाभ नहीं हुआ। कल डॉक्टरोंने तुरन्त ऑपरेशन करानेकी सलाह दी। इस प्रकार ईश्वर अहंकारी मनुष्यको नम्रता सिखाता है। वह मुझे अन्तमें कहां ले जायगा, इसका मुझे पता नहीं है। इस घटनाके बाद मैं किसीसे यह कैसे कह सकता हूं कि प्राकृतिक चिकित्सासे रोग न मिटें, तो वह मौतका सामना करे। यदि मैं कमसे कम स्वयं अपने उदाहरणमें भी ऐसा कर सकूं, तो मुझे सन्तोष हो जायगा।"

एक प्राकृतिक चिकित्सकको उन्होंने लिखा: "मेरे लिए प्राकृतिक चिकित्सा भी अहिंसाका एक प्रयोग है। . . . मनुने अपने आपको पूरी तरह मेरे हाथोंमें छोड़ दिया था। मैं जो भी चाहता वही करनेको वह तैयार थी। मैं अपने कर्तव्यका विचार कर ही रहा था कि इतनेमें उसमें एपेंडिसाइटीस जैसे लक्षण

दिखाई देने लगे। मैं उस पर मिट्टी, पानी और आहार-संबंधी उपचार तो कर ही रहा था। मैंने एनिमाकी सिफारिश की। परन्तु इससे उसे दस्त लग गये। पासमें कोई सुयोग्य प्राकृतिक चिकित्सक नहीं था, जिस पर मैं भरोसा कर सकता। मैं आपको स्वीकार करनेके लिए तैयार था। परन्तु अधिक विचार करने पर मैं इस निर्णय पर पहूंचा कि शायद अपूर्ण होते हुए भी मैं अकेला ही सच्चा प्राकृतिक चिकित्सक हूं। . . . मैंने हार मान ली और अत्यन्त अनिच्छापूर्वक ही सही, उसका ऑपरेशन करा दिया। यदि मेरे पास आवश्यक ज्ञान होता, तो शायद मैं ऑपरेशनको टाल सकता था। ऐसी परिस्थितिमें आप क्या करते ? शायद इससे भविष्यके लिए मुझे कुछ ज्ञान मिल जाय।"

एक और प्राकृतिक चिकित्सकको उन्होंने पत्र लिखा। इस चिकित्सकने प्राकृतिक चिकित्साकी मर्यादाएं बताकर गांधीजीको सान्त्वना देनेका प्रयत्न किया था। गांधीजीका पत्र इस प्रकार था: "आप कहते हैं कि प्राकृतिक चिकित्साकी भी मर्यादा होती है। उदाहरणार्थ, यदि किसी आदमीके पैरकी हड्डी टूट जाती है, तो उसका पैर काट कर नया पैर लगा देना प्राकृतिक चिकित्साके क्षेत्रसे बाहर है। क्या यही तर्क एपेंडिसाइटीस पर लागू होगा ? टूटे हुए पैरवाले मनुष्यके मामलेमें तो वह चाहें तो लंगड़ा रह कर भी उस बाधाको सहन कर सकता है; लेकिन एपेंडिसाइटीसके मामलेमें तो दूसरा रास्ता मौतका ही होगा। क्या इसे स्वीकार कर लेना चाहिये ?"

प्राकृतिक चिकित्साके क्षेत्रमें जो अव्यवस्था और अराजकता थी, उससे गांधीजीको दुःख होता था। कोई दो प्राकृतिक चिकित्सक एक-दूसरेसे सहमत नहीं हो सकते थे । उन्होंने दुःखपूर्वक कहा : "प्रत्येक प्राकृतिक चिकित्सक अपने आपको अन्तिम प्रमाण मानता है। प्राकृतिक चिकित्साके विज्ञानका विकास करनेके लिए कोई आगे नहीं आता।" बात यह थी कि गांधीजी इतने अधिक क्रान्तिकारी थे कि वे किसीको आत्म-संतोषकी भावनासे चैन नहीं लेने देते थे। उन्होंने अर्वाचीन चिकित्सा-शास्त्रको "राक्षसी जादूका सार" कहा है, क्योंकि वह आत्माकी परवाह न करके भौतिक शरीरको देवता मानता है, नैतिक विचारोंसे सम्बन्ध न रखनेवाले शारीरिक भोग-विलासका दास बन कर नीचे गिर गया है और भौतिकवाद तथा धनपूजामें सदा लीन रहता है। परन्तु प्राकृतिक चिकित्सकोंको, जिनकी जातिका होनेका गांधीजी अपने लिए दावा करते थे, गांधीजी भी कम कष्ट देनेवाले साथी नहीं लगे होंगे । क्योंकि गांधीजी मतांधताके, आलस्यके, शिथिलताके, साहस व उपक्रमके अभावके तथा इनसे भी अधिक आत्मतृप्तिके कट्टर दुश्मन थे।

जिस प्राकृतिक चिकित्सकने मनुकी बीमारीका गलत निदान किया था, उसे गांधीजीने लिखा: "मैं आपके उत्साहकी तारीफ करता हूं। परन्तु भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली केवल उत्साहके आधार पर जीवित नहीं रह सकती और न मेरे उसके साथ एकरूप होनेसे ही उसे जीवित रखनेमें मदद मिलेगी; क्योंकि मैं अपने आपको इस विद्यामें अज्ञान मानता हूं। अगर आप अपने उत्साहको ज्ञानमें परिणत कर लें, तो इसकी कुछ आशा बंधेगी। अगर आप अपनी प्रणालीकी त्रुटियोंको स्वीकार करते हैं, तो आप शरीर-रचनाशास्त्र और शरीर-शास्त्रके व्यवस्थित अध्ययनके द्वारा उन्हें दूर करनेका प्रयत्न क्यों नहीं करते ? यदि आपने अपने आपको उस ज्ञानसे सुसज्जित किया होता, जिसे एलोपैथीके डॉक्टरोंने वर्षोंके श्रमपूर्ण अनुसंधानके बाद प्राप्त किया है, तो आपने जो भूल की वह आप ना करते। इस विश्वाससे अपने आपको धोखा न दीजिये कि आज एलोपैथीके हाथमें मैदान इसलिए है कि उसे सरकारका समर्थन और आश्रय प्राप्त है। मेरी रायमें संसारमें उसकी वर्तमान प्रतिष्ठा इसलिए है कि झूठा शास्त्र होते हुए भी उसके पुजारियोंकी उसमें श्रद्धा है और उन्होंने उसकी उन्नतिके लिए बड़े बड़े त्याग किये हैं। इसीलिए उन्हें लगता है कि उन्होंने गरीबोंको चूस कर दौलतमंद बननेका अधिकार प्राप्त किया है।

"मेरा एलोपैथीमें विश्वास रखनेवाले डॉक्टरोंसे बुनियादी मतभेद है। वे अपने अधकचरे ज्ञानबल पर बड़ी आसानीसे संतोष कर लेते हैं और उपाधियोंका दुरुपयोग करके अपनी जेबें भरते हैं। आजकल पश्चिमकी तरफ दौड़कर विशेषज्ञता प्राप्त करनेकी इन लोगों पर सनक सवार है। मैं सब डॉक्टरों और भावी डॉक्टरोंसे विनती करूंगा कि वे भारतके सात लाख गांवोंकी दृष्टिसे सोचें। तब वे समझेंगे कि भारतमें ऐसे डॉक्टरोंके एक विशाल वर्गकी कितनी जरूरत है, जिन्हें पश्चिमी प्रणालीकी तालीमके बजाय ग्रामीण चिकित्सा-प्रणालीकी शिक्षा मिली हो। तब वे अनेक देशी इलाजों और नुसखोंको अपनायेंगे, जो भारतमें सफल सिद्ध हुए हैं, और हमारी भूमिमें प्राकृतिक जड़ी-बूटियां बहुतायतसे उपलब्ध होनेकी स्थितिमें केवल बाहरसे मंगाई हुई विदेशी दवाइयां देनेवाले ही नहीं बनेंगे। मेरी कल्पनाके अनुसार तो डॉक्टरोंका सच्चा काम देशी या विदेशी उपचारके नुसखे लिखता नहीं बल्कि लोगोंको स्वास्थ्यके नियमोंका पालन करना सिखा कर बीमारीको रोकना है।"

एक और प्राकृतिक चिकित्सक बेचारे सबसे ज्यादा हैरान हुए होंगे, जिन्हें गांधीजीने "प्राकृतिक चिकित्सा" का यह अनोखा नुसखा भेजा: " 'क' लिखते हैं कि आपकी 'ख' से नहीं बनती । प्राकृतिक

चिकित्सकके नाते बीमारका हृदय जीतना आपका काम है, न कि बीमारका काम आपका हृदय जीतना । जब रोगी चिकित्सकका हृदय जीतता है तब रोगी चिकित्सक हो जाता है और चिकित्सक उसका रोगी बन जाता है। यहां तो रोगी डॉक्टरकी सहायता चाहता है, परन्तु उसका पूरा इलाज स्वीकार करनेको तैयार नहीं है । इस स्थितिमें डॉक्टरका कर्तव्य हो जाता है कि वह रोगीके अनुकूल बन जाय और धीरजके साथ जो भी सहायता दी जा सके और जिसे लेनेके लिए रोगी तैयार हो वह देता रहे।"

जैसे जैसे वे इस विषयमें गहरे उतरते गये वैसे वैसे वे इसी प्रश्न पर बार बार लौटते रहे: "प्राकृतिक चिकित्सामें और ईश्वरमें अपनी श्रद्धाके बारेमें मेरी क्या स्थिति है?" कारण, प्राकृतिक चिकित्सा उनके लिए ईश्वरके प्रति अपनी श्रद्धाको कसनेकी कसौटी बन गई थी। मनुके अस्पतालसे छूटनेके बाद एक दिन उसके सामने अपने विचार रखते हुए गांधीजीने कहा: "मैं जानता हूं कि मैंने तेरा ऑपरेशन ना कराया होता और उसके फलस्वरूप तू मर जाती, तो भी तेरे पिताको इसकी जरा भी परवाह न होती। इसके विपरीत, वे इसका (एक पवित्र कार्यके लिए इसे तेरा बलिदान समझ कर) स्वागत करते। परन्तु मेरी हिम्मत नहीं हुई कि अपने हाथमें सौंपी हुई एक लड़कीको यों मर जाने दूं। . . . इसे आसक्ति कहो, कमजोरी कहो, या कुछ भी कहो, लेकिन वह है जरूर ।

"पिछले आठ दिनोंमें, जबसे मैंने तुझे अस्पताल भेजा, मैं सतत विचार करता रहा हूं कि मैं कहां खड़ा हूं, ईश्वर मुझसे क्या चाहता है और अन्तमें मुझे वह कहां ले जायगा। . . . यह तो मैं बार बार कह चुका हूं कि अब १२५ वर्ष तक जीनेकी मेरी इच्छा नहीं रही, परन्तु रामका नाम लेते हुए निडरतासे मृत्युका आलिंगन करनेकी मेरी साधना चल रही है। मैं जानता हूं कि मेरी साधना अपूर्ण है। तेरा ऑपरेशन इसका एक प्रमाण है। **परन्तु यदि मैं लम्बी बीमारीसे मरुं तो सारी दुनियामें यह घोषणा करना तेरा धर्म होगा कि मैं ईश्वर-परायण नहीं था, परन्तु दंभी और धूर्त था। अगर तू इस कर्तव्य-पालनमें चूकेगी, तो मैं जहां भी रहूंगा वहां दुखी रहूंगा**। लेकिन यदि मैं अन्तिम श्वासके साथ ईश्वरका नाम लेते हुए मरूं, तो यह इस बातका चिह्न होगा कि मैं वही हूं जिसके लिए मैंने साधना की थी और जैसा होनेका मैंने दावा किया था।"

इसके बाद बाहरकी परिस्थितियां अधिकाधिक बिगड़ती गयीं और उनके मार्गकी काली परछाइयां लम्बी और घनी होती गयीं, इसलिए वे अपनी श्रद्धाके पालनमें और भी अटल और अविचल बनते गये, यहां तक कि वही उनके जीवनका एकमात्र सत्य – केन्द्रीय तथ्य और मध्यबिन्दु बन गई।

एक यूरोपियन पत्रकारने मई १९४७ के मध्यमें सोदपुर आश्रममें गांधीजीसे मिलनेके बाद, विभाजनकी अन्तिम लड़ाईसे कुछ दिन पूर्वका, गांधीजीका यह सजीव रेखाचित्र दिया था :

अन्तमें गांधीसे मेरा मिलाप हो गया है। यह मिलाप किसी भी प्रकार मुझे असाधारण आदमी नहीं बना देता; परन्तु वह अनुभव – यद्यपि कई लोगोंने वह अनुभव किया है और उसके बारेमें कहा है – मुझे विरल और नया मालूम हुआ है, और मुझे लगता है कि यह बात गांधीको असाधारण बनाती है। . . . आजकी श्रद्धाविहीन, ठोकरें खा खाकर आगे बढ़नेका प्रयत्न करनेवाली दुनियामें गांधी दृढ़ श्रद्धा रखनेवाले आस्तिक पुरुष हैं; और उनके लिए उस आस्तिकताके द्रोह तथा उनकी अपनी मृत्युके बीच कोई चुनाव नहीं हो सकता। वे खुशी खुशी मरनेको तैयार हो जायंगे।

यह बात हमें पुनः एक बार आश्वस्त करती है कि आज ऐसे पुरुष दुनियामें जीवित हैं . . . क्योंकि गांधी दीर्धकालसे संसारके करोड़ों किंकर्तव्य-विमूढ़ मानवोंके एक-पंचमांश भागकी किस्मतके लिए बहुत बड़ी हद तक जिम्मेदार रहे हैं। संसारके किसी भी तानाशाहको अपने समयमें इतनी सत्ता नहीं मिली होगी जितनी गांधीको मिली और फिर भी तानाशाहके नाते किसी आदमीकी इतनी दुर्गति नहीं हुई जितनी गांधीकी हुई है। उनकी खुली छाती पर पदकोंके लिए कोई स्थान नहीं है, उनकी चप्पलोंकी जोड़ पर लोहेके कांटोंके लिए कोई स्थान नहीं है। उनकी पीठ झुक गई है, उनका सिर पूरा पूरा गंजा है, उनकी चमड़ी पर झुर्रीयां पड़ गई हैं, वे प्राचीन दिखाई देते हैं; आंखों पर चश्मा चढ़ा रहता है, शिथिल चालसे चलते हैं; आजकी इस पागल और आसानीसे हत्या करने पर तुल जानेवाली दुनियामें गांधी एक भव्य, अद्भुत, सयाने पुरुष हैं।

कुछ लोगोंने मुझसे कहा है कि गांधी एक संत पुरुष हैं। ऐसी बातोंके बारेमें मैं कुछ नहीं जानता । परन्तु वे एक सयाने, समझदार पुरुष हैं । यह दुनियामें विरल वस्तु है; और राजनीतिमें तो अनोखी वस्तु है। दूसरोंने मुझसे कहा है कि गांधी एक स्वप्नद्रष्टा मूर्ख हैं; उन्होंने मुझसे यह भी कहा कि उनके आदर्श बहुत अच्छे हो सकते हैं, लेकिन आजकी समस्याओंके दबावमें उनके लिए दुनियामें कोई स्थान नहीं है और आजकी चंचल दुनियामें वे व्यावहारिक नहीं हैं। यदि ऐसा हो तो मुझे लगता है कि यह दुनियाकी गलती ही है और हमारी व्यक्तिगत हानि है। और मुझे लगता है कि यह स्थिति तब तक बनी रहेगी जब तक हम यह समझ नहीं लेते कि हमारे आदर्श ही हमारे आसपास एकमात्र व्यावहारिक वस्तु

हैं और जिसे "प्रगति" समझ कर हम गर्वका अनुभव करते हैं वह निरा स्वप्न है। [अमृत बाजार पत्रिका, कलकत्ता, २८ मई, १९४७]

नवां अध्याय : पराजयकी लड़ाई

१

दिल्ली फिर गांधीजीको बुला रही थी। १ मई, १९४७ को इसमे और एबेलके लंदन चले जानेके बादसे चौंकानेवाली राजनीतिक घटनाएं हुई थीं। १० मईको शिमलासे घोषणा की गई कि वाइसरॉयने पांच कांग्रेसी, लीगी और सिक्ख नेताओंका एक सम्मेलन बुलाया है, जो एक सप्ताह बाद राजधानीमें होगा और जिसमें वे ब्रिटिश सरकार द्वारा अन्तिम रूपमें स्वीकृत सत्ताके हस्तांतरणकी अपनी योजना पेश करेंगे। अब तक सब बातें लॉर्ड माउन्टबेटनको सरल दिखाई देती थीं। परन्तु जल्दी ही उनकी समझमें यह आने लगा कि उन्होंने समयसे पहले सारी आशायें बांध ली थीं। उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्तमें फिरसे निर्वाचन करानेके पहले डॉक्टर खान साहबके मंत्रि- मंडलको भंग करनेका प्रस्ताव किसी प्रकार प्रकट हो गया था और कांग्रेसी क्षेत्रोंमें उसकी बड़ी तीव्र प्रतिक्रिया हुई थी। इस बातकी संभावना थी कि ग्रेट ब्रिटेन भारतका विभाजन होनेके बाद पाकिस्तानके साथ कोई स्वतन्त्र राजनीतिक संधि कर लेगा या सैनिक समझौता भी कर लेगा। इस बातका कांग्रेसके मन पर बड़ा बोझ पड़ने लगा। सबसे बड़ी बात तो यह हुई कि लंदनमें योजनाके मसौदेमें कुछ और संशोधन कर दिये गये, जिन्होंने कांग्रेसके लिए उसे और भी कम स्वीकार्य बना दिया।

कांग्रेसने यह रुख अपनाया कि लीगने भारतका विभाजन करनेके जिस अधिकारका दावा किया था उसे उसने कभी नहीं माना। दबाव न डालनेके अपने सिद्धान्त पर डटे रह कर उसने सिर्फ उन भागोंको ही अलग होनेका अधिकार दिया था, जो भारतीय संघके भीतर न रहना चाहें; क्योंकि वह सदासे किसी भी अनिच्छुक भागको जबरन् भारतीय संघके भीतर रखनेके विरुद्ध रही थी। इसलिए उसने मांग की कि भारतीय संघको ब्रिटिश सत्ताका स्वाभाविक उत्तराधिकारी माना जाय और जो घटक उससे अलग होनेका आग्रह करें उन्हें अलग होनेवाले घटक समझा जाय । परन्तु संशोधित योजनामें भारतीय संघ तथा संविधान-सभाको अनुगामी संस्थाओंके रूपमें स्वीकार करनेके विचारकी रक्षा की गई हो ऐसा नहीं लगता था। संशोधित योजना इस प्रकार थी: ब्रिटिश सत्ताके खतम होने पर केन्द्रीय सत्ता बिलकुल लुप्त हो जायगी; और ब्रिटिश भारत स्वायत्त घटकोंका – "उत्तराधिकारी सरकारोंका" – एक जमघट मात्र रह जायगा। हर घटकको सामान्यत : अपने भाग्यका निर्णय करनेका अधिकार रहेगा ।

सार्वभौम सत्ताका हस्तांतरण संभव न होनेके कारण छह सौसे ऊपर देशी राज्य अपने आप सर्वसत्ताधारी बन जायंगे और हर देशी राज्य शान्ति अथवा युद्ध करनेके लिए अथवा किसी भी बाहरी सत्ताके साथ स्वतन्त्र संधियां करनेके लिए स्वतन्त्र होगा। दूसरे शब्दोंमें, अब तक जो भारत था उसका पूरी तरह विसर्जन हो जायगा।

जब १० मईकी रातको वाइसरॉयने वह संशोधित योजना शिमलामें पं. नेहरूको दिखाई, तब उन्होंने यह कहा बताया जाता है : "यह पूर्ण विश्वासघात है। इसका अर्थ है बालकन प्रदेशकी तरह भारतका बंटवारा करना । हम इसे कभी स्वीकार नहीं कर सकते ।" आधी रातको वाइसरॉयने यह आघात पहूंचानेवाला समाचार वी. पी. मेननको सुनाया और बोले : "आगमें घी पड़ गया है।" सौभाग्यसे उन्हें समय पर सूझ गया और योजना पर आगे कोई कार्रवाई करनेसे पहले उन्होंने उसे पं. नेहरूको दिखा दिया । उनके कहने पर रिफॉर्म्स कमिश्नर वी. पी. मेननने योजनाका नया मसौदा बनाया। इस नये मसौदे पर पं. नेहरूकी अपनी प्रतिक्रिया अनुकूल बताई गई। परन्तु वे निश्चित रूपसे नहीं कह सकते थे कि कांग्रेस कार्यसमिति उसे किस रूपमें लेगी। सरदार पटेल उस समय दिल्लीमें ही थे। उनसे सम्पर्क स्थापित करने पर उन्होंने जिम्मेदारी ली: "यह सब मैं देख लूंगा ।" वाइसरॉय और उनके कर्मचारी-मंडलने इस योजनासे यह सबक सीख लिया कि आगेसे तमाम नाजुक वार्ताओंमें पं. नेहरूके साथ सरदारको भी एक "स्थिर करनेवाली शक्ति" के रूपमें रखना चाहिये।

योजनाका नया मसौदा बनाते समय एक संशोधन यह किया गया कि जहां पहली योजनाके मसौदेमें प्रान्तोंको सामान्यत : अपने भविष्यका निर्णय करनेका अधिकार दिया गया था, वहां अब वह स्वतन्त्रता उनसे छीन ली गई । उदाहरणके लिए, शुरूमें सीमाप्रान्त चाहता तो भारत और पाकिस्तान दोनोंसे बाहर अपना स्वाधीन अस्तित्व रख सकता था। इसके मुकाबलेमें बंगालको भी चुनावकी ऐसी ही स्वतन्त्रता थी।

इस बीच सम्राट्की सरकारने योजनाके उस मूल मसौदेको स्वीकार कर लिया था, जिसका पंडित नेहरू पर इतना घातक असर हुआ था। एक समुद्री तार लंदन भेज कर इसमे और एबेलको सलाह दी गई कि वे वहीं ठहरे रहें, क्योंकि संशोधित प्रस्ताव लंदन भेजे जा रहे हैं और भारतीय नेताओंके साथ जो मुलाकात १७ मईको होनेवाली थी उसे स्थगित करना पड़ेगा । ह्वाइट हॉलकी सहमतिसे दूसरा

वक्तव्य शिमलासे जारी किया गया कि १७ मईके बजाय २ जूनको भारतीय नेताओंके साथ मुलाकात होगी, क्योंकि "लंदनमें निकटमें ही पार्लियामेंटकी छुट्टी होनेवाली है !" वाइसरॉयको कड़वी गोली निगलनी पड़ी, जब ब्रिटिश मंत्रि-मंडलने उनकी संशोधित योजनाके बारेमें अधिक परामर्श करनेके लिए उन्हें फौरन लंदन आनेको कहा ।

पंडित नेहरूका पत्र गांधीजीको,

१२ मई, १९४७

अनेक नई बातें पैदा हो जानेके कारण कार्यसमितिकी बैठक अब ३१ मईको रखी गई है। माउन्टबेटन जिन्ना सहित हममें से कुछ लोगोंसे मिलना चाहते हैं – शायद हमारे सामने ब्रिटिश सरकारका कोई प्रयोगात्मक प्रस्ताव रखना चाहते हैं। जैसा कि आप जानते हैं, स्थिति अत्यन्त नाजुक और पेचीदा है और हम उत्तर भारतमें तथा सम्भवत: बंगालमें किसी बड़े संघर्षके किनारे खड़े हैं। ऐसी परिस्थितिमें हमें इस पर अत्यधिक सावधानीसे विचार करना पड़ेगा। इसलिए आपकी उपस्थिति यहां अत्यावश्यक है और मैं आशा करता हूं कि आप सुविधा होते ही जल्दीसे जल्दी यहां आ जायंगे। जितना अधिक समय हमें मिलेगा उतना ही अच्छा होगा।

चार दिन बाद उन्होंने फिर गांधीजीको लिखा :

यहां जो घटनाएं तेजीसे घट रही हैं उन पर आप अवश्य ध्यान दे रहे होंगे। माउन्टबेटन अगले रविवारको लंदन जा रहे हैं और लगभग दो सप्ताह तक उनके बाहर रहनेकी संभावना है। मुझे मालूम हुआ है कि आपका इरादा यहां २५ मईको पहुंचनेका है। वल्लभभाईका और मेरा खयाल है कि दिल्ली आनेसे पहले कुछ दिनके लिए आप मसूरी आ जायें, तो बहुत अच्छा हो। यह हमारे लिए तो अनुकूल होगा ही, लेकिन आपको भी जरूर इससे कुछ दिनका आराम मिल जायगा। वाइसरॉयके लौटने तक दिल्लीमें अधिक कुछ होनेवाला नहीं है। मैं तो हर हालतमें कुछ दिनके लिए मसूरी जानेका विचार कर रहा हूं। . . . आप मसूरी आ जायं तो मैं कुछ दिन और ठहर सकता हूं। वल्लभभाई भी मसूरी जा रहे हैं ।

परन्तु गांधीजीको लाशकी चिरफाड़की तफसीलमें कोई दिलचस्पी नहीं थी। पंडित नेहरूके स्वास्थ्यकी चिन्ता होने और उनके प्रति बड़ा स्नेह होने पर भी गांधीजीने १७ मईको पटनासे सरदार पटेलको यह पत्र लिख दिया :

आपका और जवाहरलालका पत्र मिल गया। मुझे मसूरी जानेका जरा भी उत्साह नहीं है। आप चाहें तब तक मसूरी ठहर सकते हैं। मेरे लिए ऐसे हर दिनका पूरा उपयोग है, जो मुझे यहां मिल सकता है। इसलिए आपकी स्वीकृति हो तो मैं ३१ मईको या उसके बाद आप चाहें तब दिल्ली पहुंच जाऊंगा । आप मसूरीमें पूरा आराम लेंगे तो मुझे खुशी होगी। दिल्लीमें तो हम बात करेंगे ही।

दूसरे दिन वाइसरॉय लंदन चले गये और २८ मईको अपनी अन्तिम योजनाके साथ दिल्ली लौट आये।

गांधीजीको इस बातमें जरा भी सन्देह नहीं था कि ब्रिटिश सत्ता भारतसे जायगी। परन्तु कुछ दिनसे उन्हें एक और भय सता रहा था। अगर लोगोंने बहुत सावधानी नहीं रखी तो स्वयं स्वाधीनताका स्वरूप ही आते आते बदल सकता है, उसका बहुत-कुछ अर्थ और सार नष्ट हो सकता है और अन्तमें उसका खाली खोल ही रह जा सकता है, जैसा कि इतिहासमें अक्सर हुआ है। कांग्रेसी नेंताओंको इस खतरेका पूरा भान हो ऐसा नहीं लगता। पटनामें उनके निवास-कालके अन्तिम दिन कार्यकर्ताओंकी एक मंडली गांधीजीसे मिलने आई। उसे उन्होंने चेतावनी दी : लोगोंने जो बलिदान दिये हैं उन सबको देखते हुए अब कोई भारतकी स्वाधीनताको रोक नहीं सकता। परन्तु हम समय पर नहीं चेतेंगे तो हमारी हालत मोतीझरेके उस रोगीकी तरह होगी, जिसका बुखार तो उतर गया हो, परन्तु बादमें पूरी सावधानी न रखनेके कारण जो फिरसे रोगग्रस्त हो जाय और मर जाय। यह संकट हमसे उत्कृष्ट उदारता, सहिष्णुता, एकता और आत्मत्यागकी भावनाकी मांग करता है। हमें अपने हृदयोंको उस विराट् समुद्रके समान विशाल बनाना पड़ेगा, "जो बहकर आनेवाले समस्त प्रवाहोंको स्वीकार करता और उनका स्वागत करता है और असंख्य प्रकारके प्राणियोंका पोषण करता है। उसके वक्षस्थल पर अनगिनत जहाज गुजरते हैं और अपना कूड़ा-कचरा उसमें डालते हैं। परन्तु वह सदा ताजा और शुद्ध रहता है; उसमें कभी गन्दगी नहीं होती। समुद्रसे हमें यह सबक सीखना है कि अगर कोई हमारे साथ दुर्व्यवहार अथवा गाली-गलोज करे, तो भी हम पर वैसे ही कोई असर नहीं होना चाहिये जैसे सदाके शान्त और अनन्त सागर पर कोई असर नहीं होता।"

समस्याके मर्मको छूते हुए गांधीजीने इस स्थितिके बारेमें अपनी राय प्रकट की : अव्यवस्थाके डरका भूत कांग्रेसी नेताओंके सिर पर सवार है, और उसीने उन्हें देशका विभाजन

स्वीकार करनेके लिए मजबूर कर दिया है। यह अनिवार्य है। जबसे वे पदारूढ़ हुए हैं तबसे वे आम लोगोंकी अहिंसक शक्तिसे दूर हो गये हैं। इस स्थितिको समाप्त करनेका शीघ्रतम उपाय यह है कि मंत्री और विधान-सभाओंके सदस्य अपने परिवारों सहित जन-साधारणके बीच रहें, उनके साथ कंधेसे कंधा मिला कर खड़े हों और उनकी सलाहसे ऐसी योजनाएं बनाकर उन पर अमल करें जिससे लोगोंकी स्थितिमें तुरन्त सुधार हो। कोई मंत्री या मंत्रीके परिवारका कोई सदस्य अपनेको विशेषाधिकारी न माने। "अगर आधे दर्जन मंत्री और उनके परिवारके लोग भी शुरूसे ऐसा करते, तो आज हमारी यह दुर्गति न होती । लेकिन वास्तवमें मैं जो पाता हूं वह यह है कि आपके मुख्यमंत्री श्रीबाबू भी मुख्यमंत्री बन जानेके बाद पहलेकी अपेक्षा अब लोगोंसे कम मिल पाते हैं। वे अपने ऑफिसके दैनिक कामकाज और ठाठबाटमें कैद रहते हैं। सभी मंत्रियोंका कम-ज्यादा यही हाल है। उदाहरणके लिए, पद-ग्रहणसे पहले कोई आदमी आधी रातको भी लोकप्रिय मंत्रियोंका द्वार खठखटाता, तो बिस्तरसे वे तुरन्त निकल आते और किसी बखेड़ेके बिना आनेवालेके साथ हो लेते थे। परन्तु आज तो मंत्री जहां भी जाते हैं वहां उन्हें अंग-रक्षक साथ ले जानेकी जरूरत होती है। यह तो जेलसे भी बुरा है।"

"धरती-माताके पास लौटो, सादगीके पास लौटो, आम लोगोंके पास लौटो" – यह वही पुराना क्रान्तिकारी नारा था, जिसने कांग्रेस-जनोंके जीवनमें क्रान्ति उत्पन्न की थी और इतिहासका निर्माण किया था। गांधीजीके राजनीतिक गुरू गोखलेने "राजनीतिको आध्यात्मिक बनाओ" का नारा भारतको दिया था। उनके निधन पर गांधीजीने ये चिर-स्मरणीय शब्द कहे थे :

> आपने अभी कविवर टागोरका गान सुना कि "ईश्वर उनके साथ है, जिनके कपड़े मैले और फटे हुए हैं।" जब मैं अपने कपड़ोंके छोरको देखता हूं तो मैं उसे न तो मैला पाता हूं और न फ़टा हुआ। वह काफी साफ और सुथरा होता है और मैं अपने मनमें कहता हूं: "ईश्वर मेरे साथ नहीं है। गोखलेने हमारे सामने राजनीतिमें आत्मत्यागका आदर्श रखा है। आपका, मेरा और भारतकी सेवाकी आकांक्षा रखनेवाले प्रत्येक भारतीयका यह धर्म है कि वह आत्म-निरीक्षण करके अपने आपसे पूछे कि उसके अपने व्यक्तित्वमें यह आदर्श कहां तक प्रकट होता है।

इस आदर्शके पीछे लग कर १९२० के आसपास असहयोग-युगके प्रारंभ-में देशके बड़ेसे बड़े लोगोंने अपनी राजाओंकी-सी आयको लात मार दी थी । अमीरोंका-सा भोग-विलास, अहंकार और

आराम तकको छोड़कर वे गरीबोंके साथ एकरूप हो गये थे और उनकी और गरीबोंकी हृत्तंत्रीका तार एकसाथ बजने लगा था। उस समय कांग्रेस-संगठनका स्फूर्तिमय सुप्रभात था; अब उसका संध्याकाल आरंभ हुआ है।

गांधीजीने डॉ. महमूदसे कहा : "कांग्रेसने लगभग विभाजनको स्वीकार करनेका निर्णय कर लिया है। परन्तु मैं आजीवन योद्धा रहा हूं । मैं पराजयकी लड़ाई लड़नेके लिए दिल्ली जा रहा हूं।"

२४ मईको प्रात:काल उन्होंने पटना छोड़ दिया। कानपुर स्टेशन पर किसी उत्साही दर्शनार्थीने उनके तकियेके नीचेसे उनकी घड़ी निकाल ली। (महात्मापनका यह एक छोटासा दंड था !) यह घड़ी उन्हें पंडित नेहरूकी पुत्री इन्दिराने भेंट की थी, जब वे २० बरस पहले उनके दादा पं. मोतीलालजीसे मिलने इलाहाबाद गये थे।

२

इंजिनमें खराबी हो जानेके कारण गाड़ी देरसे दिल्ली पहुंची । सरदार पटेल और पंडित नेहरू अभी तक मसूरीसे लौटे नहीं थे। राजाजी दिनमें उनसे मिले । गांधीजीने उनसे कहा : मेरे सामने जो भारत बन रहा है, उसमें मुझे लगता है कि मेरा कोई स्थान नहीं है। भारतने हिंसाका मार्ग अपना लिया है। चरखेको लगभग भुला दिया गया है। लोग अब बड़े बड़े कारखानोंकी दृष्टिसे और सैनिक दृष्टिसे सोचने लगे हैं। परन्तु मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि एक दिन ऐसा आयेगा जब सब लोग स्वयं समझ जायंगे कि भारतके लिए ग्रामोद्योगों और अहिंसाके मार्गके सिवा और कोई मार्ग नहीं है।

बादका सारा सप्ताह गांधीजीके लिए एक गहरे हृदय-मंथनका काल रहा – जो आंतरिक कष्ट और यातनासे परिपूर्ण था। एक आश्रमवासीको उन्होंने एक पत्रमें लिखा : "मेरे चारों ओर आग धधक रही है। वह मुझे भस्म नहीं कर देती, यह ईश्वरकी दया है या केवल ईश्वरकी विडम्बना ही ?"

कुछ समाजवादी मित्रोंसे, जो गांधीजीसे मिलने आये थे, उन्होंने कहा: यद्यपि विभाजनके विचारमात्रसे मुझे घृणा है, फिर भी आपसके समझौतेसे होनेवाले विभाजनकी कल्पना मैं कर सकता हूं; परन्तु अंग्रेजोंके हस्तक्षेपसे अथवा उनकी छत्रछायामें, दो भाइयोंके झगड़ेके कारण, विभाजन होना इतना खतरनाक है कि मैं उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। वाइसरॉयके बारेमें अपनी राय बताते हुए गांधीजीने कहा : माउन्टबेटन अत्यन्त योग्य पुरुष हैं। वे अपने रास्ते जानेका निश्चय रखते हुए भी

सबके साथ अच्छे सम्बन्ध रखनेकी कोशिश कर रहे हैं। वे हमारे बल और साहसका माप निकाल रहे हैं। लॉर्ड लिनलिथगो और लॉर्ड वेवेलकी नीतियोंको हम अच्छी तरह जानते थे। इसलिए लिनलिथगो और वेवेल इतने खतरनाक नहीं थे। "जिस शैतानको हम जानते हैं, वह उस देवदूतसे अच्छा है, जिसे हम नहीं जानते।" हम सबकी परीक्षा हो रही है। हमारे सामने जो स्थिति है उसमें हमें चारों तरफ नजर रखनी पड़ेगी – अत्यन्त सावधान रहना होगा।

एक यूरोपियन मित्र कारेल हुज़ेरने, जो वर्षों पहले गांधीजीके साथ रहे थे, अमेरिकासे उन्हें लिखा: "मैं प्रार्थनामें आपका विचार करता हूं। . . . आपके ज्वलन्त और मित्रतापूर्ण मार्गदशनमें तथा बुद्धिमानीमें हमारी पाश्चात्य सभ्यताके लिए मुझे आशाका एकमात्र प्रकाश दिखाई देता है।" जिस जगह ये मित्र रहते थे उसके पास ही वह स्थान था जहां अणुबमका स्फोटक पदार्थ 'यू-२३५' तैयार किया जा रहा था। गांधीजीने उन्हें लिखा: "मैं वैसा हीं हूं जैसा आपने मुझे देखा था। भेद इतना ही है कि मेरी श्रद्धा पहलेसे संभवतः अधिक उज्ज्वल हो गई है।"

चीनी राजदूत डॉ. लो चिया लुएन गांधीजीसे २८ मईको मिले। उन्होंने भारतके भविष्यके बारेमें बातें कीं । राजदूतने पूछा : "आपके खयालसे भारतकी क्या शकल बनेगी ? उसके भविष्यके बारेमें आपका क्या अनुमान है ? " उत्तरमें गांधीजीने दृढ़तासे कहा कि जल्दी ही पागलपनकी यह बाढ़ उतर जायगी, क्योंकि वह विदेशी शासनके नीचे १५० वर्ष तक गुलामी भोगनेके बाद स्वतंत्रताके आगमनके समय आई है। जिस साधन (अर्थात् अहिंसा) पर भारतीय संग्राम आधारित था, उसकी सहज शुद्धता पुनः अपना प्रभाव बतायेगी। सारा संसार इसे देखेगा। कुछ भी हो, मैं तो इसी आशा पर जीवित हूं। भविष्यके बारेमें पहलेसे कोई कुछ नहीं कह सकता। मनुष्य श्रद्धा पर ही जीवित रह सकता है।

वर्षों पहले गांधीजीने बटलरकी 'एनालॉजी' नामक पुस्तक पढ़ी थी। उसमें एक वाक्य है: "भविष्य किसी अंशमें हमारे अतीतका बालक है।" इस कथनने उन्हें मुग्ध कर लिया था। उन्होंने अपने चीनी मुलाकातीसे कहा : "अपने भाग्यके विधाता हम स्वयं हैं। हम वर्तमानको बना या बिगाड़ सकते हैं और उसी पर हमारा भविष्य निर्भर करेगा।"

चीनी राजदूत बोले कि इतिहास अक्सर अपने आपको दोहराता हुआ देखा गया है। वह मानव पात्रोंकी इच्छाके अधीन नहीं दिखाई देता । परन्तु इसका कारण शायद यह है कि लोग इतिहाससे

सबक नहीं सीखते । गांधीजीने उत्तरमें कहा कि आपने जो कुछ कहा है वह अर्धसत्य ही है। इतिहास कभी कभी अपने आपको दोहराता हुआ दिखाई दे सकता है, परन्तु कुदरतमें कोई चीज स्थिर नहीं है। मानव-स्वभाव ऐसा है कि मनुष्य या तो ऊंचा चढ़ेगा या नीचे गिरेगा। अतीत कालीन इतिहासका प्रमाण भावी मानव-सिद्धिकी संभावनाको मर्यादित नहीं करता।

इसके बाद दोनोंने चीनमें युद्धसे हुए विनाशके बारेमें बातें कीं। क्या एशियाई देश जापानके कदमों पर चल कर सैन्यवादको अपनायेंगे ? गांधीजीने उत्तर दिया कि इसका उत्तर इस बात पर निर्भर करता है कि भारत अपना वजन किस तरफ डालेगा। "हमें आशा रखनी चाहिये कि भारत केवल अपने ही खातिर नहीं बल्कि संसारके खातिर भी अवसरके अनुकूल ऊंचा उठेगा। . . . संसार आज आत्म-विनाशके किनारे पहुंच गया है। द्वेष और हिंसाकी ज्वालायें हमें निगल जानेकी धमकी दे रही हैं। मेरी यह श्रद्धा और आशा है कि शान्ति, अहिंसा और भ्रातृभावकी दिशामें स्वाधीन भारत संसारको पदार्थ-पाठ सिखायेगा।"

इसके बाद चीनी राजदूत कहने लगे कि भारतीय और चीनी संस्कृतिमें बहुत बड़ा साम्य है। उदाहरणके रूपमें उन्होंने लाओत्सेके उपदेशका उद्धरण दिया : "परिग्रहके बिना उत्पादन, स्वमताग्रहके बिना कर्म और प्रभुत्वके बिना सृजन ।" गांधीजीका चेहरा चमक उठा : "अब आप उपनिषदोंकी भाषामें बात कर रहे हैं। यही विचार ईशोपनिषद् में पाया जाता है।"

*

पहलेकी तरह इस बार भी प्रार्थनामें कुरानकी आयतें पढ़ने पर आपत्ति उठाई गई। गांधीजीको इस आशयके पत्र भेजे गये कि अगर वे कुरानकी आयतें पढ़नेका आग्रह रखेंगे, तो प्रार्थना-सभामें काले झंडोंका प्रदर्शन किया जायगा। परन्तु गांधीजीको लगा कि दिल्लीकी जनतामें अब इतना अनुशासन और संयम आ गया है कि कोई भी बात उसे विरोधियोंको हानि पहूंचानेके लिए उत्तेजित नहीं करेगी। इसलिए उन्होंने इस धमकीकी परवाह न करके प्रार्थना करनेका निश्चय किया; प्रार्थनाके आरंभमें कोई गड़बड़ी नहीं हुई। विरोधका पत्र भेजनेवालेको कमसे कम बाहरी सभ्यता दिखानेके लिए बधाई देते हुए गांधीजीने २८ तारीखकी शामको घोषणा की कि अगर आप सब काली झंडियां ही नहीं बल्कि लाठियां लेकर भी आयें, तो भी मैं प्रार्थना-सभा करूंगा और आपके प्रहारको बरदाश्त करते हुए भी अन्त तक

ईश्वरका नाम लेता रहूंगा और आपके विरुद्ध मनमें कोई दुर्भावना नहीं रखूंगा। "मैं पुलिसको नहीं बुलाऊंगा। मैं मारा भी जा सकता हूं। पर बादमें आपको दुःख होगा और अपने किये पर आप रोयेंगे। इसके विपरीत, यदि मैं आपसे बदला लूं अथवा पुलिसको बुलाऊं, तो भी शायद मैं मारा जाऊं; परन्तु उस हालतमें जो लोग मुझे मारेंगे उन्हें अपनी सफलता पर सन्तुष्ठ होनेका अच्छा कारण मिल जायगा।"

इस बातकी जोरदार अफवाह फैल रही थी कि ३ जूनको जब वाइसरॉय सत्ता हस्तांतरित करनेके लिए ब्रिटिश सरकारकी योजनाकी घोषणा करेंगे तब देशभरमें दंगे होंगे। बंगालेसे समाचार आये थे कि मुस्लिम लीगियोंने धमकी दी है कि वे कलकत्तेको जमींदोस्त कर देंगे, लेकिन उसे भारतीय संघमें नहीं जाने देंगे। समूची गलियोंमें किलेबन्दी की जा रही है। गृहयुद्धकी बड़े पैमाने पर तैयारियां हो रही हैं। बिहारसे टेलीफोन पर समाचार मिले कि वहां भी तनाव बढ़ रहा है। एक सिन्धी भाईने लिखा कि सिन्धके हिन्दू घबरा रहे हैं। इससे गांधीजीको गहरा दुःख हुआ। क्या हम इतने अधिक कायर हो गये हैं ? क्या ईश्वरमें हमारी जरा भी श्रद्धा नहीं रही ? किसीने गांधीजीसे पूछा : कोई पागल कुत्ता सांकलसे मुक्त हो जाय, तो क्या करना चाहिये ? इसका अर्थ स्पष्ट था। संकेत स्पष्ट रूपमें मुस्लिम दंगाइयोंकी ओर था। गांधीजीने उत्तर दिया कि अगर पत्र-लेखकका मतलब शब्दश : पागल कुत्तेसे है, तब तो उसे गोली मार देनी होगी। परत्तु पागल कुत्तेके सादृश्यको मानव-प्राणियों पर लागू नहीं किया जा सकता। यदि हमारा दुश्मन भी पागल हो जाय तो सही उपाय उसे गोलीसे उड़ा देना नहीं किन्तु पागलखाने भेजना होगा। मेरे अपने भाईके उदाहरणमें ऐसा हुआ था। हमारे माता-पिताने अपने पुत्रको मरवाया नहीं। उन्होंने उसका इलाज करवाया । "आज तो हमारा खून गुस्सेसे उबल रहा है। लगभग आधे दर्जन स्थानोंसे दंगोंके समाचार आये हैं। कुछ और जगहोंसे अफवाहें आई हैं कि हिन्दुओंका कत्लेआम किया जायगा। इसके विपरीत, यह पुकार उठाई गई है कि यदि मुसलमान हिन्दुओंका वध करनेवाले हैं, तो हिन्दू इसका वैसा ही बदला क्यों न लें या पहले ही मुसलमानों पर वार क्यों न करें ? मैं इसे नितान्त पागलपन कहता हूं। यदि हम किसी पागलके हाथों भय, घबराहट अथवा क्रोधके बिना सर सकें, तो उसका पागलपन शान्त हो जायगा। परन्तु मौजूदा पागलपन उस प्रकारका नहीं है। इसमें एक व्यवस्थित पद्धति है। उसका इलाज इस तरह हो सकता है। यदि मुसलमान मुझे तलवार दिखा कर पाकिस्तानकी अपनी मांग स्वीकार कर लेनेको कहें, तो मैं उनसे यह कहूंगा : 'तुम भारतके टुकड़े करो उससे पहले तुम्हें मेरे शरीरके टुकड़े करने पड़ेंगे ।' यदि हम सब इस तरह करें, तो ईश्वर उनकी तलवारको तोड़ देगा।"

मैं एक विनम्र मनुष्य हूं, परन्तु अवसर आया तो आप देख लेंगे कि सच्चा साहस क्या होता है। हमें पागलपनका जवाब पागलपनसे नहीं देना चाहिये। यदि हम पागलपनका सामना सयानेपनसे करेंगे, तो मुसलमानोंका पागलपन नहीं रहेगा, पाकिस्तानकी मांग नहीं रहेगी, या सारा भारत पाकिस्तान बन जायगा – यदि पाकिस्तानका वही अर्थ है जो उसके नामसे प्रकट होता है : पवित्र लोगोंका निवास-स्थान । इसके विपरीत, यदि हम एक-दूसरेके सम्बन्धमें पागलपनका रास्ता अपनायेंगे, तो क्या अंग्रेजोंको यह पुछनेका अधिकार नहीं होगा कि हमारी अहिंसाको उनके विरूद्ध लड़े गये युद्ध तक ही सीमित क्यों रखा गया और अब क्यों छोड़ दिया गया ? कया हम उनके प्रतिशोधसे डरते थे ? ऐसा हो तो हमारा नाम कायरोंमें लिखा जायगा और जो लोग भारतकी स्वतन्त्रताके लिए लड़े और मरे उनकी अहिंसाको हम लज्जित करेंगे। हम ऐसे कार्योंमें लग कर, जो हमें संसारकी घृणाके पात्र बना देंगे, अपने देशवासियोंके बलिदानोंको कलंकित न करें – जिन्होंने ब्रिटिश सत्ताके सामने घुटने टेकनेसे इनकार कर दिया और जेलके सीखचोंमें बन्द होना तथा घरबार और जमीन-जायदादका बरबाद होना ज्यादा पसन्द किया।

शामकी सैरके समय गांधीजीको बताया गया कि कुछ स्त्रियां उनके प्रार्थना-प्रवचन सुननेके लिए सभाके अन्तमें ही आती हैं। उन्होंने समझाया कि इसी कारणसे मैं प्रार्थना पर अधिकाधिक जोर देता हूं। भारतवासियोंकी वर्तमान पीढ़ीको नास्तिकताका रोग लग गया है। इस कारणसे वे आध्यात्मिक दृष्टिसे निर्बल हो गये हैं। यदि यही हालत रही तो स्वाधीन भारत संसारमें अपनी प्रतिष्ठाको बनाये नहीं रख सकेगा, क्योंकि उसके पास न तो शस्त्रासत्र हैं और न उनके उपयोगकी उसे तालीम मिली है। उसे स्वाधीनताकी रक्षाके लिए उन्हीं साधनोंकी जरूरत होगी, जिनके बल पर उसने स्वाधीनता प्राप्त की है। दूसरे शब्दोंमें, उसे अहिंसाकी शक्तिके द्वारा हिंसाका मुकाबला करनेकी कला सीखनी होगी । और उस शक्तिके विकासके लिए प्रार्थना और ईश्वरके नामका जप प्रथम और अंतिम वस्तु है।

अपने कमरेमें वापस आकर गांधीजी बकरीके दूध और फलोंका मिताहार करने बैठे । गोपू रोजकी भांति अपने माता-पिताके साथ आया । उसे यह देखकर कुतूहल हुआ कि उसके दादाने खानेके बाद अपने नकली दांत निकाले और उन्हें धोनेके बाद फिर मुंहमें बैठा लिया। उसे आश्चर्य हुआ कि वह अपने दांतोंको वैसे ही क्यों नहीं निकाल सकता और वापिस रख सकता । उसकी उमरके बालकोंमें

बंदरके जैसी उत्सुकता होती है। उससे प्रेरित होकर वह अपने दांत निकालनेकी कोशिश करने लगा, लेकिन सफल नहीं हुआ। उसने अपने दादासे निर्दोष भावसे पूछा : "में अपने दांत क्यों नहीं निकाल सकता ?" सब लोग हंस पड़े । पंडित नेहरू उस समय संयोगवश वहीं थे। उन्होंने गंभीर वचन देकर बालकको सान्त्वना दी : जब तुम अपने दादाकी उमरके हो जाओगे तब तुम भी उनके जैसा कमाल कर सकोगे !

३

लॉर्ड माउन्टबेटनके लन्दन रवाना होनेके ४ दिन बाद जिन्नाने एकाएक एक आश्चर्यजनक बात छेड़ी । उनकी मांग छोटी ही थी – वे पाकिस्तानके दोनों हिस्सोंको जोड़नेके लिए उत्तर भारतके आरपार सिर्फ १ हजार मील सम्बा संकरा मार्ग चाहते थे। सरदार पटेलने कहा : "यह शेखचिल्लीकी बकवास है, जिस पर कोई ध्यान नहीं दिया जाना चाहिये।" [सरदार पटेलका अखबारी वक्तव्य, २६ मई, १९४७] उन्होंने यह भी कहा कि इस मांगसे पुरस्कर्ताका पाकिस्तानकी योजनामें अविश्वास प्रकट होता है। कांग्रेसके अध्यक्ष आचार्य कृपलानीने एक संवाददातासे कहा कि आजकी स्थितिमें यदि भारतका विभाजन होना है, तो वह ब्रिटिश सरकारके हाथों नहीं होना चाहिये । "अंग्रेजोंको चाहिये कि अन्तरिम सरकारको औपनिवेशिक सरकारके रूपमें काम करने दें। फिर यह निर्णय करना उस सरकारका काम होगा कि विभाजन होना चाहिये या नहीं और यदि विभाजनका निश्चय हो जाय तो वह किन सिद्धान्तोंके आधार पर किया जाना चाहिये।" [आचार्य कृपलानीकी अखबारी भेंट, २८ मई, १९४७]

जिन्नाकी विवेकहीन मांगोंका कोई अन्त दिखाई नहीं देता था और वे हर रियायतके साथ बढ़ती जाती थीं। इसलिए विभाजनके विरुद्ध कांग्रेसका रुख दिनोंदिन सख्त होता जा रहा था। इससे गांधीजीको कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओं और ब्रिटिश सरकारको भी कैबिनेट-मिशनकी योजनाको अपनाने और माउन्टबेटनकी विभाजनकी योजनाको छोड़ देनेकी बात समझानेकी कोशिश करनेका मौका मिला । उन्होंने अपना "पाकिस्तानसे पहले शान्ति" का नारा फिर बुलन्द किया: वाइसरॉयको उस समय तक मुस्लिम लीगसे बातचीत नहीं करनी चाहिये जब तक कि उसकी ओरसे उस अपील पर शब्दोंमें और भावनामें पूरी तरह अमल न हो, जिस पर जिन्नाने भी मेरे साथ हस्ताक्षर किये हैं । वाइसरॉय भी उसके लिए कम वचन-बद्ध नहीं हैं और वे बातके धनी हैं । यदि कांग्रेस कमजोरी न दिखाये, तो मुस्लिम लीगको

कांग्रेसके पास आना पड़ेगा और पिस्तौल दिखाकर – जैसा कि अभी तक वह करती रही है – दिनोंदिन बढ़ती जानेवाली मांग पेश करनेके बजाय उसके साथ समझदारीसे बात करनी होगी ।

अखबारोंमें बेशुमार अटकलें लगाई जा रही थीं कि लॉर्ड माउन्टबेटन लंदनसे क्या लेकर लोटेंगे। गांधीजीको यह अच्छा नहीं लगा। लोगोंको यह क्यों सोचना चाहिये कि उनके भाग्यका आधार ब्रिटिश सरकार जो कहती या करती है उस पर है ? २६ मईकी प्रार्थना-सभामें भाषण देते हुए उन्होंने कहा : स्वाधीनता ठीक आपके सामने खड़ी है। उसका स्वागत करना आपका काम है। अपनी मुर्खताके कारण आप उसे अस्वीकार कर दें, तो दूसरी बात है । आपको इसकी चिन्ता क्यों होनी चाहिये कि ब्रिटिश मंत्रि-मंडल अथवा ब्रिटिश राजनीतिक दल क्या चाहते हैं अथवा उनकी क्या इच्छा है ?

हमें स्वतन्त्रता देना उनका काम नहीं है; उनका काम केवल हमारी पीठ परसे उतर जाना है। और इसके लिए वे वचन-बद्ध हैं। परन्तु अपनी स्वाधीनताको टिकाये रखने और उसे स्वरूप देनेके लिए हमें अपनी ही ओर देखना पड़ेगा। . . . जब तक ब्रिटिश सत्ता भारतमें मौजूद है तब तक हम सुसंबद्ध रूपमें विचार नहीं कर सकते । भारतका नकशा बदलनेका काम उसका नहीं है। उसे तो इतना ही करना है कि संभव हो तो व्यवस्थित रूपमें भारतको छोड़ कर चली जाय। परन्तु उसे हर हालतमें निश्चित तारीख पर या उससे पहले हट तो जाना ही चाहिये, फिर उसका परिणाम अराजकता ही क्यों न हो।

एक और कारण भी है जिससे देशकी वर्तमान स्थितिमें, विभाजन हो या न हो, हिन्दुस्तानकी शकलमें कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं होना चाहिये। कायदे आजमका और मेरा निकाला हुआ सम्मिलित वक्तव्य तो है ही। उसमें इस सच्चे सिद्धान्तका प्रतिपादन किया गया है कि किसी राजनीतिक उद्देश्यकी पूर्तिके लिए हिंसाका उययोग नहीं करना चाहिये।

यदि इस दस्तावेजके होते हुए भी ब्रिटिश सत्ता इस झूठी आशामें हिंसाके सामने झुक जाने जितनी कमजोर हो कि पागलपनकी प्यास बुझ जानेके बाद सब बातें ठीक हो जायंगी, तो वह एक ऐसी खूनी विरासतको भारतमें छोड़ जायगी जिसके लिए भारत ही नहीं परन्तु सारी दुनिया उसे दोष देगी।

तब हम यह निर्दय पाठ सीख लेंगे कि पर्याप्त मात्रामें उन्मत्त हिंसा की जाय तो सब कुछ मिल सकता है। इसलिए मैं प्रत्येक देश-भक्तसे और निश्चित रूपमें ब्रिटिश सत्तासे आग्रह करूंगा कि बुरीसे बुरी हिंसाका अंत तक सामना करके भी पिछले वर्षके १६ मईवाले कैबिनेट-मिशनके दस्तावेजके अनुसार अंग्रेज भारत छोड़ कर चले जायं।

आज ब्रिटिश सत्ताकी मौजूदगीमें रक्तपात, आगजनी और इससे भी बुरे बुरे कांडोंस हमारा नैतिक पतन हो गया है। आशा है कि जब ब्रिटिश सत्ता हट जायगी तो हममें इतनी बुद्धिमानी आ जायगी कि हम संगत रूपमें विचार करें और भारतको एक बनाये रखें अथवा उसके दो या अधिक टुकड़े कर दें। लेकिन अगर उसके बाद भी हम लड़ने पर तुले रहेंगे, तो भी मुझे विश्वास है कि आजकी तरह हमारा पतन नहीं होगा – यद्यपि यह मानना पड़ेगा कि हिंसामात्रसे थोड़ा-बहुत पतन अवश्य होता है। मुझे निराशामें भी यह आशा रहेगी कि स्वतन्त्र होने पर भारत संसारको हिंसाका अतिरिक्त पदार्थ-पाठ नहीं सिखायेगा – जो पहले ही हिंसाके रोगसे मृत्युके किनारे पहुंच चुका है।

एक पत्र-लेखकने रोषमें आकर गांधीजीको लिखा कि अगर आप हिन्दुओंको तलवारका मुकाबला तलवारसे और आगजनीका आगजनीसे करनेकी बात नहीं कह सकते, तो आपको जंगलमें चले जाना चाहिये। २९ मईकी शामको उन्होंने इसीको अपने प्रार्थना-प्रवचनका विषय बनाया। पत्र-लेखककी इच्छानुसार अपना सारे जीवनका काम छोड़ देनेकी असमर्थता प्रकट करते हुए उन्होंने सब दलोंके नेताओंको समझाया कि कमसे कम पशुबलके सामने न झुकनेका साहस तो वे रखें ही ।

मेरा विश्वास तो प्रेमके शाश्वत नियममें है, लेकिन मैं उसका विचार नहीं कर रहा। यहां तो मैं इतना ही सुझाना चाहता हूं कि हमें बुद्धिके सिवा और किसी चीजके सामने आत्म-समर्पण नहीं करना चाहिये । आपने स्वतंत्रता प्राप्त करनेके लिए कड़ा परिश्रम किया है । आपने बहादुरीसे बलशाली ब्रिटिश साम्राज्यकी संगीनोंका सामना किया है । अब आपको क्यों लड़खड़ाना चाहिये ? बड़ी बड़ी कठिनाइयोंके बाद प्राप्त की हुई स्वतन्त्रताके आगमनसे पहले हम यह सोचनेकी गलती न करें कि अगर हम नहीं झुकेंगे – पशुबलके सामने भी — तो संभव है कि हमें स्वतन्त्रता न मिले । यह सर्वनाशका मार्ग है।

लंदनसे आनेवाले सारे समुद्री तारोंकी मुझे कोई परवाह नहीं है। मैं तो इसी आशासे चिपटा हुआ हूं कि ब्रिटेन कैबिनेट-मिशनके वक्तव्यकी भाषा और भावनासे जरा भी नहीं हटेगा। ... हां, पार्टियोंके बीच स्वेच्छासे उसमें परिवर्तन करनेके लिए कोई समझौता हो जाय तो दूसरी बात है। इस कामके लिए उन्हें आपसमें मिल कर कोई स्वीकार्य हल तैयार करना पड़ेगा। इस वक्तव्यको कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार दोनोंने मान लिया है। दोनोंमें से कोई भी उसे माननेसे इनकार करेगी, तो वह विश्वास-भंग होगा।

यदि आप अपने देशकी भलाईकी दृष्टिसे वास्तविकताको देखेंगे, तो आप इस बातसे सहमत होंगे कि पहले देशमें शान्ति स्थापित करनेके लिए उपद्रवी तत्त्वोंसे दृढ़ता और साहसके साथ कह देना चाहिये कि जब तक लोग खूनी लड़ाई-झगड़ा बन्द नहीं कर देंगे तब तक १६ मईके दस्तावेजमें कोई फर्क नहीं हो सकता। संविधानसभाका अधिवेशन १६ मईवाले श्वेतपत्रके अनुसार हो रहा है। अंग्रेजोंका यह कर्तव्य है कि वे सत्ता सौंप कर भारतसे चले जायें। बादमें संविधान-सभाके बताये हुए संविधानके अनुसार बननेवाली स्वतंत्र हिन्दुस्तानियोंकी सरकार कुछ भी कर सकती है – वह चाहें तो भारतको अखण्ड रखे अथवा दो या अधिक भागोंमें बांट दे ।

इसके बाद दूसरे दिन शामको एक और चुनौती देनेवाला भाषण गांधीजीका हुआ : कायदे आजमने हम दोनोंके नामोंसे निकले हुए प्रसिद्ध सम्मिलित वक्तव्य पर अपने हस्ताक्षर किये हैं। उन्हें मेरे साथ एक ही मंच पर काम करना चाहिये और तब तक चैन नहीं लेना चाहिये जब तक हम अपनी मातृभूमिमें शान्ति स्थापित नहीं कर लेते अथवा उस प्रयत्नमें मर नहीं जाते। फिर भी जब स्वयं राजधानीके आसपास आगजनी और हत्याओंका बाजार गर्म है, उस समय भारतके बंटवारेकी तैयारियां तेजीसे की जा रही हैं। दुर्भाग्यसे अन्तरिम सरकारने उसी बुरी परम्परा पर चलना पसंद किया है, जो उसे ब्रिटिश सरकारसे विरासतमें मिली है। उसकी विज्ञप्तियोंमें अत्यन्त अस्पष्ट भाषामें पहलेकी तरह यह कहा जाता है कि एक "विशेष कौमके लोगोंने" कैसे मार-काट की है। यह साफ साफ नहीं बताया जाता कि किसने किसको मारा। उसमें कसाईका उसके नामसे उल्लेख करनेका साहस क्यों नहीं आ पाता ? ब्रिटिश सत्ता अपराधी पक्षका नाम क्यों नहीं लेती और क्यों नहीं उसे गैर-कानूनी घोषित कर देती ? मैं मानता हूं कि सम्मिलित अपील पर हस्ताक्षर करनेके बाद जिन्नाके पास पाकिस्तान लेनेके लिए एक

यही उपाय रह गया है कि वे शांत बुद्धिसे अपील करके लोगोंका हृदय-परिवर्तन करें। मैं पहले ही कह चुका हूं कि **यदि मेरा बस चले, तो शान्ति स्थापित होनेसे पहले पाकिस्तानकी कोई बात नहीं की जायगी और ब्रिटिश हस्तक्षेप द्वारा तो हरगिज नहीं की जायगी**। जिन्नाको पहले शांति स्थापित करनी चाहिये। इस प्रयत्नमें उन्हें मेरा सहयोग सदा मिलेगा । उसके बाद वे सब वर्गों और सब कौमोंके भारतीय नेताओंकी एक सभा बुलायें और तब तक उन्हें पाकिस्तानका ध्येय समझाते रहें जब तक उन्हें वे अपनी बातका विश्वास न करा दें। "जिस दिन हम भाई-भाईकी तरह इकट्ठे होकर बैठेंगे, वह दिन भारतके इतिहासमें सुनहला दिन होगा। क्योंकि हम उस समय जो भी फैसला करेंगे, वह एक परिवारके सदस्योंका-सा फैसला होगा।

गांधीजीने आगे कहा : यदि जिन्नाकी कल्पनाका पाकिस्तान कोई न्याय-संगत प्रस्ताव है, तो उन्हें भारतको इसका विश्वास करानेमें कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिये । यद्यपि उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्तकी, पंजाबकी और बंगालकी घटनाओंसे आशाकी कोई गुंजाइश नहीं रही, फिर भी मैं अभी भी खिलाड़ियोंका-सा एक प्रस्ताव रखनेको तैयार हूं। जिन्नाने इस बातका दावा किया है कि पाकिस्तान ऐसा राज्य होगा जहां एक अनाथ बच्चेको भी पूर्णतम सुरक्षा प्राप्त होगी, जहां ऊंच-नीचका कोई भेद नहीं होगा और जहां सबके साथ न्याय होगा । यदि सचमुच ऐसी बात है तो मैं खुद उनके साथ सारे देशका दौरा करूंगा और लोगोंसे कहूंगा कि वे सब ऐसे पाकिस्तानमें सुखसे रह सकते हैं।

> जिन्ना साहब ब्रिटिश सत्तासे अथवा उसके प्रतिनिधि लॉर्ड माउन्टबेटनसे अपील न करें। वाइसरॉयका तो इतना ही काम है कि अगले वर्ष जूनके अन्त तक भारत छोड़ कर चले जायं – भले यहां शांति हो या न हो। ऊपरसे लादी हुई शांति स्मशानकी शांति होगी, जिसके लिए सारे भारतको और अंग्रेजोंको लज्जित होना चाहिये । यह कहनेका मौका न आना चाहिये कि गांधी बहुत देरसे मैदानमें आया। मैं देरसे नहीं आया हूं। गलती सुधारनेमें कभी भी बहुत देर नहीं होती; तलवारके बलके स्थान पर बुद्धिका बल स्थापित करनेमें कभी देर नहीं होती । **क्या थोड़े दिनके लिए पागल हो जानेवाले भारत पर अंग्रेज पाकिस्तान थोपनेका साहस करेंगे** ?

इस अपीलका जिन्ना पर कोई असर नहीं हुआ। माउन्टबेटनको यह शिकायत थी कि वे बहुत देरसे भारत पहूंचे, जब कि विभाजनके सिवा और किसी आधार पर कोई हल दोनों पक्षोंको स्वीकार नहीं हो सकता और कांग्रेसके वरिष्ठ नेता कोई साहस करनेको तैयार नहीं हैं।

सत्तारूढ़ होनेके बादसे कांग्रेसका झुकाव कानून और व्यवस्थाकी रक्षाके लिए अंग्रेजोंके उत्पन्न किये हुए तंत्र पर अधिकाधिक आधार रखनेकी ओर रहा था। भारतीय देशी राज्योंकी समस्याको निबटानेके लिए अंग्रेजोंकी सहायताकी आज उसे सबसे ज्यादा जरूरत थी। कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओंने सारी आशा इस बात पर लगा रखी थी कि माउन्टबेटन लंदनसे क्या लेकर लौटते हैं। गांधीजीके दृष्टिकोणके प्रति उनका रवैया सावधानीपूर्ण मौनका था।

२९ मईको सुबहकी सैरके समय एक सहयोगीने गांधीजीसे कहा : "आपने घोषणा की है कि बुद्धिको प्रभावित करके यदि सारा भारत पाकिस्तान बना लिया जाय, तो आपको परवाह नहीं होगी; परन्तु ताकतके सामने झुक कर एक इंच धरती भी नहीं दी जायगी। आप तो अपनी घोषणा पर अटल रहे। परन्तु क्या कांग्रेस कार्यसमिति उस सिद्धान्त पर अमल कर रही है ? वह तो ताकतके सामने झुक रही है । आपने हमें 'भारत छोड़ो' का रणनाद दिया। आपने हमारी लड़ाइयां लड़ीं। परन्तु अंतिम निर्णयके समय मैं देखता हूं कि आप तसवीरमें कहीं नहीं हैं। आपको और आपके आदर्शोंको ताकमें रख दिया गया है।"

गांधीजी : "आज मेरी बात कौन सुनता है ?"

सहयोगी : "नेता भले न सुनें, परन्तु लोग तो आपके पीछे हैं।"

गांधीजी : "लोग भी नहीं हैं। मुझे हिमालयमें चले जानेके लिए कहा जा रहा है। सब लोग मेरे चित्रों और मूर्तियोंको तो माला पहनानेके लिए उत्सुक हैं। परन्तु मेरी सलाह पर वास्तवमें कोई नहीं चलना चाहता।"

सहयोगी : "आज न चलें, परन्तु बहुत जल्दी ही उन्हें चलना पड़ेगा ।"

गांधीजी : "उससे क्या फायदा ? कौन जानता है कि उस समय मैं जिन्दा भी होऊंगा या नहीं । प्रश्न तो यह है कि आज हम क्या कर सकते हैं । स्वाधीनताके द्वार पर पहुंच कर हममें उतनी ही फूट पैदा हो गई है जितनी स्वतन्त्रताकी लड़ाईके समय हममें एकता थी। सत्ताकी आशाने हमारा नैतिक पतन कर दिया है।"

दूसरे दिन दोपहरको जब सरोजिनी नायडू आईं उस समय गांधीजी सदाकी भांति अपना गरम पानी, नींबू और शहदका पेय पी रहे थे। उन्होंने चुटकी ली: "हैं ! गरमीमें नीबूका गरम शरबत ? मैं आपके

लिए नीबूका बढ़िया ठंडा और ताजा शरबत बना देती हूं।" इसके बदले उन्होंने सरोजिनी देवीको समझा कर अपना काढ़ा पिला दिया। इतना बुरा तो नहीं था ! उसके बाद ही पंडित नेहरू आ गये । सरोजिनी देवीने उनके लिए भी नीबूके गरम शरबतका आर्डर दे दिया। गांधीजीने अपने 'पेटेन्ट' का लाभ उठानेके लिए सरोजिनी नायडूसे रायलटी मांग कर सबको हंसा दिया। विनोदी श्रीमती नायडूने जवाब दिया: "आप पहले मुझे आपके विज्ञापनदाताका काम करनेकी फीस दीजिये। क्या मैंने भारतके भावी प्रधानमंत्रीका आश्रय प्राप्त नहीं कर लिया है !"

इस तरह एक तरफ मजाक चल रहा था और दूसरी तरफ हृदय चिन्ता और दुःखके भारसे दबा जा रहा था।

४

लॉर्ड माउन्टबेटनके राजधानीमें लौटते ही घटना-चक्र फिर तेजीसे चलने लगा। ३१ मईको तीसरे पहर होनेवाली कांग्रेस कार्यसमितिकी बैठकको ध्यानमें रख कर डॉ. राजेन्द्रप्रसादने सुबहकी सैरके समय गांधीजीसे थोड़ी बातचीत की। कांग्रेसी नेताओंका विश्वास था कि विभाजन स्वीकृत होते ही देशमें फिरसे शान्ति हो जायगी। इसके विपरीत, गांधीजीका दृढ़ मत था कि विभाजनकी कोई बातचीत होनेसे पहले शान्ति होनी चाहिये। शान्तिसे पहले विभाजन घातक सिद्ध होगा। जो घटनाएं हो रही हैं उन्हें देखते हुए विभाजनके बाद अल्पसंख्यक लोग पाकिस्तानमें नहीं रह सकेंगे। सामूहिक देशान्तरण होगा और उसके बाद अनिवार्य रूपसे अव्यवस्था फैलेगी, क्योंकि क्रोधमें भरकर आनेवाले निराश्रितोंको नियंत्रणमें रखना असंभव हो जायगा।

बातचीत समाप्त होनेसे पहले ही सैर पूरी हो गई। बादशाह खान गांधीजीकी प्रतीक्षा कर रहे थे। गांधीजीको देखते ही वे कह उठे: "तो महात्माजी, अब आप हमें पाकिस्तानी समझेंगे ? सीमाप्रान्त और बलूचिस्तानके सामने एक भयंकर स्थिति है। हम नहीं जानते कि हम क्या करें।

गांधीजी : "अहिंसा निराशाको नहीं जानती। यह आपके और खुदाई खिदमतगारोंके लिए परीक्षाकी घड़ी है। आप घोषणा कर सकते हैं कि पाकिस्तान आपको मंजूर नहीं है। उसके बाद आप बुरीसे बुरी बातका बहादुरीसे सामना करनेके लिए तैयार रहिये। जिन्होंने 'करो या मरो' की प्रतिज्ञा ली है, उन्हें किस बातका डर हो सकता है ? ज्यों ही परिस्थितियां अनुकूल होंगी मेरा सीमाप्रान्त जानेका

विचार है। मैं कोई पासपोर्ट नहीं लूंगा, क्योंकि मैं देशके बंटवारेको नहीं मानता। इसके परिणाम-स्वरूप अगर कोई मुझे मार भी डाले, तो इस तरह मारे जानेसे मुझे खुशी होगी। **अगर पाकिस्तान बच जाता है, तो मेरा स्थान पाकिस्तानमें होगा।**"

बादशाह खान: "मैं समझ गया। अब मैं आपका ज्यादा समय नहीं लूंगा ।

जब बादशाह खान कमरेसे चले गये तो गांधीजीने अपने एक सेवकको उनसे यह कहनेके लिए भेजा कि वे मेरे कमरेकी शांतिमें आराम करें । "वे बड़े संकोची हैं। वे सोचेंगे कि अगर मेरे कमरेमें आकर वे ठहरेंगे, तो मेरे आराममें खलल पड़ेगा।" बड़ी मुश्किलसे बादशाह खानको गांधीजीके कमरेका इल्तेमाल करनेके लिए तैयार किया जा सका।

प्रार्थना-सभामें जब कुरानकी आयतें पढ़ना आरम्भ होनेका समय आया, तो पश्चिमी वेषधारी एक नौजवान उठा और चिल्लाने लगा: "जिन्नाको कैद कर लो। कुरानकी आयतें पढ़ता बन्द करो। मुस्लिम लीगके विरुद्ध युद्धकी घोषणा कर दो।" प्रार्थना इस बाधाके बावजूद शुरू हो चुकी थी। जब वह समाप्त हुई तो गांधीजीने अपने प्रवचनमें कहा : हम जिन्नाको यों ही कैद नहीं कर सकते; और कर लें तो इससे उन्हें केवल अधिक बल ही मिलेगा। परन्तु यदि जिन्ना और सामान्य मुसलमानोंके प्रति सद्भाव और मित्रता रखते हुए हम बल द्वारा पाकिस्तानकी स्थापनाके विरोधमें अटल रहें, तो हम जिन्नाको अपने प्रेमका "बन्दी" बना लेंगे और किसी दिन यह भी हो सकता है कि जिन्ना मेरे विरोधमें खड़े होनेके बजाय कन्धेसे कन्धा मिला कर मेरे साथ खड़े हों।

अब यह तो लगभग मान लिया गया था कि भारतका विभाजन अवश्य होगा । इसलिए गांधीजी चिन्ताके भारसे दबे हुए दिखाई देते थे। वे उदास होकर बोले : "मालूम होता है, मेरे जीवनका कार्य अब समाप्त हो गया है। आशा है, ईश्वर मुझे अधिक अपमानसे बचा लेगा।" मनुके ऑपरेशनका फिर एक बार जिक्र करते हुए उन्होंने अशान्त होकर कहा: "ऑपरेशनने मुझे अच्छी तरह समझा दिया है कि जीनेकी इच्छाको जीतना कितना कठिन है। परन्तु इसके फलस्वरूप मेरी श्रद्धा और भी प्रबल हो गई है। मैं ईश्वरसे सतत प्रार्थना करता हूं कि वह मुझे ऐसी शक्ति दे कि जो कुछ उसका है वह उसीको लौटा दूं और अंत तक उसके नामकी रामबाण औषधि लेता रहूं।"

दूसरे दिन – अर्थात् १ जूनको – सुबह अपनी घड़ी देखनेमें भूल करके गांधीजी रोजके समयसे पहले जाग गये। प्रार्थनामें अभी भी आध घंटा बाकी था । इसलिए बिस्तरमें पड़े पड़े वे धीमी आवाजमें मनन करने लगे : "मेरी साधनाकी शुद्धताकी परीक्षा अब ही होगी। आज तो मैं अपने आपको बिलकुल अकेला पाता हूं। सरदार और जवाहरलालका भी खयाल है कि स्थितिको मैंने गलत समझा है और विभाजन यदि स्वीकार कर लिया जाय तो शान्ति फिरसे अवश्य स्थापित हो जायगी। . . . उन्हें मेरा वाइसरॉयसे यह कहना पसन्द नहीं आया कि भारतका विभाजन हो तो भी वह ब्रिटिश के द्वारा अथवा ब्रिटिश शासनके मातहत नहीं होना चाहिये । . . . उन्हें लगता है कि मैं कहीं सठिया तो नहीं गया हूं। . . . फिर भी मुझे वही कहना चाहिये जो मैं महसूस करता हूं, यदि मुझे कांग्रेसका और ब्रिटिश लोगोंका भी एक सच्चा वफादार मित्र –जैसा मेरा दावा है — सिद्ध होना है . . . भले ही मेरी सलाह पसंद की जाय या न की जाय। मुझे साफ दिखाई देता है कि हम इस मामलेको गलत ढंगसे निबटा रहे हैं। हम तुरन्त इसके पूरे असरको चाहे महसूस न कर सकें, परन्तु मुझे स्पष्ट दिखाई देता है कि इस कीमत पर ली हुई स्वाधीनताका भविष्य अन्धकारमय होगा। मेरी प्रार्थना है कि भगवान मुझे उसका साक्षी बननेके लिए जीवित न रखे। वह मुझे सब तरफसे होनेवाले विरोधके बीच दृढ़ बने रहने और पूर्ण सत्य कहनेका बल और समझदारी दे, इसके लिए मुझे ऐसी संपूर्ण शक्तिकी जरूरत है, . . . जो शुद्धि . . . दे सकती है।"

उनका चिन्तन चलता रहा: "परन्तु अपने विचारोंमें बिलकुल अकेला होते हुए भी मैं अवर्णनीय आन्तरिक आनन्द और मनकी ताजगी अनुभव कर रहा हूं। मुझे लगता है मानों ईश्वर स्वयं मेरे मार्गको मेरे सामने प्रकाशित कर रहा है। और शायद यही कारण है कि मैं अकेले दम लड़ सकता हूं। लोग मुझे काशी या हिमालय चले जानेको कहते हैं। मैं हंसता हूं और उनसे कहता हूं कि मेरी तपस्याका हिमालय तो वहां है जहां लोगोंके दुःखोंका निवारण करना हो, उन पर होनेवाले अत्याचारोंको मिठाना हो । मेरे लिए उस समय तक कोई विश्राम नहीं हो सकता जब तक कि भारतमें एक भी व्यक्ति जीवनकी आवश्यक वस्तुओंसे वंचित हो। . . . मैं बादशाह खानका दुःख बरदाश्त नहीं कर सकता। उनकी आन्तरिक पीड़ासे मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है। परन्तु यदि मैं रोने लगूं तो यह कायरता होगी; और इससे उस बहादुर पठानका दिल भी टूट जायगा। इसलिए मैं अचल रहकर अपना काम करता रहता हूं। यह छोटी बात नहीं है।

थोड़ी देर रुक कर वे फिर कहने लगे: "लेकिन संभव है कि उन सबका खयाल सही हो और मैं ही अंधकारमें भटक रहा होऊं ।" भारतके होनेवाले बंटवारेकी व्यथा उन्हें व्यथित कर रही थी।

अन्तमें वे बड़े प्रयत्नसे बोले: "शायद मैं उसे देखनेके लिए जिन्दा नहीं रहूंगा, परन्तु जिस बुराईका मुझे डर है उसका भारत शिकार हो जाय और उसकी स्वाधीनता खतरेमें पड़ जाय, तो भावी संतानोंको जान लेना चाहिये कि उसका विचार करते हुए इस बूढ़ेको कितनी पीड़ा हुई थी। **ऐसा न कहा जाय कि गांधी भारतके अंग-भंगमें सम्मिलित था**। परन्तु आज तो सब लोग स्वाधीनताके लिए अधीर बन गये हैं। इसलिए और कोई चारा ही नहीं है।" एक प्रसिद्ध गुजराती रूपकका उपयोग करते हुए उन्होंने स्वतन्त्रताके साथ जुड़े हुए विभाजनको "लकड़ीका लड्डू" कहा। "यदि वे (कांग्रेसी नेता) उसे खाते हैं तो उदर-शूलसे मरते हैं; और यदि वे उसे छोड़ते हैं तो भूखों मरते हैं !"

तीसरे पहर कांग्रेस कार्यसमितिकी बैठक फिर हुई। बैठकके अन्तमें स्पष्ट दिखाई देता था कि भारतका विभाजन अनिवार्य है। शामको बादशाह खानने यह समझकर कि प्रार्थवा-सभामें सदाकी भांति प्रदर्शन होगा, उसमें न जानेका प्रस्ताव रखा। परन्तु गांधीजीने उनसे चलनेका आग्रह किया, इसलिए वे साथ चले आये। सभामें गांधीजीने गहरे दुःखके साथ इस घटनाका वर्णन किया। अपने पास बैठे हुए बादशाह खानकी तरफ इशारा करके वे बोले : "फिर भी आप देखिये कि ये कितने बेचैन और परेशान मालूम होते हैं। इससे आपको सबक सीखना चाहिये । हमें दूसरोंकी भावनाओंका बहुत लिहाज रखना चाहिये।"

स्वतन्त्र राष्ट्रको जिस अनुशासनकी आवश्यकता होती है उसका उल्लेख करते हुए गांधीजीने कहा : स्वाधीनता अब आपके द्वार पर आ पहुंची है। वाइसरॉय मंत्रि-मंडलके नाममात्रके अध्यक्ष हैं। आप देशके शासनमें उनसे किसी सहायताकी आशा न रख कर उनकी सहायता करेंगे । आपके बेताजके बादशाह पंडित नेहरू हैं। वे राजा बन कर नहीं परन्तु आपके प्रथम सेवक बनकर आपकी सेवा कर रहे हैं। यदि लोग अपनी अनुशासनहीनतासे जवाहरलालका काम बिगाड़ेंगे, तो वे अकेले राज्य नहीं चला सकेंगे। पुराने निरंकुश राजाओंकी तरह वे तलवारके बल पर शासन नहीं कर सकते। वह न तो पंचायत-राज होगा, न जवाहर-राज । इसलिए प्रत्येक नागरिकका कर्तव्य है कि वह मंत्रियोंके कामको आसान बनाये और उन्हें विवश करनेका प्रयत्न न करे।

प्रार्थना-सभामें असाधारण भीड़ थी। सोनेसे पहले गांधीजीने अपने दैनिक क्रमके अनुसार सारी वर्णमाला और बादमें संयुकताक्षर लिखकर बंगलाका अभ्यास किया।

५

आखिर भारतके भाग्यका निर्णय करनेवाली २ जूनकी तारीख आ पहुंची । लॉर्ड माउन्टबेटन व्यूह-रचनाकी त्रिसूत्री योजना लेकर लंदनसे लौटे थे। पहले तो वे कैबिनेट-मिशनकी योजना स्वीकार करनेके लिए भारतीय दलोंको समझानेका एक और प्रयत्न करनेवाले थे। वे जानते थे कि इसकी कोई संभावना नहीं है। उसमें सफलता न मिलने पर वे सम्राट्की सरकारकी विभाजन-योजना उनके सामने रखनेवाले थे। अन्तमें यदि दोनों ही हल स्वीकार न होते तो उन्होंने वर्तमान संविधानके आधार पर सत्ता हस्तांतरित करनेके लिए एक योजना तैयार कर रखी थी, जिसके अनुसार प्रान्तीय विषय वर्तमान प्रान्तीय सरकारोंको और केन्द्रीय विषय वर्तमान केन्द्रीय सरकारको हस्तांतरित कर दिये जाते। यह इकतरफा कार्रवाई होती और इसके विरुद्ध कोई अपील नहीं की जा सकती थी।

१० बजे वाइसरॉय-भवनमें नेताओंका सम्मेलन हुआ। कांग्रेसके प्रतिनिधि पंडित नेहरू और सरदार पटेल थे। उनके साथ कांग्रेसके अध्यक्ष आचार्य कृपलानी थे। लीगकी तरफसे जिन्ना और लियाकतअली खां गये। आचार्य कृपलानीके सामने रब निश्तर थे, जिन्हें आरंभमें जिन्नाने अलग रखनेका प्रयत्न किया था। सरदार बलदेवसिंह सिक्खोंके प्रतिनिधि थे। वाइसरॉयने सब भारतीय दलोंसे कैबिनेट-मिशनकी योजनाको मनवानेका आखिरी बार औपचारिक प्रयत्न किया। जिन्नाने उसे फिर ठुकरा दिया। इसके बाद लॉर्ड माउन्टबेटनने उनके सामने अपनी विभाजनकी योजना रखी। उसके मुख्य बिन्दु ये थे :

(१) जो मुस्लिम बहुमतवाले प्रान्त मौजूदा संविधान-सभामें सम्मिलित होनेको तैयार न हों, उनके लिए अलग संविधान-सभा हो और साथ ही साथ पंजाब और बंगालका विभाजन हो, जिसका निर्णय उन प्रान्तोंकी अपनी विधान-सभायें हिन्दू और मुस्लिस बहुमतवाले जिलोंके लिए अलग मतदान करके करें; (२) बंगालका बंटवारा होनेकी सूरतमें सिलहटमें जनमत लिया जायगा और उसके द्वारा इसका निर्णय होगा कि वह कौनसे प्रान्तका भाग रहेगा — पूर्व बंगालका या आसामका; (३) सत्तारूढ़ मंत्रि-मंडलको छेड़े बिना सीमाप्रान्तमें इस बातका निर्णय करनेके लिए जनमत लिया जायगा कि वह दोनों संविधान-सभाओंमें से किसमें शरीक होगा; (४) सिंधकी विधानसभा सादे बहुमतसे निश्चय करेगी कि

वह भारतके किस भागके साथ रहेगा; (५) बलूचिस्तानमें कोई विधान-सभा नहीं है इसलिए उसके भविष्यका निर्णय करनेकी कार्यविधि भारतीय दलोंसे परामर्श करके निर्धारित करनेके लिए वाइसरॉय पर छोड़ दी जाय; (६) विभाजनके अन्तिम स्वरूपका निर्णय इसी कामके लिए नियुक्त एक सीमा-आयोग करे; (७) देशका विभाजन होने तक अन्तरिम सरकारमें कोई परिवर्तन न हो । विभाजनके बाद दो अलग सरकारें स्थापित की जायंगी, जिन्हें सब विषयोंमें पूरे अधिकार होंगे; (८) सत्ताका हस्तांतरण जल्दीसे जल्दी होनेकी भारतके बड़े बड़े राजनीतिक दलोंकी इच्छाको पूर्ण करनेके लिए औपनिवेशिक दर्जेके आधार पर भारतीय सरकारको अथवा सरकारोंको निश्चित तारीखसे पहले भी सत्ता सौंप दी जायगी; (९) औपनिवेशिक दर्जा प्राप्त होनेके कारण समय आने पर भारतीय संविधान-सभाओंका यह निर्णय करनेका अधिकार मारा नहीं जायगा कि भारतके जिस भागकी सत्ता उन्हें प्राप्त हो वह भाग ब्रिटिश राष्ट्र-मंडलमें रहे या न रहे; और (१०) देशी राज्योंकी स्थिति वही रहे जो कैबिनेट-मिशनकी योजनामें थी।

कुल मिला कर तो कांग्रेसी नेताओंका रवैया योजनाको स्वीकार कर लेनेके पक्षमें था, परन्तु यह स्पष्ट कर दिया गया कि यह स्वीकृति जिन्ना और मुस्लिम लीगके द्वारा अपनाये गये रुख पर निर्भर करेगी। उन्होंने और सिक्खोंके नेताने उसी दिन शामको लिखित रूपमें अपना अन्तिम निर्णय बता देना स्वीकार किया । परन्तु जिन्ना उस स्थितिसे टससे मस न हुए, जो उन्होंने ग्रहण की थी – वह यह कि लीगकी पूरी परिषद् ही इस विषयमें निर्णय कर सकती है और उसकी बैठक कई दिन तक नहीं हो सकती । मैं अधिकसे अधिक इतना ही वचन दे सकता हूं कि स्वयं मेरी इच्छा योजनाको तोड़नेकी नहीं है।

नेता लोग बिदा हुए ही थे कि साढ़े बारह बजे गांधीजी वाइसरॉयसे मिलने आ पहूंचे। माउन्टबेटनकी तरफसे यह एक प्रकारका शिष्टाचार ही था। गांधीजीने भी इसे शिष्टाचार ही माना। गांधीजीका मौन-दिवस होनेके कारण उनकी ओरसे बातचीत पर्चों पर लिख-लिख कर हुई। गांधीजीकी प्रतिक्रिया नई योजनाके बारेमें कैसी होगी – इस प्रश्नको लेकर लगभग अकारण खड़े कर लिये गये कल्पित भयोंको दूर करनेके लिए ही अधिकतर यह बातचीत हुई। पर्चों पर गांधीजीने लिखा था :

> मुझे दुःख है कि मैं बोल नहीं सकता। जब मैंने सोमवारके मौनका निश्चय किया था तब उसमें दो अपवाद रख लिये थे – एक आवश्यक विषयों पर उच्चाधिकारियोंसे बात करनेके

बारेमें; दूसरा, बीमारोंकी सार-संभालके बारेमें। परन्तु मैं जानता हूं कि आप मेरा मौन भंग कराना नहीं चाहते।

क्या मैंने अपने भाषणोंमें आपके विरुद्ध एक भी शब्द कहा है ? आप स्वीकार करते हों कि मैंने नहीं कहा, तो आपकी चेतावनी अनावश्यक है।

एक-दो बातें ऐसी हैं जिनके बारेमें मुझे बातचीत करनी होगी, परंतु आज नहीं। यदि हम फिर मिलेंगे, तो बात करूंगा।

कांग्रेस कार्यसमितिका विधिवत् निर्णय कांग्रेस-अध्यक्षने वाइसरॉयके नाम लिखे एक पत्रमें रातको भेज दिया। नई योजनाको "कैबिनेट-मिशनकी योजनाके परिवर्तित स्वरूप" में स्वीकार किया गया; परन्तु यह स्पष्ट कर दिया गया कि यह निर्णय इसी शर्त पर किया गया है कि लीग इस योजनाको अन्तिम समझौतेके रूपमें अपनी असंदिग्ध स्वीकृति दे :

> हमने . . . १६ मई, १९४६ वाले कैबिनेट-मिशनके वक्तव्यको और ६ दिसम्बर, १९४६ को किये गये उसके बादके स्पष्टीकरणको भी संपूर्ण रूपमें स्वीकार कर लिया था। . . . हम अब भी उस योजना पर स्थिर रहनेको तैयार हैं। . . . किन्तु अब जो प्रस्ताव प्रस्तुत किये जा रहे हैं, उन्हें हम उस योजनाके एक परिवर्तित स्वरूपकी तरह स्वीकार करनेको तैयार हैं। . . . जहां हम सम्राट्की सरकारके प्रस्तावोंको स्वीकार करनेके लिए तैयार हैं वहां मेरी समिति इस बात पर जोर देना चाहती है कि वह अंतिम समझौता सिद्ध करनेके लिए ही ऐसा कर रही है। इसका आधार इस बात पर है कि मुस्लिम लीग इस प्रस्तावको स्वीकार करे और स्पष्ट रूपमें यह समझ लिया जाय कि उसकी ओरसे और कोई दावे पेश नहीं किये जायेंगे।

परन्तु कैबिनेट-मिशनकी योजनाके समय जो कुछ हुआ था – जब लॉर्ड वेवेल लिखित रूपमें उचित गारंठी लिये बिना मुस्लिम लीगको अंतरिम सरकारमें ले आये थे – उसे देखते हुए कांग्रेस कार्यसमितिने अपने पत्रमें यह भी लिखा: "भूतकालमें काफी गलतफहमी हुई है, अतएव भविष्यमें उससे बचनेके लिए यह जरूरी है कि इन प्रस्तावोंके बारेमें **लिखित रूपमें** स्पष्ट वक्तव्य ले लिये जायं।" (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

यह तो अस्तबलसे घोड़ा चुरा ले जानेके बाद शोर मचाने जैसी बात हुई।

भारत अथवा उससे अलग होनेवाले घटक राष्ट्र-मंडलमें रहें या न रहें, इस बारेमें निर्णय करनेका जो अधिकार दो संविधान-सभाओंको दिया गया था, उसके सम्बन्धमें कांग्रेस कार्यसमितिके निर्णयके साथ नीचेका दार्शनिक विचार जोड़ दिया गया – यह एक ऐसा लक्षण था जो कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओंकी युद्ध करनेकी क्षमता और संकल्प-बलके क्षीण होनेके साथ दिनोंदिन अधिक स्पष्ट होता जाता था: "यदि भारतीय संघ और उससे अलग होनेवाले भागोंके साथ अंग्रेजोंके सम्बन्ध भेदभावके आधार पर रहे, तो वह **अत्यन्त अवांछनीय** होगा और संभव है कि ऐसे सम्बन्ध दोनोंको संघर्षकी दिशामें ले जायं। इसलिए हम यह स्पष्ट कर देना चाहेंगे कि ऐसी परिस्थितियोंको **स्वीकार करनेमें हम हाथ नहीं बंटायेंगे**।" (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

कांग्रेस-अध्यक्षके पत्रमें यह भावना भी व्यक्त की गई थी: "संयुक्त भारतमें हमारा सदाकी भांति अब भी पूरा विश्वास है। . . . हम हृदयसे यह विश्वास करते हैं कि जब वर्तमान आवेग शांत हो जायंगे तब हमारी समस्याओंको सही परिवेशमें देखा जायगा और उसके फलस्वरूप भारतके सब भाग स्वेच्छासे एक हो जायंगे।"

माउन्टबेटन और जिन्नाके बीच आखिरी भिड़न्त आधी रातकी मुलाकातमें हुई, जिसमें माउन्टबेटनकी तरफसे लॉर्ड इसमे साक्षी थे। यह कार्रवाई इसलिए आवश्यक हुई कि जिन्नाने कुछ भी लिखित रूपमें देनेसे साफ इनकार कर दिया था। इसके पूर्व माउन्टबेटनने जिन्नासे यह कह कर देख लिया था कि यदि उनकी जिद बनी रही, तो सत्ताका हस्तांतरण वर्तमान संविधानके आधार पर किया जा सकता है। जिन्ना जानते थे कि यह निरी धौंस है। उन्होंने यह कह कर शान्तिसे उसकी उपेक्षा कर दी : "जो होना है वह तो होगा ही।" अन्तमें रणनीतिके कुशल खिलाड़ीने अपने अंतिम "गुप्त शस्त्र" का प्रयोग किया। वह चर्चिलका भेजा एक संदेश था, जिसका अन्तिम आश्रयके रूपमें ही उपयोग करना था । उसमें कहा गया था कि यदि जिन्नाने इस योजनाको स्वीकार नहीं किया, तो उनका पाकिस्तानका सपना सदाके लिए नष्ट हो जायगा। परन्तु इतने पर भी जिन्नाने सिर्फ सिर हिला दिया। दूसरे दिन सुबह उन्होंने नेताओंके सम्मेलनके सामने भी वैसा ही किया और उसे उनकी "स्वीकृति" मान लिया गया। लीगकी कौंसिलकी बैठक जिन्नाकी अध्यक्षतामें ९ जूनको दिल्लीमें हुई। उसने पंजाब और बंगालके बंटवारे पर तो खेद प्रकट किया, परन्तु एक प्रस्ताव द्वारा "अमन और शान्ति" के हितमें "समझौतेके रूपमें" ब्रिटिश सरकारकी योजनाको स्वीकार कर लिया।

३ जूनको सुबहकी सैरके समय गांधीजीने डॉक्टर राजेन्द्रप्रसादसे पूछा, क्या मैं अब बिहार लौट सकता हूं ? परन्तु डॉ. राजेन्द्रप्रसादका खयाल था कि अभी तो इसका प्रश्न ही नहीं उठ सकता, "कमसे कम बादशाह खानके खातिर ही सही ।" उस बातचीतके दौरान गांधीजीने कहा : "इन दिनों मैंने देखा है कि मैं जरा जरासी बातोंको लेकर चिढ़ जाता हूं। इसका अर्थ यह है कि अब मैं बहुत दिन जिन्दा नहीं रह सकता। परन्तु ईश्वरमें मेरी श्रद्धा दिनोंदिन ज्यादा गहरी होती जाती है। अकेला वही मेरा सच्चा मित्र और साथी है। वह अपने छोटेसे छोटे प्राणियोंको भी कभी छोड़ता नहीं।"

उस दिन नहानेके टबमें लेटे लेटे गांधीजी बोले : "बहुत करके आज दिनमें विभाजनकी योजना पर आखिरी मुहर लग जायगी। परन्तु यह मेरे अकेलेकी ही राय हो तो भी मैं फिर कहता हूं कि भारतके बंटवारेसे देशके भविष्यको हानि ही पहुंच सकती है। डेढ़ सौ वर्षकी गुलामीका अन्त होने जा रहा है, परन्तु सारी बातोंको देखते हुए ऐसा नहीं लगता कि स्वाधीनता इतने लंबे समय तक टिकेगी। मुझे यह सोच कर बड़ा दुःख होता है कि विभाजनकी योजनामें मुझे बुराईके सिवा और कुछ दिखाई नहीं देता । संभव है कि जैसे ईश्वरने मुझे पहले अंधा बना दिया था और मैंने दुर्बलोंकी अहिंसाको सच्ची अहिंसा समझ लिया था – हालांकि अब मैं देखता हूं कि दुर्बलोंकी अहिंसा जैसी कोई चीज हो ही नहीं सकती – उसी तरह मैं अब फिर अंधा हो गया हूं। यदि ऐसा सिद्ध हो जाय तो मुझसे अधिक सुखी कोई नहीं होगा।

परन्तु गांधीजी व्यर्थके शोकमें एक क्षण भी बरबाद करनेवाले नहीं थे। वे पहलेसे अधिक आश्चर्यजनक ढंगसे समता धारण करके लोगोंको शिक्षा देने लगे कि अब वे भविष्यकी दृष्टिसे और खास तौर पर अपने अपने तात्कालिक कर्तव्यकी दृष्टिसे विचार करना आरंभ करें। शामके प्रार्थना-प्रवचनमें उन्होंने कहा: आपको पूरा अधिकार है कि आप अपनी बुद्धि और अन्तरात्माके आदेशानुसार कांग्रेसकी अथवा मुस्लिम लीगकी स्तुति करें या निन्दा करें — यह लोगोंका अधिकार है। परन्तु आजसे उन्हें पंचायत-राज (लोकतंत्र) की दृष्टिसे सोचना होगा। "मैंने पं, नेहरूको हमारा बेताजका बादशाह कहा है। परन्तु सच्चे शासक तो देशके करोड़ों मेहनतकश लोग हैं। आपके नेताओंने जो भी निर्णय किये हैं वे आपके प्रतिनिधियोंकी हैसियतसे किये हैं और इसलिए उनमें आपकी भी पूरी जिम्मेदारी है।"

उन्होंने लोगोंसे कहा: जो कुछ हो चुका है उसके लिए मनको दुःखी ना कीजिये, बल्कि आत्म-निरीक्षण कीजिये। इससे आपको पता लगेगा कि आपने कहां भूल की है और उस भूलका संशोधन करनेके लिए आपको क्या करना होगा ।

शामकी सैरके बाद जब गांधीजी पैर घुलवा रहे थे तब राजकुमारी अमृतकौर आईं और उन्होंने यह खबर दी कि कांग्रेस, मुस्लिम लीग और सिक्ख – तीनों दलोंने माउन्टबेटनकी योजना पर हस्ताक्षर कर दिये हैं। लीग और कोई हल स्वीकार करनेको तैयार नहीं थी, इसलिए कांग्रेसके पास झुकनेके सिवा कोई चारा नहीं था। गांधीजीने सारी बातें सुनीं; लेकिन कोई टीका नहीं की । जब राजकुमारीकी बात पूरी हुई तो गांधीजीने गहरा नि:शवास लिया। वे धीमी आवाजमें इतना ही बोले : “भगवान उनकी रक्षा करे और उन्हें सद्बुद्धि दे।” उनके मुख-मंडल पर गहरे दुःखके चिह्न थे। उनकी स्थितप्रज्ञताके बावजूद पिछले सप्ताहकी घटनाओंने उन पर भारी असर किया था।

रातको यह निर्णायक निश्चय आकाश-वाणीने प्रसारित किया। पहले सरकारी घोषणा हुई। उसके बाद नेताओंके भाषण प्रसारित हुए। पंडित नेहरूने अपनी बात कही । उसके बाद जिन्ना और बलदेवसिंह बोले । इस प्रकार जो रोमांचक नाटक मुस्लिम लीगके सदस्योंके कैबिनेट-मिशनकी योजनाके साथ जुड़ी हुई शर्तोंको पूरा किये बिना ही अन्तरिम सरकारमें प्रवेश करनेके साथ आरंभ हुआ था उसका अंत हुआ।

जैसा गांधीजीने कहा था, कैबिनेट-मिशनकी योजना एक महान दस्तावेज सिद्ध होती, यदि उसका आधार द्व्यर्थकता पर न होता और परस्पर विरोधी बातोंसे उसका समर्थन न किया जाता। उसे कितना ही तोड़ा-मरोड़ा गया, फिर भी उससे सही उत्तर न मिला। अन्तमें उसे छोड़ देना पड़ा – वह व्यावहारिकताके तत्त्वज्ञानका शिकार बन गई। “साधनों” ने एक बार फिर “शुभ आशयों” को निगल लिया और साध्यको विफल बना दिया।

दसवां अध्याय : सत्याग्रही असफलताको जानता ही नहीं

१

गांधीजीने अपने भाषणोंमें ये उद्गार प्रकट किये थे कि जबरदस्तीसे या जबरदस्तीकी धमकीसे भारतका बंटवारा होगा, तो वह मेरे शरीरके अंग-भंगके समान होगा और भारतीय दलोंकी सहमतिके बिना १६ मई, १९४६ वाली कैबिनेट-मिशनकी योजनामें कोई परिवर्तन किया गया तो वह वचन-भंग होगा और उसका प्रतिकार मैं अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर भी करूंगा । इन उद्गारोंकी प्रतिध्वनियां अभी लोगोंके कानोंमें गूंज ही रही थीं कि एकाएक गांधीजीके भाषणोंसे यह स्वर विलीन हो गया। बहुत लोगोंको, जो विभाजनके विरुद्ध प्रचंड और उग्र आन्दोलन होनेकी आशा लगाये बैठे थे, इससे निराशा हुई। कुछको लगा कि गांधीजी कमजोर हो गये हैं। कुछ दूसरोंने सोचा कि उन्होंने लक्ष्यको बीचमें ही छोड़ दिया है। वाइसरॉयके निकटवर्ती क्षेत्रोंने गांधीजीके कुछ पहलेके भाषणोंमें पंडित नेहरूको राजगद्दीसे उतारनेकी तैयारी और किये गये समझौतेकी निन्दा देखी। लेकिन दोनों ही पक्ष जिस बातको भूल गये वह यह थी कि गांधीजीने अपनी आदतके अनुसार विभाजनकी योजनाका, वह चर्चाधीन रही तब तक, अंतिम समय तक जोरदार विरोध किया था, परन्तु निर्णय होते ही और कांग्रेस तथा लीग दोनोंके उस पर हस्ताक्षर होते ही राजनीतिक अर्थमें वह उनके लिए जीवित प्रश्न नहीं रह गयी।

वाइसरॉयने ४ जून, १९४७ के दिन गांधीजीको बुलाया और उन्हें अच्छी तरह समझाया कि क्यों विभाजनकी योजनाका उनकी तरफसे विरोध नहीं होना चाहिये । वाइसरॉयने अपनी बात, मनानेकी संपूर्ण कलाका उपयोग करके और विक्रेताके उत्साहके साथ, इतनी कुशलतासे रखी कि 'हाउ टू विन फ्रेण्ड्स एण्ड इन्फ्लुएन्स पीपल' के लेखकको भी उनसे ईर्ष्या हो सकती थी। असलमें ३१ मईको कांग्रेस कार्यसमितिने अपना विचार-विमर्श आरंभ किया, उसके बाद गांधीजीने प्रार्थना-प्रवचनोंमें विभाजनके सम्बन्धमें एक शब्द भी नहीं कहा। उस समय तक एक तरहसे पासा फेंका जा चुका था। उनका ३ जूनवाला भाषण, जिसने वाइसरॉयके निकटके लोगोंमें खलबली-सी मचा दी थी, दर असल लोगोंसे इस बातकी अपील थी कि वे विद्रोह न करके अपने नेताओंके साथ बुद्धियुक्त तथा स्वेच्छापूर्ण सहयोग करके उनके हाथ मजबूत करें।

गांधीजीने कहा : अब तक साधारण लोगोंका रवैया सरकारके प्रति जब निष्ठुर उदासीनताका न रहा हो तब वैर और विरोधका रहा है। जब तक वे विदेशी शासनके अधीन थे तब तक यह समझमें आनेवाली बात थी। परन्तु पंचायत-राज (लोकतंत्र) में वे ही सच्चे मालिक हैं। उनके नेता, जो अब सरकारमें चले गये हैं, उनके सेवक हैं। वे तो केवल जनताकी इच्छाको ही कार्यान्वित करनेवाले हैं । इसलिए भारतीयोंको अब स्वयं सोचना सीखना चाहिये और अपने नेताओंको कठिन निर्णय लेनेके लिए अकेले छोड़ने और बादमें अपने संतोषके लायक काम न होने पर उन्हें दोष देनेके बजाय उन्हें बताना चाहिये कि वे क्या करें। अपनी बात एक उदाहरण द्वारा समझानेके लिए उन्होंने अपने एक भाषणमें चोरबाजारकी बुराईको लिया । सबको मालूम है कि यह बुराई हमारे यहां है। व्यापारी उसके बल पर मौज कर रहे हैं। सरकारी कर्मचारियोंमें भ्रष्टाचार है और कर्मचारी-मंडल इस विषयमें अपनी जिम्मेदारीसे मुक्त नहीं हो सकता। परन्तु इससे भी ज्यादा इस बुराईके लिए जो बात जिम्मेदार है वह तो कालाबाजार करनेवालोंके साथ लोगोंका सहयोग है। जिस भ्रष्टाचारकी लोग शिकायत करते हैं, उसमें चोरबाजारका हर ग्राहक क्या हिस्सेदार नहीं है ? ऐसी हालतमें आपके नेता या सरकार क्या कर सकती है ? यही बात देशके विभाजन पर भी बहुत-कुछ लागू होती है ।

> मैंने पंडित नेहरूको भारतका "बेताजका बादशाह" बताया है। . . . परन्तु यदि आप अपना विचार करनेका काम उन लोगों पर छोड़ दें जो महलोंमें रहते हैं – चाहे वे अंग्रेज हों या हमारे ही देशवासी हों – तो लोकतंत्र नहीं चलाया जा सकता। यदि हमारा बेताजका बादशाह हमें कोई ऐसी बात कहता है जो हमारी अन्तरात्माको नहीं जंचती, तो हममें उससे ऐसा कहनेकी शक्ति होनी चाहिये । वे दिन लद गये जब साहब बहादुरका शब्द ही कानून होता था, जिसे सबको मानना पड़ता था। . . . लोकप्रिय मंत्री तो आप चाहते हैं इसीलिए अपने पदों पर हैं; वे ब्रिटिश सरकारकी तरह जबरदस्ती राज्य नहीं कर सकते। वे आपकी स्वीकृतिसे ही हुकूमत चला सकते हैं। पंचायत-राजका यही अर्थ है। सत्ताका हस्तान्तरण पूरा होनेमें बारह महीने और लग सकते हैं । परन्तु आपको उसकी तैयारी आजसे ही करने लग जाना चाहिये। [प्रार्थना-प्रवचन, ३ जून, १९४७]

आश्चर्यकी बात है कि वाइसरॉयके कर्मचारी-मंडलको गांधीजीके इन शब्दोंमें बारूदकी गंध आई। गांधीजीने माउन्टबेटनका डर जल्दी ही दूर कर दिया। उनकी बात पूरी भी नहीं हो पाई थी कि

उन्होंने वाइसरॉयसे मुक्ति चाही । उनका शामकी प्रार्थनामें जानेका समय हो गया था, जिसे वे किसी भी हालतमें चूकना नहीं चाहते थे।

पिछली शामको दिये हुए वचनके अनुसार आज अपने प्रार्थना-प्रवचनमें गांधीजीने ब्रिटिश सरकारके ३ जूनवाले वक्तव्यको भाषणका विषय बनाया। उन्होंने चुनौतीके लहजेमें कहा : जो कुछ हुआ है उसके कारणके लिए आपको अपने भीतर ही देखना चाहिये और सारा दोष अपने नेताओंके सिर पर ही नहीं थोपना चाहिये। तभी आपको सही इलाज मिल सकेगा और आप उसको काममें ले सकेंगे। विभाजनकी योजना इसलिए आई कि आपके नेताओंको ऐसा लगा कि लोग उसे चाहते हैं। मैंने बार बार कहा है कि ताकतके सामने झुक कर एक इंच जमीन भी देना गलत होगा। परन्तु कांग्रेसकी राय है कि वह हथियारोंकी ताकतके सामने नहीं झुकी है; उसे परिस्थितियोंकी शक्तिके सामने झुकना पड़ा है। अधिकांश कांग्रेस-जन अनिच्छुक साझेदारोंको अपने साथ नहीं रखना चाहते थे। उनका सिद्धान्त अहिंसा था, दबाव नहीं। इसलिए जो प्रश्न उनके सामने थे उनके पक्ष-विपक्षका सावधानीसे विचार करके उन्होंने अनिच्छापूर्वक विभाजनको मान लिया है।

जो कुछ हुआ उसके लिए वाइसरॉयको दोष देनेसे कोई लाभ नहीं। वह कांग्रेस और लीगका कार्य था। वाइसरॉयने खुल्लम-खुल्ला कह दिया था कि वे संयुक्त भारत चाहते हैं, परन्तु – अनिच्छापूर्वक ही सही – जब कांग्रेसने मुस्लिम लीगकी स्थितिको मान लिया तब वे कुछ नहीं कर सके।

स्वयं मैंने भरसक प्रयत्न किया कि लोग संयुक्त भारतके पक्षमें १६ मई, १९४६ वाले कैबिनेट-मिशनके वक्तव्य पर डटे रहें, परन्तु मेरी कुछ नहीं चली । ऐसे स्वीकृत तथ्योंके सामने मेरा और आपका क्या कर्तव्य है ? क्या हम कांग्रेसके खिलाफ विद्रोह करें ? जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मैं तो कांग्रेसका सेवक हूं, क्योंकि मैं देशका सेवक हूं। मैं कभी कांग्रेस संगठनके साथ बेवफाई नहीं कर सकता।

लेकिन अब भी बात इतनी नही बिगड़ी है कि कभी सुधर ही न सके । इसका उपाय बहुत कुछ आपके ही हाथमें है। वाइसरॉयने कहा है कि कोई चीज किसी पर लादी नहीं गई है; घोषणामें जिस समझौतेको मूर्तरूप मिला है वह दोनों पक्षोंका स्वेच्छापूर्ण कार्य है, इसलिए वह दोनोंकी आपसी सहमतिसे किसी भी समय बदला जा सकता है।

मेरा खयाल है कि काफी बुराई हो चुकी है। विभाजन निश्चित वस्तु बन चुका है। वह तो हो गया सो हो गया, लेकिन उसके जहरको मारा जा सकता है। उसने घृणा और शत्रुताकी जो भावना बढ़ा दी है उसे दबा कर मिठास और सद्भावके साथ विभाजनके ब्योरेकी बातें तय कर ली जायं, तो दोनों भाग अभी भी एक-दूसरेके स्थायी शत्रु बनने तथा एक-दूसरेके लिए और दुनियाकी शांति व सुरक्षितताके लिए खतरा बननेके बजाय मित्रों और भले पड़ोसियोंकी तरह साथमें रह सकते हैं। माउन्टबेटनके भीतरके मानवमें मेरी श्रद्धा है। अपने ऊंचे ओहदेके अलावा अपने उच्च कुलके कारण भी अपने देशके सार्वजनिक जीवनमें उनका अनोखा स्थान है और उसका उपयोग करके वे कमसे कम विभाजनकी शेष बातोंके सम्बन्धमें इस बुरी विरासतको मिटानेमें मदद दे सकते हैं।

यह बात तीसरे पक्षके हस्तक्षेपसे बिलकुल भिन्न है, जिसकी मैंने सदा निन्दा की है। सत्याग्रही मानव-स्वभावके उत्तम गुणोंको जगाने और उनका उपयोग करनेका कोई मौका कभी हाथसे जाने नहीं देता। इसी दृष्टिसे गांधीजी माउन्टबेटनको राजी करनेमें लग गये। ६ जूनको उनके साथ हुई एक भेंटमें गांधीजीने सुझाया कि जब भी आपको मौका मिले आप जिन्नाको इस आशयकी बात कहें :

> मैं दोनों दलोंको समझौता करनेमें भरसक मदद देनेके लिए ही यहां हूं; और इस कार्यको मैं आनंद ही नहीं, अपना कर्तव्य भी समझता हूं । परन्तु आपको याद रखना चाहिये कि मैं यहां सदा नहीं रह सकता । अब निर्णय तो हो ही चुका है और आपको अपना पाकिस्तान मिल गया है। अब आप खुद जाकर कांग्रेसके नेताओंसे मित्रोंकी तरह बातचीत क्यों न कर लें और शेष बातों पर आपसमें निबटारा करनेकी कोशिश क्यों न करें ? मेरी ही अध्यक्षतामें एकसाथ मिलनेके रिवाजको पकड़े रहनेके बजाय इससे कहीं बेहतर वायुमण्डल बनेगा।

गांधीजीने यह भी सुझाया कि वाइसरॉय जिन्नाको समझायें कि वे जाकर पूर्व पंजाब और पश्चिम बंगालके गैर-मुस्लिम अल्पसंख्यकोंको अपना बना कर पंजाब और बंगालके विभाजनको रोकें । जिन्नाको उनके सामने पाकिस्तानका चित्र और वह दर्जा रखना चाहिये जो अल्पसंख्यकोंको वहां मिलेगा । तब वे देखेंगे कि अल्पसंख्यक लोग खुद उनसे प्रार्थना करेंगे कि उन प्रान्तों पर छुरी नहीं चलनी चाहिये। बाकी सुझावोंका संबंध सीमाप्रान्तके प्रस्तावित जनमत-संग्रहसे था और उस समझौतेसे था जो दोनों भारतीय उपनिवेशोंके साथ सम्राट्की सरकार करती।

गांधीजीका पत्र पंडित नेहरूको,

७ जून, १९४७

मेरी वाइसरॉय महोदयसे लम्बी बातचीत हुई। . . . मैं उनसे जितना अधिक मिलता हूं उतना ही यह महसूस करता हूं कि वे सच्चे आदमी हैं। **परन्तु यदि आसपासका वायुमंडल, जिसे भारतीय तत्त्व बनाते हैं, उन पर छा जायगा, तो बहुत संभव है कि वह उन्हें हानि पहूंचाये**, जैसा कि वह हममें से किसीको भी हानि पहूंचा सकता है। (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

कार्यसमितिकी बैठकमें कल हमने जिन मुद्दोंकी चर्चा की थी उन सब पर मैंने उनसे बात की और मुझ पर यह छाप पड़ी कि वे वास्तवमें उनकी कदर करते हैं।

बिलकुल सत्यमय बननेके लिए बहुत ऊंचे दर्जेकी बहादुरीकी और इसलिए अहिंसाकी जरूरत होती है।

माउन्टबेटन स्वयं बाधक तत्त्वोंकी खुशामदखोरी और अनधिकृत कृत्योंके हानिकारक प्रभावको अच्छी तरह जानते थे, जिसके शिकार राजधानीके उच्च पदाधिकारी हो सकते थे। जैसा कि उनके प्रेस-अधिकारीने लिखा है, यह एक ऐसा कारण था, जिससे माउन्टबेटन अपने जलसेनाके जीवनमें लौट जानेको उत्सुक थे।

श्रीमती माउन्टबेटनका पत्र राजकुमारी अमृतकौरको,

१२ जून, १९४७

(माउन्टबेटन) मुझसे यह सूचित करनेके लिए कहते हैं कि वे इस विचारसे पूरी तरह सहमत हैं कि दोनों सम्बंधित प्रान्तोंकी सरहदें निश्चित करनेके सम्बंधमें स्वयं नेताओंके बीच कोई वास्तविक, प्रामाणिक और मित्रतापूर्ण प्रयत्न होना चाहिये। दूसरी ओर हमें यह देखना है कि हम सफल होंगे या नहीं। कुछ भी हो, मैं इससे सहमत हूं कि और अधिक कटुता नहीं बढ़ने देनी चाहिये।

मेरे खयालसे आप यह विश्वास रख सकते हैं कि हम दोनों भरसक कोशिश करेंगे और उन लोगोंको यह बात समझायेंगे जिनका रवैया अभी भी सहयोग और समझौतेकी भावना दिखानेका मालूम नहीं होता ।

गांधीजीके सुझावके अनुसार माउन्टबेटनने जिन्नासे बात की, परन्तु उसका कोई फल नहीं निकला। फिर भी वे गांधीजीकी सलाहके अनुसार काम करते रहे और भारतकी सेवामें अपनी अनोखी प्रतिभाका उपयोग करते रहे।

२

कांग्रेस कार्यसमितिने विभाजनकी योजना स्वीकार कर ली, इससे भारतके लोगोंमें निराशा, विफलता, रोष और उदासीकी भावना व्याप्त हो गई। गांधीजीने लोगोंको मन ही मन घुटनेका समय नहीं दिया । इसके बजाय उन्होंने उनके मन उन कार्योंकी तरफ मोड़ दिये, जो स्वतंत्र भारतके सामने खड़े थे।

जामिया मिलिया इस्लामिया (मुस्लिम राष्ट्रीय विद्यापीठ) से मुसलमानोंकी मंडली गांधीजीसे मिलने आई। वे लोग बड़े उदास दिखाई देते थें। उनके दिलोंमें विभाजनके भावी परिणामोंकी आशांकायें भरी थीं। गांधीजीने उनके सामने भी अपना यह दृढ़ विश्वास दोहराया कि अगर एक पक्ष भी हिंसाका पूरी तरह परित्याग करने और केवल अहिंसाकी शक्ति पर निर्भर रहनेका निश्चय कर लेता, तो साम्प्रदायिकताकी फैलती हुई आग अपने आप बुझ जाती। परन्तु इसमें हम असफल रहे, इसलिए देशका विभाजन हुआ। यदि हम मौतसे डरना छोड़ दें, तो उपद्रवियोंके शस्त्रागारका सबसे शक्तिशाली हथियार भी भोंटा पड़ जायगा। "हम केवर ईश्वरकी ही शरण लें। बस हमें इसीकी जरूरत है।"

इसके बाद सिक्ख नेता मास्टर तारासिंह आये । विभाजनकी सबसे कड़ी चोट उनके समुदायको लगी थी। उसके टुकड़े हो गये थे। उसका एक-तिहाई या उससे भी अधिक भाग पाकिस्तानमें चला जानेवाला था। इन्हीं लोगोंके साहस, अध्यवसाय और अथक परिश्रमने पंजाबकी झाड़-झंखाड़ भरी रेतीली धरतीको – जहां आज "नहरी कॉलोनियां" लहलहा रही हैं – भारतके अन्न-भंडारमें बदल दिया था। उन्हें पाकिस्तानमें अपने भविष्यकी चिन्ता थी और उसका उचित कारण था। अकाली सिक्खोंका एक अलग दल संगठित करनेका श्रेय अदम्य मास्टरजीको ही था। गांधीजीने उन्हें उलाहना दिया : "आपसकी फूटके कारण ही भारतका विभाजन हुआ है। जिन्हें विभाजनके कारण सबसे अधिक कष्ट हुआ है, वे मौजूदा गुटोंमें एक और गुटकी वृद्धि करनेका विचार कैसे कर सकते हैं ?"

एक दिन प्रात:काल पूनासे विद्यार्थियोंकी एक मण्डली आई। उन्होंने गांधीजीसे कहा: "हमें स्वाधीनताकी चमक कहीं दिखाई नहीं देती।" गांधीजीने उत्तर दिया: "कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि तुम

स्वाधीनताका अर्थ भी जानते दिखाई नहीं देते। तुम समझते हो कि स्वाधीनताका अर्थ सभी प्रकारके अनुशासनसे मुक्त होना है। तुम छुट्टी लिये बिना कक्षाओंसे गैर-हाजिर रह जाते हो, शालाकी सम्पत्तिको नुकसान पहूंचाते हो और जब जी में आता है अपने अध्यापकोंकी अवज्ञा और अपमान करते हो। क्या यह स्वतंत्रता नहीं है ? यदि नहीं है, तो मुझे बताओ कि स्वतन्त्रता क्या है ?"

गंभीर होकर गांधीजीने उनसे कहा: तुम्हें स्वतन्त्रताकी चमकका अनुभव तभी होगा जब तुम अपने पर अनुशासन रखना सीखोगे। लोकतंत्रमें प्रत्येक नागरिक शासक भी है और शासित भी। लोग जैसा करते हैं वैसा ही पाते हैं। उदाहरणके लिए, यदि वे सफाई और स्वच्छताके नियमोंका पालन नहीं करेंगे, तो उनकी स्वाधीनता सूअरके जैसी कीचड़में लोटनेकी स्वाधीनता ही होगी। जब मैं तुम्हें अपनी सांस्कृतिक दासताके चिह्न छातीसे लगाये देखता हूं तब मुझे इस बातसे आश्चर्य नहीं होता कि तुम्हें स्वतन्त्रताकी चमक महसूस नहीं होती ।" और उन्होंने मुसकराकर पाश्चात्य ढंगके फलालेनके कपड़ों और मोजोंकी तरफ संकेत किया, जो छात्रोंने भारतकी कड़ी गरमीके मौसममें भी पहन रखे थे !

फिर उन्होंने उस खतरेकी चर्चा की, जो हिंसाका आश्रय लेने पर देशको उठाना पड़ेगा। भारतमें धार्मिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक विचारों तथा दृष्टिकोणोंकी अनन्त विविधता है – जात-पांतकी विविधताकी तो बात ही छोड़ दीजिये। भारत पागलखाना बन जायगा और आपसी लड़ाई-झगड़ोंकी आगमें जल कर भस्म हो जायगा, अगर लोग अहिंसाके नियमका पालन नहीं करेंगे; क्योंकि केवल अहिंसा ही इन मतभेदोंको दूर करके अव्यवस्थामें व्यवस्था उत्पन्न कर सकती है। राजनीतिक दल तो पश्चिममें भी हैं, परन्तु वहां उनमें अनुशासन है और रक्षा करनेवाली विवेक-बुद्धि भी है। भारतमें ये दोनों नहीं हैं। "वे हमारी तरह तिलका ताड़ नहीं बनाते। वे औचित्यकी भावनाको कभी नहीं छोड़ते । उन्होंने हर चीजको राष्ट्रहितके अधीन समझता सीख लिया है।" अतः भारतके लिए अहिंसा नितान्त आवश्यक है। और स्वाधीनताके बाद तो इसकी आवश्यकता और भी अधिक होगी, क्योंकि बाहरी नियंत्रण – जो विविध भागों और दलोंको एक-दूसरेसे दूर भागने या एक-दूसरे पर प्रहार करनेसे रोकता था – हट जायगा। "आज तो ब्राह्मण और वैद्य एक-दूसरेका तिरस्कार करते हैं। हमने हात्रु और मित्रमें भेद करना छोड़ दिया है; हम धर्म और जातिके लेबल पर आधार रखते हैं। अपने घरेलू झगड़े आपसमें ही निबटानेके बजाय हम बाहरवालोंका हस्तक्षेप इसमें पसन्द करते हैं; और इसका ताजा उदाहरण वह बहुमूल्य

विभाजन-योजना है, जिस पर देशके तीनों दलोंने अभी अभी हस्ताक्षर किये हैं। . . . अब समय आ गया है कि हम अपनी जड़ता छोड़ें और कमर कस कर स्वाधीनताकी चुनौतीका सामना करें।"

गांधीजीने आगे कहा : परिस्थितियोंका तकाजा यही है कि हम काम करें, ठोस काम करें; एक-दूसरे पर आरोप न लगायें या होहल्ला और शोरगुल न मचायें । किसीको एक क्षण भी आलस्यमें, स्वार्थ-साधनमें अथवा असन्तोषकी घुटनमें बरबाद करनेका अधिकार नहीं है। हमें उस "माताके समान बनना होगा, जो अपने कष्टोंका पुरस्कार पानेका विचार किये बिना केवल अपने बच्चेका पालन-पोषण करनेमें ही बड़ेसे बड़ा सुख मानती है। . . . प्रयत्न ही सब कुछ है। यदि हम फलकी तरफ दृष्टि रख कर प्रयत्न करते हैं, तो उससे हमारी प्रगतिमें बाधा पड़ती है।" उदाहरणके लिए, भारतने स्वाधीनताकी प्राप्तिके लिए सत्य और अहिंसाकी पद्धतिको लक्ष्यके रूपमें नहीं परन्तु एक साधनके रूपमें ही अपनाया था, इसलिए ज्यों हीं वह लक्ष्य सिद्ध हुआ वे दोनों हमसे अलग पड़ गये। "नतीजा हमारी आजकी दुर्दशा है। यदि हम समय पर नहीं चेतेंगे और पहलेकी तरह रचनात्मक कार्यमें लग कर अहिंसाके खाली भंडारको नहीं भर लेंगे, तो हमारी अन्तिम स्थिति प्रथम स्थितिसे भी बुरी होगी ।"

गांधीजीने अपना कथन जारी रखते हुए कहा: अगर मेरा बस चले तो मैं सेना और पुलिसके आमूल सुधारके साथ कार्यका आरंभ करूं। अहिंसक व्यवस्थामें हम बाहरी हमलेसे देशकी रक्षा करनेके लिए उस समय तक एक छोटीसी सेना रख सकते हैं, जब तक लोगोंको अहिंसक रक्षाके लिए संगठित किया जाय। परन्तु उस बीच और उसकी तैयारीके रूपमें स्थल-सेनाओंको कुदाली और फावड़ोंके साथ सशस्त्र पुलिसका स्थान ले लेना चाहिये और अधिक अन्न उपजाने, सड़कें बनाने, गंदे पानीकी नालियोंका निर्माण करने और लोगोंको अनुशासन तथा सफाई और तन्दुरुस्तीके नियमोंका कठोर पालन सिखानेमें लग जाना चाहिये। तब उनकी निःस्वार्थ सेवाके कारण लोगोंका इतना हार्दिक सहयोग उन्हें मिल जायगा कि समाज-विरोधी तत्त्व स्वयं अलग पड़ कर कमजोर हो जायेंगे। ऐसी शक्ति राज्यके हाथोंमें दमनका साधन बननेके बजाय अहिंसक समाज-व्यवस्थाकी सिद्धिका साधन बन सकती है।

जो बात सेनाको लागू होती है वही पुलिसको भी होती है। इंग्लैंडमें पुलिसको लोग अपना उत्तम मित्र और सहायक तथा कर्तव्य-पालनकी जीती-जागती मूर्ति समझते हैं । परन्तु भारतमें उसे आम लोग गुंडा और अत्याचारी मान कर उससे डरते हैं। "मेरे मनमें जरा भी शंका नहीं है कि वर्तमान रक्तपात और

अव्यवस्थाकी ९९ प्रतिशत जिम्मेदारी पुलिस और सेना पर है। शांतिके रक्षक बननेके बजाय वे शान्तिका भंग करनेवाले बन गये हैं। उनका सारा ढांचा ही बदलना चाहिये और इन दोनों विभागों पर सार्वजनिक धनका जो जबरदस्त अपव्यय होता है वह तुरन्त ही रुकना चाहिये। हिंसाके बढ़ते हुए ज्वारको सफलतापूर्वक रोकनेका एकमात्र उपाय पुलिसके सुधारसे आरंभ करना है ।"

कुछ दिन बाद कुछ सैनिक अफसरोंके साथ चर्चा करते हुए गांधीजीने कहा : "मैं जानता हूं कि यह संक्रमण-काल है और इतिहास बताता है कि क्रान्तिकारी परिवर्तनोंके साथ समाज सदा बर्बरताकी ओर लौटता है। परन्तु हमने तो नया इतिहास बनानेकी ठान रखी है। इसीलिए मैंने यह सुझाया है कि सेना और पुलिसको राष्ट्र-निर्माणके कार्यमें लगाया जाय । लेकिन लोगोंका इससे भिन्न विचार हो, तो हम क्या करें ?"

३

आइन्स्टीनने हमें अपने "समग्र क्षेत्र" के सिद्धान्तसे अच्छी तरह परिचित करा दिया है। गांधीजीकी दृष्टिमें वे स्वयं, परिवार, उनका आश्रम और राजनीतिका व्यापक संसार "समग्र क्षेत्र" था और उस पर एक ही नियमका नियंत्रण था। आश्रम तो उनका "व्यापक परिवार" था और राजनीति उनकी आश्रम-प्रवृत्तियोंका ही विस्तार थी। राजनीतिको उसके पंडितोंने एक बड़ा पेचीदा, अगम्य और सूक्ष्म विषय बना दिया था – लगभग एक गुप्त शास्त्र जैसा, जो सदाचार और नीतिसे ऊपर हो और जिसके गूढ़ रहस्योंको उसमें दीक्षित इनेगिने लोग ही समझ सकते हों। गांधीजीके मिशनका एक अंग यह था कि राजनीतिके सारे रहस्यको खोल दिया जाय और यह समझाया जाय कि वह मेहनतकश आम जनताके सुखका विज्ञान है – जीवनमें सिद्ध किये जा सकने योग्य सर्वोच्च ध्येयकी पूर्तिका साधन है। और ऐसे विज्ञानके रूपमें उसे खेतमें हल चलानेवाले किसानके दैनिक जीवनके सामान्य तत्त्वोंका रूप ग्रहण करनेकी क्षमता रखनी चाहिये और उन मूलभूत सत्योंके अनुरूप बन सकना चाहिये, जिनके जाने या अनजाने किये जानेवाले पालन पर ही समाज और मानव-जाति टिकी हुई है। और चूंकि इन सत्योंकी बुनियादी शोध गांधीजीकी आश्रम-प्रवृत्तिका लक्ष्य थी, इसलिए उनकी राजनीतिकी कुंजी भी उनकी आश्रम-प्रवृत्तिमें ही थी।

उनका आश्रम उनके लिए एक ऐसा जादुई स्फटिक था, जिसमें वे देशमें अपने आसपास होनेवाली लीलाओंका और अपने अंतरकी गहराइयोंमें चलनेवाले व्यापारोंका अर्थ पढ़ते थे। जब कभी कोई व्यक्ति उनके सामने उनकी बड़ाई और आश्रमवासियोंकी बुराई करनेका प्रयत्न करता था, तो वे कहा करते थे: "जैसे मेरे आश्रमवासी हैं वैसा ही मैं हूं।" यह उनका अपने इस गहरे विश्वासको प्रकट करनेका एक तरीका था कि मनुष्यका मूल्य उस समग्र प्रभावसे अधिक नहीं होता, जो उसका जाग्रत या अजाग्रत व्यक्तित्व उसके वातावरण पर डालता है; बाकी तो सब आडम्बर है और धोखा है।

जबसे गांधीजी अपने नोआखालीके मिशन पर रवाना हुए तबसे उनके जीवनका सबसे बड़ा अभाव यह रहा कि वे अपने आश्रमवासियोंके बीच नहीं रह सके। परन्तु सशरीर उनके साथ न रह पाने पर भी आध्यात्मिक रूपमें वे सदा उनके साथ ही रहते थे। राजधानीकी राजनीतिके जटिल जालमें बुरी तरह फंसे रहने पर भी वे आश्रमकी छोटीसे छोटी समस्याओं पर ध्यान देनेके लिए समय निकाल लेते थे – चाहे वे समस्याएं संगठन-सम्बन्धी हों, व्यक्तिगत हों, कार्य-प्रणाली संबंधी हों अथवा आर्थिक, नैतिक या आध्यात्मिक हों।

एक पुराने आश्रमवासीको शंकाओंने घेर लिया था। गांधीजीके और एक ऐसे व्यक्तिके बीच विचारोंका संघर्ष था, जिसे गांधीजीके खयालसे इस आश्रमवासीने अपना गुरु मान लिया था। गांधीजी कभी अपने आश्रममें पोपकी-सी सत्ताका अपने लिए दावा नहीं करते थे और न किसीको यह मानने देते थे कि वे उसके गुरु हैं। वे सबके साथ साधना करनेवाले एक साधक थे – केवल आयुमें बड़े और अधिक अनुभवी, और इसलिए मार्गदर्शक बननेकी क्षमता रखनेवाले। वे कहा करते थे कि गुरुकी कल्पनामें मनुष्यकी आलोचनात्मक प्रतिभाके उपयोगकी कोई गुंजाइश नहीं है, जब कि एक मार्गदर्शक उसका स्वागत करता है। गुरुकी कल्पनामें श्रद्धासे संपूर्ण समर्पण करना ही सब-कुछ माना जाता है; जब कि मार्गदर्शक कदम कदम पर सावधानी, जागरूकता और बुद्धिके उपयोगका तकाजा करता है। हिन्दू अध्यात्म-परम्परामें गुरुकी संस्थाका एक अनोखा और अनुपम स्थान है। यह द्विविध कल्पना है। गुरुके पक्षमें संपूर्ण साक्षात्कार आवश्यक है – वह साक्षात्कार इतना तीव्र होना चाहिये कि उसकी छाप शिष्य पर पड़े और शिष्य तक सीधा उसका संप्रेषण हो जाय। शिष्यके पक्षमें गुरुके प्रति सम्पूर्ण श्रद्धा होनी चाहिये। शिष्यको तो इतना ही करता होता है कि वह पूरी तरह गुरुमें समा जाय। बाकी सब काम गुरु करता है या गुरुकी श्रद्धा करती है। श्रद्धाका अर्थ है समर्पण – स्वाभाविक, निष्प्रयत्न और सम्पूर्ण

समर्पण । गुरुकी आज्ञासे शिष्यको आग पर भी निःसंकोच होकर चलनेकी तैयारी रखनी चाहिये। परन्तु व्यवहारमें ऐसी श्रद्धा और उस श्रद्धाके योग्य गुरु मिलना कठिन है। गुरुकी संस्थाके पीछे सूक्ष्म विचार, जैसा कि आजकल सामान्यत: समझा जाता है और प्रचलित है, लगभग "कष्ट भोगे बिना" ही नैतिक संपूर्णताकी सिद्धिका रहता है। और इसके नाम पर जो छल-कपट और धोखेबाजी चलती है उसका कोई अन्त नहीं है।

अपने लिए तो गांधीजी ईश्वरकी कृपा प्राप्त करनेके लिए सतत साधना करने और ईश्वरका द्वार खटखटानेके कठोर और अस्पष्ट मार्गमें ही विश्वास करते थे और करोड़ों लोगोंको उसी मार्ग पर चलना होगा। वे पवित्रता अथवा पूर्णताके लिए योगियोंके रहस्यमय लघु-उपायोंकी लालसा कभी नहीं रखते थे। और जो धर्मयात्री उनसे सलाह लेते थे उन्हें भी वे यही मार्ग बताते थे। वे कहा करते थे: सत्य ही मेरा गुरु है और उस गुरुका एक ही चेला है – वह भी अपूर्ण; और वह चेला मैं हूं ।

अपने शंकाग्रस्त साथीको उन्होंने लिखा: "मैं तुम सबके लिए पिताके समान हूं । मैं जो कुछ कहता हूं वह तुम्हारे हृदय और बुद्धिको जंचे, तो ही तुम उसे मानना। उसमें से अपना चुनाव करनेके लिए तुम स्वतन्त्र हो। परन्तु यह बात उस पुरुषके बारेमें नहीं कही जा सकती, जिसे हस अपना गुरू मानते हों। वहां 'चुनाव करने' की बात ही नहीं होती। जो कुछ गुरु कहे वह बुद्धिकी सहायताके बिना सीधा हृदयमें पहुंच जाना चाहिये । ऐसा गुरु न मिले तो सबकी सुन कर वही करना चाहिये जो हमारा हृदय कहे । एक कहावत है जिसमें कहा गया है कि हमारी अपनी अन्तर्बुद्धि (जैसी भी है) दूसरेकी सारी विद्वत्ता और बुद्धिकी अपेक्षा हमारी अधिक अच्छी मार्गदर्शिका होती है। जैसा कि तुम जानते हो, मैंने उस प्रकारका गुरु – जैसा मैंने कल्पना की थी कि तुम्हें मिल गया है – खोजनेका प्रयत्न किया, किन्तु सफलता नहीं मिली; और जिनका दावा है कि उन्हें वैसा गुरु मिल गया है उनसे मुझे ईर्ष्या हुई है। इन मित्रोंने अपने अपने ढंगसे मुझे रमण महर्षि, अरविन्द घोष, आगराके साहिबजी महाराज, उपासनी बाबा और मेहर बाबाका नाम सुझाया है। कर्नाटकके एक संतका नाम भी सुझाया है, जो मैं भूल गया हूं। परन्तु मैं इसमें से एकको भी अपना गुरू नहीं बना सका और अन्तमें इस नतीजे पर पहूंचा कि आदर्शोंकी तरह शायद गुरुओंकी भी प्राप्तिसे उनकी शोध अधिक महत्त्वपूर्ण होती है। किसी आदर्शकी प्राप्ति हो जाय तो वह आदर्श नहीं रहता। आदर्शका ध्यान किया जा सकता है, उसके निकटसे निकटतर पहूंचा जा सकता है; परन्तु उसे प्राप्त तो कभी किया ही नहीं जा सकता।"

गांधीजी इस बातके बड़े विरुद्ध थे कि उन्हें पूर्णताकी मूर्ति माना जाय । इतना ही नहीं, वे सब मित्रों और साथियोंको अपने अन्त:करणके चौकीदार बननेका निमंत्रण देते थे। वे कहते थे कि आपको मेरे जीवनकी छानबीन करनी चाहिये और आलोचनात्मक दृष्टिसे मेरे सिद्धान्तोंका परीक्षण करना चाहिये। समयकी कसौटी पर खरे उतरने पर ही उन सिद्धान्तोंका कोई मूल्य होगा : "आपको यह भी सोचना चाहिये . . . कि ब्रह्मचर्यकी मेरी कल्पना भी, जिस पर मैंने अपने जीवनका आधार रखनेकी कोशिश की है, मेरे किसी भ्रमका ही परिणाम तो नहीं है, क्योंकि जो बात मेरे अपने लिए सूर्यकी भांति स्पष्ट है वह मैं दूसरोंको नहीं समझा सकता। मेरे सिद्धान्तों और आचरणके सत्य और शुद्ध होनेकी अन्तिम कसौटी यह होनी चाहिये कि कुल मिला कर मेरा जीवन अधिकाधिक संयम और त्यागकी दिशामें बढ़ा है या भोग-विलासकी दिशामें।"

एक और सहयोगीको, जो एक गम्भीर नैतिक दोषके बाद आश्रममें रहने आये थे और बादमें भी अपने निश्चय पर दृढ़ नहीं रह सके थे, गांधीजीने ऐसा ही लिखा : मैं तुम्हें इसके सिवा और कोई रास्ता नहीं बता सकता कि ईश्वरकी कृपाके लिए कठोर साधना करो। "मैं तुम्हें कोई सान्त्वना नहीं दे सकता। जिन्हें अपने आपमें श्रद्धा न रह गई हो, उनके लिए हरिनाम-स्मरण ही एकमात्र आश्वासन है। इसकी शक्तिका अनुभव करनेके लिए आशा या श्रद्धा छोड़े बिना हमें संघर्ष करनेके लिए और ईश्वरका नाम लेते हुए मृत्युका आलिंगन करने तकके लिए तैयार रहना चाहिये । अतः तुम्हारे लिए मेरी सलाह यह है कि . . . तुम्हें रामनामसे जो भी शक्ति और सान्त्वता मिल सकती हो वह तुम लो और जो भी सेवाका कार्य तुम्हें मिल जाय या तुम कर सको उसमें डूब जाओ।"

*

इसी समयके आसपास एक प्रस्ताव आया कि गांधी-परिवारका पैतृक मकान राष्ट्रके लिए ले लिया जाय। गांधीजीकी एक सम्बन्धी महिला उसमें रहती थीं। उन्होंने इसे सम्पत्ति-हरण समझ कर उसके विरुद्ध गांधीजीकी सहायता मांगी ।

गांधीजी दीर्धकालसे अपनी पैतृक सम्पत्तिमें सारी दिलचस्पी छोड़ चुके थे। मानव-परिवारमें एकरूप होकर रहनेकी उन्हें लालसा थी और यही बात वे अपने निकटके सम्बन्धियोंको भी समझाते रहते थे। उपरोक्त महिलाके पत्रका उत्तर देते हुए उन्होंने लिखा: "एक पुरानी कहावत है कि बुद्धिमान

मनुष्यको अपने बापदादाके कुएंका उपयोग तैरनेके लिए करना चाहिये, ना कि डूबने अथवा आत्महत्या करनेके लिए। तुम्हें यह मकान छोड़ देना चाहिये और जो भी मुआवजा मिले उससे सन्तोष करना चाहिये। बदलेमें तुम दूसरा मकान मांगो तो मैं तुम्हारी बात समझ सकता हूं, परन्तु तुम इसी घरमें रहनेका आग्रह करोगी तो इससे तुम्हारी अदूरदर्शिता और आसक्ति ही प्रकट होगी। मुझे स्मारकोंकी परवाह नहीं है। . . . लेकिन यदि हमारे पैतृक घरका कोई अच्छा उपयोग होता हो, तो तुम्हें या तुम्हारे सलाहकारोंको उसमें बाधक नहीं बनना चांहिये।"

*

गांधीजी महान निर्माण-कर्ता थे। लेकिन जिन ईंटोंसे उन्होंने सामुदायिक सत्याग्रहके भवनका निर्माण किया, वे उन मौन, निःस्वार्थ, निराडंबर कार्यकर्ताओं – पुरुषों, स्त्रियों और बालकोंके रूपमें थीं, जिन्हें आश्रमी जीवन-पद्धतिकी तालीम –अनिवार्यत: आश्रमके भीतर नहीं – दी गई थी। बाहरी तौर पर इन कार्यकर्ताओंमें कोई बहुत दिखाने जैसी चीज नहीं थी। उनमें से अधिकांश सीधे-सादे लोग थे। उनमें त्रुटियां भी थीं और विचित्रताएं भी थीं। यह दूसरी बात है कि भगवानने उनमें से कुछको सर्वतोमुखी प्रतिभायें और गुण भी दिये थे। गांधीजीने इनका उपयोग कर लिया। परन्तु गांधीजीकी दृष्टिमें मुख्य महत्त्व इन प्रतिभाओं और गुणोंका नहीं था, बल्कि इस बातका था कि उनमें साहस, वफादारी और श्रद्धाके गुण थे, वे अंतर्बुद्धिसे समझते थे कि गांधीजी किस वस्तुका प्रतिनिधित्व करते हैं और सबसे बड़ी बात तो यह थी कि वे सिपाहीके जैसी आज्ञाकारितासे ध्येयके लिए अपनी कुरबानी करनेकी क्षमता रखते थे। ये लोग सम्पूर्ण रचनामें केन्द्रीय स्थान पर थे। जब गांधीजीके राजनीतिक साथी केवल राजनीतिक कार्रवाईकी दृष्टिसे सोचते हुए बौद्धिक शंकाओंके मारे पीछे रह जाते थे, तब इन्हीं लोगोंको साथ लेकर गांधीजी अकेले चल पड़ते थे। कोई आश्चर्य नहीं कि वे ऐसे कार्यकर्ताओंको खोजने और उन्हें ढालनेके काममें उदारतापूर्वक अपना समय और ध्यान देते थे और उनसे उत्तम वस्तु पानेके लिए अपनी उत्तम वस्तु उन्हें देते थे।

विद्वत्ताका घमंड रखनेवाले लोग इन सब बातोंको मुश्किलसे समझ पाते थे। वे समझते थे कि यह गांधीजीकी सनक है, जिसे एक "उच्चात्माकी दुर्बलता" समझ कर हमें सहन कर लेना चाहिये। जब गांधीजी उनके दृष्टिकोणसे किसी बातको नहीं देख पाते थे तब उन्हें निराशा होती थी। मूल्यांकनकी

गांधीजीकी अपनी ही कसौटी थी, जो उन लोगोंसे भिन्न थी, और जिन मूल्योंको वे लोग महत्त्व देते थे उन्हें गांधीजीने छोड़ दिया था – क्योंकि वे मूल्य अपने मिशनके लिए उन्हें निरर्थक मालूम हुए।

इसी समय आचार्य धर्मानन्द कोसम्बीका अवसान हुआ । वे एक प्रमुख बौद्ध भिक्षु और पाली भाषाके अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विद्वान थे। उनके अवसानके समय गांधीजीने उन्हें जो श्रद्धांजलि अर्पित की, उससे गांधीजीका उपर्युक्त लक्षण प्रकट होता है। आचार्यजी आसानीसे अच्छी कमाईका धन्धा कर सकते थे, परन्तु उन्होंने स्वेच्छासे सेवाका क्षेत्र और दरिद्रताका जीवन पसन्द किया । जब १९२० के आसपास गांधीजीने असहयोग आन्दोलन छेड़नेके बाद गुजरात विद्यापीठकी स्थापना की, तब आचार्य कोसम्बी उसमें एक अध्यापकके रूपमें जुड़ गये । जीवनके अन्तिम दिनोंमें वे सेवाग्राम आश्रममें रहने आ गये थे। उनका लड़का और उनकी लड़की अच्छी स्थितिमें थे। आचार्य चाहते तो उनके साथ आरामसे रह सकते थे। दोनों उनके इलाजके लिए योग्यसे योग्य डॉक्टरोंकी सेवा प्राप्त कर सकते थे। परन्तु उन्होंने आश्रमके शान्त वातावरणमें एक भिक्षुके रूपमें ही जीना और मरना पसन्द किया । वे आश्रमवासियोंकी सेवा भी नहीं लेना चाहते थे। एक प्रकारसे आश्रमके अपने निवास-कालमें उन्होंने उपवास ही रखा। अन्तकालसे कुछ समय पहले उनसे पूछा गया : क्या आपके पुत्र और पुत्रीको बुलाया जाय ? परन्तु उन्होंने अपनी बौद्ध समवृत्तिके अनुसार 'नहीं' कहा और आश्रमके अपने सेवकको पास बुला कर उसके सिर पर अपना हाथ रखा, उसे आशीर्वाद दिया और पूरी शान्तिके साथ अपनी आत्माको मुक्त किया। उनके निधन पर गांधीजीने कहा : "अपने जीवनमें बौद्ध सिद्धान्तका पालन करके उन्होंने मृत्युको सबसे सच्चा और अचूक मित्र तथा मुक्तिदाता समझना सीख लिया था । . . . वे आश्रमके निवासियोंमें अपने जीवनकी सुगन्ध फैला कर चले गये।"

एक और संस्कृत-विद्वान परचुरे शास्त्री थे। वे कुष्ठरोगसे पीड़ित थे। जब युद्धमें भारतके सम्मिलित होनेके सम्बन्धमें वार्ताएं चल रही थीं तब गांधीजी परचुरे शास्त्री और लॉर्ड लिनलिथगो दोनों पर बराबर ध्यान देते थे।

तीसरा दक्षिण भारतका हरिजन युवक चक्रैया था । वह छोटी उम्रमें ही आश्रममें भर्ती हो गया था और निपुण कारीगर बन गया था। उसकी आकांक्षा थी कि वह अपने ही गांवमें हरिजनोंकी सेवा करे। अचानक उसमें मिरगीके लक्षण दिखाई देने लगे और निदान करने पर बादमें मालूम हुआ कि उसे

मस्तिष्कका फोड़ा (ब्रेन ट्यूमर) हो गया है। वह प्राकृतिक चिकित्सामें विश्वास रखता था। परन्तु गांधीजीने देख लिया कि इस मामलेमें प्राकृतिक चिकित्सासे काम नहीं चलेगा। अतः उन्होंने उसे बड़े ऑपरेशनकी सलाह दी। ऑपरेशनके कमरेमें जानेसे आध घंटें पहले चक्रैयाने एक आश्रमवासीको लिखा : "में बहुत निराश था। परन्तु अब निराशा नहीं रही। अपने सांसारिक पितासे मिलने जाते समय भी हमें खुशी होती है, तब स्वर्गीय पितासे मिलने जानेकी कल्पनासे तो कितनी अधिक खुशी होनी चाहिये ? अब मुझे मौतका डर नहीं रहा। मैं प्रसन्न मनसे मृत्युका आलिंगन करनेको तैयार हूं।"

युवक चक्रैयाको जब तक होश रहा तब तक वह बराबर भगवानका नाम लेता रहा और भगवानका प्यारा हो गया।

प्रार्थना-सभामें इस वियोगके समाचार सुनाते हुए गांधीजीने कहा: "चक्रैयाकी मृत्यु पर रोनेका मन करता है, परन्तु साहस नहीं होता। चक्रैया मेरे लिए पुत्रके समान हो गया था। तुलसीदासने कहा है कि भारत-माताको ऐसे पुत्रोंकी जरूरत है, जो या तो कर्म करनेमें शूर हों या परोपकार करनेमें शूर हों। चक्रैयामें दोनों बातें थीं। उसने मृत्युका भय छोड़ दिया था। उसने अपने आपको मानव-जातिकी सेवामें पूरी तरह अर्पण कर दिया था। वह हरिजन था, परन्तु छूत-अछूतका, हिन्दू-मुसलमानका कोई भेद नहीं रखता था। उसके लिए वे सब मनुष्य थे और वह सच्चे अर्थमें **मनुष्य** था।"

शेष भाषण स्वतंत्र भारतमें राजाओंके दर्जेके विषयमें हुआ । गांधीजीने कहा कि स्वतंत्र भारतमें न तो बिड़ला-राज्य होगा और न भोपालके नवाबका राज्य होगा, परन्तु पंचायत-राज होगा। व्यक्तियोंका व्यक्तियोंसे अधिक महत्त्व नहीं होगा। "जब भारतके नवाब जनताके ट्रस्टी बन जायंगे, और लाखों भारतीय युवक चक्रैयाके उदाहरणका अनुसरण करेंगे, तभी भारतको अपना मूल गौरव प्राप्त होगा और उसकी संतानोंको स्वाधीनताकी पूरी चमक महसूस होगी।" अन्तमें उन्होंने कहा: इसलिए मैंने चक्रैयाका नाम जो राजाओंके साथ रखा है "उसका अपना विशेष अर्थ है"।

दो दिन बाद उन्होंने फिर वही विषय छेड़ा। उन्होंने कहा : वह समय तेजीसे आ रहा है जब भारतको अपना पहला राष्ट्रपति चुनना होगा। चक्रैया जिन्दा होता तो मैं इस पदके लिए खुशीसे चक्रैयाके नामका प्रस्ताव रखता । "**मुझे इस विचारसे खुशी होगी कि कोई भंगीकी लड़की, जिसका हृदय मजबूत हो, जो प्रामाणिक हो और स्फटिककी भांति शुद्ध हो, हमारा प्रथम राष्ट्रपति बने** । यह कोई निरर्थक सपना

नहीं है। ऐसी लड़कियां मौजूद हैं, यदि हम ग्रामीणोंको राष्ट्रपति बनानेका निश्चय कर लें। ऐसी **लड़कीको उसके कर्तव्य-पालनमें पंडित नेहरू जेसे पुरुष सहायता दे सकते हैं। वे उसके सचिव अथवा मुख्यमंत्रीका काम कर सकते हैं। भारतीय गणतंत्रके भावी राष्ट्रपतियोंके लिए अंग्रेजी जानना जरूरी नहीं होगा**। वे ऐसे सलाहकार रखेंगे, जो बुद्धिमान देशभक्त हों और आवश्यक विदेशी भाषा तथा सच्ची राजनीतिकी कला जानते हों।" अन्तमें गांधीजीने कहा : केवल लोगोंकी अज्ञानपूर्ण मूर्खता ही उन्हें अपनी संपूर्ण सार्वभौम सत्ता सिद्ध करनेसे रोकती है।

चक्रैयाकी मृत्युके बाद आश्रमके एक पत्रमें उन्होंने यह लिखा: "मेरे मनमें जरा भी शंका नहीं है कि जो ईश्वरका भक्त है, वीर है और राष्ट्रका सेवक है, वह स्वतंत्र भारतका प्रथम राष्ट्रपति बननेके योग्य है। मैंने १९१७ या १९१८ में ही एक सार्वजनिक भाषणमें कह दिया था कि **जब तक कोई चमार अथवा भंगी भारतका राष्ट्रपति नहीं बनेगा तब तक मुझे सन्तोष नहीं होगा**।" (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

४

मईके दूसरे सप्ताहमें कांग्रेसी कार्यकर्ताओंकी एक मंडली गांधीजीसे कलकत्तेमें मिली । उससे उन्होंने कहा: "यदि हम भारतसे आम लोगोंकी गरीबी और बेकारीका मुंह काला नहीं कर सकते, तो हमारी स्वाधीनता नाममात्रकी ही होगी।" स्वाधीनता हमारे रास्तेकी कुछ रूकावटें ही दूर करेगी । लेकिन जो कुछ मैं देखता हूं उससे मुझे भय होता है कि अगर आप सावधान न हुए, तो स्वाधीनताके बाद कमसे कम दस वर्ष तक भारतकी परिस्थितियां बराबर बिगड़ती जायंगी। सच्ची स्वाधीनताकी मेरी कसौटी यह है कि देशमें प्रत्येक मनुष्यको काफी मात्रामें स्वास्थ्यवर्द्धक संतुलित आहार मिले, पर्याप्त वस्त्र मिलें, स्वास्थ्यप्रद वातावरणमें रहनेको घर मिले और उसके बच्चोंकी शिक्षाके लिए अच्छी सुविधाएं मिलें। करोड़ों लोगोंके लिए वर्तमानमें इसे संभव बनानेका एकमात्र मार्ग यह है कि उनकी स्वावलम्बनकी भावनाको क्रियाशील बनाया जाय, उन्हें अपने ही प्रयत्नसे यह सब जुटानेकी शिक्षा दी जाय और इसके लिए जो साधन आसानीसे मिल सकते हैं उनका उपयोग करनेकी बात उन्हें समझाई जाय । इसके लिए जरूरी है कि कांग्रेसजन गांवोंमें विकेन्द्रित पद्धतिसे रचनात्मक कार्य करें, न कि विशाल पैमाने पर देशका केन्द्रित आयोजन और उद्योगीकरण करें। उन्होंने भविष्य-वाणी की कि केन्द्रित आयोजन और उद्योगीकरण अन्तमें बहुत बड़ी भूल सिद्ध होंगे: "जो बात मैं आपसे कह रहा हूं उसे आप अपने मनसे

नहीं करेंगे, तो परिस्थितियां आपको वैसा करनेके लिए मजबूर कर देंगी।" इससे मुझे बहुत बेचैनी होती है कि स्वाधीनताके आगमनके समय कांग्रेस-जन सत्ताकी छीनाझपटीमें अपनी शक्ति बरबाद कर रहे हैं, जब कि उनकी शक्ति संपूर्णतः रचनात्मक प्रयत्नमें लगनी चाहिये। अन्तमें उन्होंने ये सारगर्भित उद्गार प्रगट किये : **जिस हद तक रचनात्मक कार्यकर्ताओंमें सत्यप्रेम, साहस और अहिंसाके गुण होंगे उसी हद तक वे जन-साधारणको भी इन गुणोंकी छूत लगा सकेंगे और उन्हें भयमुक्तिका अनुभव करने योग्य बना सकेंगे। सच्ची स्वाधीनताका यही अर्थ है।**

कांग्रेस संगठनकी प्रतिष्ठा और शक्ति तेजीसे घट रही थी। गांधीजीने एक मित्रको पत्रमें लिखा: "आप यह भूल जाते हैं कि डेढ़ सौ वर्षकी गुलामीके बाद यह मान कर चलना बहुत अधिक नहीं होगा कि हमें कमसे कम इससे आधा समय अपनी राजनीतिसे वह जहर निकालनेमें लगेगा, जो हमारे दासत्व-कालमें हमारे जीवनके रोम-रोममें पैठ गया है। स्वाधीनताकी प्राप्तिके लिए जितने बलिदानोंकी आवश्यकता थी, उससे कहीं अधिक बलिदानोंकी आवश्यकता स्वराज्य-प्राप्तिके बाद सुराज्य स्थापित करनेके लिए होगी।"

गांधीजीको यह देखकर अधिकाधिक चिन्ता होती थी कि कांग्रेसियोंमें ऐसे लोग भी हैं जो मानते हैं कि स्वाधीनताके बाद त्यागकी जरूरत नहीं होगी । ऐसे लोगोंको उन्होंने चेतावनी दी कि वे बहुत बड़ी भूल कर रहे हैं । "जब हम गुलाम थे तब हमें स्वाधीनता प्राप्त करनेके लिए त्यागकी आवश्यकता थी। परन्तु आजाद हो जानेके बाद स्वाधीनताको टिकाये रखनेके लिए 'ईशोपनिषद्' के अनुसार त्यागके सम्पूर्ण आदर्शको जीवनमें चरितार्थ करनेकी कहीं अधिक आवश्यकता होगी।"

इस दलीलको जारी रखते हुए गांधीजीने डॉ. राजेन्द्रप्रसादसे कहा: आपके लिए पहला काम करोंका भार हलका करना और कांग्रेस जिस रचनात्मक कार्यक्रमके लिए वचन-बद्ध है उसे पूरा करना होना चाहिये। देशकी राजनीतिका आधार उसी पर होना चाहिये। इसके लिए बहुत होशियारीकी जरूरत नहीं है, बल्कि दृढ़ निश्चय और प्रामाणिकताकी जरूरत है। उदाहरणार्थ, खादीको सर्वव्यापी बनाना बिलकुल सीधा-सादा काम है; परन्तु नई मिलें खड़ी करनेके मामलेमें आप जरा भी झुकेंगे, तो आपकी खादीकी योजना खतम हो जायगी। **आपको विदेशी सरकारकी तरह राज्यकोष भरनेके लोभके सामने झुकना नहीं चाहिये।** "मेरी यह भी राय है कि हमें कांग्रेस संगठनमें नया खून दाखिल करना चाहिये।

कांग्रेस-जन जेलमें गये हैं, इसका यह अर्थ नहीं होना चाहिये कि अपने पिछले त्यागके बदलेमें सारे सरकारी पद अब उन्हींके पास होने चाहिये। इसके विपरीत, सब प्रकारके पूर्वग्रह और दलबन्दीके विचार छोड़ कर हमें कांग्रेसके बाहर भी जहां कहीं प्रशासनकी योग्यता और अनुभववाले लोग दिखाई दें वहां उनका खुले दिलसे उपयोग करना चाहिये।"

यह बात देशी राज्यों पर विशेष रूपसे लागू होती है। रियासतोंमें अनुभव, ज्ञान, प्रशासनिक प्रतिभा और राजनीतिज्ञताका विशाल भंडार है, जिसका उपयोग करके देशको बड़ेसे बड़ा लाभ पहूंचाया जा सकता है। "मुझे विश्वास है कि जिस चीजकी हममें कमी है और जिसकी हमें जरूरत है, वह बहुत कुछ देशी राज्योंसे हमें मिल जायगी। कांग्रेस-जन विदेशी सत्तासे लड़ना और जेलें भरना तो जानते थे, परन्तु प्रशासनका कोई अनुभव न होनेके कारण उनमें शासन-कलाका अभाव है। देशी राज्योंसे यह सब हमें मिल सकता है, यदि हमें उसका उपयोग करना आता हो।"

दो दिन बाद गांधीजीने फिर कांग्रेसके चोटीके नेताओंके सरकारसे बाहर रहनेकी जरूरतकी चर्चा की। अगर चोटीके तमाम कांग्रेसी नेता सरकारमें चले जायंगे, तो वे जनतासे अलग पड़ जायंगे और चरित्रहीन मत-संग्राहकों और शरारती तत्त्वोंकी अपनी चालबाजियोंसे लोगोंको धोखा देनेके लिए साफ मैदान मिल जायगा। इसी कारणसे मैंने सुझाया है कि चक्रैया जैसे किसी हरिजनको या किसी निर्मल हृदयवाली बहादुर हरिजन लड़कीको भारतका प्रथम राष्ट्रपति चुनना चाहिये। इससे चोटीके नेता आम लोगोंके निकट सम्पर्कमें रहेंगे और नौजवानोंको जिम्मेदारी निभानेकी तालीम मिलेगी ।

एक सहयोगीके साथकी बातचीतमें इस विषयको अधिक समझाते हुए गांधीजीने कहा: जिसके पास सत्ता होती है, उस पर उसका असर हुए बिना नहीं रह सकता। प्रणाली मनुष्यको निगल जाती है और उसके कार्य तथा विचारकी स्वतन्त्रता पर अंकुश लगा देती है। "शायद तुम कहोगे कि आखिर किसीको तो ये बेड़ियां पहननी ही पड़ती हैं। मेरा उत्तर यह है कि इस प्रकारके कामके लिए हमारे देशमें काफी संख्यामें प्रतिभाशाली मनुष्य हैं। हम उन्हें आसानीसे इस काममें लगा कर दोहरा लाभ उठा सकते हैं – इससे उन्हें भी लाभ होगा और देशको भी होगा।"

आरम्भसे ही कांग्रेसका संगठन विदेशी सत्ताके विरुद्ध लड़नेवाले एक तंत्रके रूपमें किया गया था। वह लम्बे अर्से तक सत्तासे दूर रही थी। १९३५ के भारतीय शासन-विधानके अनुसार जब उसने

प्रान्तोंमें सरकारें बनानेका निश्चय किया, तब भी कांग्रेसके वरिष्ठ नेता उनसे बाहर रहे थे और उन्होंने कार्यसमिति तथा पार्लियामेन्टरी बोर्डके द्वारा संसदीय कार्य पर और कांग्रेसी मंत्रि-मंडलोंके कामकाज पर कठोर नियंत्रण रखा था। उस समय कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओंको जो निर्विवाद सत्ता और लोकप्रियता प्राप्त थी और लोगोंका उनमें जो विश्वास था, उसके कारण उपर्युक्त व्यवस्थाने कुल मिलाकर काफी सन्तोषजनक ढंगसे काम किया था। कांग्रेस संगठनने लोगोंके और कांग्रेसी मंत्रि-मंडलोंके बीच कड़ीका काम किया। उसने एक ओर कांग्रेसी मंत्रि-मंडलोंको आम जनताके समर्थनके पृष्ठबलसे सुसज्ज किया, तो दूसरी ओर कांग्रेसी मंत्रि-मंडलों द्वारा कांग्रेसकी नीतियों पर ठीक अमल होनेकी गारंटी दी। कांग्रेस और सरकारमें गये हुए उसके प्रतिनिधियोंके बीच कोई मतभेद नहीं था। परन्तु सितम्बर १९४६ में केन्द्रमें अन्तरिम सरकार बन जाने पर कांग्रेसके बुजुर्ग सदस्य खुद पदारूढ़ हो गये और कांग्रेस संगठनको "दूसरे दर्जेके योद्धाओं" के हाथोंमें छोड़ दिया गया। अन्तरिम सरकारके कांग्रेसी सदस्योंने, जो राष्ट्रके पुराने और आजमाये हुए नेता थे, सोचा – और शायद इसमें थोड़ा औचित्य भी था – कि उनके हाथोंमें राष्ट्रके हित सुरक्षित हैं। यह भी दिखाई देगा कि सत्तारूढ़ होनेके बाद उन्हें सामुदायिक अहिंसाकी शक्तिकी बहुत परवाह नहीं रही, क्योंकि अब वे राज्यतंत्रका उपयोग कर सकते थे। उन्हें कांग्रेस संगठनका नियंत्रण खटकने लगा और अपने कार्यकी स्वतंत्रतामें बाधक भी मालूम होने लगा। इसलिए अंतरिम सरकारमें बैठे हुए कांग्रेसी नेताओंके और जो वर्ग बाहर कांग्रेस संगठनको संभालता था उसके बीच संघर्ष होने लगा। भीतरवाले बाहरवालोंके "हस्तक्षेप" की शिकायत करने लगे और बाहरवाले भीतरवालोंके "सहयोगके अभाव" की शिकायत करने लगे। गांधीजीने इस स्थितिको सुधारनेका यह उपाय सुझाया : प्रथम श्रेणीके कांग्रेसी नेता अपने पर आत्मोत्सर्गका अध्यादेश लगा लें, सरकारसे बाहर रहें, शासन चलानेका काम दूसरी श्रेणीके योद्धाओंको सौंप दें और ये लोग उनके अनुभवपूर्ण निरीक्षण और मार्गदर्शनमें काम करें। इससे कांग्रेसके वरिष्ठ नेता सरकारी कामकाज पर अनासक्त दृष्टिसे विचार कर सकेंगे और लोगोंकी आरंभ-शक्तिको स्वावलम्बनके आधार पर संगठित करके उसमें वृद्धि कर सकेंगे, ताकि राष्ट्र-निर्माणका कार्य तेजीसे होता रहे और राज्यकोष पर खर्चका बहुत भार न पड़े और भ्रष्ट, फिजूलखर्च और सुस्त नौकरशाही तंत्रकी मनमानीसे उसमें रुकावट न पड़े । लोगोंके अहिंसक संगठनका सहारा पाकर राज्य दिनोंदिन बलका आश्रय त्यागनेकी अधिक क्षमता प्राप्त करता जायगा और सत्तारूढ़ दलके हाथोंमें दमनका साधन बननेके बजाय जनताकी लोकतांत्रिक ढंगसे व्यक्त

होनेवाली इच्छाका प्रतीक और साकार रूप बन जायगा। पदोंकी बहुत कुछ तड़क-भड़क उस स्थितिमें मिट जायगी; सत्ताधारियोंको बहुत ऊंचे ऊंचे वेतन नहीं मिलेंगे; नियंत्रण उनके हाथोंमें रहेगा जिनकी सच्चाई उनके त्याग, जनसेवा और वैराग्यसे सिद्ध हो चुकी है तथा जैसे जैसे लोगोंमें आरंभ-शक्ति, स्वेच्छापूर्ण अनुशासन और अहिंसक संगठनका विकास होता जायगा वैसे वैसे राज्यकी सत्ता और कार्य घटता जायगा। इसी प्रकार भारतमें सच्चे लोकतंत्रका जन्म होगा ।

५

सामान्य भाषामें कहें तो गांधीजीके लिए यह पराजयकी घड़ी थी। समय गांधीजीके विरुद्ध रहा था। परन्तु जैसा उन्होंने बादशाह खानसे कहा : "जय और पराजय उनके लिए हैं, जो भौतिक शक्ति पर आधार रखते हैं; सत्याग्रहीके लिए तो असफलता होती ही नहीं ।" विज्ञानके क्षेत्रमें जब कोई प्रयोग प्रत्याशित परिणाम प्राप्त करनेमें निष्फल जाता है, तो वह घटना प्राय: निश्चित परिणाम प्राप्त करनेकी अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध होती है। सत्याग्रहको भी यही बात लागू होती है। ईश्वर-प्रणिधानके मूलमें रही अनासक्तिके रसायनका सत्याग्रहमें वही स्थान होता है, जो बर्ट्रैंड रसलके शब्दोंमें "वैज्ञानिक दृष्टिकोण" का भौतिक अनुसन्धानमें होता है। वह सत्याग्रहीके अनुभवके संपूर्ण वर्तुलको आविष्कार और प्रगतिके अनन्त चक्रमें बदल देता है, जिसमें असफलता और पराजयके लिए कोई स्थान नहीं हो सकता।

भारतके अहिंसक स्वातंत्र्य-संग्रामके दौरान बार-बार ऐसा ही हुआ है। हर लड़ाईने भारतको इस लक्ष्यके निकट पहूंचाया, चाहे तात्कालिक परिणाम कुछ भी हुआ हो। प्रत्येक भूल नई शोध, अधिक शक्ति, अधिक सत्ता और अधिक प्रतिष्ठाकी दिशामें ले जानेवाली साबित हुई है। हर बार जब कांग्रेस जेलमें गई या संग्राममें उसे असफलता मिली, तो विरोधीकी छावनीमें हर्षपूर्ण कानाफूसी हुई कि अब तो कांग्रेस सदाके लिए खतम हो गई। परन्तु हर बार यह सन्तोष क्षणभंगुर सिद्ध हुआ। हारमें भी निःशस्त्र योद्धा विजयी सशस्त्र शत्रुकी अपेक्षा अधिक दुर्दमनीय सिद्ध हुआ । ध्येय विजयी सिद्ध हुआ; मुठभेड़में हार मिलने पर भी युद्ध जीत लिया गया।

कांग्रेस कार्यसमितिने विभाजनकी योजना स्वीकार करनेका निर्णय किया, उसके बाद गांधीजीने एक मित्रसे कहा: "जीवनमें असफल्ताएं तो आती ही हैं, परन्तु जिन्दा वही रहता है जो उनका

उपयोग कारणका पता लगानेमें और उसे दूर करनेमें करता है।" भारतकी एकताके ध्येयको जो पराजय मिली उसका उपयोग गांधीजीने लोगोंको आत्म-निरीक्षण करने और भौगोलिक दृष्टिसे भारतकी एकता भंग होनेके बाद आत्मशुद्धि और हृदयोंकी एकताके द्वारा भारतीय एकता सिद्ध करनेकी प्रेरणा दी ।

किकर्तव्य-विमूढ़ बना देनेवाले इस घटना-चक्रका रहस्य क्या था ? किस चीजने गांधीजीको अजेय बना दिया था ? किस चीजने ब्रिटिश सत्ताको भी, जिसकी नीतियां गांधीजीकी नीतियोंके प्रतिकूल जाती थीं, गांधीजीसे सलाह लेनेको मजबूर कर दिया था ?

इसका उत्तर हमें गांधीजीकी संपूर्ण आत्मोत्सर्गकी भावनामें पाना होगा, किसी भी भेदभावके बिना प्राणिमात्रकी सेवा करनेकी उनके रोम-रोममें बसी हुई अभिलाषामें पाना होगा और अन्तमें केवल ईश्वरका ही सत्य खोजने और हर वस्तुको त्याग कर केवल उसी सत्यको अपना संपूर्ण व्यक्तित्व समर्पित कर देनेकी उनकी उत्कट लगनमें पाना होगा। इस स्थितिने उन्हें आवेग, पूर्वग्रह या अहंकार-मुक्त दृष्टिसे, शान्ति तथा अनासक्तिकी आत्मातीत उदात्त और उच्च स्थितिमें रहकर और विजय-पराजयकी भावनासे बहुत ऊपर उठकर घटनाओंके हार्दमें तथा उन घटनाओंके पीछे रहे पात्रोंकी आत्मामें देखनेकी क्षमता प्रदान की। इससे उन्हें वह परिपक्व बुद्धि प्राप्त हो गयी थी, जिसके कारण एक भारतीय प्रान्तके ऑस्ट्रेलियन गवर्नर (श्री केसी) को ये उद्गार प्रकट करने पड़े कि गांधीसे मिलने पर यह असाधारण अनुभूति होती है कि "यह एक ऐसा मानव है जिसके साथ मनुष्य अपनी अत्यन्त अन्त-रंग व्यक्तिगत समस्याओंकी चर्चा कर सकता है और सयानी और समझदारी-भरी सलाह पा सकता है।" [केसी, 'एन ऑस्ट्रेलियन इन इंडिया', लंदन, १९४७] उनके सार्वभौम प्रेमका भी यही रहस्य था, जिसके कारण वे तात्कालिक और क्षणिक बातोंसे परे रह कर स्थायी और शाश्वत वस्तुओंको देख सकते थे; विरोधीको अपना ही अंग और अपनेको मानवताके समुद्रकी एक बूंदमात्र समझ सकते थे।

इसलिए जब उनका अहिंसाका चिरपोषित आदर्श गम्भीर खतरेमें पड़ गया और अपनी मातृभूमिमें एकता स्थापित करनेके उनके सपनेके लिए आसन्न नाशका खतरा पैदा हो गया, तो वे आशा और आह्लाद, शान्त आत्म-विश्वास और शक्तिके विकिरण-केन्द्र बन गये । लोग दुःखमें और रोषमें, विफलतामें और निराशामें उनके पास आते थे – कुछ उनका मजाक उड़ाने, कुछ उन्हें गालियां देने।

उनका शान्त समभाव और ठंडा पैना तर्क मुलाकातियोंके क्रोधबाणोंको भोथरा कर देता था। जो लोग उनसे झगड़ा करने आते थे, वे अन्तमें उनके विपुल प्रेमसे आश्चर्यचकित और पराभूत होकर उनके भक्त बन जाते थे। गांधीजीकी बातोंसे प्रभावित न होने पर भी वे अपनी कटुता वहीं छोड़ जाते थे और मनमें यह भाव लेकर जाते थे कि गांधीजी एक ऐसे शक्तिशाली मित्र और साथी हैं, जिन्हें हम खो नहीं सकते । अहिंसाकी शक्ति और सत्याग्रहकी अजेयतामें उनकी अटल श्रद्धा बड़ी संक्रामक थी। उसकी छूत अकस्मात् मिलने आनेवालोंको भी लगती थी। जो लोग उदासी और शंका लेकर आते थे, वे उल्लास और शक्तिके साथ लौटते थे। एक ईसाई पादरीने जूनके प्रथम सप्ताहमें सत्य, अहिंसा और ईश्वरके विषयमें उनके साथ कोई १० मिनट बात की। बातचीतके दौरान गांधीजीने कहा : "आप यह जानना चाहेंगे कि जो मनुष्य सत्यरूपी ईश्वरका साक्षात्कार करना चाहता है, उसके क्या लक्षण होते हैं। उसे काम, क्रोध, लोभ और मोहसे तथा अहंकार और भयसे पूरी तरह मुक्त होना चाहिये। उसे शून्य बन जाना चाहिये और सब इंद्रियों पर उसका पूरा अंकुश होना चाहिये। इसका आरंभ जिह्वासे होना चाहिये। जिह्वा वाणी और स्वाद दोनोंकी इंद्रिय है। जिह्वासे ही हम अतिशयोक्ति करते हैं, असत्य बोलते हैं और दूसरोंका जी दुखानेवाली वाणी निकालते हैं। स्वादकी लालसासे हम जिह्वाके दास बन कर पशुओंकी तरह खानेके लिए जीते हैं। परन्तु उचित संयम रख कर हम लगभग 'देवदूत' जैसे बन सकते हैं। जो अपनी इंद्वियोंको वशमें कर लेता है, वह मनुष्योंमें प्रथम स्थान प्राप्त करता है। उसमें सब गुणोंका वास होता है। ईश्वर भी उसीके द्वारा स्वयंको प्रकट करता है । आत्म-संयम अथवा आत्मशुद्धिकी शक्ति ऐसी होती है।"

कुछ समय बाद हिन्दू महासभाइयोंका एक दल गांधीजीसे मिलने आया। उनके मुंह पानके बीड़ोंसे फूले हुए थे, जिन्हें वे सतत चबाते रहे। उन्होंने उसी विषयसे शुरुआत की, जो सायंकालीन प्रार्थनाओंमें अक्सर आ चुका था। गांधीजीसे कहा गया कि वे प्रार्थनामें कुरानकी आयतें न पढ़वायें। उसके बाद उन्होंने कहा कि आपको राजनीतिसे हट जाना चाहिये और जितनी जल्दी आप हटेंगे उतना ही भारतका भला होगा। इस बिनमांगी सलाहसे बुरा माननेके बजाय गांधीजीने उन्हें धीरजके साथ समझाया कि मेरा सारा जीवन ईश्वरकी सेवामें समर्पित है। मेरी राजनीतिका सम्बन्ध जीवनकी गहरीसे गहरी बातोंसे है। वह सत्य और अहिंसाके आदर्शोंका सामाजिक क्षेत्रमें किया जानेवाला विस्तार या प्रयोगमात्र है। मैं इन आदर्शोंके प्रचारमें मर जाना पसन्द करूंगा, परन्तु स्वाधीनताके बदलेमें भी उन्हें छोड़ना पसन्द नहीं करूंगा। इसलिए आपकी सलाह न माननेके लिए आप मुझे क्षमा करें।

दूसरे दिन कुछ पादरी एक फिलिपाइन निवासीके साथ आये। उन्होंने भारतकी अहिंसक क्रान्तिकी प्रशंसा की, जो उनके विचारसे मानव "इतिहासमें अभूतपूर्व" थी। परन्तु इस विषयमें उन्हें शंका थी कि विज्ञान और उद्योगीकरणके वर्तमान युगमें युद्धका अन्त करना और विश्वशान्तिके आदर्शको सिद्ध करना सम्भव है या नहीं। गांधीजीने कहा कि मेरे मनमें तो जरा भी शंका नहीं है कि चरखेको उसके साथ जुड़ी हुई सब बातोंके साथ अणुबमके मुकाबलेमें खड़ा किया जा सकता है। दूसरे शब्दोंमें, यदि लोग शुद्ध भौतिक मूल्योंके बजाय स्वावलम्बन, आत्म-निर्भरता और आध्यात्मिक मूल्यों पर आधारित विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्थाका आदर्श अपना लें, तो ऐसे लोगोंके विरुद्ध अणुबमका उपयोग करनेसे कोई लाभ नहीं होगा और यदि उपयोग किया जाय तो वह उनकी आत्माको दबा नहीं सकेगा। यहां आध्यात्मिक मूल्योंका अर्थ यह है कि मानव-आवश्यकताओंको स्वेच्छासे मर्यादित किया जाय और भौतिक मूल्योंका अर्थ है कि मानव-आवश्यकताओंका अधिकसे अधिक विस्तार किया जाय और उन्हें पूरा करनेके साधनोंको मनमाने तौर पर बढ़ाया जाय । गांधीजीने अपना दृढ़ विश्वास दोहराया: **यदि ४० करोड़ भारतवासी आध घंटा रोज कताई-यज्ञ करें और उसके लिए मैंने जो शर्तें बताई हैं उनका पूरा पालन करें, तो कुछ ही वर्षोंके भीतर जो परिणाम निकलेगा वह चमत्कारी होगा**। "आजकल यूरोपका दावा है कि वह प्रगतिमें सबसे आगे है। परन्तु एक समय ऐसा था जब एशियाको यह गौरवपूर्ण पद प्राप्त था। आज एशिया पश्चिमी सभ्यता व संस्कृतिकी चमक-दमकसे पराभूत हो गया है, जिसका आधार भौतिक शक्ति है। . . . मेरा प्रयत्न हमारी प्राचीन संस्कृतिको फिरसे जीवित करनेका है, जिसकी जड़ वास्तवमें अहिंसा और आध्यात्मिक मूल्योंमें है। यदि हम इसमें सफल हो जाते हैं, तो संसारके लिए – जो लड़ाई-झगड़ेसे उकता गया है और शान्तिके लिए लालायित है – हम दीपस्तंभ बन जायंगे।"

भारतमें पादरियोंकी प्रवृत्तियोंका जिक्र करते हुए उन्होंने बताया: भारतीय जन-साधारणकी राजनीतिक पराधीनता और शोषणसे उत्पन्न होनेवाले प्रलोभनने पादरियोंके दृष्टिकोणको दूषित कर दिया है। आदर्श राज्यमें प्रत्येक व्यक्तिको पूर्ण मानव-गौरवके साथ जीनेका मौका मिलना चाहिये। परन्तु भारतके बुरे दिन आये हुए थे। ईसाई मिशनरी दावा तो यह करते थे कि वे गरीबोंकी परोपकारपूर्ण सेवाके लिए यहां आये हैं, परन्तु उनका लेखा-जोखा क्या बताता है ? उन्होंने दरिद्रता और शोषणकी चक्कीमें पिसे हुए लोगोंके बीच अस्पताल और स्कूल खोले हैं और उन्हें दुनियावी लालच देकर उनके पैतृक धर्मसे भ्रष्ट किया है, हालांकि उनका धर्म वास्तवमें मिशनरियोंके धर्मसे किसी भी रूपमें घटिया नहीं है।

"और यह सब इसलिए संभव होता है कि हम विदेशी राज्यकी गुलामीमें हैं। मैं इस आशाके बल पर जी रहा हूं कि स्वाधीनताके बाद हम अपने घरको व्यवस्थित कर लेंगे; और पुन: सशक्त बना हुआ भारत मिशनरी संस्थाओंके दृष्टिकोण और प्रवृत्तियोंका भी परिष्कार कर देगा।"

गांधीजीके इन उद्‌गारोंकी सचाईका आगन्तुकों पर गहरा असर पड़ा। वे बोले : "अब हमारी समझमें आया कि साम्राज्यवादी शोषण और उसकी सहगामी ईसाई संस्थाओंकी धर्म-परिवर्तनकी प्रवृत्ति पर आपका एतराज क्यों है। ये दोनों परस्पर-संबद्ध हैं। इतिहासमें हम ऐसे किसी दूसरे व्यक्तिका विचार नहीं कर सकते, जिसकी तुलना आपके साथ की जा सके । पुराने सन्तोंकी तरह आपको संसारके दुःखसे पीड़ा होती है और मानव-जातिके सुखसे आपको सुख मिलता है। आपकी ज्ञानपूर्ण बातोंसे हम आध्यात्मिक उदात्तताका अनुभव करते हैं।"

जब तक यह बातचीत होती रही तब तक गांधीजी बराबर चरखा चलानेमें व्यस्त रहे। कताई पूरी होने पर वे लेट गये और पेट पर मिट्टीकी पट्टी रखवा ली। आगन्तुक यह देखकर कुछ चक्करमें पड़े, तो उन्होंने इसका अर्थ समझाया: "यह शरीर मेरा नहीं है, यह ईश्वरकी धरोहर है। ईमानदार संरक्षककी हैसियतसे मुझे इसकी रक्षा करनी पड़ती है, ताकि ईश्वरकी सृष्टिकी सेवामें इसका उत्तम उपयोग हो सके । यह मिट्टीकी पट्टी उस प्रक्रियामें सहायक है !"

उसके बाद समाजवादियोंका एक दल आया। एक पुराने झगड़ेने समाजवादियोंको कांग्रेसके नेताओंसे अलग कर दिया था। दोनों समूहोंके बीच स्वभाव-गत और सैद्धान्तिक मतभेद थे। गांधीजी इन दोनोंके बीच उत्तम पुलका काम करते थे। विभाजनकी योजना स्वीकार कर लेनेके कारण समाजवादी कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओंके बहुत खिलाफ थे। गांधीजीने उन्हें समझानेकी कोशिश की कि अब विदेशी लोग जा रहे हैं और सत्ता भारतीयोंके हाथोंमें आनेवाली है, इसलिए अब अगर सहयोग-वृत्ति प्रकट करनेके बजाय आप लोग अड़ंगेबाजीकी नीति अपनाते रहेंगे तो देशकी कुसेवा होगी और नवार्जित स्वाधीनता खतरेमें पड़ जायगी। कांग्रेसके वरिष्ठ नेता जो कुछ कर रहे हैं वह अगर आपको नापसन्द है, तो आपको उनसे मिल कर चर्चा करनी चाहिये और मित्रतापूर्ण ढंगसे आपसी मतभेद मिटा लेने चाहिये। "परन्तु हमारा सबसे बड़ा दोष यह है कि अगर कोई हमसे किसी प्रश्न पर मतभेद रखता है, तो हमें तुरन्त उसके बारेमें गलतफहमी हो जाती है और हम उसके हृदयमें घुसने और प्रश्नको उसके दृष्टिकोणसे

देखनेके बजाय उसकी भर्त्सना और निन्दा करने लगते हैं। नतीजा यह होता है कि दरारें और भी गहरी हो जाती हैं, वैरभाव बढ़ जाता है और व्यक्तियोंके संघर्षमें सिद्धान्तोंको भुला दिया जाता है; और राष्ट्रीय एकताके बजाय वादों और गुठोंकी अराजकता खड़ी हो जाती है।" पाकिस्तान इसी गुटबन्दीका कड़वा फल है। मुझे भय है कि समाजवादी मित्रोंने समाजवादका 'क-ख-ग' भी नहीं समझा है। वे क्यों नहीं समझ पाते कि जब तक हम सम्प्रदायवादके राक्षसी पंजेमें फंसे हुए हैं तब तक यहां समाजवाद स्थापित नहीं हो सकता ? "७० वर्षकी उम्र पार कर चुके एक बूढ़ेके ये शब्द आप लिख लेना: भविष्यमें लोग इस आधार पर हमारा मूल्यांकन नहीं करेंगे कि हम किस सिद्धान्तवादका दावा करते हैं, या कौनसा 'लेबल' धारण करते हैं या कौनसे नारे लगाते हैं; हमारा मूल्यांकन वे हमारे कार्यसे करेंगे, हमारे उद्यमसे, त्यागसे, ईमानदारीसे और चरित्रकी शुद्धतासे करेंगे। वे यह जानना चाहेंगे कि हमने वास्तवमें उनके लिए क्या किया है। लेकिन अगर आप नहीं सुनेंगे, अगर आप लोगोंके मौजूदा दुःख और असन्तोषसे लाभ उठा कर उसे दलीय स्वार्थोंके लिए बढ़ायेंगें और उसका दुरुपयोग करेंगे, तो यह दुःख और असन्तोष पलट कर आपके ही सिर पर पड़ेगा और जनताके इस विश्वासघातके लिए ईश्वर भी आपको क्षमा नहीं करेगा।"

मुलाकातियोंका तांता शाम तक बना रहा। साढ़े पांच बजे तक गांधीजी अत्यधिक थके हुए लग रहे थे। उन्होंने अपनी तबीयत खराब होनेका कारण यह बताया कि लोगोंके कष्ट और दुःखके दृश्य देख कर और समाचार सुनकर उन्हें बार बार मानसिक आघात पहुंचता है, जिसका उनके स्वास्थ्य पर बुरा असर होता है। "जब मैं खबरें सुनता हूं कि लोगोंको निर्दयतासे मौतके घाट उतारा जा रहा है, बालकोंका वध किया जा रहा है, स्त्रियोंके साथ बलात्कार हो रहा है, लोगोंके घरबार और सम्पत्ति अकारण नष्ट की जा रही है, तो मेरे समस्त प्राण कांप उठते हैं। इसीलिए मैं सबसे कह रहा हूं कि यह समय शाब्दिक विवादोंमें फंसनेका नहीं है। यह तो जड़से उखड़ी हुई मानवताके बीच जाकर उसके दुःख-दर्द मिटानेका समय है।"

गांधीजी रात साढ़े ग्यारह बजे बाद सो पाये। सोनेसे पहले उन्हें याद आया कि उनके दैनिक कताई-यज्ञका लेखा नियमित रूपसे नहीं रखा जा रहा है। परन्तु आध्यात्मिक साधनामें कोई धोखाधड़ी या ढोंगबाजी नहीं चल सकती । उसमें तो सब कुछ सीधा, निश्चित और स्पष्ट होना चाहिये । इसलिए यह भूल अक्षम्य थी। उन्होंने तुरन्त अपनी सेविकाको बुलाया और उसी समय इस कमीको दूर करनेका

आदेश दिया। अपने प्रभुको "सही हिसाब" देनेकी व्यवस्था करके वे लेट गये और तुरन्त गहरी नींदमें सो गये।

"देखो,
जब सन्ध्या ढलती है,
एक क्षण ऐसा आता है,
जिससे कर्म-श्रृंखला
कट जाती है।
सन्ध्याका
ऐश्वर्य सुनहला
विलस रहा है।
उठती है मर्मर-ध्वनि
पश्चिमके क्षितिज-छोरसे –
'जो है उसमें
इतना-सा और जोड़ लो,
और करो मूल्यांकन उसका।
क्योंकि
यहींसे एक और दिन
मर जाता है।' "

दूसरे दिन अर्थात् ८ जूनको साम्यवादियोंकी एक मंडलीका आगमन हुआ। गांधीजीने उनसे भी अपने मनकी कुछ बातें कहीं : आपको अपने वादको ताकमें रख कर उन ठोस समस्याओंकी दृष्टिसे सोचना चाहिये, जो देशके सामने आज खड़ी हैं – वे ऐसी समस्याएं हैं जिनके बारेमें कोई मतभेद नहीं हो सकता और जिनके हलको सभी लोग एक राष्ट्रके नाते भारतके अस्तित्वके लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानते हैं –और मनमें कोई संकोच न रखकर या परिस्थितिका राजनीतिक लाभ न उठाकर उनको हल करनेमें सहयोग देना चाहिये। "आप अपना समय और शक्ति बालकी खाल निकालनेमें, दोष-दर्शनमें और छिद्रान्वेषणमें बरबाद करते हैं। आपको कहीं थोड़ीसी भी त्रुटि मिल जाती है – फिर वह वास्तविक

हो या काल्पनिक – तो आप अच्छी तरह जांच करनेकी चिन्ता किये बिना ही सत्तारूढ़ सरकारके विरुद्ध प्रचार करने और अप्रीति फैलानेमें उसका दुरुपयोग करते हैं। मालूम होता है कि यह आपका धन्धा बन गया है। क्या वर्तमान सरकारकी कोई भी प्रवृत्ति ऐसी नहीं है, जो आपके सहयोगकी पात्र हो अथवा जिसका आप समर्थन कर सकें ? क्षणभरके लिए सोचिये कि आप पंडित नेहरूकी जगह हों, तो आप क्या करेंगे ? या तो जो जिम्मेदारी आज पंडित नेहरू और सरदार संभाले हुए हैं उसे संभालनेकी आपकी तैयारी होनी चाहिये, या आपको उनके साथ सहयोग करना चाहिये। मैं इसकी जिम्मेदारी लेता हूं कि जिस क्षण आप प्रशासनका भार संभालने और उसे चलानेको तैयार हो जायंगे, उसी क्षण वे लोग पद छोड़कर आपके लिए जगह कर देंगे। इससे आपको लाभ होगा। लेकिन अगर आप दोनोंमें से कोई भी बात न करें, तो कमसे कम आपको झूठा प्रचार तो नहीं करना चाहिये। आप ऊंचे ऊंचे सिद्धान्तोंकी दुहाई देते हैं, परन्तु आपका आचरण उनके विरुद्ध होता है; क्योंकि आप सत्य और असत्यमें, न्याय और अन्यायमें कोई भेद नहीं रखते। मेरे लिए इससे भी दुःखद बात यह है कि आप रूसको अपना आध्यात्मिक धाम मानते हैं। भारतीय संस्कृतिका तिरस्कार करके आप यहां रूसी प्रणालीको प्रस्थापित करनेके स्वप्न देखते हैं। जो आहार दूसरा व्यक्ति खाता है वह कितना ही बढ़िया क्यों न हो, उससे मेरा पोषण नहीं हो सकता। मेरा पोषण तो उसीसे होगा जो मैं खाऊंगा। इसी प्रकार जो कुछ बाहरी सत्ता करती है उससे आपकी तरह मुझे सन्तोष नहीं होता।

"और फिर आप सत्याग्रहका आचरण करनेकी बातें करते हैं। जो व्यक्ति सत्याग्रहकी बात करता है, उसे उसके साथ जुड़ी हुई एक प्रारम्भिक शर्तको पहले समझ लेना चाहिये। सत्याग्रहका आधार सत्य है। इसमें किसी भी तरहकी संदिग्धताके लिए गुंजाइश नहीं होती। सत्याग्रही सत्य और असत्यके दो घोड़ों पर एकसाथ सवारी नहीं कर सकता। दूसरे शब्दोंमें, तात्कालिक लाभकी दृष्टिसे सिद्धान्तोंके साथ कोई समझौता नहीं करना चाहिये। सत्याग्रहीको चाहिये कि वह सत्यको पहचानने और उसका पालन करनेका सतत प्रयत्न करे। उसे मन, वचन और कर्मसे कभी किसीका जी दुखानेका विचार नहीं करना चाहिये। उसके सब कार्योंमें पारदर्शक ईमानदारी और निर्दोष विशुद्धता रहनी चाहिये।

"आप सब देशके सेवक होनेका दावा करते हैं, इसलिए आपका यह कर्तव्य है कि संकीर्ण दलगत भावनाको छोड़ कर आप उन सबके साथ सहयोगकी वृत्ति रखें, जिनके हृदयोंमें देशकी भलाई है – ताकि भारत महत्ताके उस उच्च शिखर पर फिर पहुंच जाय जहां वह संसारमें किसी समय था।"

पिताकी तरह उन्हें उलाहना देनेके बाद फिर पितृतुल्य वात्सल्यसे कहने लगे : "आप सब मेरे अपने ही बच्चोंकी तरह हैं। मैं आपसे यह कटु सत्य इसलिए कहता हूं कि आप मुझे कहने देते हैं। में हृदयकी गहराईमें जो कुछ अनुभव करता हूं वही मैंने आपसे कहा है। आप जब चाहें मेरे पास आ सकते हैं। मुझे आप सबकी सहायता चाहिये। सबके सहयोगके बिना मैं कुछ नहीं कर सकता।"

गांधीजीकी बातें मंडलीको प्रतीतिकर लगीं या नहीं, यह कहना तो कठिन है। परन्तु वे यह अनुभव करके जरूर गये होंगे कि राष्ट्रपितामें हमारा भी अंश है। बादमें किसीने गांधीजीसे पूछा: आप साम्यवादियोंकी प्रवृत्तियोंको नापसन्द कैसे कर सकते हैं, जब कि उनका लक्ष्य सर्व-साधारणका आर्थिक स्तर ऊंचा उठाना और वर्गभेद मिटाना है ? और यह तो आपको भी प्रिय है। गांधीजीने उत्तर दिया: मेरी आपत्ति उनकी नीति और कार्य-पद्धति पर है। उससे अव्यवस्था ही पैदा हो सकती है, समता-मूलक व्यवस्था नहीं । "इसलिए मैंने उनके साम्यवादमें अपना अविश्वास प्रकट करनेमें और यह दावा करनेमें संकोच नहीं किया है कि मैं उनसे ज्यादा अच्छा साम्यवादी हूं।" 'साम्य' और 'सौम्य' शब्दों पर श्लेष करते हुए गांधीजीने कहा : 'साम्य' (साम्यवाद) 'सौम्य' अर्थात् अहिंसासे ओतप्रोत होना चाहिये, तभी उससे मानव-जातिका हित हो सकता है। गुप्तता साम्यवादी रणनीतिका मुख्य शस्त्र है। मुझे उसमें कायरताकी गंध आती है और जिस तोड़फोड़का वे समर्थन करते और आश्रय लेते हैं वह तो निरा जंगलीपन है। "आप नाम कुछ भी रख लीजिये, समस्त मानव-जातिके परम कल्याण – विशेषतः पीड़ित और वंचित लोगोंके परम कल्याण – का आदर्श हमारे रक्तका अभिन्न अंग है। हमारी प्रातःकालीन प्रार्थनामें एक श्लोक है: 'न त्वहं कामये राज्यम् न स्वर्ग नापुन-र्भवम् । कामये दुःखतप्तानाम् प्राणिनाम् आर्तिनाशनम् ।।' – 'मुझे न तो राज्यकी कामना है, न स्वर्गके आनन्दोंकी कामना है, न मुझे जन्म-मरणके चक्रसे मुक्त होनेकी कामना है। मेरी तो एकमात्र आकांक्षा यह है कि मैं दुःखी प्राणियोंका दुःख दूर कर सकूं।' इससे अधिक साम्यवाद हमें और क्या दे सकता है, जिसकी चकाचौंधमें आकर हम धरती पर पैर ही न रखें और आसमानमें उड़ने लगें ?"

दो साधु आये। वे राष्ट्रपितामें अपने हिस्सेको कैसे छोड़ते ? वे ११ जूनको गांधीजीकी सुबहकी सैरमें साथ हो लिये। प्राचीन ज्ञानके "चलते फिरते ज्ञानकोष" होनेके कारण साधु किसी समय लोगोंके लिए चलते-फिरते पुस्तकालयोंका काम देते थे। मानव-जातिकी सेवाके लिए संसारका परित्याग करके ये लोग भ्रमण करते थे और सीधीसादी भाषामें घरेलू उपमाएं दे देकर सामान्य जनताको गहरा

आध्यात्मिक ज्ञान और अनुभव देते थे। पश्चिममें निम्न श्रेणीके लोगोंके मन अपनी प्रारम्भिक आवश्यकताओंसे परे क्वचित् ही जाते हैं। परन्तु भारतमें इन साधुओंके द्वारा गरीबोंके झोंपड़े भी, गांधीजीके शब्दोंमें, "युग युगके संचित ज्ञान" के भंडार हो गये थे। परन्तु दूसरी अनेक प्राचीन संस्थाओंकी भांति साधु-समुदायके भी बुरे दिन आ गये। उन्होंने यह कथन चरितार्थ कर दिया कि श्रेष्ठ सबसे अधिक भ्रष्ट होते हैं। समाजकी सेवा करनेके बजाय वे उस पर भार बन गये और आलस्यकी रोटी खानेके अपने "दैवी अधिकार" का दावा करने लगे।

गांधीजी तो मनुष्योंको खोज खोज कर सेवाकार्यमें लगानेवाले ठहरे। उन्होंने साधुओंको भी फिरसे भारतीय समाजकी नि:स्वार्थ सेवामें लगानेकी आशा कभी नहीं छोड़ी। उन्हें यह समझा कर कि साधुके सबसे स्वाभाविक और शोभनीय गुण – अहिंसा – की साधना उन्हें करनी चाहिये, गांधीजीने उन्हें सलाह दी कि वे रोटीके लिए श्रम करनेकी आदत डालें । जो लोग धर्मके प्रचारक होनेका दावा करते हैं, वे दूसरोंकी सेवाके लिए शरीर-श्रमका जीवन नहीं अपनायेंगे, तो लोगोंको ईश्वरकी ओर न ले जा कर वे समाजका पतन ही करेंगे। "जो लोग दूसरोंकी पसीनेकी कमाई पर निश्चिन्त होकर जीवन बिताते हैं, वे आध्यात्मिक प्रगति कभी नहीं कर सकते। आज तो धर्म जड़वत् बन गया है। . . . सभी धर्म-सम्प्रदायोंमें आज जो भ्रष्टाचार दिखाई देता है और हमारे समाजका जो मानसिक, शारीरिक और नैतिक ह्रास हो रहा है, उसका कारण यह है कि हमने शरीर-श्रमको हेय समझा है। . . . इसलिए आपको ऐसा कार्यक्रम बना लेना चाहिये, जो आपको, रामतामके ज्ञानका प्रचार करनेके अलावा, स्वयं शरीर-श्रम करके और आम लोगोंसे ऐसा श्रम करवा कर समाजकी सेवा करनेकी क्षमता प्रदान करे।"

*

गांधीजीकी प्रार्थना-सभाएं आम जनताके लिए एक मंच बन गई थीं, जहां उसके और देशके सामने जो विविध समस्याएं थीं उन पर गांधीजीके विचार जाने जा सकते थे। एक दिन अन्नकी कमी, अन्नकी बहुत थोड़ी मात्रा पर पड़नेवाले दबावको देखते हुए सांसाहारियोंसे मांसाहार तक ही मर्यादित रहनेकी गांधीजीकी सलाह और गांधीजीके सम्मानमें खड़ी की जानेवाली मूर्तियोंके सम्बस्थमें अव्यवस्थित ढंगसे कई प्रश्न पूछे गये।

अन्नकी कमी दिनोंदिन तीव्र होती जा रही थी और ऐसे जल्दबाज लोगोंकी कमी नहीं थी, जो अधीर होकर लोगोंसे कहते थे कि खाद्य-सामग्री जहां भी मिले वहीं लूट ली जाय। इसका जिक्र करते हुए गांधीजीने कहा: तंदुरुस्त रहनेके लिए पर्याप्त आहार पानेका प्रत्येक मनुष्यको अधिकार है । यदि सबको खानेके लिए काफी अन्न न मिले, तो मानना चाहिये कि कुछ न कुछ खराबी जरूर है। लेकिन जिन्हें परिश्रम करने पर भी काफी भोजन न मिले, उन्हें स्वराज्यमें सरकारी अनाजकी दुकानें नहीं लूटनी चाहिये या दूसरे प्रकारकी अराजकता नहीं पैदा करनी चाहिये, क्योंकि इस प्रकारकी हुल्लड़बाजीका परिणाम स्वयं लोगोंको ही भुगतना पड़ेगा। उन्हें शान्तिपूर्ण प्रदर्शनका और अन्तिम उपायके रूपमें उपवासका ही हथियार चुनना चाहिये ।

दूसरे प्रश्नके बारेमें मेरा उत्तर यह है कि जो लोग मांसाहारी हैं उन्हें मांसाहार ही करनेकी सलाह देनेमें, जहां तक मैं समझता हूं, अहिंसा अथवा शाकाहारका सिद्धान्त भंग नहीं होता। [वास्तवमें गांधीजीने यहां तक कह दिया था कि किसी खास परिस्थितिमें मांसाहारीके लिए मांस छोड़ना “पाप” हो सकता है : “जीवनमें पूरी तरह हिंसासे बचना असम्भव है। प्रश्न यह उठता है कि इसके लिए रेखा कहां खींची जाय । सबके लिए एक ही रेखा नहीं हो सकती, यद्यपि आवश्यक रूपमें सिद्धान्त एक ही है। . . . मांसाहार मेरे लिए पाप है; फिर भी एक ऐसे व्यक्तिके लिए, जिसने सदा मांस पर निर्वाह किया है और उसमें कभी कोई बुराई नहीं समझी, केवल मेरी नकल करनेके लिए मांस छोड़ देना पाप होगा।” – हरिजन, ९ जून, १९४६, पृ. १७२] शाकाहारका प्रचार दबावसे नहीं परन्तु उदाहरण प्रस्तुत करके ही हो सकता है। दबाव तो शाकाहार और अहिंसा दोनोंके विपरीत है। इसी तरह, भाई-भाईकी लड़ाई, धनवान बननेके लिए गरीबोंका आर्थिक शोषण और स्त्रियोंका दमन मांसाहारसे ज्यादा बुरी चीजें हैं। मांसाहारी लोग यदि इन सब बातोंसे बचे रहें, तो वे उन लोगोंसे अहिंसाके अधिक अच्छे अनुयायी होंगे, जो ये सब कृत्य करते हैं और फिर भी शाकाहारी होनेका गर्व करते हैं।

मुझे इस बातसे नफरत है कि मेरी मूर्तियां खड़ी की जायं या मेरे चित्र लटकायें जायं। मुझे इस प्रकारके सस्ते अभिनंदनोंसे सम्मानका अनुभव नहीं होता, बल्कि वास्तवमें अपमानका अनुभव होता है, जब लोग मेरी सीखकी परवाह न करके मेरे स्मारक बनानेमें बड़ा उत्साह दिखाते हैं।

*

अधिक नहीं तो रोज कमसे कम तीन बार तो नियमित रूपसे गांधीजीके डाकके थैलेमें से ढेर सारी व्यक्तिगत समस्याएं, आध्यात्मिक गुत्थियां, नैतिक पहेलियां, सलाह, प्रशंसा, अभियोग, धमकियां, गालियां और न जाने क्या क्या बातें बाहर निकलकर सामने आती थीं। वह भारतका लघुरूप ही होता था, जो विविध प्रकारके लोक-मानसका आकर्षक रूपमें रंग-बिरंगा – कभी कभी विचित्र – चित्र प्रस्तुत करता था। एक दिन एक विधुरका पत्र आया। वह पुनर्विवाह करना चाहता था और गांधीजीके आशीर्वाद मांगता था। उसे यह उत्तर भेजा गया: "हिन्दू धर्मने स्त्रियोंको पुनर्विवाहका अधिकार नहीं दिया है, इसलिए न्यायकी बात तो यह है कि पुरुषोंको भी पुनर्विवाह नहीं करना चाहिये। तब फिर मेरे आशीर्वादकी आशा रखने या आशीर्वाद मांगनेका प्रश्न ही नहीं उठता। लेकिन अगर दूसरी शादी तुम्हें करनी ही है, तो ऐसी विधवाको अपनी संगिनी चुनना चाहिये, जो विवाह करना चाहती है। . . ."

एक स्त्रीने लिखा कि मैंने अपने इष्ट देवताके सामने प्रतिज्ञा की है कि यदि मुझे पुत्रकी प्राप्ति हुई, तो मैं महात्माजीके चरण छूऊंगी। भगवानने मेरी प्रार्थना सुन ली। मुझे लड़का हुआ है। क्या मुझे अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेका मौका दिया जायगा ? उत्तरमें गांधीजीने भारतीय स्त्रियोंके भोलेपनकी आलोचना करते हुए लिखा: "पुत्रियोंके लिए मेरा पक्षपात है। ईश्वरने स्त्रियोंको जितना श्रद्धाबल दिया है उतना पुरुषोंको नहीं दिया है। जब तक हम उस अज्ञानको दूर नही कर देंगे, जिसके कारण स्त्रियां लड़कीसे लड़केको अधिक अच्छा समझती हैं तब तक हमारा भला नहीं होगा।

और इस इच्छाकी पूर्तिक लिए तुमने मेरे पास आनेकी प्रतिज्ञा की। इस तरह तो कल तुम यह प्रतिज्ञा भी कर सकती हो कि ईश्वर तुम्हारी मदिरा-पानकी इच्छा पूरी करे, तो आकर तुम मेरे पैर छुओगी। . . . मेरे इस उलाहनेके पीछे मेरी गहरी पीड़ा है। काश, मैं तुम्हें भी अपनी यह पीड़ा समझा सकूं। इसके सिवा मैं तुम्हें यह भी बता दूं कि तुम समझती हो वैसी इच्छाएं पूरी करनेकी कोई शक्ति मुझमें नहीं है। मैं एक साधारण मनुष्य हूं और मानव-दुर्बलताओंसे भरा हुआ हूं। फिर भी मेरी यह प्रार्थना है कि भगवान तुम्हारे पुत्रको पूर्ण स्वस्थ रखे और तुम उसका इस तरह पालन-पोषण कर सको कि वह भारतके गरीबोंका सेवक बने।"

गांधीजीने स्त्रियोंके उद्धारको अपने जीवनका विशेष मिशन बनाया था । उसकी साधनामें उन्होंने पुरानी परम्पराओंको तोड़ा और पुरानीसे पुरानी मित्रताओंको खतरेमें डाल दिया था। उनके जिस

चमत्कारी, अहिंसक सामूहिक जन-आन्दोलनने भारतके स्वातंत्र्य-संग्रामको विजयी बनाया था, उसमें स्त्रियां सबसे आगे रही थीं। गांधीजीको यह देख कर दुःख होता था कि स्त्रियां भी अब आधुनिकताके प्रवाहमें बह रही हैं। एक दिन गहरी पीड़ासे वे बोले : "समाजमें स्त्रियां बहुत बड़ी शक्ति हैं। परन्तु वे अपनी इस शक्तिका दुरूप्रयोग करें, तो वे समाजकी संपूर्ण रुचनाके टुकड़े-टुकड़े कर सकती हैं।" गांधीजीने स्त्रियोंकी शक्तिकी तुलना ऐसी पिस्तौलसे की, जो घरमें चोरों, डाकुओं और जंगली जानवरोंसे रक्षा करनेके लिए रखी जाती है। लेकिन अगर कोई बालक उसे उठा ले और उसका अविवेकपूर्ण उपयोग करे, तो उसका परिणाम भयंकर होगा।

कुछ दिनसे जिन लोगोंने प्रार्थना-सभाओंमें विघ्न डालनेकी बराबर कोशिश की थी उन्होंने, यह देख कर कि उनकी शरारतों पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता, अब स्त्रियोंको अपना साधन बनाना शुरू कर दिया। गांधीजीके खयालसे स्त्रियोंका ऐसा उपयोग पुरुषोंकी कायरता और कमीनेपनको बताता था। उन्होंने सुझाव दिया कि विरोध करनेवाली स्त्रियोंको वे जो चाहें सो करने दिया जाय। "मुझे उन पर गुस्सा नहीं आता; केवल अफसोस और रंज ही होता है। वे कितनी अज्ञान, कितनी भोली और कितनी आसानीसे गुमराह होनेवाली हैं ! उन्हींने साहसपूर्वक हजारोंकी संख्यामें सामने आकर अपने घरबार और बाल-बच्चोंको छोड़ कर विदेशी कपड़े और शराबकी दुकानों पर शान्तिपूर्वक पिकेटिंग किया था। उन्हींने लाठियोंके क्रूर प्रहार और घोर अपमान सहे थे। आजके दंगोंमें भी सबसे अधिक कष्ट उन्हींको सहन करने पड़ रहे हैं। मैं उनसे कैसे नाराज हो सकता हूं ? इसके विपरीत उन्हींको मुझसे नाराज होनेका पूरा अधिकार है। मैं जानता हूं कि पुरुषोंने स्त्रीजातिको कुचला है, क्योंकि मैं स्वयं अपनी पत्नीके साथ एक समय अत्याचार कर चुका हूं। और मैं स्त्रियोंका संरक्षक होनेका दावा करता हूं । इसलिए मैंने उन्हें अधिकार दे दिया है कि वे जी भर कर मेरा विरोध करें और मुझसे झगड़ें।"

*

आंतरिक अशान्ति और दारुण वेदनाके उन दिनोमें गांधीजीको कस्तूरबा गांधीकी बहुत याद आती थी। पार्थिव मर्यादाओंसे मुक्त होकर बा उनकी मानसिक दृष्टिके सामने उदात्त आत्मिक स्वरूपमें खड़ी हो जाती थीं। एक महिलाके पत्रका उत्तर देते हुए गांधीजीने कस्तूरबाके आदर्श व्यक्तित्वका यह शब्दचित्र खींचा: "बा किसी महत्त्वपूर्ण बातमें मुझसे पीछे नहीं थी। यदि थी तो वह मुझसे ऊपर ही थी।

यदि उसका अचूक सहयोग मुझे न मिलता, तो मैं रसातलको पहुंच सकता था। वह . . . मुझे अत्यन्त जागरूक और अपनी प्रतिज्ञाओंके प्रति सच्चा रहनेमें मदद करती थी। वह मेरी तमाम राजनीतिक लड़ाइयोंमें मेरे साथ रही और किसीमें भी कूद पड़नेमें कभी नहीं हिचकिचाई। प्रचलित अर्थमें वह अशिक्षित थी; परन्तु मेरी दृष्टिमें वह सच्ची शिक्षाका आदर्श उदाहरण थी। वह निष्ठावान वैष्णव थी। परन्तु उसने अपने मनसे जाति-पांतिकी सारी भावना मिटा दी थी और एक हरिजन लड़की पर वह अपने खुदके बच्चों जैसा ही स्नेह करती थी। वह उस आदर्शकी जीवंत मूर्ति थी, जिसकी महिमा नरसिंह महेताने 'वैष्णव-जन' वाले भजनमें गाई है। मेरे जीवनमें ऐसे अवसर आये जब मौतके साथ मुझे भयंकर युद्ध लड़ना पड़ा। आगाखा महलमें किये गये उपवासमें तो मैं अक्षरश: मृत्युके मुखसे ही बच कर निकला। परन्तु बाने एक भी आंसू नहीं गिराया, कभी आशा या हिम्मत नहीं छोड़ी और मन-प्राणसे भगवानकी प्रार्थना करती रही।"

अपने चरित्रके उत्तम और उदात्ततम गुणोंके प्रकाशसे प्रोज्ज्वल बनी हुई कस्तूरबा गांधीजीकी दृष्टिमें भारतीय संस्कृतिके उत्तम स्वरूपका प्रतिनिधित्व करती थीं। बाको वे अनुकरणकी दृष्टिसे भारतीय स्त्रीत्वका संपूर्ण प्रतिमान मानते थे। बाको देवीकी तरह पूजनेके कारण गांधीजीने उसी पत्रमें इस प्रकार बताये थे: "स्त्रियोंको अपना एकमात्र सच्चा सहायक ईश्वरको ही समझना चाहिये। इससे उन्हें आत्म-विश्वास प्राप्त होगा। आज तो उनका अधःपतन हो रहा है। पुरुषोंके साथ स्पर्धा करनेकी पागल दौड़में वे अपना वास्तविक धर्म भूल गई हैं। नम्रता, मानवता, सादगी और आत्मकष्ट-सहन उनके स्वभावमें है। ईश्वरके दिये हुए इन वरदानोंका उन्हें उत्तम उपयोग करना चाहिये । हमारी प्राचीन वीरांगनाओंने इतिहासके पृष्ठोंको जो उज्ज्वल बनाया है, उसका रहस्य उनकी आंतरिक पवित्रता, तपस्या और चरित्र-बलमें निहित था। जब तक भारतीय नारियोंमें फिरसे वह चरित्र-बल और पवित्रता नहीं आ जाती तब तक उनकी सारी शिक्षा और ज्ञानके बावजूद उनका या भारतका भविष्य उज्ज्वल नहीं होगा।

*

दिल्लीकी गर्मी चरम सीमा पर पहुंच गई थी। भंगीबस्तीमें गांधीजीका कमरा दोपहरके समय भट्ठी बन जाता था। घटनाओंकी गंदली धारा उनके पाससे गुजरती थी, लेकिन उन पर कोई असर नहीं होता था। वे एक ऐसे आश्रय-स्थान थे जहां परस्पर-विरोधी और प्रतिस्पर्धी लोग भी साथ साथ अपना

विकास साधते थे और उनके सर्वग्राही प्रेमके रसायनसे ऐसे लोग एक-दूसरेके अनुकूल बन कर एकराग हो जाते थे। उन तूफानी दिनोंमें दूसरोंके लिए गांधीजीका कोमल भाव निरन्तर जितनी मात्रामें प्रकट हुआ उतना पहले कभी नहीं हुआ था, यद्यपि उनकी अपनी आत्मा दुःख और कष्टकी गहरी वेदनामें से गुजर रही थी।

गांधीजीके एक सचिवके रूपमें राजकुमारी अमृतकौरने लम्बे समय तक उनकी मूल्यवान सेवा की थी। उत्तकी इच्छाका पालन करनेके लिए अमृतकौर संविधान-सभाका अपना कार्य संभालनेके लिए बड़े दुःखके साथ उनसे अलग हो गई थीं। लेकिन जब भी उन्हें समय मिलता वे आकर गांधीजीकी भरसक सहायता करती थीं। ८ जूनको वे दोपहरके समय आईं तो गांधीजीने इतनी तेज धूपमें आनेके लिए उन्हें उलाहना दिया और कहा: "संविधान-सभामें जो काम तुम कर रही हो, वह भी मेरी सेवा ही है।" एक पत्रमें उन्होंने अमृतकौरको लिखा : "व्यक्तिगत सेवा जब सार्वत्रिक सेवामें विलीन हो जाती है तभी वह करने लायक सेवा होती है। दूसरी सारी सेवा व्यर्थ है।" उनका आग्रह रहता था कि राजकुमारी दोपहरका खाना उन्हींके साथ खायें और काम पर बैठनेसे पहले आध घंटेका आराम कर लें।

एक दिन तीसरे पहर पंडित नेहरू उस समय आये जब गांधीजी अपना नींबूके रस और शहदका रोजका गरम पेय पी रहे थे। नेहरूजीको जुकाम हो रहा था। गांधीजीने अपने ही जैसा पेय उन्हें पिला कर उनका इलाज किया । वे स्वयं-नियुक्त "पारिवारिक वैद्य" बन कर जो भी उनके सम्पर्कमें आता था उसी पर अपना अधिकार चलाते थे और इसमें किसीको आपत्ति नहीं होती थी – फिर वह उनका अनुयायी हो, मित्र हो या विरोधी हो।

जब गोपू पहूंचा तो गांधीजी अपना २४ घंटेका साप्ताहिक मौन आरंभ कर चुके थे। इसलिए दोनोंका आपसमें जोरदार मूक सांकेतिक संभाषण हुआ। गोपूने अपने दादाकी नकल करके जब "भाइयो और बहनों, आप शान्त हो जाइये" शब्द कहे, तो स्वयं उसके दादा और दूसरे सब लोग खिलखिला कर हंस पड़े। इस प्रकार सबके "पारिवारिक वैद्य" को भी इस छोटेसे वैद्यने अपनी "दवा" की खुराक पिला दी !

ग्यारहवां अध्याय: विषको अमृत बना लो

१

इस प्रकार दीपक जोरोंसे जलता ही रहा । अहिंसामें लोगोंकी श्रद्धा नष्ट हो चुकी थी। उसे पुनः जीवित करनेके लिए भगीरथ प्रयत्नकी जरूरत थी। गांधीजीने एक दिन कहा: "ईश्वर ही जानता है कि इसमें कितना श्रम और समय लगेगा।" आगे उन्होंने कहा: "प्राकृतिक चिकित्सा करते करते मुझे यह अमूल्य और अद्वितीय खजाना – रामनामकी शक्तिका रहस्य मिल गया है। इसके जादूसे केवल शरीर और मनका ही रूपान्तर नहीं हो जाता; वह सारे वातावरणमें – परिवार, समाज, देश और सारे संसार तकमें व्याप्त हो जाता है। मैं उसे देखता हूं, मैं उसका अनुभव करता हूं। मुझे उसकी शक्तिका दिनोंदिन अधिक स्पष्ट दर्शन हो रहा है — प्रकृतिके पंच-तत्त्वोंकी चिकित्सा और उसकी शक्तिका तथा उससे भी अधिक रामनामके सामर्थ्यका अनुभव मुझे हो रहा है। जो चीज मुझमें भरी है वह मैं एक व्यक्तिको भी यदि दे सकूं, तो मुझे संतोष होगा।"

फिर आत्म-निरीक्षण करते हुए वे बोले : "परन्तु इसके लिए श्रद्धाकी जरूरत है। वह श्रद्धा मेरे भीतर है या नहीं, यह तो मेरी मृत्यु ही बतायेगी। यदि मैं बीमारीसे कराहता और रोता हुआ मरूं, तो उसका अथे यह होगा कि मेरा रामनामका जप केवल शाब्दिक था और मैं दंभी था। परन्तु यदि मैं वही होऊं जो होनेका मेरा दावा है, तब तो रामनाम लेनेका परिणाम यही होना चाहिये – जैसा मैंने दूसरोंसे कहा है – कि मृत्युको उद्धारक और मित्र मान कर उसका स्वागत करनेका बल मुझमें उत्पन्न हो।"

कई दिनों तक गांधीजीका रक्तचाप बढ़ा हुआ रहा। परन्तु उन्होंने यह कह कर रक्तचापके परीक्षणके सुझावकी अवज्ञा कर दी: "यदि मैं डॉक्टरोंको परीक्षा ही करने दूं, तो फिर उनसे अपना इलाज भी मैं क्यों न करा लूं ? जब मनुष्य अपनी प्रतिज्ञाओं अथवा व्रतोंमें बचावका रास्ता ढूंढने लगता है, तो वह अपनेको और ईश्वरको धोखा देता है। . . . जिस श्रद्धासे मैं ओतप्रोत हूं वह श्रद्धा आपको कैसे दे सकता हूं ? जब मुसीबतोंके बादल अधिकसे अधिक काले हुए, तभी ईश्वरने मुझे रास्ता दिखाया है। यदि वह मुझसे काम लेना चाहेगा, तो मेरे भौतिक शरीरकी भी वह देखभाल रखेगा।"

एक साथीने पूछा: "तब फिर आप हमारी व्याधियोंकी इतनी चिन्ता क्यों करते हैं और हमारा इलाज क्यों करते हैं ?"

गांधीजीने उत्तर दिया: "जो मनुष्य जीवनमें ईश्वरके नियमोंका पालन करनेका सतत प्रयत्न करता है, वही श्रद्धावान होनेका दावा कर सकता है। कारण, जैसा कि मैंने अक्सर कहा है, ईश्वर और उसके नियम एक ही हैं । श्रद्धावान मनुष्यका लक्षण यह है कि वह हर छोटी बातमें भी सदा जागरूक और सावधान रहता है। ईश्वरमें श्रद्धा रखनेका मेरा दावा है। परन्तु मैं खान-पान, विश्राम और कार्यके बारेमें घड़ीकी नियमितितासे अपना कार्यक्रम चलाता हूं। तुम्हारी बात इससे उलटी है। जिसने ईश्वरको सर्वार्पण कर दिया है, वह सारे यम-नियमोंका कड़ाईसे पालन करेगा । इतने पर भी दुर्भाग्य उस पर आ पड़े, तो वह उससे अप्रभावित रहेगा।"

एक पत्रमें उन्होंने लिखा: "जो मनुष्य हर बातमें नियमित रहता है, वह बीमार नहीं पड़ेगा और हर स्थितिमें अविचल शांतिका अनुभव करेगा। यह ईश्वरका सतत नाम-स्मरण करनेसे संभव होता है। इसलिए उसका नाम हमेशा अपने हृदयमें बसाये रखो।"

सीमाप्रान्तके समाचारोंसे गांधीजीको गहरी वेदना होती थी। जब उनसे पूछा गया कि आपको आजकी करुण घटनाओंसे जो वेदना होती दिखाई पड़ती है, उसके साथ आप अपने समबुद्धिके आदर्शका मेल कैसे बैठाते हैं, तो उन्होंने जवाब दिया: "समबुद्धिका अर्थ यह नहीं है कि दूसरे लोगोंके दु:खोंके प्रति हम संवेदना-शून्य बन जायं । इसका अर्थ इतना ही है कि स्वयं अपने कष्टोंके बारेमें हम स्थितप्रज्ञ बने रहें –अपनी गहरीसे गहरी पीड़ामें भी चित्तका संतुलन और शान्ति बताये रखें । संसार और उसके सब कार्योंसे (शारीरिक और मानसिक रूपमें) हट जाना अर्थात् संन्यासी बन जाना तो आसान है। परन्तु समस्त संसारके साथ एक हो जाना – उसके सुखों और दु:खोंके साथ एकरूप बन जाना और फिर भी सुख या दु:खसे अप्रभावित रहना कहीं ज्यादा मुश्किल काम है। उदाहरणके लिए, स्थितप्रज्ञताका अवसर तब आता है जब हमारा कोई प्रियजन मर जाता है अथवा हम पर कोई बड़ी भारी व्यक्तिगत विपत्ति आ पड़ती है। गरीबों और असहायोंके कष्टोंके प्रति उदासीन रहनेमें स्थितप्रज्ञता नहीं है। इसके विपरीत, उनके प्रति हमारे मनमें सहानुभूति होनी चाहिये और अपने स्वार्थका सब विचार छोड़ कर उनके कष्ट-निवारणके प्रयत्नमें हमें नष्ठ हो जाना चाहिये।"

चारों ओर फैले घने अन्धकारको चीर कर जब गांधीजीने अन्तर्दृष्टिके स्फुरणके क्षणमें भावी घटनाओंका स्वरूप देखनेकी कोशिश की, तो उनकी श्रद्धाकी आंखको घोर उपद्रवकी तहमें भी प्रेमधर्म

काम करता, लोगोंका शान्ति-संकल्प संघर्ष करता दिखाई दिया। इसकी एक झांकी रिचार्ड ग्रेग नामक अमरीकी मित्रको लिखे गांधीजीके एक पत्रमें दिखाई दी:

> यहां सब बातें अनिश्चयात्मक अवस्थामें हैं। जब अंग्रेज घोषणा करते हैं कि वे १४ मासके भीतर भारतसे हट रहे हैं, तब यहां भाई भाईसे लड़ रहा है। इस अविचारपूर्ण रक्तपातको रोकनेके लिए मैं एडीसे चोटीका जोर लगा रहा हूं। खूनकी इस बरबादीके पीछे शान्तिकी हार्दिक इच्छाके स्पष्ट चिह्न दिखाई देते हैं। ईश्वर और शैतानकी इस लड़ाईका परिणाम निश्चित है। उस निश्चितताके लिए हमें सर्वस्वकी बाजी लगा देनी चाहिये।

दो महीनेके बाद कलकत्तेमें गांधीजीकी श्रद्धा सत्य सिद्ध हुई, जहां एक अविश्वसनीय वस्तु पहलेसे ही स्वरूप पकड़ती जा रही थी – जिसे गांधीजीके सिवा अन्य कोई देख नहीं पाया था।

२

कांग्रेस कार्यसमितिके विभाजन-योजना स्वीकार करनका निर्णय लेते ही गांधीजीके पास इस आशयके पत्र आने लगे कि उसके विरुद्ध घर्मयुद्ध छेड़ दिया जाय। ऐसा एक पत्र इस प्रकार था: "अंग्रेज भारत छोड़ रहे हैं, परन्तु वे उसे विभाजित करके और एक पक्षको दूसरेसे लड़ा कर जा रहे हैं। सौ वर्ष पूर्व जब उन्होंने भारत पर अधिकार जमाया था तब भी ऐसा ही किया था। अगर आप साम्प्रदायिक आधार पर अथवा देशी राज्योंके आधार पर — जैसा कि सम्प्रदायवादी और कुछ राजा चाहते हैं – भारतके विभाजनके विरुद्ध संग्राम छेड़ दें, तो मैं आदरपूर्वक एक लाख . . . अनुशासनबद्ध स्वयंसेवक देनेका वादा करता हूं। वे वफादारीके साथ आपके आदेशोंका पालन करेंगे। यद्यपि वे अहिंसासे प्रतिबद्ध नहीं हैं, फिर भी अपने आचरणके बारेमें वे आपकी सूचनाओं पर पूरी तरह अमल करेंगे।"

इसका गांधीजीने यह उत्तर दिया:

> भारतका जो बंटवारा होनेवाला है उस पर शायद मुझसे ज्यादा दुःखी कोई नहीं है। परन्तु जो चीज अब निश्चित तथ्य दिखाई देती है, उसके विरुद्ध कोई संग्राम छेड़नेकी मेरी इच्छा नहीं है। मैंने ऐसे विभाजनको अनुचित माना है और इसलिए मैं उसका कभी समर्थन नहीं कर सकता । परन्तु जब कांग्रेस, अनिच्छापूर्वक ही सही, ऐसे बंटवारेको मान लेती है, तो मैं उस संस्थाके खिलाफ कोई आन्दोलन नहीं करूंगा। ऐसा कदम हर परिस्थितिमें अकल्पनीय नहीं है। आपके

ध्यानमें जिस प्रकारका संग्राम है उसके लिए प्रस्तावित विभाजनके साथ कांग्रेसका सम्बन्ध कोई उचित कारण नहीं है। अंग्रेजों पर आपने जो आक्षेप लगाया है, उसका भी मैं समर्थन नहीं कर सकता। उन्होंने किसी भी तरह इस कदमको न तो आगे बढ़ाया है और न प्रोत्साहन दिया है।

एक और मित्रने डब्लिनसे लिखा: "भारतके विभाजनकी वर्तमान बातचीतके खिलाफ आयर्लैण्डके भारतीयोंमें बड़ा रोष है। जब ब्रिटिश सरकार आयर्लैण्ड छोड़ रही थी तब आयर्लैण्डकी भी यही दशा हुई थी और अब नतीजा यह है कि इमोन-डि-वैलेराके नेतृत्वमें उत्तरी और दक्षिणी आयर्लैण्डके लोग इस विभाजनको मिटा देनेके लिए सभाओं, प्रदर्शनों वगैराके द्वारा जी-तोड़ प्रदर्शन कर रहे हैं। भारत अगर विभाजनकी योजनाको मान लेता है, तो उसे भी वही करना होगा । इस देशमें हिन्दुओं और मुसलमानोंका यह दृढ़ विश्वास और श्रद्धा है कि आपके योग्य नेतृत्व और पथ-प्रदर्शनमें भारत राजनीतिक आत्महत्या नहीं कर सकता।"

गांधीजीने उत्तर दिया:

मैं लाचार हूं। मैं नहीं जानता कि आयर्लैण्ड और भारतकी इस सम्बन्धमें तुलना की जा सकती है या नहीं। कांग्रेस और लीगने इस बारेमें समझौता कर लिया है – बेशक कांग्रेसने अनिच्छासे किया है। ऐसी सूरतमें परिस्थितियोंको देखते हुए जो सबसे अच्छा हो वही करना पड़ता है। मैं अपनी बुद्धिके प्रकाशमें वही करनेका प्रयत्न कर रहा हूं ।

गांधीजीको एक तार मिला जिसमें पूछा गया था कि आपका भारतके विभाजनके बारेमें तीव्र विरोध है और कांग्रेसने उसे मान लिया है। ऐसी स्थितिमें क्या आप आमरण अनशन नहीं करेंगे ? उन्होंने उत्तर दिया : ऐसे उपवासोंके साथ खिलवाड़ नहीं किया जा सकता। किसीके कहनेसे या क्रोधवश तो वे कभी नहीं किये जा सकते। कांग्रेसका मेरे विचारोंसे मतभेद है, क्या इसीलिए मैं उपवास करूं ? उदाहरणार्थ, कांग्रेस उद्योगीकरणकी योजनाओंके पक्षमें दिखाई देती है। इसमें मुझे सामान्य लोगोंका पीसनेवाली दरिद्रतासे उद्धार होता नहीं दीखता। जैसे मैं मिलके बने कपड़ेमें विश्वास नहीं रखता वैसे ही मिलकी खड़ी की हुई सभ्यतामें भी विश्वास नहीं रखता । मुझे देशकी रक्षाके लिए किसी सेनामें भी विश्वास नहीं। परन्तु मुझे लोगोंकी तरफसे कोई कार्रवाई देशकी सच्ची आजादीके इस खतरेको दूर

करनेके लिए की जाती नजर नहीं आती। अगर मैं अधीर बन कर उपवास करना चाहूं तो इन बातोंमें और दूसरी बातोंमें – जिन्हें मैं गिना सकता हूं – मेरे आमरण उपवासको उचित ठहरानेके लिए पर्याप्त कारण हैं। परन्तु मैंने समझ लिया है कि मुझे अपने चारों तरफ धधकती हुई आगके बीच धीरज और स्थिरता रखनी होगी और सत्यकी अंतिम विजयमें अपनी श्रद्धा सिद्ध करनी होगी।

फिर मैंने जिन्नाके साथ जिस दस्तावेज पर हस्ताक्षर किये हैं और जिसमें वाइसरॉयका भी हाथ रहा है वह भी है। मुझे देखना होगा कि मेरे दोनों साथी क्या करते हैं। तभी मैं इस बारेमें कोई कार्रवाई कर सकता हूं। इसलिए मैं उलाहना देनेवालोंसे कहता हूं कि वे कांग्रेसके प्रति, लीगके प्रति और मेरे प्रति सहिष्णु रहें और आलोचक बनकर भी देखते रहें कि चीजें कैसी शकल अख्तियार करती हैं। जैसे मैं लोगोंका हूं, वैसो ही सरकार भी लोगोंकी है। आपके नेताओंके बारेमें निर्णय करनेके लिए और यदि वे अथवा उनमें से कोई कसौटी पर खरे न उतरें, तो उन्हें छोड़ देनेके लिए आपके पास काफी समय है। परन्तु मुझे आशा है कि वे आपको निराश नहीं करेंगे।

एक और पत्र-लेखकको शिकायत थी कि गांधीजीने पहले यह घोषणा की थी कि भारतका अंग-भंग उनका अपना अंग-भंग होगा, लेकिन अब वे कमजोर पड़ गये हैं। ९ जूनको अपने प्रार्थना-प्रवचनमें गांधीजीने इसका उत्तर दिया: मैं इस अभियोगको स्वीकार नहीं कर सकता। **जब मैंने वह घोषणा की थी तब मेरा विश्वास था कि मैं लोकमतको प्रकट कर रहा हूं। लेकिन जब लोकमत मेरे विरुद्ध है तब क्या मैं उसे दबाऊं** ? पत्र-लेखकने यह भी दलील दी थी कि आपने कई बार यह कहा था कि असत्य अथवा बुराईके साथ कोई समझौता नहीं किया जायगा। गांधीजीने कहा : सिद्धान्तके रूपमें यह ठीक है, परन्तु उसका पालन भी सही ढंगसे होना चाहिये। मैं यह कहनेका साहस करता हूं कि अगर गैर-मुस्लिस भारत मेरे साथ हो, तो मैं प्रस्तावित विभाजन न होने देनेका रास्ता दिखा सकता हूं। लेकिन मैं बिना संकोचके यह स्वीकार करता हूं कि मैं पुराना हो गया हूं या पुराना समझा जाता हूं। लोग वह पाठ भूल गये हैं, जो उन्होंने पिछले ३० वर्षों तक सीखा था। वे भूल गये हैं कि असत्यको सत्यसे, हिंसाको अहिंसासे, अधीरताको धीरजसे और गर्मीको सर्दीसे जीतना है। लोग अपनी ही छायासे डरने लगे हैं। **बहुतोंने मुझे इस विभाजनका विरोध करनेवालोंका नेता बननेको कहा है। परन्तु उनके और मेरे बीच विरोधके सिवा दूसरी कोई समान वस्तु नहीं है। मेरे और उनके विरोधका आधार सर्वथा भिन्न दिखाई देता है**। क्या प्रेम और द्वेष कभी मिल सकते हैं ?

पत्र-लेखकने गांधीजीको सावधान कर दिया था कि नये वाइसरॉय अपने पूर्वगामी वाइसरॉयसे ज्यादा खतरनाक हैं, जो लोगोंको नंगी तलवार दिखलाते थे। नये प्रतिनिधिने अपनी चालाकी और मीठी मीठी बातोंसे कांग्रेसको वशमें कर लिया है। गांधीजी इस विचारसे बिलकुल असहमत थे: लेखकने न चाहते हुए भी वाइसरॉयकी बहुत तारीफ कर दी और कांग्रेसी मंत्रियोंकी बौद्धिक शक्तिको तुच्छ बता दिया है। जो बात स्पष्ट है वह उन्हें क्यों नहीं दीखती ? देश – उसका बोलनेवाला हिस्सा – मंत्रियोंके साथ है। वे मूर्ख नहीं हैं। वे जनताके सत्तारूढ़ प्रतिनिधि हैं। अगर लेखक उनकी जगह पर होते तो शायद स्थिति भिन्न न होती । कुछ भी हो, अगर नेताओंका ठीक चुनाव नहीं हुआ हो या लोग अपने देशके प्रति सच्चे न हों, तो वाइसरॉयको बुरा-भला कहना शोभाकी बात नहीं। 'यथा राजा तथा प्रजा' यह कथन इतना सही नहीं है जितना 'यथा प्रजा तथा राजा' है।

विदेशी मुलाकातियोंकी एक मंडलीसे अपने मनकी बात गांधीजीने यों कही: "मेरे न चाहने भी भारतका विभाजन हो गया। इससे मुझे गहरी चोट लगी है। परन्तु जिस ढंगसे विभाजन हुआ, उसके कारण मुझे अधिक चोट लगी है। मैंने प्रतिज्ञा की है कि आजकी आगको बुझानेके प्रयत्नमें या तो कुछ कर जाऊंगा या मर जाऊंगा। मैं जितना अपने देशवासियोंसे प्रेम करता हूं उतना ही समस्त मानव-जातिसे करता हूं, क्योंकि ईश्वर सभी मानव-प्राणियोंके हृदयोंमें निवास करता है। और मैं मानव-जातिकी सेवाके द्वारा जीवनकी सर्वोच्च स्थिति प्राप्त करनेकी आकांक्षा रखता हूं। यह सच है कि हमने जिस अहिंसाका प्रयोग किया वह दुर्बलोंकी अहिंसा थी – अर्थात् वह अहिंसा थी ही नहीं। परन्तु मैं मानता हूं कि मैंने अपने देशवासियोंके सामने ऐसी अहिंसा नहीं रखी थी। अहिंसाका शस्त्र मैंने उन्हें इसलिए भी नहीं दिया कि वे कमजोर अथवा निःशस्त्र थे या उन्हें फौजी तालीम नहीं मिली थी, बल्कि इसलिए मैंने यह शस्त्र उन्हें दिया था कि इतिहासके अध्ययनने मझे सिखाया है कि द्वेष और हिंसाका कितने ही उदात्त कार्यमें उपयोग किया जाय, तो भी उससे द्वेष और हिंसा ही पैदा हो सकती है और शांति स्थापित होनेके बजाय उससे शांतिके लिए खतरा ही खड़ा हो सकता है। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों और संतोंकी परम्पराके प्रतापसे भारतके पास दुनियाको देनेके लिए यदि कोई विरासत है, तो वह क्षमा और श्रद्धाका सन्देश है, जो उसकी गौरवपूर्ण समृद्धि है। मुझे विश्वास है कि भविष्यमें भारत इसे विनाशके उस खतरेके विरुद्ध खड़ा कर देगा, जो संसारने अणुबम की खोज करके मोर ले लिया है। सत्य और प्रेमका शास्त्र

अमोघ होता है, परन्तु उसके पुजारियोंमें अर्थात् हम लोगोंमें कोई न कोई ऐसा दोष है, जिसने हमें वर्तमान आत्मघाती संघर्षमें डुबो दिया है। इसलिए मैं आत्म-निरीक्षणका प्रयत्न कर रहा हूं।"

दूसरे दिन सुबह ही गांधीजीने एक पत्र लिखवाया, जिससे प्रकट होता था कि उनका आत्म-निरीक्षण कितना सूक्ष्म था: "यदि हम सावधानीके साथ अपनी जाच-पड़ताल करें, तो हमें पता लगेगा कि हम जो बातचीत करते हैं वह ज्यादातर बकवास होती है। हमारा बोला हुआ प्रत्येक शब्द सत्य नहीं होता। परन्तु इसकी सावधानी रखनेके लिए हमारे पास समय नहीं होता । इस समय तो खास तौर पर मौन सबसे सुन्दर वस्तु है। समयका तकाजा हमसे शब्दोंका नहीं बल्कि कार्योंका है । यह सूत्र यथार्थ है कि "मौनमें सब कुछ आ जाता है।" **जो मनुष्य सत्यके दर्शन करना चाहता है और ईश्वरकी शरण लेना चाहता है, उसे कमसे कम एक दिनका साप्ताहिक मौन अवश्य रखना चाहिये**।" (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

आत्म-निरीक्षणकी मनस्थितिमें गांधीजी ईश्वर-कृपाके लक्षण गिनाने लगे, जिस कृपासे उन्हें इस कठिन परीक्षाके समय बल मिल रहा था: "मैं अपने जीवनमें अनेक अग्नि-परीक्षाओंमें से गुजरा हूं । परन्तु यह शायद सबसे कठिन होगी। मुझे यह पसन्द है। वह जितनी भयंकर होती जाती है उतना ही मुझे ईश्वरके साथ अधिक सान्निध्य प्रतीत होता है और उसकी विपुल अनुकंपामें मेरी श्रद्धा गहरी होती है। जब तक मेरी यह परीक्षा होती रहेगी तब तक मैं जानता हूं कि मेरा कल्याण ही कल्याण है।"

ईश्वरके अनुग्रहका दूसरा चिह्न यह था कि स्वास्थ्य अच्छा न होने पर भी मनु (गांधी) उस भारी जिम्मेदारीको, जो उस पर गांधीजीने डाल दी थी, निभा रही थी। "में उससे बूतेके बाहर काम लेता हूं। . . . परन्तु इतने पर भी ईश्वर उसे सहारा देता दिखाई देता है, मानो परीक्षाके समय वह मेरी मदद करता हो। ईश्वरकी कृपाकी एक तीसरी निशानी यह है कि वह मेरी शारीरिक शक्तिको टिकाये रखता है और रोजके आघातों और उत्पातोंके बीच भी मेरी शान्ति बनाये रखनेकी क्षमता मुझे देता है। गत साठ वर्षोंसे मैं सतत घोर युद्ध करता रहा हूं। मुझे उसकी कृपाका नित्य अनुभव हो रहा है।"

और उन्होंने आश्रमकी प्रार्थनाका एक श्लोक पढ़ा :

विपदो नैव विपदः, सम्पदो नैव सम्पदः ।
विपद् विस्मरणं विष्णो सम्पन्नारायणस्मृतिः॥

उनका चिन्तन जारी रहा : "ईश्वरकी खोजमें तीर्थयात्रा करने अथवा देवताकी मूर्तिके आगे धूप-दीप जलाने या उसे चंदन-रोली लगानेकी जरूरत नहीं । कारण, वह तो हमारे हृदयोंमें निवास करता है। **यदि हम अपने भौतिक शरीरका भान बिलकुल मिटा दें, तो हम उसके साक्षात् दर्शन कर लेंगे।**"

सुबहकी सैरके समय दो हिन्दू महासभाई युवक आये और उत्तेजित होकर कहने लगे : "आप महात्मा नहीं हैं। आप हिन्दुओंको अहिंसाका उपदेश करके दुर्बल बना रहे हैं। आपको उन्हें गुमराह नहीं करना चाहिये।" गांधीजी मुस्कराये । फिर जिन दो लड़कियोंको "बैसाखी" बनाकर वे चल रहे थे, उन्हें हटाकर नवागंतुकोंके कन्धों पर स्नेहपूर्वक अपने हाथ रख लिये। इससे दोनों युवक ऐसे भावाभिभूत हो गये कि कांपने लगे और गांधीजीके बोलनेसे पहले ही उनमें से एकने क्षमा मांग ली। थोड़ी देर बाद गांधीजीने उनसे कहा: "तुम नहीं जानते कि तुम्हारे आपत्ति करनेसे बहुत पहले ही मैंने महात्माकी पदवी छोड़ दी थी। परन्तु संभवत: मेरे लिए तुम्हारे मनमें जो चिन्ता है उसकी वजहसे तुम मुझे सावधान करना जरूरी समझते हो, ताकि मैं बुढ़ापेमें सठिया न जाऊं।" उन्होंने युवकोंसे एक बार फिर यह बात कही कि यदि लोग अहिंसक ढंगसे मृत्युका सामना करना नहीं जानते, तो वे जरूर बहादुरीके साथ लड़ते हुए मर सकते हैं। लेकिन अगर वे पाकिस्तानके अत्याचारोंका बदला लेना चाहते हैं, तो भी सही तरीका यह है कि वे पाकिस्तान जाकर अत्याचार करनेवालोंसे लड़ें। भारतमें रहनेवाले मुसलमानोंसे कायरतापूर्ण बदला लेनेंमें कोई बहादुरी नहीं हो सकती।

> पाकिस्तानसे भी मैं यही बात कहता हूं। इंग्लैंडमें जब लोगोंके बचनेकी कोई संभावना नहीं रह गई थी तब भी लोग बच गये। इसका रहस्य यह था कि उनमें अद्भुत एकता थी, राष्ट्रीय अनुशासन था और संगठन था। देशद्रोह करने पर बापने अपने बेटेको भी फांसी पर चढ़ानेमें संकोच नहीं किया। परन्तु भारतमें विभाजनके बाद भी हिन्दू और सिक्ख आपसमें झगड़ रहे हैं। सब मनमानी करना चाहते हैं। कोई किसीकी नहीं सुनता। इन सब बातोंका क्या परिणाम होगा ? हम पुराने नेता तो पतझड़के पत्तोंके समान हैं । कल तो तुम्हें ही सारा भार उठाना पड़ेगा। इसलिए तुम युवकोंका कर्तव्य है कि अपनी उदासीनता, जड़ता और आलस्यको छोड़कर तुम मन-प्राणसे रचनात्मक कार्यमें लग जाओ।

युवकोंके चले जानेके बाद गांधीजी डॉ. राजेन्द्रप्रसादकी तरफ मुड़ कर बोले : "हमें इससे सावधान हो जाना चाहिये। अगर मैं यहांसे मुक्त हो सकूं तो मेरी इच्छा सारे देशमें दौरा करके एक नया

आन्दोलन छेड़नेकी है, जिससे देशके नौजवान रचनात्मक काममें लग जायं । मैं देशके लिए कुछ न कुछ करनेका उत्साह उनमें देख सकता हूं। परन्तु उस उत्साहको कोई सहारा नहीं मिल रहा है और उसके गलत दिशामें चले जानेका पूरा खतरा है। हमारा देश जिस रोगसे पीड़ित है, उसे मैंने बहुत पहले देख लिया था। हम चोटीके नेता बूढ़े हो रहे हैं। अपनी मृत्युसे पूर्व हमें ईश्वरकी दी हुई संपूर्ण शक्ति नौजवानोंको हमारे सपनेके भारतका निर्माण करनेकी जिम्मेदारी उठानेकी तालीम देनेमें उसी तरह लगा देनी चाहिये, जिस तरह हमने पहले स्वातंत्र्य-संग्रामके लिए उन्हें अहिंसक सैनिक बननेकी तालीम दी थी। यदि चोटीके नेताओंमें से कमसे कम कुछ लोग भी जनतामें काम करनेके लिए सरकारसे बाहर न रहें, तो हमारे सामने जो गंभीर कार्य आनेवाले हैं उनके लिए लोगोंको तालीम नहीं दी जा सकती।

उस दिन स्नानघरमें गांधीजीको चक्कर आ गये और यदि उनका सेवक सावधान न रहता तो वे बेहोश हो जाते। वे २ बजे रातको उठ कर एक क्षणका भी आराम लिये बिना दिन भर काम करते रहे थे और अपनी शारीरिक शक्ति पर इतना अधिक भार डाल रहे थे कि एक प्रकारसे अत्यधिक कार्य और चिन्ताके कारण उनकी शक्तिका खजाना लगभग खाली हो चुका था। परन्तु दूसरोंका उन्हें इतना अधिक खयाल रहता था कि जब ५ मिनटमें उनकी तबीयत ठीक हुई तो पहलेकी तरह इस बार भी उन्होंने साथियोंको सख्त हिदायत कर दी कि जो कुछ हुआ उसके बारेमें किसीको एक शब्द भी न कहा जाय। परन्तु राजाजी और घनश्यामदास बिड़ला स्नानघरके बाहर प्रतीक्षा कर रहे थे। गांधीजीके बाहर निकलने पर उनका पीला चेहरा देख कर दोनों अशांत दिखाई दिये।

३

ये समाचार प्रयत्नपूर्वक फैलाये गये थे कि गांधीजीका अपने साथियोंसे मतभेद हो गया है और कांग्रेस महासमितिमें वे कार्यसमितिके निर्णयके खिलाफ अपनी आवाज उठायेंगे। असलमें यह मनचाही बातका प्रचार था। इन मनगढ़न्त समाचारोंका खण्डन करते हुए अपने एक प्रार्थना-प्रवचनमें गांधीजीने कहा: विभाजनके बारेमें कार्यसमितिसे मेरा मतभेद हो सकता है। बेशक मैंने मतभेद प्रकट भी किया। परन्तु सत्य कह देनेके बाद मेरी सिफारिश यह है कि समितिने जो निर्णय किया है उसे स्वीकार कर लिया जाय । मेरी अनुशासन-वृत्तिका और ध्येयके प्रति मेरी निष्ठाका यही तकाजा है। संविधानके अनुसार कांग्रेस महासमितिने अपना अधिकार कार्यसमितिको सौंप दिया है, इसलिए वह कार्यसमितिके

निश्चयोंको गंभीर विचारके बिना नहीं ठुकरा सकती। मान लीजिये कि कार्यसमिति महासमितिकी तरफसे कोई हूंडी लिख दे, तो महासमितिको उसे स्वीकार करना पड़ेगा। कार्यसमितिकी कोई गम्भीर भूल पाई जाय और वह विश्वासपात्र सिद्ध न हो, तो महासमितिको उसे हटाकर उसकी जगह दूसरी कार्यसमिति नियुक्त करनेक अधिकार है। परन्तु जो निर्णय वह कर चुकी है, उससे महासमिति मुकर नहीं सकती । उसका विरोध महासमितिको तभी करना चाहिये जब वह जानबूझ कर जनताको गुमराह करनेकी कोशिश करे।

मैंने पहले आपसे कह दिया था कि आप अब भी बहुत-कुछ स्थितिको सुधार सकते हैं। होना यह चाहिये कि भारतीय संघ और पाकिस्तानको जनताके भलेके काम करनेमें होड़ लगानी चाहिये। अगर पाकिस्तान ज्यादा अच्छा काम करेगा, तो सारा भारत पाकिस्तान बन जायगा और उसमें न तो बहुमत होगा, न अल्पमत; सब कोई समान होंगे। अगर मैं मुस्लिम लीगका अध्यक्ष होऊं तो पाकिस्तानका चलचित्र बनवा कर उसके अद्वितीय सौंदर्यसे उसे आकर्षक बनाऊंगा। उस सूरतमें मैं स्वयं सबसे पहले अपनी भूल स्वीकार करूंगा और सबके सामने पाकिस्तानका समर्थन करूंगा। “क्या जिन्ना साहब ऐसा करेंगे ?”

जहां तक दिखाई देता था भारतका बंटवारा अब निश्चित हो गया था। गांधीजीने कहा: लोगोंको इस पर दुःखी नहीं होना चाहिये। अगर किसीको दुःखी होनेका अधिकार है तो वह मुझे है। लेकिन मेरा दिमाग बिलकुल साफ है। अगर भारतीय संघके लोग ईमानदारीसे काम करें, तो उनके लिए दुःखकी कोई बात नहीं है। मैं स्वीकार करता हूं कि विभाजन स्वीकार कर लेने पर एकता कुछ कठिन हो गई। परन्तु मान लीजिये कि भारतके मुसलमान अपनेको बाकी लोगोंसे भिन्न राष्ट्र समझें, तो गैर-मुसलमानोंके सहयोगके बिना वे अलग राष्ट्र नहीं बन सकते। मुस्लिम बहुमत- वाले प्रदेश अपनेको पाकिस्तान कह सकते हैं, परन्तु भारतके शेष और सबसे बड़े भागके लिए यह जरुरी नहीं कि वह अपनेको हिन्दुस्तान – अर्थात् हिन्दुओंका निवासस्थान – कहे ।

मेरे खयालसे यही कारण है कि पंडित नेहरू गैर-पाकिस्तानी प्रदेशोंको हिन्दुस्तान कहनेसे इनकार करते हैं और उन्हें भारतीय संघके गौरवपूर्ण नामसे पुकारते हैं। परन्तु इतिहासने बता दिया है कि गौरवपूर्ण नाम रख लेनेसे ही कोई महान नहीं बन जाता। मनुष्य और समूह अपने नामसे नहीं, अपने

कामोंसे जाने जाते हैं। भारतीय संघ कैसा व्यवहार करेगा ? सवर्ण हिन्दुओंकी इस समय परीक्षा हो रही है। क्या संघके सबसे नीचे और सबसे छोटे लोगोंके प्रति वे अपनी जिम्मेदारीको अच्छी तरह समझते हैं ? क्या सवर्ण हिन्दू उन्हें ऊंचेसे ऊंचे दर्जे तक पहुंचनेकी सारी सुविधाएं देकर अपना स्पष्ट कर्तव्य पालन करेंगे ? फिर मुस्लिम अल्पसंख्यक भी तो हैं। क्या उन्हें परदेशी समझा जायगा ? "ईश्वर न करे कि सवर्ण हिन्दू अपने आचरणसे जिन्ना साहबका यह कथन सिद्ध कर दें कि मुसलमान और हिन्दू अलग अलग राष्ट्र हैं। क्या वे समयानुकूल शक्ति अपनेमें उत्पन्न करके अपने चरित्र, शौर्य, विशुद्धता और सहिष्णुतासे पाकिस्तानके मुसलमानोंके सामने यह सिद्ध कर देंगे कि भारतीय संघमें धर्म, जाति या रंगके आधार पर कोई भेदभाव नहीं रखा जाता ?"

संघमें ऐसे लोग भी हैं, जो हिन्दुस्तानी भाषाके (हिन्दी और उर्दूके उपयुक्त मिश्रणके) विरुद्ध हैं। भारतमें इस्लामके अनेक पवित्र स्थान हैं। क्या उनका दूसरे स्थानोंके समान ही सम्मान किया जायगा ? मुस्लिम विद्याकेन्द्रोंका भविष्य क्या होगा ? इन प्रश्नों और ऐसे ही दूसरे प्रश्नोंके ठीक उत्तर पर भारतकी सच्ची एकताका आधार है; और इससे इस बातका कोई सरोकार नहीं कि पाकिस्तानमें क्या कहा या क्या किया जा रहा है। "जैसे को तैसे" का नियम पशुओंका अथवा असभ्य मनुष्योंका नियम है। जंगलके कानूनके प्रयोगसे दुनिया उकता गई है, वह तो घृणाके बदले प्रेमकी, असत्यके बदले सत्यकी, असहिष्णुताके बदले सहिष्णुताकी प्यासी है। यदि पुनः संस्कार-संपन्न बने मानवका यह नियम संसारमें नहीं चला, तो उसका सर्वनाश हो जायगा।

परन्तु जिस समय गांधीजी लोगोंके दिलोंमें भरे हुए रोष और क्रोधके आवेगको अपने भावनापूर्ण भाषणों द्वारा उचित मार्ग पर ले जानेका प्रयत्न कर रहे थे, उस समय भी क्षितिज पर दिखाई देनेवाली एक अशुभ छाया उन्हें चिन्तित कर रही थी। पाकिस्तानके अल्पसंख्यकोंको आश्वासन देनेकी तमाम कोशिशोंके बावजूद उनके भविष्यके विषयमें व्यापक बेचैनी और असन्तोष था, जो घबराहटकी हद तक पहुंच गया था। कलकत्तेकी तरह कराची नगर और बन्दरगाह हिन्दू-प्रधान नगर था। उसकी सम्पन्नता अधिकतर हिन्दुओंके व्यावसायिक साहसके कारण ही थी। शिकारपुरके व्यापारी अपनी व्यावसायिक बुद्धि, ऊंची साख और साहस-वृत्तिके लिए इतिहासमें मशहूर थे। उन्होंने सिन्धको पूर्वी देशोंके लिए व्यवसाय-द्वार बना लिया था। इसी प्रकार सक्खर बांधके प्रदेश और थर-पार-करके जिलोंकी आर्थिक और सांस्कृतिक प्रगतिमें भी हिन्दुओंका ही बहुत बड़ा हाथ था। वे सब घबरा रहे थे और कुछ लोगोंने

सिन्ध छोड़ देनेका इरादा जाहिर कर दिया था। गांधीजीने कहा: यह मुसलमानों और सिन्धकी लीगी सरकारका विश्वासघात होगा, यदि जिन्नाके बार बार यह आश्वासन देनेके बाद कि पाकिस्तानमें अल्पसंख्यकोंके साथ न्यायका व्यवहार किया जायगा, एक भी हिन्दूको वहांसे चले आनेके लिए विवश होना पड़े।

कैम्पबेलपुर (पंजाब) से आनेवाले निराश्रितोंके लाये हुए समाचार भी उतने ही चिन्ताजनक थे। उन्होंने गांधीजीसे पूछा: क्या आप हमें यह विश्वास दिला सकते हैं कि हम वहां सुरक्षित रह सकेंगे ? गांधीजीने कहा: यह विश्वास मैं कैसे दिला सकता हूं ? केवल मुस्लिम लीग और जिन्ना ही ऐसा आश्वासन दिला सकते हैं।

रावलपिंडीसे आये हुए कुछ पीड़ित गैर-मुस्लिम गांधीजीसे कुछ दिन बाद मिले । उनसे गांधीजीने उत्सुकतापूर्वक पूछा : अब तो पाकिस्तान बननेकी बात पक्की हो गई है। क्या आपके आसपासके मुसलमानोंके व्यवहारमें इससे कोई सुधार हुआ है ? उन्हें बताया गया कि सुधार तो नहीं, लेकिन बिगाड़ जरूर हुआ है।

गांधीजी कमजोर हो गये थे, इसलिए अल्पाहार करते थे। सरदारने उनके चुटकी ली: "आपको स्वयंको और दूसरोंको कष्ट देनेमें मजा आता है। अगर आप हमारी बात सुनते और मसूरी चलना मंजूर कर लेते (देखिये पृ. २५६-५७), तो हम सब मसूरीके ताजे जलवायुका आनन्द लेते। परन्तु आप तो उल्टे ही चलते हैं।"

गांधीजीने उत्तर दिया: "आप जाने दें तो मैं उत्तरकाशी जाना बहुत पसंद करूंगा।"

इसके साथ एक मर्मस्पर्शी कथा जुड़ी हुई है। गांधीजीके प्रिय और आदरणीय मित्र पं. मदनमोहन मालवीय उस पवित्र क्षेत्र और हिमालयके उस सुन्दर स्थानमें रहनेवाले पवित्र साधु-संतोंका उज्ज्वल वर्णन प्रायः किया करते थे। उन्होंने गांधीजीको वचन दिया था कि वे किसी दिन उन्हें वहां ले चलेंगे। परन्तु वचन पूरा करनेसे पहले ही यमराजने मालवीयजीको बुला लिया । फिर भी गांधीजीके मनमें यह विचार बना रहता था और आगे चल कर जब उनके जीवनमें निराशा और विषादके बादल घिर आते थे तब वे अक्सर बड़ी आतुरतासे इस सिद्ध न हुई मोहक अभिलाषाका स्मरण कर लिया करते थे।

सरदार तो अदम्य पुरुष थे। वे कैसे गांधीजीके विनोदका उत्तर दिये बिना रहते ? बीचमें ही बोले: "तो यह बात है ! हम कोई सुझाव दें तो आपके पास उसका जवाबी सुझाव तैयार ही रहता है ! हम आपसे एक बात कहते हैं, तो आप दूसरी निकाल कर रख देते हैं !"

रातको गांधीजी सवा ग्यारह बजे ही सो सके। दूसरे दिन प्रार्थनाके बाद तड़के ही सदाकी भांति वे काम पर बैठ गये और पत्र लिखने लगे। परन्तु उनकी कलमकी निब टूट गई। नयी निब मंगवायी गयी। इसमें कुछ समय लगा; परन्तु गांधीजीके पास तो एक एक क्षणका हिसाब रहता था। उसकी प्रतीक्षा किये बिना उन्होंने चाकूसे अपने लकड़ीके होल्डरकी नोक तेज कर ली और निबके पहुंचनेसे पहले ही उससे लिखना शुरू कर दिया।

४

अन्तमें १४ जून आ पहुंची। जैसे १६ मई, १९४६ की कैबिनेट-मिशनकी योजनाके समय बम्बईकी कांग्रेस महासमितिमें हुआ वैसे ही जिन लोगोंने गांधीजी और कांग्रेस कार्यसमितिमें फूट पड़ जानेकी आशा लगा रखी थी उनके भाग्यमें निराशा ही आई। १४ जूनकी दोपहरमें पंडित नेहरू गांधीजीसे कहने आये कि शामको उन्हें महासमितिमें भाषण देनेके लिए कहा जायगा। पंडित नेहरूके चले जानेके बाद गांधीजी बोले : "वह (जवाहरलाल) स्फटिककी भांति स्वच्छ है। उसकी निष्ठा और स्नेह अद्वितीय हैं। भूतकालमें विचारधाराके सम्बन्धमें मुझसे कितनी ही लड़ाइयां उसने की हों, परन्तु आज तो वह आंखें बन्द करके मेरी सब बातें मान लेता है। अगर मैं उसे इनकार कर दूं, तो उसका दिल टूट जाय। उसने मुझे अपने प्रेमका बन्दी बना लिया है। इसीलिए मैंने पुकार पुकार कर कहा है कि मैं पंडित नेहरूका और सरदारका कैदी हूं। उसमें बालकके निश्छल हृदयके साथ साथ उदात्त बुद्धि, व्यापक विद्वत्ता और ऐसी योग्यता है जिसकी संसारमें किसीसे भी तुलना की जा सकती है। उसमें वैराग्य भी है। जैसे सांप पुरानी केंचुली उतार कर फेंक देता है वैसे ही जवाहर भी बातकी बातमें सत्ताके सारे बन्धन काट कर फेंक सकता है। उसकी अथक शक्ति और अदम्य उत्साहको देखकर नौजवानोंको भी शर्म आती है।"

महासमितिकी सभामें गांधीजीने कहा: विभाजन पर कार्यसमितिके प्रस्तावको अस्वीकार कर देना या उसमें संशोधन करना आप लोगोंके लिए अनुचित होगा। सदनको ऐसा करनेका अधिकार तो है, परन्तु सदस्योंको याद रखना चाहिये कि कार्यसमितिने आपके प्रतिनिधिकी हैसियतसे योजनाको

स्वीकार किया है और आपका यह कर्तव्य है कि आप कार्यसमितिका समर्थन करें। मेरे अपने विचार तो योजनाके संबंधमें सभीको मालूम हैं।

इस निर्णयमें कांग्रेस कार्यसमितिके अलावा दो पक्ष और हैं – ब्रिटिश सरकार और मुस्लिम लीग । अगर इस हद तक पहुंच कर महासमिति उस निर्णयको रद्द कर देती है, तो दुनिया क्या सोचेगी ? देशके सब पक्षोंने विभाजनकी योजनाको मान लिया है, अतएव कांग्रेसके लिए अपनी बातसे मुकर जाना ठीक नहीं होगा।

यदि महासमिति यह समझती है कि ३ जूनकी योजनासे देशकी हानि ही होगी, तो वह बेशक उसे अस्वीकार कर सकती है। लेकिन आपको याद रखना चाहिये कि अगर आप इस प्रस्तावको अस्वीकार करेंगे अथवा उसमें संशोधन करेंगे, तो इससे कांग्रेस-अध्यक्ष और कार्यसमितिमें आपका अविश्वास प्रकट होगा। इसके फलस्वरूप वे स्वभावत: त्यागपत्र दे देंगे। उस सूरतमें आपको नेताओंका नया दल खोजना होगा, जिसे न केवल कांग्रेस कार्यसमितिकी रचना करनी होगी बल्कि सरकारका कार्य भी संभालना पड़ेगा। यदि प्रस्तावके विरोधियोंका विश्वास हो कि वे ऐसा नेता-मंडल खोज सकते हैं और अधिकांश सदस्य उनके जैसा विचार रखते हों, तो महासमिति प्रस्तावको अस्वीकार कर सकती है।

गांधीजीने आगे कहा: कांग्रेस पाकिस्तानके विरुद्ध है और मैं उन लोगोंमें से एक हूं जिन्होंने भारतके विभाजनका दृढ़तासे विरोध किया है। फिर भी मैं आपके सामने प्रस्तावको स्वीकार करनेका अनुरोध करने आया हूं। कभी कभी कुछ निर्णय कितने ही अरुचिकर हों तो भी हमें करने पड़ते हैं। लेकित सदस्योंको यह नहीं भूलना चाहिये कि इस नाजुक मौके पर देशमें शान्ति अत्यावश्यक है। जो लोग देशमें तुरन्त क्रान्ति अथवा उथल-पुथल होनेकी दृष्टिसे बातें करते हैं, वे यह ध्येय तो इस प्रस्तावको ठुकरा कर सिद्ध कर सकेंगे। लेकित मुझे इसमें संदेह है कि उनमें कांग्रेसकी और सरकारकी बागडोर संभालनेकी शक्ति है या नहीं। "मुझमें तो आज वह शक्ति नहीं है, अन्यथा मैं अकेले दम विद्रोहकी घोषणा कर दूं।"

गांधीजीका इशारा अपनी गिरती हुई तन्दुरुस्तीकी ओर था और इस ओर भी था कि कांग्रेस और आम जनताके अहिंसा-पालनमें उन्हें त्रुटि दिखाई दी है। ऐसे मौके पर वे स्वयं नये सिरेसे कोई ऐसा काम शुरू करनेका विचार नहीं कर सकते थे।

उन्होंने जोर देकर कहा: मैं कार्यसमितिकी वकालत नहीं कर रहा हूं। सदनको प्रस्तावकी अस्वीकृतिके पक्ष-विपक्षकी सब बातें तौल कर देख लेनी चाहिये। यदि वह इसे पूरी तरहसे उचित न समझता हो, तो नैतिक विवशताके किसी झूठे खयालसे प्रेरित होकर उसे प्रस्तावको स्वीकार नहीं करना चाहिये। यदि उसे विश्वास हो कि प्रस्तावको अस्वीकार कर देनेसे देशमें कोई उत्पात या लड़ाई-झगड़ा नहीं होगा, तो सदन उसे अस्वीकार कर सकता है। परन्तु आपको यह नहीं भूलना चाहिये कि कार्यसमितिके सदस्य "राष्ट्रके पुराने और आजमाये हुए सेवक हैं, उनके पीछे महान सिद्धियोंका गौरवपूर्ण इतिहास है, वे अब तक कांग्रेसके आधार-स्तंभ रहे हैं" और आजकी स्थितिमें उन्हें हटाकर दूसरे नेता लाना असंभव नहीं तो "अत्यंत अविवेकपूर्ण" बात जरूर होगी।

मैं स्वीकार करता हूं कि जो योजना स्वीकार की गई है वह अच्छी नहीं है, परन्तु मुझे विश्वास है कि आप उससे लाभ उठा सकते हैं। कभी कभी भूलोंसे भी लाभ हो जाता है। रामको अपने पिताकी गलतीसे वनवास भोगना पड़ा। परन्तु अन्तमें उनके निर्वासनका परिणाम दुष्ट रावणकी हारमें आया। मुझे आशा है कि जैसे धूलमें से सोना निकाला जाता है वैसे ही महासमिति एक दोषपूर्ण योजनामें से भी अच्छी बात निकाल सकेगी।

अपने अर्थको और समझाते हुए गांधीजीने कहा : योजनाके कारण हिन्दू धर्म और इस्लाम दोनोंकी परीक्षा हो रही है। आपको उससे जिन्नाके इस सिद्धान्तको झूठा साबित करनेका अवसर मिलेगा कि मुसलमान अलग राष्ट्र हैं और हिन्दुओंसे भिन्न हैं। भारतमें छोटेसे छोटे अल्पसंख्यक वर्गोंको भी सुरक्षा और सुखका अनुभव होना चाहिये। अगर आप ईमानदार, सच्चे और निखालिस हैं, तो देशको कोई हानि नहीं हो सकती।

पंडित नेहरूके भाषणसे वही बात प्रकट हुई, जिसका बराबर सन्देह किया जा रहा था – अर्थात् सरकारके लीगी सदस्योंके भीतरसे तोड़फोड़ करने और अंग्रेजों द्वारा अपने हाथमें नियंत्रण रखनेके कारण अन्तरिम सरकार देशमें फैलती हुई अराजकताका सामना करनेमें इतनी असमर्थ हो गई थी कि कांग्रेसके वरिष्ठ नेता निराश हो गये और देशके विभाजनकी कीमत चुका कर भी उन्होंने इस असह्य स्थितिसे बचनेमें सुख माना । कांग्रेसी नेताओंके जीवनका सर्वश्रेष्ट भाग बीत चुका था। २५ वर्ष तक वनवासमें भटकनेके बाद अब कहीं स्वप्नलोक उनकी दृष्टिमें दिखाई देने लगा था। वे शुरवीर और साहसी

योद्धा थे और जरूरी होने पर एक बार फिर युद्धमें कूद पड़नेसे डरते नहीं थे। पर उन्हें भय था कि शायद उन्हें एक और सफल युद्ध लड़ लेनेका मौका जीवनमें नहीं मिलेगा और उनके संग्रामका तथा योद्धाओंकी एक समूची पीढ़ीके असंख्य बलिदानोंका फल उनके हाथोंमें आते आते निकल जायगा। यदि निर्णय करनेका समय इससे पहले आता – जब कांग्रेस वनवासमें थी, जब वे (नेता) जवान थे, जब उन्हें अंतरिम सरकारका अनुभव नहीं हुआ था और जब सत्ताके स्वादने उनके विचार और दृष्टिकोण पर रंग नहीं जमाया था – तो उनका चुनाव कुछ और ही होता।

पंडित नेहरूने पंजाब और बंगालके विभाजनके बारेमें जो कुछ कहा, उसमें गहरे शोकका स्वर था। उनके सामने सबसे तात्कालिक समस्या "अराजकता और अव्यवस्थाकी ओर ले जानेवाली तेज धाराको रोकने" की थी। कलकत्ता और नोआखालीमें जो कुछ हुआ उसकी तुलना बिहारमें जो कुछ हुआ उसके साथ करना काफी था। कांग्रेसने सारा जोर लगाकर बिहारकी स्थिति पर तो काबू पा लिया, लेकिन वह पंजाबमें कुछ नहीं कर सकी । पंजाबमें ऐसी बातें क्यों हुईं और खिजर हयात खांका मंत्रिमंडल क्यों टूट गया और किस वजहसे पंजाबके उपद्रवोंको दबानेका सामर्थ्य किसीमें भी दिखाई नहीं दिया ? उत्तर स्पष्ट था। अंग्रेज भारत छोड़कर जा रहे थे। उनकी कोई दिलचस्पी नहीं रह गई थी। "शायद यही कारण है कि दंगेके जो शिकार कुछ अंग्रेज अधिकारियोंके पास सहायताके लिए गये, उनसे उन्होंने कह दिया कि पंडित नेहरू या सरदार पटेलके पास जाओ । वे अधिक जिम्मेदारी उठानेको तैयार नहीं थे। और बहुतसे अधिकारी तो हृदयहीन हो गये थे।" पंडित नेहरूने कहा कि ऐसी हालतमें हमें लगा कि निर्दोष नागरिकोंकी हत्याकी अपेक्षा विभाजन ज्यादा अच्छा है।

क्या कांग्रेसने पंजाब और बंगालका बंटवारा स्वीकार करके पश्चिम बंगालके हिन्दुओं और सिक्खों तथा पूर्व बंगालके हिन्दुओंको छोड़ दिया था ? पंडित नेहरूने लगभग क्षमा-याचनाके ढंगसे स्वीकार किया : इसका उत्तर बेशक मिलना तो चाहिये, लेकिन कांग्रेस लम्बे-चौड़े आडंबरपूर्ण प्रस्ताव पास करके उनकी मदद नहीं कर सकेगी । जब पंजाब एक था तब भी हमने पाया कि हम पंजाबके लोगोंकी सहायता नहीं कर सके। सिन्धके बारेमें मुझे बहुत नहीं कहना है। मुझे सीमाप्रान्तकी बड़ी चिन्ता है। अगर पश्चिमी पंजाब भारतसे बाहर निकल गया, तो सीमाप्रान्त अकेला पड़ जायगा।

पंडित नेहरूने बताया कि हमने ब्रिटिश सरकारसे यह स्वीकार करानेकी बहुत कोशिश की कि हमें संक्रांति-कालमें परम्पराके अनुसार औपनिवेशिक सरकारकी तरह काम करने दिया जाय। परन्तु अन्तरिम सरकारकी रचना ही ऐसी थी कि कोई समझौता काम नहीं दे सकता था और कोई परम्परा स्थापित नहीं की जा सकती थी। इसलिए वाइसरॉयने ३ जूनकी योजना सुझाई और कांग्रेसने उसे मान लिया। **यह योजना ब्रिटिश सरकारके पुराने निर्णयोंकी तरह कोई थोपा हुआ निर्णय नहीं थी, जिसे या तो स्वीकार किया जाय या अस्वीकार किया जाय**। व्यावहारिक और कानूनी दृष्टिकोणसे भारत एक घटकके रूपमें अब भी विद्यमान है। अलबत्ता, कुछ प्रान्त और प्रान्तोंके हिस्से अब उससे अलग हो जाना चाहते हैं। भारत सरकार वैसी ही अक्षुण्ण है। 'हिन्दुस्तान' और 'पाकिस्तान' की और ज्यादा गड़बड़ी नहीं होनी चाहिये और लोगोंको ऐसे विचारोंको बढ़ने नहीं देना चाहिये ।

सरदार पटेलने पं. नेहरूकी बातका समर्थन किया और कहा कि हमें विभाजन स्वीकार करना पड़ा, क्योंकि हमारे सामने प्रशासनके भीतर अंग्रेजों और मुस्लिम लीगके गुटकी अड़ंगेबाजीसे छुटकारा पानेका कोई और रास्ता नहीं रह गया था। यह गुट देशको तोड़फोड़की धमकी दे रहा था। मैं अपने सिन्धी भाइयोंके डरको पूरी तरह समझता हूं। भारतका विभाजन किसीको पसन्द नहीं है और मुझे इसके लिए गहरा दुःख है। परन्तु हमारे सामने स्पष्ट वास्तविकतायें थीं, जिन पर हमें ध्यान देना पड़ा। **हमें यह चुनाव करना था कि भारतका एक ही विभाजन हो या अनेक हों। कांग्रेसके लिए तथ्योंका सामना करना जरूरी था। वह भावुकतामें नहीं बह सकती थी**। उसे पक्ष और विपक्षकी बातोंका ठंडे दिमागसे हिसाब लगा कर किसी निर्णय पर पहुंचना था। कैबिनेट-मिशनकी १६ मई, १९४६ की योजना बेशक हमें संयुक्त भारत देती थी, परन्तु उसमें एक कठिनाई थी। यदि कोई पक्ष सहयोग न देता, तो उस योजना पर अमल नहीं किया जा सकता था। इस प्रकार उस योजनाका स्वरूप एक ऊपरसे लादे हुए निर्णय जैसा था। अगर हम उस योजनाको मान लेते, तो सारे भारतको पाकिस्तानके मार्ग पर जाना पड़ता। (परन्तु क्या गांधीजीने हमें बार बार यह नहीं कहा था कि अगर अहिंसा पर ही आधार रख कर हम ब्रिटिश शान्तिके बजाय अराजकताका सामना करनेको तैयार हों, तो कोई भी हम पर कोई चीज लाद नहीं सकता ?)

सरदार पटेलने इस बातसे इनकार किया कि कांग्रेस कार्यसमितिने डरके मारे इस योजनाको स्वीकार किया है : डर तो हमने कभी जाना ही नहीं। **परन्तु मुझे एक बातका डर है और वह यह कि हमारा इतने वर्षोंका परिश्रम और कार्य कहीं व्यर्थ न हो जाय या असफल सिद्ध न हो** । हमने स्वाधीनताके लिए

काम किया है और हमें यह देखता चाहिये कि देशका अधिकसे अधिक बड़ा भाग स्वतंत्र और बलवान बने। अन्यथा न तो अखण्ड हिन्दुस्तान होगा और न पाकिस्तान।

सरदार पटेलने आगे कहा: नौ महीने मंत्रीके पद पर काम करनेसे १६ मई, १९४६ की कैबिनेट-मिशनकी योजनाकी कल्पित अच्छाइयोंके बारेमें मेरा भ्रम बिलकुल दूर हो गया है। मैंने यह देख लिया है कि कुछ प्रतिष्ठित कर्मचारियोंको छोड़ कर बाकी सब मुसलमान कर्मचारी ऊपरसे नीचे तक मुस्लिम लीगका काम कर रहे हैं। "इस मामलेमें कोई गलती नहीं होनी चाहिये। आज तो परस्पर निन्दा और आरोपोंका बोलबाला है।" उस योजनाके मातहत सारा भारत एक असह्य स्थितिका शिकार हो जाता। लीगको जो साम्प्रदायिक निषेधाधिकार दिया गया है, वह हर मंजिल पर भारतकी प्रगतिको रोकता । सारा प्रशासन अस्तव्यस्त हो जाता और बहुमतको लाचार होकर खड़े खड़े देखते रहना पड़ता।

सरदार पटेलने आगे कहा: कांग्रेस पाकिस्तानके विरुद्ध है, फिर भी सदनके सामने जो प्रस्ताव है वह विभाजनको स्वीकार करता है। महासमिति इसे पसन्द करे या न करे, अमलमें तो पंजाब और बंगाल दोनोंमें पहलेसे ही पाकिस्तान मौजूद है। ऐसी परिस्थितिमें मैं वास्तविक पाकिस्तानको अधिक पसन्द करूंगा, क्योंकि तब उन लोगोंको जिम्मेदारीका कुछ खयाल रहेगा ।

सरदारके भाषणके अन्तिम भागमें उस मतभेदकी जड़ सामने आ गई, जिसने जीवन-मरणके अवसर पर कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओंको गांधीजीसे अलग कर दिया। सरदारने कहा : स्वतन्त्रता आ रही है। **हमें उद्योगोंका निर्माण करना पड़ेगा। हमें सेनाकी रचना करके उसे कार्यक्षम और शक्तिशाली बनाना होगा**।

९ घंटेकी बहसके अन्तमें कांग्रेसके अध्यक्ष आचार्य कृपलानीने निजी स्पष्टीकरणके साथ अधिवेशनकी कार्रवाई समाप्त की: मैं कुछ उपद्रव-पीड़ित भागोंमें हो आया हूं। एक जगह मैंने एक कुआं देखा, जिसमें औरत बच्चों सहित – कुछ १०७ प्राणी – गिर कर अपनी इज्जत बचाई थी। एक और स्थान पर एक मंदिरमें पुरुषोंने इसी कारणसे अपनी ५० युवतियोंको मार डाला । "एक घरमें मैंने हड्डियोंके ढेर देखे, जहां ३०७ व्यक्ति – जिनमें ज्यादातर स्त्रियां और बच्चे थे – आक्रमणकारी भीड़के द्वारा खदेड़ कर बन्द कर दिये गये और फिर जिन्दा जला दिये गये। निःसन्देह इन राक्षसी घटनाओंने इस प्रश्नके बारेमें मेरे दृष्टिकोणको प्रभावित किया है। कुछ सदस्योंने हम पर आरोप लगाया है कि हमने डरके मारे यह

निर्णय किया है। मैं इस अभियोगकी सचाईको स्वीकार करता हूं, परन्तु उस अर्थमें नहीं जिसमें यह अभियोग लगाया गया है। यह डर प्राणहानिका या विधवाओं और अनाथोंके रुदनका या अनेक घरोंके जल जानेका नहीं है। डर यह है कि अगर हम इसी तरह करते रहे – एक-दूसरेसे बदला लेते रहे और अपमान पर अपमान करते रहे, तो क्रमशः हमारी स्थिति मानव-भक्षियों जैसी और उससे भी बुरी हो जायगी। . . . मेरी दृष्टिमें हिन्दू धर्म सहिष्णुताका, सत्यका और अहिंसाका या कमसे कम वीरोंकी स्वच्छ हिंसाका प्रतीक रहा है। यदि अब उसके ये आदर्श नहीं रहे हों और उसकी रक्षाके लिए लोगोंको मनुष्य-भक्षणसे भी बुरे अपराध करने पड़ें, तो मुझे अपना सिर शर्मसे झुका लेना पड़ेगा। और मैं आपको बताऊं कि मुझे अक्सर यह लगा है और मैंने कहा है कि आजकल अपनेको भारतीय कहनेमें मुझे लज्जा होती है।"

आचार्य कृपलानीने आगे कहा: "मैं पिछले ३० वर्षसे गांधीजीके साथ रहा हूं। उनके प्रति मेरी निष्ठा कभी कम नहीं हुई। यह निष्ठा व्यक्तिगत नहीं, राजनीतिक है। जब मेरा गांधीजीसे मतभेद हुआ है तब भी मैंने उनकी राजनीतिक अंतःप्रेरणाको अपने अत्यन्त तर्कपूर्ण रवैयोंसे अधिक सही माना है। आज भी मुझे लगता है कि वे और उनकी परम निर्भयता सच्ची है और मेरा रवैया दोषपूर्ण है।"

कांग्रेस-अध्यक्षने पूछा : "तब मैं उनके साथ क्यों नहीं हूं ?"

क्योंकि मुझे लगता है कि सामुदायिक आधार पर समस्याको हल करनेका अभी उन्हें कोई उपाय नहीं मिला है। जब उन्होंने हमें अहिंसक असहयोग सिखाया था तब उन्होंने हमें एक निश्चित पद्धति दिखायी थी और उसका हमने कमसे कम यांत्रिक रूपमें अनुसरण किया था। आज वे स्वयं अपना मार्ग खोज रहे हैं। वे नोआखालीमें रहे । उनके प्रयत्नसे स्थितिमें सुधार हुआ। अब वे बिहारमें हैं। वहांकी स्थिति भी सुधरी है। परन्तु इससे पंजाबकी आग नहीं बुझ रही है। वे कहते हैं कि मैं बिहारमें सारे भारतके लिए हिन्दू-मुस्लिम एकताकी समस्या हल कर रहा हूं। संभव है, ऐसा हो। परन्तु यह समझना कठिन है कि उसे हल कैसे किया जा रहा है। अहिंसक असहयोगकी तरह इसके लिए ऐसे निश्चित कदम दिखाई नहीं दे रहे हैं, जो वांछित ध्येय तक हमें पहूंचा सकें। और फिर हमारे दुर्भाग्यसे आज गांधीजी नीतियां तो निर्धारित कर सकते हैं,

परन्तु वे कार्यान्वित मुख्यतः दूसरोंके द्वारा की जाती हैं; और ये लोग उनकी विचारधाराको माननेवाले नहीं बने हैं। इस दुःखद परिस्थितिमें ही मैंने भारतके विभाजनका समर्थन किया है।

कांग्रेस-अध्यक्षेके भाषणका सिंहावलोकन करने पर पता चलता है कि उसमें अहिंसाकी असफलताकी बात नहीं थी, बल्कि यह बात साफ तौर पर स्वीकार कर ली गई थी कि केवल बौद्धिक विश्वास पर आधारित अहिंसा अपर्याप्त है। अपनी नजरके सामने खड़े भीषण दृश्यको बुद्धिकी आंखसे देखकर वे घबरा उठे। गांधीजीने उसी दृश्यको श्रद्धाकी दृष्टिसे देख कर असुरक्षितितामें सुरक्षितता अनुभव की। अन्तमें बहुत देर हो चुकी तब सबको और कांग्रेसके अध्यक्षको भी लगा कि "असुरक्षित" मार्ग ही एकमात्र सुरक्षित मार्ग है और "असुरक्षितता" में ही हमारी सुरक्षितता निहित है। २ वर्ष बाद – अर्थात् १६ अक्तूबर, १९४९ को – न्यूयॉर्ककी एक श्रोता-मंडलीके सामने पंडित नेहरूने स्वीकार किया: अगर हमें हत्याकाण्डोंके रूपमें होनेवाले भयंकर परिणामोंका ज्ञान होता, तो हम भारतके विभाजनका प्रतिकार करते । मौलाना आजादने स्वीकार किया: "उस समय बापूकी बात न मानकर हमने बड़ी भूल की।" डॉ. राजेन्द्रप्रसादने दुःखसे कहा: "काश, हमें यह परिणाम मालूम होता !" जहां तक आचार्य कृपलानीका सम्बन्ध है, बादके वर्षोंमें उन्होंने अपने प्रियतम विशेषण कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओंमें से उन लोगोंके लिए सुरक्षित रख छोड़े थे, जिन पर वे भारतके विभाजनकी सारी जिम्मेदारी रखते थे – उनके विचार उस स्थितिसे बहुत दूर चले गये थे, जो उन्होंने जून १९४७ की कांग्रेस महासमितिके उस गंभीर अधिवेशनमें अपनाई थी।

मत-गणना करने पर कार्यसमितिका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। १५७ मत उसके पक्षमें और १५ उसके विरुद्ध आये।

उसके बाद विभाजनका काम बड़ी तेजीसे आगे बढ़ा। २० जूनको बंगाल विधान-सभाके हिन्दू बहुमतवाले प्रदेशोंके सदस्योंने बंगालके विभाजनका निर्णय किया। इसी प्रकार तीन दिनके बाद पंजाबके बंटवारेका निर्णय कर दिया गया। सिन्ध विधान-सभाने विशेष बैठक करके पाकिस्तानकी संविधान-सभामें शरीक होनेका बहुमतसे निर्णय किया। बलूचिस्तानके शाही जिरगेके सदस्योंने (कलात रियासतके मनोनीत सरदारोंको छोड़ कर) और क्वेटा नगरपालिकाके गैर-सरकारी सदस्योंने २९ जूनको एक विशेष बैठकमें पाकिस्तानमें मिलनेका निर्णय किया। गैर-मुस्लिम सदस्योंने कोई राय

नहीं दी। रह गया उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्त। उसके बारेमें पं. नेहरूको गहरी चिन्ता थी, सरदार पटेलने उसे बट्टे खाते लिख देनेका निर्णय कर लिया था और गांधीजीका यह खयाल था कि अहिंसा और पठानोंके खातिर उसे बचाना चाहिये। उस अभागे प्रान्तकी घटनायें विभाजनकी बड़ीसे बड़ी दुःखद घटनाकी भूमिका तैयार कर रही थीं।

बारहवां अध्याय : 'वर्णसंकर स्थिति'

१

वाइसरॉयके निजी कर्मचारी-मंडलके मुख्य अधिकारी लॉर्ड इस्मेकी दृष्टिमें उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्तकी "वर्णसंकर स्थिति" थी – क्योंकि मुस्लिम बहुमतवाला प्रान्त होते हुए भी वहां कांग्रेसी मंत्रि-मंडल पदारूढ़ था। इस स्थितिको ऐसा नाम क्यों दिया गया, यह समझना कठिन है। खान साहबके मंत्रि-मंडलको केवल शुद्ध बहुमत ही प्राप्त नहीं था, बल्कि सीमाप्रान्तकी विधान-सभाके मुस्लिम सदस्योंके बहुमतका समर्थन भी प्राप्त था। शायद इसका एकमात्र स्पष्टीकरण यह था कि अंग्रेजोंके अनुदार मानसको भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसको हिन्दू संस्था माननेकी आदत पड़ गई थी। वह मानता था कि हिन्दू और मुसलमान दो अलग अलग "राष्ट्र" हैं और अंग्रेज ईश्वर-नियुक्त पंच होनेके कारण दोनोंके बीच न्यायतुलाको संतुलित रखते हैं ! इसी धारणाको चुनौती देनेके लिए "भारत छोड़ो" आन्दोलन छेड़ा गया था; और यद्यपि सिद्धान्तके रूपमें ब्रिटेनकी मजदूर-सरकारने २० फरवरी, १९४७ की अपनी घोषणाके द्वारा उस धारणाका त्याग कर दिया था, फिर भी यथार्थमें और व्यवहारमें पुरानी विचारप्रणाली नई व्यवस्थामें भी बनी रही और पुराना मित्र नये चेहरेमें फिर सामने आ गया।

इसका मतलब यह नहीं कि सीमाप्रान्तमें अटपटी स्थिति नहीं थी, लेकिन उसके अटपटेपनमें एक फर्क था। यह अटपटापन बिलकुल अंग्रेजोंका ही पैदा किया हुआ था। सीमाप्रान्तमें द्विविध शासन-प्रणाली प्रचलित थी। गवर्नर प्रान्तीय सरकारका वैधानिक अध्यक्ष था, परन्तु कबायली इलाकोंके सम्बन्धमें वह सम्राट्के प्रतिनिधिके एजेन्टका कार्य करता था। पहली हैसियतमें उसे लोकप्रिय मंत्रियोंकी सलाह पर चलना पड़ता था, लेकिन सम्राट्के प्रतिनिधिके एजेन्टके रूपमें वह अपने मंत्रियोंके अधिकार-क्षेत्रसे बाहर था और वाइसरॉयके साथ उसके सीधे सम्बन्ध थे। इसके अलावा, "जिलों और कबायली इलाकोंकी अविभाज्यता" के सिद्धान्तके अनुसार बड़े अधिकारी जिला-मजिस्ट्रेटोंकी हैसियतसे तो मंत्रि-मंडलके अधीन माने जाते थे, जब कि वही अधिकारी कबायली इलाकोंके प्रशासकोंकी हैसियतसे सीधे पोलिटिकल विभागके समक्ष उत्तरदायी थे। व्यवहारमें वे मंत्रियोंकी परवाह किये बिना काम करते थे और कभी कभी मंत्रियोंकी जान्कारीके बिना भी कार्रवाई कर लेते थे और विधान-सभाकी स्वीकृतिकी भी परवाह नहीं करते थे।

उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्त और उसके साथ जुड़े हुए कबायली इलाके परम्परासे "किसीका भी स्वामित्व न हो ऐसी भूमि" माने जाते थे, जिसका साम्राज्यकी सेनाको हमेशा सज्ज रखनेके लिए प्रशिक्षण-भूमिके रूपमें उपयोग किया जा सके । नौजवान महत्त्वाकांक्षी सैनिक अधिकारियोंके लिए वह "चांदमारीकी सुरक्षित जगह" थी, जहां अन्तर्राष्ट्रीय रीति-रिवाजके बंधनोंसे मुक्त होकर वे सैनिक अनुभव प्राप्त करनेके लिए छोटी छोटी लड़ाइयां लड़ सकते थे। पोलिटिकल विभाग उसे अपना ऐसा पवित्र स्थान समझता था, जहां अंग्रेज कर्मचारियोंको साम्राज्यवादी कूटनीतिकी दीक्षा दी जा सकती थी। इसलिए सीमाप्रान्तके ब्रिटिश तत्त्वोंकी और खास तौर पर पोलिटिकल विभाग तथा सेनाको कांग्रेसका सत्तारूढ़ होना कभी अच्छा नहीं लगा। वे कबायलियोंका कांग्रेसी मंत्रि-मंडलके विरुद्ध "अप्रकट लीवर" के रूपमें उपयोग करते थे। कबायली प्रदेश और नियमित रूपमें प्रशासित भूभागका भेदभाव मनमाना था और दोनोंको अलग रखनेवाली रेखा अक्सर बहुत सूक्ष्म होती थी । कभी कभी तो एक सूखे नालेकी ही सीमा होती थी। एक परिवारके आधे लोग एकके अधिकार-क्षेत्रमें होते थे और आधे लोग दूसरेके। इससे प्रशासन-कार्य, खास तौर पर कानून और व्यवस्थाको बनाये रखना, बहुत कठिन हो जाता था। सीमाप्रान्तके कबायली लोगोंके धावोंके संपूर्ण इतिहाससे और अक्तूबर १९४६ में जब पं. नेहरू अन्तरिम सरकारके उपाध्यक्षकी हैसियतसे सीमाप्रान्त गये उस समयकी घटनासे (देखिये खण्ड-१, पृ. ३५०) इस बातका प्रमाण मिलता है कि फौजी अधिकारियोंका गुट और पोलिटिकल विभाग सीमाप्रान्तमें किस हद तक जा सकते थे। [सीमा पारके आक्रमणोंका तथा कबायली इलाकेमें फौजी सड़कें घुसा देनेके साथ उनके सम्बन्धका इतिहास जाननेके लिए तथा यह जाननेके लिए कि साम्राज्यवादी सत्ताधारी उस विनाशकारी सैनिक व्ययका – जिसे भारतीय बजट बरदाश्त नहीं कर सकता था – औचित्य सिद्ध करनेको इन सड़कोंका कैसा उपयोग करते थे, देखिए लेखककी पुस्तक 'ए पिल्ग्रिमेज फॉर पीस', अहमदाबाद, १९५०, पृ. २४-२७]

मंत्रि-मंडल और पोलिटिकल विभाग – जिसका प्रतिनिधित्व गवर्नर और सेना करती थी – के सम्बन्ध बिगड़नेका परिणाम प्रान्तकी कानून और व्यवस्थाकी बिगड़ी हुई स्थितिमें देखा जा सकता था। अंग्रेज अधिकारियों पर भरोसा नहीं किया जा सकता था कि वे मंत्रि-मंडलके आदेशोंका पालन करेंगे। कर्मचारियोंकी नैतिकता भंग हो गयी थी। ऊपरसे नीचे तक शिथिलता और अनुशासनहीनता आ गई

थी। नतीजा यह हुआ कि जब मुस्लिम लीग द्वारा भड़काई हुई अराजकताकी बाढ़ने प्रान्तको आ दबाया तब खान साहबके मंत्रि-मंडलकी स्थिति बहुत विषम हो गई।

सर ओलेफ कैरो उस समय सीमाप्रान्तके पुराणपंथी गवर्नर थे। उन्होंने अपने इस निश्चयको गुप्त नहीं रखा था कि वे सीमाप्रान्तकी "वर्णसंकर स्थिति" का अन्त करके ही चैन लेंगे। उन्होंने, जैसा बादशाह खानने बादमें प्रकट किया, मार्च १९४७ के तीसरे सप्ताहमें ही अपने मंत्रियोंको बुला कर यह उपदेश दे डाला था: आपके और कांग्रेसी भारतके बीच कोई समान बात नहीं है। आपको लीगके साथ मिश्र सरकार बनानी चाहिये। उस स्थितिमें आपको मेरा पूरा समर्थन प्राप्त होगा। अन्तमें उन्होंने मंत्रियोंको यह चुनौती दी: "मिश्र सरकार या आम चुनाव"। परन्तु मंत्री जीवटवाले थे। वे नहीं दबे।

जब मार्च १९४७ के अन्तिम सप्ताहमें नये वाइसरॉय माउन्टबेटन भारत पहूंचे तब ब्रिटिश साम्राज्यवादियोंके सबसे प्रिय प्रान्तकी यह हालत थी। मुस्लिम लीगके "सविनय अवज्ञा-भंग" आन्दोलनको – जो हत्या, लूट, आगजनी और बलात्कारके लिए कोमल शब्दप्रयोग था – लीगकी खान साहबके मंत्रि-मंडलको बरखास्त करनेकी या इसके विकल्पके रूपमें सीमाप्रान्तमें नये चुनाव करानेकी मांगके लिए उचित बताकर गवर्नरने वाइसरॉयको यह मांग स्वीकार करनेके लिए समझानेकी कोशिश की।

अप्रैलके अन्तिम सप्ताहमें वाइसरॉय सीमाप्रान्त गये। अपनी पहली योजनाका मसौदा उनकी जेबमें नहीं था, परन्तु दिमागमें जरूर था। उसकी पहली शर्त यह थी कि सीमाप्रान्तमें नये चुनाव कराये जायं और उसीके लिए भूमिका तैयार करनेको यह यात्रा मुख्यतः आयोजित की गई थी। जिस दिन वाइसरॉय पेशावर पहूंचे उसी दिन डॉ. खानसाहब और चार मंत्रियोंके बने उनके मंत्रि-मंडलसे वाइसरॉयने मुलाकात की। उस सभामें गवर्नर और उनके मुख्यमंत्रीके बीच आमने-सामने बैठ कर चोंचें हुईं। निजी रूपसे माउन्टबेटनने डॉ. खान साहबसे कह दिया कि उनकी रायमें प्रान्तमें नया चुनाव होना जरूरी है। उन्होंने यह भी बताया कि जिन्नाने ऐसा वचन दिया है कि नया चुनाव होगा तो लीगकी "सीधी कार्रवाई" बन्द कर दी जायगी और किसी प्रकारकी हिंसा नहीं होगी। उन्होंने डॉ. खान साहबको विश्वास दिलाया कि मैंने लीगको इस बारेमें कोई वचन नहीं दिया है और मैं सचमुच उससे कह दूंगा कि हिंसासे दब कर कोई मांग पूरी नहीं की जायगी। आपको मेरी ईमानदारी पर भरोसा रखना चाहिये।

लॉर्ड माउन्टबेटनने दिल्लीमें जिन्नाको जो वचन दिया था उसके अनुसार उसी दिन वे लीगी नेताओंसे मिले, जिन्हें इसी हेतुसे जेलसे छोड़ा गया था। वे लीगकी "सीधी कार्रवाई" के सिलसिलेमें कैद किये गये थे। परिणाम-स्वरूप उन्हें जिन्नासे सलाह-मशविरा करनेके लिए पैरोल पर दिल्ली जानेकी भी इजाजत दी गई।

दूसरे दिन लौटते समय रावलपिंडी (पंजाब) के पास लॉर्ड माउन्टबेटनने अपनी आंखोंसे मुस्लिम लीग द्वारा की गई साम्प्रदायिक हिंसाके भयंकर परिणाम देखे। उनके प्रेस-अधिकारीके शब्दोंमें वहांके हिन्दु और सिक्ख मुहल्लोंके घरोंका विनाश "उतना ही सम्पूर्ण था जितना युद्धमें बमके हमलोंसे होता है।" उस क्षेत्रके मुसलमान "बहुत ही खुश मालूम होते थे।" [एलन केम्पबैल-जॉन्सन, 'मिशन विथ माउन्टबेटन', लंदन, १९५१, पृ. ७९]

कोई आश्चर्य नहीं कि लीगको अराजकताकी अपनी यह मुहिम बन्द करनेकी कोई चिन्ता नहीं थी, क्योंकि इससे उसकी राजनीतिक मांगको हानि पहुंचनेके बजाय उसे एकके बाद दूसरी असाधारण रियायत मिलती जाती थी। सीमाप्रान्तमें "सीधी कार्रवाई" की मुहिम कभी बन्द नहीं की गई। ७ मईको जिन्नाने एक वक्तव्य निकाला। उसमें उन्होंने कहा कि मैं सीमा-प्रान्तकी मुस्लिम लीगके इस निर्णयका "समर्थन करता हूं" कि इस मुहिमको बन्द नहीं किया जायगा।

सीमाप्रान्त विसंगत बातोंकी भूमि है। उस प्रान्तकी दोहरी शासन-प्रणालीमें प्रशासनके लिए यह कोई असामान्य बात नहीं थी कि दाहिने हाथसे किये गये कामकी जानकारी बायें हाथको न हो। माउन्टबेटनके आगमनका लाभ उठा कर मुस्लिम लीगने एक प्रदर्शन किया। जब वाइसरॉय और उनकी मंडलीके लोग राज-भवनमें बैठे हुए थे, तब कुछ अत्यन्त घबराये हुए पुलिस-अधिकारी गवर्नरके पास आये और माउन्टबेटनकी उपस्थितिमें उनसे कहने लगे कि हरे कुर्तेवालों (मुस्लिम लीगके स्वयंसेवकों) की एक अदम्य भीड़ वाइसरॉयसे मिलने पर तुली हुई है और राज-भवनकी तरफ बढ़ रही है। इसके बाद वाइसरॉय और गवर्नरमें जल्दी जल्दी परामर्श हुआ। उन लोगोंको आगे बढ़नेसे रोकनेके लिए सैनिकोंको बुलाया जाय अथवा उन्हें राज-भवनके कंपाउन्डमें प्रवेश करने दिया जाय ? माउन्टबेटनके सामने एक अत्यन्त कठिन स्थिति खड़ी हो गई। परन्तु यह चेतावनी मिलने पर भी कि उन पर गोली चल सकती है,

वे पत्नीके साथ बाहर निकल कर भीड़के पास चले गये। भीड़ने इस वीर दम्पतीका तालियाँ बजा कर स्वागत किया।

इस प्रकार एक संकट तो टल गया, परन्तु मंत्रि-मंडलको इससे बहुत बुरा लगा। उसे यह विश्वास हो गया कि गवर्नरकी गुप्त अनुमति हो या न हो, परन्तु पोलिटिकल विभागने यह तूफान योजनापूर्वक खड़ा किया था और उसका उद्देश्य वाइसरॉयके मन पर यह छाप डालनेका था कि उनकी पिट्ठू मुस्लिम लीगको प्रान्तमें कितना अधिक समर्थन प्राप्त है। इस घटनासे दिखाई तो ऐसा ही दिया और पोलिटिकल विभागके पिछले इतिहासको देखते हुए ऐसी संभावनासे इनकार नहीं किया जा सकता था।

सर ओलेफने एक और अजीब बात की। उन्होंने माउन्टबेटनके आगमनके समय हुई मंत्रि मंडलकी एक बैठककी कार्रवाईकी रिपोर्ट वाइसरॉयको तोड़-मरोड़ कर भेजी और अपने ही मुख्यमंत्रीकी लिखी हुई सही रिपोर्टको दिल्ली भेजनेसे इनकार कर दिया। अन्तमें उसे गवर्नरको बताये बिना ही दिल्ली भेजना पड़ा।

सर ओलेफ सब प्रान्तोंमें नही, केवल सीमाप्रान्तके लिए ही नया चुनाव क्यों चाहते थे ? सीमाप्रान्तमें एक वर्ष पहले ही चुनाव लड़ा जा चुका था। यद्यपि वह पाकिस्तानके प्रश्न पर लड़ा गया था, फिर भी ५० में से ३२ सीटें कांग्रेसने जीती थीं। इनमें ३८ में से २१ सीटें मुस्लिम थीं। बेशक, सारी हिन्दू सीटें-९ और ३ में से २ सिक्ख सीटें कांग्रेसको ही मिलीं ।

गवर्नरकी दलील यह थी कि "प्रान्त भरमें होनेवाले हिंसक प्रदर्शन" मंत्रि-मंडलमें विश्वासका अभाव प्रकट करते हैं। बादशाह खानकी ओरसे इसका प्रभावशाली उत्तर दिया गया। विश्वयुद्धके छह वर्षोंमें, जब अंग्रेजोंके अस्तित्वके लिए खतरा खड़ा हो गया था, सीमाप्रान्तमें कोई उपद्रव नहीं हुआ। उस समय अंग्रेजोंको शान्तिकी जरूरत थी इसलिए यहां शान्ति रही और अब उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्तमें ब्रिटिश सत्ताके देखते देखते सैकड़ों लोग कत्ल किये जा रहे हैं और हजारों लोग अनाथ और बेघर बनाये जा रहे हैं। सख्त कार्रवाई करनेके बजाय – जिसके लिए मंत्रियोंने मांग की थी – आजकी अराजकताको मंत्रियोंको पदसे हटानेका बहाना बनाया जा रहा है, यद्यपि वे मतदाताओंके भारी बहुमतसे सत्तारूढ़ हुए हैं और विधान-सभामें अब भी उनका बहुमत है !

पं. नेहरूने कांग्रेसके महामंत्री आचार्य जुगलकिशोर और दीवान चमनलालको सीमाप्रान्त भेजा था। उन्होंने दिल्लीसे ४ मई, १९४७ को निकाले गये अपने एक वक्तव्यमें यह रिपोर्ट दी :

हम सीमाप्रान्तका दौरा करके हाल ही में लौटे हैं। जो कुछ हमने देखा . . . उससे हमें अपार दुःख हुआ। . . . इसमें कोई सन्देह नहीं कि मुस्लिम लीगके अनुयायियोंने ये अत्याचारपूर्ण उपाय मंत्रि-मंडलके शासनको असंभव बनानेके मुख्य उद्देश्यसे ही काममें लिये हैं। हमें इसमें भी कोई शंका नहीं कि जिसे हम गवर्नरका दल कह सकते हैं, उसने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपमें कानून भंग करनेवालोंको प्रोत्साहन दिया है। . . . यह एक खुला रहस्य है कि वर्तमान गवर्नर मंत्रि-मंडलके पक्षमें नहीं हैं। उनकी स्थितिका व्यक्ति, जो पोलिटिकल विभागका अध्यक्ष भी है, मंत्रि-मंडलके कार्यमें गम्भीर बाधा डाल सकता है, क्योंकि बहुतसे प्रशासन-अधिकारियोंको दोहरा काम करना पड़ता है। वे जानपद प्रशासक भी हैं और पोलिटिकल एजेन्ट भी है। . . .

डेरा इस्माइल खांकी घटनाएं हमारे लिए आंखें खोलनेवाली थीं। लीगका आन्दोलन एक तरहसे टायं-टायं फिस्स हो गया था; यहां तक कि गिरफ्तारीके लिए आगे आनेवाले चारसे अधिक लोगोंका मिलना कठिन हो गया था। . . . यह स्पष्ट हो गया था कि आंदोलनकी कमर तोड़ दी गई थी और सर्वत्र शान्ति हो गई थी। ऐसी स्थितिमें गुप्त सभाएं की गईं और पंजाब तथा दूसरे क्षेत्रोंसे लोग बुलाये गये। . . . आनेवाली विपत्तिकी निश्चित जानकारी अधिकारियों तक पहूंचाई गई। . . . गुंडोंके नेताओंकी गिरफ्तारीके लिए जानपद प्रशासनके मुखियाने बार बार आदेश जारी किये और पुलिस-अधिकारियोंने इन आदेशोंकी बार बार अवज्ञा की। मंत्रि-मंडलके आदेशसे जारी की गई सर्वोच्च पुलिस-अधिकारीकी आज्ञाओं पर भी कोई ध्यान नहीं दिया गया। इन आज्ञाओंकी अवहेलनाका परिणाम यह हुआ कि आन्दोलनकारियोंने निर्भय होकर हिंसाका आश्रय लिया। . . . पुलिसके पास काफी टुकड़ियां थीं। परन्तु एक भी टुकड़ी कार्रवाईके लिए नहीं लाई गई, अश्रुगैसका एक भी बम नहीं फेंका गया, एक बार भी लाठीचार्ज नहीं किया गया और हवामें एक भी गोली नहीं चलाई गई। इसका अनिवार्य परिणाम यह हुआ कि बाजारके बाजार जला दिये गये और लूट लिये गये। . . .

प्रान्तके गवर्नरको पूरी तरह मालूम था कि उपद्रवियोंके नेताओंकी गिरफ्तारीके आदेश दिये गये हैं, फिर भी जब वे पहूंचे तो उन्होंने उनके एक सबसे प्रमुख नेताको अपने साथ चलनेके लिए कहा और उसके साथ खुला भाईचारा दिखलाया। बिलकुल स्वाभाविक बात थी कि जिन अधिकारियोंने दिये गये आदेशोंका भंग किया उन्होंने ऐसा पूरी तरह यह जानते हुए किया था कि न तो उनसे कोई पूछताछ की जायेगी और न उनसे जवाब तलब किया जायगा।

आचार्य जुगलकिशोर और दीवान चमनलालका निर्णय यह था: "सर ओलेफ कैरोके स्थान पर एक ऐसा गवर्नर नियुक्त किया जाय, जो अल्प-संख्यकोंकी रक्षाकी गारन्टी देनेको तैयार हो और जिसकी वर्तमान मंत्रि-मंडलके साथ पूरी सहानुभूति और एकरागता हो। . . . बरखास्त मंत्रि-मंडल नहीं किया जाना चाहिये, बल्कि गवर्नर और वे अधिकारी किये जाने चाहिये, जो समर्थनके लिए गवर्नरकी ओर देखते हैं और कानून और व्यवस्थाको टिकाये रखनेमें असफल रहे हैं।

खान साहबके मंत्रि-मंडलको पदच्युत करने अथवा सीमाप्रान्तमें नये चुनाव करानेके गवर्नरके प्रस्तावकी कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओं पर बड़ी तीव्र प्रतिक्रिया हुई। उन्होंने चुनौती दे दी कि यदि सीमाप्रान्तके मंत्रि-मंडलके बारेमें कोई अनुचित हस्तक्षेप किया गया, तो ब्रिटिश सरकारकी योजनाके प्रति कांग्रेसका सारा रवैया ही बदल सकता है। इस पर माउन्टबेटनने मुस्लिम लीगसे स्पष्ट कह दिया कि जब तक कांग्रेस भी स्वीकार नहीं करेगी तब तक वे न तो मंत्रि-मंडलको बरखास्त करनेकी बातको और न नया चुनाव करानेकी बातको स्वीकार कर सकते हैं। इसलिए उस प्रस्तावको तिलांजलि दे दी गई। लीगने निराश होकर अराजकताकी अपनी मुहिम तेज कर दी।

बादशाह खानको इन घटनाओंमें लीगियों और "उनके जानेवाले स्वामियों – अंग्रेजों" के द्वारा रचे गये "एक बड़े षड्यंत्र" की गंध आई। उन्होंने चेतावनी दी : "हमने अपने देशको आग लगा दी है। यह ऐसी आग है जिससे हम खुद भी नहीं बच सकते। इन बातोंसे न तो इस्लामको मदद मिल सकती है, न मुस्लिम लीगको और न पाकिस्तानको । मुस्लिम लीगके साम्प्रदायिक आन्दोलनको राजनीतिक दर्जा देना बेईमानी है – वह लीग जिसके अनुयायी अपराध कर रहे हैं।" [चरसद्दामें बादशाह खानका भाषण, २८ अप्रैल, १९४७; 'लीडर', अलाहाबाद, ३० अप्रैल, १९४७] मैं मुस्लिम लीगवालोंसे अपील करता हूं कि वे "खुदाई खिदमतगारोंके साथ एक सम्मिलित जिरगे (कबाइली कौंसिल)" में बैठ कर उन महत्त्वपूर्ण

प्रश्नोंको निबटायें, जो अंग्रेजोंके भारतसे चले जानेके बाद खड़े हो सकते हैं। "अब चूंकि अंग्रेज जा रहे हैं, इसलिए लीगियोंको हमारे साथ 'जिरगे' में बैठना चाहिये। हम आज ही अपने मतभेदोंको मिटा सकते हैं, यदि वे भाइयोंकी तरह हमसे मिलें और हिंसक उपायोंको छोड़ दें। अगर कोई सच्चा प्रयत्न किया जाय, तो मैं आपसके किसी भी सम्मानपूर्ण समझौतेको मान लूंगा । लीगियोंको हिन्दुओंके प्रभुत्वका डर है और हमें अंग्रेजोंके प्रभुत्वका । हम आपसमें मिलें और एक-दूसरेको अपनी बातका विश्वास करायें। हम उनके डर मिटानेको तैयार हैं। परन्तु क्या वे भी हमारे डर मिटायेंगे ?"

इस अपीलका कोई असर नहीं हुआ । लीगकी कांग्रेसके साथ या खुदाई खिदमतगारोंके साथ अंग्रेजोंके बिना बैठनेकी और कोई सम्मानपूर्ण समझौता करनेकी बिलकुल इच्छा नहीं थी, क्योंकि वह अंग्रेजोंके जरिये अधिक लाभ प्राप्त कर सकती थी; और अंग्रेजोंका यह हाल था कि एक तरफ तो वे लीगकी लल्लो-चप्पो करते थे और दूसरी तरफ उसके द्वारा किये जानेवाले अविचारपूर्ण हत्याकांडों पर नाराज होनेका ढोंग करते थे।

२

जून १९४७ में कैबिनेट-मिशनकी योजना असफल सिद्ध हुई और कांग्रेस तथा लीग दोनोंने विभाजनको मान लिया। नई योजनामें एक धारा ऐसी थी जिसमें लीगकी यह मांग स्वीकार कर ली गई थी कि सीमाप्रान्तमें जनमत लेकर यह फैसला करा दिया जाय कि बदली हुई परिस्थितियोंमें वह किस उपनिवेशमें रहेगा – यदि पश्चिमी पंजाब पाकिस्तानमें जाना चाहे तो सीमाप्रान्त भारतमें रहेगा या पाकिस्तानके नये उपनिवेशमें रहेगा ? सीमाप्रान्तके नेताओंका, विशेष कर खान बन्धुओंका, ऐसा खयाल था कि यह सब करना समयसे बहुत पहले कहा जायगा। इस प्रश्नका ठीक निर्णय तब तक नहीं हो सकता जब तक कि भारतके दोनों भाग अपने अपने संविधान तैयार न कर लें और अंग्रेजोंके साथ अपने भावी संबंधके अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर उनका निर्णय मालूम न हो जाय। अंग्रेजोंकी मध्यपूर्वे-सम्बन्धी साम्राज्यवादी कूटनीतिके पिछले अनुभवने हमें सिखा दिया है कि अंग्रेजोंसे सम्बन्ध रखनेके बारेमें अत्यन्त सावधान रहना चाहिये। [इस नीतिके संपूर्ण विवरणके लिए पाठक देखें लेखककी पुस्तक 'ए पिल्ग्रिमेज फॉर पीस', अहमदाबाद, १९५०, पृ. १८-२७] ३ जूनकी विभाजन-योजनाके प्रकाशित होनेके बाद तुरन्त ही बादशाह खानने एक वक्तव्यमें कहा :

यह मुस्लिम लीगकी जीत हो सकती है। इस्लामकी जीत बिलकुल नहीं । इससे दो भारत हो जायंगे। प्रत्येकको उस समय तक उपनिवेशका दर्जा मिल जायगा जब तक कि दोनोंकी संविधान-सभाएं अपने निर्णय न दे दें। पठान एक दिनके लिए भी औपनिवेशिक दर्जा नहीं चाहते । वे स्वयं अपना संविधान बनाना पसन्द करेंगे और . . . भारतके उस हिस्सेके साथ दोस्ती कर लेंगे, जो उनकी पूर्ण स्वाधीनताके पक्षमें होगा। . . . पठान सारी दुनियाके दोस्त होंगे और दुश्मन किसीके भी नहीं होंगे।

इसके सिवा:

मेरी रायमें जनमत लेनेका प्रश्न ही पैदा नहीं होता। परन्तु मैं किसी भी दिन उसका स्वागत करूंगा, यदि वह डराये-धमकाये बिना और बाहरी प्रभावके बिना लिया जाय। सारा भारत जानता है कि सीमाप्रान्तको हालमें कितनी भयंकर व्ययासे गुजरना पड़ा है और शायद आगे भी गुजरना पड़े। . . . इसलिए मेरी सलाह यह होगी कि सीमाप्रान्तको उस वक्त तक न छेड़ा जाय, जब तक कि राजनीतिक वातावरण साफ न हो जाय। उसे अपनी पसन्द जाहिर करनेकी बात तब कही जाय जब दोनों भाग अन्तिम स्वाधीनताके या ब्रिटिश राष्ट्र-मंडलकी सदस्यताके सवालका फैसला कर लें।

सीमाप्रान्तके नेताओंको यह भी लगता था कि जिस प्रश्न पर जनमतके द्वारा लोगोंका अंतिम निर्णय चाहा गया है वह प्रश्न गलत है। उससे तो पठानोंके विचारोंमें गड़बड़ी पैदा होगी और मुस्लिम लीगको साम्प्रदायिक भावनायें भड़कानेके लिए उसका दुरुपयोग करनेका मौका मिलेगा; उससे पठानोंमें फूट पड़ जायगी और उसका अनिवार्य परिणाम होगा गृहयुद्ध और भाई-भाईका रक्तपात, जिससे वे सब किसी भी कीमत पर बचना चाहते हैं। इसके विपरीत, यदि जनमत पठानोंके स्वायत्त शासनके प्रश्न पर लिया जाय, तो सब पठानोंका एक ही नारा होगा; क्योंकि स्वतन्त्रताका प्रेम सबमें समान रूपसे है। इसलिए नेताओंने मांग की कि सीमाप्रान्तको पाकिस्तान और पठानिस्तानके बीच चुनाव करनेकी आजादी होनी चाहिये। पठानिस्तान पश्तो बोलनेवाले लोगोंका एक ऐसा स्वायत्त स्वयंपूर्ण घटक होगा, जिसका संविधान वे खुद ही बनायेंगे। जब भारत और पाकिस्तानके अपने अपने

संविधानोंका पूरा चित्र उसके सामने होगा तब यह पठानिस्तान इसका निश्चय करेगा कि वह किस भागमें शरीक हो।

गांधीजी खान बन्धुओंसे पूरी तरह सहमत थे। प्रस्तावित जनमतका विषय होगा – पाकिस्तान बनाम हिन्दुस्तान। जो घटनाएं हो रही हैं, उनके सन्दर्भमें धर्मान्ध लोग उसका गलत अर्थ लगायेंगे। पठानोंसे पूछा जायगा – तुम हिन्दुओंके साथ रहोगे या मुसलमानोंके ? कांग्रेस हिन्दू संस्था नहीं है। परन्तु आजकी अव्यवस्थामें, जो दिनोंदिन अधिक बढ़ रही है, पठानका मानस इस भेदको पकड़ नहीं पायेगा। इसलिए मेरा प्रस्ताव है कि कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों फिलहाल पठानोंको न छेड़ें। कांग्रेसने तो पठानोंके बारेमें अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी है। मुस्लिम लीगसे भी इस बारेमें स्पष्टीकरण करा लेना चाहिये। "पठानोंकी भावनाका दोनों आदर करें और आंतरिक मामलों तथा प्रशासनके लिए पठानोंको अपना ही संविधान बनाने दें। इससे पठानोंकी एकता बढ़ेगी और वे आंतरिक संघर्षसे बचेंगे, जिससे पाकिस्तान या भारतीय संघके साथ वे एकमनसे अधिक अच्छी तरह मिल सकेंगे। और यह बात तो होनी ही चाहिये, चाहे कोई जनमत लिया जाय या न लिया जाय। समयसे पहले जनमत लेनेका अर्थ खतरा मोल लेना होगा।" [प्रार्थना-प्रवचन, २० जून, १९४७]

पठान बडा ही स्वाभिमानी और भावुक होता है। उसमें मैदानके लोगोंके प्रभुत्वके विरुद्ध एक पहाड़ीकी प्रबल विरोध-भावना होती है। मौजूदा मामलेमें पिछले इतिहासने इस भावनाको और ज्यादा बढ़ा दिया था। अगर पठानोंकी स्वायत्तता स्वीकार न की जाती, तो पाकिस्तानमें उनके मिलनेका अर्थ होता पठानों पर पंजाबी मुस्लिम पूंजीवादी हितोंका प्रभुत्व। पाकिस्तानकी स्थापनाके बाद बादशाह खानने कहा: "हमारे प्रान्तमें पंजाबी हावी हो गये हैं और वे पठानोंको आपसमें लड़ानेकी जी-जानसे कोशिश कर रहे हैं। चूंकि साम्प्रदायिक विभाजनके कारण पंजाबका खासा हिस्सा हाथसे चला गया है, इसलिए पंजाबी नवाब और बड़े बड़े पूंजीपति अब अपनी क्षतिपूर्तिके लिए हमारे प्रान्तके पीछे पड़े हैं।"

पंजाबी मुसलमानोंके प्रभुत्व और शोषणका यह डर सीमाप्रान्त तक ही सीमित नहीं था। पाकिस्तानकी स्थापनाके बाद पाकिस्तानके विविध घटकोंमें उसका बोलबाला हो गया और पूर्व बंगालमें सबसे अधिक हुआ। संख्याके हिसाबसे पाकिस्तानकी पूर्वी पांखकी पश्चिमी पांख पर प्रधानता थी। इस प्रधानताको बननेवाले संविधानमें प्रभावहीन कर देनेकी बात पाकिस्तानी संविधानके वैधानिक

पंडितोंके लिए मुख्य चिन्ता और सिरदर्द बन गई। इससे सिन्धकी प्रान्तीय सरकारकी वफादारी पर बहुत जोर पड़ा और काश्मीरने तो मजबूर होकर भारतके साथ संबद्ध होनेमें ही अपनी सुरक्षितता मानी।

परन्तु ३ जूनवाली योजनाके अनुसार जनमत लेनेकी शर्तोंमें लीगकी सहमतिके बिना कोई परिवर्तन नहीं कराया जा सकता था और उस समयकी स्थितिमें कांग्रेस उसे कोई बहसका विषय बनानेको तैयार नहीं थी। बादशाह खानकी यह प्रबल भावना थी कि ऐसी परिस्थितिमें जनमतकी कार्रवाईसें भाग लेना व्यर्थ भी है और खतरनाक भी । फिर भी अपने कांग्रेसी साथियोंके लिहाजमें आकर उन्होंने यह प्रश्न 'जिरगे' के सामने रखना स्वीकार कर लिया ।

राजनीतिक क्षेत्रमें सफलता प्राप्त करनेका एक ही मार्ग होता है – अर्थात् जीतनेके लिए लड़ाई की जाय। सफल लड़ाईका विकल्प है लादी हुई शान्ति । कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओंकी यह राय थी कि पठानोंके लिए पठान-स्वायत्तताकी रक्षा करनेका एकमात्र उपाय यह है कि वे अपनी पूरी शक्ति लगाकर जनमतकी लड़ाई लड़ें और उसमें विजय प्राप्त करें। उनके पास गांधीजीका "चौथे परिमाणवाला" सत्याग्रहका उपाय तो है नहीं, जिसमें मनुष्य जीतनेके लिए झुकता है और हारके द्वारा भी जीतता है। राजनीतिक भाषामें भारतके एक अंगके रूपमें सीमाप्रान्तको पकड़े रखनेकी लड़ाईमें हार हुई। परन्तु गांधीजीका लक्ष्य यह कभी नहीं रहा कि सीमाप्रान्तको भारतके लिए पकड़ कर रखा जाय, बल्कि सह था कि खुद पठानोंके लिए और अहिंसाके आदर्शके लिए उसकी रक्षा की जाय। यही उनके और खान बन्धुओंके बीच मिलानेवाली कड़ी थी। पठानोंकी बहादुरीमें कोई शंका नहीं हो सकती थी। खुदाई खिदमतगारोंने "कायरोंके उपाय" के रूपमें अहिंसाको नहीं अपनाया था। सीमाप्रान्त बहादुरोंकी अहिंसाका उदाहरण उपस्थित करके भारत और पाकिस्तानके लिए लाभदायक सिद्ध हो सकता था और किसी दिन दोनोंके बीच एक बहुमूल्य पुलका काम भी दे सकता था। भारतसे निकलकर पाकिस्तानमें मिलनेका सीमाप्रान्तका मार्ग यथासंभव सरल, शान्तिपूर्ण और द्वेष-रहित बने, इसीमें गांधीजीने अपनी सारी शक्ति लगा दी। इसके लिए उन्होंने व्यक्तिगत रूपमें लॉर्ड माउन्टबेटनके प्रभावका उपयोग करनेका प्रयत्न किया। ६ जून, १९४७ को उनसे मिलकर गांधीजीने सुझाया कि आप जिन्नासे इस आशयकी बात करें :

अब चूंकि आपको पाकिस्तान मिल गया, क्या यह बुद्धिमानीकी बात नहीं होगी कि आप सीमाप्रान्त जायं और प्रान्तके लोगोंसे बात करें, फिर वे किसी भी दलके हों। उनमें वर्तमान मंत्रि-मंडलके सदस्य और उनके अनुयायी भी सम्मिलित हैं। आप उन्हे समझा सकते हैं कि पाकिस्तान, जो अब तक एक अस्पष्ट वस्तु रहा है, वास्तवमें क्या है और अपना पक्ष आकर्षक ढंगसे इस आशाके साथ प्रस्तुत कर सकते हैं कि आप उन्हें पाकिस्तानका एक प्रान्त बननेके लिए राजी कर लेंगे, **जिसमें उन्हें अपना प्रान्तीय संविधान स्वयं बना लेनेकी पुरी स्वतंत्रता होगी** । (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

अगर आप उन्हें समझा लेते हैं तो प्रस्तावित जनमत और उसके साथ जुड़ी हुई सब बातें टल जायंगी। अगर आप इस सुझावको माननेके लिए तैयार हों, तो मैं आपको ऐसा निश्चित आश्वासन दे सकता हूं कि खान बन्धु और उनके अनुयायी आपसे मित्रोंकी तरह मिलेंगे और आपकी बात ध्यानसे सुनेंगे।

परन्तु कांग्रेसी नेता सीमाप्रान्तमें जनमत लेनेके बारेमें गांधीजीकी सलाह माननेको तैयार नहीं थे। इसलिए गांधीजीने अपने एक पत्रमें वाइसरॉयको लिखा : "जहां तक सीमाप्रान्तके जनमतका सम्बन्ध है, मुझे यह स्वीकार करना चाहिये कि मेरा विचार पंडित नेहरू और उनके साथियोंको नहीं जंचा। मैंने आपसे कहा ही था कि यदि मेरा प्रस्ताव उन्हें नहीं जंचा, तो मुझे इस बातको आगे बढ़ानेका उत्साह नहीं रहेगा।" [गांधीजीका पत्र लॉर्ड माउन्टबेटनको, १०/११ जून, १९४७]

फिर भी वाइसरॉयने जिन्नासे बात की। एक ओर लॉर्ड माउन्टबेटन और गांधीजीमें और दूसरी ओर गांधीजी और जिन्नामें यह पत्र-व्यवहार हुआ :

लॉर्ड माउन्टबेटनका पत्र गांधीजीको

१२ जून, १९४७

मैंने मि. जिन्नासे बात की . . . और उन्होंने आपको यह उत्तर देनेका अधिकार मुझे दिया है।

मि. जिन्ना आपका यह सुझाव खुशीसे मान लेंगे कि उन्हें सीमा-प्रान्त जाकर पाकिस्तानका मामला वहांके नेताओं और लोगोंके सामने रखना चाहिये, बशर्ते कि आप कांग्रेससे यह वचन ले लें कि वह इसमें हस्तक्षेप नहीं करेगी।

वे आपके इस विचारसे सहमत हैं कि इस उपायसे जनमत लेनेकी बात टाली जा सकती है और उसीके साथ रक्तपातका खतरा भी दूर किया जा सकता है।

मेरा सुझाव है कि आप इस मामलेमें उनसे अब सीधा ही पत्र-व्यवहार करें। . . .

मैंने यह जाना कि आपके प्रस्तावके लिए आपको कांग्रेसके नेताओंका समर्थन नहीं मिला । लेकिन मैंने आपको यह वचन दिया था कि कुछ भी हो जाय, मैं आपके व्यक्तिगत विचार मि. जिन्ना तक अवश्य पहूंचा दूंगा और अगर आपको कांग्रेसके नेंताओंका समर्थन प्राप्त न हो तो वे इसे समझ सकेंगे।

गांधीजीका पत्र लॉर्ड माउन्टबेटनको

१३ जून, १९४७

कायदे आजमने मेरा सुझाव माननेके पहले जो शर्तें लगाई है उसका गूढ़ार्थ खतरनाक है। . . . मैंने यह भी कहा है कि "अवश्य ही उनके जानेसे पहले उन्हें यह आश्वासन मिलना चाहिये कि उनकी बात शिष्टतापूर्वक सुनी जायगी।" इसलिए अगर उनका जाना वहां होगा, तो वह मंत्रियोंको और बादशाह खान तथा उनके खुदाई खिदमतगारोंको अपनी बातकी प्रतीति कराने और उनके विचार बदलनेके लिए होगा । वह किसी भी अर्थमें उनकी प्रचार-यात्रा नहीं होनी चाहिये ।

गांधीजीका पत्र जिन्नाको

१३ जून, १९४७

हिज़ एक्सिलेन्सी लॉर्ड माउन्टबेटन लिखते हैं कि "आप मेरा सुझाव खुशीसे मान लेंगे और वहांके नेताओं और लोगोंके सामने पाकिस्तानका मामला रखेंगे, बशर्ते मैं कांग्रेससे यह

आश्वासन ले सकूं कि वह इसमें हस्तक्षेप नहीं करेगी।" मैं नहीं जानता कि इस आश्वासनसे आपका क्या मतलब है कि कांग्रेस हस्तक्षेप नहीं करेगी।

जिन्नाका पत्र गांधीजीको

१३ जून, १९४७

मुझे आपका १३ जूनका पत्र मिला । मेरे खयालसे मेरा अर्थ बिलकुल स्पष्ट था – वह यह कि कांग्रेसको यह आश्वासन देना चाहिये कि वह सीमाप्रान्तके लोगोंके मामलेमें किसी भी तरह हस्तक्षेप नहीं करेगी।

सीमाप्रान्तकी स्थितिके संदर्भमें इसका मतलब यह होता कि कांग्रेस संगठन अपने पर प्रतिबन्ध लगा ले, जिन्ना साहबके लिए मैदान खुला छोड़ दे और वे सीमाप्रान्तमें जाकर वहांके मंत्रि-मंडल और खुदाई खिदमतगारोंको राजी न करके यह कहें कि अब तो कांग्रेसने आप लोगोंको छोड़ दिया है, इसलिए आपके सामने मेरी शर्तें मान लेनेकी ही बात रह जाती है। कांग्रेसेके लिए ऐसे प्रस्तावको मान लेनेका अर्थ राजनीतिक आत्मघात करना होता; साथ ही इसमें ऐसे लोगोंको त्याग देनेका अपयश भी था, जो देशकी आजादीकी लड़ाईमें, सुखमें और दुःखमें, बीस वर्षसे अधिक समय तक कांग्रेसके साथ रहे और जिन्होंने अटल तथा अविचल रहकर "खून, पसीने और आंसुओं" में ऐसे उदात्त ढंगसे इसकी कीमत चुकाई जिसकी कोई दूसरी मिसाल दुनियामें नहीं है। गांधीजीका उत्तर यह था:

भंगीबस्ती,

नई दिल्ली

१४ जून, १९४७

प्रिय कायदे आजम,

मुझे आशा थी कि हिज़ एक्सिलेन्सी वाइसरॉयने आपका अर्थ स्पष्ट नहीं समझा था। अब मैं देखता हूं कि वह मेरी भूल थी। कांग्रेसको आत्महत्या करनेके लिए नहीं कह सकता।

आपका

मो. क. गांधी

३

सीमाप्रान्तके प्रश्न पर कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओंके साथ गांधीजीके मतभेद चरम सीमा पर पहुंच गये। ६ जूनकी रातमें सरदार पटेलको उनसे एक घंटे तक बातें हुईं। दूसरे दिन गांधीजीने पं. नेहरूको लिखा :

> हम जितनी बार मिलते हैं उतना ही मेरा यह विश्वास दृढ़ होता जा रहा है कि विचार-जगतमें हमारे बीचकी खाई मुझे भय था उससे कहीं ज्यादा गहरी है। वे (सरदार) कहते हैं कि वर्तमान परिस्थितिके लिए बहुत-कुछ तुम जिम्मेदार हो। उनकी राय है कि सीमाप्रान्तमें बादशाह खानका . . . प्रभाव घट रहा है। मुझ पर तो बादशाह खानकी ऐसी कोई छाप नहीं पड़ी। वे जैसे हमेशा थे वैसेही आज भी हैं। अलबत्ता, आज पहलेसे उनमें स्थिरता अधिक है। मेरा यह भी खयाल है कि बादशाहके बिना डॉ. खान साहब और उनके साथियोंका कहीं ठिकाना नहीं होगा। जहां तक कांग्रेसके प्रभावका संबंध है, वे ही सब-कुछ हैं।

पहले दिन माउन्टबेटनसे जो बातचीत हुई उसका उल्लेख करते हुए गांधीजीने लिखा :

> अगर कायदे आजम सीमाप्रान्तमें नहीं जाते और बादशाह, उनके भाई और दूसरे साथियोंको राजी नहीं कर लेते, तो सीमाप्रान्तके मंत्रि-मंडलको और विधान-सभाके बहुमतको भी एकमात्र इस कारणसे इस्तीफा दे देना चाहिये कि इस मौके पर जनमत लेनेका परिणाम रक्तपात होगा और निश्चित रूपसे नहीं तो संभवत: इससे पठानोंमें स्थायी वैरभाव खड़ा हो जायगा – जिससे यथासम्भव उन्हें बचना चाहिये । अमृत (राजकुमारी अमृतकौर) मुझसे कहती हैं कि तुम्हारा विचार इससे विपरीत है। तुम्हारा खयाल है कि जनमत अभी लिया जाना चाहिये। . . . तुम्हारी यह भी राय है कि जनमतसे रक्तपात नहीं होगा, परन्तु मेरे प्रस्तावसे उसकी अधिक संभावना रहेगी। मैं तुम्हारे इस विचारसे सहमत नहीं हूं । **मैंने बादशाहसे कह दिया था कि अगर तुम मुझसे सहमत नहीं होगे, तो कमसे कम सीमाप्रान्तके सलाह-मशविरेसे में हट जाऊंगा और तुम्हें उनका मार्गदर्शन करने दूंगा**। मैं तुम्हारे और उनके बीच नहीं आऊंगा, और न आ सकता हूं। आखिर तुम्हीं तो उन्हें मेरे पास लाये थे। तुम अब निश्चय करो और मुझे बता दो। (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

पं. नेहरूने स्थितिको जैसा समझा था उसे एक अत्यन्त समर्थ और स्पष्ट पत्रमें उन्होंने प्रकट किया। उसका सार यह था कि बहुत हद तक मुस्लिम लीगके आन्दोलनके कारण और कुछ हद तक सीमाप्रान्तके गवर्नरके आग्रहके कारण लगभग दो महीने पहले वहां नये चुनावों और धारा-९३ के शासनके संबंधमें सवाल उठा। कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओंकी ओरसे इसका प्रबल विरोध किया गया और उसके फलस्वरूप नये चुनाव कराने अथवा धारा-९३ लागू करनेका विचार छोड़ दिया गया। सीमाप्रान्तमें मुस्लिम लीगके आन्दोलनको अंग्रेज और भारतीय अधिकारियोंने कई तरहसे प्रोत्साहन दिया। यदि यह समर्थन न होता, तो उसका आसानीसे सामना किया जा सकता था :

> इसमें संदेह नहीं कि गवर्नर और सीमाप्रान्तके अनेक अधिकारियोंने प्रान्तीय सरकारके साथ न सिर्फ असहयोग किया है, बल्कि कभी कभी उसके काममें सचमुच बाधाएं भी डाली हैं। उनकी सहानभूति सीमाप्रान्तमें मुस्लिम लीगी आन्दोलनके नेताओंके साथ है, जिनमें से कई लोग ब्रिटिश सरकारके पुराने राजभकत हैं और उसके साथ पहलेसे उनका सम्बन्ध रहा है। . . . इन अधिकारियोंके बारेमें पिछले कुछ महीनोंमें एक खास कठिनाई पैदा हो गई थी। सबको यह मालूम था कि वे हिन्दुस्तानसे जा रहे हैं, यद्यपि तारीख निश्चित नहीं हुई थी। उनके बारेमें चलनेवाले सार्वजनिक विवादोंके कारण मामला एक-दो व्यक्तियोंको हटानेका न रह कर लगभग सभी अधिकारियों पर असर डालनेवाला हो गया। नतीजा यह हुआ कि वे व्यक्ति भी, जिन्हें हटाया जा सकता था, बने रहे। कुछ भी हो, लगभग वे सब जल्दी ही सीमाप्रान्तसे जा रहे हैं और हमें इसी आधार पर आगे बढ़ना चाहिये। अब उन्हें सामूहिक रूपमें हटानेका सवाल हमारी तरफसे उठानेमें कोई सार नहीं। [सीमाप्रान्त पर पं. नेहरूकी टिप्पणी, ८ जून, १९४७]

पत्रमें आगे कहा गया था: जनमत लेनेका प्रश्न "ठीक पाकिस्तानके प्रश्न पर" सामने नहीं आया, बल्कि अखिल भारतीय स्थितिमें कुछ परिवर्तनों और घटनाओंके कारण सामने आया । फिर भी कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओंने जो स्थिति अपनाई वह यह थी कि "और बातोंको छोड़ दें तो उस समय तक सही चुनाव नहीं हो सकते जब तक मुस्लिम लीगका आन्दोलन पूरी तरह वापस न ले लिया जाय और उनके लिए प्रांतीय सरकारकी स्वीकृति न ले ली जाय।" बादमें भारतके परिवर्तनोंकी मुख्य योजनाका विकास किया गया । इसका संभाव्य परिणाम यह होता कि पश्चिमी पंजाब भारतीय संघसे अलग हो जाता, जिसका अर्थ यह होता कि सीमाप्रान्त भारतीय संघसे भौगोलिक दृष्टिसे कट जाता।

इस प्रकार एक नई स्थिति पैदा हुई और फिरसे यह कहा गया कि इस नई स्थितिको देखते हुए सीमाप्रान्तमें जनमत लेना वांछनीय होगा, ताकि यह निश्चित हो जाय कि उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्त किस संविधान-सभामें रहना चाहता है। इसलिए यह प्रस्ताव केवल सीमाप्रान्तके लिए ही नहीं रहा, बल्कि एक बड़ी योजनाका अंग बन गया, जिसमें सीमाप्रान्त, बलूचिस्तान और सिलहटमें जनमत लेनेकी व्यवस्था थी। उस समयकी विशेष परिस्थितियोंके सिवा भी वह एक तर्कसंगत और सर्वथा उचित प्रस्ताव मालूम हुआ।

इस प्रकार सीमाप्रान्तमें जनमत लेनेका प्रश्न पंजाब और बंगालके "कुछ पिछले निर्णयों" पर निर्भर करता है। "परन्तु बहुत संभव है कि बंगाल और पंजाबके कुछ भाग भारतीय संघसे अलग होनेके पक्षमें फैसला करें और इसलिए हम इसे लगभग मान कर चल सकते हैं कि इस विषयमें सीमाप्रान्तके निर्णयका सवाल उठेगा। वर्तमान स्थिति यह है कि ब्रिटिश सरकार और वाइसरॉय इस जनमतके लिए निश्चित रूपसे वचन-बद्ध हैं । **हममें से भी कुछ लोग थोड़े-बहुत वचन-बद्ध हैं। . . . इसलिए जनमतका प्रश्न निश्चित दिखाई देता है और यह बिलकुल स्पष्ट नहीं है कि हम इसमें से बाहर कैसे निकल सकते हैं** । वाइसरॉयके लिए तो यह और भी मुश्किल है। योजनामें कोई परिवर्तन करनेका . . . नतीजा व्यापक संघर्ष भी हो सकता है। इसलिए अब हम इसे निश्चित मान सकते हैं कि जनमत जरूर लिया जायगा।" (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

पं. नेहरूने समझाया कि जनमतके समय निश्चित रूपसे शांति बनी रहे इसके लिए यह प्रस्ताव रखा गया है कि "जनमतकी कार्रवाईकी व्यवस्था बाहरसे बुलाये गये ब्रिटिश सैनिक अधिकारी करें। . . .प्रांतीय सरकार इस जनमतसे सम्बन्धित तंत्रके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रखेगी।" सामान्य रूपमें कहा जाय तो पं. नेहरू यह नहीं मानते थे कि "किसी बड़े हिंसक संघर्ष" की बहुत संभावना थी।

पंडित नेहरू इस बारेमें निश्चित नहीं थे कि जनमतका क्या परिणाम होगा । परन्तु ऐसा लगता है कि सीमाप्रान्तसे लौटने पर वाइसरॉयने उन्हें यह बताया था कि गवर्नरसे लेकर नीचे तक अनेक अंग्रेज अधिकारियोंने – जो कांग्रेसके विरुद्ध हैं – यह राय प्रगट की है कि कांग्रेस और लीगकी जीतकी आधी आधी संभावना है; और जनमतका परिणाम कांग्रेसके लिए जीतके रूपमें भी आ सकता है, यद्यपि यह किसी तरह निश्चित नहीं है।

सीमाप्रान्तके लोगोंको सर्वसत्ताधारी स्वाधीनताके लिए मतदान करने दिया जाय, इस प्रस्तावने कुछ कठिनाइयां खड़ी कर दीं : "वाइसरॉयने कहा कि दलोंको यह बात मंजूर हो तो ही वे इससे सहमत हो सकते हैं। . . . मतदाताके सामने तीन मुद्दे हों तो मतदानमें भी भुद्धिभ्रम खड़ा हो सकता है। . . . मतोंका विभाजन हो सकता है।"

इस सुझावके बारेमें कि सीमाप्रान्तीय कांग्रेसको जनमतसे अलग रहना चाहिये, पं. नेहरूकी दलील यह थी कि इसका मतलब होगा "सीमाप्रान्तमें मुस्लिम लीगका प्रभुत्व स्वीकार करना – अमलमें मुस्लिम लीगके आन्दोलनके सामने घुटने टेक देना।"

> यह कहना कठिन है कि इससे शान्तिपूर्ण परिस्थितियां स्थापित हो जायंगी या नहीं। परन्तु मेरी कल्पना है कि इस तरहके अधिकारत्यागसे या आत्म-समर्पणसे संघर्ष और रक्तपातकी संभावना और भी ज्यादा रहेगी, क्योंकि मुस्लिम लीग इस आत्म-समर्पणको अपनी भारी जीत समझ कर उसका समारोह मनायेगी। . . . फिर उसका यह दावा करना उचित माना जायगा कि सीमाप्रान्तका मौजूदा मंत्रि-मंडल अधिकांश लोगोंका प्रतिनिधित्व नहीं करता। . . . जनमतके द्वारा अथवा जनमतको टालनेसे प्रान्तीय मंत्रि-मंडलके विरुद्ध निर्णय हो जाने पर उसके लिए सत्ता पर बना रहना कठिन प्रतीत होता है। . . . संभव है, प्रान्तीय विधान-सभाके लिए दूसरे चुनावका सवाल फौरन खड़ा हो जाय। जनमतको टालनेसे . . . हम उत्पात और कठिनाईसे बच नहीं जाते और प्रान्तीय मंत्रि-मंडल टिका नहीं रह सकता। चुनाव किसी तरह होगा और उसके सारे संभव बुरे परिणाम भी होंगे। . . . दूसरा एकमात्र मार्ग यह है कि शान्तिपूर्वक पाकिस्तानके विचारको स्वीकार कर लिया जाय, लेकिन मुझे इसमें बहुत शंका है कि अधिकांश पठान उसे स्वीकार कर लेंगे।

अन्तमें पं. नेहरूने कहा कि सीमाप्रान्तके भविष्यका काफी समयके लिए निर्णय होनेवाला है और जनमतसे हमारे दूर रहनेका अर्थ "एक गलत निर्णयको निश्चित बनाना होगा।" और वह भी "साधारण लोकतांत्रिक प्रक्रिया द्वारा नहीं, परंतु निजी व्यवस्था द्वारा।" पं. नेहरूके नोटमें आगे कहा गया था:

हिंसासे बचनेके लिए और सीमाप्रान्तमें हमारे अपने भविष्यके लिए भी इस तरहकी कार्रवाई मुझे बहुत खतरनाक मालूम होती है। लोकतांत्रिक पद्धतिसे लड़ने और हार जानेसे हम लम्बे अर्सेके लिए कमजोर नहीं हो जाते और बादमें हम अपना संग्राम दूसरी पद्धतिसे फिर शुरू कर सकते हैं। **परन्तु बिना लड़े छोड़ देनेका अर्थ होता है एक हद तक प्रामाणिकताकी कमी – जो परिणामोंके भयसे उत्पन्न होती है – और यह कमी उस संगठनका अन्त कर देती है जो प्रश्नका सासना नहीं कर सकता**। (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

इन सब परिस्थितियोंको देखते हुए मुझे लगता है कि हमारे लिए एकमात्र सही रास्ता यह है कि जनमत लेनेकी बात हम स्वीकार करें और अपनी पूरी ताकतसे उसकी तैयारी करें। हमारे जीतनेकी काफी संभावना है। . . . हमें जनमतकी बात स्वीकार करके यह नारा लगाना चाहिये कि सीमाप्रान्तमें हम अधिकसे अधिक मात्रामें स्वतन्त्रता और स्वाधीनता चाहते हैं। . . . यह सर्वसत्ताधारी स्वाधीनताका सीधा विषय नहीं, परन्तु उसी विषयका कुछ परिवर्तित रूप है, जो हमारे लिए सहायक सिद्ध होगा। . . . अमलमें पश्चिमी पंजाबमें पाकिस्तानके अस्तित्वमें आने और सीमाप्रान्तके भारतसे अलग हो जानेके बाद, इस अलग होनेके कारण और दूसरे कारणोंसे, उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्तको काफी मात्रामें स्वशासन और स्वाधीनता प्राप्त होगी ।

इसलिए पंडित नेहरूको कांग्रेसके लिए इसके सिवा और कोई मार्ग खुला नहीं दीखता था कि जनमतका प्रस्ताव मान लिया जाय और उसके लिए लड़ा जाय। “अगर इस रास्तेमें खतरा है तो दूसरे रास्तोंमें रक्तपातका इससे कहीं बड़ा खतरा है। जो रास्ता सुझाया गया है वह लड़ाईको शान्ति-पूर्वक स्वीकार करनेका बहादुरीभरा और साफ रास्ता है। जब अन्तिम निर्णय किये जा रहे हों उस समय लड़ाईको छोड़ देनेसे हमारे लोगोंको गहरी मनोवैज्ञानिक हानि होगी।”

कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओंके निर्णयको प्रभावित करनेवाले दो कारण थे: एक यह कि सीमाप्रान्तमें लिये जानेवाले जनमतमें कांग्रेसकी विजयकी ५० प्रतिशित संभावना थी; दुसरा यह कि जिस परिस्थितिमें अपने आपको वे पा रहे थे उसने उन्हें ऐसा करनेके लिए विवश कर दिया और माउन्टबेटन उसमें महत्त्वपूर्ण भाग ले रहे थे। हम पुनः पं. नेहरूके पत्रको देखें: “किसी हद तक वे (माउन्टबेटन) स्वाभाविक रूपमें भूतकालीन और वर्तमान व्यवस्थासे बंधे हुए हैं; परन्तु वे सही दिशामें आगे बढ़नेकी

भरसक कोशिश कर रहे हैं। वे सीमाप्रान्तकी समस्याकी कठिनाइयोंको अच्छी तरह समझते हैं और उन्हें हल करनेके लिए यथाशक्ति हर प्रयत्न करना चाहते हैं। मैं मानता हूं कि वे सहायक सिद्ध होंगे। लेकिन उनका पक्का विश्वास है कि कुछ भागोंके अलग होनेकी संभावनासे इस समय भारतमें जो विशिष्ट परिस्थितियां उत्पन्न हो रही हैं उनमें सीमाप्रान्तके लोगोंको जनमतके द्वारा स्वयं निर्णय करनेका मौका अवश्य दिया जाना चाहिये। **इसके लिए वे निश्चित रूपसे वचन-बद्ध हैं और अपनी प्रतिष्ठा और निष्पक्षताको गम्भीर हानि पहूंचाये बिना वे इस वचनसे छूट नहीं सकते। ऐसी स्थितिका सामना करनेके बजाय वे कदाचित् त्यागपत्र देना अधिक पसंद करेंगे**।" (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

कांग्रेसके वरिष्ठ नेता यथासंभव माउन्टबेटनको ऐसी स्थितिमें नहीं डालना चाहते थे और उनकी सहायता और अनुग्रहको खोना नहीं चाहते थे ।

पं. नेहरूके पत्रमें प्रतिभाशाली तर्क तो था, फिर भी उसमें तीन-चौथाई केवल सयानपन ही था, यह किसी सामान्य आदमीको भी दीख सकता है। असलमें उसमें आत्म-समर्पणका ही औचित्य स्थापित किया गया था। गांधीजी दुःखी हुए। उन्होंने पंडित नेहरूको लिखा:

> यदि मुझे तुम्हारी कही हुई बातें मान्य हों, तो तुम्हारे साथ मेरी पूरी सहमति होनी चाहिये। तुम्हारा पत्र मैं संदेशवाहकके हाथों बादशाहके पास भेज रहा हूं। . . . मेरे और कार्यसमितिके सदस्योंके बीच दृष्टिकोण और मतका जो भेद है, उस पर मैं जितना अधिक विचार करता हूं उतना ही मुझे लगता है कि मेरा दिल्लीमें रहना अनावश्यक है – भले ही वह हम सबको जो ध्येय प्रिय है उसमें बाधक न हो। क्या मैं २-३ दिनमें बिहार नहीं जा सकता ? [गांधीजीका पत्र पं. नेहरूको, ९ जून, १९४७]

बातकी जड़को छूते हुए गांधीजीने आगे कहा : "यदि तुम यह आग्रह करो कि पाकिस्तानका चित्र प्रस्तुत किये बिना जनमत लेना अनुचित होगा, तो क्या ऐसा करना गलत होगा ?"

माउन्टबेटनको उन्होंने अगले दिन लिखा:

> कायदे आजम इस विचारको पसन्द करें या न करें, उनसे यह कहना चाहिये कि पहले वे पाकिस्तानकी योजनाका स्पष्ट चित्र उपस्थित करें। उसके बाद सीधे-सादे पठानोंसे हिन्दुस्तान या पाकिस्तानमें से किसी एकको चुननेके लिए कहा जाय । मेरे खयालसे पठान यह जानता है

कि हिन्दुस्तानमें उसकी स्थिति क्या होगी। अगर वह नहीं जानता तो कांग्रेससे या जो संविधान-सभा इस समय काम कर रही है उससे वह चित्र पूरा करनेका अनुरोध किया जाय। मुझे भय है कि हिन्दुस्तान या पाकिस्तानको जाने बिना ही दोनोंके बीच चुनाव करना गलत होगा। पठानको कमसे कम यह तो जानना ही चाहिये कि उसके अस्तित्वकी संपूर्ण रक्षा कहां होगी।

अभी तक सीमाप्रान्तमें शान्ति नहीं है। जब तक लड़ाई-झगड़ा पूरी तरह मिट नहीं जाता तब तक वहां सच्चा जनमत कैसे जाना जा सकता है ? लोगोंके दिमागोंमें इतनी गर्मी आ गई है कि वे ठीक तरहसे सोच ही नहीं सकते। . . . **यदि देशमें शान्तिका राज्य नहीं होगा तो ऊपरकी सारी इसारत गिर कर तहस-नहस हो जायगी और विभाजनके बावजूद आप एक ऐसी विरासत अपने पीछे छोड़ जायंगे जिस पर आपको गर्व नहीं होगा**। [गांधीजीका पत्र लॉर्ड माउन्टबेटनको, १० जून, १९४७] (मोटे टाइप मैंने किये है।)

४

गांधीजीने पं. नेहरूके पत्रकी एक प्रति बादशाह खानके पास इस मंतव्यके साथ भेज दी: "यह मेरे और जवाहरके बीचके मतभेदका परिणाम है। ऐसी परिस्थितिमें मुझे आपका मार्गदर्शन नहीं करना चाहिये। अब आपको वही करना चाहिये जिसे आप उत्तम समझें।" [गांधीजीका पत्र बादशाह खानको, ९ जून, १९४७]

एक पत्रमें, जो इस पत्रके पहुंचनेसे पहले भेजा गया था, बादशाह खानने ८ जूनको पेशावरसे गांधीजीको लिखा: "मैंने अपने सारे महत्त्वपूर्ण कार्यकर्ताओंसे परामर्श किया है और हम सबका यह विचारपूर्ण मत है कि हम (३ जूनकी योजनाके) चौथे पैरेमें जो मुद्दे दिये गये हैं उन पर जनमत लेना मंजूर नहीं कर सकते। इसके सिवा, प्रान्तमें इस समय ऐसे हालात हैं कि जनमत लेनेसे गम्भीर हिंसा भड़क उठेगी। हम पाकिस्तानके भी विरुद्ध हैं; हम चाहते हैं कि भारतके भीतर हमारा एक स्वतन्त्र पठान राज्य हो।"

पं. नेहरूका पत्र मिलने पर उन्होंने ११ जूनको गांधीजीको फिर लिखा :

आज शामको सीमाप्रान्तकी कांग्रेस कमेटी, कांग्रेसके संसदीय दल और खुदाई खिदमतगारोंके सालारों (मुखियों) की लगभग ४ घंटे तक एक सम्मिलित सभा हुई। सभामें

प्रान्तभरके प्रतिनिधियोंने भाग लिया। सबकी रायका सार यह था कि घोषणाके पैरा ४ (क) में दिये गये मुद्दों पर जनमतकी कार्रवाईमें हमें भाग नहीं लेना चाहिये। उन सबकी इच्छा थी कि पाकिस्तान और स्वतंत्र पठान राज्यके आधार पर उन मुद्दोंमें परिवर्तन कराया जाय।

कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओंको स्वभावत: ही इस निर्णय पर दुःख हुआ। परन्तु और कोई चारा न देखकर उन्होंने गांधीजीका यह सुझाव मान लिया कि चूंकि जिन्नाने पठानोंको राजी करनेसे इनकार कर दिया है, इसलिए बादशाह खानको ही लीगके पास जाकर उसे राजी कर लेना चाहिये। तदनुसार १८ जूनको बादशाह खान जिन्नासे उनके घर मिले। उन्होंने जिन्नासे कहा: अब कांग्रेस और लीगने भारतका विभाजन तो स्वीकार कर ही लिया है। इसलिए पठान पाकिस्तानमें शरीक होनेके लिए बिलकुल राजी हैं, बशर्ते कि: (१) मिलनेकी शर्तें सम्मानपूर्ण हों; (२) अगर पाकिस्तान स्वाधीनता मिलनेके बाद ब्रिटिश प्रभुत्वके अधीन ही रहनेका निश्चय करे, तो सुस्थिर जिलों (सेटल्ड डिस्ट्रिक्ट्स) के या कबायली इल्कोंके पठानोंको ऐसे उपनिवेशसे अलग हो कर स्वतंत्र स्वाधीन राज्य बना लेनेकी सत्ता हो; और (३) कबायली लोगोंसे सम्बन्ध रखनेवाली सारी बातें खुद पठान ही निबटायें और उनमें गैर-पठानोंका हस्तक्षेप या प्रभुत्व न हों – यह अधिकार तो मौजूदा संविधान-सभाने भी दे रखा है।

मुस्लिम लीगके साथ सम्मानपूर्ण समझौता करनेका बादशाह खानका यह प्रयत्न भी असफल सिद्ध हुआ। दूसरा हो ही क्या सकता था? लीग जानती थी कि हर हालतमें सीमाप्रान्त उसे मिलने ही वाला है, इसलिए वह बादशाह खान पर अपने प्रहार जारी रख सकती थी।

गांधीजीने बादशाह खानको अपनी प्रार्थनाओंके साथ जिन्नासे मिलने भेजा था और प्रार्थना-सभाके लोगोंसे अपनी प्रार्थनाओंमें सम्मिलित होनेको कहा था। मुलाकातके परिणामसे वे बहुत अशान्त हो गये। उन्होंने एक क्षणमें ही समझ लिया कि सीमाप्रान्तमें खान बन्धुओं और उनके अहिंसक खुदाई खिदमतगारोंके भाग्यमें क्या लिखा है। इस चिन्ताके कारण वे उस रात साढ़े बारह बजे तक जागते रहे। दूसरे दिन सुबह ३ बजेसे भी पहले उठकर वे चिन्तन करने लगे: "मेरी १२५ वर्ष तक जीनेकी इच्छा नहीं रह गई है, तो भी मैं बादशाह खानका विचार किये बिना नहीं रह सकता। बादशाह खान विलक्षण पुरुष हैं। मुझे उनके गहन आध्यात्मिक स्वभावके दिनोंदिन अधिक दर्शन हो रहे हैं। उनमें धीरज, अहिंसा और श्रद्धाके साथ साथ सच्ची नम्रता भी हैं। असंख्य पठानोंने उन्हें 'बेताजका बादशाह' बनाकर अपने हृदयोंमें

अंकित कर लिया है। ऐसे व्यक्तिके लिए हार जैसी कोई चीज हो ही नहीं सकती । मुझे विश्वास है कि वे कोई भी त्याग करनेमें या कष्ठ उठानेमें पीछे नहीं रहेंगे, परन्तु आखिरी दम तक पठानोंकी सेवा करते करते ही मरेंगे। वे उसीके लिए जी रहे हैं। वे तपस्वी और ज्ञानी पुरुष हैं। उनके हृदयमें सबके लिए प्रेम है और किसीके लिए द्वेष नहीं है।" इतना कहकर गांधीजी लेट गये और सो जानेकी कोशिश करने लगे। परन्तु थोड़ी ही देर बाद उन्होंने फिर आंखें खोली और बोले : "नहीं, मैं सो नहीं सकता । बादशाह खानके विचारोंने मेरी नींद उड़ा दी है।"

बादशाह खान और जिन्नाकी वर्ताएं असफल होनेका उल्लेख करते हुए गांधीजीने शामकी प्रार्थना-सभामें कहा: आप चाहें तो मुझे डांट सकते हैं कि मेरी और आपकी प्रार्थनायें सफल नहीं हुईं, परन्तु इस तरह ईश्वरका न्याय करना आपकी भूल होगी। प्रार्थना श्रद्धाके आधार पर खड़ी होनी चाहिये। ईश्वरके ढंग मर्त्य मानवोंके ढंगसे अलग होते हैं। उन्हें कोई जान नहीं सकता। जैसे कोई कर्म निष्फल नहीं होता वैसे ही कोई प्रार्थना भी निष्फल नहीं होती। हमें दिखाई दे या न दे, उसका फल अवश्य मिलता है, और हार्दिक प्रार्थनाका परिणाम तथाकथित कर्मके परिणामसे कहीं अधिक बलशाली होता है।

जिन्नाके साथ बादशाह खानकी बातचीत असफल होनेके बाद सदाकी भांति मुस्लिम लीगी अखबारोंमें बादशाह खान पर गन्दा हमला किया गया। 'डॉन' में प्रकाशित एक रिपोर्टका हवाला देते हुए जिन्नाको बादशाह खानने १९ जूनको लिखा :

> 'डॉन' की रिपोर्ट पढ़ कर मुझे पीड़ा हुई है। उसमें कुछ बातें ऐसी हैं जो बिलकुल झूठी हैं, जैसे यह बात कि कांग्रेसने मुझे और मेरे "पिट्ठुओं" को आर्थिक सहायता देनेसे इनकार कर दिया है। कांग्रेससे आर्थिक राहायता मांगने या पानेका तो कोई प्रश्न ही पैदा नहीं हुआ है और उसका कोई जिक्र भी खड़ा नहीं हुआ है।
>
> मैं आपके पास इसलिए आया था कि संभव हो तो हम कोई ऐसा रास्ता निकालें, जो शान्तिपूर्ण और सबके लिए सम्मानपूर्ण हो । दुर्भाग्यसे हम सहमत न हो सके। परन्तु कुछ भी हो, 'डॉन' की रिपोर्टका स्वर, उसकी शैली और विचार ऐसे नहीं हैं, जो हमें किसी मित्रतापूर्ण बातचीत या समझौतेकी दिशामें ले जा सकें।

अपने साथियोंसे मिलनेके बाद बादशाह खानने २४ जूनको पेशावरसे जिन्नाको लिखा :

मैंने आपसे कहा था कि यद्यपि मुझे निर्णय करनेका पुरा अधिकार है, फिर भी मैं सारा मामला अपने साथियोंके सामने २१ जून, १९४७ को बन्नूमें होनेवाली सभामें रखूंगा। सभाने सर्व-सम्मतिसे यह प्रस्ताव पास किया है :

"सीमाप्रान्तीय कांग्रेस कमेटी, कांग्रेसके संसदीय दल, खुदाई खिदमतगारों और जलमई पख्तूनोंकी २१ जून, १९४७ को सीमाप्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके अध्यक्ष खान अमीर मोहम्मद खानकी अध्यक्षतामें बन्नूमें हुई यह सभा सर्व-सम्मतिसे निर्णय करती है कि तमाम पख्तूनोंका एक स्वतन्त्र पठान राज्य स्थापित किया जाय। राज्यका संविधान लोकतन्त्र, समानता और सामाजिक न्यायकी इस्लामी कल्पनाके आधार पर रचा जायगा। यह सभा तमाम पठानोंसे अपील करती है कि वे अपने इस चिरपोषित लक्ष्यकी सिद्धिके लिए एक हो जायं और किसी भी गैर-पख्तून प्रभुत्वके आगे न झुकें।"

इसके अनुसार सीमाप्रान्तके नेताओंने निश्चय किया कि अगर जनमत शुद्ध साम्प्रदायिक ढंग पर लड़ा जाय, तो उसमें भाग न लिया जाय। वे तभी उसमें भाग लेंगे जब स्वतन्त्र पठानिस्तानके प्रश्न पर उसमें राय देनेकी गुंजाइश हो।

*

जब १९३९ में गांधीजी सीमाप्रान्त गये थे तब एक बार बादशाह खानके लड़के अब्दुल गनीने अपने गांव उतमंजईके खानदानी घरके पासकी एक नीची पहाड़ीको ओर संकेत करते हुए कहा था: "उसी पहाड़ी पर फलां आदमीने मेरे पड़दादाको वंश-परंपरागत शत्रुताके कारण फांसी पर लटकाया था।" उन्हींमें से एकने हमारे कबीलेमें वंशगत शत्रुताका रिवाज बन्द किया था। भाई-भाईके जिस रक्तपातको मिटानेके लिए खान बन्धुओंको जीवनभर परिश्रम करना पड़ा था, उन्हीं झगड़ोंका फिरसे शुरू होना इतनी गहरी करुणता होती जिसके दुःखको आंसुओंसे व्यक्त करना असंभव होता। खान बन्धुओंने सुलेमानके फैसलेकी कहानीवाली सच्ची मांकी तरह बच्चेके टुकड़े करनेके बजाय उसे सौतको सौंप देना ही पसन्द किया। ऐसा लगता है कि समस्याके इस पहलूकी काफी कदर न तो मुस्लिम लीगने की, न ब्रिटिग सत्ताने की और न कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओंने की।

अपने सामाजिक संबंधोंमें पठान 'पख्तूनवली' अर्थात् त्रिविध पठान-संहितासे शासित होता है। वह कबायलियों पर कुछ जिम्मेदारियां डालती है, जिनमें से किसी भी जिम्मेदारीको पूरा न करना घोरतम पाप समझा जाता है और उसके बाद ऐसे आदमीकी हमेशाके लिए बेइज्जती और बहिष्कार होता है। वे तीन जिम्मेदारियां इस प्रकार हैं: (१) प्रठानको भाग कर आनेवाले सभी लोगोंको शरण देनी चाहिये (नान अवताई): (२) अपने घोर शत्रुका भी उसे खुले दिलसे आतिथ्य करना चाहिये (मेलमस्तिया); और (३) अपमानका बदला अपमानसे लेकर उसे अपमानको मिटाना चाहिये (बदल) ।

यह आखिरी जिम्मेदारी पठानोंमें वंशगत शत्रुताको जन्म देती है, जो पठान जातिका अभिशाप है। कॉलिन डेविस लिखता है: "हर कबीलेकी शाखा या वर्गकी अपनी परस्पर विनाशक लड़ाइयां होती हैं, प्रत्येक परिवारकी वंश-परंपरागत शत्रुतायें होती हैं और हर व्यक्तिके अपने निजी शत्रु होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपनी हत्याएं गिनता है, प्रत्येक कबीलेका अपने पड़ोसियोंके साथ जानके बदले जान लेनेके जमा-खर्चका हिसाब रहता है।"

आगे चलकर डेविस कहता है: "दुर्भाग्यसे उद्दंड कबायली यह नहीं समझ पाते कि इस जंगली रिवाजके विनाशक प्रभावसे उनके बहुतसे श्रेष्ठ घराने सर्वनाशके किनारे पर पहुंच गये हैं। जब तक यह घरेलू लड़ाई मिट नहीं जाती तब तक न तो लोगोंमें एकता हो सकती है और न शांतिका राज्य कायम हो सकता है।" [कॉलिन डेविस, 'दि प्रॉब्लेम ऑफ दि नॉर्थ-वेस्ट फ्रंटियर']

बादशाह खानके लिए यह कोई बौद्धिक प्रश्न नहीं था। १९३९ की उपर्युक्त यात्राके समय एक बार उन्होंने गांधीजीसे कहा था: "महात्माजी, मेरा यह दृढ़ विश्वास दिनोंदिन अधिक गहरा होता जा रहा है कि इस प्रान्तके पठानोंके विनाशका मूल सबसे अधिक हिंसा ही है। इसने हमारी एकताको छिन्नभिन्न कर दिया और भीतरी झगड़ोंको बढ़ाकर हमारे समाजके टुकड़े कर दिये। आज पठानकी सारी शक्ति यह सोचनेमें खर्च होती है कि मैं अपने भाईका गला कैसे काटूं ।"

और फिर :

> दूसरे प्रान्तोंकी बात कुछ भी हो, लेकिन जहां तक सीमाप्रान्तका संबंध है वहां तक मेरा दृढ़ विश्वास है कि अहिंसाका आन्दोलन सबसे बड़ा वरदान है, जो ईश्वरने हमारे लिए भेजा है। अहिंसाके सिवा पठानोंके लिए इस स्थितिसे अपना उद्धार करनेका और कोई मार्ग नहीं है। मैं

अपने अनुभवसे कह सकता हूं कि हमने अहिंसाका जो थोड़ासा ही पालन किया है, उससे हमारे समाजका अद्भुत कायापलट हो गया है। महात्माजी, हम बड़े डरपोक और आलसी थे। अंग्रेजको देखते ही हम डर जाते थे। और आलस्यमें अपना समय बरबाद करनेका हमें कोई खयाल ही नहीं होता था। आपके आन्दोलनने हमारे भीतर नवजीवनका संचार कर दिया है। . . . हमने डरना छोड़ दिया है और अब हमें किसी अंग्रेजका या किसी भी मनुष्यका डर नहीं लगता। . . . **अंग्रेज कहते हैं कि हिंसक पठानसे अहिंसक पठान अधिक खतरनाक है**। . . . हम अपने सर्वनाशके किनारे पहुंच गये थे। परन्तु ईश्वरने दया करके परम संकटसे हमें बचानेके लिए अहिंसाका आन्दोलन हमारे पास भेज दिया।

गांधीजी जानते थे उससे आधा भी कोई नहीं जानता था कि पठानोंको हिंसक जीवन-पद्धतिसे मुक्त करके उन्हें अहिंसाके सिपाही बनानेमें बादशाह खानने कितनी मेहनत की थो। कोई आश्चर्य नहीं कि इसीलिए उन्होंने कांग्रेस वर्किंग कमेटीके अपने साथियोंके बजाय बादशाह खानका पक्ष लेना ज्यादा पसंद किया।

५

अब कांग्रेस-अध्यक्षका इतना ही काम रह गया था कि वे खान बन्धुओंके अंतिम निर्णयकी सूचना वाइसरॉयको दे दें। यह सूचना उन्होंने निम्नलिखित पत्रमें दी :

जब जब सीमाप्रान्तका सवाल उठा, हमने आपसे कहा कि हमारी तरफसे अंतिम उत्तर देनेके पहले सीमाप्रान्तके मंत्रियों और नेताओंसे परामर्श करना आवश्यक होगा। इस मामलेका उनसे घनिष्ट संबंध था और वहांकी स्थितिके वे ही उत्तम निर्णायक थे। वे इस बातको बहुत नापसंद करते थे कि प्रान्तमें कोई ऐसा प्रश्न उठाया जाय, जिसका शुद्ध साम्प्रदायिक अथवा हिन्दू-मुस्लिम प्रश्नके रूपमें दुरुपयोग किया जा सके। . . . इससे बचनेका उत्तम उपाय यह था कि सच्चा मुद्दा सामने रखा जाय। वह मुद्दा था एक ऐसे स्वतंत्र पठान राज्यका निर्माण, जो बादमें भारतीय संघ अथवा पाकिस्तानके साथ अपने संबंध निश्चित कर लेता।

इस प्रबल भावनाके अनुसार मैंने आपको अपने २ जूनके पत्रमें लिखा था कि "प्रस्तावित जनमतमें ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये जिससे लोग स्वाधीनताके लिए मतदान कर सकें और

बादमें शेष भारतके साथ अपने संबंधके बारेमें निर्णय कर सकें।" मैं समझता हूं कि आप इसे स्वीकार करनेमें असमर्थ रहे हैं, क्योंकि मुस्लिम लीगने इसे स्वीकार नहीं किया है। इससे हमारी कठिनाइयां बढ़ गई हैं और हम इस मामले पर चिन्ताके साथ विचार करते रहे हैं। . . .

हमने योजनाको स्वीकार कर लिया है। . . . साथ ही हम उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्त पर ऐसी कोई कार्रवाई नहीं लाद सकते, जिसका वहांके नेता और लोग विरोध करते हैं। . . . हमने खान अब्दुल गफ्फार खांसे फिर सलाह-मशविरा किया है। . . . उन्होंने हमें बताया है कि उस प्रान्तमें इस बातकी जोरदार और आग्रहपूर्ण मांग है कि सीमाप्रान्तके लोगोंको स्वाधीनताके प्रश्न पर अपना मत घोषित करने दिया जाय । वे ऐसे जनमतमें भाग लेना बिलकुल पसंद नहीं करते, जो निश्चित ही शुद्ध साम्प्रदायिक स्वरूप ग्रहण कर लेगा । . . . बादशाह खानका कहना है कि यदि मुद्दा पठानिस्तान और पाकिस्तानके बीच चुनाव करनेका नहीं हो सकता, तो वे अपने अनुयायियोंको सलाह देंगे कि जनमतकी कार्रवाईमें भाग न लिया जाय । उनकी रायसें इससे स्थिति कुछ हलकी हो जायगी, हालांकि कमसे कम कुछ समयके लिए तो यह प्रान्त कांग्रेसके हाथसे निकल सकता है। [आचार्य कृपलानीका पत्र लॉर्ड माउन्टबेटनको, २८ जून, १९४७]

२९ जूनको गांधीजीने भी इसी आशयकी बात लॉर्ड माउन्टबेटनको लिखी : "बादशाह खान मुझे लिखते हैं कि स्वतंत्र पठानिस्तानका उनका प्रयत्न असफल रहा, इसलिए जनमत लिया जायगा; उनके अनुयायी उसमें कोई हस्तक्षेप नहीं करेंगे और इस पक्ष या दूसरे पक्षमें कोई मत नहीं देंगे। वे पूरी तरह समझते हैं कि इस सूरतमें सीमाप्रान्त संभवत: पाकिस्तानमें जायगा ।"

गांधीजीके पत्रमें यह बात भी लिखी थी :

वे चाहते हैं कि मैं इस बातकी तरफ भी आपका ध्यान खींचूं कि जनमत पर असर डालनेके लिए पंजाबी मुसलमानोंको छूटसे सीमाप्रान्तमें लाया जा रहा है। . . . इससे रक्तपात और उससे भी बुरी बातोंका खतरा बढ़ जाता है। उनका यह भी कहना है कि हजारों गैर-मुस्लिम निराश्रितोंको जनमतमें भाग लेनेका कोई अवसर नहीं मिलेगा; और उन्हें धमकाया जा रहा है कि अगर वे मतदानके अधिकारका उपयोग करेंगे, तो उन्हें कठोर सजा दी जायगी।

मैंने आजके पत्रोंमें देखा कि कायदे आजम जिन्नाका यह कहना है कि यदि पठान मतदान नहीं करेंगे, तो यह जनमतकी शर्तोंका भंग होगा। मुझे इस कथनमें कोई वजूद दिखाई नहीं देता।

लॉर्ड माउंटबेटनने गांधीजीको उत्तर दिया: "मुझे यह सुन कर खुशी हुई कि जनमतकी कार्रवाई बादशाह खानके अनुयायियोंके हस्तक्षेपके बिना होने दी जायगी। मैं आपके पत्रकी नकल गवर्नरको भेज रहा हूं, ताकि वे आपके उठाये हुए पंजाबी मुसलमानों . . . और गैर-मुस्लिम शरणार्थियों संबंधी मुद्दोंके परिणाम-स्वरूप जरूरी मालूम होनेवाली कार्रवाई कर सके ।" [१३. लॉर्ड माउन्टबेटनका पत्र गांधीजीको, ३० जून, १९४७]

लॉर्ड माउन्टबेटनके संदेशको सीमाप्रान्तके गवर्नरने कया महत्त्व दिया, यह बादशाह खान द्वारा १२ जुलाईको गांधीजीके नाम लिखे पत्रसे जाना जा सकता है। वह पत्र इस अध्यायमें अन्यत्र (देखिये पृष्ठ ३६२-६३) ज्योंका त्यों उद्धृत किया गया है। अपने दूसरे पत्रमें वाइसरॉयने इसके बजाय यह शिकायत की कि खुदाई खिदमतगार लोगोंको मत न देनेके लिए "समझा रहे" हैं : "मेरे खयालसे आप इस बातसे सहमत होंगे कि इस प्रकारकी कार्रवाईसे वही हिंसा होनेकी संभावना है, जिसे आप और मैं टालना चाहते हैं। मेरा विश्वास है कि यदि ये समाचार सच हैं . . . तो आप खान अब्दुल गफ्फार खांको . . . उस नीति पर अमल करनेके लिए समझा सकेंगे।" [लॉर्ड माउन्टबेटनका पत्र गांधीजीको, ४ जुलाई, १९४७]

इसका उत्तर गांधीजीने यह दिया:

बेशक आजकल बादशाह खान मतदाताओंसे यह कहनेके लिए आन्दोलन कर रहे हैं कि उनके लिए मतदानमें भाग लेना गलत है। मतदानके दिनोंमें कोई प्रदर्शन नहीं होना चाहिये और मतदानके समय मतदाताओंके पास किसीको नहीं जाना चाहिये । यदि आपका यह मतलब है तो इस बातका उल्लेख मैं शामकी प्रार्थनामें कर दूंगा। यदि बादशाह खानके पास पहुंचनेका कोई अधिक जल्दीका उपाय आप सुझायें, तो मैं उसे अपनानेको बिलकुल तैयार हूं। यदि आपके ध्यानमें और कोई बात हो, तो कृपया बताइये ।

माउंटबेटन इससे अधिक चाहते थे।

लॉर्ड माउन्टबेटनका पत्र गांधीजीको

५ जुलाई, १९४७

यदि आप कुछ और आगे बढ़ें और मतदानके दिनोंसे पहले किसी ऐसे आन्दोलनकी निन्दा करें जिसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष परिणाम उपद्रव हो, तो मैं स्वभावतः आपका आभारी रहूंगा।

मेरे खयालसे यह महत्त्वकी बात है कि खान अब्दुल गफ्फार खांको आपकी सलाह जल्दीसे जल्दी मिल जाय; और यदि आप उन्हें पत्र लिख दें, तो मैं विमान-चालकके हाथों उसे पेशावर भेजनेका प्रबंध कर सकता हूं और गवर्नरसे अनुरोध करके उसे आगे भिजवा सकता हूं।

आपकी सहायताके लिए मैं अत्यंत कृतज्ञ हूं।

सौभाग्यसे दोपहरके करीब एक पठान गांधीजीसे मिलने आया। वह खुदाई खिदमतगार था। वह पेशावर जा रहा था। इसलिए उसके साथ गांधीजीने बादशाह खानको जबानी सन्देश भिजवाया। उन्होंने बादशाह खानके लिए एक पत्र भी वाइसरॉयके पास भेज दिया:

गांधीजीका पत्र लॉर्ड माउन्टबेटनको

५ जुलाई, १९४७

आप यह पत्र पढ़ सकते हैं। अगर आप समझते हैं कि जो नयी बात आपने उठायी है वह इसमें आ जाती है, तो अपने सुझावके अनुसार आप इसे विशेष सन्देश-वाहकके हाथ भेज सकते हैं। मैं आशा रखता हूं कि बादशाह खान और उनके अनुयायियोंकी तरफसे कोई बाधा खड़ी नहीं होगी। पठान खुदाई खिदमतगारके द्वारा जो सन्देश मैंने बादशाह खानको भेजा है, उसमें बादशाह खानको लिखे मेरे पत्रसे बहुत अधिक बातें हैं। अगर साथवाला पत्र आपको पसन्द न हो, तो आपको अधिकार है कि आप उसे न भेजें।

वाइसरॉयके मारफत गांधीजीने जो पत्र बादशाह खानको भेजा वह इस प्रकार है:

गांधीजीका पत्र बादशाह खानको

५ जुलाई, १९४७

खुदाई खिदमतगार आलम खां १२ बजेसे पहले मुझसे मिला। उसने कहा कि वह आज रातको पेशावर जा रहा है। मैंने उसके हाथों आपके लिए कोई पत्र नहीं भेजा। परन्तु मैंने उससे कहा कि लीगी मुसलसानोंके खिलाफ कोई प्रदर्शन नहीं किया जाना चाहिये; इतना काफी होना चाहिये कि तनाव और गलत-बयानीकी वर्तमान स्थितिमें खुदाई खिदमतगार इस तरफ या उस तरफ मतदान बिलकुल न करें; जहां तक भीतरी राजकाजका सम्बंध है, उन्हें पूर्ण स्वराज्य मांगने और लेनेका अधिकार है और उस स्वराज्यमें पाकिस्तान या भारतीय संघ किसीका कोई हस्तक्षेप नहीं होना चाहिये; और जब दोनोंके संविधान अमलमें आ जायं और सीमाप्रान्त अपना स्वायत्त संविधान बना ले, तब वे इस चुनावके बारेमें निर्णय कर सकते हैं कि वे भारतीय संघमें रहेंगे या पाकिस्तानमें । सबसे बड़ी बात तो यह है कि मुस्लिम लीगके सदस्योंके साथ संघर्षके हर मौकेको टालना चाहिये। इस समय पठानोंकी सच्ची बहादुरीकी परीक्षा हो रही है। वह परीक्षा इसी बातमें है कि विरोधियोंकी तरफसे मार पड़े या मुत्यु भी आये, तो प्रसन्नतासे उसका स्वागत किया जाय और बदलेकी जरासी भी कार्रवाई न की जाय । जनमतके बहिष्कारका परिणाम बेशक पाकिस्तानियोंके लिए कानूनी जीत होगी; परन्तु वह उनकी नैतिक हार होगी, यदि आपकी तरफसे हिंसाका जरा भी डर न रख कर अधिकांश पठान शानदार ढंगसे जनमतमें भाग न लें । कोई शोरगुल न होना चाहिये, कोई जुलूस न निकाला जाना चाहिये और अधिकारियोंकी किसी भी आज्ञाकी अवज्ञा नहीं होनी चाहिये। यह पत्र वाइसरॉयके पास आई हुई उस शिकायतका भी उत्तर है, जिसमें कहा गया है कि खुदाई खिदमतगारोंकी तरफसे उपद्रव होनेका भय है।"

दो दिन बाद गांधीजीने एक और पत्र बादशाह खानको भेजा: "प्रिय बादशाह, आपकी ओरसे कोई समाचार नहीं हैं। आशा है, आपको मेरा लम्बा पत्र मिल गया होगा और आपने उसके अनुसार काम किया होगा । हमारी तरफसे मन, वचन और कर्ममें अहिंसाका पूर्ण पालन हो इसमें ही आपकी और मेरी प्रतिष्ठा है। इस समय (साढ़े नौ बजे) तक अखबारोंमें कोई समाचार नहीं हैं। सस्नेह – बापू ।"

बादशाह खानके १२ जुलाईके पत्रमें जो उत्तर आया वह अशान्तिकारक था: "मैं और मेरे कार्यकर्ता गांव गांव जाकर लोगोंको समझा रहे हैं कि मुस्लिम लीगियोंकी तरफसे उत्तेजनाका कारण

पैदा होने पर भी वे बिलकुल अहिंसक रहें । मुस्लिम लीगी यहां रोज जुलूस निकालते हैं और अत्यन्त आपत्तिजनक नारे लगाते हैं । वे हमें काफिर कहते हैं और गालियां देते हैं । . . . मुझे खुद उनके अपमान और तिरस्कारका अनुभव हुआ है। मेरा खयाल है कि मुस्लिम लीगियों, सरकारी अधिकारियों और जनमतके कार्यसे सम्बन्धित अफसरोंके बीच कोई संगठित षड्यंत्र है। . . . चुनाव-अधिकारियोंने सैकड़ों झूठे मतोंको मान्य रखनेमें सक्रिय रूपसे प्रोत्साहन दिया है। . . . कुछ स्थानोंमें ८० से ९० फी सदी वोट पड़े हैं; यह ऐसी बात है जो किसी भी चुनावमें सुनी नहीं गई – और खास तौर पर ऐसी मतदातासूचीके आधार पर, जो लगभग दो वर्ष पहले तैयार की गई थी।

"हम बहुत ही कठिन और कसौटी करनेवाली परिस्थितियोंमें काम करते रहे हैं, परन्तु मन, वचन और कर्मसे हम अहिंसा पर अटल हैं। मेरे लिए यह कहना आसान नहीं कि यह स्थिति कब तक बनी रह सकती है। . . . थोड़ेमें मुस्लिम लीगी सरकारी अधिकारियोंकी मददसे दंगा-फसाद करने पर तुले हुए हैं । हमने संघर्षको टालनेके लिए सारी इन्सानी ताकत लगा दी है।

"एक बात और है, जो हमारे लिए गम्भीर चिन्ता पैदा कर रही है। वह है हमारे प्रान्तमें बहुतसे पंजाबियोंका आ जाना। . . . ये लोग पठानोंको खुले तौर पर हिंसा करनेके लिए भड़काते हैं। इतना ही नहीं, उन्होंने आम सभाओंमें यहां तक सुझाया है कि खुदाई खिदमसतगारोंके चोटीके नेताओंका काम तमाम कर दिया जाय। वे यह भी खुले आम कहते हैं कि प्राकिस्तान कायम हो जानेके बाद न्यूरेम्बर्गके ढंगका मुकदमा चलाया जायगा और जो लोग इस्लामके प्रति गद्दार कहे जाते हैं उन सबको फांसीकी सजा दी जायगी । . . . विधान-सभाके एक सदस्य (हजारा) श्री जलालुद्दीनने एक सार्वजनिक सभामें कहा कि अगर कोई मुसलमान मंत्री हजारा जायगा, तो उसे मार दिया जायगा।"

दिल्लीके एक प्रमुख दैनिकमें ३ जुलाई, १९४७ को ये समाचार छपे हैं : "खान जलालुद्दीनने घोषणा की है कि "मैं मंत्रि-मंडलको चेतावनी देता हूं कि अगर कोई मंत्री हजारा जिलेमें आकर कांग्रेसका प्रचार करनेकी कोशिश करेगा, तो उसे मार डाला जायगा।" . . . उन्होंने यह भी कहा है कि हजारा लौटनेसे पहले हिन्दुओं और सिक्खोंको स्पष्ट घोषणा कर देनी चाहिये कि वे पाकिस्तानका पूरा समर्थन करेंगे और अगर वे जिलेमें शान्तिपूर्वक रहना चाहते हैं तो इस घोषणाकी एक प्रति उन्हें लीगके दफ्तरमें भेज देनी चाहिये।" [दि हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली, ३ जुलाई, १९४७]

इसी समयके आसपास अफगान सरकारने डूरानड लाईनके परिवर्तनकी अपनी पुरानी मांगको सार्वजनिक रूपमें ताजा किया। यह लाईन भारत और अफगानिस्तानके बीचकी सरहदको बताती है। सारे औचित्यको ताकमें रखकर मुस्लिम लीगने इसका संबंध पठानोंकी स्वशासनकी मांगके साथ जोड़ दिया और खान बन्धुओंके विरुद्ध प्रचार करनेके लिए इसका उपयोग किया । बादशाह खान पर अफगानिस्तानका खेल खेलनेका आरोप लगाया गया । खान बन्धुओं पर अविचारी ढंगसे तरह तरहके लांछन लगाये गये। उनमें से एक यह था कि दो भारतीय दूत रहस्यमय ढंगसे काबुल गये। इन आरोपोंके संबंधमें डॉ. खान साहबने अपने एक पत्रमें पं. नेहरूको लिखा: "हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि अफगानिस्तानमें मिलनेका हमने कभी विचार ही नहीं किया। . . . हमें तो यह भी पहली बार मालूम हुआ है कि अफगान सरकारने सरकारी तौर पर भारत सरकारके साथ सम्पर्क स्थापित किया है। चूंकि हम एक विषम स्थितिमें डाल दिये गये हैं, इसलिए स्वाभाविक रूपमें ही अफगान सरकार उसका अनुचित लाभ उठा रही है। हमें पता नहीं कि कांग्रेसका कोई दूत अफगान सरकारके पास गया या नहीं।" [डॉ. खान साहबका पत्र पं. नेहरूको, २ जुलाई, १९४७]

गांधीजीको भी अपने आप पर लगाये हुए मौनको तोड़ना पड़ा और एक ऐसे आदमीके विरुद्ध, जिन्हें वे सत्य और सम्मानकी मूर्ति मानते थे, निन्दाकी इस मुहिमको देखते हुए अपना मुंह खोलना पड़ा। ३० जुलाईको उनका साप्ताहिक मौन और आत्म-निरीक्षणका दिन था, इसलिए उन्होंने प्रार्थना-सभामें एक लिखित संदेशमें कहा: "बादशाह खान और उनके साथियोंको यह अच्छा नहीं लगा कि उनसे हिन्दुस्तान और पाकिस्तानके बीच चुनाव करनेको कहा जाय, जिनका हिन्दू या मुसलमान अर्थ करना अन्यायपूर्ण है। इसलिए खुदाई खिदमतगार अपना मताधिकार काममें नहीं लेंगे। . . . बादशाह खान पर यह इलजाम लगाया जा रहा है कि पठानिस्तान कोई नया नारा है। सीमाप्रान्तमें कांग्रेसी मंत्रि-मंडलके अस्तित्वमें आनेसे पहले भी, जहां तक मैं जानता हूं, बादशाह खानके मनमें प्रान्तके भीतरी मामलोंमें पठान-स्वाधीनताकी बात थी। वे कोई नया और अतिरिक्त राज्य नहीं बनाना चाहते। यदि वे अपना स्थानीय संविधान तैयार कर सकें, तो वे एक राज्य या दूसरे राज्यमें मिलनेका खुशीसे चुनाव कर लेंगे। मेरे लिए यह समझना मुश्किल है कि पठान-स्वशासनकी इस तीव्र आकांक्षाका विरोध क्यों किया जाता है। हां, पठानोंको जलील करके उन्हें गुलाम बना कर रखनेका उद्देश्य हो तो बात दूसरी है। अधिक

गम्भीर आरोप तो यह है कि बादशाह खान अफगानिस्तानके हाथोंमें खेल रहे हैं। मैं मानता हूं कि वे ऐसा नीच कार्य कर ही नहीं सकते। वे सीमाप्रान्तको अफगानिस्तानमें विलीन नहीं होने देंगे।"

गांधीजीने यह भी कहा: "बादशाह खानका मित्र होनेके नाते, और मैं उनका मित्र हूं इसलिए, मुझे उनका एक दोष स्वीकार करना चाहिये । उन्हें अंग्रेजोंके दावों ओर इरादोंके बारेमें खास तौर पर बहुत संदेह रहता है। मैं सब लोगोंसे अनुरोध करूंगा कि इस दोषकी वे उपेक्षा करें, क्योंकि यह दोष उन्हींकी विशिष्टता नहीं है। इतनी ही बात है कि उनके जैसे बड़े नेताको यह शोभा नहीं देता। मेरा कहना है कि यद्यपि इसे मैंने दोष बताया है और एक तरहसे वह दोष है भी, फिर भी दूसरी दृष्टिसे उसे गुण भी समझना चाहिये; क्योंकि वे कोशिश करें तो भी अपने विचारोंको छिपा नहीं सकते । वे इतने ईमानदार हैं कि अपने विचारोंको छिपाना उनके लिए असंभव है।"

६

ऐसे वातावरणमें सीमाप्रान्तमें जनमतकी कार्रवाई चली। कांग्रेसके वरिष्ठ नेता फिसलनवाले ढाल पर खड़े थे, इसलिए बादमें जो कुछ हुआ उसे उन्हें स्वीकार करना पड़ा। यह प्रक्रिया आज तक जारी है। उन्हें सिर्फ इतनी-सी रियायत मिली कि सर ओलेफ कैरोको दो महीनेकी छुट्टी पर भेज दिया गया और लेफ्टिनेन्ट जनरल रॉब लॉकहार्टको इस अवधिके लिए उनके स्थान पर गवर्नर नियुक्त कर दिया गया। इतनासा करानेके लिए भी लॉर्ड माउंटबेटन जैसे वाइसरॉयकी आवश्यकता हुई। सीमाप्रान्तकी उस समयकी स्थितिमें इससे उतना ही अन्तर पड़ा, जितना कि आधा दर्जन या छहमें होता है।

बलूचिस्तानमें जनमतके बजाय एक अर्ध-प्रतिनिधित्ववाली संस्था खड़ी कर दी गई, जब कि सीमाप्रान्तमें – जहां लोकप्रिय प्रतिनिधियोंकी सभा पहलेसे ही मौजूद थी – उनके फैसलेकी उपेक्षा करनेके लिए एक झूठे कारणसे जनमतका सहारा लिया गया। खुदाई खिदमतगार दल और उसके समर्थकोंने जनमतमें कोई भाग नहीं लिया और सीमाप्रान्त पाकिस्तानका एक भाग घोषित कर दिया गया। यह कहनेमें लॉर्ड माउंटबेटनके नेक इरादोंकी निन्दा नहीं है कि एक तरफ तो अपनी विभाजन-योजनाको लीगसे मंजूर करानेकी उनकी चिन्ता और उच्चतर अंग्रेज अधिकारियोंकी चालबाजियां थीं और दूसरी तरफ अंग्रेजोंके कूटनीतिके खेलमें फंस कर कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओंने अपनी निराशापूर्ण

स्थिति बना ली थी। चक्कीके इन दो पाटोंके बीच पिस कर उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्त खतम हो गया और व्यावहारिकताकी बेदी पर न्यायकी हत्या कर दी गई।

३० जुलाईको गांधीजी दिल्लीसे काश्मीरके लिए रवाना हुए और बादशाह खान अपने प्रान्तको लौट गये। गांधीजीने उनसे कहा: आपका कर्तव्य वहीं जाकर "पाकिस्तानको सचमुच पाक बनाना है।" जब बादशाह खान बिदा होने लगे तो गांधीजीकी मंडलीके सदस्योंसे बोले : "महात्माजीने हमें सच्चा मार्ग दिखा दिया है। जब हम नहीं रहेंगे तब बहुत दीर्धकालके बाद हिन्दुओंकी भावी पीढ़ियां उन्हें भगवान कृष्णकी तरह अवतार मानेंगी, मुसलमान खुदाका पैगम्बर समझेंगे और ईसाई उन्हें दूसरे ईसामसीह मानेंगे । . . . वह दिन भारतके लिए गौरवशाली होगा। ईश्वर उन्हें दीर्घायु दे, ताकि वे हमें अन्त तक सत्य और न्यायके लिए लड़नेकी प्रेरणा और शक्ति देते रहें। . . . हमारे लिए प्रार्थना कीजिये कि भगवान हमें साहस और श्रद्धा दे – हमें भयंकर समयका सामना करना है।"

इसके बाद दोनों फिर कभी नहीं मिले। १५ अगस्त, १९४७ को डेढ़ सौ वर्षकी गुलामीके बाद भारत तो स्वाधीन हो गया, परन्तु खान बन्धुओंके लिए लड़ाई अब शुरू हुई थी। अब तक वे अंग्रेजोंसे, जो विदेशी थे, संग्राम करते रहे। अब उनके अपने ही भाई सत्तारूढ़ थे। अवश्य ही वे उनसे न्याययुक्त व्यवहारकी आशा रख सकते थे। इतने वर्षों तक वे एक जुएके बदले दूसरा जुआ गरदन पर रखनेके लिए ही नहीं लड़े थे।

विभाजनके बाद भी डॉ. खान साहबका मंत्रि-मंडल सत्तारूढ़ रहा। उसकी नींव इतनी मजबूत थी कि उसे सामान्य वैधानिक उपायोंसे उखाड़ा नहीं जा सकता था। २१ अगस्त, १९४७ को पाकिस्तानके गवर्नर जनरल जिन्नाने एक सरकारी आज्ञा द्वारा उसे पदच्युत कर दिया।

सितम्बर १९४७ के पहले सप्ताहमें प्रान्तीय जिरगों, सीमाप्रान्तके संसदीय पक्ष, जलमई पख्तून (पठान युवक संघ), खुदाई खिदमतगारों और कबायली इलाकोंके प्रतिनिधियोंकी सरदारयाबमें एक विशाल सभा की गई। उस सभामें बादशाह खानने एक बार फिर पठानिस्तानकी मांगकी व्याख्या की । वह इससे न ज्यादा थी और न कम : 'पठानोंको पाकिस्तान राज्यके भीतर एक इकाईके रूपमें अपने भीतरी राजकाजका प्रबन्ध करनेकी पूरी स्वतन्त्रता हो ।' उस सभामें स्वीकार किये गये प्रस्तावोंमें से एक यह था : "इस नये राज्यमें उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्तके वर्तमान छह स्थायी जिले और पठानोंकी

बस्तीवाले ऐसे अन्य सब जुड़े हुए इलाके होंगे, जो अपनी स्वतंत्र इच्छासे इस नये राज्यमें शरीक होना चाहेंगे। यह राज्य प्रतिरक्षा, विदेशी मामलों और संचारके साधनोंके सम्बन्धमें पाकिस्तानके उपनिवेशसे समझौता कर लेगा।"

बादशाह खानने घोषणा की: "पठानिस्तानकी स्थापनाके लिए मैं जीवन-भर काम करता रहा हूं। पठानोंमें एकता स्थापित करनेकी गरजसे ही खुदाई खिदमतगारोंका संगठन १९३० में शुरू किया गया था। मेरे जो सिद्धान्त १९३० में थे वही आज भी हैं। इसलिए मेरा रास्ता बिलकुल साफ है। मैं दुनियामें अकेला ही इस रास्ते पर चलनेवाला रह जाऊंगा, तो भी इसे नहीं छोडूंगा।"

विभाजनके बाद खानबन्धु गांधीजीको या अपने भारतीय साथियोंको क्वचित् ही पत्र लिखते थे। पाकिस्तान राज्यके नागरिक होनेका उन्हें इतना खयाल रहता था कि वे अपनी नेकनीयती पर किसीको सन्देह नहीं होने देना चाहते थे। फिर भी उन्हें बदनाम करने और सतानेकी मुहिम जारी रही। नवम्बरके महीनेमें गांधीजीके पास चिन्ताजनक समाचार पहूंचे । उनसे उन्हें खान बन्धुओंकी सुरक्षाकी चिन्ता हो गई। बादशाह खानको एक पत्रमें उन्होंने सुझाया कि वे खुले तौर पर सीमाप्रान्त छोड़ दें और भारतमें बैठ कर अहिंसक कार्य-प्रणालीका विकास करें। "यह कार्य आप यहां मेरे साथ या मुझसे अलग रह कर भी कर सकते हैं। अलग रहकर कैसे कर सकते हैं, यह मैं नहीं जानता। दूसरा विकल्प यही है कि जहां आप हैं वहीं रहें और पाकिस्तानके अधिकारी जो भी बुरेसे बुरा व्यवहार करें सो करने दें। कुछ लोगोंकी तरह मैं यह नहीं मानता कि अहिंसा सभ्य अथवा अर्ध-सभ्य समाजके सामने ही प्रस्तुत की जा सकती है। अहिंसाकी ऐसी कोई मर्यादा नहीं होती।" [गांधीजीका पत्र बादशाह खानको, १७ नवम्बर, १९४७]

बादशाह खान उन लोगोंमें से नहीं थे, जो किसी अग्नि-परीक्षासे भाग जाते हैं। उत्तरमें उन्होंने गांधीजीको कहलवा भेजा कि आप चिन्ता न कीजिये; सिर्फ अपना आशीर्वाद और दुआएं मेरे और मेरे साथियोंके लिए भेज दीजिये। वे श्रद्धालु थे और उसी मिट्टीके बने हुए थे, जिससे वीर और शहीद बनते हैं। वे अपने भाई डॉक्टर खान साहबके साथ गुरुकी शिक्षामें अपनी श्रद्धाके तथा गुरुके अपने प्रति रहे विश्वासके साक्षी बन कर पाकिस्तानके कारागारमें रहे। [भारतके विभाजन और गांधीजीकी मृत्युके बाद

खान बन्धुओंके वीरतापूर्ण संघर्षकी विस्तृत कहानीके लिए पाठक देखें लेखककी पुस्तक 'ए पिल्ग्रिमेज फॉर पीस', अहमदाबाद, १९५०]

"जिन शक्तियोंको

तूने पीछे छोड़ दिया है

याद रख, वे ही तेरा काम करेंगी।

वायु, पृथ्वी और आकाश –

हवाकी एक-एक सांस तक

ऐसी नहीं, जो तुझे भूल सके।

तेरे अनेक साथी,

अनेक मित्र हैं, जैसे –

उल्लास और वेदना,

प्रेम और मानवका अपराजित मन ।"

तीसरा भाग

सबने त्याग दिया

तेरहवां अध्याय: 'प्रभातसे पहलेका घोरतम अंधकार'

१

सीमाप्रान्तकी घटनाओंने गांधीजीको अत्यन्त दुःखी बना दिया था। जिस ढंगसे भारतका विभाजन किया जा रहा था वह वैसा ही था जैसा कि विभाजनका निर्णय। उससे शान्तिके आसार नजर नहीं आते थे। उन्होंने अपने एक प्रार्थना-प्रवचनमें कहा : "लॉर्ड माउन्टबेटनका आशय तो अच्छा है, परन्तु मुझे भय है कि जिस मार्ग पर वे चल रहे हैं उससे अन्तमें अनजाने ही अपार हानि हो सकती है।" [प्रार्थना-प्रवचन, ११ जून, १९४७] तात्कालिक राहत पानेकी अविवेकपूर्ण उतावलीमें वास्तविक स्थितिसे जूझनेकी अनिच्छा मालूम होती थी और ढोंग तथा झूठे वचनोंका आश्रय लिया जा रहा था। भारत छोड़कर जानेवाली ब्रिटिश सत्ताके बारेमें गांधीजीकी भविष्य-वाणी सही सिद्ध हो रही थी। उसमें गहरी फूट दिखाई दे रही थी। भूतकालमें जब उस सत्ताके अपने स्वार्थ खतरेमें होते थे तब वह मजबूत कदम उठानेमें संकोच नहीं करती थी। परन्तु अब वह अपनी गंभीर घोषणाके पूरे परिणामोंका सामना करने और हिंसाको मजबूत हाथोंसे दबा देनेके लिए तैयार नहीं थी।

गांधीजीको इससे कोई लाभ होता नजर नहीं आता था। अंग्रेजोंके हाथों देशका विभाजन स्वीकार करके कांग्रेसने खुले गृहयुद्धको तो टाल दिया था, परन्तु यह परिणाम उन्होंने भीतर ही भीतर सुलगते रहनेवाले अघोषित युद्धकी कीमत पर खरीदा था। गांधीजी खुले सत्यको अधिक पसन्द करते। खुला युद्ध कितना ही भयंकर हो, वह स्वाभाविक रूपमें शांतिकालमें परिणमित होता है और कमसे कम कुछ समयके लिए तो जरूर एक प्रकारकी सुरक्षा प्रदान करता है। परन्तु अघोषित युद्ध, जिसे तीसरे पक्षकी सशस्त्र शक्ति ही खुली लड़ाईके रूपमें फूट पड़नेसे रोकती है, भयंकर आवेगोंको केवल तीव्र ही बनाता है। और चूंकि मानसिक हिंसा हमेशा उस अतिरेककी दिशामें जाती है जिसकी ओर शारीरिक हिंसा क्वचित् ही जाती है, इसलिए यह हिंसा जब अंतमें फूट पड़ती है तो वह बिजलीके आघातकी तरह प्रलयकारी भयंकरताके साथ प्रकट होती है और अपने पीछे मृत्यु और विनाशकी निशानीके सिवा दूसरा कुछ नहीं छोड़ती ।

इसीलिए गांधीजी अंग्रेजोंकी छत्रछायामें भारतका विभाजन करनेके इतने विरुद्ध थे। विभाजनके परिणाम जैसे जैसे सामने आते जा रहे थे वैसे वैसे गांधीजीके बुरेसे बुरे भयोंकी पुष्टि हो रही

थी। कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओंने भारतका अंगभंग इस खयालसे स्वीकार किया था कि उन्हें और देशको लीगकी घातक प्रवृत्तियोंसे स्थायी रूपमें मुक्ति मिल जायगी। पं. नेहरूकी गम्भीर भाषामें कहा जाय तो उन्होंने सिरदर्दसे मुक्त होनेके लिए अपना सिर काट लिया था। उन्हें आराम उतना ही मिला जितना अंग कटवानेवाले किसी आदमीको मिलता है। उसके पास एक "कृत्रिम अंग" रह जाता है, जो बिगड़ा हुआ अंग काट दिये जाने पर भी कहीं ज्यादा कष्ट देता है।

अब तक लॉर्ड माउन्टबेटनने किसी न किसी तरकीबसे लीगी सदस्योंके अंतरिम सरकारमें बने रहनेके मुद्देको उग्र नहीं बनने दिया था। जब दलोंने विभाजन स्वीकार कर लिया, और खास कर जब कांग्रेसने इस विषयमें अपनी मांग पर फिर जोर दिया तब तो इस मुद्देको टालना कठिन हो गया। परन्तु जिन्नाने धमकी दी कि अगर मुस्लिम लीगके आदमियोंको अंतरिम सरकारसे हटा दिया गया, तो ३ जूनवाली योजना पर लीगकी स्वीकृति वापस ले ली जायगी। इसलिए माउन्टबेटन ऐसा कोई कदम उठानेसे डर गये, जिससे ब्रिटिश संसदके द्वारा भारतीय स्वाधीनताका कानून स्वीकृत होनेकी संभावना खतरेमें पड़ जाय। गवर्नर-जनरलकी नियुक्तिका प्रश्न भी तय होना था। मालूम होता है कि कांग्रेस और लीग दोनोंने अस्थायी रूपमें यह मान लिया था कि आरंभमें भारतके दोनों भागोंके गवर्नर-जनरल लॉर्ड माउन्टबेटन हों। परन्तु जिन्ना चालाकीसे अपने विधिवत् निर्णयको अंत तक स्थगित करते रहे। उन्हें शायद यह आशा थी कि वे वाइसरॉयसे और अधिक राजनीतिक रियायतें ऐंठनेके लिए इस चीजका उपयोग ब्रह्मास्त्रकी तरह कर सकेंगे। वाइसरॉयके सलाहकारोंका यह खयाल था कि ऐसी परिस्थितियोंमें वाइसरॉयको ऐसी कोई कार्रवाई नहीं करनी चाहिये, जो उनके "तटसथ और लगभग न्यायाधीश जैसे दर्जे" को खतरेमें डाल दे। माउन्टबेटनने एक उपाय यह सुझाया कि अंतरिम सरकारके सारे विवादास्पद मामले, जहां तक मुमकिन हो, फिलहाल अलग रख दिये जायं और दैनिक प्रशासनमें झगड़ेकी जो बातें पैदा हों वे मंत्रि-मंडलमें बहुमतसे तय होनेके बजाय उनके पास निर्णयके लिए भेज दी जायं। इससे उन्हें अस्थायी राहत मिल गई थी, परन्तु तनाव बना रहा था। पंजाब, बंगाल और सीमाप्रान्तमें परिस्थितियां दिनोंदिन ज्यादा और ज्यादा खराब होती गईं; सिक्ख अधीर हो गये; उत्तर-पश्चिमी पंजाबके निराश्रितोंकी संख्या बढ़ गई; सिन्ध और सीमाप्रान्तमें अल्पसंख्यकोंको पाकिस्तानमें अपने भविष्यके बारेमें अधिकाधिक असुरक्षितता महसूस होने लगी; स्वयं राजधानीके चारों ओर एक तरफ गुड़गांव जिलेके मुसलमान मेवों और दूसरी तरफ हिन्दू अहीरों और जाटोंके बीच डटकर लड़ाइयां लड़ी जा रही

थीं और सरदार पटेल यह देखकर कुढ़ते थे कि अंतरिम सरकारमें और प्रशासनमें मुस्लिम लीगका मोरचा मजबूतीसे जमा हुआ होनेके कारण वे बिगड़ती हुई स्थितिका सामना करनेका कोई उपाय नहीं कर पाते थे। वातावरण गंभीर था।

आखिर भारतीय मुस्लिम लीगको परिषद् ने विभाजनकी योजनाको स्वीकार करनेवाला प्रस्ताव पास कर दिया, उसके दूसरे दिन गांधीजीने लॉर्ड माउन्टबेटनको एक बार फिर लिख कर यह समझाया कि परिस्थिति पर कोई नियंत्रण न रखनेमें कितना खतरा है :

> आप जितनी जल्दी एकरूप मंत्रि-मंडल बना लें उतना ही अच्छा है। किसी भी सूरतमें लीगके सदस्योंको सारे मंत्रि-मंडलसे स्वतन्त्र होकर काम नहीं करने दिया जा सकता। यह बहुत बुरी बात है कि अलग अलग सदस्योंके हर कामकी कोई सम्मिलित जिम्मेदारी नहीं है। . . .
>
> असैनिक और सैनिक सेवाओंकी समस्याको उसी मजबूतीसे हल करनेकी जरूरत है। . . . गुड़गांवकी लड़ाईको ही लीजिये। जहां तक मैं जानता हूं, सिर्फ एक ही अधिकारी वहां उपद्रव जारी रहनेके लिए जिम्मेदार है।
>
> अन्तमें मेरा कहना है कि सब दलोंको खुश रखनेका प्रयत्न निष्फल और निरर्थक है। हमारी बातचीतके दौरान मैंने आपसे कहा था कि दोनों दलोंकी समान प्रशंसाका कोई अर्थ नहीं होता । किसीकी भी प्रशंसा न करना सही बात होती । "जब ऋण दान बन जायगा तब कर्तव्य सार्थक हो जायगा।" सुधार करनेमें कभी भी बहुत देर नहीं होती । योद्धाकी हैसियतसे आपमें जो असंदिग्ध कुशलता है, उसकी आज जितनी जरूरत है उतनी पहले कभी नहीं थी। समझिये कि नाविकके पास उसकी बुद्धिशक्तिके सिवा नौकादल जैसा कुछ भी नहीं है ! [गांधीजीका पत्र लॉर्ड माउन्टबेटनको, १० जून, १९४७]

परन्तु लॉर्ड माउन्टबेटनकी अपनी कठिनाइयां थीं। यह बात उनकी योजनाओंके साथ मेल नहीं खाती थी। इसलिए संकट बना रहा।

गांधीजीको यह भय सताने लगा कि माउन्टबेटनके नेक इरादे खाकमें मिल सकते हैं, अगर कैबिनेट-मिशनके भारत आगमनके समयसे जिस नीतिका अनुसरण किया जा रहा है उसमें मौलिक परिवर्तन न किया गया। उन्होंने एक बार माउन्टबेटनको फिर समझानेका निश्चय किया। इस सम्बन्धमें

२६ जूनको माउन्टबेटनके साथ गांधीजीकी जो मुलाकात हुई, उसके परिणाम-स्वरूप एक घटना हो गई:

गांधीजीका पत्र लॉर्ड माउन्टबेटनको

२७ / २८ जून, १९४७

मैंने आपको तीसरे पहर एक पत्र भेजा था। शामकी प्रार्थना और सैरके बादका समय मैं कुछ ऐसे मामलों पर आपसे बातें करनेमें लगाना चाहता हूं, जिन्हें मैं मुलाकातके समय स्पर्श ही कर सका था, लेकिन समझा नहीं पाया था।

कैबिनेट-मिशनसे पहले जो पार्लियामेन्टरी प्रतिनिधि-मंडल इंग्लैण्ड से आया था उससे और खुद कैबिनेट-मिशनसे मैंने कहा था कि आपको दो या तीन दलोंमें से चुनाव कर लेना पड़ेगा । अगर आप सबकी बातको सही मानकर सबको खुश रखनेका प्रयत्न करेंगे, तो आपके भाग्यमें असफलता ही लिखी रहेगी । मैंने यह आशा रखी थी कि आप इस असंभव स्थितिसे निकल जानेकी बहादुरी और ईमानदारीसे कोशिश कर रहे हैं । परन्तु मेरी आंखें खुल गईं जब आपने कहा – अगर मैंने आपकी बात ठीक ठीक समझी है तो – कि कांग्रेसी सदस्योंके जितनी ही कायदे आजम जिन्ना और लीगी सदस्योंकी बात भी सही है और शायद कायदे आजम जिन्नाकी बात ज्यादा सही है। मेरा कहना था कि मानव-दृष्टिसे यह संभव नहीं। तुलनात्मक दृष्टिसे एक पक्ष जरूर बिलकुल सही होगा। इस देशके इतिहासकी इस अत्यंत नाजुक स्थितिमें आपको अपना चुनाव कर लेना होगा। अगर आपके खयालमें सब बातोंको देखते हुए कायदे आजम जिन्ना कांग्रेससे ज्यादा सही और युक्तिसंगत हैं, तो आपको लीगको अपना सलाहकार चुन लेना चाहिये और सारे मामलोंमें स्पष्ट और खुले तौर पर उसकी सलाह माननी चाहिये।

आपने यह संकेत किया था कि शायद आपको कायदे आजम १५ अगस्तको भी यहांसे न जाने दें, खास तौर पर अगर कांग्रेसी सदस्योंने सहायक रवैया न अपनाया। मेरे लिए यह एक चौंका देनेवाली बात थी। मैंने बताया था कि अंग्रेजोंने भारतके दो दुकड़े करनेमें शरीक होकर शुरूमें ही गलती की। उस गलतीको तो अब मिटाना संभव नहीं। परन्तु मेरी रायमें उस गलतीको न बढ़ाना बिलकुल संभव और आवश्यक है। इससे न्यायसंगत व्यवहारके बहुत स्तुत्य

सिद्धान्तकी कोई हानि नहीं होती । न्यायपूर्ण व्यवहारका तकाजा है कि मैं गलती करनेवाले पक्षको यह समझ लेनेमें सहायता न दूं कि गलती कोई गलती नहीं थी, बल्कि किसी जिम्मेदारीको देरसे और आंशिक रूपमें निभानेकी बात थी।

आपने यह कह कर भी मुझे चौंका दिया था कि यदि ब्रिटिश सत्ताके रहते हुए भारतका विभाजन न किया जाता, तो हिन्दुओंका बहुमत होनेके कारण वे कभी विभाजन न होने देते और मुसलमानोंको जबरन् गुलामीमें रखते। मैंने आपसे कहा था कि यह एक गंभीर गलती है। इस सम्बन्धमें संख्याका प्रश्न बिलकुल टिक नहीं सकता। मैंने पुराना उदाहरण देकर कहा था कि एक लाखसे भी कम अंग्रेज सिपाहियोंने भारतको गुलाम बना कर रखा था। आपको इन दोनों दृष्टान्तोंमें कोई साम्य दिखाई नहीं दिया। मेरा कहना था कि अन्तर केवल मात्राका है।

मैं आपके विचारके लिए नीचेकी बातें रखता हूं :

(क) कांग्रेसने शपथपूर्वक कह दिया है कि वह भारतीय संघके भीतर किसी प्रान्तको जबरन् नहीं रखेगी।

(ख) जाति-पांतिके दलदलमें फंसे हुए लाखों हिन्दुओंके लिए संभव ही नहीं कि संख्यामें थोड़े परन्तु अधिक संगठित मुसलमानोंको वे जबरदस्ती गुलाम बना कर रख सकें।

(ग) यह नहीं भूलना चाहिये कि एकके बाद दूसरे मुस्लिम वंशोंने भारतको ठीक उन्हीं उपायोंसे गुलाम बनाया, जिनसे बादमें अंग्रेज विजेताओंने उसे गुलाम बनाया।

(घ) एक आन्दोलन तथाकथित परिगणित जातियोंको और तथाकथित आदिवासियोंको मुसलमानोंके पक्षमें करनेके लिए पहले ही शुरू हो गया है।

(ङ) यह निर्णायक रूपमें सिद्ध किया जा सकता है कि जिन सवर्ण हिन्दुओंको काल्पनिक हौआ बना दिया गया है, वे अतिशय अल्पसंख्यामें हैं। उनमें से शस्त्रधारी राजपूत तो एक वर्गके रूपमें अभी तक राष्ट्रवादी नहीं हैं। ब्राह्मणों और वैश्योंको अभी तक शस्त्र-प्रयोगकी तालीम नहीं मिली है। उनकी श्रेष्ठता जहां है वहां केवल नैतिक श्रेष्ठता है। मुझे खेद है कि शूद्रोंकी

गिनती परिगणित वर्गमें ही अधिक होती है। ऐसा हिन्दू समाज केवल संख्याबलके आधार पर लाखों मुसलमानोंको कुचल सकता है, यह स्तब्ध बना देनेवाली कल्पना है।

इससे आपको पता चल जाना चाहिये कि मैं अकेला हूं तो भी क्यों अहिंसा और सत्यकी दुहाई देता हूं और कहता हूं कि ये दोनों ऊंचेसे ऊंचे दर्जेके साहसके प्रतीक हैं, जिनके सामने अणुबम बिलकुल तुच्छ है, तब फिर तोपोंसे सज्ज युद्ध-जहाजोंकी तो बात ही क्या ?

यह पत्र मैंने किसी साथीको नहीं दिखाया है ।

माउन्टबेटनने उसी दिन उत्तर दिया: "मुझे प्रसन्नता है कि आपने मुझे लिख दिया, क्योंकि आपका पत्र पढ़नेके बाद मुझे लगता है कि **लगभग शुरूसे आखिर तक मैं आपको अपना अभिप्राय स्पष्ट करनेमें सफल नहीं हो पाया हूं**। मुझे प्रसन्नता है कि आपने अपना पत्र औरोंको नहीं दिखाया, क्योंकि मुझे बड़ा दुःख होगा कि जो विचार मैंने वास्तवमें प्रकट नहीं किये वे मेरे बताये जायं। आशा है, आप हमारी अगली मुलाकातमें इन बातों पर फिर चर्चा करना स्वीकार करेंगे।" (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

इस मुलाकातमें क्या हुआ और बादमें इन प्रश्नोंको लिया गया अथवा नहीं, इसका कोई लेखा नहीं है। इसलिए यह कहना असंभव है कि दोनोंके बीच इतनी जबरदस्त गलतफहमी कैसे पैदा हुई और कैसे अन्तमें वह मिटी । खैर, नतीजा यह हुआ कि दोनोंका एक-दूसरेकी सचाईमें आदर और विश्वास ज्योंका त्यों बना रहा। इस पत्र-व्यवहारसे इस बातका बहुत ही स्पष्ट चित्र मिलता है कि जिस संकटकी ओर देश बहता जा रहा था, उसे टालनेके अंतिम प्रयासमें गांधीजीका मन किस तरह काम कर रहा था; साथ ही, इससे इस बातका भी उत्तम दृष्टान्त मिलता है कि वे अहिंसाके पालनमें दूसरे पक्षको भी उतनी ही नेकनीयतीका श्रेय देनेको पूरी तरह तैयार रहते थे जितनी नेकनीयतीका वे अपने लिए दावा करते थे। इससे आपसी संबंधोंमें कटुताका भाव न रह कर बड़ीसे बड़ी गलतफहमियां भी पारस्परिक सद्भाव और मेलजोलकी बुनियादको मजबूत और गहरी बनाती थीं और ध्येयकी सेवाके लिए नये नये मित्र मिल जाते थे।

जूनके अन्तिम सप्ताह और जुलाईके आरंभमें अन्तरिम सरकारके कांग्रेसी सदस्य सरकारमें लीगी सदस्योंके बने रहनेके विकट प्रश्न पर त्यागपत्र देनेके बिन्दु पर पहुंच गये थे। यह प्रश्न अन्तिम रूपसे हल हो जाना चाहिये था। इससे सम्बन्धित निर्णय अब मुल्तवी नहीं किया जा सकता था। अन्तमें

कायदे आजमने अपने आपको पाकिस्तानका गवर्नर-जनरल नियुक्त करके इस प्रशनको सरल बना दिया। अब माउन्टबेटन काम करनेके लिए मुक्त हो गये परन्तु जिन्नाने आपत्ति उठाई कि किसी भी कारणसे अन्तरिम सरकारके मुस्लिम लीगी सदस्योंसे उनके विभाग ले लेना लीगका अपमान करनेके बराबर होगा । और जब माउन्टबेटनने अन्तमें एक योजना निकाली, जो उनके विचारसे सारी आपत्तियोंका समाधान कर देती थी, तो जिन्नाने यह धमकी दी कि वे १९३५ के भारत शासन-विधानके अनुसार अंतरिम सरकारकी पुनर्रचनासे सम्बन्धित वाइसरॉयकी योजनाको "गैर-कानूनी" करार देंगे । लंदनसे जो कानूनी सलाह मिली उससे जिन्नाकी आपत्तिका समर्थन होता था। इससे लॉर्ड माउन्टबेटनको तो कुछ आराम मिल गया, लेकिन कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओंका सिरदर्द पहलेसे भी बढ़ गया। वह जुलाईके तीसरे सप्ताह तक बना रहा।

१९ जुलाई, १९४७ को जब स्वाधीनताका कानून ब्रिटिश पार्लियामेन्टने पास कर दिया और उसे सम्राट्की स्वीकृति मिल गई, तब वाइसरॉयने अन्तरिम सरकारकी पुनर्रचना की और सारे व्यावहारिक प्रयोजनोंके लिए उसे दो कामचलाऊ प्रशासनोंमें बांट दिया – एक भारतीय संघके लिए और दूसरा पाकिस्तानके लिए। दोनों भाग समान हितके विषयोंमें एक-दूसरेसे सलाह लेते थे, परन्तु और सब बातोंमें स्वतंत्र रूपसे काम करते थे। जहां तक पंजाब, सीमाप्रान्त और सिन्धकी कानून और व्यवस्था-विषयक स्थितिका सम्बन्ध था, इससे उसमें कोई सुधार नहीं हुआ। और इस प्रकार स्वाधीनताके मिलने तक ज्वालामुखी गड़गड़ाता और गरजता रहा, जब उसने अपने शिखरको उड़ा दिया और उसका पिघला हुआ लावा बाहर बहने लगा, जिसने लाखों लोगोंको अपने आग्नेय पाशमें बांध लिया।

२

ग्रेट ब्रिटेनके साथ भारतके भावी संबंधोंका पेचीदा सवाल हल नहीं हुआ था। कांग्रेसने भारतीय संघके लिए उस समय तक औपनिवेशिक दर्जा स्वीकार करनेका निर्णय किया था जब तक कि संविधान-सभा इस प्रश्नको तय न कर दे। गांधीजी इस निर्णयमें शरीक तो नहीं थे, फिर भी उन्होंने इसका समर्थन किया। परन्तु जिन शर्तों पर भारत ब्रिटेनके साथ संबंध रख सकता था, उनके बारेमें गांधीजीके विचार बहुत प्रबल थे। वे नहीं चाहते थे कि ग्रेट ब्रिटेनके साथ भारतके भावी संबंधों पर पिछले अन्यायोंकी स्मृतिका प्रभाव पड़े । इसके विपरीत, उनकी राय थी कि चूंकि आजकलकी सिकुड़ती हुई

दुनियामें कोई देश अलग-थलग नहीं रह सकता, इसलिए अगर भारतको किसी देशके साथ संबंध स्थापित करनेका चुनाव करना पड़े, तो स्वभावत: उसे किसी और देशके साथ नया संबंध जोड़नेके बजाय ब्रिटेनके साथ पुराना संबंध बनाये रखना ज्यादा पसन्द करना चाहिये। उनका लक्ष्य था: ब्रिटेनके साथ भारतका सम्बन्ध तोड़ा न जाय, परन्तु उसका आमूल परिवर्तन और शुद्धीकरण किया जाय। उनके असहयोगके पीछे हमेशा सहयोगकी उत्कट इच्छा बनी रहती थी।

वर्षों पहले एक घटना हुई थी, जिससे गांधीजीके रवैयेका पता लगता था। १९२८ में कलकत्तामें हुए कांग्रेसके विशेष अधिवेशनमें औपनिवेशिक स्वराज्य बनाम पूर्ण स्वाधीनताका प्रश्न गरमागरम बहसका विषय बना हुआ था। गांधीजीका यह सूत्र था कि भारतके साथ न्याय करनेका ग्रेट ब्रिटेनको एक और मौका दिया जाय। इस विषयमें पं. नेहरूकी गांधीजीके साथ बहस हो रही थी। गांधीजीका कहना था कि अगर एक वर्षकी निश्चित अवधिके भीतर औपनिवेशिक स्वराज्यकी मांग स्वीकार न की गई, तो हम पूर्ण स्वाधीनताका लक्ष्य घोषित कर देंगे। पं. नेहरू उबल पड़े: “बापू, यह तो ऐसी ही बात होगी जैसे किसी स्त्रीके साथ कोई पुरुष बलात्कार करे और वह स्त्री उसी पुरुषके साथ विवाह करना चाहे।” अनुकूल उत्तर आया : “नहीं, यह ऐसा होगा जैसे कोई स्त्री अपने पर बलात्कार करनेवाले पुरुषको अपना बेटा बना ले और बादमें वह पुरुष उसे हमेशा अपनी सगी मां समझे । मुझे वास्तविक जीवनके ऐसे उदाहरण मालूम हैं।”

परन्तु उसी कारणसे गांधीजी इसके लिए बहुत उत्सुक थे कि सामने जो संकट खड़ा है उसमें वाइसरॉय, उनके अंग्रेज सलाहकार और भारतके सामान्य अंग्रेज कोई ऐसी बात न करें जो बिलकुल न्यायसंगत न हो। उनका कहना था कि सारे भारतके साथ व्यवहार करनेमें उन्हें सोलहों आना सही रुख अपनाना चाहिये, ताकि वे कोई कटु स्मृतियां यहां छोड़ कर न जायं। लेकिन इस बारेमें गांधीजीका मन शंकाओंसे सर्वथा मुक्त नहीं था।

गैर-जिम्मेदारीसे भरी बातें चल रही थीं कि सम्राट्की सरकार भारतीय संघ और पाकिस्तानके साथ सैनिक या दूसरे प्रकारके समझौते कर सकती है, और उनमें ऐसा भेदभाव रख सकती है जिससे एककी अपेक्षा दूसरेको अधिक पसंद करनेकी बात प्रकट हो । इसमें गांधीजीको बुराई और चालबाजीकी बहुत बड़ी संभावना नजर आती थी। इसके सम्बन्धमें उन्होंने वाइसरॉयको सुझाया कि

"इस आशयकी घोषणा कर दी जाय कि सम्राट्की सरकारकी यह इच्छा है कि या तो वह दोनों उपनिवेशोंके साथ त्रिपक्षी व्यवस्था करेगी या दोनोंके साथ एक ही तरहकी द्विपक्षी व्यवस्था करेगी और किसी भी हालतमें भेदभावका कोई प्रश्न नहीं रहेगा।" [लॉर्ड इस्मेकी गांधीजीके साथ हुए अपने वार्तालाप पर टिप्पणी, ७ जून, १९४७] माउन्टबेटनको गांधीजीका सुझाव पसन्द आया। उन्होंने उत्तर दिया : "मैं सम्राट्की सरकारको लिखूंगा। शायद प्रधानमंत्री पार्लियामेन्टकी बहसमें इस सम्बन्धमें कोई आश्वासन देंगे ।" [लॉर्ड माउन्टबेटनका पत्र गांधीजीको १० जून, १९४७] किन्तु ऐसा कोई आश्वासन नहीं दिया गया।

यदि गांधीजीकी सलाह मान ली जाती, तो शायद उससे दोनों उपनिवेशोंको अपने मतभेद दूर कर लेनेकी प्रेरणा मिलती। अथवा यदि वे मूर्ख ही बने रहते तो ग्रेट ब्रिटेनको राष्ट्र-मंडलके हमेशा झगड़नेवाले इन दो सदस्योंकी गंदगीके अनुकूल नहीं बनना पड़ता। परन्तु ऐसा नहीं किया गया और ग्रेट ब्रिटेनके सामने वही संभावना खड़ी हो गई जिसका उपाय करनेका गांधीजीने पहले ही प्रयत्न किया था।

बादमें भाई-भाईके विद्वेषका ज्वार दोनों उपनिवेशों पर फैल गया और वे एक-दूसरेसे युद्ध करने पर उतारू हो गये। मुस्लिम लीग (अब पाकिस्तान सरकार) को तो सफल "मुकदमेबाजी" का स्वाद लग चुका था। उसके जरिये वह अंग्रेजोंको पंच बनाकर ऐसी चीजें भी प्राप्त कर लेती थी, जिन्हें साधारणतः बिलकुल बेहुदा समझ कर ठुकरा दिया जाता। अब उसने वही खेल राष्ट्र-मंडलके भीतर खेलनेका प्रयत्न किया और उससे कहा कि वह काश्मीरके झगड़ेमें हस्तक्षेप करे और अपने निरीक्षक भेजे (संयुक्त राष्ट्रसंघके निरीक्षक उसके साथ हों या न हों), जो जांच करके इसकी रिपोर्ट दें कि विभाजनके बादसे पंजाबमें दोनों तरफसे क्या क्या ज्यादतियां हुई हैं। जाहिर है कि लीगको उस प्रचलन पर भरोसा था, जो भारतके विभाजनके कारण उसके "दो राष्ट्रोंवाले सिद्धान्त" को मिल गया था और उसे आशा थी कि जिस काश्मीरको वह चालाकी और ताकतसे नहीं ले सकी उसे इस आधार पर वह हथिया सकेगी।

गांधीजीको लगा कि ब्रिटेन, भारत और पाकिस्तान यदि राष्ट्र-मंडलकी अदालतमें दोनों उपनिवेशोंके बीचकी पुरानी "मुकदमेबाजी" फिरसे शुरू करें, तो यह तीनोंके लिए नैतिक दृष्टिसे अत्यन्त

पतनकारी होगा। इसलिए उन्होंने सुझाया श्री एटली भारतीय स्वाधीनताकी योजनाके निर्माता हैं, इसलिए अगर ये दोनों उपनिवेश भाई-भाईकी तरह साथ न रह सकें तो दोनोंको राष्ट्र-मंडलमें रखनेकी असमर्थनीय स्थितिसे उन्हें मुक्त हो जाना चाहिये । इसके लिए वे अपनी पसन्दका कोई उपाय करके "गैर-सरकारी तौर पर" इस बातका निश्चय कर लें कि दोनों पक्षोंमें से किसकी "भूल बहुत अधिक है और फिर उस पक्षकी नौकरीमें से प्रत्येक अंग्रेज अधिकारीको हटा लें |" यदि यह उपाय कारगर साबित न हो, तो दूसरा कदम यह होना चाहिये कि दोषी पक्षको राष्ट्र-मंडलसे निकाल दिया जाय।

मालूम होता है कि लॉर्ड माउंटबेटन और श्री एटली दोनों ही गांधीजीके सुझावके मूल आशयको पकड़ नहीं पाये । उनके सुझावका आशय यह नहीं था कि अंग्रेजोंको फिरसे पंच बनाया जाय अथवा ब्रिटेनके बजाय या ब्रिटेनके साथ संयुक्त राष्ट्रसंघको निर्णायक मुकर्रर किया जाय; बल्कि उनका आशय राष्ट्र-मंडलको वही भाग अदा करनेसे रोकनेका था, जो हानिकारक सिद्ध हो चुका था। वे नहीं चाहते थे कि भारतीय संघ और पाकिस्तानके बीच अदालती फैसला हो या दोनोंके दोषका बंटवारा करके बताया जाय। वे तो इतना ही चाहते थे कि उनकी (गांधीजीकी) तरह यदि श्री एटलीको भी पक्का विश्वास हो जाय कि उनका सुझाव सही है, तो वे अपने ही मार्गदर्शनके लिए संभवत: राजनयिक मार्गोंसे इस बातकी जांच करा लें। एक अभूतपूर्व स्थितिसे निबटनेके लिए अनौपचारिक कार्रवाई सारे कानूनी पूर्व-दृष्टान्तोंसे दूर रहेगी। इसका परिणाम यह होता कि राष्ट्र-मंडलके संबंधोंमें एक नई प्रणाली स्थापित होती, जिनका नियमन आज तक कानूनी कार्रवाइयों और वैधानिक पूर्वोदाहरणोंसे ही होता आया था। सार यह कि श्री एटलीको नैतिक नेतृत्व ग्रहण करना पड़ता और इसके लिए राष्ट्र-मंडलके सबसे पुराने सदस्यके प्रधानमंत्रीकी हैसियतसे उनकी स्थिति असाधारण रूपमें अधिकारपूर्ण थी। परन्तु गांधीजीका प्रस्ताव शायद इतने आश्चर्यजनक रूपमें नवीन था कि उसका महत्त्व फौरन पूरी तरह समझमें नहीं आ सकता था और इसलिए उसकी संभावनाओंकी खोज नहीं की गई। फिर भी पाकिस्तान भारतके साथ झगड़ा जारी रखनेकी दृष्टिसे राष्ट्र-मंडलका दुरुपयोग करनेके लिए जो कोशिश कर रहा था, उसे श्री एटलीने बुद्धिमानीसे रोक दिया।

गांधीजी भारतमें ब्रिटिश प्रणालीके विरुद्ध चौथाई शताब्दीसे भी अधिक समय तक लड़े, परन्तु अंग्रेजोंके चरित्रके प्रमुख गुणोंके लिए, व्यक्तिगत स्वतंत्रताके प्रति उनके प्रेमके लिए, परम्पराके आदरके लिए, उनकी धुन, लगन और अनुशासन-वृत्तिके लिए गांधीजीकी प्रशंसा निरन्तर बनी रही। उन्होंने आशा

रखी थी कि जब अंग्रेजोंने स्वेच्छासे भारतमें अपनी सत्ता समाप्त कर दी है, तो वे इस मार्ग पर और भी आगे बढ़ेंगे और राष्ट्र-मंडलीय संबंधोंको समानता, स्वतंत्रता, अशोषण तथा जातीय भेदभाव और बल-प्रयोगके परित्यागके आधार पर स्थापित करके संसारका नेतृत्व करेंगे। ऐसा राष्ट्र-मंडल विश्वसंघ स्थापित करनेकी दिशामें एक कदम सिद्ध होगा, जिसमें सर्वत्र सहिष्णुताका बोलबाला होगा तथा युद्ध और निजी शस्त्रीकरणका निषेध करू दिया जायगा। यदि स्वतंत्र राष्ट्रोंका ऐसा राष्ट्र-मंडल बन जाता, तो गांधीजी भारतका उसमें शरीक होना पसंद करते। परन्तु ऐसे राष्ट्र-मंडलका उन्हें कोई उपयोग दिखाई नहीं देता था, जिसमें जातीय भेदभाव, उपनिवेशवाद, शोषण और साम्राज्यवादकी दूसरी बुराइयां अब भी विद्यमान हों। उन्होंने इस बातको छिपाया नहीं कि उन्हें भावी औपनिवेशिक स्वराज्यसे रामराज्य प्रकट होनेके कोई लक्षण दिखाई नहीं देते। इसलिए उन्होंने कहा कि यदि राष्ट्र-मंडलका स्वरूप और आधार पूरी तरह बदल न दिया जाय, तो दोनों नये राज्योंको अपने संविधान तैयार होते ही पूर्ण स्वाधीनताकी घोषणा कर देनी चाहिये, ब्रिटिश उपनिवेशोंके एकांगी परिवारसे बाहर निकल जाना चाहिये और स्वाधीन राज्योंके ऐसे परिवारकी रचनाका लक्ष्य बना लेना चाहिये जिसमें कोई भीतरी सेनाएं न रहें।

लोकतंत्र और सैनिक मनोवृत्तिको गांधीजी परस्पर विरोधी वस्तुएं मानते थे। लोकतंत्रवादी उस शस्त्रबल पर आधार नहीं रखता "जो उसका राज्य संसारके सामने शेखीसे दिखाता फिरे, बल्कि उस नैतिक बल पर आधार रखता है जो उसके राज्यको संसारकी सेवामें अर्पण कर सके।" [हरिजन, १३ जुलाई, १९४७, पृ. २३५] गांधीजी चाहते थे कि भारत अपने आपको उस सिद्धिके लिए तैयार करे। यदि भारतके प्रयत्नसे स्वतंत्र और स्वाधीन राज्योंका ऐसा विश्वसंघ रचा जा सके, तो रामराज्यकी स्थापनाकी उचित रूपमें आशा रखी जा सकती है।

जब गांधीजीका निर्वाण हुआ उस समय भी ब्रिटेनके साथ भारतके भावी संबंधोंका सवाल हल नहीं हुआ था। अन्त समयसे कुछ दिन पहले गांधीजीने अंतिम बार इस विषयको स्पर्श किया था। उस समय एक योजनाकी जांच-पड़ताल हो रही थी, जिसके अनुसार भारतीय संघ गणतंत्र भी बन जानेवाला था और राष्ट्र-मंडलमें भी रहनेवाला था। लॉर्ड माउन्टबेटनका एक अ-सरकारी दूत गांधीजीका मन लेनेको आया। उसके चले जानेके बाद गांधीजी बोले: जब तक राष्ट्र-मंडलीय देशोंसे भारतवासियोंके प्रति रहा

जातीय भेदभाव दूर नहीं हो जाता तब तक मुझे तो राष्ट्र- मंडलमें रहना हरगिज मंजूर नहीं होगा। परन्तु मुझे भय है कि इस विषयमें कदाचित् मैं एकके अल्पमतमें रहूंगा।

३

तीनों दलोंके नेताओंने विभाजन-योजनाको अपनी स्वीकृति दे दी, उसके दो दिन बाद एक छोटीसी उच्चसत्ता-प्राप्त समिति बनाई गई, जिसमें कांग्रेस, लीग और सिक्खोंके प्रतिनिधि थे। वाइसरॉय उसके सभापति होनेवाले थे। उसे विभाजनके निर्णय पर और सत्ताके हस्तांतरणसे पैदा होनेवाली तरह तरहकी समस्याओं पर विचार करना था। जब पंजाब और बंगालने अपने अपने विभाजनके पक्षमें निर्णय कर लिया, तो उसके स्थान पर एक विभाजन-परिषद् बनी और उसे अन्तिम निर्णय करनेकी व्यापक सत्ता और अधिकार दिये गये । अखबारोंमें इस आशयके समाचार दिये गये कि सम्बन्धित दलोंने वाइसरॉयके सामने "स्वीकार कर लिया" है कि विभाजन "भाईचारेकी वृत्ति" से किया जायगा। परन्तु अनुभवने गांधीजीको ऐसे विधानोंके मूल्यके बारेमें शंकाशील बना दिया था। एक वार्तालापके दौरान उन्होंने कहा : "मुझे भय है कि हम अपने आपको और देशके लोगोंको धोखा दे रहे हैं।" व्यापक असत्यके वातावरणमें मेरी आत्मा सत्यका स्पर्श पानेके लिए व्याकुल हो रही है। मीठी मीठी बातोंसे कुछ होना-जाना नहीं है। दुनिया लच्छेदार भाषणों और चिकनी-चुपड़ी बातोंसे ऊब गई है। अगर बातोंके साथ वैसा काम भी हो, तो मैं खुशीसे नाचने लगूं।

विभाजन-परिषद्ने पंजाब और बंगालके सीमा-आयोगके अध्यक्ष-पद पर कार्य करनेके लिए सर सिरिल रेडक्लिफको निमंत्रित करनेका निश्चय किया । उनके विचारार्थ विषय इस प्रकार थे: "मुस्लिम और गैर-मुस्लिमः बहुमतवाले एक-दूसरेसे जुड़े हुए क्षेत्रोंके निर्धारणके आधार पर" प्रत्येक प्रान्तके दोनों भागोंकी सीमाबन्दी कर दी जाय। ऐसा करते समय उन्हें "दूसरी बातों" का भी ध्यान रखना था। इससे दोनों दलोंके लिए यह आशा रखनेकी गुंजाइश बनी रही कि सीमा-आयोग उन्हें उचित अपेक्षासे अधिक कुछ दे सकता है। मुस्लिस लीगको यह आशा हुई कि कलकत्ता शायद उसे मिल जाय और सिक्खोंको यह आशा बंधी कि हमारी जमीन-जायदाद और दूसरी योग्यताओंकी वजहसे हमें पंजाबमें अधिक अच्छा मौका मिल जायगा।

दोनों तरफकी ये आशाएं और अपेक्षाएं सबकी सब तो उस समयकी स्थितिमें पूरी नहीं हो सकती थीं। इसलिए उनसे मौजूदा तनावको कम करनेमें कोई मदद नहीं मिली। जूनके उत्तरार्धमें लाहौर और अमृतसरमें उत्तेजना चरम सीमा तक पहुंच गई। दोनों नगर पंजाबके विवादास्पद क्षेत्रमें थे। दोनोंकी आबादी ज्यादातर हिन्दू और सिक्ख थी और दोनोंका निर्माण अधिकतर उन्हींकी पूंजी और साहससे हुआ था। अधिकांश व्यापारिक और औद्योगिक पूंजी तथा स्थावर और जंगम सम्पत्ति भी उन्हीं लोगोंकी थी। इसके सिवा, अमृतसर तो सिक्खोंकी धार्मिक राजधानी भी थी। मुस्लिम लीगने "राजनीतिक भूमिका" पर दोनों शहरोंको पाकिस्तानमें मिलानेकी मांग की । विभाजनकी योजनाकी घोषणाके बाद इन दोनों स्थानोंमें आगजनी और लूटका बाजार गर्म हो गया। लाहौरमें जूनके तीसरे सप्ताहमें एक ही दिनमें १०० से अधिक घर जला दिये गये। इस कामके लिए जुड़ी हुई छतोंके धुआंदानों और रोशनदानोंमें पलीते डाले गये थे। बुरका पहने हुए आदमी सारे शहरमें दिन-दहाड़े निर्दोष व्यक्तियोंके छुरे भोंकते रहे । किसीने गांधोजीको छिप न सकनेवाले संतोषके साथ खबर दी कि अमृतसरमें दोनों पक्षोंकी "शक्ति एकसी" है और वे "लड़ कर निबट लेने" पर तुले हुए हैं ! गांधीजी दुःखी होकर बोले : "मेरी तो समझमें ही नहीं आता कि यह क्या मामला है। पाकिस्तान बने या न बने, क्या यह आत्मघाती लड़ाई जारी ही रहेगी ? लड़नेवाले लोग ईमानदारीसे मिल कर आगजनी और हत्याको बन्द कर देनेका फैसला क्यों नहीं कर सकते ? क्या हम दंगोंको दबा देनेके लिए शासक-जातिके मुंहकी ओर ही देखेंगे ? विदेशी राज्यका अन्त अब जल्दी ही होनेवाला है। भगवान करे लोग यह जंगलीपन बन्द करके मानव-जातिको अधिक अच्छा और अधिक बहादुरीका रास्ता दिखायें।"

ज्यों ज्यों जूनका महीना बीतता गया त्यों त्यों निराश्रित और उनकी समस्याएं गांधीजीका समय और ध्यान अधिकाधिक बंटाने लगीं। दिन-रात भंगीबसतीके चारों ओर निराश्रितोंकी भीड़ दिखाई देती थी। उनमें से कुछ लोग अपनी दुःखगाथा लेकर गांधीजीके पास आये और उन्हें हरिद्वार चलनेके लिए राजी कर लिया। वहां कमसे कम ३२ हजार लोग रावलपिंडी और पंजाबके दूसरे भागोंसे आ गये थे और उन्हें लगभग आधे दर्जन शिविरोंमें ठसाठस भर कर सहायता दी जा रही थी।

२१ जूनकी सुबह गांधीजी पं. नेहरूको साथ लेकर मोटरसे हरिद्वारके लिए रवाना हुए। सख्त गर्मी पड़ रही थी। शरीर झुल्सा जा रहा था। १२० मीलकी यात्रा करके ज्यों ही वे नियत स्थान पर पहूंचे त्यों ही निराश्रितोंने सब तरफसे उन्हें घेर लिया। उनके शरीरसे इतनी बदबू आ रही थी और इस तरह

पसीना बह रहा था कि सांस लेना भी कठिन हो गया। भीड़की धमा-चौकड़ी, चिल्लाहट और दु:खियोंके रोने-पीटनेसे आकाश गूंज रहा था। निराश्रित शिविरों पर धूल और मक्खियोंका घना बादल छाया हुआ था। सफाईका और दूसरी सुविधाओंका पूरा अभाव था। शिविर-अधिकारी गांधीजीके स्वागतके लिए मालाएं लेकर आया था। मालायें तो उसे जल्दी ही अलग रख देनी पड़ीं, क्योंकि महात्माजीने उसकी "विचार-हीनता" के लिए ऐसी डांट पिलाई, जो उसे उमर भर याद रही होगी। गांधीजीने संगठन-कर्ताओंको शिविरकी व्यवस्थाके बारेमें उचित सलाह दी और निराश्रितोंको यथाशक्ति सान्त्वना दी। उस दिन गांधीजीको एक क्षणका भी आराम नहीं मिला। तीसरे पहर वे दिल्लीकी दिशामें रवाना हुए। वे थक कर चूर हो गये थे। उन्होंने अपने पैर पं. नेहरूकी गोदमें रख दिये। नेहरूजी उन्हें हल्के हल्के दबाने लगे। थोड़ी देरके लिए गांधीजीको नींद आ गई। शामको नियत समय पर मोटरमें बैठ कर ही उन्होंने प्रार्थना की। जिस समय मोटर धीरे धीरे अंधकारमें विलीन हो रहे भूभागसे दौड़ी जा रही थी, उस समय आकर्षक गोधूलिकी शांति और स्तब्धताने सबको मोह लिया । पंडित नेहरू प्रार्थनामें आंखें बंद करके बैठे रहे ।

४

हरिद्वारसे लौट कर गांधीजीकी नजर रायटरकी समाचार-संस्था द्वारा अखबारोंमें प्रसारित किये गये एक रंगीन वर्णन पर पड़ी। यह वर्णन ब्रिटिश पार्लियामेन्टमें स्वाधीनता-बिल (इंडिपेन्डेन्स बिल) प्रस्तुत होने और "दो राष्ट्रों" के जन्मकी घोषणाके उपलक्षमें मनाये जानेवाले शानदार समारोहसे सम्बन्ध रखता था।

कभी कभी ऐसे अवसर आते हैं जब विचारहीनता दुष्टताकी सीमा तक पहुंच जाती है। ब्रिटिश मानसने कभी भारतके अंगभंगके पीछे रही गंभीर करुणताको पूरी तरह नहीं समझा। स्वाधीनता-बिलकी बहसके दौरान ब्रिटिश पार्लियामेन्टमें लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सके भाषणमें भी इतना हलकापन जाहिर हुआ, जिसकी ऐसे मौके पर आशा नहीं रखी जाती थी। उन्होंने याद दिलाया कि जब वे कैम्ब्रिजमें स्नातकसे नीची श्रेणीमें अभ्यास करते थे तब उनके कॉलेजका दरबान एक दिन तीसरे पहर उन्हें छोड़कर अपने घर चला गया । जाते समय उसने कहा कि आज शामको मेरी पत्नीके बच्चा होनेवाला है। दूसरे दिन वह उदास मुंह लेकर लौटा और उसने खबर दी कि उसे यह आशा थी कि उसके घरमें एक ही बच्चा आ रहा है, लेकिन उसकी पत्नीने दो जुड़वां बच्चे पैदा कर दिये ! "भारतमें भी कुछ ऐसी ही बात

हुई है। भारत-माताको बहुत लम्बे समयसे प्रसव-पीड़ा हो रही थी और सबको आश्चर्य हो रहा था कि जिस शिशुका जन्म होगा उसका स्वरूप कैसा होगा। लेकिन देखिये, भारत-माताके गर्भसे एक राज्य निकलनेके बजाय दो जुड़वां राज्य निकल रहे हैं, जैसा कि इस बिलमें वर्णन किया गया है।" अंग्रेजोंका यह दावा था, और गांधीजीने उन्हें इसका श्रेय दिया था, कि भारतकी एकताको वे अपनी सबसे गौरवशाली सिद्धि मानते हैं और भारतके विभाजन पर खेद प्रकट करते हैं, जो उन्हें आशा है कि अल्पकाल तक ही रहेगा। वाइसरॉयने भारतीय नेताओंसे यह भी कहा था कि बिलमें बच निकलनेके लिए एक धारा खास तौर पर रख दी गई है, ताकि अलग होनेवाले प्रान्त या भाग आपसमें समझौता करके भारतीय संघमें वापस आ सकें। और अब, यदि रायटरके समाचारोंकी भाषा पर भरोसा किया जाय, यह दिखाई देता कि ब्रिटिश पार्लियामेन्ट भारतके विभाजन पर अपनी मुहर लगाने जा रही है और वह भी "दो राष्ट्रों" के सिद्धान्तके आधार पर इतने आडंबरके साथ लगा रही है कि वाइसरॉय भारतीय नेताओंसे जो कुछ कहते रहे थे उसकी भावनाके साथ इसका बिलकुल मेल नहीं बैठता।

२३ जूनकी प्रार्थना-सभामें गांधीजी बोले: "आजके अखबारोंमें यह चर्चा है कि जो भारत कल तक एक राष्ट्र था, उसके 'दो राष्ट्रों' में विभाजित होने पर लंदनमें एक भव्य समारोह होगा। इस दुःखद घटनामें संतोष माननेकी और आनंद मनानेकी क्या बात है ? हम इस विश्वासको पकड़े हुए हैं कि भले ही हम अलग हो रहे हैं, तो भी मित्रोंकी तरह और एक ही परिवारके भाइयोंकी तरह अलग हो रहे हैं। अब यदि समाचारपत्रोंकी खबर सही है, तो अंग्रेज हमारे 'दो राष्ट्र' बना देंगे और वह भी बाजे-गाजेके साथ। क्या यह बिदाईके समयकी अंतिम गोली चलाई जा रही है ? मुझे तो ऐसी आशा नहीं है।"

उन्होंने पूछा: लोग इस चुनौतीका सामना कैसे करेंगे ? भारतका यह विभाजन और उसके प्रान्तोंका उप-विभाजन हमारी बहादुरीकी परीक्षा कर रहे हैं। . . . अगर बड़ा साझेदार अपने नमकके प्रति सच्चा है, तो अंग्रेजोंकी पूर्व-दर्शित होशियारीको देशका विभाजन टालनेके रूपमें नहीं – भले वह विभाजन कितना ही अरूचिकर क्यों न हो – परन्तु बड़े साझेदारके नाते सही व्यवहार करके, सदा ही एक राष्ट्रके रूपमें कार्य करके और मुस्लिम अल्पसंख्यकोंको उनके अपने ही वतनमें विदेशी माननेसे इनकार करके बेकार बनाया जा सकता है।

सरदार पटेलको गांधीजीने लिखा: "आजके अखबारोंमें रायटरका तार देखिये । यह बिल दो राष्ट्रोंको जन्म देगा ! ! ! तब जो बड़ी बड़ी बातें यहां हो रही है, उनका क्या मूल्य है ? अगर आप उस पर अपनी अनुमति नहीं दे चुके हैं, तो (भारतीय राष्ट्रके प्रति किये जा रहे) इस अपराधको आप रोक सकते हैं । ब्रिटिश पार्लियामेन्टमें बिल पास हो जानेके बाद आपकी बात कोई सुननेवाला नहीं है।" [गांधीजीका पत्र सरदार पटेलको, २३ जून, १९४७]

कुछ दिनके बाद गांधीजीको वाइसरॉयका इस आशयका एक पत्र मिला कि पं. नेहरू, सरदार पटेल और मैं – सब यह महसूस करते हैं कि गांधीजीको भारतीय स्वाधीनता बिलका मसौदा "निश्चित रूपसे दिखाया जाय ।" इसलिए दूसरे दिन सुबह गांधीजी कांग्रेसके नेताओंके साथ वाइसरॉय-भवन गये । मसौदे पर उनकी तुरन्त जो प्रतिक्रियाएं हुईं वे लिखित रूपमें मौजूद हैं । वे कुछ पेन्सिलसे और कुछ स्याहीसे लिखी हुई हैं :

१. इस बातको यदि कानूनमें सम्मिलित न किया जा सके, तो कोई घोषणा ऐसी होनी चाहिये कि दोनोंका औपनिवेशिक दर्जा अस्थायी होगा ।

२. दोनोंके साथ बराबरीका व्यवहार किया जायगा।

३. बिलमें कोई यह बतानेवाली बात नहीं है कि पाकिस्तान भारतसे अलग हो रहा है और उसके बावजूद भारतकी हस्ती कायम है ।

४. कोई प्रान्त उसकी सहमतिके बिना दूसरे राज्यमें नहीं जा सकता ।

५. पाकिस्तानकी संविधान-सभाका अधिवेशन नियत तारीखसे पहले नहीं होगा।

६. रियासतोंकी स्थिति बहुत कमजोर है। मई १९४६ के वक्तव्यका उपयोग प्रगतिको रोकनेमें नहीं होना चाहिये !

क्षोभ तो मिट गया था, परन्तु फौलादी कांटा गांधीजीके दिलमें ज्यादा गहरा घुस गया था। ऐसी मनःस्थितिमें उन्होंने ५ जुलाईको प्रार्थना-सभामें भाषण दिया। उन्होंने कहा : बहुतसे आलोचकोंकी तरह मैं विधेयक (बिल) में कोई बुरा अर्थ नहीं देखता। एक भारतके बजाय दो भारत हो गये, यह स्वयं बहुत बुरी बात है। दोनोंका दर्जा समान है और मुस्लिम लीगको ऐसी परिस्थितियां पैदा करनेका संपूर्ण श्रेय

पानेका अधिकार है, जो कल तक असंभव दिखाई देती थीं। उसने कैबिनेट-मिशनकी गंभीर घोषणाको खतम कर दिया। उसने कांग्रेस और सिक्खोंको भारतका विभाजन स्वीकार करनेके लिए विवश कर दिया। **जो वस्तु स्वयं बुरी है वह इसीलिए अच्छी नहीं हो जाती कि संबंधित पक्षोंने उसे स्वीकार कर लिया,** भले ही हर पक्षके लिए उसे स्वीकार करनेके कारण अलग अलग रहे हों। यह कोई संतोष लेनेकी बात नहीं कि जिन्ना जो कुछ चाहते थे वह सारा उन्हें नहीं मिला । प्रकारमें कोई अन्तर नहीं है। वे एक सर्वसत्ताधारी राज्य चाहते थे। वह राज्य उन्हें पूर्णतम मात्रामें मिल गया है।

गांधीजीने आगे कहा : मैं इस बिलको बार-बार पढ़ता हूं और बार-बार देखता हूं कि तीनों पक्षोंने जाने-अनजाने स्वयंको, बिलके संदर्भमें, लोकमतके अधीन कर दिया है। यद्यपि अंग्रेज सारी सत्ता छोड़ रहे हैं, फिर भी विभाजनको स्वीकार करके तथा विरोधी आदर्श और विरोधी हित रखनेवाले दो सदस्योंको राष्ट्र-मंडलके परिवारमें रख कर उन्होंने अपने आपको न्यायकी तराजूमें रख दिया है। जब तक दोनों भागोंका ग्रेट ब्रिटेनसे कोई भी संबंध रहेगा तब तक ग्रेट ब्रिटेनके बारेमें बिलके बादके कार्यसे न्याय किया जायगा – न कि उसकी भाषासे, फिर वह कितनी ही उदार और उचित क्यों न दिखाई दे। मुझे डर है कि परस्पर-विरोधी स्वार्थोंमें मेल साधने और उनके साथ समान व्यवहार करनेका काम मानवकी शाक्तिसे बाहर होगा। संविधान सम्बन्धी कानून पास हो जाने पर अगर एक सदस्य राष्ट्र-मंडलसे निकल जानेका निश्चय करे तो क्या होगा ?

राजाओंका संबंध बहुत ही असन्तोषजनक अवस्थामें है। इस मामलेमें भी अंग्रेजोंकी प्रतिष्ठा दांव पर लगी हुई है। यदि कोई दुर्घटना हुई तो अवश्य ही उसका दोष अंग्रेजोंको दिया जायगा।

गांधीजीने आगे बताया कि पाकिस्तानके अधिकारियोंकी कुछ हरकतोंसे इस भयके लिए कारण मिला है कि पाकिस्तानमें परिगणित जातियोंको उनके हिन्दू भाइयोंसे अलग करनेकी कोशिश की जायगी। ऐसे समाचार हैं कि मुस्लिम लीगके नेता यह आशा दिला रहे हैं कि पाकिस्तानके परिगणित वर्ग पृथक् निर्वाचनका अधिकार ले सकते हैं। (बादमें पाकिस्तानके अल्प-संख्यकों पर उनके घोर विरोधके बावजूद पृथक् निर्वाचन थोप दिया गया।) क्या यह पाकिस्तानी ढंगके इस्लाममें शरीक होनेका उन्हें आह्वान है ? बलात् धर्म-परिवर्तन करनेकी घटनायें घटी हैं । क्या पाकिस्तान अवर्ण हिन्दुओंको एक विशेष प्रकारके इस्लामकी दीक्षा देनेका साधन है ? संसार बड़ी तेजीसे उन कट्टर रूढ़ियों और मत-

पंथोंके चंगुलसे निकलता जा रहा है, जिन्होंने उसे इतना ऊबा दिया और भ्रमित कर दिया है कि वह ईश्वरके अस्तित्वसे ही इनकार करने लगा है। सौभाग्यसे उस निषेधकी स्थितिका तेजीसे अंत आ रहा है और विश्वके परम निर्मातामें मानवकी ज्ञानपूर्ण श्रद्धा पुन: लौट रही है। क्या सार्वभौम श्रद्धाकी पुनर्स्थापनाके इस आन्दोलनमें पाकिस्तानका इस्लाम सबसे आगे रहेगा ? अथवा वह खुदाके नाम पर अन्धकार और नास्तिकताके दौरसे गुजरेगा ?

अंतमें गांधीजीने कहा: इस तरह जिन्नाने अनजाने हिन्दू धर्मको भी कसौटी पर चढ़ा दिया है। मैं कल कह चुका हूं कि जो लोग भारतको एक राष्ट्र मानते हैं, उनके लिए अल्पमत और बहुमतका प्रश्न नहीं हो सकता । सबको समान अधिकार और समान व्यवहार प्राप्त करनेका अधिकार है। हिन्दुओंको अपने धर्मका सारा मैल धो कर उसे शुद्ध बनानेका और विशुद्ध न्याय-परायणताके द्वारा यह सिद्ध कर दिखानेका दुर्लभ अवसर मिला है कि भारतीय संघमें जिस प्रकारका हिन्दू धर्म है वह विश्वधर्म ही है। इस दृष्टिसे देखा जाय तो भारतीय स्वाधीनताका बिल सब संबंधित दलोंके लिए अन्तिम परीक्षा जैसा माना जा सकता है। मैंने पाकिस्तानको बुरा बताया है। लेकिन उसे विशुद्ध रूपमें अच्छा बनाया जा सकता है, यदि सारी आशंकायें दूर कर दी जायं, सारी दुश्मनियोंको दोस्तीमें बदल दिया जाय और आपसी अविश्वासके स्थान पर विश्वासकी स्थापना हो जाय।

५

भारतीय स्वाधीनता-बिलका स्वीकृत होना ब्रिटेन और भारत दोनोंके इतिहासमें एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। ब्रिटेन "भव्य पूर्व पर अपना एकाधिकारपूर्ण स्वामित्व" जमाने आया था, उसके दो सौ वर्ष बाद घटना-चक्र पूरा हुआ । गांधीजीने कहा कि जब भारत पर ब्रिटेनका अधिकार स्थापित हुआ उस समय उसका गौरव शंकास्पद था, परन्तु जिस प्रकार उसने भारतमें अपनी सत्ताका अंत किया वह निस्सन्देह "ब्रिटिश राष्ट्रका उदात्ततम कार्य" है। ऐसा मैं कुछ मर्यादाओंके बावजूद कहता हूं, जिनकी चर्चा हम आगे चल कर करेंगे।

लॉर्डसभामें स्वाधीनता-बिलके दूसरे वाचनकी बहसके समय लॉर्ड हर्बर्ट सेम्युअलने कहा: "जैसा शेक्सपीयरने कोडोरके थेनके बारेमें कहा था, वैसे ही ब्रिटिश राज्यके बारेमें यह कहा जा सकता है कि 'उसके जीवनमें जीवनके त्यागने उसकी जैसी शोभा बढ़ाई वैसी अन्य किसी चीजने नहीं।' लोग

कभी कभी पूछते हैं कि वर्षोंके संघर्ष और रक्तपातके बाद शांतिसम्मेलन और संधियां करनेकी अपेक्षा युद्ध आरंभ होनेसे पहले ही दुनियाके राष्ट्र यह सब करनेकी बुद्धिमानी क्यों नहीं दिखाते ?" स्वाधीनता-बिलको "तमाम भावी पीढ़ियोंके लिए एक आदर्श उदाहरण . . . युद्धके बिना शांतिसंधि" बताते हुए लॉर्ड सेम्युअलने आगे कहा :

> पिछले ५० वर्षोंमें और उससे भी अधिक समयमें भारतीय जनताने खुले विद्रोहके सिवा अपनी इच्छायें प्रकट करनेके लिए लोकमतकी अभिव्यक्तिके सारे साधनोंका उपयोग किया है; और सिंहावलोकन करने पर मुझे लगता है कि यह कहना ठीक होगा कि भारतमें इस संघर्षकी सारी मंजिलोंमें कोई खुला विद्रोह नहीं हुआ, इसका कारण बहुत हद तक श्री गांधीका प्रभाव और अहिंसाका उनका सिद्धान्त रहा है, जो हिन्दू धर्मकी शांतिपूर्ण भावनाका एक अनिवार्य अंग है। इन दोनोंके अभावमें भारतमें घटना-चक्र बहुत हद तक अलग ही रहा होता ।

ब्रिटिश लोकसभामें सोरेन्सनने अपने भाषणमें यह आशा प्रकट की कि समय पाकर भारतके विभाजनकी खाई "कम हो जायगी" :

> एक बात है। यदि भविष्यमें यह साबित हो जाय कि पाकिस्तानमें हिन्दू अल्पमत और भारतमें मुस्लिम अल्पमतके लिए डरनेका कोई कारण नहीं है, बल्कि दोनों सहानुभूति और मित्रताकी भावनासे एक-साथ रह सकते हैं, तो इससे अवश्य ही भारतकी इन दोनों कौमोंको अन्तमें मिलाकर एक कर देनेवाला मसाला मिल जायगा । इसके सिवा, अगर एक तरफ पाकिस्तानमें और दूसरी तरफ भारतमें ये दोनों कौमें शान्ति और मित्रभावसे मिलजुल कर रहने लगें, तो निश्चित ही यह समझ लिया जायगा कि समग्र भारतमें इन दोनों कौमोंके वैसे ही वातावरणमें न रह सकनेका कोई कारण नहीं है।

बिलके पास होनेका एक खास लक्षण यह था कि ब्रिटिश पार्लियामेन्टके दोनों सदनोंमें किसी भी मंजिल पर मतदान नहीं हुआ, क्योंकि चर्चिलने पहले ही यह घोषणा कर दी थी कि बिलमें जो योजना प्रस्तुत की गई है उससे दो शर्तें पूरी हो जाती हैं – अर्थात् भारतीय दलोंमें सहमति और १९४२ में रखे गये क्रिप्स-प्रस्तावके अनुसार औपनिवेशिक स्वराज्यकी एक अवधि, जिसके लिए सभी दल वचन-बद्ध थे।

सहमतिके ढोंगका भंडाफोड़ गालाशरने किया। लोकसभामें बोलते हुए उन्होंने कहा : "मुझे यह वक्तव्य स्वीकार नहीं है कि (भारतके) लोग विभाजनके लिए जिम्मेदार हैं। वे भारतके विभाजनके लिए उतने ही जिम्मेदार हैं जितने आयर्लैंडके लोग आयर्लैंडके विभाजनके लिए थे। . . . यहांके शासक-वर्गको और भारतमें इनके भाईबन्दोंको ही भारतके विभाजनकी जिम्मेदारी स्वीकार करनी चाहिये।"

लॉर्डसभामें बोलते हुए लॉर्ड रैंकीलोरने भी उतनी ही साफ बातें कहीं । १९ वीं शताब्दीके पहले भारतमें जो कुछ हुआ था उसका हवाला देते हुए उन्होंने विभाजन-सम्बन्धी निर्णय और उसके परिणामोंके बारेमें ब्रिटिश रुखको "हाथ धोकर जिम्मेदारीसे बचना" बताया । ("जब पाइलेटने देखा कि उसकी कुछ चल नहीं रही है बल्कि शोरगुल बढ़ रहा है, तो उसने पानी लेकर भीड़के सामने अपने हाथ धो डाले और कहा कि मैं इस न्याय-परायण व्यक्तिकी हत्याका अपराधी नहीं हूं। तुम इसे देख लो।" [मैथ्यू, २७: २४])

लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सने भारतके अंगभंगका समर्थन किया। उन्होंने लॉर्डसभामें अपने भाषणमें कहा : ऐसा हल, जो कागज पर तो उतना अच्छा दिखाई न दे, परन्तु जिसे भारतके सब वर्गोंका या कमसे कम प्रमुख वर्गोंका वास्तविक और हार्दिक समर्थन प्राप्त हो, उस हलसे अच्छा है, जो आदर्श और सिद्धान्तकी दृष्टिसे तो अधिक अच्छा हो, परन्तु जो उनके बीच हमेशाके लिए फूटके बीज बो दे ।

दुर्भाग्यवश जिस अच्छाईका दावा किया गया वह नामकी ही थी। भूतकालीन ब्रिटिश नीतियोंने जिन शक्तियोंको गतिमान किया था, उनके कारण अंग्रेजोंको पंच बना कर लड़नेवाली कौमोंके बीच कोई हार्दिक समझौता हो ही नहीं सकता था। अंग्रेजोंके भारत छोड़नेके ढंगसे भारतकी कौमोंमें फूटके वे ही बीज पड़ गये, जिनका लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्सको डर था। उस ईमानदारीके बारेमें किसीको कोई शंका नहीं थी, जिससे प्रेरित होकर लॉर्ड पेथिक-लॉरेन्स और सर स्टैफर्ड क्रिप्सने, लॉर्ड माउन्टबेटनने, श्री एटलीने और अन्य लोगोंने सारा परिश्रम किया था। परन्तु जिस बुनियादी धारणा पर उनकी नीतियोंका आधार था वह गलत थी। उसमें वास्तविकता नहीं थी। और, इसलिए उनके विश्वासकी सचाई ही उनके इरादोंकी सफलतामें बाधक बन गई । ऐसी स्थितिमें ब्रिटिश सत्ताका एकमात्र कर्तव्य था : भारतीय दलोंकी इच्छाओंकी परवाह न करके भारतको छोड़ देना और उन्हें आपसकी बातचीतसे ही किसी समझौते पर आनेके लिए स्वतंत्र कर देना।

अंग्रेज जातिके एक बहुत सहृदय वर्गने इस चीजको स्पष्ट समझ लिया था। उसका खयाल था कि गांधीजीका अपने लोगोंसे यह कहना तो बिलकुल ठीक है कि वे स्वयं भारतके विभाजनके लिए जिम्मेदार हैं और विभाजन हो जानेके बाद उसकी बुराईको अहिंसाके द्वारा मिटानेका एकमात्र उपाय आत्म-निरीक्षण करना और अपने दिलोंसे फूटके बीज निकाल फेंकना है। परन्तु इससे अंग्रेजोंको संकीर्ण आत्म-संतोष मानने अथवा जिम्मेदारीके अपने हिस्सेसे बचनेका कोई कारण नहीं मिल जाता। इसके विपरीत, उन्हें अपने दिलोंको टटोलना चाहिये और यह पता लगाना चाहिये कि अंग्रेजोंकी पिछली बुरी नीतिके लिए वे उचित प्रयाश्चित्त क्या कर सकते हैं ? इस भावनाको गांधीजीके एक अंग्रेज मित्रने दृढ़ विश्वासके साथ अपने एक पत्रमें इस प्रकार व्यक्त किया :

> मुझे घोर लज्जा, शोक और पीड़ाका अनुभव हो रहा है; और जितना ही अधिक आप यह कहते हैं कि भारतको ब्रिटेनका दोष बतानेके बजाय अपना ही दोष देखना चाहिये उतना ही मुझे ज्यादा बुरा लगता है। मेरा खयाल है कि मैं आपका आशय समझता हूं और यह भी समझता हूं कि आप क्यों इस तरह बोलते हैं और आपने इस संकटसे भारतको कमसे कम रक्तपात, कमसे कम कटुता और अच्छीसे अच्छी वृत्तिके साथ पार करनेका कैसा दृढ़ निश्चय कर लिया है। परन्तु मैं अपनी ही अन्तरात्माके धिक्कारसे बच नहीं सकता । हम अंग्रेजोंने भारतको आध्यात्मिक दृष्टिसे इस करुण स्थितिमें पहूंचानेके लिए क्या नहीं किया है ? हो सकता है कि आजकी स्थितिमें मौजूदा योजना ही बनाई जा सकती थी; हम यह भी कह सकते हैं कि भारतको आजकी परिस्थितियोंमें स्वयंको कभी नहीं फंसने देना चाहिये था। परन्तु अन्तमें निश्चित रूपसे दोष हमारा ही माना जाना चाहिये, क्योंकि हमारी पिछली नीतियां ऐसी ही थीं – हमने भारतमें साम्प्रदायिक निर्वाचत जारी किया, हमने अपने प्रभावका उपयोग भारतीयोंमें फूट डालनेके लिए किया, हमने परिस्थितियोंको नियंत्रणमें नहीं रखा और भारतसे हम उस समय तक चिपके रहे जब स्थिति इस हद तक बिगड़ गई कि वहांके मानव स्वयं ही नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टिसे नीचे गिरने लगे।
>
> अब भी मुझे संतोष नहीं है कि हम सीधा ईमानदारीका व्यवहार कर रहे हैं – अधिकसे अधिक हम अभी भी राजनीतिक शतरंज ही खेल रहे हैं। . . . यहां प्रयाश्चित्तकी कोई भावना नहीं है। सामान्य प्रतिक्रिया यह है कि ब्रिटेनने भारतमें कोई भव्य कार्य किया था और अब उसकी

भव्य समाप्ति की है। अपनी जिम्मेदारीके बारेमें हमारा वही पुराना अन्धापन बना हुआ है और हम यह महसूस नहीं करते कि हमने भारतको ऐसी स्थितिमें पहूंचा दिया है, जिसमें उसकी जनता – अथवा कमसे कम उसके नेता – ईश्वर तक पहुंचनेके अलग अलग दृष्टिकोणोंके आधार पर देशका बंटवारा चाहते हैं। हम आखिर तक भारतको पकड़े रहे, उस दुर्भाग्यपूर्ण चुनावके समय तक भी – जिसमें उथल-पुथल और निराशाओंको जारी रहने देनेकी अपेक्षा देशका विभाजन स्वीकार किया गया। हमने स्थापित सरकारको सत्ता क्यों नहीं सौंप दी (हमींने उसे स्थापित किया था) और भारतको अपने निर्णय आप करनेके लिए सचमुच स्वतन्त्र छोड़कर हम चले क्यों नहीं आये ? जब जेलर एक ही दरवाजा खोलता है तब चुनावकी आजादी कहां रहती है ? बार बार यह कहना हास्यास्पद है कि दूसरे दरवाजेसे निकलना ज्यादा अच्छा होता, जब कि हिन्दू-मुस्लिम समझौतेका वह दरवाजा वर्षोंसे मजबूतीके साथ बन्द कर दिया गया है। . . .

मैं यह आशा लगाये बैठा था कि जब अन्तमें भारतकी स्वतंत्रताका दिन आयेगा, तो वह दोनोंके लिए आध्यात्मिक विजयका गौरवपूर्ण दिवस होगा। भारतके लिए वह अभी भी गौरवपूर्ण हो सकता है। लेकिन ब्रिटेनके लिए उसके लक्षण मालूम नहीं होते। साम्राज्यके उत्तराधिकारियोंको स्वर्गका राज्य मिलना बहुत कठिन है। . . . हम आध्यात्मिक दृष्टिसे मृत दिखाई देते हैं । फिर भी हमारे अन्तरकी गहराईमें भव्य गुणोंका वास है, जिनमें आपका विश्वास रहा है और जिन्हें हमारे अन्दरसे बाहर लानेकी आपने कोशिश की है। अत्यन्त उदार वृत्तिसे अपनी अहिंसाका प्रयोग करके यह कार्य आप अभी भी कर रहे हैं। उसका उत्तर आपको इधरसे क्यों नहीं मिलता ? अपनी श्रेष्ठताकी भावनाका नशा हममें गहरा पैठा हुआ है । ईसाके उपदेशका अर्थ भी हम इसी भावनासे करते हैं । . . . 'अहिंसक मनुष्यको पहले शून्य बन जाना चाहिये।' हम अंग्रेजोंके लिए यह बहुत कठिन है; कठिन तो सबके लिए है, लेकिन हमारे लिए खास तौर पर कठिन है। हम इतने लंबे समय तक साम्राज्यके स्वामी रहे हैं न। [हरिजन, ६ जुलाई, १९४७, पृ. २२३]

कुछ दिन बाद एक और पत्र-लेखकने गांधीजीको लिखा और बर्नार्ड शॉका यह उद्गार उद्धृत किया कि अंग्रेज कभी भूल नहीं करता; वह सब कुछ सिद्धान्तके लिए करता है: "वह देशभक्तिके सिद्धान्तोंके लिए आपसे लड़ता है; व्यवसायके सिद्धान्तों पर वह आपको लूटता है; साम्राज्यके सिद्धान्तों

पर वह आपको गुलाम बनाता है; राजभक्तिके सिद्धान्तों पर वह अपने राजाका समर्थन करता है और गणतंत्रके सिद्धान्तों पर वह अपने राजाका सिर काटता है।" पत्र-लेखकने गांधीजीसे पूछा कि अंग्रेज इन सिद्धान्तोंमें से किसके आधार पर भारत छोड़ रहा है ?

गांधीजीने उत्तर दिया : "मनुष्यमें आत्म-वंचनाकी उत्कृष्ट कला है।" अंग्रेज "इस कलामें सबसे निपुण" है। वह इसलिए भारत छोड़ कर जा रहा है कि उसे पता चल गया है कि आर्थिक और राजनीतिक आधार पर भारतको गुलाम रखना अनुचित है। अपने इस विचारमें वह बिलकुल सच्चा है। परन्तु सचाई और आत्म-वंचनामें पूरी संगति है। अंग्रेज अपने आपको यह समझ कर धोखा देता था कि अगर भारतमें अराजकता पैदा होती हो, तो वह उसे छोड़ कर नहीं जा सकता। लेकिन भारतको दो संगठित सेनाओंकी लड़ाईका मैदान बना कर छोड़नेमें उसे पूरा सन्तोष है। भारतको छोड़ कर जानेसे पहले वह एक कौमको दूसरीसे लड़ानेकी नीति पर अपनी स्वीकृतिकी मुहर लगा रहा है। और जहां तक भारतीय देशी राज्योंका सम्बन्ध है, उसमें सही काम करनेका साहस नहीं है। मुझे आशा है कि जब १५ अगस्तको अंग्रेज अंतिम रूपमें चले जायंगे उससे पहले वे दोनों दलोंको – अर्थात् कांग्रेस और मुस्लिम लीगको — मिला देंगे, क्योंकि अब एक दलको तो उसकी मनचाही वस्तु मिल ही गयी है। वह चाहे तो ऐसा कर सकता है। इसके विपरीत, यदि अंग्रेज भारतको अनिश्चित अवस्थामें छोड़ कर जाता है और ऐसे अनेक लड़नेवाले राज्योंकी संभावना पैदा कर देता है, जो इंग्लैंडसे और इसलिए परस्पर भी स्वतंत्र होंगे, तो अंग्रेजके नामको इससे अधिक बट्टा लगानेवाली और कोई बात नहीं हो सकती। तब तो औपनिवेशिक दर्जा मेरे लिए घृणित वस्तु हो जायगा। हालके चिह्नोंसे मेरे इस सन्देहको बल मिल रहा है। परन्तु मैं मृत्युसे पहले मरनेमें विश्वास नहीं करता। मुझे अब भी आशा है कि ब्रिटिश राजनीतिज्ञ अपना सम्पूर्ण दिवालियापन घोषित नहीं करेंगे, बल्कि भारत छोड़नेसे पूर्व सारी बातोंको व्यवस्थित कर देंगे। तब तक मैं अपना कोई निर्णय इस बारेमें नहीं दूंगा। [हरिजन, २० जुलाई, १९४७, पृ. २४२]

६

भारतके विभाजनके बाद सेनाके बंटवारेसे गांधीजीको सबसे अधिक पीड़ा हुई। लॉर्ड इस्मेने इसे "सबसे बड़ा अपराध और सबसे बड़ा सिरदर्द" कहा था। १ जुलाई और ११ जुलाईके बीच विभाजन-परिषद् ने बंटवारेके सिद्धान्त निश्चित किये। लॉर्ड सेल्बोर्नने लॉर्डसभामें खबर दी कि "सेनाको अब

हिन्दुओं और मुसलमानोंमें उसी तरह बांटा जा रहा है जिस तरह फुट-बालके मैचसे पहले दो दल चुने जाते हैं। यह विश्वास करना असंभव है कि शान्तिकी रक्षा हो सकेगी।"

गांधीजीको आशा थी कि पृथक्करणकी संधिमें ही संयुक्त प्रतिरक्षाकी व्यवस्था रखी जा सकेगी। निःसन्देह इस प्रस्तावमें कई कठिनाइयां थीं; परन्तु यदि भारतीय दलोंका वियोग शत्रुओंकी तरह न होकर सचमुच मित्रोंकी तरह होता, तो यह व्यवस्था असंभव नहीं थी। ६ जुलाईको गांधीजीने अपनी प्रार्थना-सभामें कहा कि संपूर्ण स्वाधीनताके निकट आगमन-जैसी महान घटनाके साथ जो उत्साह और उमंग लोगोंमें दिखाई देनी चाहिये वह दिखाई नहीं देती। उत्साहके अभावका कारण बेशक यह है कि देश दो ऐसे राज्योंमें बांट दिया जायगा, जो दो सशस्त्र छावनियोंका रूप ले लेंगे। कोई समान प्रतिरक्षा-सेना नहीं होगी। सेनाका बंटवारा होगा। इस ध्येयको सिद्ध करनेके लिए तेजीसे तैयारियां हो रही हैं। "ब्रिटिश शासनके विरोध के गौरवपूर्ण और कठिन दिनोंमें" हम बड़ी-बड़ो बातें किया करते थे कि भीतरी झगड़ोंको दबानेके लिए कोई सेना नहीं होगी, क्योंकि झगड़े होंगे ही नहीं; और हमें किसी विदेशी शत्रुके आक्रमणसे देशकी रक्षाके लिए प्रतिरक्षा-सेना भी नहीं चाहिये। परन्तु अब बहुत ऊंचे स्तर पर सैनिक खर्च रखा जायगा और उसमें जल्दी ही ठोस कमी होनेकी संभावना नहीं दिखती। असलमें तो सैनिक खर्चमें निश्चित वृद्धिकी ही भयंकर संभावना है –सारा खर्च परस्पर लड़नेके लिए होगा। और हमारे सामने दो नवजात राज्योंके बीच केवल पारस्परिक हत्याकाण्डके लिए शस्त्रास्त्रकी वृद्धिकी हास्यास्पद स्पर्धाका दृश्य होगा । क्या भारतकी स्वाधीनता उन सब बातोंको तिलांजलि देनेकी तैयारी है, जिन्हें हमने प्रिय मानना सीखा था ? मेरे खयालसे आत्म-गौरवके बजाय हमारे लिए यह समय आत्म-निरीक्षणका, आत्म-परीक्षणका और आत्म-शुद्धिका है। चूंकि पिछले तीस वर्षोंमें मैं आजादीकी लड़ाईके रंगमंचका मुख्य पात्र रहा हूं, इसलिए मेरा मन भी हृदयको टटोलनेवाले प्रश्नोंसे भरा है। "जो संग्राम इतना उदात्त माना गया उसका अन्त क्या इतना अशोभनीय होगा ? गहरी पीड़ाके साथ मैं वैदिक ऋषियोंकी भांति प्रार्थना करता हूं : हे प्रभो, 'तमसो मा ज्योतिर्गमय'।" [प्रार्थना-प्रवचन, ६ जुलाई, १९४७]

एक पत्रमें उन्होंने लिखा: "१५ अगस्तका मेरी दृष्टिमें कोई मूल्य नहीं है। यहां किसीके चेहरे पर उत्साह नहीं है।"

दूसरे दिन उन्होंने यह बतानेकी कोशिश की कि संकटको आशीर्वादमें कैसे बदला जा सकता है। उन्होंने कहा: पिछली बातों पर मन ही मन घुटते रहने या इस दल अथवा उस दलको दोष देनेसे आपको कोई लाभ नहीं होगा । जब सारे दलोंने संयुक्त रूपमें इस स्थितिको स्वीकार कर लिया है, तो अब पीछे हटनेकी बात नहीं रही । भगवान ही उस चीजको मिठा सकता है, जिसे करनेके लिए मनुष्य सहमत हुए हैं। एक आसान और अनुकूल उपाय यह है कि कांग्रेस और लीग मिल कर वाइसरॉयके हस्तक्षेपके बिना आपसमें समझौता कर लें। इसमें पहल लीगको करनी होगी।

मेरा यह सुझाव बिलकुल नहीं है कि पाकिस्तानको मिटा दिया जाय । उसे तो एक ऐसी स्थापित वस्तु मान लेना चाहिये, जो विवाद और चर्चासे परे है। परन्तु कांग्रेस और लीग एक कच्ची झोंपड़ीमें बैठ जायं, जिसमें १० प्रतिनिधियोंसे अधिकके लिए गुंजाइश न हो, और जब तक समझौता न हो जाय तब तक वहांसे न उठनेकी प्रतिज्ञा कर लें । मैं दावेसे कहता हूं कि अगर ऐसी बात हो जाय तो वह उस बिलसे कहीं बेहतर होगी, जिसमें भारतकी स्वाधीनताको तो मान लिया गया है, परन्तु उसे बराबरके दर्जेवाले दो राज्योंमें बांट दिया गया है।

देशमें जो कुछ हो रहा है उसे लाचार बन कर देखते रहनेमें न तो हिन्दू सुखी हैं और न मुसलमान । . . . परन्तु – यह बहुत बड़ा 'परन्तु' है – ऐसा लगता है कि मैं असंभवको लक्ष्य बना कर चल रहा हूं। ब्रिटिश हस्तक्षेपने अपनी चाल खेल ली, इसलिए अब लीगसे कैसे आशा रखी जा सकती है कि वह अपने विरोधियोंके पास जायगी और भाइयों और मित्रोंकी तरह आपसमें कोई समझौता करेगी ?

एक विकल्प है, जो उतना न सही परन्तु लगभग उतना ही कठिन है। अब तक एक सेना थी और उसका एक ही समान लक्ष्य था – चाहे वह कैसा भी रहा हो। परन्तु उस एककी दो विरोधी सेनाएं बना दी गई हैं । इससे भारतके सभी प्रेमी अवश्य भयभीत होंगे । क्या ये दोनों सेनाएं समान खतरेका सामना करने और उससे लड़नेके बजाय एक-दूसरेको नष्ट करने और एक आश्चर्यचकित संसारको यह प्रदर्शित करनेके लिए बनाई जायंगी कि वे और किसी कामके लिए अयोग्य हैं – केवल एक-दूसरेसे लड़ कर मरना ही जानती हैं ?

मैंने इस संभावनाको उसके भयंकर खुले रूपमें रख दिया है, ताकि सब उसे देख सकें और उससे बच सकें। बचनेका दूसरा उपाय बेशक आकर्षक है। क्या हिन्दुओंका विशाल समूह और स्वाधीनताके संग्राममें जो लोग उनके साथ रहे थे वे सब खतरेको अच्छी तरहसे समझेंगे और अवसरके अनुकूल शक्ति अपने भीतर पैदा करके अब भी प्रतिज्ञापूर्वक यह कहेंगे कि हम सेना बिलकुल नहीं चाहते या कमसे कम अपने मुसलमान भाइयोंके विरुद्ध उसका कभी भी उपयोग नहीं करेंगे, चाहे वे भारतीय संघमें हों या उसके बाहर पाकिस्तानमें हों ? यह प्रस्ताव हिन्दुओंसे और उनके साथियोंसे यह कहनेके समान है कि वे ३० वर्षकी अपनी दुर्बलताको अत्यन्त सुन्दर शक्तिमें बदल दें। शायद समस्याको इस प्रकार रखना उसकी अवास्तविकताका प्रदर्शन करना है। ऐसा हो सकता है। परन्तु ईश्वरने पहले भी मनुष्यकी मूर्खताको बुद्धिमत्तामें बदल दिया है। कुछ भी हो, प्रयत्न उन सब दलोंके खातिर करने लायक है, जिन्होंने सेनाको दो आत्म-विनाशक युद्ध-शिविरोंमें बांट देनेकी खतरनाक कार्रवाईमें भाग लिया है।

गांधीजीने अपनी १४ जुलाईकी प्रार्थना-सभामें कहा : आपको यह बात ध्यानमें रख कर अपने आचरणका विचार करना होगा कि भारतके दो टुकड़े हो गये हैं। दुर्भाग्यसे आज ऐसा मान कर व्यवहार करनेका फैशन हो गया है कि हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरेके दुश्मन हैं। कुछ लोग कह रहे हैं कि १९४४ में मैंने १८ दिन तक जिन्नाकी "हाजिरी बजाई" और अब हम उसीका फल भुगत रहे हैं। मैं इस आक्षेपको चुनौती देता हूं। मैंने जिन्नाके सामने एक प्रस्ताव रखा था, जो सबके हितमें था। यदि जिन्ना मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लेते, तो जिन्हें पाकिस्तानी क्षेत्र कहा जाता उनमें वे स्वामी हो सकते थे। परन्तु इससे हमें सारी दुनियाके सामने एक भारत मिल जाता और किसी तीसरे पक्षके प्रभुत्वका डर न रहता। तब सारा रक्तपात, लूटपाट और आगजनी टल जाती। आज तो हम "एक-दूसरे पर गुर्रा रहे हैं।" ऐसी बर्बर अवस्थामें मुझे कोई स्वाधीनता दिखाई नहीं देती। यदि अगले ३५ दिनोंमें परिस्थितियां बदल नहीं जातीं, तो मुझमें आनेवाली स्वाधीनताके लिए कोई उत्साह नहीं रह जायगा।

कुछ दिन बाद इसी विषय पर पुनः लौट कर उन्होंने पूछा : हम विदेशी हमलेका सामना करनेके उद्देश्यसे एक होकर क्यों नहीं रह सकते ? बंटवारेके मौजूदा ढंगसे दोनों सेनाओंमें भीतरी लड़ाई हो सकती है और वे एक-दूसरेको अपना प्रतिद्वन्द्वी समझ सकती हैं। यह ऐसी करुण घटना होगी, जिसका प्रायश्चित्त आंसू बहानेसे भी नहीं हो सकेगा। वर्षोंसे हम कहते आंये हैं कि हमें कोई सेना नहीं चाहिये । मैं

तो अब भी उस बात पर कायम हूं, परन्तु और लोग नहीं हैं। अब एक नई पीढ़ी पैदा हो गई है। कांग्रेसियोंने भारतकी गुलामीके दिनोंमें जो कुछ किया था, उससे वे लोग बंधे हुए नहीं हैं। इस परिवर्तनके लिए उन्हें कोई दोष नहीं दिया जा सकता। लोगोंके दिलोंमें हिंसा भरी है। ब्रिटिश सरकारके हटनेकी संभावनासे लोगोंकी वह अवरुद्ध हिंसा अब मुक्त हो गई है और अपने ही भाइयोंके विरुद्ध खुल कर खेल रही है। लगभग सभी प्रान्तोंको सैनिक सहायता चाहिये। यदि हम समय रहते न चेते, तो हमारे देशमें सैनिक तानाशाहीके स्थापित हो जानेका भी खतरा है। मैं पूछता हूं – क्या यह स्वतन्त्रता है ?

७

जैसे जैसे १५ अगस्तका दिन नजदीक आ रहा था, गांधीजी क्षितिज पर एकत्र होनेवाले दुर्लक्षणोंको दिनोंदिन बढ़नेवाली आशंकासे देख रहे थे। अव्यवस्था और गृहयुद्धसे बचनेके लिए भारतको देशके अंगभंगकी कीमत चुकानी पड़ी थी। परन्तु परिस्थितियोंको देखते हुए ऐसा लगता था कि विभाजनके बाद भारतको आजसे भी कहीं बुरी अराजकता और गृहयुद्धका सामना करना पड़ेगा। और उस समय हमारे पास विकट स्थितिका सामना करनेके लिए अखण्ड भारतका प्रशासन-तंत्र भी नहीं रहेगा।

जिन्नाने एक संवाददाता सम्मेलनमें पुन: इस बातका विश्वास दिलाया कि पाकिस्तानमें सभी अल्पसंख्यकोंको धर्म और उपासनाकी पूरी स्वतन्त्रता तथा जान-मालकी पूरी सुरक्षितता प्राप्त होगी। परन्तु कहने और करनेमें बड़ा अंतर था। सिन्धमें गैर-मुस्लिम नागरिक अपने घरबार छोड़ कर भाग रहे थे। गांधीजीने कहा: क्या इसका यह अर्थ है कि जब तक पाकिस्तान स्थापित न हो जाय तब तक ये सारे आश्वासन ताकमें धरे रहेंगे और अल्पसंख्यकोंको इन आश्वासनों पर अमल होनेके लिए १५ अगस्त तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी ?

राष्ट्रवादी मुसलमानोंको प्रमुख लीगियोंकी ओरसे धमकियां दी जा ही थीं कि पाकिस्तानकी स्थापनाके बाद उन पर मुकदमे चलाये जायंगे और उन्हें देशद्रोही व विश्वासघाती मान कर फांसी दी जायगी, जैसे न्यूरेम्बर्ग "युद्ध-अपराधियों" को दी गई थी। विभाजन-परिषद्के एक वक्तव्यमें लॉर्ड माउन्टबेटन दोनों दलोंकी ओरसे इस गम्भीर आश्वासनका समावेश करा सके थे कि अल्पसंख्यकों और भूतपूर्व राजनीतिक विरोधियोंको दोनों राज्योंमें नागरिक अधिकारोंकी गारन्टी दी जायेगी । परन्तु

भविष्यकी जो गारन्टियां वर्तमान आचरणके द्वारा झुठलाई जाती हों, उनका गांधीजीकी दृष्टिमें कोई मूल्य नहीं था। उन्हें यह देख कर गहरी चिन्ता होती थी कि संबंधित लोग बार-बार पवित्र गारन्टियोंके खुले भंगको आत्म-संतोषकी वृत्तिसे किस तरह सहन कर लेते हैं, जब कि वे इस आशासे अपने आपको धोखा देते हैं कि अन्तमें इससे शान्ति हो जायगी। गांधीजी जानते थे कि नैतिक नियमका कार्य कितना अटल होता है और जब उस नियमकी अवहेलना की जाती है तो उसका दण्ड कैसा अनिवार्य होता है।

भविष्यके बारेमें जो आभास गांधीजीको मिल रहे थे, उन्हें प्रार्थना-सभाके सामने रखते हुए गांधीजीने कहा : मुझे तो साफ दिखाई देता है कि आनेवाला १५ अगस्तका दिन खुशी मनानेका दिन नहीं होगा, क्योंकि उस दिन अल्पसंख्यकोंका दिल भारी होगा। "वह दिन प्रार्थना और गहरे हृदय-मंथनका दिन होना चाहिये। देशका बंटवारा हो जाने पर भी एक शर्त पर वह दिन सर्वव्यापी उत्सवका दिन हो सकता है। अबसे दोनों सच्चे मित्र बननेका प्रयत्न करें, जिससे वे १५ अगस्तकी खुशी मनानेके लिए तैयार हो सकें।" [प्रार्थना-प्रवचन, १३ जुलाई, १९४७]

मित्र लोग गांधीजीसे दलील करते थे। आखिर तो जिस आजादीके लिए हम लड़े थे वह हमारे द्वार पर खड़ी है। फिर आप सबके साथ इसकी खुशी क्यों न मनायें ? गांधीजीने स्वीकार किया कि राजनीतिक स्वतन्त्रता आर्थिक स्वतन्त्रता या नैतिक प्रगतिकी आवश्यक प्रस्तावना है। परन्तु हमारे सपनोंका स्वराज्य अभी बहुत दूर है। मैं कभी निराश नहीं होता। मैं जीवनभर विद्रोही और योद्धा रहा हूं । मैं न खुद रो सकता हूं, न दूसरोंको रुला सकता हूं। आपके नेता मानते हैं कि जो कुछ उन्होंने किया है वह देशके भलेके लिए है। अगर आप सुखी हैं तो मेरा काम आपका सुख छीनना नहीं है। यदि कांग्रेस १५ अगस्तको उत्सव मनानेका निश्चय करती है, तो जिन्हें उसमें शरीक होनेकी इच्छा हो वे हो सकते हैं । परन्तु सबके लिए खुशी मनानेका सच्चा दिन तो तब होगा जब हिन्दू और मुसलमान भाइयोंकी तरह रहने लगेंगे। पाकिस्तानी इलाकेमें रहनेवाले एक गैर-मुस्लिम मित्रने मुझे लिखा है : "आप लोग अगली १५ अगस्तको स्वाधीनता-दिवस मनानेकी बड़ी बड़ी बातें कर रहे हैं। पर आपने कभी यह भी सोचा है कि हम पाकिस्तानके गैर-मुस्लिम यह दिन कैसे मनायें और हमारे दिलोंमें क्या खुशी होगी ?" इन आशंकाओंका आपके पास क्या उत्तर है ?

दूसरी ओर अल्पसंख्यकोंके साथ बराबर दुर्व्यवहार होते रहनेके कारण भारतीय संघमें जो प्रति-साम्प्रदायिकता पैदा की जा रही थी, उसे गांधीजी बढ़ती बेचैनी और घबराहटकी दृष्टिसे देख रहे थे। कुछ बुरे लक्षण प्रकट भी होने लगे थे। एक प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके अध्यक्षने एक सार्वजनिक भाषणमें यह कहा बताया गया था कि यदि पाकिस्तानमें हिन्दुओंकी कोई हानि हुई, तो "१५ अगस्तके बाद" कांग्रेस भारतमें उसका बदला लेगी।

गांधीजीने उन्हें तुरंत लिखा :

> आप 'जैसेको तैसा' वाला सिद्धान्त प्रतिपादित कर रहे हैं। केवल आप १५ अगस्त तक प्रतीक्षा करेंगे। इन दोनों कथनोंका कांग्रेसकी नीतिसे कोई मेल नहीं है। क्या कांग्रेसकी नीति बदल गई है ? मैं जानता हूं कि कांग्रेस-जन बदल गये है, परन्तु मुझे पता नहीं कि कांग्रेसके संविधानमें कोई परिवर्तन हुआ है।
>
> दूसरे, यदि कांग्रेसकी नीति या आचार बदल गया है, तो१५ अगस्त तक ठहरनेके लिए आपको कौन विवश करता है ? इस बीच भारत और पाकिस्तान दोनोंके लोगोंको जो असीम हानि पहूंचेगी, उसके लिए कौन जिम्मेवार होगा ? लोग पागल हो जायं और बदलेकी कोई कार्रवाई करने लगें, तो उन्हें कौन काबूमें रख सकता है ? [गांधीजीका प्रत्र एस. के. पाटिलको, १२ जुलाई, १९४७]

कुछ लोगोंने गांधीजीके भाषणोंको उत्साह भंग करनेवाले बताया और कहा कि उन्हें बिलकुल नहीं बोलना चाहिये। गांधीजीने उत्तर दिया: यह सच है कि मेरे अनेक घनिष्ठ साथी और मित्र जो कुछ कह या कर रहे हैं, उससे में सहमत नहीं हूं। परन्तु आप हमारे मतभेदोंका विश्लेषण करें, तो आपको पता चलेगा कि उन सबकी जड़ एक बुनियादी तथ्य है : अहिंसा मेरा धर्म है; जब कि कांग्रेसके लिए वह सदा केवल एक नीति रही है। कांग्रेसको पूरा अधिकार है कि जब जरूरी हो वह अपनी नीति बदल ले। परन्तु जब तक मूल नीति कायम है तब तक उसे धर्मकी तरह पूर्णता, प्रामाणिकता और श्रद्धाके साथ अमलमें लाना चाहिये। "यद्यपि कांग्रेसके संविधानके अनुसार नीति तो वही बनी हुई है, परन्तु अमलने बेशक उस नीतिको बदल दिया है। वर्तमान कांग्रेसेके विधाता अपनी नीतिको ही **वास्तवमें** क्यों नहीं बदल डालते ? नियम अपनी चिन्ता आप कर लेगा।" [प्रार्थना-प्रवचन, १४ जुलाई, १९४७]

कांग्रेसके संविधानमें "शान्तिपूर्ण" शब्दका प्रयोग किया गया है, न कि "अहिंसक" शब्दका। मुझे याद है कि बम्बईमें १९३४ में मैंने "शान्तिपूर्ण" शब्दके स्थान पर "अहिंसक" शब्द करवा देनेकी कोशिश की थी, परन्तु मुझे सफलता नहीं मिली थी। "इसलिए कदाचित् 'शान्तिपूर्ण' शब्दका अर्थ 'अहिंसकसे कम' किया जा सकता है। मुझे तो ऐसा नहीं लगता। परन्तु मेरा मत यहां अप्रस्तुत है। यदि कोई अंतर है, तो उसे निश्चित कर देना पंडितोंका काम है। आपके और मेरे लिए इतना ही अच्छी तरह समझ लेनेकी जरूरत है कि इस शब्दके स्वीकृत अर्थमें आज तो कांग्रेसका आचरण अहिंसक नहीं है। यदि कांग्रेस अहिंसाकी नीतिसे वचन-बद्ध हो, तो उसके समर्थनसे कोई सेना नहीं रखी जा सकती । परन्तु वह सेना रखती है, जो नागरिकोंको खा सकती है और भारतमें सैनिक शासन स्थापित कर सकती है। लोग मेरी बात सुन लें तो ही यह स्थिति भिन्न हो सकती है। जब तक मेरे दममें दम है तब तक मैं तो इस बातको छोड़ नहीं सकता।" [वही]

जुलाईके दूसरे सप्ताहमें डच राजदूत श्री विकलमैन गांधीजीसे मिले। उन्होंने पूछा : "क्या अब भी आपको बहुत बड़े उपद्रवकी आशंका है ?"

गांधीजीने उत्तर दिया : "यदि मैं भविष्य-वाणी कर सकता होऊं, तो हमें अभी अधिक उपद्रव देखना पड़ेगा; तब कहीं परिस्थितियां स्थिर होंगी।"

एक और भेंटकर्ताने पूछा : "रूसका क्या होगा ? यह इस समय एक बड़ा सवाल है ।"

गांधीजीने जवाब दिया: "कुछ समय तक तो ऐसा ही रहेगा।"

"क्या आपके खयालसे रूस विश्वशान्ति और भारतकी शान्तिके लिए खतरा है ?"

"कोई भी बड़ी सत्ता खतरा हो सकती है ।"

"क्या साम्यवादी दल भारतमें संख्या या वास्तविक समर्थनकी दृष्टिसे बहुत बलशाली है ?"

"नहीं ।"

"क्या आपके खयालसे किसान साम्यवादियोंके सन्देशको ग्रहण करनेक लिए तैयार हो सकते हैं ?"

"अभी तो नहीं।"

"भारत और पाकिस्तानके सम्बंधोंका क्या होगा ? क्या आपके खयालसे स्वाधीनताके बाद कठिनाइयां अथवा पेचीदगियां खड़ी होंगी ?"

"हो भी सकती हैं और नहीं भी हो सकतीं।"

एक और दिन 'दि स्टेट्समैन' के भूतपूर्व सम्पादक आर्थर मूर आ टपके। वे पहले-पहल गांधीजीसे १९२४ में मिले थे, जब गांधीजी हिन्दू-मुस्लिस एकताके लिए दिल्लीमें उपवास कर रहे थे। मूरने गांधीजीकी उपवासकी पद्धतिको "पूरी तरह असफल" माना था। उनका विचार अब भी वही दिखाई देता था। १९२४ के दिल्ली-उपवासका जिक्र करते हुए वे बोले : "अब तक तो उस उपवासकी सफलता दिखाई नहीं देती। परन्तु कुछ न कुछ परिणाम तो होना ही चाहिये।" यह बात उन्होंने या तो शिष्टताके खातिर कही होगी या शायद श्रद्धाकी पुष्टि करनेके बजाय आशा व्यक्त करनेके लिए कही होगी।

"मुझे तो इसके विषयमें कोई सन्देह नहीं है।

"गांधीजी, इसका दारमदार आप पर है। आप सबसे बड़ी शक्ति हैं।"

"मेरी शक्ति तो खतम हो चुकी।"

"नहीं, नहीं, ऐसी बात नहीं है। यही तो समय है उसे प्रकट करनेका। क्या किया जा सकता है?"

"प्रार्थना कीजिये।"

"आपके शब्दका मूल्य है। अभी तो हिन्दू भड़के हुए हैं। . . . इसी उत्तेजनाको हमें मिठाना चाहिये।"

"मैं तो भरसक प्रयत्न कर रहा हूं। मेरा अपना खयाल तो यह है कि हिन्दुओंकी यह मनःस्थिति कायम नहीं रहेगी।"

श्री मूर सरदार पटेलके रुखको लड़ाईका रुख मानते थे। गांधीजीने उनके मतको सुधार दिया: "आप सरदारको नहीं जानते। वे प्रतिशोध लेनेवाले या सम्प्रदायवादी नहीं हैं। परन्तु वे मेरे इस विश्वासको

नहीं सानते कि अहिंसा हर बात पर विजय पा सकती है। किसी समय वे पूरे अहिंसावादी थे। आज वे नहीं हैं।"

"सरदार सबसे अधिक लोकप्रिय नेता हैं। शायद इससे स्थिति स्पष्ट हो जाती है।"

"नहीं, सरदार शक्तिशाली आदमी हैं। वे किसी भी कठिनाईसे घबराते नहीं। यह इसका स्पष्टीकरण है।"

"लोगोंके मनमें प्रतिशोधकी भावना बढ़ती जा रही है। यह बुरी बात है।"

"मैं नहीं समझता कि यह भावना बनी रहेगी। बनी रही तो स्वतन्त्रताको अलविदा कहना पड़ेगा। उस स्थितिमें भारत आत्महत्या कर लेगा।"

"सरदार और कुछ कांग्रेस-जनोंका खयाल है कि पाकिस्तानको दिया गया भूभाग वापस लेना होगा। इससे मुसलमान चिढ़ते हैं।"

"यहां आप बड़ी गलती पर हैं। मेरा अपना तो यह खयाल है कि पाकिस्तान जम गया है। वे लोग इसे अच्छी तरह समझते हैं।"

"इसी आधार पर मुसलमानोंसे मित्रता संभव है।"

"पाकिस्तान तो आ गया, परन्तु मित्रता कैसे सिद्ध की जा सकती है, यह मैं नहीं जानता।"

"मेरे खयालसे राजनीतिक सीमाओंकी अपेक्षा हार्दिक एकता अधिक महत्त्वपूर्ण है।"

"मैं तो हमेशासे यही मानता रहा हूं। भारी बाधाओंके होते हुए भी मैं इसीके लिए काम कर रहा हूं।"

श्री मूरने चलते चलते कहा :

"परन्तु गांधीजी, आपकी शक्ति चुक नहीं गई है। अधिक अच्छी बननेके लिए पहले किसी बातको अधिक बिगड़ना होता है। प्रभातसे पूर्व घोरतम अंधकार होता है।"

१

गांधीजीसे ये प्रश्न पूछे जाते रहे: आपने बंटवारेके प्रश्न पर हार क्यों स्वीकार कर ली ? भारतके लोगोंमें और राजनीतिक दलोंकी तरफसे राजनीतिक उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए हिंसा दिनोंदिन बढ़ती जा रही है । इसका कारण आप क्या मानते हैं ? ब्रिटिश राज्यको खतम करनेके लिए ३० वर्ष तक जिस अहिंसाका पालन किया गया, उसका यह अंतिम फल है क्या ? क्या आपकी अहिंसा संसारके लिए अभी भी कोई संदेश दे सकती है ?

गांधीजीने सब प्रश्नोंका उत्तर दिया। उन्होंने कहा : प्रश्नकर्ताओंने जिन घटनाओंका उल्लेख किया है, उनसे मेरा ही दिवालियापन सिद्ध हो सकता है, अहिंसाका नहीं। मैं स्वीकार कर चुका हूं कि पिछले ३० वर्षोंमें जिस अहिंसाका पालन किया गया वह अहिंसा नहीं थी, परन्तु निष्क्रिय प्रतिकार था। मैं यह भी माननेको तैयार हूं कि ऐसी अहिंसाका बदली हुई परिस्थितियोंमें कोई स्थान नहीं हो सकता। भारतको बलवानोंकी अहिंसाका कोई अनुभव नहीं है। मैं फिर कहता हूं कि मेरे यह दोहरानेसे कोई लाभ नहीं होगा कि बलवानोंकी अहिंसा संसारकी सबसे प्रबल शक्ति है। इस सत्यका सतत और व्यापक प्रत्यक्ष प्रमाण मिलना चाहिये। मैं अपनी पूरी शक्ति लगा कर वही प्रमाण देनेकी कोशिश कर रहा हूं। "यदि मेरी पूरी शक्तिका अर्थ बहुत थोड़ा हो तो क्या हुआ ? मैं मूर्खोंके स्वर्गमें तो नहीं रह रहा हूं ? इस व्यर्थकी शोधमें मैं लोगोंको अपना अनुगमन करनेके लिए क्यों कहूं ? ये उचित और उपयुक्त प्रश्न हैं । मेरा उत्तर बिलकुल सीधा-सादा है। मैं किसीसे नहीं कहता कि वह मेरे पीछे पीछे चले। सबको अपनी अन्तरात्माकी आवाजका अनुगमन करना चाहिये । यदि किसीके पास उसे सुननेके लिए कान न हों, तो सबको यथाशक्ति अपना काम करना चाहिये। किसी भी हालतमें उन्हें भेड़ोंकी तरह दूसरोंकी नकल नहीं करनी चाहिये।" [प्रार्थना-प्रवचन, १५ जून, १९४७]

एक और प्रश्नकर्ताने पूछा : यदि आपको विश्वास है कि भारत गलत रास्ते पर जा रहा है, तो आप गलती करनेवालोंका साथ क्यों देते हैं ? आप अकेले ही अपने मार्ग पर चलते हुए यह दृढ़ विश्वास क्यों नहीं रखते कि यदि आप सही रास्ते पर हैं, तो आपके कलके मित्र और साथी खोजते हुए आपके पास चले आयेंगे ? गांधीजीने उत्तर दिया: "मैं इसे बहुत ही प्रामाणिक प्रश्न मानता हूं । मुझे इसके विरुद्ध तर्क करनेका प्रयत्न नहीं करना चाहिये। मैं इतना ही कह सकता हूं कि मेरी श्रद्धा पहलेकी भांति ही प्रबल है।

किन्तु यह बिलकुल संभव है कि मेरी कार्य-प्रणाली दोषपूर्ण हो। ऐसी जटिल परिस्थितिमें हमारा मार्गदर्शन करनेके लिए पुराने और आजमाये हुए उदाहरण हैं। इतना ही है कि किसीको यंत्रकी तरह काम नहीं करना चाहिये। इसलिए मैं अपने सब सलाहकारोंसे कह सकता हूं कि उन्हें मेरे साथ धीरज रखना चाहिये और यह विश्वास भी रखना चाहिये कि अहिंसाके सीधे और संकीर्ण मार्गके सिवा दुःखी दुनियाके लिए और कोई आशा नहीं है। संभव है मेरी तरह लाखों लोग अपने जीवनमें इस सत्यको प्रमाणित न कर सकें, परन्तु यह उनकी असफलता होगी, अहिंसाके शाश्वत नियमकी नहीं।" [वही]

कुछ और लोगोंने गांधीजीसे कहा कि "आपकी शक्ति अभी भी चुक नहीं गई है।" यह कहना भी सही नहीं कि देश आपके पीछे नहीं है। "आप हमारा नेतृत्व कीजिये और खुद देख लीजिये कि देश आपके पीछे है या नहीं।"

ऐसी बातोंसे गांधीजीका मनोरंजन ही होता था। लोग नहीं जानते थे कि वे क्या बात कह रहे हैं।

गांधीजीने आश्रमके एक साथीको लिखा: "पाकिस्तान संबंधी निर्णय अवश्य ही गलत है। परन्तु मैं किससे लडूं और किसलिए लडूं ?" [गांधीजीका पत्र सुशीला पैको, २८ जुलाई, १९४७]

एक पुराने अनुभवी साथी देशके विभाजनके कारण खिन्न हो रहे थे। गांधीजीने उन्हें लिखा: "आप किससे लड़ेंगे ? अंग्रेजोंसे लड़नेकी तो कोई बात ही नहीं।" [गांधीजीका पत्र वी. वी. दास्तानेको, १३ जुलाई, १९४७]

गांधीजीने कहा : २० वर्ष तक मैं दक्षिण अफ्रीकामें गोरोंकी प्रभुताके विरुद्ध लड़ा हूं और २५ वर्षसे अधिक मुझे भारतमें अंग्रेजी सत्तासे लड़ते हो गए, परन्तु मैं घबराया नहीं । किन्तु अपने ही देशवासियोंके विरुद्ध असहयोगका शस्त्र उठानेके विचारमात्रसे मैं कांप उठता हूं। जब तक असहयोग करना मेरे लिए अत्यावश्यक अथवा अनिवार्य कर्तव्य न हो जाय तब तक मैं अपने साथियोंसे केवल इसीलिए असहयोग नहीं कर सकता कि उनका निर्णय मेरे निर्णयसे भिन्न रहा।

गांधीजीने एक बार अपने एक साथीसे कहा: " तीव्रतम सत्याग्रहका अधिकार हमें तब प्राप्त होता है जब हम (संबंधित लोगोंको) अपने स्नेहकी और अपने सही निर्णयकी पक्की प्रतीति करा दें और **जब हमें इसका विश्वास हो कि हमारा निर्णय न माना जाय तो भी हमारे मनमें बिलकुल अशान्ति नहीं होगी** ।" दूसरे शब्दोंमें "**आलोचनाकी योग्यता प्राप्त करनेके लिए हममें प्रेम, स्पष्ट बोधशक्ति और पूर्ण सहिष्णुता**

होनो चाहिये।" [मीराबहन (संपा.), 'बापूज लेटर्स टु मीरा', अहमदाबाद, १९४९, पृ. ५९] इन्हीं गुणोंके कारण मतभेद होते हुए भी वे जीवनभर अपने साथियों, सहयोगियों और मित्रोंकी निष्ठा, श्रद्धा और मित्रता प्राप्त कर सके और उनके मतभेदमें भी सामंजस्य स्थापित करके स्वतन्त्रताके अहिंसक संग्राममें उसका उपयोग कर सके। गांधीजी जन्मजात लोकतंत्रवादी थे और जब देशने और उनके विश्वस्त साथियोंने परिस्थितियोंके दबावसे देशका विभाजन स्वीकार कर लिया, तब वे असहयोग द्वारा उसका विरोध नहीं कर सकते थे। उन्होंने कहा: सत्याग्रह कोई विस्फोटक बमकी तरह सामूहिक अस्त्र नहीं है, जिसका उपयोग विरोधियोंको दबाने अथवा उड़ानेके लिए किया जा सके। मैं धैर्यपूर्ण तर्क, निष्ठापूर्ण सेवा और अपनी कार्य-पद्धतिकी क्षमताके प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा ही अपने साथियोंके विचार बदलनेकी आशा रख सकता हूं – न कि अपने विचार उन पर थोप कर। जब गांधीजीके साथी ब्रिटिश सत्ताके साथ तथा सम्प्रदायवादकी घातक शक्तियोंके साथ जीवन-मरणका संग्राम कर रहे थे, उस समय वे केवल इसलिए अपने साथियोंके प्रयत्नोंको विफल बनानेकी धमकी नहीं दे सकते थे कि उनका और गांधीजीका लक्ष्य एक होते हुए भी वे गांधीजीके मार्ग पर चलनेमें असमर्थ थे। कुछ समयके लिए गांधीजीका उन पर कोई प्रभाव नहीं रहा था, फिर भी वे गांधीजीके उत्तम मित्र बने रहे।

इस शताब्दीके तीसरे दशकमें जब असहयोग आन्दोलन चल रहा था, एक कट्टरपन्थी "अपरिवर्तनवादी" ने गांधीजीसे आग्रहपूर्वक कहा कि स्वराज्य-वादियोंको "हरानेके लिए" सविनय अवज्ञा-आन्दोलन फिरसे छेड़ दिया जाय । ये प्रौढ़ अनुभवी नेता देशबन्धु चित्तरंजन दासके नेतृत्वमें गांधीजीके कार्यक्रमसे अलग होकर कौंसिलोंमें जानेका निश्चय कर चुके थे। उनका कार्यक्रम "भीतरसे बहिष्कार" जारी रखनेका था। गांधीजीने इसमें शरीक होनेसे इनकार कर दिया था। यद्यपि उन्हें स्वराज्यवादियोंका कार्यक्रम पसन्द नहीं था, फिर भी उन्हें स्वराज्यवादियों और सरकारके बीच चुनाव करनेमें एक क्षणका भी विलम्ब नहीं लगा। उन्होंने उत्साही "अपरिवर्तनवादी" से कहा : मैं ऐसी कोई बात नहीं कर सकता, जिससे सरकारके सामने स्वराज्यवादी कमजोर पड़ जायें। स्वराज्यवादी मनोवृत्ति लोगोंमें "घर कर गई" थी । सविनय अवज्ञाके लिए आवश्यक वातावरण नहीं था। सविनय अवज्ञा कट्टर- पन्थियोंके कामकी चीज नहीं थी। स्वराज्यवादियोंसे लड़नेके बजाय गांधीजीने उस दलको भंग कर दिया, जो उनके राजनीतिक कार्यक्रमके समर्थनके लिए बनाया गया था। जो लोग दृढ़तासे गांधीजीका साथ दे रहे थे उनसे उन्होंने कह दिया कि वे रचनात्मक काममें लग कर अहिंसामें अपनी

श्रद्धाको प्रमाणित करें। चित्तरंजन दासकी मृत्युके बाद गांधीजी एक कदम और आगे बढ़े। स्वराज्यवादियोंके हाथ मजबूत करनेके लिए उन्होंने पटनामें कांग्रेस महासमितिकी बैठकमें कांग्रेसको स्वराज्यवादियोंके हाथमें सौंप देनेका निर्णय किया । और उसके बाद जब कभी गांधीजीकी सलाह या मार्गदर्शन मांगा गया, उन्होंने उत्तम सलाह और मार्गदर्शन दिया। १९२५ में किये गये "पटना आत्म-समर्पण" की बुद्धिमत्ताका समर्थन १९३० में हुआ, जब उनके पुराने साथी नमक-सत्याग्रहमें फिर उनके साथ हो गये और उन्होंने भव्य इतिहासका निर्माण किया।

१९४० में फिर वही इतिहास दोहराया गया, जब कांग्रेसने यह घोषणा की कि यदि ब्रिटिश सरकार उसकी शर्तें मान ले तो वह युद्धमें मित्रराष्ट्रोंका साथ देगी। गांधीजीने इसमें बाधा नहीं पहुंचाई। उन्होंने अपने साथियोंसे कह दिया कि आप भूल कर रहे हैं, परन्तु आपको अपने निर्णयके अनुसार काम करना चाहिये । इस मार्गका अनुसरण करनेके पक्षमें गांधीजीने जो दलील दी वह अर्थपूर्ण थी: "मैंने एक प्रस्तावका मसौदा तैयार किया था। लगभग सभीने कहा कि अगर हम अंत तक अहिंसामें सजीव श्रद्धा रख सकें या सचाईके साथ यह कह सकें कि हमारे निर्वाचन-मंडलोंका ऐसा विश्वास है, तो यह उत्तम प्रस्ताव माना जायगा। कुछको दोनों ही बातें लागू नहीं होती थीं और कुछकी अहिंसामें व्यक्तिगत श्रद्धा थी। . . . राजाजीको . . . अपनी स्थिति पर उतना ही भरोसा था, जितना मुझे अपनी स्थिति पर था । . . . मैं समितिको अपने विचारोंसे सहमत कर सका । . . . **मुझे तुरंत सूर्यकी तरह स्पष्ट दिखाई दिया कि यदि मेरी स्थिति स्वीकार्य नहीं है, तो दूसरा वास्तविक विकल्प केवल राजाजीका ही है**।" [हरिजन, १३ जुलाई, १९४०, पृ. २०१] (मोटे टाइप मैने किये हैं।)

१९४५ के शिमला-सम्मेलनके समय एसोसियेटेड प्रेस ऑफ अमेरिकाके प्रतिनिधि प्रेस्टन ग्रोवरने गांधीजीसे पूछा था: आपकी सलाहके बावजूद जब आपके साथियोंने "संतुलनकी योजना" (पैरिटी फॉर्मूला) स्वीकार कर ली तब आपने अपनी बात दृढ़तासे क्यों नहीं की ? जिन्ना ही नहीं, लॉर्ड वेवेल, अधिकांश भारत और सम्मेलनके सभी प्रेक्षक आपको कांग्रेसका मुखिया मानते थे, भले ही नियमानुसार आप उसके सदस्य नहीं थे। आपकी संमतिके बिना कोई समझौता नहीं हो सकता था।

गांधीजीने उत्तर दिया: "यह बात सही भी है और गलत भी है। यह खयाल इसलिए पैदा हो गया है कि मेरी सलाह आम तौर पर मानी जाती है। परन्तु नियमकी दृष्टिसे और वास्तविकताकी दृष्टिसे यह बात गलत है।"

प्रेस्टन ग्रोवर आग्रहपूर्वक मानते थे कि गांधीजीकी आवाज कांग्रेसमें सर्वोपरि थी। गांधीजीने आपत्ति उठाई: "इतना ही नहीं, वे मुझे जब चाहें तब हटा सकते हैं। . . . **अगर मैं उन पर हावी होना चाहूं, तो शायद एक बार में सफल हो जाऊं। परन्तु ज्यों ही मैं सत्तासे चिपटने लगूंगा त्यों ही मेरा पतन हो जायगा। फिर मैं कभी नहीं उठ सकूंगा।** यह मेरा स्वभाव नहीं ।"

अन्तमें जून १९४६ में केबिनेट-मिशनकी वार्ताओंके समय उन्होंने कांग्रेसी नेताओंको अपनी "अन्त:प्रेरणा" का अनुसरण करनेके लिए मजबूर नहीं किया, जो केबिनेट-मिशनकी योजनाको माननेके विरुद्ध थी। इतना ही नहीं, उन्होंने आग्रहपूर्वक कहा कि यदि मेरी बात आपके दिल और दिमागको न जंचती हो, तो आपके लिए एकमात्र सही मार्ग यही रहता है कि आप अपनी बुद्धिके अनुसार काम करें और अपने ही रास्ते पर चलें।

विभाजनके समय गांधीजीने जो कुछ किया उससे भिन्न व्यवहार करना उनके अपने सारे भूतकाल और सत्याग्रहके मूल तत्त्वके विपरीत होता। विभाजन कांग्रेसी नेताओंको उतना ही नापसन्द था जितना खुद गांधीजीको था। नेताओंने उसे अन्तिम उपाय मान कर स्वीकार किया था। उन्हें ऐसा नहीं लगता था कि उन्होंने कोई भूल की है। उनका खयाल था कि ऐसा करके उन्होंने देशके मनोभावको ही प्रकट किया है।

गांधीजी दूसरी ही मिट्टीके बने थे। उन्हें "सारे देशका जल कर खाख हो जाना" स्वीकार था, लेकिन अंग्रेजोंके हाथों किया जानेवाला देशका विभाजन स्वीकार नहीं था। परन्तु अहिंसा उनका धर्म थी; कांग्रेसका धर्म नहीं थी। इससे उनके और कांग्रेसी नेताओंके दृष्टिकोणमें जमीन-आसमानका फर्क हो जाता था। बादशाह खान ही एकमात्र ऐसे नेता थे, जो अहिंसाको धर्म मानते थे। "उन्होंने भी इस सिद्धान्तको पूरी तरह ग्रहण नहीं किया है।" [हरिजन, २७ जुलाई, १९४७, पृ. २५३]

ठेठ १९४० में गांधीजी इस नतीजे पर पहुंच गये थे कि रचनात्मक कार्यकी बुनियाद पर ही सामुदायिक अहिंसक कार्यको सफलतापूर्वक संगठित किया जा सकता है। उन्होंने स्वीकार किया:

"रचनात्मक कार्यसे पहले सविनय अवज्ञाको स्थान देकर मैंने भूल की। . . . मुझे डर था कि मेरे साथी मुझसे विरक्त हो जायंगे, इसलिए मैंने अपूर्ण अहिंसासे काम चलाया ।" [हरिजन, २१ जुलाई, १९४०, पृ. २११] मैंने ऐसी आशा रखी थी कि यदि वे नीतिके रूपमें भी अहिंसाके नियमोंका सचाई और ईमानदारीसे पालन करेंगे, तो अनुभवसे अहिंसामें उनकी श्रद्धा जम जायगी।

गुण न हों,

तो उन्हें तुम धारण करो।

यद्यपि रूढ़ियोंका दैत्य,

दानव कुटेवोंका,

ग्रस रहा है – व्यवहारकी

चेतनाको;

तथापि यह भी सत्य है कि

सुंदर समुज्ज्वल कार्योंके

प्रयोग होते हैं जहां-जहां,

वहां वह सर्वदा देवदूत-सा

परिधानोंसे सुसज्जित कर

प्रायः सुशोभित करता है हमें।

गांधीजीकी यह आशा पूरी नहीं हुई। कुछ मित्रोंके साथ हुई घनिष्ठ बातचीतमें उन्होंने इस असफलताका मूल कारण यह बताया : "मैंने माना था कि हमारा संग्राम अहिंसा पर आधारित था, जब कि वास्तवमें वह निष्क्रिय प्रतिरोधसे अधिक नहीं था . . . जो संभव होने पर स्वाभाविक रूपमें ही सशस्त्र प्रतिकारकी दिशामें ले जाता है।" [हरिजन, २७ जुलाई, १९४७, पृ. २५३] मुझे याद है कि एक बार दक्षिण अफ्रीकामें हमारी एक सभाके अंग्रेज अध्यक्षने कहा था कि गांधीजीके लिए अपने लोगोंको "निष्क्रिय प्रतिरोध" का आश्रय लेनेकी बात कहना स्वाभाविक है, क्योंकि वे निहत्थे हैं और कमजोर हैं।

मैंने उसी समय इस कथनका खण्डन कर दिया था। मैंने जवाबमें कहा था कि यह बात ठीक नहीं है कि अहिंसाको दुर्बलोंका हथियार समझकर मैंने द्रांसवालके संग्राममें अपने देशवासियोंके सामने रखा है। हमारा आंदोलन निष्क्रिय प्रतिरोधका आंदोलन नहीं है। उसका आधार अहिंसा – आत्मबल – है, जो शरीर-बलसे बिलकुल विपरीत और अनन्त गुना श्रेष्ठ है :

> दक्षिण अफ्रीकाकी अपनी सफलतासे उन्मत्त बना मैं भारत आया। यहां भी स्वतंत्रताका संग्राम सफल हुआ । परन्तु अब मैंने यह अनुभव किया है कि वह वीरोंकी अहिंसा पर आधारित नहीं था। यदि मुझे उस समय इसका पता होता, तो मैं संग्राम न छेड़ता । परन्तु ईश्वर मुझसे वह काम कराना चाहता था। इसलिए उसने मेरी दृष्टि पर आवरण डाल दिया। चूंकि हमारा संग्राम अहिंसक नहीं था, इसीलिए यह सारी लूटपाट, आगजनी और उससे भी बुरी बातें हुईं, जिन्हें हम देख रहे हैं । ['हरिजन' में छपी रिपोर्ट, २७ जुलाई, १९४७, पृ. २५३]

इसी कारणसे कांग्रेसको मजबूर हो कर अंतमें अंग्रेजों द्वारा किये गये विभाजनकी कीमत चुका कर औपनिवेशिक दरजेके आधार पर सत्ताका शीघ्र हस्तांतरण स्वीकार करना पड़ा। उसने वह घरेलू हल पसन्द नहीं किया, जो संभवत: आपसके समझौतेसे मिल जाता या अंग्रेजोंके भारत छोड़नेके बाद जरूरी होने पर आपसमें लड़ कर मिल जाता।

एक मित्रने कोशिश की कि गांधीजीने कुछ समय पहले जो बात स्वयं कही थी उससे वे बद्ध हो जायं। वह यह थी कि उनका संग्राम जिस अहिंसा पर आधारित था वह दुर्बलोंकी अहिंसा थी। गांधीजीने उत्तर दिया : मेरा वह कथन गलत था। दुर्बलोंकी अहिंसा जैसी कोई चीज नहीं होती । दुर्बलोंकी अहिंसा कहनेमें शाब्दिक विरोध है। [हरिजन, २७ जुलाई, १९४७, पृ. २५३] यदि हमें सच्ची अहिंसाका वास्तवमें अनुभव होता, तो हम उसे आपसकी लड़ाईमें छोड़ न देते; क्योंकि तब हम जान जाते कि अहिंसासे अधिक शक्तिशाली और कोई चीज नहीं है। यदि हममें वीरोंकी अहिंसा होती, तो उस एक ही चीजसे विभाजन रुक सकता था। परन्तु ऐसी अहिंसा एक दिनमें पैदा नहीं हो सकती । इसीलिए मैं भारतके आगामी अंगभंगके सामने लाचार हो गया।

उन्होंने आगे कहा: इस समय जो घोर निराशा मुझे अनुभव हो रही है, वैसी पहले कभी नहीं हुई थी। मैं तो जन्मजात योद्धा हूं। मैं जानता ही नहीं कि असफलता क्या होती है। परन्तु अभी तो मैं अंधेरेमें अपना मार्ग टटोल रहा हूं।

मित्रने आग्रहपूर्वक पूछा : "परन्तु आपको निराश क्यों होना चाहिये ?"

गांधीजीने उत्तर दिया: "में स्पष्ट देखता हूं कि यदि देश अहिंसाको नहीं अपनायेगा, तो यह उसके और दुनियाके लिए बड़ा हानिकारक होगा । इसका अर्थ होगा स्वतंत्रताको अंतिम प्रणाम कहना । इसका परिणाम सैनिक तानाशाहीमें भी आ सकता है। मैं दिन-रात सोचा करता हूं कि वीरोंकी अहिंसा कैसे पैदा की जा सकती है। मैंने एशियन रिलेशन्स कान्फरेन्समें कहा था कि मैं आशा करता हूं कि भारतकी अहिंसाकी सुगंध सारे विश्वमें फैल जायगी। मुझे कई बार ऐसी शंका होती है कि मेरी यह आशा पूरी होगी या नहीं ?" [वही]

एक साथीको उन्होंने लिखा : "मेरे लिए कांग्रेसकी जिम्मेदारी लेना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। आज मेरी कौन सुनता है ? और कोई क्यों सुने ? हमारे आसपास जो कुछ हो रहा है वह अधिकतर दुःखद है। हम क्या कर सकते हैं ?"

तो भारतके विभाजनको रद्द करानेके लिए कांग्रेसके विरुद्ध बगावतका झंडा खड़ा न करनेके बारेमें गांधीजीका स्पष्टीकरण यह है।

सार यह कि : (१) गांधीजी अकेले दम भी ब्रिटिश सरकारसे लड़ लेते, अगर वह भारतीय दलोंकी स्वीकृतिके बिना भारत पर विभाजन थोप देती । लेकिन हुआ यह कि कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओंको विभाजनका प्रस्ताव परिस्थितियोंके दबावसे मजबूर होकर स्वीकार करना पड़ा। (२) उस समय भारतके विभाजनका विरोध करनेवाले अधिकांश लोगोंको देशभरमें फैली हुई साम्प्रदायिक भावनासे प्रेरणा मिली थी । अहिंसा उन्हें स्वीकार नहीं थी। उनके साथ गांधीजीके विचार कांग्रेसी नेताओंकी अपेक्षा भी कम मिलते थे। कांग्रेसी नेताओंका आदर्श तो वही था जो गांधीजीका था, परन्तु उनमें गांधीजीकी श्रद्धा नहीं थी और वे जिम्मेदार आदमी थे इसलिए यह महसूस करते थे कि वे गांधीजीके मार्ग पर नहीं चल सकते। गांधीजी अव्यवस्थाका खतरा उठा लेते और देशसे भी वैसा ही करनेको कह देते, यदि अव्यवस्थाका सामना नेतागण अहिंसासे कर सके होते। परन्तु विभाजनको मिटानेके लिए सम्प्रदायवादियों और अहिंसाको न माननेवालोंसे मिल कर गांधीजी देशको अव्यवस्थाकी आगमें जान-बूझकर नहीं झोंक सकते थे। (३) अपने साथियोंके निर्णयकी उपेक्षा करके वे विभाजनको रोक सकते थे। परन्तु इससे तो कांग्रेस और स्वतंत्रताका वह अहिंसक संग्राम भी छिन्न-भिन्न हो जाता, जिसे कांग्रेस

पिछले २५ वर्षसे चला रही थी। गांधीजीका यह विश्वास नहीं था कि बीमारकी जान लेकर उसका इलाज किया जाय। (४) हमारे पास स्वयं सत्याग्रहके प्रणेताका लिखित प्रमाण मौजूद है कि इन्हीं बातोंका खयाल रख कर उन्होंने विभाजनका विरोध नहीं किया । ऐसे पुरुषका प्रमाण ठुकराया नहीं जा सकता, जो ईश्वरीय सत्यकी शोधके लिए ही जिया, जिसने उस पर अपनी मृत्युकी मुहर लगाई और जिसका आत्म-निरीक्षण और आत्म-उद्घाटन कभी कभी आत्मनिन्दाकी सीमा तक पहुंच जाता था। दो उल्लेखनीय अवसरों पर गांधीजीने कांग्रेसी नेंताओंके विरोधमें अपनी "दृढ़ता दिखाई थी ।" वे अवसर थे: (क) १९२० में असहयोग आन्दोलनसे ठीक पहले; और (ख) १९४२ में "भारत छोड़ो" आन्दोलनके समय । दोनों मौकों पर लोकमत अत्यधिक मात्रामें उनके साथ था, परन्तु अनुभव-हीनताके कारण अथवा विचारोंकी गड़बड़ीके कारण कांग्रेसी नेता इस लोकमतके विरुद्ध जा रहे थे। उन्हें इस बातकी परवाह नहीं थी कि इसके परिणाम स्वयं उनके लिए कितने घातक सिद्ध होंगे। विभाजनके बारेमें यह बात नहीं थी । जब गांधीजीने यह कहा था कि भारतका अंगभंग होनेसे पहले मेरा अंगभंग होगा तब उनका विश्वास था कि वे लोकमतको प्रकट कर रहे हैं। परन्तु बादमें उन्हें पता चल गया कि लोकमत – कमसे कम उसका बोलनेवाला भाग – अव्यवस्थाकी अपेक्षा देशके विभाजनको ज्यादा पसन्द करता है। कांग्रेसी नेता तो सिर्फ जनताकी भावनाको प्रकट कर रहे हैं । ऐसी परिस्थितिमें नेताओंके खिलाफ विद्रोहकी आवाज बुलन्द करना न तो लोकतंत्र या अहिंसा होती, और न सत्याग्रह होता, बल्कि निरा द्वेष और विनाशकी प्रवृत्ति होती, खास तौर पर जब उन्होंने अहिंसाके द्वारा अव्यवस्थाका सामना करनेमें अपनी लाचारी स्वीकार कर ली थी और गांधीजी उनका भार संभालनेकी स्थितिमें नहीं थे। (५) उस समयकी स्थितिमें यदि कोई चीज विभाजनको रोक सकती थी तो वह अहिंसाके द्वारा अव्यवस्थाका सामना करनेकी भारतकी क्षमता ही थी। यह क्षमता भारतमें नहीं थी और एक दिनमें पैदा भी नहीं की जा सकती थी। ऐसी हालतमें कांग्रेसी नेताओंके लिए एकमात्र मार्ग वही था, जो उन्होंने अपनाया। इससे जो चीज मूलमें ही बुरी थी वह अच्छी नहीं हो गई, परन्तु तत्कालीन परिस्थितियोंमें और कोई उपाय ही नहीं था। विभाजनका दण्ड भुगतना जरूरी था और एकता किसी और उपायसे प्राप्त करनी थी।

चूंकि अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार चलनेकी स्वतंत्रता और विरोधी दृष्टियोंका समन्वय ही अहिंसाके पालनका आधार है – खास तौर पर समाजके सम्बन्धमें – इसलिए कभी कभी ऐसी स्थिति पैदा हो सकती है जिसमें अहिंसाके पुजारीको ऐसे निर्णयका समर्थन करना जरूरी लगे जिसे वह स्वयं

न करता । यह एक ऐसा ही अवसर था। गांधीजीके पास जो लोग आये उन सबसे उन्होंने कहा कि मैं भी आपकी तरह ही बंटवारेको नापसन्द करता हूं, परन्तु अब तो जो हो गया सो हो गया। इसलिए व्यावहारिक मनुष्योंके नाते हमारा यही कर्तव्य है कि इस बुराईको अपने सही आचरण द्वारा हम कम कर दें और अन्तमें उससे भलाई भी पैदा कर लें ।

'अर्थली पैरेडाइज़' के लेखकने लिखा: "मैंने अपने चारों ओर देखा तो पता चला कि कैसे लोग लड़ाई लड़ते और हारते हैं और उनकी हारके बावजूद जिस चीजके लिए वे लड़ें वह मिल जाती है; और जब मिलती है तो वही चीज सिद्ध नहीं होती जिसके लिए वे लड़े थे और फिर दूसरोंको उस चीजके लिए दूसरे नामसे लड़ना पड़ता है।" भारतमें भी यही हुआ । बाहरसे तो "भारत छोड़ो" आन्दोलनको बर्बर दमन द्वारा दबा दिया गया था, परन्तु फिर भी स्वाधीनता आ गई; और जब स्वाधीनता आई तो वह ऐसी स्वाधीनता नहीं निकली, जिसके सपने भारतने देखे थे। उसने हमारा अंग-विच्छेद कर दिया, हमारा खून बहाया और भाईका भाईके साथ रक्त-रंजित संघर्ष हुआ । गांधीजी तो व्यावहारिक आदर्शवादी थे। उन्होंने साफ देख लिया कि अब भारतीय एकता लम्बे और कठिन मार्गको पार करके प्राप्त करनी होगी, जिसमें सबकी ईमानदारीकी परीक्षा होगी और सबको अपने हृदय शुद्ध करने होंगे। अपने एक प्रिय आश्रमी साथीको एक पत्रमें गांधीजीने लिखा :

> भौगोलिक दृष्टिसे भारतको विभाजित कहा जा सकता है । कांग्रेसको उसे लाचारीसे मानना पड़ा है। इसलिए अब हमें कोई और मार्ग निकालना होगा। वह मार्ग क्या है, यह मैं बता चुका हूं। क्या धरती और सम्पत्तिके बंटवारेके साथ हमारे दिलोंका भी बंटवारा होगा ? यदि हम दिलसे सच्चे और ईमानदार हैं, तो अब भी हम ऐसा मानकर आचरण कर सकते हैं कि भारतका विभाजन हुआ ही नहीं।

२

गांधीजीने जिस अटल निश्चयके साथ विभाजनका विरोध किया था, उसी अटल निश्चयके साथ अब वे यह बताने लगे कि विभाजनके बावजूद एकताकी लड़ाई कैसे जीती जा सकती है।

एक युवा दम्पतीने यह निश्चय किया कि जब तक आनेवाला विभाजन रद्द न हो तब तक गांधीजीके निवास-स्थानके सामने उपवास किया जाय। गांधीजीने उन्हें समझाया कि तुम्हारा ऐसा

करना बिलकुल गलत है। किन्तु पाकिस्तानको निष्फल बनानेका एक मार्ग है। भारतीय संघके निवासियोंको अपने मुसलमान भाइयोंसे अलग नहीं होना चाहिये । यदि गैर-मुस्लिमोंके हृदय स्वस्थ हैं, तो भौतिक विभाजनका कोई बुरा असर नहीं होगा।

नव-दम्पतीका कहना यह था कि हम वही कर रहे हैं, जिसकी हमारा अन्त:करण आज्ञा देता है। आप हमें यह कैसे कह सकते हैं कि हम अपनी अन्तरात्माके आदेशका पालन न करें ? गांधीजीने उन्हें समझाया : भीतरकी आवाजको – विशुद्ध बुद्धिकी आवाजको – सुन सकनेके लिए कठोर संयम जरूरी है। जैसा कि महापंडित लोकमान्य तिलकने बताया है, जिनमें इस संयमका अभाव हो उनका अन्त:करण "जागृत नहीं होता"। तुम युवा दम्पती हो इसलिए स्पष्ट ही अनुभवहीन हो। तुम्हें अनुभवीकी आवाजको मानना चाहिये और एकताकी समस्याको हल करनेके लिए मेरा सुझाया हुआ रचनात्मक दृष्टिकोण अपनाना चाहिये । तीसरे दिन उस दम्पतीने उपवास छोड़ दिया और अपने घर वापस जाकर एकताके काममें लग जानेका गांधीजीको वचन दिया।

एक संवाददाताने गांधीजीसे पूछा: "क्या आप ऐसा मानते हैं कि तात्कालिक समझौता कैसा भी क्यों न हो, भारत अंतमें एक केन्द्रीय सरकारके अधीन संयुक्त हो जायगा ?"

गांधीजीने उत्तर दिया : "भविष्यका आधार इस बात पर रहेगा कि हम वर्तमानमें क्या करते हैं।" [हरिजन, ८ जून, १९४७, पृ. १८४]

परन्तु गांधीजीको यह देखकर आश्चर्य हुआ कि जिन लोगोंने उनसे अनुरोध किया था कि वे विभाजनका प्रतिकार करें, वे ही लोग उनसे नाराज हो गये जब गांधीजीने उनसे कहा कि दोनों कौमोंके बीच हार्दिक एकता स्थापित करके विभाजनके दुष्परिणामोंको आप मिटा दें और अपने कृत्योंसे "दो राष्ट्रोंके सिद्धान्त" को अस्वीकार कर दें। उन्हें जितने अधिक विरोधका सामना करना पड़ता था उतना ही अधिक उन्हें लगता था कि विभाजन जिस रोगका परिणाम है उसका मेरा निदान ठीक है और जो इलाज मैंने सुझाया है वही इसका सच्चा इलाज है।

कांग्रेस महासमितिने विभाजन-योजनाको दी गई स्वीकृतिका समर्थन कर दिया, उसके थोड़े ही समय बाद एक कांग्रेसी प्रान्तके मुख्यमंत्रीने, अखबारी रिपोर्टके अनुसार, एक सार्वजनिक सभामें यह कहा कि चूंकि जिन्नाका यह दावा है कि मुसलमानोंकी संस्कृति भिन्न है और वे अलग राष्ट्र हैं और उन्होंने

यह घोषणा कर दी है कि पाकिस्तानमें इस्लामी कानून चलेगा, इसलिए भारतके मुसलमानोंको यह आशा नहीं रखनी चाहिये कि भारतमें उन्हें विदेशियोंके सिवा और कुछ समझा जायगा। उन्हें नागरिकताके कोई अधिकार नहीं होंगे। अपने पास बैठे हुए अपने मंत्रि-मंडलके मुस्लिम साथीकी तरफ इशारा करके उन्होंने मजाकमें यह भी कहा कि इन्हें मंत्रि- मंडल ही नहीं छोड़ना पड़ेगा, बल्कि इन्हें प्रान्तमें भी नहीं रहने दिया जायगा। इन्हें तो पाकिस्तानमें शरण लेनी पड़ेगी।

गांधीजीने इसे खतरेका संकेत समझा। एक प्रार्थना-प्रवचनके दौरान उन्होंने कहा : यह भाषण विनोदमें ही दिया गया है, परन्तु वह "अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण" है। भारतीय संघको बनानेवाले प्रान्तोंके शासकोंको अपने कार्योंसे यह सिद्ध कर दिखाना होगा कि सीमाके उस पार तथाकथित पाकिस्तानमें कुछ भी हुआ करे, हम तो अपने मुसलमान भाइयोंके साथ बिलकुल निष्पक्ष और न्यायपूर्ण व्यवहार ही करेंगे। अन्यथा वे अपने लिए बिछाये गये जालमें ही फंसेंगे। इसका यह मतलब नहीं कि मुसलमानोंको खुश करनेके लिए वे उन्हें ऐसी कोई चीज दे दें, जो वास्तवमें ठीक न हो। उदाहरणार्थ, पृथक् निर्वाचन ऐसी ही वस्तु है। यह हमारे बीच फूट डालनेके लिए विदेशी सत्ता द्वारा निकाली हुई एक युक्ति है। ऐसी संदिग्ध रियायतों पर सच्ची मित्रताकी बुनियाद नहीं रखी जा सकती।

खाद्यमंत्री डॉ. राजेन्द्रप्रसादको गोवध-निषेधकी मांग करनेवाले कोई पचास हजार पोस्टकार्ड, तीस हजार पत्र और हजारों तार मिले थे। किसीने इस मुद्दे पर उपवास भी शुरू कर दिया था। इसकी आलोचना करते हुए गांधीजीने कहा: जैसे न्यायपूर्वक किसी इस्लामी राज्यमें गैर-मुसलमानों पर मुस्लिम कानून नहीं थोपा जा सकता, उसी तरह किसी हिन्दू राज्यमें गैर-हिन्दुओं पर हिन्दू कानून नहीं लादा जा सकता। भारतीय संघ जैसे धर्म-निरपेक्ष राज्यमें तो ऐसा होनेकी और भी कम संभावना है। हिन्दू धर्ममें गोवधका निषेध है। परन्तु वह तो हिन्दुओंके लिए ही है, सारी दुनियाके लिए नहीं। हमारे राष्ट्रवादकी आज कसौटी हो रही है। मैं पूछता हूं, क्या वह निरी डींग है या उसमें सचाई भी है ? हम अपने आदर्शके अनुसार आचरण करेंगे, या वही हरकतें करके – जिनके लिए हम पाकिस्तानको कोसते हैं – यह स्वीकार करेंगे कि पाकिस्तान जो कुछ करता है ठीक है ? [प्रार्थना-प्रवचन, २५ जुलाई, १९४७]

राष्ट्रभाषाके सवाल पर भी झगड़े हो रहे थे। कुछ लोगोंका आग्रह था कि वह हिन्दी ही होनी चाहिये और हिन्दी नागरी लिपिमें ही लिखी जानी चाहिये। गांधीजीने कहा : मैं ऐसा प्रस्ताव हरगिज नहीं

मान सकता। भारत जितनी हिन्दुओंकी मातृभूमि है उतनी ही मुसलमानोंकी है। इसलिए भारतकी राष्ट्रभाषा सादी हिन्दी और सादी उर्दूका सुमेल अर्थात् हिन्दुस्तानी ही हो सकती है और वह देवनागरी और उर्दू दोनों लिपियोंमें लिखी जानी चाहिये । भारत हिन्दुओं, मुसलमानों, सिक्खों, पारसियों, ईसाइयों और अन्य लोगोंका घर है। यहां उनके साथ बराबरीका बरताव किया जाता है । यह भारतकी परम्परा है। वह नवागन्तुकोंका तिरस्कार नहीं करता। वह उन्हें हजम कर लेता है। इसलिए मैं अकेला रह जाऊं तो भी हिन्दुस्तानीकी हिमायत करूंगा । मुसलमान अपनेको हिन्दुओंका शत्रु समझ सकते हैं । भारतको तो उनका दिल जीतना होगा। यह काम वह मित्रता, अहिंसा और प्रेमके द्वारा ही कर सकता है। वह अहिंसा वीरोंकी होनी चाहिये । मैं किसीको कायर बनना कभी नहीं सिखा सकता।

"उपेक्षित उद्देश्योंका समर्थन करनेमें" अपनी शक्ति नष्ट करनेके लिए गांधीजीको भला-बुरा कहा जाता था। उनसे पूछा जाता था – अब आप सार्वजनिक जीवनसे हट क्यों नहीं जाते ? और अगर आपका काम करते रहनेका ही आग्रह है, तो आप अपनी लोकप्रियताका उपयोग "लोकप्रिय ध्येयों" के किए क्यों न करें ? उन्होंने उत्तर दिया : यह अच्छा सुझाव नहीं है कि जीवनके अन्त कालमें अपने प्रभावका उपयोग मुझे लोकप्रिय ध्येयोंके लिए ही करना चाहिये। लोकप्रिय ध्येयोंको अधिक प्रभावकी जरूरत ही नहीं होती और अक्सर लोकप्रिय उद्देश्योंका लोकप्रिय अंधविश्वासोंकी तरह पूरी शक्तिसे प्रतिकार करता पड़ता है। जो ध्येय वास्तवमें न्यायपूर्ण हैं, उन्हें कभी उपेक्षित नहीं कहा जा सकता। दो लिपियोंमें लिखी जानेवाली हिन्दुस्तानीका मैं जो समर्थन करता हूं, वह निरर्थक परिश्रम नहीं है; वह तो यह सिद्ध करता है कि मुझमें इतनी बुद्धिमत्ता है कि पाकिस्तान दो राष्ट्रोंके जिस सिद्धान्तका प्रतिपादन करनेवाला माना जाता है उसे मैं नहीं मानता । प्रत्येक देशभक्त भारतीयका यह कर्तव्य है कि वह देशभरमें फैली हुई पागलपनकी बाढ़का विरोध करे। [प्रार्थना-प्रवचन, २ जुलाई, १९४७]

एक अखबारी रिपोर्टमें कहा गया था कि जिन्नाने पाकिस्तानसे बाहरके क्षेत्रोंके मुसलमानोंको इसके लिए बधाई दी है कि उनके परिश्रम और त्यागसे पाकिस्तानकी स्थापना करनेमें सहायता मिली। मुस्लिम लीगके कुछ सदस्य खुल्लमखुल्ला कह रहे थे कि जो कटापिटा पाकिस्तान उन्हें मिला है उसीसे वे सन्तुष्ट नहीं होंगे। यह कहा जाता था कि उनकी नजर दिल्ली, आगरा, अजमेर और अलीगढ़ पर है, जो मुस्लिम संस्कृतिके केन्द्र हैं। कुछ लोग सारे भारत पर प्रभुत्व जमानेके भी सपने देखते थे। मुस्लिम लीगका आम नारा 'लड़के लेंगे पाकिस्तान' अब बढ़ कर 'हंसके लिया है पाकिस्तान, लड़के लेंगे

हिन्दुस्तान' हो गया था। इससे गैर-मुस्लिमोंमें भय और आशंका पैदा होना स्वाभाविक था। लोग पूछते थे कि इसकी क्या गारंटी है कि मुसलमान धोखा देनेवाले देशद्रोहियोंका काम नहीं करेंगे और पाकिस्तानका सपना पूरा करनेके लिए गुप्त रूपसे कार्य नहीं करेंगे ? क्या उन पर भरोसा करनेका खतरा उठाना कांग्रेसी सरकारोंके लिए उचित है ? पाकिस्तान एक इस्लामी राज्य है, इसलिए भारतीय संघ अपनेको हिन्दू राज्य क्यों न घोषित कर दे ? इसमें एक ऐसी घटनाके बीज थे, जिससे धर्म-निरपेक्ष राज्यके आदर्शके लिए ही खतरा पैदा हो सकता था। गांधीजीने कहा : कुछ भी हो जाय, कांग्रेसी सरकार धर्मके आधार पर किसीके विरुद्ध भेदभाव नहीं रख सकती। "मेरा सबसे बड़ा लड़का अक्सर मेरे पास यह कहता आया है: 'मैं भविष्यमें अच्छा आचरण करूंगा, मैं शराब नहीं छुऊंगा ।' मैं उससे कहता हूं : 'मुझे तुझ पर भरोसा तो नहीं है, फिर भी एक मौका तुझे दूंगा।' उसने अब तक तो अपनी बात नहीं निभाई। इसके बावजूद अगर वह मेरे पास फिर आयेगा, तो मैं उसे बाहर नहीं निकाल दूंगा और आशा रखूंगा कि वह अपना वचन पूरा करेगा। हां, मुझे यह मालूम हो जाय कि वह मुझे केवल धोखा देनेके लिए ही लौट कर आया है तो दूसरी बात है। इसी तरह हमें मुसलमानोंका विश्वास करना चाहिये और साथ ही सावधान भी रहना चाहिये।" [हरिजन, २७ जुलाई, १९४७, पृ. २४५]

एक मित्रने पूछा: "लेकिन अगर हमारे मनमें सन्देह रहेगा, तो क्या उसका प्रभाव हमारे कामों पर नहीं पड़ेगा ?"

गांधीजीने कहा: "नहीं, आपको सन्देहसे प्रेरित होकर काम नहीं करना चाहिये । अंग्रेजोंको देखिये। उन्होंने भारतकी कितनी हानि की है ! मैं स्वीकार करता हूं कि मैं अभी तक सन्देहसे सर्वथा मुक्त नहीं हूं। मुझे पता नहीं कि वे सचमुच पूरी तरह बदल सकते हैं या नहीं; परन्तु लॉर्ड माउन्टबेटन पर मुझे विश्वास है। विश्वासके बिना संसारका काम नहीं चल सकता । यदि अल्पसंख्यक लोग अयोग्य सिद्ध होंगे, तो राज्य उनके खिलाफ आवश्यक कार्रवाई कर सकता है। परन्तु पहलेसे ही उनके बारेमें हमें कोई राय नहीं बना लेनी चाहिये।" [वही]

एक और मित्रने आग्रहपूर्वक कहा: "किन्तु हमें खतरेसे लड़नेके लिए तैयार तो रहना ही चाहिये।"

गांधीजीने कहा: "हां, सच्ची तैयारी तो हमारी अपनी जन्मजात कमजोरियां – स्वार्थ और फूट – दूर करनेमें है।" [वही]

*

जब अपना कर्तव्य पालन करते हुए हम पर दोनों ओरसे आक्षेप हों, तो वह इस अनिश्चित संसारमें इस बातका यथासंभव निश्चित संकेत है कि हम लगभग सही रास्ते पर हैं। गांधीजीके पास आनेवाले पंचानवे प्रतिशत पत्र गालियोंसे भरे होते थे। हिन्दू उन पर मुसलमानोंके पक्षपातका दोषारोपण करते थे। उधर मुसलमान गांधीजीको अपना जानी दुश्मन मानते थे, क्योंकि वे विभाजनका विरोध करते थे। मनु गांधीको एक गुमनाम पत्रमें धमकी दी गई थी कि वह प्रार्थना-सभाओंमें कुरानकी आयतें पढ़ती रहेगी, तो उसे मार डाला जायगा।

क्रुद्ध आलोचक गांधीजीसे पूछते थे: "क्या आपको अपनी अहिंसाकी दुर्गंध नहीं आती ? क्या आप पिछले तीस वर्षकी अहिंसा पर लज्जित नहीं हैं, जिसके कारण देशभरमें हिंसा फैल गई है ?"

गांधीजीने जवाब दिया : "नहीं, आज चारों ओर जो निरे कायरोंकी हिंसा नजर आ रही है, उसकी भयंकर बदबूके बीच अहिंसाकी जितनी मीठी सुगंध मुझे इस समय आ रही है उतनी पहले कभी नहीं आई थी। मैं पहले ही स्वीकार कर चुका हूं कि तीस वर्षसे अधिके समयकी अहिंसाका जो परिणाम आया है उस पर मुझे हर तरहसे लज्जा अनुभव होती है। यदि वह बलवानोंकी अहिंसा होती, तो उसके २५ वर्षके पालनसे आज जो हत्याकाण्ड और सम्पत्ति-नाश दिखाई दे रहा है वह असंभव हो जाता।" [प्रार्थना-प्रवचन, २६ जून, १९४७]

उन्होंने हिन्दुओंको सलाह दी थी कि पाकिस्तानके मुसलमान कुछ भी करें, परन्तु आप तो भारतीय मुसलमानोंके प्रति न्यायका ही व्यवहार करें। इस सलाहको भी मुसलमानोंके प्रति उनका पक्षपात माना गया। इस आरोपका खण्डन करते हुए गांधीजीने कहा : कानून व्यक्तियोंका पक्षपात नहीं करता। हर व्यक्तिका न्याय उसके कर्मोंसे होगा। परन्तु अभी तो यह बात मैं हिन्दुओंके लिए कह रहा हूं; क्योंकि बहुमतमें होनेके कारण उन्हींको अपने आचरणसे दो राष्ट्रोंके सिद्धान्तको सच्चा या झूठा साबित करना है।

विभाजनकी बुराई दूर करके विभाजनको मिटानेके बारेमें गांधीजीके भाषणोंका अर्थ कुछ लोगोंने यह लगाया कि वे फिरसे देशकी भौगोलिक एकता स्थापित करनेके लिए लालायित हैं । उनसे कहा गया कि आपकी यह आशा व्यर्थ है। इसके बजाय आपको दोनों राज्योंके बीच सहयोग और

समन्वय स्थापित करानेका प्रयत्न करना चाहिये। गांधीजीने उत्तर दिया: मैं ऐसी आशा रखनेका अपराधी नहीं, जो मेरे मनमें बसी हुई बताई जाती है। यद्यपि लक्षण तो सब विपरीत हैं, फिर भी मैं नहीं मानता कि पारस्परिक हितोंकी समझके आधार पर दोनों भागोंका पुनर्मिलन नहीं हो सकता । ऐसा तो कोई नहीं होगा जो आपसी सहयोग नहीं चाहता। परन्तु मैं तो इससे भी अधिक कर रहा हूं: मैं तो यह समझा रहा हूं कि दूसरा पक्ष कुछ भी करे या न करे, बहुसंख्यक कौमको सही आचरण करना चाहिये।

जिन्नाने अपने एक वक्तव्यमें हिन्दुओंको "हमारे शत्रु" कहा था। इस कथनका उल्लेख करके गांधीजी बोले : मेरे मित्रने, क्योंकि मैं अब भी जिन्नाको अपना मित्र मानता हूं, यह कह कर इस्लामकी स्पष्ट कुसेवा की है। परन्तु हिन्दू चाहें तो इस दोषारोपणको स्वीकार न करें और प्रत्येक भारतीयके मित्र बनकर जिन्नाकी बातको झूठा साबित कर दें। जिन्ना साहब याद रखें कि पाकिस्तान बन गया है। अब उसके मिल जाने पर उन्हें प्रसन्न क्यों नहीं होना चाहिये ? या फिर जहर बहुत गहरा चला गया है ? "जिनके पास आंखें हैं वे इस चीजको देखें और भारत उसके जहरीले चंगुलमें फंसे उससे पहले ही सावधान हो जायं।"

३

जुलाईके तीसरे सप्ताहमें गांधीजीने अमेरिका स्थित भारतीय राजदूत आसफअलीको एक पत्रमें लिखा: "आजादी तो आ गई, लेकिन मेरे मनमें कोई उत्साह नहीं है । जहां तक मैं देख सकता हूं, मैं पुराना पड़ गया हूं। मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि हमारा मार्ग ऊपर ऊपरसे ही अहिंसक था, हमारे हृदय हिंसक थे। विदेशी सत्ताको हटा देनेके लिए वह अहिंसा काफी थी। परन्तु हमारे भीतर जिस हिंसाको पोषण मिल रहा था, वह आशातीत रूपमें फूट पड़ी है। भगवान जाने यह हिंसा हमें कहां ले जायगी।"

इस समय गांधीजीने जितने भी पत्र लिखे लगभग उन सबमें गहरी आन्तरिक पीड़ा व्यक्त हुई है, जिसमें वे आसपासकी घटनाओंके कारण डूबे रहते थे। एक और साथी कार्यकर्ताको उन्होंने लिखा: "स्वराज्य कहां है ? अंग्रेज जा रहे हैं। परन्तु इसमें उत्साह और उत्तेजना अनुभव करनेकी क्या बात है ?"

एक और पत्रमें उन्होंने कहा : "मैं अपने जीवन-कालमें शान्ति देखनेके बारेमें लगभग निराश हो चुका हूं ।" अपनी एक पुत्रवधूको उन्होंने लिखा: "सत्ताके हस्तान्तरण और पाकिस्तानके सम्बंधमें देशमें

जो कुछ हो रहा है, उसका मेरे मन पर भारी बोझ है। इसलिए बहुत समय तक जीनेकी अपनी शक्ति पर मुझे विश्वास नहीं रहा है।"

वर्तमान परिस्थितिमें गांधीजी द्वारा दीर्घ जीवनकी अनिच्छाका बार बार उल्लेख किये जाने पर एक अमरीकी मित्र रिचर्ड ग्रेगने गांधीजीको उलाहना दिया। ये मित्र गांधीजीके तत्त्वज्ञानके प्रसिद्ध व्याख्याता और 'दि पावर ऑफ नॉन-वॉयलेन्स' नामक उत्कृष्ट ग्रंथके लेखक हैं । गांधीजीके उद्गारोंमें उन्हें निराशा और हताशा दिखाई दी । एक पत्रमें उन्होंने गांधीजीसे अपने इस रुख पर पुनर्विचार करनेकी विनती की : "यदि यह (हिंसक स्थिति) पन्द्रह वर्ष तक भी बनी रही", तो भी आपका यह रुख भारतकी वर्तमान हिंसासे कहीं अधिक खतरनाक सिद्ध होगा।

गांधीजीने 'हरिजन' में उत्तर देते हुए कहा: मुझे हिंसा पर आधारित समाजमें अपना कोई स्थान दिखाई नहीं देता, मेरे इस कथनका निराशाकी मेरी सूचित स्थितिसे कोई सम्बंध नहीं है; मैं निराशाको मनमें स्थान नहीं देना चाहता। साथ ही, मैं अपना यह विश्वास पुन: दृढ़तासे प्रकट करना चाहता हूं कि शान्तिप्रेमी मनुष्यके लिए लड़ाई-झगड़ेसे भरे हुए समाजमें कोई स्थान नहीं हो सकता। "फिर भी वह . . . सतत साधना करके अपने लिए स्थान बनानेकी आशा रख सकता है। मेरे कथनका ठीक यही अर्थ है। . . . मैं **उस समाजमें** हूं, भले ही **उसका** नहीं हूं। इस कथनसे मेरा विरोध व्यक्त हो जाता है। . . . हम ईश्वरसे यह नहीं कह सकते कि यदि हिंसा (मनुष्योंकी मुर्खता) हमारी आशाओंके अनुकूल निश्चित समयके भीतर बन्द नहीं हो जायगी, तो हम अधिकसे अधिक प्रयत्न करने और यथासंभव अधिकसे अधिक जीनेसे इनकार कर देगें।" [हरिजन, २९ जून, १९४७, पृ. २१३]

गांधीजीके उत्तरसे अंग्रेज क्वेकर नेता और भारत-हितैषी कार्ल हीथको पूरा सन्तोष नहीं हुआ। उन्हें लगा कि गांधीजीका वक्तव्य श्रद्धा न रहनेकी घोषणाके समान है; और यह आशा न रहनेसे भी बुरी बात है। उन्होंने गांधीजीका विरोध किया: "आप इस संसारमें कितने वर्ष जीते हैं, . . . यह आपके असंख्य मित्रोंके लिए परम महत्त्वकी वस्तु नहीं है; परन्तु यह अत्यंत महत्वकी बात है कि आपकी उज्ज्वल आशा बनी रहे। कारण, श्रद्धावान मनुष्यकी आशा और ईश्वरमें विश्वास एक ही वस्तु है। वह इसलिए आशा नहीं रखता कि उसे मानव-हेतुओंको कार्यान्वित करनेमें कोई विश्वास होता है, बल्कि इसलिए रखता है कि ईश्वरमें और शाश्वत सत्ताके हेतुमें उसे गहरी श्रद्धा होती है। . . . प्रिय मित्र, मेरी मान्यताके अनुसार आप

भारतमें होनेवाली साम्प्रदायिक हिंसाकी पीड़ासे अत्यंत खिन्न और उद्विग्न हो गये हैं। आपके इस उद्वेगका दूसरा कारण है आपके देशका विभाजन, जिसे स्वीकार करनेके लिए मुस्लिम लीगने हम सबको मजबूर कर दिया है। परन्तु मनुष्योंकी सारी योजना **समयके अधीन** होती है। अंतमें **शाश्वत कल्याणके** संकल्पकी ही विजय होती है – क्योंकि विश्वमें **ईश्वर** शासन करता है।" [कार्ल हीथका पत्र गांधीजीको, १९ जुलाई, १९४७]

गांधीजीने लिखा था कि "शान्तिप्रेमी मनुष्यके लिए लड़ाई-झगड़ेसे भरे हुए समाजमें कोई स्थान नहीं हो सकता ।" इसका उल्लेख करते हुए कार्ल हीथने लिखा: "बेशक, ईश्वर देवदूत जैसे मनुष्यको बिलकुल 'लड़ाई-झगड़ेसे भरे समाज' के ठीक केन्द्रमें रखता है; श्रेष्ठ मानवके रूपमें नहीं किन्तु, जैसा कि हिब्रू पैगंबरने अत्यंत आश्चर्यजनक रूपमें कहा है, दुःख भोगनेवाले सेवकके रूपमें, जो समाजमें रहता है, समाजका बन कर रहता है और समाजके साथ कष्ट भोगता है – जिससे उसका कष्ट उस समाजका उद्धार कर सके। आप, मेरे सम्मान्य मित्र, वैसे ही देवदूत सदृश मनुष्योंमें से एक है और इतिहासमें ऐसे मनुष्योंको निराशाका सामना करना पड़ा है, परन्तु उन्होंने कभी उसके आगे हार नहीं मानी। आप भी निराशाके सामने हार नहीं मानेंगे। भारतके सम्बंधमें तो आप कभी भी निराश नहीं होंगे, क्योंकि वह तो अभी नवजीवनकी प्रसव-पीड़ामें से गुजर रहा है। आप मनुष्योंके प्रति मनुष्योंके अन्यायका सदा ही विरोध करेंगे। आपने सदा ही ऐसा विरोध किया है। परन्तु ईश्वरका राज्य इस जगतमें है और **आपकी आशा शाश्वत वस्तु** है। इसके सिवा, आपकी श्रद्धा ऐसी है कि हम जानते हैं आप वह आशा नहीं छोड़ सकते।"

गांधीजीने कार्ल हीथको उत्तर दिया: "मैं इस विषयमें आपसे पूरी तरह सहमत हूं कि मनुष्य इस दुनियामें कितने वर्ष जीता है, यह न उसके लिए और न संसारके लिए कोई महत्त्व रखता है। परन्तु मानव-जातिकी सच्ची सेवामें लगाये हुए एक दिनका भी परम और एकमात्र महत्त्व है। मैं यह भी मानता हूं कि आशा और श्रद्धा लगभग पर्यायवाची शब्द हैं। अवश्य ही ईश्वर शाश्वत है, बुराई क्षणिक है । [गांधीजीका पत्र कार्ल हीथको, २६ जुलाई, १९४७]

लेकिन इससे गांधीजीके तर्कके मर्म पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होंने आगे लिखा: "मुझे अपने कथन पर निष्ठा रखनी चाहिये। . . . मेरा विश्वास है कि आप मुझसे इस बातमें सहमत होंगे कि शान्तिके

पुजारीके लिए लड़ाई-झगड़ेवाले समाजमें कोई स्थान नहीं होता । यह सत्य उसे जानना चाहिये और फिर भी उसे उस समाजमें काम तो करना ही चाहिये। . . . बुराईकी भावनाके सामने हार मानने या आत्म-समर्पण कर देनेका प्रश्न ही मेरे लिए नहीं उठता।"

कई भारतीय मित्रोंने भी गांधीजीको इसी स्वरमें लिखा था। गांधीजीका उत्तर उन सबको यही था कि मेरी वृत्ति निराशाकी नहीं है। उनकी पीड़ामें बुराईसे भाग जानेकी इच्छा प्रकट नहीं होती थी । उससे बुराईसे जूझने और उस प्रयत्नमें करने या मरनेके गांधीजीके संकल्पकी तीव्रता ही प्रकट होती थी। एक पुराने आश्रमवासी साथीको उन्होंने पत्रमें लिखा: जिसे मेरी "निराशा, पीड़ा या निरुत्साह" कहा जा सकता है, उसकी जड़में एक ही चीज है:

> जिस हिंसाको अब तक हमने अहिंसा समझा और अहिंसाके नाम पर अभी तक जिसका आचरण किया, उससे सच्ची अहिंसाका विकास कैसे किया जाय ? तीस वर्षके गलत अभ्यासके बाद लोगोंको फिरसे सच्ची अहिंसाकी ओर कैसे ले जाया जाय ? मेरी समस्या यह है। मैं अपने भीतर इस समस्याका हल ढूंढ़ रहा हूं। मेरे भीतर यही पीड़ा भरी है। आप इसे किसी भी नामसे पुकार सकते हैं।
>
> मैं इस बातसे सहमत हूं कि अपनी भूलोंको समझ कर उचित कदम उठानेसे पिछली गलतीको मिटाया जा सकता है। परन्तु सुनता कौन है ? और कोई सुने भी क्यों ? जिधर देखिये उधर ही पत्थरकी दीवार खड़ी है। उसे भेदना होगा। इसलिए दूर बैठकर मेरी पीड़ाको तुम बहुत अधिक न समझ लेना। मैं खूब प्रसन्न हूं। [गांधीजीका पत्र किशोरलाल मशरूवालाको, ३० जुलाई, १९४७]

स्थितप्रज्ञता और दूसरोंके लिए कष्ट-सहनमें क्या सम्बंध है ? क्या दोनों साथ साथ चल सकते हैं ? क्या स्थितप्रज्ञको पीड़ा अनुभव हो सकती है ? गांधीजीका उत्तर है: "हां" और "ना"। एक बार उन्होंने लिखा: "मैं स्वीकार करता हूं कि यदि मैं पूर्ण मनुष्य होऊं, तो मुझे पड़ोसियोंके दुःखोंका जैसा अनुभव होता है वैसा नहीं होना चाहिये । पूर्ण मनुष्यके नाते मुझे उन पर ध्यान देना चाहिये, उनका उपाय बताना चाहिये और अपने निर्विवाद सत्यके बलसे उस पर अमल कराना चाहिये। परन्तु अभी तक मैं अस्पष्ट ही देखता हूं, मानों कांचमें से देख रहा होऊं; इसलिए धीमी और श्रमसाध्य क्रियाओं द्वारा लोगोंको उसका

विश्वास कराना पड़ता है; और उसमें भी मुझे सदा ही सफलता नहीं मिलती । . . . अगर देशमें फैले हुए दूर किये जा सकनेवाले कष्टोंको पूरी तरह जानते हुए भी मुझे भारतके करोड़ों मूक लोगोंके दुःखके प्रति समवेदना न हो, तो मैं मनुष्य न रहकर पशु बन जाऊंगा।" [यंग इंडिया, १७ नवम्बर, १९२१, पृ. ३७७]

इसके अतिरिक्त :

> जब तक मेरी आत्मा एक भी अन्याय अथवा एक भी दुःखको चुपचाप देखती रहे तब तक उसे संतोष नहीं होता। परन्तु मेरे जैसे दुर्बल, दुःखी प्राणीके लिए न तो प्रत्येक अन्यायको दूर करना संभव है और न यही संभव है कि जो अन्याय मैं देखता हूं उस सबके बारेमें अपनेको दोषमुक्त समझ लूं। मेरी आत्मा मुझे एक तरफ खींचती है, मेरा शरीर दूसरी तरफ खींचता है। इन दोनों शक्तियोंकी क्रियासे मुक्ति तो मिलती है, परन्तु वह मुक्ति धीरे धीरे और केवल कष्ट सहन करके ही मिल सकती है। मैं यंत्रवत् कर्म करना छोड़ कर वह मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता; उसे तो मैं अनासक्त भावसे बुद्धिपूर्वक कर्म करके ही प्राप्त कर सकता हूं। इस संग्रामका सार यह है कि शरीरका सतत दमन किया जाय, जिससे आत्मा सर्वथा मुक्त हो जाय। [वही, पृ. ३६८]

दूसरे शब्दोंमें, जहां पूर्णता सारे शोक और दुःखसे परे है, वहां उसकी प्राप्ति शोक और दुःखके मार्गसे ही हो सकती है। इसके सिवा, स्थितप्रज्ञकी स्थिति प्राप्त करनेका यह अर्थ नहीं कि शोक और दुःख उसके जीवनमें आते ही नहीं; उसका अर्थ इतना ही है कि ऐसे मनुष्यमें शोक और दुःखसे अप्रभावित रहनेकी क्षमता आ जाती है। दोनोंका अर्थ बदल जाता है, दोनोंकी कसक मिट जाती है और दोनोंका अनुभव एक सिद्धि और कृतार्थताका रूप ले लेता है।

सहन करना
सब नग्न सत्योंको,
देखना परिस्थितियोंको
पूर्ण शान्तिसे,
यह है –
चरम सीमा
सार्वभौम प्रभुत्वकी ।

ज्यों ज्यों गांधीजीकी शोध आगे बढ़ी त्यों त्यों वे अधिक और अधिक गहरा विचार करने लगे। कहीं मैं इतने वर्षों तक भ्रममें तो नहीं रहा ? अहिंसाके सार्वत्रिक प्रयोगका मेरा आदर्श ही तो गलत नहीं है ? कांग्रेसी साथियोंके प्रति मेरा क्या कर्तव्य है ? ये विचार उसी आश्रमी साथीके नाम लिखे गये दूसरे पत्रमें इस प्रकार प्रकट हुए :

"तुम जानते हो कि मेरे विरुद्ध सबसे बुरी आलोचना यह की जाती है : अहिंसा-धर्म व्यक्तियोंके लिए ही है और वह भी ज्ञानियों और संन्यासियोंके लिए। इसलिए अहिंसाके सार्वत्रिक उपयोगका मेरा प्रयोग कभी सफल नहीं हो सकता। जब १९२२ में मैं यरवडा सेन्ट्रल जेलमें था तब एंग्लीकन बिशपोंने मुझे एक पत्र लिखा था। उसका आशय यह था कि ईसाका गिरि-प्रवचन भी उनके बारह शिष्योंके लिए ही था। ईसाकी अहिंसाको हमारे शास्त्रियोंकी तरह ईसाई धर्माधिकारी भी यों ही उड़ा देते हैं। मुझे याद है कि जुहूमें हाथीभाई शास्त्रीने यह कहा था कि अहिंसाको केवल एक आदर्श ही मानना चाहिये (जो इस संसारमें सिद्ध नहीं हो सकता)। मुझ पर उनका प्रेम था, परन्तु वे मुझे भ्रममें फंसा हुआ एक मूर्ख समझते थे।...

"अहिंसाके सर्वव्यापी उपयोगके लिए पद्धतियां खोज निकालनेमें कठिनाई यह है कि प्रयोग तभी किये जा सकते हैं जब उनके लिए अवसर उपस्थित होता है (और ऐसे अवसरोंका दुर्लभ होना स्वाभाविक है)। सफलताके लिए शोधक या अग्रगामीको अहिंसाके पूर्ण आदर्शकी स्पष्ट कल्पना होनी चाहिये। परन्तु यदि (सर्वव्यापी अहिंसाका) आदर्श ही भ्रम पर आधारित हो, तब तो जो बात शिवने पार्वतीके विषयमें कही थी वही मुझ पर लागू होगी। मैं अपना भ्रम तभी देख सकूंगा जब वह मिट जायगा। भ्रम जब तक बना रहता है तब तक तो वह सत्य ही है। क्या हमारा सारा दृष्टिगोचर विश्व एक मायाजाल ही नहीं है ? फिर भी उसे कौन मिटा सकता है ? मेरा हृदय-मंथन ... चल रहा है: क्या अपने साथियोंसे मुझे अलग हो जाना चाहिये ? यदि हां, तो कब ? यही मेरी समस्या है।" [गांधीजीका पत्र किशोरलाल मशरूवालाको, ३० जुलाई, १९४७]

उन्होंने एक बार पहले दृढ़तापूर्वक कहा था: "मैं तो यहां तक कहता हूं कि अगर लाखों लोग अहिंसाका पालन नहीं कर सकते, तो मेरे खुदके लिए भी उसका कोई उपयोग नहीं है।" भारतके लाखों लोगोंके लिए उस सिद्धिको यथार्थका रूप कैसे दिया जाय, यही गांधीजीकी समस्या थी।

*

कांग्रेसेके अध्यक्ष आचार्य कृपलानीने जूनमें कांग्रेस महासमितिके अपने उपसंहार-भाषणमें कहा था कि गांधीजीने अंग्रेजोंसे लड़नेमें अहिंसाका जैसा मार्ग बताया था वैसा वे साम्प्रदायिक दंगोंके मामलेमें नहीं बता सके। गांधीजीने स्वयं स्वीकार किया है कि वे अंधेरेमें टटोल रहे हैं और यद्यपि उन्होंने कहा है कि वे अपने नोआखाली और बिहारके कार्यके द्वारा सारे भारतके लिए हिन्दू-मुस्लिम समस्याको हल कर रहे हैं, फिर भी मैं नहीं समझ पाया हूं कि यह कार्य-पद्धति सामूहिक पैमाने पर कैसे लागू की जा सकती है। इसीलिए मैं आज गांधीजीके साथ खड़ा नहीं हूं और मैंने भारतका विभाजन मान लिया है।

गांधीजीने इसका जवाब यह दिया : "मेरे अंधेरेमें टटोलने" का सम्बंध इस बातसे है कि मैं नहीं जानता कि अपना दृष्टिकोण मैं लोगोंके गले कैसे उतारूँ। मैं निश्चित रूपसे यह मानता हूं कि अहिंसा साम्प्रदायिक संघर्षका उतनी ही सफलतासे सामना कर सकती है जितनी सफलतासे उसने अंग्रेजोंके खिलाफ स्वतन्त्रताका युद्ध लड़ा है। उस समय लोगोंने मेरा अनुसरण किया था, क्योंकि वे जानते थे कि और किसी तरहसे ब्रिटिश शस्त्रबलका सामना नहीं किया जा सकता। उनकी अहिंसा दुर्बलोंकी अहिंसा थी। साम्प्रदायिक पागलपनको शांत करनेके लिए वीरोंकी अहिंसाकी जरूरत है।

एक समय ऐसा था जब लोग मेरी बात ध्यानसे सुनते थे। कारण यह था कि मैंने उन्हें ऐसी स्थितिमें अंग्रेजोंसे लड़नेकी पद्धति बताई थी, जब उनके पास कोई हथियार नहीं थे और अंग्रेज सशस्त्र युद्धके लिए पूरी तरह सज्ज और संगठित थे। परन्तु आज मुझसे कहा जाता है कि मेरी अहिंसा साम्प्रदायिक पागलपनको शांत करनेके लिए काम नहीं दे सकती और इसलिए लोगोंको आत्मरक्षाके लिए हथियार धारण करने चाहिये। यदि यह सच है तो मानना पड़ेगा कि हमारी तीस वर्षकी अहिंसाकी साधना व्यर्थ सिद्ध हुई। हमें शुरूसे ही शस्त्र-प्रयोगकी तालीम लेनी चाहिये थी।

परन्तु मैं नहीं मानता कि हमारी तीस वर्षकी अहिंसाकी साधना बिलकुल व्यर्थ गई। अपनी अहिंसाके कारण, यद्यपि उसमें दोष था ही, हम भारीसे भारी दमनको सहन कर सके और स्वाधीनताका सन्देश भारतके कोने कोनेमें प्रवेश कर सका। परन्तु चूंकि हमारी अहिंसा

दुर्बलोंकी अहिंसा थी, इसलिए उसका व्यापक प्रभाव जनतामें नहीं फैला । यदि हमने यह समझ कर अहिंसाको अपनाया होता कि वह बलवानका शस्त्र है और अन्य किसी भी शस्त्रसे अधिक शक्तिशाली है – वस्तुत: जगतका सबसे शक्तिशाली बल है – तो हम उसकी पूरी शक्तिका उपयोग करते और अंग्रेजोंके विरुद्ध लड़ी गई लड़ाई खतम होते ही अथवा साधारण हथियार संभालनेकी स्थितिमें आते ही उसे तिलांजलि न दे देते। परन्तु जैसा मैं पहले ही कह चुका हूं, हमने उसे लाचारीसे अपनाया था। यदि हमारे पास अणुबम होता, तो हम उसका भी उपयोग अंग्रेजोंके खिलाफ करते । [प्रार्थना-प्रवचन, १६ जून, १९४७]

कुछ लोग कहने लगे थे कि अहिंसाकी शक्ति सीमित है और उसका लक्ष्य भी सीमित है – आजकी नई परिस्थितियोंमें उसका उपयोग नहीं किया जा सकता । गांधीजीने उनसे कहा कि यद्यपि आप नहीं जानते, फिर भी अहिंसाका नियम इस समय भी आपके बीच काम कर रहा है ।

आज मुझसे कहा जाता है कि वह (प्रेमका नियम) प्रभावशाली नहीं रह गया है। अब मैं आपसे पूछता हूं कि इन प्रार्थना-सभाओंमें आपको रोज कौनसी शक्ति लाती है। कोई जबरदस्ती नहीं है। फिर भी आप प्रेमसे खिंच कर यहां चले आते हैं और मेरी बात धीरजसे सुनते हैं। यदि सब हिन्दू मेरी बात सुनें, तो हम ऐसी मिसाल कायम कर सकते हैं जिस पर दुनियाको मजबूर होकर चलना पड़ेगा ।

आप पूछेंगे कि मैं यही बात मुसलमानोंसे क्यों नहीं कहता। मेरा उत्तर यह है कि वे आज मुझे अपना दुश्मन समझते हैं। हिन्दू मुझे अपना दुश्मन नहीं मानते। इसीलिए मैं उनसे कहता हूं कि वे अपने हथियार समुद्रमें फेंक दें और वीरोंकी अहिंसाकी अद्वितीय शक्तिको समझें। [वही]

लेकिन जब गांधीजी ये शब्द कह रहे थे तब भी वे अपने मनसे पूछ रहे थे: क्या मैं इस सत्यका उच्चार करनेका योग्य माध्यम हूं ? लोगोंके हृदयोंमें इस सत्यको अंकित कर देनेके लिए पहले मुझे खुद इसका पूर्ण साक्षात्कार करना होगा :

क्या मुझमें वह वीरोंकी अहिंसा है ? यह तो केवल मेरी मृत्युसे ही सिद्ध होगा। यदि कोई मुझे मार डाले और मरते समय मेरे मुंहसे हत्यारेके लिए प्रार्थना निकले और मेरे हृदय-मंदिरमें भगवानका स्मरण और उसकी जीती-जागती उपस्थितिका भान हो, तो ही यह कहा जायगा कि

मुझमें वीरोंकी अहिंसा है। अगर हिन्दू – नहीं, अकेले सिक्ख भी – अपनेमें यह क्षमता और साहस पैदा कर लें, तो वे भारतकी समस्या हल कर देंगे।

परन्तु आज तो उस बहादुर और साहसी पठान बादशाह खानमें भी यह अहिंसा पूरी मात्रामें नहीं है। उन्हें डर है कि अगर कोई पठानोंसे यह कह दे कि सीमाप्रान्तको भारतीय संघमें मिल जाना चाहिये, तो इससे भाई-भाईमें ऐसा भयंकर संघर्ष छिड़ जायगा जैसा पहले कभी नहीं हुआ था। वे क्या कर सकते हैं ? वीरोंकी अहिंसा ऐसी चीज नहीं, जिसे आदेश देकर पैदा किया जा सके । [वही]

गांधीजीने कहा : मैं नहीं जानता कि लोगोंसे वीरोंकी अहिंसा कैसे अंगीकार कराई जाय। मेरे इस कथनका यह मतलब नहीं है कि मैं नहीं जानता कि इस गुणका विकास कैसे किया जा सकता है। "बेशक, पहली जरूरत तो यह है कि हमारे भीतर ईश्वरकी जीवंत उपस्थितिका भान हो," मैंने बताया है कि अपने भीतर ईश्वरकी जीवंत उपस्थितिको जगानेके लिए प्रतिदिन ईश्वरके नामका जप किया जाय। परन्तु उस दैनिक नाम-स्मरणके साथ कुछ गूढ़ार्थ जुड़े हुए हैं। "मान लीजिये कि भारतके लाखों लोग नित्य एक नियत समय पर राम, अल्लाह, खुदा, अहुमेज्द और जिहोवाके रूपमें ईश्वरका नाम जपते हैं; परन्तु नाम-स्मरण करनेवाले लोग यदि मदिरा-पान, व्यभिचार, बाजारमें या अड्डोंमें जुआ खेलने और चोरबाजारी आदिसे मुक्त नहीं हैं, तो रामधुन एक व्यर्थ और लज्जाजनक प्रयत्न होगा । दुष्ट हृदयवाले मनुष्यको ईश्वरकी सर्व-पापहारी उपस्थितिका अनुभव कभी नहीं हो सकता।" ['हरिजन' में छपी रिपोर्ट, २९ जून, १९४७, पृ. २०९] इसलिए यह कहनेकी अपेक्षा कि वीरोंकी अहिंसा सिखानेका कोई कार्यक्रम नहीं बनाया गया है, यह कहना अधिक सत्य होगा (यदि यह सत्य हो तो) कि भारत अभी बलवानोंकी अहिंसाका पाठ सीखनेके लिए तैयार नहीं है । दूसरे शब्दोंमें, बलवानोंकी अहिंसाका विकास करनेका कार्यक्रम उतना आकर्षक नहीं है जितना आकर्षक अंग्रेजोंसे लड़नेका कार्यक्रम सिद्ध हुआ ।

एक नवयुवक समाजवादी मित्रको गांधीजीने लिखा : "हमारा एकमात्र बल नैतिक और आध्यात्मिक था। वह हमने खो दिया। उसका विपरीत बल है पशुबल या सैनिक बल । वह भी हममें नहीं है। इससे भारतका सर्वनाश हो जायगा। अब तुम समझ लोगे कि मैंने चाय, सिगरेट और ऐसे ही अन्य

व्यसनोंके निषेध पर इतना अधिक जोर क्यों दिया है। बुद्धिमानको इशारा काफी है ।" [गांधीजीका पत्र राममनोहर लोहियाको, २२ जुलाई, १९४७]

सत्याग्रहके विज्ञानमें केवल उसके नियमके प्रतिपादनकी ही बात नहीं आती । उसमें ऐसी कार्य-पद्धतियां सोच निकालनेकी बात भी शामिल है, जिनके द्वारा आम लोगोंको अपनी दैनिक समस्यायें हल करनेके लिए सत्याग्रहका प्रयोग करना सिखाया जा सके। धीरे धीरे गांधीजी एक ऐसी नई शक्तिके निर्माणकी दिशामें आगे बढ़ रहे थे, जो लोगोंकी कल्पना पर अधिकार जमा कर गांधीजीकी अहिंसाके लिए उनके मनमें वही उत्साह उत्पन्न कर दे जो कि अंग्रेजोंके विरुद्ध की गई लड़ाईमें गांधीजीके असहयोग और सविनय कानन-भंगके कार्यक्रमने लोगोंमें उत्पन्न किया था। इसके लिए नया कार्यक्रम ऐसा होना चाहिये जो लोगोंके हृदयोंमें बसी हुई गहरी और सार्वत्रिक अभिलाषाको पूरा कर सके और उन बुराइयोंका रामबाण इलाज बता सके, जिनके कारण लोग कष्ट भोग रहे थे लेकिन जिन्हें दूर करनेका उपाय वे नहीं जानते थे। यह कार्यक्रम कुछ समय बाद सामने आया। गांधीजीको उसकी रूपरेखा बताने और उस दिशामें आरंभ करनेका ही समय मिला। इतनेमें तो उनके सर्वोत्कृष्ट बलिदानका दिन आ गया, जिसने उनकी मृत्युको भी गौरवशाली बना दिया।

पन्द्रहवां अध्याय : भूलभुलैया

१

गांधीजीका हृदय वेदनासे भरा था। उनके कांग्रेसी साथी जिस मार्ग पर चल रहे थे, वह उन्हें पसन्द नहीं था। साथ ही वे उनकी खुली आलोचना करके उन्हें परेशानीमें भी नहीं डालना चाहते थे। जुलाईके अंतिम सप्ताहसें उन्होंने सरदार पटेलको लिखा: "यहां जो कुछ हो रहा है वह मुझे बहुत पसन्द नहीं आ रहा है। इसका यह अर्थ नहीं कि आप अपना रास्ता बदल लें; परन्तु मैं किसीको यह नहीं कहने देना चाहता कि उसके साथ मेरा सम्बंध है। इसके सिवा, मुझे १५ तारीख (अगस्त) से पहले बिहार और वहांसे नोआखाली पहुंच जाना चाहिये। वह कार्य भी महत्त्वपूर्ण है। इसलिए मेरा आपसे इतना ही कहना है कि आप मुझे यहां न रोकें। . . . मुझे ऐसा भी लगता है कि अब 'हरिजन' बन्द कर देना चाहिये। मुझे यह ठीक नहीं लगता कि देशको विपरीत मार्गदर्शन दिया जाय। इस पर फुरसतसे विचार कर लें।"

'हरिजन' के व्यवस्थापकको गांधीजीने लिखा: "शायद हमें 'हरिजन' बन्द कर देनेका फैसला करना पड़े। . . . हमारे नेता जो बातें कर रहे हैं, उनमें से बहुतोंके प्रति मेरा मन विद्रोह करता है। फिर भी उनका सक्रिय विरोध करनेका मेरा जी नहीं होता। लेकिन यदि मैं पत्र चलाऊं, तो उससे कैसे बच सकता हूं ? आप भी और सरदार भी मेरे बिना उसे चलाना नहीं चाहते ।"

परन्तु कांग्रेसी नेताओंको दिल्लीमें गांधीजीकी उपस्थितिकी जरूरत थी; इसलिए वे राजधानीमें ही रहे और नेताओंका बोझ हलका करनेका भरसक प्रयत्न करते रहे ।

शासनारूढ़ साथियोंके साथ गांधीजीके सम्बंधका प्रश्न निहायत नाजुक था। जब तक वे राजधानीमें हों तब तक वहांकी घटनाओंसे आंखें बन्द नहीं रख सकते थे। परन्तु कांग्रेसमें उनका पदाधिकारीके रूपमें या दूसरा कोई स्थान नहीं था, सरकारमें तो था ही नहीं। गांधीजीको यह सावधानी रखनी पड़ती थी कि कहीं उस स्थितिमें नैतिक अधिकारका प्रयोग भी उन लोगोंको दमन जैसा न लगे। समस्याओंके बारेमें शुद्ध नैतिक दृष्टिकोणसे सरकारी दृष्टिकोण भिन्न होता है। प्रशासकको लोकमत अपने साथ लेकर चलना पड़ता है; अगर तानाशाही तरीकोंसे बचना हो तो वह लोकमतसे बहुत आगे नहीं जा सकता। परन्तु सुधारक आगे जा सकता है और वे खतरे उठा सकता है, जो कोई जिम्मेदार

प्रशासक नहीं उठा सकता। गांधीजीके कांग्रेसी साथी अब सरकारके सदस्य थे। वे व्यावहारिक मनुष्य थे। उनमें गांधीजीके आदर्शवादकी चमक आ गई थी। वे गांधीजीके पथ-प्रदर्शनका महत्त्व समझते थे, क्योंकि उन्होंने देख लिया था कि वह अत्यंत व्यावहारिक होता है। परन्तु यह देखकर कि अब उन्हें अपनी ही शक्तिसे चलना पड़ता है, गांधीजीको इसकी अधिकसे अधिक सावधानी रखनी पड़ती थी कि उनके मार्गदर्शनमें हस्तक्षेपकी गंध न आये और वह दमनका रूप न ले ले। उन्हें साथियोंकी ईमानदारी और देशभक्तिमें पूर्ण विश्वास था। उनके हेतु अत्यंत शुद्ध थे । उन्हें कोई स्वार्थपूर्ति नहीं करनी थी। अतः उनके उपदेशोंका जितना भाग नेताओंने पचा लिया था उसका आचरण गांधीजी उन्हें करने देते थे । इस बीच उन्होंने वातावरणको बदलना शुरू कर दिया और लोगोंमें काम करके उनमें वे ऐसी प्रेरणाएं उत्पन्न करने लगे, जिनसे साथियोंके लिए अपनी नीतियोंको गांधीजीके आदर्शोंके निकट रखनेमें आसानी हो ।

खाकसारोंका उल्लेख द्वितीय खण्डके सोलहवें अध्यायमें किया गया है। स्पष्ट था कि उन्होंने अपने बिहारके अनुभवसे लाभ नहीं उठाया। उनकी मांग "कराचीसे कलकत्ते तक फैले हुए अखण्ड पाकिस्तान" की थी। वे इस बात पर क्रुद्ध थे कि जिन्नाने "कटा-पिटा, टूटा-फूटा" पाकिस्तान स्वीकार कर लिया। १० जूनको जब मुस्लिम लीगकी कौंसिलका अधिवेशन विभाजन और पाकिस्तानकी योजनाकी स्वीकृति पर मुहर लगानेके लिए नई दिल्लीमें हो रहा था तब उन्होंने अचानक आक्रमण करनेकी कोशिश की। बेलचोंसे सुसज्जित होकर वे "जिन्नाको पकड़ लो" के नारे लगाते हुए इम्पीरियल होटलमें घुस पड़े । अश्रुगैसके बम छोड़ कर उन्हें वशमें किया गया, लेकिन फर्नीचरको उन्होंने बेहद नुकसान पहुंचाया। थोड़े ही अर्से बाद उन्होंने दिल्लीके अधिकारियोंसे झगड़ा मोल ले लिया, इसलिए उनके खिलाफ उचित कार्रवाई करनी पड़ी। यद्यपि पहले वे गांधीजीको गालियां दे चुके थे और उनके भलेपनका दुरुपयोग भी कर चुके थे, फिर भी उनमें से दो खाकसार गांधीजीके पास फिर आये। वे जो किस्सा लेकर आये वह बादमें तो बनावटी पाया गया। लेकिन गांधीजी उनकी कहानीसे प्रभावित हुए ।

गांधीजीका पत्र सरदार पटेलको

२६ जुलाई, १९४७

उन (खाकसारों) में से एक बुरी तरह रोता था। उसने कहा कि सरकारी कर्मचारियोंने उससे कह दिया है कि हर हालतमें तुम लोगोंको जाना पड़ेगा, इसलिए आगे और कुछ नहीं

होगा। इसके बावजूद, उसी रातको एक मस्जिदमें मुसलमानों पर गोली चलाई गई। बहुतसे मारे गये । एक सत्तर वर्षके बूढ़को सात गोलियां लगीं। पता नहीं हताहतोंमें कितने मरे और कितने जिन्दे रहे। मस्जिदको घेर लिया गया, तीन दिन तक खाकसारोंको भूख-प्यासकी यातना सहनी पड़ी। वे शौचादिके लिए भी बाहर नहीं निकल सके।

यह सब सुन कर मैं हक्काबक्का रह गया। मैंने उसे फटकारा : "यह सब असंभव है। सरदारने मुझे आज ही बताया है कि खाकसारोंने किसी भी हालतमें मस्जिद खाली करनेसे इनकार कर दिया और खुद बुजुर्ग मुसलमानोंने ही कहा कि पुलिस कर्मचारियोंने इमामकी इजाजत लेनेके बाद मस्जिद खाली कराई। कोई बल-प्रयोग नहीं किया गया। केवल अश्रुगैसका उपयोग किया गया और कोई मारा नहीं गया। इसलिए आप जो कहते हैं उसे मैं मान नहीं सकता।" उनका जवाब था: "हम जानते हैं कि जब आपके सरदार कोई और बात कहते हैं तब हमारी बातोंकी कोई कीमत नहीं हो सकती । खैर, खाकसार तो मारे गये, अब न्याय मांगनेसे क्या लाभ ? लेकिन किसी दिन आप जानेंगे। सचाई छिपी नहीं रहेगी।" मैंने कहा : "अगर मुझे पता चला कि खाकसारोंके साथ अन्याय किया गया है, तो मैं अपने प्रियजनकी भी रक्षा नहीं करूंगा। अभी तो मैं इससे ज्यादा आपसे कुछ नहीं कह सकता । परन्तु विश्वास रखिये, मैं अपना फर्ज अदा करूंगा।" अब कोई बात इसमें हो तो मुझे बताइये।

कुछ दिन बाद खाकसार लाहौरमें फिर गांधीजीसे मिले। इस पर गांधीजीने सरदारको एक और पत्र भेजा: "वे (खाकसार) अधिक अन्यायकी शिकायत करते हैं। उनका कहना था कि वे होटलमें अपना सामान छोड़कर मुझसे मिलने आये थे। उनकी गैर-हाजिरीमें पुलिस होटलसे उनका सामान उठाकर ले गई। मैंने उनसे कहा कि मैं सरदारको सिर्फ लिख ही सकता हूं। इससे ज्यादा मैं कुछ नहीं कर सकता। वे बोले: 'हमारी बात कोई सुननेवाला नहीं है। इसलिए हमें आप एक पत्र दे दीजिये, ताकि हमारी बात शांतिसे सुनी जाय। उसके बाद कुछ भी हो, उसकी हमें परवाह नहीं।' . . . मैं नहीं चाहता कि आप अपना समय उन्हें दें। इतना काफी होगा कि आप किसी कर्मचारीसे उनकी बात सुन लेनेको कह दें।" [गांधीजीका पत्र सरदार पटेलको, ६ अगस्त, १९४७]

गांधीजीके हृदयमें सबके लिए कोमल भाव था। वे सबका विश्वास करते थे। इससे कभी कभी लोगोंको उनसे अनुचित लाभ उठानेका प्रोत्साहन मिलता था। सरदार दूसरी ही मिट्टीके बने हुए थे। वे घरतीके चतुर पुत्र और भूतपूर्व वकील थे। फौजदारी मामलोंमें उन्होंने नाम कमाया था। सारे पुराने वकील उनसे बचते थे और जो मजिस्ट्रेट अकडूपनके लिए बदनाम थे वे भी उनसे बचते थे। वे अपने मुवक्किलोंको जानते थे और मुवक्किल उन्हें जानते थे। वे किसीकी बेकारकी बातोंमें आनेवाले नहीं थे और कोई उनके साथ खिलवाड़ करनेकी हिम्मत नहीं करता था। उनका जवाब उतना ही स्पष्ट था जैसा कि होना चाहिये।

सरदार पटेलका पत्र गांधोजोको,

११ अगस्त, १९४७

खाकसार आपको व्यर्थ तंग कर रहे हैं। आपके . . . दिल्लीवाले पत्रमें आपने दिल्लीकी एक मस्जिदमें गोली चलने और खाकसारोंके हताहत होनेका उल्लेख किया है । गोली चलनेकी सारी कहानी मनगढ़ंत है और कोई खाकसार गोलीके घावोंसे नहीं मरा है। कुछ खाकसारोंने मस्जिदमें अड्डा जमा लिया था और स्वाधीनता-दिवस (१५ अगस्त) के उत्सवके समय प्रदर्शन करनेका षड्यंत्र रच रहे थे। उनकी योजना यह थी कि कांग्रेसका झंडा न फहराने दिया जाय और उत्पात मचाकर हिंसा की जाय। इसलिए कमिश्नरने (जो मुसलमान है) मस्जिदमें अश्रुगैस छोड़ कर उन्हें गिरफ्तार कर लिया। इसके सिवा दूसरा कुछ नहीं हुआ। कुछ खाकसार आपका पत्र लेकर आज आये हैं । उनकी शिकायत भी सर्वथा निराधार है। मैंने उन्हें कमिश्नरके पास भेजा है । खाकसार दिल्ली, आगरा और अजमेरको भी पाकिस्तानमें मिलाना चाहते हैं। इस उद्देश्यसे वे दिल्लीमें एक मोर्चा कायम करके गड़बड़ी पैदा करना चाहते हैं। वे लोग कमिश्नरको दिल्लीमें नहीं रहने देना चाहते । वे मस्जिदोंमें पनाह लेते हैं। स्थानीय मुसलमान उन्हें कोई समर्थन नहीं दे रहे हैं ।

गांधीजीने उत्तर दिया : "खाकसारोंके बारेमें सारी बातें मैं समझ गया । मुझे लगा कि उनके साथ मुझे ऐसा व्यवहार करना चाहिये, जिससे उनके पास शिकायतके लिए थोड़ा भी कारण न रह जाये। . . . मैंने तो हमेशा इसी तरह काम किया है।" [गांधीजीका पत्र सरदार पटेलको, १३ अगस्त, १९४७]

तीन महीने बाद गांधीजीको अपने सारे कष्टोंके बदलेमें खाकसारोंके नेताकी ओरसे यह पत्र मिला: "आपकी तथाकथित प्रार्थना-सभाओंमें, जिन्हें आप इतने दंभपूर्वक कुरान और गीताके पाठसे शुरू करते हैं, राजनीतिक मामलों पर आपका एक भी उद्गार ऐसा नहीं होता, जिसमें कोई न कोई बात मुसलमानोंके विरुद्ध कटुता, सत्यके विपर्यास या बदलेकी भावनासे भरी न हो। . . - और अब तो और भी स्पष्ट हो गया है . . . कि आप भारतके पूरे दस करोड़ मुसलमानोंके . . . दुश्मन हैं। बिहारमें राज्यने जो हत्याकाण्ड किये हैं उनकी दो मासकी मेरी अपनी जांचने निश्चित रूपसे यह प्रमाणित कर दिया है कि वे सब आपके ही तात्कालिक और एकमात्र निर्देशसे हुए थे।" [अल्लामा मशरिकीका तार गांधीजीको, २ नवम्बर, १९४७]

*

सरदारको गुजरातकी अनावृष्टि तथा देशीराज्योंकी समस्याके कारण चिन्ता हो रही थी। "पिछले पंद्रह दिनोंसे मैं राजाओंके साथ व्यस्त हूं। बड़ी मेहनतका काम है। भोपालके नवाबके षड्यंत्रोंका कोई अन्त नहीं है। वे दिन-रात राजाओंमें फूट डालने और उन्हें भारतीय संघसे बाहर रखनेके काममें लगे रहते हैं। राजा सब बेहद कमजोर हैं। उनमें स्वार्थ-परायणता, झूठ और दम्भ कूट कूट कर भरे हैं।" [सरदार पटेलका पत्र गांधीजीको, ११ अगस्त, १९४७] गांधीजीको इससे भी ज्यादा चिन्ता सरदारके स्वास्थ्यकी थी। उन्होंने सरदारको अपनी प्रिय प्राकृतिक चिकित्सा करानेकी सलाह दी। परन्तु सरदारने उस पर कोई ध्यान दिया हो ऐसा नहीं लगा। १३ अगस्तको उन्होंने सरदारको लिखा : "हमारे सामने कठिनाई है और कठिनाइयां बढ़ती दीखती हैं। ऊपरसे प्रकृति भी हमारे विरुद्ध मालूम हो रही है। पानी नहीं बरसा तो हम क्या करेंगे ? क्या बहुतोंके भाग्यमें (भूखसे) मरना ही लिखा है ? देशीराज्योंकी समस्या कठिन है। परन्तु मैं जानता हूं कि आप इसे सफलतापूर्वक हल कर लेगें। किन्तु आपके स्वास्थ्यकी समस्याको कौन हल करेगा ?"

*

लॉर्ड माउन्टबेटनका भारतीय नेताओं द्वारा भारतीय संघके प्रथम गवर्नर-जनरलके पद पर चुना जाना भारत और ब्रिटेनके सम्बंधोंके इतिहासमें अनोखी घटना थी। स्वाधीनता-संग्रामका मूलतः अहिंसात्मक स्वरूप होनेके कारण ही यह संभव हुआ। और किसी परिस्थितिमें ऐसी बात सोची भी नहीं

जा सकती थी। किन्तु कुछ लोगोंने विरोध किया कि लॉर्ड माउन्टबेटन तो अंग्रेज हैं; इस पदके लिए क्या उतना ही उपयुक्त कोई भारतीय नहीं मिल सकता ?

गांधीजीने अपने साथियोंकी कार्रवाईका समर्थन किया । कहा : इससे सिद्ध होता है कि वे सब प्रकारके पूर्वग्रहोंसे ऊपर उठ कर अपने कल तकके विरोधियों पर विश्वास रखनेकी बहादुरी दिखा सकते हैं। माउन्टबेटन वाइसरॉयके रूपमें नहीं, परन्तु हमारे प्रथम सेवकके रूपमें भारतमें रहे हैं। चूंकि वे औपनिवेशिक स्वराज्यकी योजनाके एकमात्र नहीं तो आंशिक कर्ताधर्ता हैं, इसलिए वे राज्यके जहाजको अशान्त सागरसे पार लगानेके लिए विशेष योग्य हैं। राज्यके वैधानिक अध्यक्षके नाते उनकी सत्ता क्षीण हो जायगी। फिर भी वे सेवा करते रहेंगे। इससे उनकी शक्तिका पता चलता है।

परिणाममें तो यह नियुक्ति दूरदर्शितापूर्ण राजनीतिज्ञताका कार्य सिद्ध हुई । ब्रिटिश अनुदार-दलके सदस्य "हमेशा पाकिस्तानको एक ओर खतरनाक हिन्दुओंके विरुद्ध और दूसरी ओर दुराशयी बोलशेविकोंके विरुद्ध ब्रिटेनका मित्र मानते थे।" [दि न्यू स्टेट्समैन एन्ड नेशन, लंदन, १८ जून, १९४९] लॉर्ड माउन्टबेटनको गवर्नर-जनरलके पद पर नियुक्त करनेके संघ-सरकारके निर्णयने पाकिस्तानके लिए इस बातको कठिन बना दिया कि वह अपनी "हिन्दू-विरोधी" भावनाओंको "ब्रिटेनके प्रति मित्रता" की भावना मनवा सके।

परन्तु अंग्रेजोंके पिछले अन्यायोंका "तीर" लोगोंकी स्मृतिमें इतना गहरा घुस गया था कि उसे निकालना आसान नहीं था। गांधीजीको उस पर अत्यंत जागरूक दृष्टि रखनी पड़ती थी। उदाहरणार्थ, एक ऐसी अफवाह फैला दी गई थी कि जैसे केनेडा और कुछ अन्य उपनिवेशोंके झंडेमें यूनियन जैक (ब्रिटिश झंडा) भी रहता है, वैसे ही भारतीय संघके झंडेमें भी वह रहेगा । एक पत्रलेखकने गांधीजीको लिखा: "अगर ऐसा हुआ तो मैं उस झंडेको फाड़ कर टुकड़े टुकड़े कर डालूंगा ।" गांधीजीका आग्रह था: जहां शौर्य और आदर व्यक्त करना उचित हो वहां हमें इन दोनों गुणोंका परिचय देना ही चाहिये और सबके प्रति वीरोचित शिष्टता दिखानी चाहिये। यूनियन जैकने कोई अपराध नहीं किया। गुलामीकी लम्बी अवधिके दौरान भारतके साथ जो अन्याय हुआ वह ब्रिटिश सरकारने किया था। अब वह जा रही है। कल तक जो लोग हमारे विरोधी थे, उनके प्रति उदार बन कर हम कुछ खोयेंगे नहीं। हमारे झंडेके एक कोनेमें

यूनियन जैकको तब तक रहने दिया जाय जब तक भारत राष्ट्र-मंडलमें रहे । मुझे तो व्यक्तिगत रूपमें यह लगता है कि हमें इसे प्रतिष्ठाकी बात बनाना चाहिये। [प्रार्थना-प्रवचन, १९ जुलाई, १९४७]

यह अफवाह निराधार साबित हुई; यूनियन जैकको भारतीय झंडे पर स्थान मिलनेवाला नहीं था। परन्तु इससे मिलनेवाली सीख तो कायम रही। गांधीजीने लोगोंसे कहा कि इस बात पर आप खुशी न मनायें। ब्रिटिश सरकारने जब हमारी स्वाधीनता स्वीकार कर ली है, तो भारतीय संघको अधिकार है कि वह जो चाहे सो करे। मुझे तो केवल भारतीय परम्पराकी रक्षाकी ही चिन्ता है।

*

दक्षिण भारतमें बहुत हद तक ब्राह्मण-अब्राह्मणके पुराने झगड़ेके कारण द्राविड़िस्तान स्थापित करनेके लिए एक आन्दोलन खड़ा हो गया था। इसका अर्थ था तामिल, तेलुगु, मलयालम और कन्नड़ – इन चार द्राविड़ी भाषाओंको बोलनेवाली समूची जनताका एक अलग राज्य बना दिया जाय। गांधीजी भाषावार प्रान्तोंके पुनर्गठनके पक्षमें थे, क्योंकि वे चाहते थे कि प्रादेशिक भाषाओंका विकास हो और प्रत्येक घटकको सम्पूर्ण सांस्कृतिक स्वायत्तता प्राप्त हो। परन्तु वे ऐसा नहीं चाहते थे कि यह कोई तोड़-फोड़ और छिन्न-भिन्न करनेवाला आन्दोलन बन जाय । उन्होंने द्राविड़िस्तानके आन्दोलनका खुले तौर पर विरोध किया। उन्होंने पूछा : क्या आप चाहेंगे कि आपके बारेमें यह कहा जाय कि आप गुलामीमें ही एक राजनीतिक प्रणालीके योग्य थे; और स्वतंत्र होने पर गुलामोंकी भांति अलग अलग गुटोंमें बंट जायंगे और प्रत्येक गुट अपनी डफली अलग ही बजायेगा ? या कोई स्वेच्छाचारी राज्य, जिसके पास आपको गुलाम बनाने लायक बड़ी सेना होगी, आपको गुलाम बना कर रखेगा ? भारत स्वतंत्र होने पर तभी एक होकर रह सकेगा और एक होकर काम कर सकेगा, जब वह नैतिक सरकारको स्वीकार करेगा। गुलामीके विरुद्ध लड़नेवाली संस्थाके रूपमें कांग्रेसको नैतिक बलने ही एक बनाये रखा था। क्या अब राजनीतिक आजादीके लगभग मिल जाने पर कोई और स्थिति होनी चाहिये? [प्रार्थना-पवचन, १६ जुलाई, १९४७]

*

अहिंसक परम्परा और असहयोग-कालके प्रारंभिक आदर्शोंके खिलाफ कांग्रेसमें जो विद्रोह शुरू हुआ था, उसका एक नमूना यह विवाद था कि भारतीय संघका झंडा कैसा बने। तिरंगा तो कांग्रेसको

गांधीजीने दिया था। उसके बीचमें जो चरखा स्थित था वह अहिंसाका, श्रमके गौरवका और सर्वोदयके आदर्शका प्रतीक था। जो नया झंडा स्वीकार किया गया उसमें चरखेकी जगह अशोकका धर्मचक्र रख दिया गया। एक भूतपूर्व कांग्रेसी मंत्रीने एक भाषणके दौरान कहा था कि "अशोक-चक्र और चरखेमें कोई साम्य नहीं है। अशोक-चक्र तो हिन्दू धर्मका प्रतीक है। चरखा अहिंसाका प्रतीक है। नये झंडेमें सुदर्शन चक्र है, जो हिंसाका निश्चित प्रतीक है।

इस परिवर्तनको नापसंद करते हुए गांधीजीने 'हरिजन' में लिखा :

> कुछ लोग कहते हैं कि मूल वस्तु सदाके लिए लुप्त हो गई है। नई पीढ़ी आरंभ हो गई है और उसके साथ साथ नई और उपयुक्त कल्पनाएं आ गई हैं। मैंने कोई सपूत ऐसा नहीं देखा, जिसकी दृष्टिमें उमरके कारण उसकी मां कुरूप हो गई हो। यह संभव है कि शुद्ध सोने पर मुलम्मा चढ़ाया जा सके, परन्तु अपने माता-पिताका श्रृंगार करनेवाले पुत्रने अभी तक जन्म नहीं लिया है। इसलिए मेरी रायमें यदि हमारे विधान-सभाओंके सदस्य मूल झंडेके स्वरूपमें परिवर्तन करनेका विचार ही न करते तो कुछ बिगड़ता नहीं। [हरिजन, ३ अगस्त, १९४७, पृ. २६०]

उन्होंने यह भी कहा: "झंडेमें किये जानेवाले सुधारके पक्षमें कुछ लोग यह कहते हैं कि चरखा तो बुढ़ियाका सहारा और गांधीका खिलौना था; परन्तु स्वराज्य बुढ़ियाओंकी वस्तु नहीं है। वह तो योद्धाओंका है और इसलिए हमें सिंहोंसे विभूषित अशोक-चक्र ही चाहिये। . . . कायरता तो हमारे यहां बहुत हो चुकी। . . . सिंह ही जंगलका एकछत्र राजा होता है। भेड़-बकरी तो उसका आहार हैं। उन्नतिके इस युगमें हम खादीसे ऊब गये हैं। अब तो कांचके सूतका बना (बुना हुआ) सुन्दर कपड़ा मिलता है। हमारे पूर्वज हवा और पानीसे बचनेके लिए कपड़ेका उपयोग करते थे। अब हम श्रृंगारके लिए वस्त्र धारण करते हैं; इसलिए वह इतना पारदर्शी होना चाहिये कि शरीरका अंग-अंग अच्छी तरह दिखाई दे। . . . हम अपने शहरोंकी दुकानोंको खादीसे बदसूरत नहीं बनाना चाहते। अवश्य ही हमें इस बातका श्रेय मिलना चाहिये कि हम गांववालोंके लिए खादी पहनना और बूढ़ी औरतोंके लिए अपने घरोंमें चरखा चलाना अपराध नहीं मानते । ऊपरके अर्थवाला झंडा कितना ही कलापूर्ण क्यों न दिखाई दे, परन्तु मेरा सिर उसके सामने नहीं झुकेगा।"

परंतु पंडित नेहरूने संविधान-सभामें यह समझाया कि आशयमें नया झण्डा वही है, जो वर्तमान तिरंगा झण्डा है। वह भी पहलेकी तरह खादीका ही होगा। इस पर आलोचना करते हुए गांधीजीने लिखा:

संशोधित चक्रमें तकुए और मालका न होना कोई दोष नहीं माना जाना चाहिये, यदि ऐसा केवल कलाकी दृष्टिसे ही किया गया हो । आखिर तो हर चित्रमें कल्पनाके लिए गुंजाइश रखनी ही पड़ती है। . . . कुछ लोगोंको इस चक्रके द्वारा शान्ति-सम्राट् अशोककी याद आयेगी, जिन्होंने साम्राज्यकी स्थापना की परन्तु जो अन्तमें वैभव और सत्ताका परित्याग करके लोगोंके हृदय-सम्राट् बन गये और सब धर्मोंके प्रतिनिधि हो गये। दया और प्रेमके जीवंत भंडार (अशोक) के साथ जुड़े हुए चक्रमें धर्मचक्रके दर्शन करना उस चक्रका उचित अर्थ कहा जायगा। चरखेका इस तरहका अर्थ करोड़ों-अरबों मानवोंके जीवनमें उसके महत्त्वको बढ़ा देता है। अशोक-चक्रके साथ चरखेकी तुलना करने और उसीमें से चरखेको निकालनेका अर्थ है तुच्छ दिखाई देनेवाले चरखेमें दिव्य प्रेमधर्मके निरन्तर घूमनेवाले चक्रके आदेशको माननेकी आवश्यकता स्वीकार करना । [वही]

*

गांधीजीका ध्यान इस ओर दिलाया गया कि संविधान-सभाने नया राष्ट्रीय झंडा स्वीकार कर लिया है, इसलिए लोग चरखेवाले झंडे नहीं खरीद रहे हैं। इस कारण लगभग दो लाख रुपयेकी लागतके झंडे चरखा-संघके पास बिना बिके पड़े हैं । अपने एक प्रार्थना-प्रवचनमें गांधीजीने इस ओर लोगोंका ध्यान आकर्षित किया : चरखा-संघ गरीबोंकी संस्था है। वह इतनी हानि सहन नहीं कर सकती । इसलिए संघके खादी-भंडारोंको तब तक नये झंडे नहीं बेचने चाहिये, जब तक पुराने झंडे न खप जायें। लोग बिना किसी संकोच या बाधाके पुराना झंडा फहरा सकते हैं, और उन्हें फहराना चाहिये । "जब राजा मरता है तो यह कहा जाता है कि 'राजा मर गये, राजा दीर्घायु हों ।' राजपद बना रहता है। सिक्कों पर नये राजाकी छाप लग जाती है। परन्तु पुराने सिक्कोंकी वही कीमत होती है, जो नये सिक्कोंकी होती है और वे वैसे ही चलते रहते हैं। यही बात आजके तिरंगे झंडे पर लागू होती है ।" [वही, पृ. २६३]

सरकारने धरतीके कटावको रोकनेके लिए जो वृक्षारोपण सप्ताह आयोजित किया था, उस पर गांधीजीका ध्यान गया। इस कार्यक्रममें अनेक बड़े बड़े लोगोंने भाग लिया। गवर्नर-जनरलकी पत्नीने भी लिया। परन्तु बादमें पौधोंको सींचनेका काम केवल इन्हींने किया। गांधीजीने इनकी लगन और सावधानीकी तरफ लोगोंका ध्यान खींचा: मुझे लगता है कि यदि स्वाधीनताको जन-साधारणके लिए वास्तविक वस्तु बनना है, तो छोटे-बड़े सभी लोगोंको छोटी छोटी बातोंका अधिकाधिक महत्त्व समझना

होगा। इस बातका भय है कि स्वाधीनताके बाद लोगोंके मन "बड़ी बड़ी" बातोंमें लग जायं और "छोटी" चीजोंकी उपेक्षा होने लगे। भारतके सात लाख गांवोंका भाग्य भारतके ४० करोड़ पुत्र और पुत्रियां अच्छे या बुरे ढंगसे जो छोटे छोटे काम करेंगे उन पर निर्भर करेगा, न कि कुछ लोगों द्वारा किये जानेवाले कामों पर, फिर वे कितने ही बड़े क्यों न हों। स्वाधीन भारतके नेता, जिनके हाथमें देशकी सरकार होगी, केवल आम जनताकी ओरसे सत्ता धारण करेंगे और उसीके लिए उसका उपयोग करेंगे ? अथवा नई सरकार गरीबोंके नमक पर कर लगा कर या, उदाहरणके लिए, शराबसे राज्यकी आमदनी करनेके लिए जनताके अध:पतनका लाभ उठा कर राज्यका खजाना भरनेके प्रलोभनमें पड़ेगी ? ब्रिटिश हुकूमतनें यही किया था और इसीलिए मैंने उसे "शैतानी" सरकार कहा था। इसी कसौटी पर भारतीय स्वाधीनताको कसा जायगा। यदि भारतकी संघ सरकारका सिर फिर गया और उसने ऐसा किया, तो यह अफसोस और शर्मकी बात होगी।

*

अभी तक कांग्रेसका ध्येय बताया गया था "उचित और शान्तिपूर्ण" उपायोंसे स्वाधीनता प्राप्त करना। गांधीजीने इसका अर्थ "सत्यपूर्ण और अहिंसात्मक" उपाय किया। प्रश्न यह था: क्या स्वाधीनताके बाद कांग्रेस बनी रहे; और यदि बनी रहे तो उसका काम क्या हो ? गांधीजीने कहा : मेरे मनमें कोई शंका नहीं कि उसे स्वाधीनताके बाद भी बने रहना होगा, यद्यपि उसका ध्येय बदलना चाहिये। मैं अपने चारों ओर देखता हूं तो लोगोंके हृदयोंमें न तो मुझे सत्य दिखाई देता है और न अहिंसा। हिन्दू और मुसलमान दोनों और भी भयंकर हत्याकाण्डके लिए तैयारी कर रहे हैं। यह संघर्ष हुआ तो वह १८५७ के विद्रोहसे भी बुरा होगा, क्योंकि १८५७ में भारतके सामान्य लोग जागृत नहीं थे। इसीलिए मैंने कहा है कि मैं १५ अगस्तके उत्सवमें भाग नहीं ले सकता, क्योंकि लोग आपसमें रक्त-रंजित युद्धकी तैयारी कर रहे हैं। "ईश्वर न करे कि भारत पर ऐसी विपत्ति आये । अगर वह आई तो हमारी स्वतन्त्रता कुछ ही समयकी होगी। रूस, अमेरिका, ब्रिटेन और शायद दूसरे राष्ट्र बीचमें आ जायंगे और हमारी नई प्राप्त की हुई राजनीतिक स्वतन्त्रताको समाप्त कर देंगे।" [प्रार्थना-प्रवचन, २४ जुलाई, १९४७]

कुछ लोगोंका यह तर्क था कि जब मुसलमानोंकी मांग पर उन्हें पाकिस्तान मिल गया है, तो कांग्रेसको अब हिन्दू संस्था बन जाना चाहिये। गांधीजीने कहा : कांग्रेस ऐसा हरगिज नहीं कर सकती,

क्योंकि भारतीय संघके मुसलमानोंने अपनेको कभी विदेशी घोषित नहीं किया है। [प्रार्थना-प्रवचन, २८ जुलाई, १९४७]

मैं यह बात स्वीकार नहीं करता कि भारतका बंटवारा हो गया है इसलिए अब वह संसारमें एक महान राष्ट्रका पार्ट अदा नहीं कर सकता। सत्य और न्यायके पक्षमें अपने नैतिक प्रभावका उपयोग करके वह विश्व-शान्तिमें अब भी अपनी परम्पराको शोभा देनेवाली सहायता कर सकता है। उदाहरणार्थ, डॉ. शहरियार डच उपनिवेशवादके विरुद्ध इंडोनेशियाके स्वातंत्र्य-संग्राममें पंडित नेहरूकी सहायता लेने आये हैं। भारत कोई सेना इंडोनेशियामें भेजे इसकी अपेक्षा उसका नैतिक समर्थन कहीं अधिक प्रभावशाली होगा। परन्तु इसके लिए पहले हमें अपना ही घर ठीक कर लेना होगा। अगर हम आपसमें लड़ते रहे, तो हमारा कोई नैतिक प्रभाव नहीं पड़ सकता।

*

गांधीजीसे पूछा गया: "पाकिस्तानके झंडेके प्रति गैर-मुसलमानोंका कया रवैया होना चाहिये ?" उनका उत्तर यह था: यदि पाकिस्तानका झंडा इस्लामका झंडा है, तो वह सारी दुनियाके मुसलमानोंके लिए समान होना चाहिये और उसका विश्वव्यापी आदर होना चाहिये। जहां तक मैं जानता हूं, इस्लाम, ईसाई धर्म, हिन्दू धर्म या और किसी भी धर्मका ऐसा कोई झंडा नहीं है । "इसके विपरीत, यदि पाकिस्तानका झंडा धर्मके भेदभावके बिना वहांके सभी निवासियोंका समान रूपमें प्रतिनिधित्व करता है, तो उसे मैं भी सलाम करूंगा और आपको भी करना चाहिये ।" यदि वह अपने आंतरिक गुणोंके कारण हमारे आदरका पात्र है, तो उसके पाकिस्तानी झंडा होनेके कारण कोई फर्क नहीं पड़ना चाहिये। क्या राष्ट्र-मंडलके सदस्य राज्य एक-दूसरेको अपना शत्रु समझ सकते हैं ? [वही]

*

भारत प्रौढ़ मताधिकारको अपने भावी संविधानके आधारके रूपमें निकटमें ही अपनानेवाला था। गांधीजीको भय था कि अगर उसकी योजना अच्छी तरह नहीं बनाई गई और तमाम संभव खतरोंका पहलेसे विचार करके उनके बारेमें समुचित व्यवस्था नहीं की गई, तो प्रौढ़ मताधिकार "सारे देशको डुबोनेवाला प्रलय भी सिद्ध हो सकता है।" [हरिजन, ३ अगस्त, १९४७, पृ. २६२] बहुत कुछ गांधीजीके प्रभावके परिणाम-स्वरूप आत्मत्याग, दंभ-रहित सेवा और चरित्रकी शुद्धता किसी कार्यकर्ताकी

योग्यताकी कसौटी मानी जाने लगी थी। चतुराईपूर्ण वक्तृत्व-कलाका अब फैशन नहीं रह गया था। गांधीजीने चेतावनी दी : अगर हम सावधान नहीं रहे तो हमारे नवजात लोकतंत्र पर जड़ बहुमतोंका भारी बोझ डाल कर उसका गला घोंट दिया जा सकता है; जड़ और निष्क्रिय बहुमतका ऐसे सिद्धान्तहीन और भ्रष्ट लोकनेता अतिशय दुरुपयोग कर सकते हैं, जो असहयोग-कालके आरंभमें विलीन हो गये थे। अच्छे-बुरे कार्यकर्ताओंके चुनावके लिए अच्छी तरह सोचे हुए रचनात्मक कार्यक्रमके बराबर दूसरा कोई कारगर उपाय नहीं होता। परन्तु रचनात्मक कार्यक्रम तो धीरे धीरे कांग्रेस-जनोंमें अप्रिय होता जा रहा है। मेरा दृढ़तापूर्वक यह कहना है कि अगर कांग्रेसको शक्तिशाली संस्थाके नाते जीना है, तो "उसे रचनात्मक कार्यकर्त्ताओंका संघ बन जाना चाहिये।" [वही, पृ. २६१] इस प्रश्नकी चर्चा गांधीजीने दिसम्बर १९४७ में अधिक विस्तारसे की। फिलहाल तो दिल्लीमें उनका सारा ध्यान देशी राज्योंकी पेचीदा पहेलीको सुलझानेमें लगा रहा।

२

इतना अरसा बीत जानेके बाद लोगोंको यह कल्पना होना कठिन है कि सत्ताके हस्तान्तरणसे ठीक पहले देशी राज्योंकी समस्या भारतीय नेताओंके सामने कितनी गंभीर थी। भारतीय स्वाधीनता एक्टमें यह कहा गया था कि वे सारी संधियां और परंपरायें, जिनके द्वारा ब्रिटिश सरकार देशी राज्यों पर अपनी सार्वभौम सत्ता भोगती थी, इस एक्टसे रद्द हो जायंगी। इससे ऐसी स्थिति उत्पन्न होनेका खतरा खड़ा हो गया था, जो भारतकी स्वतंत्रताको विफल बना सकती थी।

स्वाधीनता-विधेयक (इंडिपेन्डेन्स बिल) पर कामन्स सभामें बहसके दौरान लेस्टर हचिन्सनने एक अत्यंत अर्थपूर्ण उद्गार प्रकट किया। उन्होंने कहा : "राजाओंकी समस्या ऐसी है, जो योजनाके संपूर्ण आधार पर आघात करती है। यह एक ऐसी समस्या है जिस पर बहुत गंभीर दृष्टिसे विचार करना होगा, क्योंकि अगर हमें कोई ऐसी खास संधियां करनी पड़ें जिनसे विवश होकर हमें राजाओंकी निरंकुशताके अस्त्र बनना पड़े, तो भारतीय स्वाधीनताका सारा आधार आरंभसे ही विफल हो जायगा।"

राजनीतिक दृष्टिसे देशी राज्योंको "निकृष्टतम संस्थाके टिके रहनेका एक विचित्र उदाहरण बता कर, जो ब्रिटिश सार्वभौम सत्ताके पृष्ठबलके अभावमें जिन्दा नहीं रह सकते", हचिन्सनने आगे कहा : "यदि सार्वभौम सत्ताकी शक्ति हटा ली जाय, तो क्या यह आशा रखी जा सकती है कि आधुनिक

भारतकी प्रगतिके साथ इन राज्योंके लोग अपने यहां सामन्तशाहीकी परिस्थितियोंको बरदाश्त कर लेंगे? यदि वे अपने राजाओंके खिलाफ विद्रोह करें, तो ब्रिटेनका देशी राज्योंके साथ हुई अलग अलग संधियोंके अनुसार क्या कर्तव्य होगा ? क्या हमसे उस विद्रोहका दमन करनेकी आशा रखी जायगी ?"

वुडरो व्याटने भी ऐसी ही स्पष्ट बातें कहीं । उसी बहसके दौरान उन्होंने कहा : अंग्रेजोंने भारतमें जो सबसे बुरी बात की है वह है देशी राज्योंके लोगोंके हाथसे विद्रोह और बगावतका अंतिम अधिकार छीन लेना । "देशी राज्योंके राजाओंको यह आश्वासन देकर कि अगर वे हमें तंग नहीं करेंगे या हमारी व्यापक नीतिमें हस्तक्षेप नहीं करेंगे तो हम उनकी रक्षा करेंगे, हमने वहांकी जनताको इस अधिकारका उपयोग करनेसे रोक दिया है।"

हैरॉल्ड मैक्मिलन विरोधी दलके नेता थे। उन्होंने इस कथनको चुनौती दी। उन्होंने पूछा : "क्या उनके कहनेका यह मतलब है कि पोलिटिकल विभागकी सारी सत्ता और भारत सरकारकी संपूर्ण सत्ताका उपयोग अपने राज्यमें अव्यवस्था फैलानेवाले राजाको चेतावनी देनेके लिए अथवा उसे पदभ्रष्ट करनेके लिए बराबर नहीं किया गया ? "

वुडरो व्याटने दुबारा कहा: "मैं अत्यंत दृढ़तासे कहता हूं कि भारत सरकारके पोलिटिकल विभागकी यह नीति रही है कि किसी देशी राज्यके राजाको तब तक न हटाया जाय जब तक कि उसकी नीतिकी ब्रिटिश भारतकी नीतिसे टक्कर न हो या उसका आचरण समाजकी दृष्टिसे किसी न किसी प्रकार निन्दास्पद या बहुत ही अनुचित न हो। वह कार्रवाई इस कारण कभी नहीं हुई कि राजाने अपने राज्यमें लोकतांत्रिक शासनकी व्यवस्था नहीं की।" मेरी निश्चित राय है कि पिछले दो वर्षोंमें हमें राजाओंसे सत्ता "ले लेने " और शेष भारतके साथ सीधा सम्पर्क रखनेके लिए उन्हें "मजबूर करने" का कार्य अधिक करना चाहिये था।

भारतमें जिस लोकतंत्रका जन्म हो रहा था, उसमें राजाओंका वर्ग एक भूतकालीन वस्तु बन गया था। स्वाभाविक क्रममें वह भी उसी तरह नष्टभ्रष्ट सामग्रीकी तरह इतिहासके ज्वारमें बहा दिया जाता जैसा कि अन्यत्र हुआ है। यह तो भारतके अहिंसात्मक स्वातंत्र्य-संग्रामकी सबसे बड़ी गौरव-गाथा है कि गांधीजीके संरक्षकताके सिद्धान्तको लागू करके राजाओंकी समस्याका भी ऐसा हल निकल आया, जिससे सर्वथा मिट जानेके बजाय उन्हें सुधरनेका मौका मिला । बादमें कुछ राजाओंने स्वाधीन

भारतमें अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किये और भारतको उनकी प्रतिभाका लाभ मिला, जो अन्यथा नहीं मिल सकता था।

कैबिनेट-मिशनकी योजनाके मातहत भारतीय संघके साथ देशी राज्योंके भावी सम्बन्धोंका प्रश्न राजाओं और संविधान-सभाके बीच वार्ताओं द्वारा तय होनेके लिए छोड़ दिया गया था और इस कामके लिए संविधान-सभाके अधीन एक वार्ता-समिति नियुक्त कर दी गई थी। किन्तु राजाओंके वर्गका एक हिस्सा, जिसके मुखिया नरेन्द्र-मंडलके अध्यक्ष भोपालके नवाब थे, अलग रहा था – इस आशामें कि वह संघ-सरकारके साथ बेहतर शर्तों पर समझौता कर सकेगा। इस गुटने संविधान-सभाके ध्येय-सम्बन्धी प्रस्तावका लाभ उठाया, जिसमें यह घोषणा की गई थी कि भारतका भावी संविधान इस आधार पर तैयार किया जायगा कि संघ एक "स्वाधीन सर्वसत्ताधारी गणतंत्र" हो । इस प्रस्तावका भूत खड़ा करके ये लोग अन्य राजाओंको डराना चाहते थे। इस प्रस्तावके पास होनेके आठ दिन बाद २९ जनवरी, १९४७ को नरेन्द्र-मंडलकी स्थायी समितिने निश्चय किया कि प्रत्येक राज्य उन अधिकारों और सत्ताओंके अतिरिक्त, जो वह स्पष्ट रूपमें छोड़ देगा, सार्वभौम सत्ता तथा सारे अधिकार और सत्तायें अपने पास ही रखता रहेगा। "जब तक देशी राज्य खास तौर पर स्वीकार न करें तब तक राज्योंके सम्बन्धमें संघको कोई सत्ता होने, उत्तराधिकारमें प्राप्त होने या उसमें निहित होनेका प्रश्न ही नहीं उठ सकता।"

किन्तु राजाओंमें जो अधिक विचारशील थे उन्होंने समझ लिया कि अलग-थलग रहकर स्वाधीन होनेमें हमारा भविष्य उज्ज्वल नहीं हो सकता; हमारा भाग्य शेष भारतके साथ अटूट रूपमें बंधा हुआ है। उन्हें भोपालके नवाबका अभिभावक बनना बुरा लगा। नवाबका कहना यह था कि "संविधान-सभामें हमारे प्रतिनिधित्वसे सम्बन्ध रखनेवाली कोई कार्रवाई हम व्यक्तिगत रूपमें नहीं कर सकते, बल्कि सामूहिक रूपमें और नरेन्द्र-मण्डलके अध्यक्षकी सहमतिसे ही कर सकते हैं।" राजाओंके समझदार वर्गने माना कि यह तो एक तरहसे अंग्रेजोंकी खतम होनेवाली सार्वभौम सत्ताके स्थान पर "सार्वभौम सत्ताका नया सिद्धान्त" प्रतिपादित किया जा रहा है। उन्होंने नवाबके प्रति विद्रोह कर दिया और मार्च १९४७ के अंतिम सप्ताह तक, जब लॉर्ड माउन्टबेटन भारत पहुंचे, १६ में से १० बड़े बड़े देशी राज्योंने संविधान-सभामें अपने प्रतिनिधि भेज दिये ।

कुछ अधिक महत्त्वाकांक्षी राजाओंने जब देखा कि भारतके दो भाग हो रहे हैं एक मुख्यतः हिन्दू और दूसरा मुख्यतः मुसलमान, तो उन्होंने सोचा कि अपने स्वेच्छाचारी शासनको बनाये रखनेका एक

और मौका हमें मिल रहा है। उन्होंने घोषणा की कि "साम्प्रदायिक विभाजन" के आधार पर दोनों भाग अस्तित्वमें आ रहे हैं इसलिए हम किसीमें भी नहीं मिलेंगे, क्योंकि अपने अपने राज्यमें हमने साम्प्रदायिक भावना पैदा होनेका सदा ही विरोध किया है। यह साफ झूठी बात थी। अपना स्वेच्छाचारी शासन बनाये रखनेके लिए उनमें से अनेक राजाओंने अपने राज्यमें जान-बूझ कर साम्प्रदायिकताको प्रोत्साहन दिया था। अब वे पृथक् स्वाधीन इकाइयोंके रूपमें ब्रिटिश राष्ट्र-मंडलमें प्रवेश करना चाहते थे।

११ जून, १९४७ को त्रावणकोरके दीवान सर सी. पी. रामस्वामी अय्यरने १५ अगस्तको त्रावणकोरके स्वाधीन हो जानेके निर्णयकी घोषणा की । दूसरे ही दिन निजामने एक फरमान जारी करके यह घोषणा कर दी कि सम्राट्की सरकारकी योजनाके अनुसार सार्वभौम सत्ताका अंत होने पर हैदराबाद स्वाधीन हो जायगा । यह दावा हास्यास्पद था। ये दोनों राज्य सदा सामन्त राज्य रहे थे। पहला मैसूरके सुलतानके अधीन था और उसके "पंजे" से उसका उद्धार तब हुआ जब उसने अंग्रेजोंकी "सहायक प्रणाली" (सब्सिडियरी सिस्टम) में प्रवेश किया; दूसरा राज्य मुगलोंके अधीन था। अंतमें दोनों अंग्रेजोंके अधीन राज्य बन गये। देशी राज्य प्रजा-परिषद्के नेतृत्वमें त्रावणकोर राज्यमें रियासती प्रजाके लिए लोकतांत्रिक वैधानिक अधिकार प्राप्त करनेके लिए एक प्रबल जन-आन्दोलन चल रहा था। लोग भारतमें मिल जानेके पक्षमें थे। परन्तु दीवानने देशी राज्य प्रजा-परिषद्की सार्वजनिक सभाओं पर रोक लगा दी।

गांधीजीने टीका की: जाहिर है कि जब तक ब्रिटेनके राजा सम्राट् थे तब तक तो त्रावणकोरके भारतमें रहनेमें सर सी. पी. बिलकुल संतुष्ट थे, परन्तु ज्यों ही सत्ता भारतीय हाथोंमें आई वे चाहने लगे हैं कि त्रावणकोर भारतीय संघमें शरीक न हो ! यह स्थिति सर्वथा असह्य है। यदि अंग्रेज इस तरहके आचरणमें शरीक होंगे, तो उनको स्थायी कलंग लग जायगा। मुझे आशा है कि वे उचित व्यवहार करेंगे।

और जो बात त्रावणकोर पर लागू होती थी वही हैदराबाद पर भी लागू होती थी। गांधीजीने कहा: समय बदल गया है; यदि राजा लोग समय रहते न चेते, तो वे मिट जायंगे। कांग्रेस उन्हें मिटानेकी कोई इच्छा नहीं रखती । यदि वे इतिहासके ज्वारका विरोध करेंगे, तो वे स्वयं अपना विनाश कर लेंगे। उनके सामने सीधा रास्ता यही है कि वे संविधान-सभामें आयें। मुझे इसकी परवाह नहीं कि वे कौनसी संविधान-सभामें आयें। सभीको इस बातसे गहरा दुःख है कि हिन्दू-मुस्लिम झगड़ोंके कारण भारतका

विभाजन हो रहा है। मुझे आशा है कि राजा लोग पृथक्ताकी भावनाको और ज्यादा बढ़ानेकी कोशिश नहीं करेंगे । लॉर्ड माउन्टबेटन पर भी कर्तव्यका भारी बोझ है । ब्रिटेनके अंतिम वाइसरॉयकी हैसियतसे उन्हें देशको अनावश्यक लड़ाई-झगड़ेमें नहीं फंसाना चाहिये। [प्रार्थना-प्रवचन, १३ जून, १९४७]

दूसरे दिन कांग्रेस महासमितिकी बैठकमें बोलते हुए उन्होंने फिर वही चेतावनी दी :

> यह आश्चर्यकी बात है कि जो राजा अंग्रेजोंके वस्तुत: गुलाम थे, वे भारतीय संघमें एक सम्मानपूर्ण पदको ठुकरा दें और स्वाधीन बनना चाहें । संघको राजाओंसे दुश्मनी नहीं है। परन्तु आज तो उसे सारे भारतके कल्याणकी सावधानीसे रक्षा करनी पड़ती है। देशी राज्योंकी प्रजा हमारे साथ है। यदि राजा स्वाधीन हो जाते हैं, तो देशी राज्योंकी प्रजाकी स्वतंत्रता नहीं रह सकती । जहां तक मैं भारतको जानता हूं, ऐसी चीज कभी बर्दाश्त नहीं की जायगी। राजाओंको आगामी खतरेके चिह्नोंको समझ लेना चाहिये।

गांधीजीने यह भी चेतावनी दी : राजा चाहें या न चाहें, स्वाधीनता तो आ रही है। वे अपनी स्वाधीनताकी घोषणा करके "पेरिस, लंदन या जहां भी चाहें उसका उपभोग करने" को स्वतनत्र हैं। परन्तु स्वतंत्र भारतमें वे प्रभु या स्वामी बनकर नहीं, बल्कि अपनी प्रजाके सेवक और संरक्षक बन कर ही रह सकते हैं । "यदि उन्हें इस स्थितिका फलितार्थ स्वीकार हो, तो उन्हें भारतीय जनताकी सार्वभौम सत्ता स्वीकार करनी होगी, जैसे उन्होंने अंग्रेजी हुकूमतकी सार्वभौम सत्ता स्वीकार की थी। तब कांग्रेस या और कोई उनको छू नहीं सकेगा। विभिन्न राज्योंके दीवानोंका उचित आदर करते हुए भी मैं यह कह दूं कि यदि वे राजाओंको संविधान-सभामें – मुझे इस बातकी परवाह नहीं कि वे कौनसी संविधान-सभामें शामिल होते हैं – आनेकी सलाह नहीं देंगे, तो वे अपने शासकोंके प्रति बेवफा साबित होंगे और अपने विश्वासका घात करेंगे।" [अ. भा. कांग्रेस महासमितिमें गांधीजीका भाषण, १४ जून, १९४७]

सर सी. पी. ने इसका उत्तर दिया: गांधीजी और कांग्रेस सीमा-प्रान्तके लिए स्वाधीन पठानिस्तान स्वीकार करनेको तैयार हैं; तब वे स्वाधीन त्रावणकोर पर कैसे आपत्ति उठा सकते हैं ?

गांधीजीने उत्तर दिया: सीमाप्रान्त और त्रावणकोरकी कोई समानता नहीं है। पठान स्वाधीन होना नहीं चाहते। वे इतना ही चाहते हैं कि पाकिस्तान और भारतीय संघका पूरा स्वरूप सामने आ जानेके बाद उन्हें अपना संविधान स्वयं ही तैयार करनेकी स्वतन्त्रता हो। तब वे यह निश्चय करेंगे कि किस

राज्यमें शामिल हों। वे तीसरा राज्य बनाना नहीं चाहते, परन्तु दूसरे प्रान्तोंकी तरह स्वशासन ही चाहते हैं – जिसकी वफादारी तो केन्द्रके साथ होगी, परन्तु भीतरी मामलोंमें केन्द्रका हस्तक्षेप नहीं होगा। यदि बादशाह खानका दूसरा कोई मतलब हो, तो मुझे उनसे अलग हो जानेमें कोई संकोच नहीं होगा, यद्यपि वे मेरे पुराने मित्र हैं । किन्तु सर सी. पी. तो दोनों ही राज्योंसे स्वाधीन राज्य चाहते है। यदि ऐसा होने दिया जाय और दूसरे राज्य भी इनकी नकल करने लगें, तो नतीजा यह होगा कि भारत कई राज्योंमें बंट जायगा । इन छोटे छोटे राज्योंको एक सम्राट्की जरूरत होगी और जो सम्राट् अभी जा रहा है वह दुगुनी ताकतके साथ लौट कर भी आ सकता है। इससे अधिक भयंकर विपत्तिकी कल्पना भी नहीं की जा सकती । त्रावणकोर और सीमाप्रान्तकी तुलना गुमराह करनेवाली भी है, क्योंकि सर सी. पी. महाराजाकी तरफसे ही बोलते हैं, जब कि सीमाप्रान्तके नेता जिरगेकी – जनताकी – तरफसे बोलते हैं। एक शुद्ध निरंकुश शासन है, दूसरा पूर्ण लोकतंत्र है। [प्रार्थना-प्रवचन, २४ जून, १९४७]

*

विभाजन-योजनाकी घोषणाके पश्चात् लॉर्ड माउंटबेटनने घोषित किया कि कोई देशी राज्य अलग उपनिवेशके रूपमें ब्रिटिश राष्ट्र-मंडलमें प्रवेश नहीं कर सकता । यदि कोई देशी राज्य मेरे पास स्वतंत्र आर्थिक अथवा सैनिक संधि करनेके लिए आयेंगे, तो मैं "ऐसी विनतीको उचित स्थान पर पहुंचा दूंगा।" [लॉर्ड माउन्टबेटनकी अखबारी परिषद्, ४ जून, १९४७। पृ. ४४४ पर लॉर्ड माउन्टबेटनकी घोषणामें रही त्रुटियों पर गांधीजीकी अशान्तिके बारेमें, देखिये नीचे दी गई टिप्पणी]

इसका राजाओं पर बड़ा अच्छा असर पड़ा। गांधीजीकी सदा यह राय रही थी कि देशी राज्योंकी समस्या एक सर्वथा झूठा अड़ंगा है, जिसे अंग्रेजोंने भारत पर हमेशाके लिए अपना पंजा जमाये रखनेके लिए खड़ा किया है; ज्यों ही अंग्रेज यह निश्चय कर लेंगे कि अब उन्हें इसकी जरूरत नहीं रही त्यों ही वह विलीन हो जायगा। परन्तु दूसरी दृष्टिसे भारतीय आकांक्षाओंके प्रति सहानुभूति रखनेवाले अंग्रेज भी इस चीजको अंग्रेजोंकी ईमानदारी पर अनुचित आक्षेप समझ कर उसे महात्माजीके योग्य नहीं मानते थे – लगातार प्रचारके कारण यह झूठ इतना सर्वव्यापी हो गया था । इतिहासने गांधीजीका पूरी तरह समर्थन किया। जिस दिन लॉर्ड माउन्टबेटनने यह घोषणा की उसी दिन भोपालके नवाबने नरेन्द्र-मण्डलकी अध्यक्षतासे त्यागपत्र दे दिया और उनके स्थान पर महाराजा पटियाला चुन लिये गये | उनके नेतृत्वमें

नरेन्द्र-मण्डलकी स्थायी समितिने यह प्रस्ताव पास किया कि नरेन्द्र-मण्डलका "अब कोई उपयोग नहीं रहा इसलिए उसका अंत कर देना चाहिये।"

गांधीजी प्रत्येक उठाये जानेवाले कदमको बड़ी सावधानीसे देख रहे थे। उन्होंने अपने एक पत्रमें लॉर्ड माउन्टबेटनको लिखा: "मैं जितना अधिक परिस्थितियोंको देखता हूं उतनी ही मेरी यह मान्यता दृढ़ होती जाती है कि देशी राज्योंकी समस्याके कारण तरह तरहकी कठिनाइयां सामने आती हैं, जिनका आपको बहुत गंभीरता और निर्भयतापूर्वक उपाय करना चाहिये।" [गांधीजीका पत्र लॉर्ड माउन्टबेटनको, १०/११ जून, १९४७] चार दिन बाद, १५ जूनको कांग्रेस महासमितिने यह प्रस्ताव पास किया कि कांग्रेस भारतके किसी भी देशी राज्यके स्वाधीनताकी घोषणा करनेके अधिकारको नहीं मान सकती। इस पर जिन्नाने एक वक्तव्यमें कहा कि देशी राज्योंको अपना सर्वसत्ताधारी दर्जा घोषित करनेका पूरा अधिकार है :

> संविधान और कानूनकी दृष्टिसे भारतीय देशी राज्य सार्वभौम सत्ताका अन्त होने पर स्वाधीन सर्वसत्ताधारी राज्य हो जायंगे और वे जो मार्ग अपनाना चाहें उसका निर्णय स्वयं करनेको स्वतन्त्र होंगे। उन्हें अधिकार है कि वे चाहें तो हिन्दुस्तानकी संविधान-सभामें शरीक हों या पाकिस्तानकी संविधान-सभामें, या वे चाहें तो स्वाधीन रहनेका निश्चय करें। आखिरी सूरतमें वे हिन्दुस्तान या पाकिस्तानके साथ जैसा चाहें वैसा समझौता कर सकते हैं या सम्बन्ध रख सकते हैं। [जिन्नाका अखबारी वक्तव्य, १७ जून, १९४७]

कुछ हद तक मुस्लिम लीगकी रचना ही ऐसी थी जिसमें पुरानी सामन्ती व्यवस्थाके अवशेष जागीरदारों-जमींदारोंका अधिक प्रभाव था। इसलिए उसे राजाओंके दावोंके साथ – फिर वे कितने ही अवास्तविक हों – हो जानेमें कोई संकोच नहीं हुआ। इसमें ब्रिटिश साम्राज्यवादियोंका उसे पूरा सहारा और समर्थन प्राप्त था। सार्वभौम सत्ता बदली नहीं जा सकती, इस सिद्धान्तके कारण उन्हें भारतीय संघके साथ चतुराईसे कुछ सौदेबाजी करनेका मौका मिल गया। ब्रिटिश अनुदार दलके एक वर्गने राज्य-संघकी एक योजनाका समर्थन किया, जिससे ऐसी कुछ रियासतोंको, जिनके पास समुद्र-तट नहीं था, समुद्रमार्ग मिल जाता था। इससे उनके पाकिस्तानमें मिल जानेकी संभावना पैदा होती थी और वे "भौगोलिक अनिवार्यता" की कठिनाई पार कर सकते थे; अन्यथा भौगोलिक अनिवार्यता उनके

चुनावको निश्चित और मर्यादित कर देती थी। और चूंकि यह मान लिया गया था कि पाकिस्तान राष्ट्र-मंडलके भीतर रहना पसन्द करेगा, इसलिए ऐसा माना जाता था कि इसका भी भारतीय संघ पर "विवेकपूर्ण" असर पड़ेगा। जून १९४७ के अन्तिम सप्ताहमें लंदनके 'स्पेक्टेटर' पत्रमें एक लेख निकला । उससे ब्रिटिश साम्राज्यवादियोंके गुप्त षड़्यन्त्रों और चालबाजियोंका न चाहने पर भी भण्डाफोड़ हो गया। लेखक थे सर विलियम बार्टन, जिन्हें "भारतीय प्रश्नोंका प्रसिद्ध लेखक" बताया गया था :

> देशी राज्योंको समुद्र-तटसे अलग रखनेका अतिशय आग्रह रखा गया है। काठियावाड़, बड़ौदा, राजपूताना और सिक्ख रियासतों तथा अधिकांश गुजराती राज्योंका काम काठियावाड़के बन्दरगाहोंसे चल जाना चाहिये और इस प्रकार वे आर्थिक दृष्टिसे हिन्दुस्तान पर निर्भर नहीं रहेंगे। ऐसी हालतमें अगर कांग्रेस स्वाधीनताका निश्चय कर ले और उसके साथ समझौता असंभव हो, तो राज्योंका एक समूह पाकिस्तानमें शामिल हो सकता है। भूगोलकी दृष्टिसे ऐसे किसी समझौतेमें कोई कठिनाई नहीं होगी; या वे औपनिवेशिक दरजेका दावा कर सकते हैं। क्या सम्राट्की सरकार इनकार कर सकेगी ?
>
> देशी राज्योंमें एकता हो तो उन्हें उचित शर्तें प्राप्त हो सकती हैं, खास तौर पर जब विभाजनने कांग्रेसकी स्थिति कमजोर बना दी है। लीगका तो राष्ट्र-मंडलमें रहना लगभग निश्चित ही है। यह राजपूताना और काश्मीरके राज्योंके लिए इस बातका एक और प्रलोभन है कि वे लीगके साथ समझौता कर लें । ऐसी हालतमें कांग्रेस भी लीगके कदमका अनुसरण करनेका निर्णय कर सकती है। ऐसा करके वह सामान्यतः देशी राज्योंका विश्वास प्राप्त कर लेगी; वह राज्योंको जो चाहिये सो दे देगी – अर्थात् बाहरी आक्रमणसे रक्षा करनेका आश्वासन । देशी राज्योंके, खास कर छोटी रियासतोंके, राज्यसंघको सफलता मिल जाय, तो स्थितिमें क्रान्ति हो जायगी। . . .

सरदार पटेलने जिस कुशलतासे देशी राज्योंके प्रश्नको निबटाया उसके फलस्वरूप कुछ बड़े राजाओंके विरोधी रवैयेके बावजूद २६ जून तक ये समाचार मिले कि ४० राज्यों और ४०० छोटी रियासतोंके प्रतिनिधि, जो तमाम देशी राज्योंकी ९ करोड़ ३० लाख आबादीमें से ४ करोड़ ४० लाखके प्रतिनिधि थे, १४ जुलाईको होनेवाली संविधान-सभाकी आगामी बैठकमें सम्मिलित होंगे।

२५ जुलाईको स्वाधीनता-कानून (इंडिपेन्डेन्स एक्ट) के पास हो जानेके बाद लॉर्ड माउंटबेटनने राजाओंके एक सम्मेलनमें यह घोषणा की कि १५ अगस्त, १९४७ के बाद वे कानून और विधिकी दृष्टिसे स्वाधीन हो जायंगे। परन्तु उन्होंने राजाओंको चेतावनी दी कि सार्वभौम सत्ताका अन्त हो जानेसे उन्हें वह रक्षा नहीं मिलेगी, जो ब्रिटेनके साथकी संधियोंके कारण मिलती थी । इसलिए उन्होंने सलाह दी कि समयसे पहले ही देशी राज्योंके राजा निश्चय कर लें और दोनोंमें से किसी एक राज्यमें मिल जायं – यह ध्यानमें रख कर कि उनकी भौगोलिक स्थिति क्या है और उस स्थितिकी अनिवार्यता क्या है।

इस विषय पर अंग्रेजोंकी पहलेकी घोषणासे यह घोषणा अधिक प्रगतिशील थी। परन्तु गांधीजीकी तीक्ष्ण दृष्टिने वाइसरॉयके भाषणकी एक अत्यन्त अर्थपूर्ण त्रुटिको देख लिया। उसमें राजाओंकी ही बातें भरी थीं। देशी राज्योंकी प्रजाका कोई उल्लेख नहीं था। २७ जुलाईके अपने प्रार्थना-प्रवचनमें उन्होंने कहा: अंग्रेज कभी कभी किसी राजाको कुशासनका दण्ड दे देते थे, परन्तु ज्यादातर राजाओंको वे ऐश-आरामकी जिन्दगी बिताने देते थे और प्रजाका शोषण करने देते थे। अब साम्राज्य-सत्ता जा रही है और सार्वभौम सत्ताका भार उतर रहा है। राजा लोग चाहें तो मूर्खतावश प्रजाकी सार्वभौम सत्ताका विरोध कर सकते हैं । अगर वे बुद्धिमान होंगे तो प्रजाकी सार्वभौम सत्ताको गौरवकी वस्तु मानेंगे और सच्चे अर्थमें प्रजाके प्रथम सेवक बननेका प्रयत्न करेंगे। उन्हें देशी राज्य लोक-परिषद्की सलाह पर चलना चाहिये, क्योंकि वह प्रजाकी आवाज है। आज उनकी परीक्षा हो रही है। शायद देशी राज्योंकी प्रजा भारतकी एक-चौथाई आबादीके बराबर है। क्या देशी राज्योंकी १० करोड़ प्रजा १५ अगस्तको हर्ष मना सकेगी ?

यह सच है कि ब्रिटिश सत्ता अब राजाओंके इस दावेको प्रोत्साहन तो नहीं देती थी, परन्तु उसने उनके इस दावेका कभी खण्डन भी नहीं किया कि राजा लोगोंको ब्रिटेनके साथ स्वतंत्र संधि करनेका अधिकार है। इससे बार बार गांधीजीके मनमें अंग्रेजोंके इरादोंके बारेमें सन्देह होता था। इस सन्देहकी मजबूत बुनियाद थी, क्योंकि पिछला अनुभव ऐसा ही था और बड़े बड़े ब्रिटिश अधिकारियोंने ब्रिटिश नीति-सम्बन्धी ऐसी स्पष्ट घोषणाएं की थीं, जिन्हें सुन कर दांतों तले उंगली दबानी पड़ती थी। [लॉर्ड एल्गिनने, जो लॉर्ड कैनिंगके बाद वाइसरॉय हुए (१८६२), लिखा: “यदि आप तमाम श्रेष्ठताओंको कुचलनेका प्रयत्न करेंगे, तो आप सारी देशी आबादीको संयुक्त रूपमें अपने खिलाफ कर लेंगे। अगर आप दरजे और पदके अहंकारका पोषण करेंगे, तो आप ऐसे दावोंको प्रोत्साहन देंगे जिन्हें आप पूरा नहीं

कर सकते – कुछ तो इसलिए कि आप सार्वभौम सत्ताके नाते अपने कर्तव्योंको नहीं छोड़ सकते और कुछ इसलिए कि आप उत्कृष्ट वंशके अपने प्रजाजनोंके अहंकारको नियंत्रणमें नहीं रख सकते। सिन्धिया और होल्कर हमारे प्रति उतने ही वफादार हैं जितने कि वे कमजोर हैं और यह जानते हैं कि उन्हें अपने ही प्रजाजनों और पड़ोसियोंके विरुद्ध हमारे सहारेकी आवश्यकता है। . . . मेरी अपनी राय यह है कि कैनिंगने न तो राजाओंको बहुत दबाना चाहा और न उन परसे अपना नियंत्रण कम होने दिया । यह सच है कि वह उन पर ढीली लगामसे सवारी करता था, परन्तु चाल इतनी तेज थी . . . कि वे लात नहीं मार सकते थे और हलके-से हाथ और रेशमके धागेकी ही जरूरत रहती थी । देशी राजाओंके अधिकारका लिहाज करनेकी उसकी नीति केवल एक साधन थी और साध्य यह था कि भारतमें ब्रिटिश राज्य स्थापित हो जाय; और जब साधन और साध्यका संघर्ष होता अथवा होने जैसा लगता, तो साधनको ठुकरा दिया जाता था।" – लेटर्स एण्ड जर्नल्स ऑफ जेम्स, एल्गिनके आठवें अर्ल (१८७२) । यह उद्धरण गुंडप्पाके ग्रंथ 'दि स्टेट्स एण्ड देयर पीपल इन दि इंडियन कॉन्स्टिट्यूशन' में दिया गया है, बंगलौर, १९३१, पृ. ५२

लगभग आधी शताब्दीके बाद उसके उत्तराधिकारी लॉर्ड मिन्टोने लिखा: "मैं कांग्रेसके लक्ष्यको प्रतिसंतुलित करनेवाली किसी चीजके बारेमें काफी सोचता रहा हूं। मेरे खयालसे राजाओंकी परिषद् (कौंसिल ऑफ प्रिन्सेस) से यह समस्या हल हो सकती है।"

१९३५ के भारतीय शासन कानूनके पास होने तक राजाओंका काम यह समझा गया था कि वे "केन्द्रको यथावत् स्थितिमें और अंग्रेजोंके पक्षमें रखेंगे।"

प्रसिद्ध अंग्रेज ग्रन्थकार और पत्रकार एच. एन. ब्रेल्सफोर्डने अपनी पुस्तक 'सब्जेक्ट इंडिया' में इस प्रश्न पर बिना किसी हिचकके इस प्रकार टिप्पणी की है: "नकशेको देखते ही मालूम हो जाना चाहिये कि... ये रियासतें बच्चोंके कटे हुए चित्रोंके टुकड़ोंकी तरह ब्रिटिश प्रान्तोंके साथ गुंथी हुई हैं। वे नदियों, रेलमार्गों, तारों और बिजलीके जालको पार करती हैं। फिर भी साम्राज्य-सत्ता उनके भीतर ब्रिटिश सेना रख सकेगी। राजा जब तक निरंकुश शासक और अंग्रेजोंकी कठपृतली बने रहेंगे तब तक वे धौंसकी एक जबरदस्त प्रक्रियाके द्वारा साम्राज्यकी सेवा करनेकी स्थितिमें होंगे। यदि वे भीतर आ जायंगे, तो दीर्घकाल तक भारतीय संघको प्रतिक्रियाके अन्धकारमें रखेंगे। यदि बाहर रहेंगे तो संघ उनके स्वामीकी दया पर निर्भर रहेगा। दोनों ही सूरतोंमें स्वाधीनता एक व्यर्थकी आशा होगी।

"पाठक यह उत्तर दे सकते हैं कि मैं तफसीलकी बातको बहुत महत्त्व दे रहा हूं। उनकी यह आपत्ति हो सकती है: 'राजाओंकी प्रजाके लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्वकी व्यवस्थाका यह छोटासा मामला समय पाकर ठीक कर लिया जाता। यह स्पष्ट ही एक भूछ थी।' ऐसी बात नहीं है। इस प्रश्न पर गोलमेज परिषद्के समयसे ही जबरदस्त विवाद बना रहा था। इंडिया ऑफिसके बड़े अधिकारी अपने सीमित क्षेत्रमें स्पष्ट दृष्टि रखते हैं। उन्हें यह मालूम है कि ज्यों ही राजा-महाराजा नागरिक अधिकारों सहित जिम्मेदाराना हुकूमत अपनी प्रजाको ईमानदारीसे दे देंगे त्यों ही वे साम्राज्यके लिए निकम्मे हो जायंगे। . . . कट्टरपन्थियोंकी चालें किसी भी ठंडे दिमागसे देखनेवालेको साफ दिखाई देती हैं। वे बहुत धीरे धीरे एक एक मुद्देको लेकर झुकते हैं और अन्तमें ऐसा प्रस्ताव उपस्थित करते हैं, जो भोलीभाली जनताको सुहावना और उदार भी लगने लगता है। लेकिन असली कुंजी वे अपने हाथमें रख लेते हैं, जो उनके कामके लिए काफी होती है। जब तक वह कुंजी उनके हाथमें है तब तक भारत पर उनका प्रभुत्व है। लेकिन मैं अपनी ही भाषामें वह बात कहनेकी कोशिश क्यों करूं, जो इस विषयके प्रमुख सरकारी विशेषज्ञ प्रो. रशब्रूक-विलियम्सने कहीं अच्छे ढंगसे कही थी ? इन राजाओंके बारेमें उन्होंने लिखा था: "उनमें से अधिकांशका अस्तित्व ही ब्रिटिश न्याय और ब्रिटिश शस्त्रोंके कारण है। . . . वर्तमान झंझटों और अनिवार्य पूनर्व्यवस्थाओंमें उनका स्नेह और उनकी वफादारी ब्रिटेनके लिए बड़े कीमती साबित होंगे। . . . इन सामन्ती रियासतोंकी स्थिति यह है कि चूंकि वे सारे भारतमें फैली हुई हैं इसलिए वे एक बड़े संरक्षणका काम देती हैं। यह तो झगड़ेके क्षेत्रमें मित्रोंकी किलेबन्दीका एक बड़ा भारी जाल फैला देना है। शक्तिशाली और वफादार देशी रियासतोंके इस जालके कारण अंग्रेजोंके विरुद्ध किसी देशव्यापी विद्रोहके लिए भारतसे उनका सफाया करना कठिन होगा।' (इविनिंग स्टैंडड, २८ मई, १९३०) १८६० में कैनिंगको जो बात इतनी स्पष्ट दिखाई देती थी, उसे इंडिया ऑफिस आज भी भूलता नहीं है। जब तक मित्रोंके ये किले ब्रिटेनके अधिकारमें हैं तब तक भारतको कभी स्वाधीनता प्राप्त नहीं हो सकती ।" – सब्जेक्ट इंडिया, बंबई, १९४६, पृ. ६५-६७] गांधीजीको लगा कि एक वफादार और सच्चे मित्रके नाते मेरा फर्ज है कि इस सन्देहको मैं लॉर्ड माउन्टबेटनसे न छुपाऊं, यद्यपि उन्हें पूरा विश्वास था कि माउन्टबेटन अपनी निर्णय-शक्ति और कार्य-कुशलतासे इस समस्याको उत्तम ढंगसे हल कर लेंगे ।

२७ जुलाईके प्रार्थना-प्रवचनमें गांधीजी बोले : अंग्रेज यह घोषणा कर सकते थे कि सार्वभौम सत्ता दोनों राज्योंको उत्तराधिकारमें प्राप्त होगी। वे यह भी निर्णय कर सकते थे कि कौन कौनसे देशी

राज्य किस उपनिवेशमें शरीक हों। दुर्भाग्यसे यह करना उन्होंने पसन्द नहीं किया। फिर भी राजाओंका रास्ता साफ है। उन्हें सही रास्ता तुरन्त चुन लेना चाहिये और दो भागोंमें बंट जाने पर भी सारे भारतको सच्चा लोकतंत्र बनानेमें सहायता देनी चाहिये। उन्हें मनमें कोई संकोच नहीं रखना चाहिये। सब दलोंको अपने दिलकी सारी बातें खोल कर रख देनी चाहिये ।

*

जुलाईके अन्तिम सप्ताहमें त्रावणकोरके महाराजाने भारतीय संघमें मिल जानेका निश्चय कर लिया। इसके थोड़े दिन बाद राज्यके किसी क्रुद्ध प्रजाजनने दीवान पर घातक हमला किया। ज्यों ही इस आक्रमणके गंभीर स्वरूपका गांधीजीको ज्ञान हुआ, उन्होंने सर सी. पी. को लिखा : "विलम्बसे यह चिन्ता बतानेके लिए मुझे क्षमा कीजिये। त्रावणकोरके बारेमें आपके रवैयेसे मैं परेशान था। . . . जब मैंने आप पर हमला होनेका समाचार सुना तब मैंने उसे तुच्छ-सी घटना समझा था। . . . मुझे अपने अविश्वास पर आश्चर्य होता है। इसके लिए मुझे क्षमा करें।" [गांधीजीका पत्र सर सी. पी. रामस्वामी अय्यरको, २७ अगस्त, १९४७]

थोड़े ही अर्सेके बाद सर सी. पी. ने त्रावणकोरकी दीवानगिरीसे अन्तिम रूपमें त्यागपत्र दे दिया और यह घोषणा की: "मैं राजनीतिसे बिल्कुल हट रहा हूं, ताकि अपना पूरा समय साहित्यिक और दार्शनिक अध्ययन और लेखनमें लगा सकूं।" गांधीजीको एक पत्रमें उन्होंने लिखा: "आपने कदाचित् देखा होगा कि मैंने दीवानके पदसे त्यागपत्र दे दिया है । त्यागपत्रका कारण हमला नहीं, बल्कि यह था कि 'एक बार त्यागपत्र दे देनेके बाद' मैं जिस कामके लिए दुबारा दीवान बना वह माउन्टबेटनके साथ हुई वार्ताओंके बाद पूरा हो गया।" त्रावणकोरके दबंग दीवानके स्पष्टीकरण पर बहुतोंको आश्चर्य हुआ था।

राजसंस्थाका पवित्र माना गया वृक्ष इतना जीर्णशीर्ण और सड़ा-गला हो गया था कि उसके गिरा देनेका समय आ गया था। स्वाधीनता-दिवस अर्थात् १५ अगस्तको माउंटबेटन यह घोषणा करनेकी स्थितिमें हो गये कि भारत सरकारकी राजाओंके साथ हुई बातचीतके परिणामस्वरूप "लगभग सभी" रियासतोंने "संविलयन-पत्र" पर हस्ताक्षर कर दिये हैं। इसे राज्य-विभागके सचिव वी. पी. मेननने सरदार वल्लभभाईके आदेशसे तैयार किया था। इस पत्रमें रियासतोंकी वैधानिक स्वाधीनताको अछूता रहने

दिया गया था। केवल तीन विषय – अर्थात् प्रतिरक्षा, वैदेशिक कामकाज और संचार-व्यवस्था – देशी राज्योंने संघ-सरकारको सौंप दिये।

रह गये हैदराबाद, जूनागढ़ और काश्मीर । नवम्बर १९४७ में हैदराबादके साथ "जैसे थे" (स्टैण्डस्टिल)का इकरार कर लिया गया और वर्षान्तसे पहले उसे स्थायी बना दिया गया। कुछ समय बाद जूनागढ़के प्रश्नका भी सफल निबटारा कर दिया गया। परन्तु काश्मीर भारत और पाकिस्तानके बीच झगड़ेका कारण बन गया और दोनों राज्योंके राजनीतिक शरीरमें नासूर बन कर रह गया।

३

२४ जुलाईके पत्रमें गांधीजीने सरदार पटेलको लिखा: "मैं जितना ही अधिक विचार करता हूं उतना ही मुझे लगता है कि ज्यों ही काश्मीरका प्रश्न हल हो जाय मुझे दिल्लीसे चले जाना चाहिये।" पंडित नेहरूके काश्मीर जानेके प्रश्न पर गांधीजी जुलाई भर ध्यान देते रहे। उसके पीछे एक लम्बी कहानी थी।

जम्मू और काश्मीर राज्यमें ७८ प्रतिशत मुसलमान बसते थे और राजा वहांका हिन्दू था। उसकी हैदराबाद राज्यसे उल्टी बात थी। वह सबसे बड़ा भारतीय देशी राज्य था। उसका क्षेत्रफल ८४४७१ वर्गमील था और वह भारतका तीसरा सबसे धनी राज्य माना जाता था। वहांका सौन्दर्य और नैसर्गिक संपत्ति प्रसिद्ध थी और चीन तथा रूस दोनोंकी सीमा पर स्थित होनेके कारण उसका बड़ा सामरिक महत्त्व था। इस राज्यको ईस्ट इंडिया कम्पनीने वर्तमान महाराजाके एक पूर्वजको "अमृतसरकी संधि" के अनुसार ७५ लाख रुपयेमें बेच दिया था। अधिकांश देशी राजाओंकी तरह काश्मीरके महाराजा हरिसिंह भी लोकतांत्रिक शासन स्थापित करनेके विरुद्ध थे और उन्होंने अपने राज्यमें राष्ट्रवादी आन्दोलनको दबा देनेमें कोई कसर नहीं रखी थी। काश्मीर नेशनल कान्फरेन्स एक राष्ट्रवादी संस्था थी। शेख अब्दुल्ला उसके नेता थे। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस इस संस्थाकी स्वाभाविक मित्र थी। दोनों ही संस्थाओंका आदर्श लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्ष राज्य था, जिसमें वर्ग, जाति अथवा धर्मके भेदभावके लिए कोई स्थान न हो। १९४६ में कैबिनेट-मिशनके भारत आगमनके समय और उससे पहले भी काश्मीर नेशनल कान्फरेन्सके नेतृत्वमें राज्यमें वैधानिक परिवर्तन करानेके लिए आन्दोलन हो रहा था, ताकि राज्यके प्रशासनको ब्रिटिश भारतकी लोकतांत्रिक व्यवस्थाके आधार पर रखा जा सके । नतीजा यह

हुआ कि नेशनल कान्फरेन्सके लगभग सभी नेता जेल भेज दिये गये। ऐसी स्थितिमें, जब कि कैबिनेट-मिशनके साथ वार्ताएं हो रही थीं, जून १९४६ में पंडित नेहरूने शेख अब्दुल्लाके बचावका प्रबन्ध करनेके लिए काश्मीर जानेका निश्चय किया । महाराजाका रुख अत्यन्त अपमानजनक था।

महाराजा हरिसिंहका पत्र विक्टर रॉसेनथलको

१ जून, १९४६

गिरफ्तारीके समय अब्दुल्ला अपने गुरु जवाहरलालसे मिलने जा रहे थे, इसलिए जवाहरलालके अहंकारको इस बातसे बड़ी ठेस लगी कि उनका सहायक उनकी शरणमें जाते हुए पकड़ लिया गया। जवाहरलाल अपने स्वभावके अनुसार पूरी तरह मिजाज खो बैठे हैं।

कुछ भी हो, वे जो भी कहें या करें उसके लिए हम तैयार हैं – और हमारे खयालसे वे यह बात जानते हैं। अन्तमें वे शायद यह महसूस कर लेंगे कि समझदारीमें ही अधिक बहादुरी भी है और उन्हें खामोश हो जाना चाहिये । खैर, हम तो लड़ेंगे और अन्त तक लड़ेंगे। यह सारे देशी राज्योंके लिए एक कसौटीका केस है ।

इतिहासने जल्दी ही बता दिया कि "मिजाज पूरी तरह किसने खो दिया था।"

काश्मीर राज्यकी सीमा पर कोहालामें पंडित नेहरूके हाथमें एक आदेश दिया गया। उन्हें तुरन्त काश्मीरका प्रदेश छोड़ कर चले जानेको कहा गया और उनके इनकार करने पर उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। परन्तु कैबिनेट-मिशन और कांग्रेस कार्यसमिति दोनोंको दिल्लीमें उनकी जरूरत थी। वार्ताएं उनकी अनुपस्थितिमें आगे नहीं बढ़ सकती थीं। कांग्रेसके अध्यक्षने उन्हें तुरन्त लौट आनेका जरूरी सन्देश भेजा | पंडित नेहरूको पहली प्रेरणा तो उसकी उपेक्षा करनेकी हुई: " मेरे दोस्ताना रवैयेके बावजूद काश्मीर सरकारने मेरे साथ जो घोर अशिष्टता की है उसे देखते हुए मुझे गहरा अफसोस है कि मैं उस समय तक बिलकुल वापस नहीं आ सकता जब तक कि मुझे आवागमनकी पूरी स्वतंत्रता न दे दी जाय; और उसमें श्रीनगर जानेकी भी छूट हो। मैं कार्यसमितिसे अनुरोध करता हूं कि वह मेरे बिना काम चला ले।" [पं. नेहरूका तार मौलाना आजादको, २१ जून, १९४६]

गांधीजीने कांग्रेसके अध्यक्षकी तरफसे पंडित नेहरूको भेजनेके लिए नीचेका उत्तर लिखि दिया:

मेरी और सबकी यह राय है कि और सब बातोंसे अधिक आपका यहां होना जरूरी है। याद रखिये कि आप एक संस्थाके मातहत हैं, जिसकी आपने इतने अर्सेसे शोभा बढ़ाई है। आपके दिए और मेरे लिए उसकी आवश्यकता सर्वोपरि होनी चाहिये । यह भी याद रखिये कि आपकी प्रतिष्ठा हमारी प्रतिष्ठा है और कांग्रेसकी आज्ञाको मान लेनेसे आपकी प्रतिष्ठाकी रक्षा करनेकी जिम्मेदारी अपने आप कांग्रेस पर आ जाती है । कमेटीको आपकी तरह ही शेख अब्दुल्लाके सुकदमेकी और काश्मीरके लोगोंकी भलाईकी चिन्ता है। इसलिए मुझे आशा है कि इस पत्रके उत्तरमें आप लौट आयेंगे। आप महाराजा साहबसे कह दीजिये कि ज्यों ही आपको कांग्रेस मुक्त कर देगी त्यों ही आप वापस काश्मीर जाकर अपने सम्मानकी पुनः रक्षा करेंगे और अपना मिशन पूरा करेंगे।

इसके बाद पंडित नेहरूके सामने लौट आनेके सिवा कोई चारा नहीं रह गया । वे लौट तो जरूर आये, मगर हृदयमें संग्राम चलता रहा। गांधीजीने २२ जून, १९४६ की प्रार्थना-सभामें घोषणा की कि कांग्रेसके अनुशासनबद्ध सिपाहीके नाते पंडित नेहरूने कांग्रेस-अध्यक्षके आदेशानुसार तुरंत लौट आनेका निश्चय कर लिया है। अन्तमें उन्होंने ये शब्द कहे : "उनकी प्रतिष्ठा कांग्रेसकी प्रतिष्ठा है।" इस बीच शेख अब्दुल्लाके मुकदमेकी सुनवाई भी स्थगित कर दी गई। दिल्ली लौटनेसे पहले पंडित नेहरूने महाराजाको लिखा :

कांग्रेस कार्यसमितिके आदेशको देखते हुए . . . मैंने तुरंत लौट जानेका निश्चय किया है। किन्तु मैंने साफ तौर पर यह समझ कर ऐसा किया है कि ज्यों ही दिल्लीका जरूरी काम पूरा हो जायगा, मैं काश्मीर वापस आ जाऊंगा । . . . काश्मीर लौटनेकी मेरी तारीख नियत होते ही मैं आपको सूचना दूंगा। मैं नहीं जानता कि आपकी सरकार मेरी वापसीको किस नजरसे देखेगी और वह मुझे फिर रोकनेकी कोशिश करेगी या नहीं । मुझे रोकनेकी दृष्टिसे कोई आज्ञा दी जायगी, तो मैं उसे मान नहीं सकूंगा। इस समय "किसी भी सरकारके लिए इस बातमें मुझे कोई औचित्य दिखाई नहीं देता, काश्मीर सरकारके लिए तो बिलकुल नहीं, कि वह मेरे जैसे व्यक्तिके प्रवेशको रोकनेका प्रयत्न करे; और मैं अपने आवागमनकी स्वतंत्रता पर ऐसी किसी पाबन्दीको नहीं मान सकता।

कई बार स्थगित होनेके बाद शेख अब्दुल्लाके मुकदमेकी सुनवाईके लिए २४ जुलाई, १९४६ की तारीख निश्चित हुई। इसलिए पंडित नेहरूने वाइसरॉयको, महाराजाको और भोपालके नवाबको सूचना दे दी कि मेरा फिरसे काश्मीर जानेका इरादा है। नवाब कांग्रेस और महाराजाके बीच मध्यस्थका काम कर रहे थे। वाइसरॉयने उत्तर दिया: काश्मीर सरकारने आपके जाने परसे पाबन्दी हटा ली है (शायद वाइसरॉयके हस्तक्षेप करनेके फलस्वरूप) और आप चाहें तो काश्मीर जा सकते हैं । महाराजाके जवाबमें इस अयाचित परामर्शका पुट भी लगा हुआ था: "मेरा सुझाव है कि जब तक आप राज्यमें हैं, आप अपना काम शेख अब्दुल्लाके बचाव तक ही सीमित रखें । आपकी जानकारीके लिए मैं यह भी कह दूं कि ऐसे आदेश राज्यमें जारी हैं . . . जिनसे प्रदर्शनों, सभाओं और पांच व्यक्तियोंसे अधिकके समूहों पर फिलहाल प्रतिबंध कूगा हुआ है।" [महाराजा हरिसिंहका पत्र पं. नेहरूको, ११ जुलाई, १९४६] पंडित नेहरूका इन आज्ञाओंको भंग करनेका कोई इरादा नहीं था। जब तक वे घाटीमें रहे, उन्होंने जो काम हाथमें ले रखा था उसी तक अपनेको सीमित रखा और उनके आगमनसे कोई अप्रिय घटना नहीं हुई।

परन्तु कांग्रेसी नेताओंके लिए मामला आसान नहीं था। इस समयके आसपास महाराजाने दिल्लीके किसी एच. एस. शर्माको एक पत्र लिखा, जिससे पता चलता था कि उन्हें जन-जागृतिके बढ़ते हुए ज्वारसे अपनी रक्षा करनेके मुस्लिम लीगके साथ खेल खेलनेमें संकोच नहीं था वैसे ही हिन्दू सम्प्रदायवादके साथ भी नहीं था: "आपके पत्रके बाद श्री नेहरू आये और चले गये। आपके इस प्रस्तावके लिए मैं आभारी हूं कि मददकी जरूरत होने पर आप हमारे लिए स्वयंसेवक भेजनेको तैयार हैं । सौभाग्यसे ऐसी स्थिति पैदा नहीं हुई है और मुझे आशा है कि भविष्यमें भी पैदा नहीं होगी । परन्तु यदि पैदा हुई तो आपका प्रस्ताव मैं ध्यानमें रखूंगा।" [महाराजा हरिसिंहका पत्र एच. एस. शर्माको, ७ सितम्बर, १९४६]

अपनी काश्मीर यात्राके बाद पंडित नेहरूने काश्मीरकी स्थितिके बारेमें कांग्रेस कार्यसमितिको एक विवरण दिया। कार्यसमितिने विवरण पर विचार करनेके बाद अगस्त १९४६ के दूसरे सप्ताहमें एक प्रस्ताव पास किया। उसमें सरदार पटेल और मौलाना आजादसे अनुरोध किया गया कि मामलेको जहां पंडित नेहरूने छोड़ा था वहांसे फिर हाथमें ले लें। कुछ समय बाद एक और प्रस्तावके द्वारा उसने काश्मीरके प्रश्न पर अपने रुखको इस तरह दोहराया :

कार्यसमिति इसे जरूरी समझती है कि दमन, नागरिक स्वतंत्रताके अपहरण और मतदाताओंके कार्यमें हस्तक्षेपके सम्राचारोंकी जांचके लिए असंदिग्ध योग्यता और निष्पक्षतावाले व्यक्तियोंका एक शिष्ट-मंडल काश्मीर भेजा जाय । इसलिए समिति काश्मीर राज्यसे जोरदार सिफारिश करती है कि वह ऐसे शिष्ट-मंडलको आमंत्रण दे । काश्मीरकी हालकी घटनाओंका विशेष महत्त्व है और उनका प्रभाव भारतके तमाम देशी राज्योंके राजाओं और लोगों पर पड़ेगा और समितिको विश्वास है कि काश्मीरके मामलेमें वह जो कदम उठा रही है उसका देशी राज्य स्वागत करेंगे । [कांग्रेस कार्यसमितिका प्रस्ताव, २५ सितम्बर, १९४६]

महाराजाकी सरकार सरदार पटेलको निजी हैसियतसे सब बातें स्वयं देखने और स्थितिका अध्ययन करने देनेके लिए तैयार थी, परन्तु वह इस बातके विरुद्ध थी कि राज्यके बाहरसे कोई शिष्ट-मंडल या कमीशन आकर जांच करे। काश्मीरके प्रधानमंत्री पंडित रामचंद्र काकने सरदार पटेलको १३ अक्तूबर, १९४६ के एक पत्रमें लिखा: "मुझे विश्वास है कि आपके जैसा बुद्धिमान और अनुभवी पुरुष हमारी इस कठिनाईको समझ लेगा कि जहां तक नीतिके मामलोंका सम्बंध है, यह सिद्धान्त स्वीकार करना असंभव है कि नीति-निर्धारणका काम तो एक सत्ता करे और उसको कार्यान्वित करनेके परिणामोंका सामना कोई और सत्ता करे।"

इस बीच गांधीजी गतिरोधको मिटानेके लिए भोपालके नवाबके प्रभावका उपयोग करनेकी चेष्टा कर रहे थे। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो. के. टी. शाह, जो नवाबके मित्र भी थे और आर्थिक विषयोंके सलाहकार भी थे, नवाबके दूतका काम कर रहे थे। वे १६ अक्तूबरको गांधीजीसे मिले। मुलाकातके दौरान गांधीजीने उन्हें चेतावनी दी कि काश्मीरके अधिकारियोंकी नीतिके विरुद्ध जनताकी भावना इतनी प्रबल है कि "यदि प्रतिरोध असामयिक और अति आग्रही हुआ, तो काश्मीरकी गद्दी भी खतम हो सकती है।" प्रोफेसर शाहने इस बातका अधिक स्पष्टीकरण चाहा कि "वर्तमान महाराजाके गद्दीसे उतार दिये जानेकी ही संभावना है या ७० वर्ष पहले जिस प्रकार बड़ौदाके मल्हारावके साथ हुआ वैसे सारा राज्य ही भारतमें मिला दिया जा सकता है।" गांधीजीने दृढ़तापूर्वक कहा कि "मेरा मतलब इतना ही नहीं है कि मौजूदा महाराजाका सिंहासन छिन सकता है, बल्कि एक घटकके रूपमें राज्यका लोप भी हो सकता है।" गांधीजीने यह भी सुझाया कि महाराजाके लिए यह सही, ठीक और सयानी बात "ही होगी कि वे ऐसे कमीशन और उसकी जांचके रास्तेमें न केवल कोई रुकावट न डालनेका वचन दें,

बल्कि उसे तथ्यों तक पहुंचने और स्थितिको सही सही समझनेमें हर प्रकारसे मदद करें।" कांग्रेस जितनी राज्योंकी भारतीय प्रजाकी है उतनी ही राजाओंकी है । इसलिए "दोषारोपणकी दृष्टि रखकर कांग्रेसकी दिलचस्पीको किसी राज्यके घरेलू मामलोंमें हस्तक्षेप कहना बिलकुल गलत" होगा। कांग्रेस बाहरकी नहीं है। [गांधीजीके साथ हुए अपने वार्तालाप पर प्रो. के. टी. शाह द्वारा लिखी गई टिप्पणी, १६ अक्तूबर, १९४६]

इस चेतावनीके द्वारा गांधीजीने एक मित्रके नाते उस परिणामकी ओर केवल संकेत ही किया, जो राजाओंके प्रचण्ड जन-आंदोलनको रोकनेका प्रयत्न करने पर अनिवार्य होता। परन्तु गांधीजीकी सलाहने भोपालके नवाबको वैसे ही अशांत बना दिया जैसे किसी बिगड़े हुए रोगीको बद-परहेजीके खिलाफ दी जानेवाली डॉक्टरकी लाभदायी चेतावनी बेचैन कर देती है। नवाबने उनके सचिवको एक पत्रमें लिखा :

> शाहने मुझे गांधीजीका संदेशा कल दिया और मैं आपको बता नहीं सकता कि मुझे उससे कितनी पीड़ा और चिन्ता हुई। . . . मुझे मैत्रीपूणं और सुखद हलकी आशा थी, क्योंकि मेरा हमेशाकी तरह इस बार भी यह खयाल था कि गांधीजी सदा रियासतोंके प्रति निष्पक्ष और न्याय-परायण रहेंगे। मुझे बताया गया था कि इस वर्षके आरंभमें गांधीजीका रवैया अत्यन्त उत्साहवर्धक था और इससे मुझे यह विश्वास हुआ था कि रियासतोंके साथ न्याय किया जायगा और काश्मीरका झगड़ा मित्रभावसे और सन्तोषपूर्वक निबट जायगा। कांग्रेसके रवैयेमें परिवर्तन होनेसे मैं सचमुच चौंक उठा हूं।
>
> रियासतें सर्वसत्ताधारी और स्वायत्त हैं। वे अपनी प्रभुसत्ता और स्वायत्तता कायम रखना चाहती हैं। वे भारतकी हैं और विशेष उद्देश्योंके लिए एक संघमें आनेको तैयार हैं, परन्तु ऐसी शर्तों पर नहीं जिनमें ब्रिटिश पद्धतिकी सार्वभौम सत्ताकी गंध आती हो। . . . स्वशासन और प्रभुसत्ता हमें मिल जाय, तो हम भारतकी प्रतिष्ठा और स्वाधीनताकी रक्षा करेंगे। . . . हमला किसी भी दिशासे होगा तो हम उसका सामना करेंगे। . . .
>
> काश्मीरमें जो कार्रवाई करनेकी बात सोची गई है, उससे तो देशी राज्योंकी स्वतंत्र हस्तीकी जड़ ही कट जाती है। यदि ऐसी कार्रवाई नेपाल और अफगानिस्तानमें उचित नहीं है,

तो काश्मीरमें क्यों उचित है ? क्या भावी भारतमें देशी राज्योंकी यही स्थिति होगी ? यह प्रश्न मैं अपने आपसे पूछता हूं। . . .

यदि किसी देशी राज्यमें सरकारकी कार्रवाई या अन्य किन्हीं कारणोंसे ऐसी गंभीर स्थिति खड़ी हो जाय, जिसका परिणाम रक्तपात और अराजकतामें आये और ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो जाय जिसमें निष्पक्ष जांचकी आवश्यकता हो, तो मुझे सन्देह नहीं कि राज्य खुद जांच करेंगे। ऐसी जांच हर हालतमें की जानी चाहिये। . . . परन्तु यदि यह सिद्धान्त मान लिया जाय कि ऐसी जांच ब्रिटिश भारतके किसी हिस्सेमें शुरू की जा सकती है और उसे किसी भी देशी राज्यमें जरूरी सत्ता और अधिकार प्राप्त होगा, तब तो स्थिति ब्रिटिश शासनसे भी बुरी हो जायगी। इससे कमसे कम फिलहाल तो देशी राज्योंमें स्वाधीनताके लिए हर तरहकी प्रेरणाका दमन और नाश हो जायगा । . . . क्या इस नाजुक मौके पर ऐसी कोई चीज शुरू करना मुनासिब होगा ? [भोपालके नवाबका पत्र श्वैब कुरेशीको, २० अक्तूबर, १९४६]

नवाबने अपने पत्रमें जिस "गंभीर स्थिति " का उल्लेख किया वह चास्तवमें काश्मीरमें मौजूद थी, परन्तु वहांके राजा निकट आ रहे खतरेको न पहचानने पर तुले हुए थे। वे उस अंतिम विनाशकी ओर सिरके बल दौड़ रहे थे, जिससे गांधीजी एक सच्चे हितैषीके नाते उन्हें बचानेकी भरसक कोहछिश कर रहे थे।

उसके बाद राजनीतिक घटनाओंने कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओंके पास इतना समय ही नहीं छोड़ा कि वे इस मामलेके पीछे पड़ते । नोआखाली, बिहार और सीमाप्रान्तमें हिंसक उपद्रव शुरू हो गये और अन्तरिम सरकारके भीतर तथा बाहर मुस्लिम लीगके षड्यंत्र चलते रहे। इस कारण काँग्रेस अन्य कार्योंमें बहुत व्यस्त हो गई और यह मामला खटाईमें पड़ गया।

माउन्टबेटनके आ पहुंचने पर घटनाओंका नया दौर प्रारंभ हुआ। देशके विभाजन और सत्ताके हस्तांतरणकी ३ जूनवाली योजनाके बाद कुछ बड़े राज्योंकी अलग रहनेकी धमकी बड़ा रूप लेकर सामने दिखाई देने लगी। ४ जुलाई, १९४७ के एक पत्रमें पंडित नेहरूने एक बार फिर काश्मीरके महाराजाको समझानेका प्रयत्न किया :

एक छोटेसे पत्रमें किसी महत्त्वपूर्ण मामलेकी चर्चा करना असंभवसा है। . . . इसलिए आपके समक्ष मेरा सुझाव है कि आपका मुझसे और मेरे साथियोंसे मिलकर समान हितके

विषयोंकी चर्चा कर लेना वांछनीय होगा। . . . मैं इस प्रश्न पर बिलकुल तटस्थ ढंगसे सोचता हूं और मुझे किसीसे वैरभाव नहीं है। अवश्य ही आपके प्रति मेरा कोई दुर्भाव नहीं है। . . . मुझे पिछली बातोंकी चिन्ता नहीं है, चिन्ता भविष्यकी है और मैं उस भविष्यका विचार आपके और अन्य संबंधित लोगोंके साथ मित्रतापूर्ण सहयोगकी भावनासे करना चाहता हूं। . . . जहां तक संभव हो, हम दूसरोंके सहयोगसे आगे बढ़ना चाहते हैं।

मैं यह नहीं मानता कि कोई भी देशी राज्य पूरी तरह स्वाधीन हो सकता है। आजकी दुनियामें ऐसे छोटे छोटे राज्योंके लिए कोई स्थान नहीं हो सकता, खास तौर पर दो बड़े राज्योंके सीमाक्षेत्रोंमें । . . . मैं आपकी कठिनाइयां अच्छी तरह समझता हूं। कठिनाइयोंका सामना करनेका खुद मुझे भी अभ्यास है। उत्तम मार्ग यही है कि उनका सामना करनेके लिए उन पर विजय प्राप्त की जाय। मेरा आपसे कहना है कि अब समय आ गया है, असलमें तो बहुत पहले ही आ गया था, कि देशी राज्योंकी नीतिमें निश्चित परिवर्तन हो । . . . मुझे विश्वास है कि मैंने जो कुछ लिखा है और जो सलाह देनेका मैंने साहस किया है उसकी आप कदर करेंगे । मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह काश्मीरके भलेके लिए, आपके भलेके लिए और सारे भारतके भलेके लिए है।

परन्तु महाराजा तो अपने ही मार्गसे चलने पर तुले हुए थे। उन्होंने अपनी रक्षा करानेसे इनकार कर दिया।

काश्मीर नेशनल कान्फरेन्सके नेता उत्सुक थे कि पंडित नेहरू उनके पास जायें। परन्तु चूंकि महाराजा हरिसिंहको अब भी पंडित नेहरूके काश्मीर जाने पर आपत्ति थी, इसलिए गांधीजीने लॉर्ड माउन्टबेटनको लिख कर पूछा : क्या महाराजा अनुकूल हो जायंगे, अगर पंडित नेहरूके बजाय मैं जाऊं या सरदार पटेल वहां जायं ? यदि प्रतिष्ठाकी रक्षाका ही प्रश्न हो, तो रास्ता निकल सकता है। “पंडितजी मेरे साथ थे । . . . मैंने काश्मीर सम्बन्धी बातचीतका सार उन्हें सुनाया। . . . मैं भी उनकी तरह उत्सुक हूं और मानता हूं कि इस मामलेमें देरकी गुंजाइश नहीं। उनके लिए तो व्यक्तिगत प्रतिष्ठाका भी सवाल है। मैंने तो केवल उनका स्थान लेनेकी भरसक कोशिश करनेकी जिम्मेदारी ली है। मैं उन्हें इस मामलेमें चिन्तामुक्त करना चाहता हूं।” [गांधीजीका पत्र लॉर्ड माउन्टबेटनको, २७ जून, १९४७]

लॉर्ड माउन्टबेटनने उसी दिन महाराजाको पत्र लिख कर सलाह दी कि वे गांधीजीकी मुलाकातके लिए सहमत हो जायं :

> मैंने महात्मा गांधी और पंडित नेहरू दोनोंसे बात की है। दोनों काश्मीर आनेको अब भी उत्सुक हैं। मैंने उन्हें बताया कि किसी बड़े कांग्रेसी नेताके वहां जाने पर भाषण होंगे और उनका नतीजा जरूर यह होगा कि लीग उनके प्रचारका खण्डन करनेके लिए जिन्ना जैसे वक्ताओंको वहां भेजेगी। इससे व्यवहारमें चुनावका-सा वातावरण पैदा होगा, जिसे आप उचित रूपमें ही बचाना चाहते हैं; क्योंकि, जैसा आपने मुझे बताया, अब तक कोई रक्तपात काश्मीरमें नहीं हुआ है और केवल तेज राजनीतिक भाषणोंसे ही अब वहां रक्तपात हो सकता है।
>
> मि. गांधी मुझसे कहते हैं कि पंडित नेहरू अपने आनेका विचार छोड़नेके लिए तैयार हैं, अगर उनके बजाय वे (गांधीजी) चले जायं। इसलिए मैं यह पत्र गांधीजीके कहने पर लिख रहा हूं (और उनके सामने ही लिखवा रहा हुं) । मेरा सुझाव है कि आप निकट भविष्यमें गांधीजीकी मुलाकातके लिए सहमत हो जायं और उनको अधिकसे अधिक सुविधाएं दें। उन्होंने मुझे पक्का आश्वासन दिया है कि वे कोई राजनीतिक भाषण नहीं देंगे और न किसी तरहका प्रचार करेंगे । . . .

परन्तु गांधीजीके इस "पक्के" आश्वासन और लॉर्ड माउन्टबेटनके समझानेसे भी महाराजा इस प्रस्तावित यात्राके लिए सहमत न हुए ।

महाराजा हरिसिंहका पत्र लॉर्ड माउन्टबेटनको

८ जुलाई, १९४७

> मेरा कहना यह है कि सब दृष्टियोंसे महात्मा गांधीके लिए यह वांछनीय होगा कि इस वर्ष वे अपनी प्रस्तावित यात्रा रद्द कर दें। लेकिन यदि अपने किन्हीं कारणोंसे वे ऐसा नहीं कर सकते, तो भी मैं कहूंगा कि उनका आगमन शरद् ऋतुके अंतमें ही होना चाहिये। . . . . लेकिन मैं फिर दृढ़तासे सलाह दूंगा कि जब तक भारतमें परिस्थितियां सुधर न जायं तब तक उन्हें या किसी राजनीतिक नेताको काश्मीर नहीं आना चाहिये।

यह पत्र ११ जुलाई तक दिल्लीमें नहीं मिला। एक पखवाड़े तक कोई समाचार न मिलनेसे चिन्तित होकर गांधीजीने ११ जुलाईको लॉर्ड माउन्टबेटनको फिर लिखा: "मुझे अभी तक काश्मीरके कोई समाचार नहीं मिले हैं। . . . अगर मैं आपसे वचन-बद्ध न होता, तो बेशक काश्मीर जानेके लिए मैं आपसे कोई इजाजत न चाहता। एक निजी व्यक्तिकी हैसियतसे मैं चला ही जाता।"

लॉर्ड माउन्टबेटनका पत्र गांधीजीको

१२ जुलाई, १९४७

आपके ११ तारीखके पत्रके लिए धन्यवाद । संयोगवश यह उसी दिन पहुंचा जिस दिन महाराजा काश्मीरका जवाब पहुंचा। जवाब इसके साथ भेज रहा हुं। उन्होंने वे ही विचार दोहराये हैं, जो उन्होंने काश्मीरमें मेरे समक्ष बहुत दृढ़तासे प्रकट किये थे। वे मैंने आपको बता दिये थे : "अच्छेसे अच्छे इरादोंके बावजूद एक छोटीसी चिनगारी भी दुनियामें ऐसी आग लगा सकती है, जिसे नियंत्रणमें रखना असंभव हो जाय।"

जैसा मैंने आपसे कहा, महाराजाका इस बारेमें प्रबल विरोध है कि कोई मुस्लिम लीगी नेता काश्मीर जायं; और मेने श्री जिन्नासे कह दिया था कि न तो वे खुद काश्मीर जायं और न अन्य किसीको भेजें। मुझे मालूम हुआ है कि आपका विचार नोआखाली जानेका है। क्या मैं अनुरोध कर सकता हूं कि आप नोआखालीसे लौट कर काश्मीर हो आयें ? अथवा आपके खयालसे पहले जाना जरूरी है ?

गांधीजीने पंडित नेहरूसे इस बारेमें बात की और १६ जुलाईको पंडित नेहरूकी प्रतिक्रिया वाइसरॉयको बता दी :

काश्मीरके बारेमें पंडिलजीसे मेरी लम्बी बातें हुईं। उनका यह दृढ़ मत है कि मुझे हर हालतमें जाना ही चाहिये, भले ही कायदे आजम जिन्ना अथवा उनका प्रतिनिधि मेरे जानेके बाद वहां आये। उनका खयाल है, और मैं उससे सहमत हूं, कि यदि अभी मेरा जाना स्थगित हो जाता है, तो इससे काश्मीरमें बहुतसे लोगोंको निराशा होगी । संभव है मुझे शेख अब्दुल्ला साहबसे न मिलने दिया जाय। तो भी इसका मेरी प्रस्तावित यात्रा पर कोई असर नहीं पड़ना चाहिये। ऐसी सूरतमें मेरा सुझाव है कि आप महाराजा साहबको तार कर दें कि मेरे आगमन पर कोई भाषण

या आम सभाएं नहीं होंगी, इसलिए राज्यको कोई परेशानी नहीं होनी चाहिये। यह भी लिखें कि मैं जल्दीसे जल्दी काश्मीर जाना चाहूंगा।

जैसा मैंने आपसे कहा है, मेरा यह सुझाव आपकी इस इच्छाके अधीन है कि पंडितजीकी इच्छाओंमें कोई हस्तक्षेप ना किया जायगा । अगर किसी कारणसे आप ऐसा न चाहें, तो मैं नहीं जाऊंगा। अन्तमें यह भी कह दूं कि किसी कारणसे मैं काश्मीर न जाऊं, तो बहुत करके पंडितजी वहां दो तीन दिनके लिए जाना चाहेंगे – यद्यपि मेरा वहां जाना वे ज्यादा पसन्द करेंगे।

इस बीच माउंटबेटनने राजाओंको दिल्लीमें इस विषय पर चर्चा करनेके लिए निमंत्रण भेज दिया था कि कौनसा देशी राज्य किस राज्यमें शामिल हो। वे ऐसा कोई कदम नहीं उठाना चाहते थे, जिससे होनेवाली चर्चाओंके परिणामों पर बुरा असर पड़ता।

लॉर्ड माउन्टबेटनका पत्र गांधीजीको

१७ जुलाई, १९४७

जैसा मैंने हमारी बातचीतमें आपसे कहा था, आप जो भी चाहें उसे मैं पूरी तरह मान लूंगा और आपकी यात्राको सुविधाजनक बनानेके लिए अपनी सेवाएं देनेके लिए तैयार रहूंगा। तदनुसार मैं रेसीडेंटको तार कर रहा हूं कि एक निजी व्यक्तिकी हैसियतसे आपके काश्मीर जानेके प्रस्तावकी सूचना वे महाराजाको दे दें।

आपसे मिलनेके बाद मुझे यह खबर मिली है कि महाराजा अपने प्रधानमंत्री काकको अगले सप्ताहके शुरूमें दिल्ली भेज रहे हैं। वे उन चर्चाओंमें भाग लेंगे, जिनकी व्यवस्था मैं रियासती विभागके साथ कर रहा हूं। मेरे खयालसे यह शिष्टता भी होगी और बुद्धिमत्ता भी कि आपकी और पंडित नेहरूकी पंडित काकसे बातचीत हो जाय और उसके बाद आपके जानेकी ठीक तारीख और तफ्सील तय की जाय; क्योंकि स्वयं मुझे भी कुछ भय है कि आप जैसे विश्व-विख्यात पुरुषका जाना कभी इतना गुप्त नहीं रखा जा सकता कि जो नाजुक वार्ताएं मैं उस सप्ताह चलानेकी आशा रखता हूं उन पर उसका कोई असर न पड़े।

लेकिन मैं यह नहीं चाहता कि आपके आवागमनकी स्वतन्त्रतामें किसी तरह हस्तक्षेप करूं । मैं केवल कुछ दिन और धीरज रखनेकी ही सलाह देना चाहता हूं ।

गांधीजीने वाइसरॉयका पत्र पंडित नेहरूको भेज दिया। पंडित नेहरूने तुरंत उत्तर दिया कि वाइसरॉयकी सलाहका लिहाज रख कर काश्मीर यात्रा काकके दिल्ली पहुंचनेके बाद तक मुलतवी रखी जाय।

परन्तु अब एक और बाधा उपस्थित हो गई। २७ तारीखकी रातको पंडित नेहरू गांधीजीसे मिले और उनसे कहा कि सरदार पटेल आपके काश्मीर जानेके विरुद्ध हैं। यह बात गांधीजीके लिए निर्णायक सिद्ध हुई।

गांधीजीका पत्र लॉर्ड माउन्टबेटनको

२८ जुलाई, १९४७

यह मेरा मौन-दिवस है । इसलिए मेरे हाथका लिखा पत्र भेजकर आपको कष्ट दे रहा हूं। पंडित नेहरूने कल रातको मुझे बताया कि मेरे काश्मीर जानेमें बाधाएं हैं । इसलिए दो तीन दिनके लिए ही सही, उन्होंने खुद जानेका फैसला किया है। . . . आपने चाहा था कि जानेसे पहले मैं आपसे मिल लूं। अगर अब भी जरूरत मालूम होती हो तो मैं कल मिल सकता हूं। आप सिर्फ समय बता दें।

सरदार पटेलको उन्होंने लिखा: “जवाहरलालने मुझे कल रातको बताया कि आप उनका काश्मीर जाना पसन्द करते हैं, परन्तु मेरा जाना नहीं । इसलिए उन्होंने वहां जानेके वचनसे मुझे मुक्त कर दिया है। अत: अब मेरा इरादा कल लाहौर जानेका है – ३० तारीखको लाहौर और अमृतसर रहूंगा। वहांसे एक दिन बाद पटनाकी गाड़ी पकडूंगा। यह सब ठीक हो तो स्वीकृतिके दो शब्द लिख दें, ताकि में वैसी व्यवस्था कर लूं ।”

इस बीच पं. नेहरूने भी लॉर्ड माउंटबेटनको पत्र लिख कर सूचना दे दी थी कि ४ अगस्तके आसपास चार-पांच दिनके लिए मेरा काश्मीर जानेका विचार है। इसकी सूचना देते हुए उन्होंने गांधीजीको भी पत्र लिखा और उसमें यह भी बता दिया कि: “इस सम्बंधमें मैंने आपके नामका उल्लेख नहीं किया है।” इसका तुरंत असर हुआ।

लॉर्ड माउन्टबेटनका पत्र गांधीजीको

२८ जुलाई, १९४७

पंडित काकने मुझसे कहा कि उन्होंने आपको कारण बता दिये हैं कि क्यों काश्मीर सरकार इस बातके लिए चिन्तित है कि कोई राजनीतिक नेता काश्मीरकी मुलाकात न ले। . . . आपसे मिलनेके बाद उन्होंने मुझे बताया कि यद्यपि उन्हें डर है कि आपके जानेसे भी काश्मीरमें हिंसाको उत्तेजना मिल सकती है; फिर भी आपके अहिंसा-प्रचारके बारेमें सब कोई जानते हैं, इसलिए पंडित नेहरूके जानेकी अपेक्षा आपके जानेसे खतरा आधा हो जायगा।

आखिरी बात वे मुझसे आपको यह कहलवाना चाहते हैं कि अगर आपके खयालसे आपका या पंडित नेहरूका जाना अत्यावश्यक हो, तो वे आपका जाना कहीं अधिक पसन्द करेंगे; खास तौर पर इसलिए कि अखबारोंने आपके जानेकी घोषणा कर दी है और जनता इसके लिए मानसिक रूपसे तैयार है। इसलिए मेरा अनुरोध है कि आप पंडित नेहरूको सुझायें कि इस समय उनके जानेसे आपका जाना बेहतर होगा, क्योंकि मैं सचमुच नहीं जानता कि भारतके भावी प्रधान-मंत्रीको दिल्लीसे कैसे जाने दिया जा सकता है, जब कि उनके सत्ता संभालनेमें केवल १८ दिन रह बाकी गये हैं।

परन्तु एक बार तो माउन्टबेटनकी सबको खुश रखनेकी कूटनीति निशाना चूक गई ! उनके पत्रका पंडित नेहरू पर बिलकुल उल्टा असर हुआ।

पंडित नेहरूका पत्र गांधीजीको

२८ जुलाई, १९४७

मैंने वाइसरॉयका पत्र देख लिया है। . . . पंडित काक क्या महसूस करते या सोचते हैं, यह सुनते सुनते मैं थक गया हूं। मुझे उससे कोई सरोकार नहीं। सच पूछा जाय तो मेरे खयालसे वे जो सलाह देते हैं उससे उल्टा करना प्रायः सही होगा। कई महीनोंसे – जबसे माउन्टबेटन आये हैं तभीसे – आपके या मेरे जानेके सवाल पर बहस हुई है और उसे मुलतवी किया गया है। अब यह खेल बहुत हो चुका। किसी कामको करनेका मेरा यह तरीका नहीं है। मुझे और कोई मामला इतना गुस्सा दिल्वानेवाला याद नहीं, जितना कि यह है।. . . मैं अपनी योजनाओंके साथ

आगे बढ़ूंगा। मेरे लोगोंको मेरी जरूरत होने पर काश्मीर जाने और भारतका प्रधानमंत्री बननेके बीच चुनाव करना हो, तो मैं पहली चीजको पसन्द करूंगा।

इस वक्त तक स्थिति बिलकुल उलझनभरी बन चुकी थी। गांधीजीने एक पत्र सरदारके नाम जल्दीसे लिखा: "में आपको पहले ही लिख चुका हूं कि मैं काश्मीर नहीं जा रहा हुं; मेरे बजाय जवाहरलाल जायंगे। मुझे अभी अभी वाइसरॉयका पत्र मिला है, जिसमें कहा गया है कि मुझे जाना चाहिये, जवाहरलालको नहीं। मुझे बिलकुल नहीं सूझ रहा है कि मैं क्या करूं ?"

यह पत्र सरदार पटेलको उनकी पुत्रीने उस समय दिया जब वे एक समितिकी बैठकमें भाग ले रहे थे। उन्होंने लिख भेजा : "मुझे सोचनेके लिए समय चाहिये। इसलिए आप कल नहीं जा सकते। कल इस पर विचार कर लेंगे और फिर फैसला करेंगे।"

इन आखिरी क्षणोंकी घटनाओंका परिणाम इतना ही हुआ कि गांधीजीकी काश्मीर जानेकी तारीख २९ से ३० जुलाई हो गई।

*

वर्षा ऋतु आ गई थी। कभी धूप निकलती थी और कभी मेह बरसता था । बादल इधरसे उधर चारों ओर हरी हरी पहाड़ियों पर आते-जाते रहते थे । ऐसे मौसममें गांधीजी अपनी मंडली सहित १ अगस्तको तीसरे पहर श्रीनगर पहुंचे । शामको उन्हें मोटरमें घुमाया गया। काश्मीरको गिलगिट वापस मिल जानेकी खुशीमें राज्य रोशनी करके उत्सव मना रहा था। अब तक गिलगिट पर पोलिटिकल विभागके मारफत गवर्नर-जनरलका प्रशासन रहता था। गांधीजीने पूछा: "यह दीवाली क्यों मनाई जा रही है ?" कारण बताने पर वे बोले : "बड़ी भूल है। सरकारको इस अवसर पर तुरंत काश्मीरके भीतर गिलगिठकी स्वायत्तताकी घोषणा करनी चाहिये थी।" वहां लगभग सौ फी सदी आबादी मुस्लिम थी और पोलिटिकल विभागकी हुकूमतमें वहांके लोगोंमें अलगावकी भावनाका सतत पोषण किया गया था। एक क्षणमें गांधीजीने देख लिया कि गिलगिटको काश्मीरमें बिना किसी शर्तके शामिल करके भावी उत्पातके बीज बोये गये हैं।

श्रीनगरके दो दिनके निवास-कालमें गांधीजी प्रधानमंत्री और महाराजासे मिले और नेशनल कान्फरेन्सके कार्यकर्ताओंसे कई बार मिले । ३ अगस्तकी शामको धुल और उमससे परेशान होते हुए,

भीड़वाले बाजारसे वे बेगम अब्दुल्लाके घर गये। वहां उनके सम्मानमें एक घरेलू समारोह रखा गया था। "बेगमका व्यवहार बड़ा मीठा था। परन्तु फोटो खिंचवानेका और बहुत खर्चीली चायका आडंबर भी किया गया था। इसके लिए बड़ी तैयारियां की गई थीं। में इस परिवारके निकट आ चुका था, इसलिए अनाप-शनाप खर्च और इतना अनावश्यक कष्ट उठानेके लिए मैंने बेगमको हलका-सा उलाहना दिया। मुझे मालूम नहीं कि वह पाठ उनके हृदयमें उतरा या नहीं । मेरे खयालसे नहीं उतरा।" [अपने काश्मीरके दौरे पर गांधीजीकी रिपोर्ट, ६ अगस्त, १९४७]

लगभग ५००० काश्मीरी महिलाओंका समुदाय सुबहके ११ बजेसे गांधीजीका इन्तजार कर रहा था । उसे गांधीजीके दर्शनोंका आग्रह था। इसके लिए शामको ८ बजे उन्हें फिर मोटरकी कठिन यात्रा करनी पड़ी । "इस प्रकार एक कार्यव्यस्त दिन पूरा हुआ । दूसरे दिन सुबह मोटरसे जम्मू जानेकी आशा थी । उस दिन सोमवार (मौन-दिन) था और बीच-बीचमें रुकना भी था ।" [वही]

दूसरे दिन प्रातःकाल ५ बजे हमारा वापसी सफर शुरू हुआ । शामको जम्मूके सभास्थलको एक भारी भीड़ने घेर लिया। गांधीजीको सख्त जुकाम हो रहा था। परन्तु उन्होंने कारमें बैठ कर सभामें जानेसे इनकार कर दिया : "जब भीड़ बहुत ज्यादा हो तो सलामती पैदल जानेमें ही होती है।" सभा तक पैदल चलकर वे "कमसे कम कठिनाईके साथ" मंच तक पहुंच गये।

जम्मूमें कार्यकर्ताओंके एक शिष्ट-मंडलने गांधीजीसे पूछा: "भारत तो १५ अगस्तको आजाद हो जायगा। काश्मीरका क्या होगा ?" गांधीजीने उत्तर दिया: "यह काश्मीरके लोगों पर निर्भर करेगा।" वे सब जानना चाहते थे कि काश्मीर राज्य भारतीय संघमें शामिल होगा या पाकिस्तानमें । गांधीजीने जवाब दिया: "इसका निर्णय भी काश्मीरियोंकी इच्छासे होना चाहिये ।

रातभर लगातार पानी बरसता रहा । इस कारण गांधीजीका जुकाम और भी तेज हो गया । फिर भी दूसरे दिन सुबहकी प्रार्थनाके बाद साढ़े तीन बजे उन्होंने रावलपिंडीका सफर शुरू कर दिया । रास्तेमें थोड़ी देर वाहके निराश्रित-शिविरमें ठहरे । उस दिन शिविरमें रावलपिंडी और आसपासके इलाकेके कोई ९००० निराश्रित थे। अनेक निराश्रित स्त्रियोंको अपने पति, निकट सम्बंधी, बच्चे, घर, सम्पत्ति – सर्वस्व खो देना पड़ा था। वहां ऐसे अनाथ बच्चे थे, जिनका पृथ्वी पर कोई नहीं रह गया था। उन्हें गांधीजी किन शब्दोंमें सान्त्वना देते ? सामूहिक प्रार्थनाके शांत समागममें वे लोग उतनी देरके लिए अपना दुःख

भूल गये। गांधीजी एक निराश्रित अस्पताल देखने गये। वहां स्त्रियोंकी छातियोंसे गोलियां निकाली जा रही थीं। कुछके हाथ-पैर काट दिये गये थे। कुछकी गोदमें नवजात शिशु थे, जिनको पैदा हुए मुश्किलसे २४ घंटे हुए होंगे। कुछ और स्त्रियोंके शरीर पर छुरोंके घाव थे। शल्यक्रियावाले रोगियोंके घावोंसे बदबू निकल रही थी। गांधीजीने दुखियोंके सिर पर प्रेमसे हाथ रखकर उन्हें समझाया कि एकमात्र ईश्वरको ही अपना शरण मानें, क्योंकि ऐसी विपत्तिका सामना करनेके लिए दूसरे सब उपाय व्यथे हैं। किसीके मुंह परसे उन्होंने मक्खी उड़ाई, तो किसीके ज्वर-पीड़ित अंगों पर कम्बल ओढ़ा दिया। गांधीजीका सारा शरीर वेदनासे कांप उठा। उन्होंने गहरी सांस लेकर धीरेसे कहा: "कैसा राक्षसीपन है ! कैसी बरबरता है ! मनुष्य इतना नीचे कैसे गिर सकता है ?"

कस्तूरबा ट्रस्टकी लड़कियोंकी एक टोली वाह शिविरके निराश्रितोंकी बड़ी महत्त्वपूर्ण सेवा कर रही थीं। इस केन्द्रको थोड़ी देर देखनेके बाद गांधीजी पंजा साहबके प्रसिद्ध गुरुद्वारेमें गये। इस गुरुद्वारे पर हालके दंगोंमें मुस्लिम भीड़ने दो बार हमला किया था। सौभाग्यसे हमला करनेवाले लोग खदेड़ दिये गये। सिक्खोंमें पश्चिमी पंजाबके अपने धर्मस्थानोंकी रक्षाके बारेमें बड़ी घबराहट थी। वे पूर्वी पंजाबको सिक्ख राज्य बना देनेकी इच्छा भी रखते थे। गांधीजीने उनसे कहा : ऐसा विचार भी करना आपको शोभा नहीं देता। सिक्ख योद्धाओंकी जातिके रूपमें प्रसिद्ध हैं। और सब लोगोंकी अपेक्षा आपके लिए तो धर्म, जाति या वंशके बजाय योग्यता ही पद पानेकी एकमात्र कसौटी होनी चाहिये। रही बात धर्मस्थानोंकी रक्षाके बारेमें आपके डरकी। धर्मस्थानोंकी रक्षाके लिए आपको अपनेसे बाहरकी किसी सत्ताका मुंह नहीं ताकना चाहिये। "मैं चाहता हूं कि हरएक सिक्ख अपने धर्मका रक्षक बने। . . . मैं चाहता हूं कि आप भविष्यके बारेमें सारा डर छोड़ दें . . . (और) मुस्लिम नेताओंके वचनों पर भरोसा करें। . . . ईश्वर न्यायाधीश है। और संसार, जो उसकी सृष्टि है, मुस्लिम नेताओंका न्याय करेगा – उनके वचनों और प्रतिज्ञाओंके अनुसार नहीं, परन्तु उनके और उनके अनुयायियोंके कार्योंके अनुसार।"

शामको गांधीजी वाह शिविरमें लौट कर गये तब शरणार्थियोंके प्रतिनिधि उनसे मिलने आये। वे शिविरकी सलामतीके बारेमें घबराये हुए थे। वे बोले : इस पर किसी भी समय हमला हो सकता है। क्या आप १५ अगस्त तक हमारे साथ ठहर सकते हैं ? और यह न हो सके तो उस तारीखसे पहले शिविर खाली कराकर आप हमें भारत नहीं ले जा सकते ? गांधीजीने उनसे कहा : दूसरी जगह मेरे कामकाजके कारण मैं यहां अधिक नहीं ठहर सकता। परन्तु मैं अपने बदलेमें सुशीलाको छोड़ जाऊंगा। वह मेरी

पुत्रीके समान है। अगर आपके साथ जरा भी बुरा व्यवहार हुआ, तो पहले वह मरेगी। इससे निराश्रितोंको अपार हर्ष हुआ।

गांधीजीने उनसे कहा: "किसीको अपनी मौतसे पहले ही नहीं मरना चाहिये। अगर बुरीसे बुरी बात हो और आप मर जायं, तो अपने मुसलमान भाइयोंके हाथों आपकी मृत्यु होगी। अवश्य ही पाकिस्तान तमाम अल्पसंख्यकोंको नष्ट करने अथवा निकाल देनेका साहस नहीं करेगा। यह सोचा भी नहीं जा सकता।"

रावलपिंडीसे रेलयात्रा शुरू हुई। रास्तेमें लाहौर ठहर कर गांधीजीने श्रीमती रामेश्वरी नेहरूके मकानसे सरदार पटेलको लिखा :

गांधीजीका पत्र सरदार पटेलको

६ अगस्त, १९४६

वाह शिविरमें काफी उपयोगी काम किया गया है। लोगोंको यहांसे हटाना नहीं चाहिये। आपको इस मामलेकी पाकिस्तान सरकारसे चर्चा करनी चाहिये। रावलपिंडीमें फिरसे हिन्दु-सिक्ख आबादी बसनी चाहिये। आपको पंजा साहब और वाह शिविरके मेरे भाषण देखने चाहिये। मैंने यह सुझाव वहां दिया है। . . . मैं सुशीलाको वाह शिविरमें छोड़ आया हूं। इसे मैंने जरूरी समझा। इससे लोगोंमें उत्साह और साहस आ गया है। वे घबराये हुए हैं। मुझे उनकी घबराहटके लिए कोई कारण नहीं दिखाई देता।

उन्होंने अपनी काश्मीर-यात्राका विवरण भी पंडित नेहरूको भेजा, जो सरदारके लिए भी था :

पहुंचनेके दिन कोई प्रार्थना-सभा नहीं हुई। परन्तु मैं लोगोंके सामने दो-तीन बार गया और मैंने उनसे कहा कि मैं कोई सार्वजनिक भाषण नहीं दे सकता, क्योंकि किसी तरहकी मनाही न होते हुए भी मैंने प्रण कर लिया है कि अगर मुझे अपनी यात्राको यथासम्भव राजनीतिसे मुक्त रखना हो, तो मुझे आम सभाओंमें भाषण नहीं देना चाहिये। . . . प्रधानमंत्रीने मुझसे कहा कि प्रार्थना-सभाओंके लिए उन्हें कोई आपत्ति नहीं है। . . . इसलिए बादके दो दिनोंमें श्रीनगरमें और तीसरे दिन जम्मूमें प्रार्थना-सभाएं की गई।

प्रधानमंत्रीके साथ हुई दो मुलाकातोंमें मैंने उन्हें बताया कि प्रजामें वे लोकप्रिय नहीं हैं। . . . उन्होंने महाराजाको लिखा . . . कि महाराजाका संकेत मिलते ही वे सहर्ष त्यागपत्र दे देंगे। . . . महाराजाने मुझे संदेश भेजा था . . . . कि महाराजा और महारानी मुझसे मिलनेको उत्सुक हैं। मैं उनसे मिला। युवराजके पैरमें प्लास्टरकी पट्टी बंधी हुई थी, फिर भी वे मुलाकातके समय मौजूद थे। . . . दोनोंने स्वीकार किया कि ब्रिटिश सार्वभौम सत्ताका अंत होते ही काश्मीरके लोगोंकी सच्ची सार्वभौम सत्ता प्रारम्भ हो जायगी। हम भारतीय संघमें शामिल होनेकी कितनी भी इच्छा क्यों न रखें, तो भी हमें प्रजाकी इच्छाओंके अनुसार चुनाव करना पड़ेगा। भेंटके समय यह चर्चा नहीं हुई कि प्रजाकी इच्छा कैसे जानी जाय। . . .

बख्शी (गुलाम मुहम्मद) को पूरी आशा है कि यदि लोगोंका मुक्त मतदान कराया जाय – चाहे वह वयस्क मताधिकारके आधार पर हो अथवा वर्तमान सूचीके आधार पर – तो उसका परिणाम काश्मीरके भारतीय संघमें शामिल होनेके पक्षमें होगा। शर्त यही है कि शेख अब्दुल्ला और उनके साथी कैदी छोड़ दिये जायं, तमाम पाबन्दियां हटा ली जायं और मौजूदा दीवान सत्तारूढ़ न रहें। कदाचित् वे आम जनताकी भावनाको ही प्रगट कर रहे थे। मैंने अमृतसर संधिका अध्ययन किया। उसे "विक्रय-पत्र" ठीक ही कहा जाता है। मेरी यह धारणा है कि वह १५ तारीखको खतम हो जायगा। उसके बाद रियासत किसकी रहेगी ? क्या वह प्रजाकी नहीं हो जायगी ?

सरदारको एक पत्रमें उन्होंने लिखा : "वे (महाराजा) काकको हटाना चाहते हैं। . . . (उनके सामने) प्रश्न यही है कि कैसे हटावें। . . . मेरी रायमें काश्मीरकी समस्या हल की जा सकती है।"

सोलहवां अध्याय : 'एक आदमीकी सीमासेना'

१

जूनके अन्तिम भागमें और जुलाई भर गांधीजी राजधानीमें रहे । उस बीच उनके मनके भीतर एक तूफान-सा बना रहा : यदि स्वाधीनताके आगमनके बाद लोगोंके दबे हुए ईर्ष्या-द्वेष फूट पड़ें, जैसा कि खतरा है, तो स्वाधीनता जल कर खाक हो सकती है। केन्द्रसे मैं उसके लिए कुछ नहीं कह सकता । मुझे जनताके खतरेकी घड़ीमें उसके साथ रहना चाहिये, क्योंकि उसकी सुरक्षितता और रक्षाके लिए मैंने जीवनको प्रतिज्ञा-बद्ध किया है।

बिहार उन्हें बुला रहा था। इसी प्रकार नोआखाली भी उन्हें बुला रहा था। जब मईके अन्तिम सप्ताहमें उन्होंने पटना छोड़ा तब उन्हें एक सप्ताहके भीतर बिहार लौट आनेकी आशा थी। परन्तु उसके बाद घटता-चक्र इतनी तेजीसे घूमा कि एक महीनेमें एक पीढ़ीका समय गुजर गया। पंजाब भी उन्हें बुला रहा था। उस प्रमुख प्रान्तमें तूफानके बादल एकत्र हो रहे थे। ऐसे समय गांधीजीका कर्तव्य कहां रहना था ? उन्हें भीतरसे कोई स्पष्ट मार्गदर्शन नहीं मिल रहा था। इसलिए उन्होंने इसी उसूल पर चलनेका फैसला किया कि "जब शंका हो तो जहां हो वहीं रहो"; और जैसा वे कहते थे, वे उस समय तक दिल्लीमें "निष्क्रिय जीवन बिताते रहे" जब तक उनके काश्मीर जानेके प्रश्नका निबटारा न हुआ। उन्हें आशा थी कि वहां रहकर वे बिहार और नोआखालीकी भी सेवा करेंगे ।

परन्तु गांधीजीकी बेचैनी बढ़ती ही रही। उनसे कहा गया कि शेष भारतकी स्थिति सुधर जायगी, तो बिहार और नोआखालीकी भी सुधार जायगी । वे इस दृष्टिको स्वीकार नहीं कर सकते थे । उन्होंने कहा : मैं नेताओंके बुलाने पर दिल्ली आया था, लेकिन अगर मुझसे पूछा जाय कि मैंने यहां क्या सिद्ध किया, तो मुझे कहना पड़ेगा कि "उपयोगी कुछ नहीं ।" इसलिए अपनी एक प्रार्थना-सभामें उन्होंने श्रोताओंसे कहा कि आप लोग प्रार्थना कीजिए कि मैं जल्दी ही नोआखाली जा सकूं। आपको कल्पना नहीं हो सकती कि मुझे कितनी मानसिक वेदना हो रही है। देशमें भाई-भाईका खून करनेवाली हिंसाकी काली छाया सर्वत्र छायी हो, तब और क्या हो सकता है ? [प्रार्थना-प्रवचन, ११ जुलाई, १९४७]

दिल्लीके अधिकारी इस खतरेसे बेखबर नहीं थे। जुलाईके अन्तिम सप्ताहमें विभाजन-परिषद्को यह भय लगा कि सीमा-आयोगके निर्णयोंसे प्रभावित होनेवाले क्षेत्रोंमें पता नहीं क्या प्रतिक्रिया हो । इसलिए उसने निर्णय किया कि पंजाबके विभाजन-क्षेत्रोंमें ऐसे "कोई पचास हजार अफसरों और सैनिकोंकी एक सीमासेना कायम की जाय, जिसमें मुख्यतः ऐसे मिश्र घटकोंके लोग हों जिनका अभी तक बंटवारा न हुआ हो और जिसमें अंग्रेज अफसरोंका ऊंचा अनुपात हो ।" यह शायद "किसी देशके एक क्षेत्रमें शांतिकालमें कानून और व्यवस्थाको बनाये रखनेके लिए संगठित की गई सबसे बड़ी सेना" थी और "अज्ञात आकारवाले खतरेके विरुद्ध उपलब्ध साधनोंकी मददसे खड़ी की गई सबसे बड़ी भौतिक तैयारी" थी। इस भौतिक तैयारीको भी "उप-महाद्वीपके बाकीके भागमें बने रहनेवाले सांप्रदायिक सुमेल पर खेला जानेवाला एक बड़ा जुआ" [एलन केम्पबैल-जॉन्सन, 'मिशन विथ माउन्टबेटन', लंदन, १९५१, पृ. १३९] ही समझा गया था।

गांधीजीको लगा कि ऐसी स्थितिमें मेरा सच्चा स्थान राजधानीमें नहीं, किन्तु उन आदमियोंके साथ है, जो "पलटनके टूट जाने पर भी मरते दम तक लड़ते रहते हैं।"

> "मुबारक हो उन्हें
> सुयश, संगीत, ऐश्वर्य और धन;
> बदा हो मुझे –
> मुट्ठीभर भस्म और
> मुंहभर मिट्टीके कण;
> तथा वर्षा और शीतके तांडवमें फंसे . . .
> घायल, . . . अपंग, दृष्टिहीन जन ।"

काश्मीरसे लौटते हुए गांधीजीने दिल्लीको छोड़कर लाहौरसे सीधी पटनाकी राह ली । वहांसे वे कलकत्ता होकर नोआखाली जानेवाले थे। इस बार उन्हें किसीने रोकनेकी कोशिश नहीं की। वे सब अच्छी तरह समझ गये कि देशके विभाजनके बारेमें और आगामी १५ अगस्तके उत्सवके बारेमें गांधीजीके जो विचार हैं उन्हें देखते हुए स्वाधीनता-दिवस पर राजधानीके सरकारी समारोहोंमें उनका कोई स्थान नहीं होगा।

कुछ कांग्रेसी कार्यकर्ता उन्हें लाहौर स्टेशन पर विदा करने आये थे। उनसे गांधीजीने कहा: "सच्ची परीक्षा जल्दी ही आ रही है । आपको शक्तिभर आत्मशुद्धि करके उसके लिए तैयार हो जाना चाहिये।" मुझे यह जानकर दुःख हुआ कि लोग पश्चिम पंजाबसे भाग रहे हैं और गैर-मुस्लिम नागरिक लाहौरको खाली करके जा रहे हैं। "मुझे कहना पड़ता है कि ऐसा नहीं होना चाहिये। अगर आप समझते हैं कि लाहौर मर गया या मर रहा है, तो उससे भागिये नहीं परन्तु जिस चीजकी आपके खयालसे लाहौरमें मृत्यु हो रही है उसके साथ आप मरिये।" आपको घबराना नहीं चाहिये। "जब आप भयसे घबराते हैं तो आप मौतसे पहले ही मर जाते हैं। अगर पंजाबके सब लोग कायरोंकी तरह नहीं परन्तु बहादुरोंकी तरह मर जायंगे, तो मैं खुद तो एक भी आंसू न बहाऊंगा ।" मैं घोषणा करता हूं कि मैं अपना शेष जीवन पाकिस्तानमें ही बिताऊंगा। "यह हो सकता है कि यह जीवन मैं पूर्व बंगालमें बिताऊं, पश्चिम पंजाबमें बिताऊं अथवा शायद सीमाप्रान्तमें बिताऊं ।"

अगर डर और घबराहटकी छूत लगती है, तो साहसकी भी लगती है, विशेषतः जब वह अहिंसक ढंगका हो। गांधीजीके काश्मीरमें और अन्यत्र दिए हुए भाषण उनसे आगे आगे चलते थे और उनका सारे प्रान्तमें बहुत अच्छा असर हुआ था। एक ही सप्ताह पहले काश्मीर जाते हुए वे अमृतसरसे गुजरे तब कुछ लड़कोंने रेलवे स्टेशन पर काली झंडियोंका प्रदर्शन किया था और "गांधी लौट जाओ" के नारे लगाये थे। शोरसे कान फटे थे, इसलिए कष्टसे बचनेके लिए गांधीजीको कानोंमें उंगली डाल लेनी पड़ी थी । इस बार जब गाड़ी प्लेटफार्म पर पहुंची तो गांधीजीके डिब्बेके सामने हजारों आदमी पूरे व्यवस्थित ढंगसे कतार बांधे खड़े थे। उन्होंने गांधीजीका थैला मांगा और कहा कि हरिजन-कोषके लिए उसे भर कर हम आपको दे देंगे। पिछली बार उन्होंने जो अशोभनीय दृश्य उपस्थित किया था, उसके लिए उन्होंने हृदयसे क्षमा-याचता की। "वह हमारी बड़ी भारी भूल थी। हमें ज्ञान नहीं था। आपकी चार दिनकी यात्राने हमारे प्रान्तमें सारा वायु-मंडल बदल दिया है। कृपया हमें क्षमा कर दीजिये।"

गांधीजी : " पिछली बातोंको भूल जाओ। यह कहावत याद रखो कि "जब जागे तभी सवेरा।" अब हम सब जाग जायं।"

रास्ते भर जहां भी गाड़ी रुकती वहीं बड़ी भीड़ जमा हो जाती थी। ऊपरसे रातमें भारी वर्षा होने लगी। गांधीजीके डिब्बेकी छत टूटी थी, इसलिए डिब्बेमें पानी भर गया। गार्डने सुझाया कि गांधीजी दूसरे डिब्बेमें चले जायं।

गांधीजी : "इस डिब्बेका क्या होगा ?"

गार्ड : "दूसरे डिब्बेके मुसाफिर इसमें आ जायंगे ।"

गांधीजी : "अगर यह डिब्बा उनके लिए अच्छा है, तो मेरे लिए भी अच्छा होना चाहिये । मैं दूसरोंको कष्ट देकर स्वयं आराम पानेकी बात कैसे सोच सकता हूं !"

गार्ड : "मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं ?"

गांधीजी : "गरीब मुसाफिरोंको तंग ना करो और रिश्वत न लो । मेरी सबसे बड़ी सेवा तुम यही कर सकते हो ।"

पटनामें मुलाकातोंका भारी कार्यक्रम था। गांधीजी ८ अगस्तको वहां दिन भर रहे । शामकी प्रार्थना-सभामें उन्होंने लोगोंसे कहा कि १५ अगस्तका दिन आप लोग प्रार्थना, उपवास और कताई-यज्ञ करके मनाइये । "चरखेने बिहारको बनाया है । आज भी बिहार कताईमें सबसे आगे है। ईश्वर न करे बिहारने अब तक जो कुछ सिद्ध किया है, उसे वह जलाकर खाक कर दे ।"

प्रार्थना-सभासे गांधीजी सीधे स्टेशन चले गये और कलकत्तेकी यात्रा शुरू हो गई । रास्तेमें एक छोटेसे स्टेशन पर गाड़ी रुकी, तो भीड़ अपने विशिष्ट बिहारी उत्साहमें पागल हो उठी । गांधीजी जिस खिड़की पर बैठे थे उस खिड़कीकी तरफ लोग बेतहाशा दर्शनोंके लिए दौड़े। इस डरसे कि कोई गाड़ीके पहियोंके नीचे दब न जाय (ऐसा अनेक बार सचमुच ही हो चुका था), जो थोड़ेसे लोग खिड़कियों पर दबाव डाल रहे थे उन्हें पीछे धकेलनेकी गांधीजीने कोशिश की । लेकिन दर्शनोंके भूखे लोग गांधीजीके इन धक्कोंको परम आशीर्वाद मान कर नये जोशके साथ खिड़कियों पर टूट पड़े ! गांधीजीके साथकी दो लड़कियोंको पहले-पहल तो यह देख कर आघात पहुंचा कि महात्माजी ऐसी हरकत कर रहे हैं, जो महात्माओंको शोभा नहीं देती । परन्तु थोड़ी ही देर बाद स्थितिको समझ कर वे रामधुन गाने लगीं । क्षणभरमें मान-समुद्र जहांका तहां खड़ा हो गया और पागलों जैसी भगदड़ और कानोंको बहरा कर देनेवाले कोलाहलके बजाय हजारों हाथोंकी लयबद्ध तालियोंके साथ जन-समूह रामधुन गानेमें तल्लीन हो गया ।

२

बंगाल द्वारा अपने बंटवारेका निर्णय कर लिये जानेके बाद ३ जुलाईको पश्चिम बंगालके नये मंत्रि-मंडलने शपथ ग्रहण की। पश्चिम बंगाल विधान-सभाके कांग्रेस दलके नेता डॉ. प्रफुल्लचन्द्र घोष उसके मुखिया बने। इस दोहरे प्रबन्धमें १५ अगस्त तक मौजूदा मुस्लिम लीगी मंत्रि-मंडलके हाथमें सारे बंगालके विविध विभागोंका वास्तविक प्रशासन रहा। परन्तु उसके बाद उसके निर्णय केवल पूर्व बंगाल पर ही लागू होते थे। पश्चिम बंगालसे सम्बन्ध रखनेवाले किसी भी निर्णयके लिए पश्चिम बंगालका प्रतिनिधित्व करनेवाले मंत्रि-मंडलकी संमति आवश्यक थी । शहीद सुहरावर्दी अब भी कानूनन् बंगालके मुख्यमंत्री रहे। परन्तु पूर्व बंगालके लिए मुख्यमंत्रीका चुनाव करनेमें पूर्व बंगालकी मुस्लिम लीगके संसदीय दलने ख्वाजा नजीमुद्दीनके पक्षमें निर्णय करके सुहरावर्दीको धता बता दिया।

अगस्त १९४६ के भीषण हत्याकांडके बाद कलकत्ता दरअसल कभी शान्त नहीं रहा । 'सीधी कार्रवाई दिवस' की कटु स्मृतियां और मुस्लिम लीगके शासनमें हिन्दुओंने जो कष्ट सहे थे उनकी दुःखद स्मृतियां लोगोंके दिलोंमें खटक रही थीं; साम्प्रदायिक उत्तेजना और पागलपन भीतर ही भीतर उबलता और सायं सायं करता रहा था। हत्या, आगजनी, लूटपाट, हथियारोंका उपयोग और बमों तथा तेजाबके गोलोंका फेंका जाना नगरके जीवनका नियमित अंग बन गया था। नगरके कुछ हिस्सोंमें संगठित जीवन लगभग ठप हो गया था। नगरके क्षेत्र "हिन्दू" और "मुस्लिम" क्षेत्रोंमें बंट गये थे। मुसलमान मुहल्लोंमें हिन्दू और हिन्दू मुहल्लोंमें मुसलमान दिन-दहाड़े भी आ-जा नहीं सकते थे। ऊपरसे चूंकि सरकारी नौकरोंको यह छूट दे दी गई थी कि वे जिस राज्यमें जाना चाहें जा सकते हैं, इसलिए लगभग सभी मुसलमान अधिकारी और पुलिसवाले पाकिस्तान चले गये और हिन्दुओंने उनकी जगह ले ली। इससे मुसलमान घबरा रहे थे।

गांधीजीके सोदपुर आश्रम पहुंचनेके थोड़ी देर बाद पश्चिम बंगालके नवनिर्मित मंत्रि-मंडलके मुख्यमंत्री डॉ. प्रफुल्लचंद्र घोषने उनसे घंटे भर बातचीत की । उसी दिन तीसरे पहर राज्यपाल सर फ्रेड्रिक बरोज़के निमंत्रण पर गांधीजी उनसे मिले। शामको मुस्लिम लीगके नेता और कलकत्तेके भूतपूर्व महापौर (मेयर) मुहम्मद उस्मान एक और मुस्लिम मित्रके साथ गांधीजीके पास आये । उन्हें शिकायत थी: चूंकि लगभग सभी मुसलमान कर्मचारियोंका पूर्व बंगालमें तबादला हो गया है, इसलिए पश्चिम बंगालके हिन्दू

यह समझने लगे हैं कि अब वे मुसलमानोंसे "बदला लेनेके लिए" कुछ भी कर सकते हैं। अब आप ही कलकत्तेके मुसलमानोंको बचा सकते हैं। क्या आप कुछ समय कलकत्तेमें ठहर कर शहरमें धधकती हुई आगको शान्त नहीं कर सकते ?

गांधीजीने उस दिन सारे प्रार्थना-प्रवचनमें कलकत्तेकी स्थिति पर ही प्रकाश डाला । वे बोले : मैं दिनभर कलकत्तेके मुसलमानोंकी दुःखगाथा सुनता रहा हूं | लीगी मंत्रि-मंडलके शासनमें जो कुछ किया गया था उसकी मैं जांच नहीं कराऊंगा। मुझे इसकी चिन्ता अधिक है कि मेरे मित्र डॉ. घोषका मंत्रि-मंडल क्या कर रहा है। क्या यह बात सच है कि कलकत्तेके मुसलमान आतंकित हैं ? अगर वे हैं, तो यह कांग्रेसी मंत्रि-मंडल पर एक गंभीर लांछन है। मैं यह दलील हरगिज नहीं मान सकता कि जो कुछ हो रहा है वह गुण्डोंका काम है। तथाकथित गुंडोंकी हरकतोंके लिए भी सरकारको जिम्मेदारी लेनी होगी। परीक्षाकी घड़ी आ पहुंची है। आपको अब संसारके समक्ष अपना अहिंसक साहस पूरी मात्रामें दिखाना होगा। भारत फिरसे गुलाम बने, इसका मैं जीवित साक्षी नहीं बनूंगा; और गुलामी फिरसे आ जायगी, यदि हिन्दू-मुस्लिम आपसमें झगड़ते रहेंगे। परन्तु मरनेके बाद भी मेरी आत्मा इन करुण घटनाओं पर आंसू बहायेगी। मेरी प्रार्थना है कि भगवान हमें वह दुर्दिन न दिखाये।"

दूसरे दिन अर्थात् १० अगस्तको मुहम्मद उस्मान फिर गांधीजीके पास आये। उनके साथ एक बड़ा मुस्लिम शिष्ट-मंडल था। उसने गांधीजीसे अनुनय-विनय की कि कमसे कम एक दो दिनके लिए तो भी वे कलकत्तेमें ठहरें। "हम मुसलमानोंका भी आप पर उतना ही हक है जितना हिन्दुओंका है; क्योंकि आपने खुद यह कहा है कि आप जितने हिन्दुओंके हैं उतने ही मुसलमानोंके हैं।"

गांधीजी : "मैं तैयार हूं, परन्तु फिर आपको नोआखालीकी शान्तिकी गारंटी देनी होगी। आपकी गारंटीके बल पर मैं १५ अगस्तसे पहले नोआखाली न जाऊं और वहां कोई गड़बड़ी हो जाय, तो मेरा जीना दुशवार हो जायगा। आपको मेरे आमरण अनशनका सामना करना पड़ेगा ।"

मुहम्मद उस्मान और दूसरे मुसलमान मित्र इस शर्तसे हक्केबक्के रह गये । जिम्मेदारी बड़ी थी, खतरा भारी था। वे हिचकिचाये, परन्तु अन्तमें उन्होंने अपनी और मुस्लिम लीगकी तरफसे गांधीजीको आवश्यक आश्वासन दे दिया। उन्होंने नोआखालीके स्थानीय लीगी नेताओंको तार भेजनेका वचन दिया, जिनमें (नोआखालीके दंगोंका संगठन-कर्ता) गुलाम सरवर और उसका मुख्य साथी कासिम अली भी

थे। वे हालमें ही नजरबन्दीसे रिहा किये गये थे। तारोंके साथ अपनी बातका वजन बढ़ानेके लिए उन्होंने अपने दूत भेजनेकी जिम्मेदारी भी ली, जो वहां शान्ति कायम रखनेमें सहायता करें।

गांधीजीने उनसे कहा : "यद्यपि मैं जल्दीसे जल्दी नोआखाली पहुंच जानेके लिए उत्सुक हूं, फिर भी आपकी इच्छाका आदर करके मैं दो दिन तक – ११ से १२ अगस्त तक – अपना जाना मुलतवी कर सकता हूं।"

गांधीजीका पत्र गवर्नरको

११ अगस्त, १९४७

आप जो नहीं कर सके वह एक बड़े मुस्लिम शिष्ट-मंडलने कर दिया। और अब मैं कमसे कम कल तक यहां हूं। सचमुच मनुष्य उस महान स्त्रष्टाके हाथमें मृत्पिण्ड जैसा ही है।

शामकी प्रार्थना-सभामें इस निर्णयकी घोषणा करते हुए गांधीजीने कहा : यह सोचा भी नहीं जा सकता कि प्रशासन-कलामें निपुण सरकारके रहते बहुसंख्यकोंको क्षणभरके लिए भी अल्पसंख्यकोंको दबाने दिया जा सकता है। मुझसे कहा गया है कि अब कांग्रेसी मंत्रि-मंडल सत्तारूढ़ है, इसलिए हिन्दू पुलिस और अधिकारी न्यायके प्रशासनमें पक्षपात करने लगे हैं; वे वही सब कर रहे हैं जो पहले मुस्लिम पुलिस और मुस्लिम अधिकारियोंने किया था। मैं यह माननेको तैयार नहीं। "यदि साम्प्रदायिकताकी यह दुष्ट भावना पुलिसमें भी आ जायगी, तो सचमुच देशका भविष्य अंधकारमय हो जायगा।"

इस मौके पर अदम्य शहीद सुहरावर्दी मैदानमें आये। वे कराचीमें थे। यह मालूम होने पर कि गांधीजी नोआखाली जा रहे हैं, वे दिल्लीमें थोड़ा भी समय बरबाद न करके कलकत्ते दौड़ आये। वैसे दिल्लीमें वे कुछ दिन ठहरनेवाले थे। ११ अगस्तको वे सोदपुर आश्रममें गांधीजीसे मिले। लगभग आधी रात तक चलनेवाली डेढ़ घंटेकी मुलाकातमें उन्होंने गांधीजीसे कहा : आपके लिए यह उचित नहीं होगा कि कलकत्तेको आगमें जलता हुआ छोड़ कर आप चले जायं । शहरमें सच्ची शांति कायम होने तक आपको यहां रुकना चाहिये। गांधीजीने उत्तर दिया: मैं तैयार हूं, अगर आप फिरसे शांति कायम करनेके लिए मेरे साथ मिलकर काम करनेको तैयार हों । लेकिन यह सोलह आने सचाईके आधार पर ही हो सकता है। मेरा सुझाव है कि हम दोनों साथ साथ एक ही मकानमें उपद्रव-ग्रस्त क्षेत्रमें रहें, **पुलिस और**

सेना हमारी रक्षा न करे, हम साथ साथ लोगोंसे मिलें, उनको समझायें और बतायें कि जब आपसी समझौतेसे देशका विभाजन हो चुका है, तो कोई कारण नहीं कि दोनों पक्ष आपसमें लड़ते रहें । अगर आपको मेरा यह प्रस्ताव स्वीकार हो, तो मैं अपनी तरफसे अनिश्चित कालके लिए नोआखाली जाना स्थगित करके जब तक जरूरी हो कलकत्तेमें ठहरूंगा ।

परन्तु यह प्रस्ताव इतना गंभीर था कि उसका तुरन्त उत्तर नहीं दिया जा सकता था । गांधीजीने उनसे कहा : आप समय लीजिये, रातको इस पर विचार कीजिये, अपने बूढ़े पिताजीसे और अपनी पुत्रीसे भी सलाह लीजिये और फिर मुझे अपना निर्णय बताइये ।

मुस्लिम लीग कौंसिलमें गद्दीसे उतार दिये जानेके बाद अगस्त १९४७ में शहीद सुहरावर्दी बिलकुल दूसरे आदमी हो गये थे। अब वे सत्ताके मदमें चूर बंगालके मुख्यमंत्री नहीं थे – जो "सर्वसत्ताधारी संयुक्त बंगाल" का नेतृत्व करनेका खेल खेल रहे थे। तीन ही महीने पहले वे गांधीजीके लगभग इसी तरहके प्रस्तावको "पागलपणसे भरा प्रस्ताव" कह कर ठुकरा चुके थे । उन्होंने एक रात और आधा दिन गांधीजीके इस प्रस्ताव पर विचार करनेमें लगाया। दूसरे दिन मुहम्मद उस्मान शहीद सुहरावर्दीका जवाब लेकर आये कि गांधीजीका प्रस्ताव बिना किसी शर्तके मुझे मंजूर है । तदनुसार शामकी प्रार्थना-सभामें गांधीजीने घोषणा की : यह देखनेके लिए कि मैं और शहीद सुहरावर्दी साथमें काम करके शहरमें सच्ची साम्प्रदायिक शान्ति स्थापित करनेकी दिशामें क्या कर सकते हैं, मैंने कलकत्तेमें अनिश्चित काल तक ठहरनेका निश्चय किया है। मुझे चेतावनी दी गई है कि सुहरावर्दी भरोसेके लायक आदमी नहीं हैं। परन्तु क्या मेरे लिए भी यही बात नहीं कही गई है ? जैसे मैं आशा करता हूं कि मेरा भरोसा किया जायगा, वैसे ही मैं भी उनका भरोसा करूंगा । मैं और सुहरावर्दी एक ही घरमें रहेंगे। हम एक-दूसरेसे कोई बात छिपा कर नहीं रखेंगे। हम साथमें ही सबसे मिलेंगे। लोगोंमें यह साहस होना चाहिये कि वे हर हालतमें सच बोलें; जिनके विरुद्ध दोषारोपण करना पड़े उनकी उपस्थितिमें भी सच बोलें । आप सब आशीर्वाद दीजिये कि जो पवित्र कार्य हम आरम्भ कर रहे हैं वह सफल हो ।

गांधीजीका पत्र सरदार पटेलको

१३ अगस्त, १९४७

मैं तो यहां फंस गया और अब एक गंभीर जोखिम उठा रहा हूं। मैं और सुहरावर्दी आजसे एक मुसलमान मुहल्लेमें साथ ही रहने जा रहे हैं। भविष्य अपने आप प्रकट होगा। ध्यानसे देखते रहिये। मैं आपको लिखता रहूंगा।

सदा जागरूक सरदार कलकत्तेकी घटनाओंको सावधान दृष्टिसे देख रहे थे। उन्हें गांधीजीके निर्णयसे चिन्ता हुई।

सरदार पटेलका पत्र गांधीजीको

१३ अगस्त, १९४७

तो आप कलकत्तेमें रोक लिये गये हैं और वह भी ऐसी जगह जो सचमुच कसाईखाने जैसी है और बदमाशों और गुंडोंका बदनाम अड्डा है। और संगति भी आपको कैसी बढ़िया मिली है! यह तो भयंकर खतरा है। लेकिन इससे भी बड़ी बात तो यह है कि आपका स्वास्थ्य क्या इस बोझको सहन कर लेगा? मुझे डर है कि वहां भयंकर गंदगी होगी। अपने समाचार देते रहिये।

३

गांधीजीकी सदासे यह परिपाटी रही थी कि जब वे कोई महत्त्वपूर्ण निर्णय करते तो उससे पहले हमेशा अपने निकटके साथियोंको उसकी सूचना करते थे। ये उनके व्यापक परिवारके सदस्य थे, जिन्हें अपने निर्णयके बारेमें वे व्यक्तिगत पत्र लिखते थे। १३ अगस्तकी डाकमें लगभग दर्जन भर ऐसे पत्र थे। सब पत्र अपने ही हाथसे उन्होंने लिखे थे। डेढ़ बजे तक यह काम लगातार चलता रहा। उन्होंने सुहरावर्दीको सूचना कर दी थी कि मैं दिनके ठीक ढाई बजे अपने बेलियाघाटवाले नये मकानके लिए चल पड़ूंगा, इसलिए आप मेरे साथ चलनेके लिए ठीक समय पर पहुंच जायं। चूंकि शहीद प्रस्थानके लिए नियत समयसे दो मिनट पहले तक नहीं आये, इसलिए समयका सदा ही पालन करनेवाले गांधीजी दो बज कर अट्ठाईस मिनट पर मोटरमें सवार होनेको अपने कमरेसे निकले। गाड़ी उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। ठीक ढाई बजे वे योजनानुसार बेलियाघाटके लिए रवाना हो गये।

"हैदरी मेंशन" एक पुराना परित्यक्त मुस्लिम मकान था। वह निहायत गंदे मुहल्लेमें था। गांधीजीके निवासके लिए उसे जल्दी जल्दी साफ कराया गया था। वह टूटी-फूटी इमारत चारों ओरसे लोगोंकी भीड़के लिए खुली थी। बहुत दिन पहले उसकी खिड़कियोंके कांच तोड़ दिये गये थे। वहां एक

ही पाखाना था, जिसका सैकड़ों आदमी अंधाधुंध इस्तेमाल करते थे। इसमें ड्यूटीवाले पुलिसके आदमी, मुलाकाती और दर्शनार्थी भीड़के लोग भी शामिल थे। बारिशके कारण कीचड़ और गंदे पानीका बोलबाला था। बदबूको दबानेके लिए सारी जगह खूब ब्लीचिंग पाउडर छिड़का गया था। उससे सिर चकराने लगता था। एक कमरा गांधीजीके लिए अलग रखा गया था। दूसरा उनके सामान, उनकी मंडली और मेहमानोंके लिए था। तीसरा उनके ऑफिसका काम देता था।

जब गांधीजीकी मोटर पहुंची उस समय नौजवानोंकी एक उत्तेजित भीड़ दरवाजे पर खड़ी थी। वे चिल्लाये : "आप यहां क्यों आये ? हम संकटमें थे तब तो आप नहीं आये। अब मुसलमानोंने शिकायत की तो यह सब हंगामा मचाया जा रहा है। जहां-जहांसे हिन्दू भागे हैं वहां-वहां आप क्यों नहीं गये ?"

थोड़ी देर बाद सुहरावर्दीकी कार पहुंची । क्रुद्ध भीड़ने उसे घेर लिया। स्थितिके खतरनाक रूप लेनेका खतरा पैदा हो गया। गांधीजीने अपने कुछ आदमियोंको प्रदर्शनकारियोंसे कहने और समझानेके लिए बाहर भेजा कि वे अपने प्रतिनिधियोंको गांधीजीसे मिलने भेजें । ऐसा ही किया गया । बाकीके प्रदर्शनकारी शान्त हो गये और उन्होंने सुहरावर्दीको भीतर जाने दिया।

जब प्रदर्शन हो ही रहा था उस समय हॉरेस एलेक्ज़ेंडर आ पहुंचे। उन्हें गांधीजीने बेलियाघाटमें अपने साथ रहनेके लिए बुला लिया था। प्रदर्शनकारियोंने उन्हें भी रोकनेकी कोशिश की। हॉरेसके साथ आये हुए एक भारतीय मित्रने नौजवानोंको स्थिति समझानेका प्रयत्न किया । उत्तरमें उन्होंने "गांधी लौट जाओ" के नारे और भी तेज कर दिये। अन्तमें दोनों अपनी गाड़ीसे उतर कर घरमें चले गये। प्रदर्शनकारियोंका चिल्लाना जारी रहा।

कुछ नौजवानोंने जिस कमरेमें गांधीजी बैठे थे उसकी खिड़की पर चढ़नेकी कोशिश की। गांधीजीकी मंडलीके आदमियोंने उन्हें हाथ जोड़ कर रोका । इससे कोई लाभ नहीं हुआ। हॉरेस खिड़कियां बन्द करने लगे। उन्होंने खुद ही बादमें कहा कि यह "बड़ा ही गलत काम" था। फौरन् ही खिड़कियों पर पत्थर पड़ने लगे और कांच टूट- टूट कर इधर-उधर फैलने लगे । "तब हमें सूझा कि लकड़ीके किवाड़ भी हैं । उन्हें बन्द कर दिया गया । फिर भी कुछ समय तक उन पर पत्थर फेंके जाते रहे। एक अखबारी रिपोर्टर मेरे पास आकर बोला: 'आपको चोट तो नहीं लगी ?' मैंने कहा : 'नहीं, मगर मेरे बालोंमें थोड़े कांचके टुकड़े हैं ! ' " [हॉरेस एलेक्ज़ेन्डर द्वारा लेखकके नाम लिखा गया पत्र]

थोड़ी देर बाद ही प्रदर्शनकारियोंके प्रतिनिधियोंको गांधीजीसे मिलनेके लिए भीतर लाया गया। उनमें से एक कहने लगा : "पिछले साल जब १६ अगस्तको हिन्दुओंके विरुद्ध सीधी कार्रवाई की गई तब तो आप हमें बचाने नहीं आये । अब जब मुसलमान मुहल्लोंमें जरासा उत्पात हुआ, तो आप उनकी मददके लिए दौड़े चले आये हैं । हम नहीं चाहते कि आप यहां रहें ।"

गांधीजी : "अगस्त १९४६ के बाद परिस्थिति बहुत बदल गई है । मुसलमानोंने उस समय जो कुछ किया वह बिलकुल अनुचित था। परन्तु १९४६ के वर्षका बदला १९४७ में लेनेसे क्या लाभ ? मैं तो नोआखाली जा रहा था, जहां तुम्हारे ही भाई मुझे बुला रहे थे। परन्तु अब मैं समझता हूं कि मुझे यहींसे नोआखालीकी सेवा करनी होगी। तुम्हें समझ लेना चाहिये कि मैं यहां मुसलमानोंकी ही नहीं, बल्कि हिन्दू, मुसलमान और दूसरे सभीकी सेवा करने आया हूं । जो पाशविकताका आचरण कर रहे हैं, वे अपने पर और अपने धर्म पर कलंक लगा रहे हैं । मैं तो अपनेको तुम्हारे संरक्षणमें रखनेवाला हूं। तुम चाहो तो मेरे विरुद्ध हो कर विपरीत काम कर सकते हो । मेरी जीवन-यात्रा तो अब लगभग पूरी हुई। मुझे अब बहुत आगे नहीं जाना है। परन्तु मैं तुम्हें बता दूं कि अब तुम फिरसे पागलपन करोगे, तो मुझे जिन्दा नहीं पाओगे। मैंने नोआखालीके मुसलमानोंको भी यही अंतिम चुनौती दे दी है; मैंने यह अधिकार कमाया है । नोआखालीमें अगर दुबारा मुस्लिम पागलपन भड़क उठा, तो मुझे वे मरा हुआ पायेंगे । तुम यह क्यों नहीं समझ सकते कि यह कदम उठाकर मैंने नोआखालीकी शान्तिका भार शहीद सुहरावर्दी और उनके मित्रोंके कंधों पर रख दिया है – जिनमें मियां गुलाम सरवर जैसे और दूसरे लोग भी शामिल हैं ? यह ऐसा वैसा फायदा नहीं है । ?"

"हमें आपके अहिंसाके उपदेश नहीं चाहिये । आप यहांसे चले जाइये । हम मुसलमानोंको यहां नहीं रहने देंगे।"

"इसका यह अर्थ है कि तुम्हें मेरी सेवाकी जरूरत नहीं है । अगर तुम मेरे साथ सहयोग करो और मुझे अपना काम करने दो, तो इससे हिन्दू जहां जहांसे धकेल दिये गये हैं वहां वहां वे वापस जाकर रह सकेंगे । इसके विपरीत, पुराने अन्यायोंको याद करने और पुरानी शत्रुताएं दिलमें रखनेसे तुम्हारा कोई लाभ नहीं होगा।"

एक अठारह वर्षका लड़का बीचमें ही बोला : "इतिहास बताता है कि हिन्दू और मुसलमान कभी दोस्त नहीं हो सकते । कमसे कम जबसे मैं पैदा हुआ हूं तबसे मैंने उन्हें आपसमें लड़ते ही देखा है ।"

गांधीजी : "अच्छा, मैंने तुम सबसे अधिक इतिहास देखा है । मैं कहता हूं कि मैं ऐसे हिन्दू लड़कोंको जानता हूं, जो मुसलमानोंको 'चाचा' कहते थे। हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरेके त्योहारों और उत्सवोंमें भाग लिया करते थे । तुम मुझे यहांसे चले जानेके लिए मजबूर करना चाहते हो । परन्तु तुम्हें मालूम होना चाहिये कि मैं ताकतके आगे कभी नहीं झुका हुं । यह मेरे स्वभावके विरुद्ध है । तुम मेरे काममें बाधा डाल सकते हो, मुझे जानसे मार भी सकते हो । मैं पुलिसकी मदद नहीं मांगूंगा । तुम मुझे यह घर छोड़नेसे रोक सकते हो, परन्तु मुझे हिन्दुओंका दुश्मन बतानेसे क्या फायदा ? मैं यह नाम स्वीकार नहीं करूंगा । मुझे यहांसे हटानेके लिए तुम्हें यह प्रतीति मुझे करानी होगी कि मैंने यहां आकर भूल की है ।"

इस प्रकार आठ बजे तक बातें चलती ही रहीं । अन्तमें गांधीजीने कहा : "नौजवानो, मैं तुमसे कहता हूं कि मैं हिन्दुओंका 'दुश्मन' कैसे हो सकता हूं, जब मैं जस्मसे हिन्दू, धर्मसे हिन्दू और कर्मसे भी हिन्दू हूं ? क्या इससे तुम्हारी संकीर्णता और असहिष्णुता प्रकट नहीं होती ?"

गांधीजीके इन शब्दोंका नौजवानों पर गहरा प्रभाव पड़ा। धीरे धीरे और अदृश्य रूपमें विरोध शान्त होने लगा । फिर भी नौजवानोंके विचार पूरी तरह नहीं बदले। उनमें से एक बोला: "तो अब हम जायं ?" गांधीजीने उत्तर दिया: "हां, तुम्हें जाना चाहिये। पहले ही देर हो गई है। मेरी बातों पर विचार करनेके बाद सुबह फिर मेरे पास आना।"

शामकी प्रार्थना घरके भीतर ही ९ बजे हुई। दोनों लड़कियोंको बड़ी भूख लग रही थी। लेकिन गांधीजीने उन्हें सलाह दी: "देरसे खानेके बनिस्बत उपवास रखना ज्यादा अच्छा है।" लेकिन दोनोंने पेट भर कर खाया । ११ बजे गांधीजी कुछ खाये बिना ही सो गये ।

दूसरे दिन १४ अगस्तको पिछले दिनकी तरह ही कामकाजकी धूम रही । नौजवान लोग फिर आये और सुहरावर्दीकी उपस्थितिमें गांधीजीके साथ देर तक बातचीत करते रहे। चर्चाके दौरान गांधीजीने उन्हें बताया कि बेलियाघाटमें मेरा और सुहरावर्दीका मिल कर काम करना इस दिशामें पहला ही कदम है। यदि और जब बेलियाघाटके हिन्दू अपने मुसलमान पड़ोसियोंको लौट आनेका निमंत्रण देंगे, तब हम मुस्लिम-प्रधान क्षेत्रमें चले जायंगे और तब तक वहां रहेंगे जब तक हिन्दुओंको लौट आनेका

निमंत्रण ना दिया जायगा । इस प्रकार कलकत्ते भरमें प्रत्येक कौम अपने पड़ोसियोंको पुराने घरोंमें लौट आनेका निमंत्रण देगी तब तक हम एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्रमें जाते रहेंगे ।

इस बार नौजवानोंका दिल पूरी तरह गांधीजीने जीत लिया। उन्होंने जिम्मेदारी ली कि हम अपने मित्रोंको समझा लेंगे कि वे शान्ति तथा सद्भावनाके लिए आपके साथ काम करें । बादमें उनमें से एकने दूसरेसे कहा: "यह बूढ़ा कैसा जादूगर है ! कितनी ही जबर्दस्त मुश्किलें क्यों न सामने हों, यह बूढ़ा हारना तो जानता ही नहीं !" १५ अगस्तके बाद जब गांधीजीके निवास-स्थानसे सशस्त्र पहरेदार हटा लिये गये, तो उन नौजवानोंमें से कुछने स्वयंसेवक बन कर वहां पहरा दिया।

शामकी प्रार्थना हैदरी मेंशनके अहातेमें की गई। उसमें दस हजारसे अधिक लोग आये । अपने प्रार्थना-प्रवचनमें गांधीजीने कहा: "कल (१५ अगस्त) से हम अंग्रेजी हुकूमतकी गुलामीसे मुक्त हो जायंगे। परन्तु आज आधी रातसे भारतके टुकड़े भी हो जायंगे। इसलिए कलका दिन आनंदका भी होगा और दुःखका भी होगा। इससे हम पर जिम्मेदारीका भारी बोझ आ जायगा। आइये, हम ईश्वरसे प्रार्थना करें कि वह हमें उस भारको अच्छी तरह उठानेकी शक्ति दे । जो मुसलमान मजबूरन् घर छोड़ कर भाग गये थे, वे सब अपने घरोंको लौट आयें । अगर कलकत्तेमें बीस लाख हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरेका गला काटनेको तैयार रहेंगे, तो मैं क्या मुंह लेकर नोआखाली जाऊंगा और वहांके मुसलमानोंसे हिन्दुओंके लिए क्या वकालत करूंगा ? और साम्प्रदायिक लड़ाई-झगड़ेकी आग यदि सारे देशमें फैल गई, तो हमारी नवजात स्वतन्त्रता कैसे जीवित रहेगी ?"

सभाने पुकारा : "सुहरावर्दी कहां हैं ?"

गांधीजीने उत्तर दिया: "घरके भीतर हैं । वे मेरी स्वीकृतिसे ही सभासे अलग रहे हैं, क्योंकि वे रोषका जरासा भी कारण देना नहीं चाहते । परन्तु आज आपने जो प्रशंसनीय सहिष्णुता दिखाई है, उसे देखते हुए मुझे कलसे उन्हें सभामें लानेका प्रोत्साहन मिलेगा ।"

यह समझ कर कि सुहरावर्दी प्रार्थना-सभामें नहीं हैं, कुछ नवयुवकोंने, जो प्रार्थना-सभाके सिरे पर बैठे थे, निश्चय किया कि उन पर हमला करनेका यही सौका है। वे उनके खूनके लिए नारे लगाते हुए घरकी तरफ गये और उस पर पत्थरबाजी फिर शुरू हो गई । हॉरेस एलेक्ज़ेंडर भी भीतर थे, क्योंकि ऐन वक्त पर उनके जूते न मिलनेके कारण वे पीछे रह गये थे। वे बाहरकी चिकनी मिट्टीमें होकर नंगे पैरों

नहीं जाना चाहते थे। घरमें इन दोनोंके अलावा तीसरा आदमी केवल एक नौजवान हिन्दू पुलिस अफसर था, जिसके पास पिस्तौल थी । "पुलिस अफसरने और मैंने दरवाजे बन्द कर लिये; सुहरावर्दी जमीन पर लेटे हुए थे। वे बिलकुल आवेगहीन थे और मन ही मन बाहरवाले नौजवानोंके बारेमें तिरस्कारपूर्ण बातें कह रहे थे। नौजवान पुलिस अफसर और मैं साथ साथ बैठे थे। मैने उसे वह पुस्तक दिखाई, जो मैं पढ़ रहा था। उसमें नाजी शासनमें नार्वेकी प्रजाने जो अहिंसा दिखाई उसका इतिहास था। और हम दोनों अहिंसा और उसकी शक्तिकी चर्चा करते रहे। मकानके आसपास घेरा लगा रहा। मैं सोच रहा था कि पता नहीं कब मकानके दरवाजे टूट जायें।" [वही]

प्रार्थना पूरी होनेके बाद गांधीजी अपने कमरेमें लौट आये और सीधे काम करने बैठ गये । परन्तु बाहर शोरगुल होता रहा। हां, जब वे प्रार्थना-भूमिसे लौटे तब पत्थरबाजी बंद हो गई थी । कुछ देर बाद उन्होंने मनुको इशारेसे बुलाया, खुद उठ कर खड़े हुए और उसके साथ खिड़की तक गये। खिड़कीका एक किवाड़ खोल कर बाहरकी भीड़को भाषण देने लगे। "तूफान जल्दी ही शांत हो गया। पूरी खामोशी छा गई । गांधीजीने लोगोंको सुहरावर्दी पर हमला करनेके लिए फटकारा । यदि आपने मेरे साथ काम करना स्वीकार किया है, तो उसका अर्थ यह हुआ कि सुहरावर्दीके साथ भी काम करना आपने स्वीकार किया है। हम दोनों एक ही हैं।" [वही]

लोगोंने पूछा : "सुहरावर्दी कहां हैं? जब तक वे स्वयं हमारे सामने नहीं आयेंगे तब तक हम नहीं बिखरेंगे ।"

गांधीजीने कहा : शहीद भीतर रमजान खोलनेमें लगे हैं। अभी आपके सामने आयेंगे ।

भीड़में किसीने सुहरावर्दीके अविश्वसनीय होनेके बारेमें व्यंग्य किया। गांधीजीने उत्तर दिया: "अगर वे सच्चे नहीं होंगे, तो मेरे पास टिक नहीं सकेंगे; थोड़े ही समयमें चले जायंगे ।"

थोड़ी देर बाद गांधीजीने लोगोंके मनको सुहरावर्दीकी बात सुननेके लिए तैयार कर लिया, तो उन्हें (सुहरावर्दीको) संकेत करके अपने पास बुला लिया और होशियारीसे एक हाथ शहीदके कंधे पर और दूसरा मनुके कंधे पर रख कर खड़े हो गये कि सबको पूरी तरह दिखाई दें ।

सुहरावर्दीने सभासे कहा: "यह बंगालका बड़ा सौभाग्य है कि महात्माजी इस समय हमारे बीच हैं । क्या बंगाल अपने इस सौभाग्यको समझ कर भाई-भाईका वध बन्द कर देगा ?"

भीड़में से एक बोला : "क्या आप कलकत्तेके भीषण हत्याकाण्डके लिए जिम्मेदार नहीं हैं ?"

सुहरावर्दी : "हां, हम सब हैं ।"

"क्या आप मेरे प्रश्नका उत्तर देंगे ?"

"हां, वह मेरी जिम्मेदारी थी ।"

सुहरावर्दी द्वारा, जो अहंकारकी मूर्ति थे और नम्रताको जानते ही नहीं थे, की गई अपने अपराधकी इस असंदिग्ध, सीधी और स्पृष्ट स्वीकृतिका लोगोंकी भीड़ पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा । बादमें गांधीजीने ये उद्गार प्रकट किये : "यहांसे घटनाओंकी दिशा बदली । इससे लोगोंके हृदय शुद्ध बने । मैंने इसे समझ लिया ।"

उसी समय समाचार आने लगे कि हिन्दुओं और मुसलमानोंका एक सम्मिलित जुलूस, जिसमें ५००० से कम आदमी न होंगे, सड़क पर निकल आया है। खबर मिली कि शहरके एक भागमें कुछ हिन्दू दूसरे दिन सुबहके लिए राष्ट्रीय झंडा लगानेका प्रयत्न कर रहे थे । गलीकी दूसरी ओरसे मुसलमानोंने आवाज लगाई : " क्यों भाइयो, हम आकर आपकी मदद करें ?" उनका प्रस्ताव तुरंत मान लिया गया । सुहरावर्दी बोले : "देखो, महात्माजीने एक ही दिनमें क्या चमत्कार कर दिया है ।"

रातको नौ बजे सुहरावर्दी गांधीजीको झील पर सैरके लिए ले गये । लौटे तब दस बज गये थे ।

गांधीजीने घड़ी देखकर शिकायत की : "हमें बड़ी देर हो गई है । मेरी शामकी सैर बहुत महंगी साबित हुई है ।"

सुहरावर्दी तो ठहरे अव्वल नम्बरके निशाचर । उन्होंने उत्तर दिया : "महोदय, अभी तो दस ही बजे हैं ।"

गांधीजी : "आपके लिए दिन अभी अभी शुरू हुआ है। परन्तु मेरी तो आधी रात बीत गई। मैं साढ़े तीन बजे उठता हूं ।"

जब वे सोये तो आज भी ११ बज गये ये । परन्तु जयध्वनि रात भर सुनाई देती रही । सारा नगर आनंद-विभोर था । झंडियां, पताकाएं और गानेवाले झुंड १५ अगस्तके महान दिवसकी उमंगमें सर्वत्र घूमते नजर आते थे । कई क्षेत्रोंमें जहां कल तक दिनमें भी हिन्दू मुसलमानोंके मुहल्लेमें और मुसलमान हिन्दू मुहल्लेमें जानेका साहस नहीं कर सकते थे, रातको देर तक एक-दूसरेसे मिलते-जुलूते रहे ।

गांधीजीके अनुरोध पर १५ अगस्तकी अर्धरात्रिसे उन्तके निवास-स्थानका सशस्त्र पहरा उठा लिया गया और उसका स्थान समान संख्यामें हिन्दू और मुसलमान स्वयंसेवकोंने ले लिया। सत्ता-हस्तांतरणके समय गांधीजीके मुस्लिम यजमानने घरको राष्ट्रीय झंडेसे सजाया ।

४

स्वाधीनता-दिवस पर गांधीजी रोजसे एक घंटे पहले अर्थात् २ बजे जाग गये । वह महादेव देसाईका पांचवां श्राद्धदिन भी था, इसलिए उन्होंने – ऐसे अवसर पर अपनी प्रथाके अनुसार – प्रातःकालीन प्रार्थनाके बाद उपवास रख कर और संपूर्ण गीताका पाठ करके यह दिन मनाया ।

प्रार्थना हो ही रही थी कि बीचमें गाने-बजानेके स्वर सुनाई देने लगे । बालाओंकी एक मंडली रवीन्द्रनाथके सुन्दर स्वातंत्र्य-गीत गाती हुई हैदरी मेंशनके निकट आ रही थी । वे आकर गांधीजीके कमरेकी खिड़कीके पास, जहां प्रार्थना हो रही थी, रुक गईं। पूज्य भावसे गाना बन्द करके वे प्रार्थनामें शरीक हो गईं; बादमें उन्होंने फिर गीत गाये और गांधीजीके दर्शन करके चली गईं। थोड़ी देर बाद बालिकाओंकी एक और मंडली आई और उसने भी इसी तरह गीत गाये । यह क्रम प्रभात-काल तक चलता रहा । पिछली शामके उपद्रवके बाद दिनका यह सुन्दर आरंभ था ।

जब गांधीजी सुबहकी सैरके लिए निकले तब हजारोंकी संख्यामें पुरुष, स्त्रियां और बच्चे उनके दर्शनोंके लिए प्रतीक्षा कर रहे थे। दिन भर उत्सुक भीड़ने मेंशनको घेरे रखा । हर आध घंटेके बाद गांधीजीको दर्शन देनेके लिए बाहर आना पड़ता था। पश्चिम बंगाल मंत्रि-मंडलके सदस्य भी उनके आशीर्वाद लेने आये। गांधीजीने उनसे कहा: “आजसे आपको कांटोंका ताज पहचना होगा। सत्य और अहिंसाकी आप सतत साधना कीजिये। नम्र बनिये । सहिष्णु बनिये । ब्रिटिश राज्यने आपके जीवटको बेशक परख लिया । परन्तु अब आपकी पूरी पूरी परीक्षा होगी । सत्तासे सावधान रहिये । सत्ता मनुष्यको

भ्रष्ट करती है । इसकी तड़क-भड़क और आडंबरमें मत फंसिये । याद रखिये कि आप भारतके गांवोंमें बसे गरीबोंकी सेवा करनेके लिए पदारूढ़ हैं । ईश्वर आपकी सहायता करे ।"

राष्ट्रीय उत्सवके स्फूर्तिदायक दृश्योंके साथ १५ अगस्तके दिन कलकत्तेमें हिन्दू-मुस्लिम एकताके अनोखे दर्शन हुए। सुबहसे ही हिन्दू-मुसलमानोंके मिलेजुले दल ट्रकोंमें सवार हो शहरके विभिन्न भागोंमें "हिन्दू-मुस्लिस एक हों" और "हिन्दू-मुस्लिम भाई भाई" के नारे लगाते हुए घूमने लगे। रातको देर तक विशाल जन-समूह, जिनमें हिन्दू-मुसलमान घुलेमिले थे, नगरके रास्तों पर जमे रहे और "हिन्दू-मुस्लिम एक हों" और "जय हिन्द" के बुलन्द नारे लगाते रहे । ऐसा मालूम होता था कि वर्ष भरके पागलपनके काले बादलोंके बाद सयानेपन और सद्भावनाका सूर्य अचानक चमक उठा है ।

भीड़ने अपने जोशमें राज-भवन पर धावा बोल दिया और राज्यपाल राजाजी अपने ही घरमें एक तरहसे कैदी बन गये ।

गांधीजीके निवास-स्थानके सामने भातृभावके उत्साहवर्धक दृश्य दिखाई देते थे, परन्तु गांधीजीके चेहरे पर उल्लासके चिह्न प्रकट नहीं होते थे । उनकी आंखें तो भीतरकी तरफ लगी हुई थीं और अपने प्रभुकी खोजमें थीं: कब उसके दर्शन हों और कब वह अपना प्रकाश फैला कर अगला कदम दिखाये।

उस दिन प्रार्थना-भूमि पर लगभग ३०००० मनुष्य इकट्ठे हुए। भीड़ घनी थी। जो रास्ता पांच मिनटका था, उसे पार करनेमें बीस मिनट लगे। गांधीजीने कलकत्तेके नागरिकोंको ऐसी एकता सिद्ध कर लेने पर बधाई दी : यदि शहरके इस उमड़ते भाईचारेमें सचाई है और वह क्षणिक नहीं है, तो वह खिलाफतके दिनोंसे कहीं अच्छा है । किन्तु मुझे यह सुनकर ज्यादा दुःख होता है कि लाहौरमें अभी तक पागलपनका ही बोलबाला है। मेरा विश्वास है कि कलकत्तेके इस उदाहरणमें यदि सचाई है, तो उसका प्रभाव पंजाब पर और भारतके दूसरे भागों पर भी पड़ेगा । मैं लोगोंको चेतावनी देता हूं कि अब जब हम स्वतंत्र हो गये हैं, तो हमें अपनी स्वतंत्रताका उपयोग बुद्धिमानी और संयमके साथ करना चाहिये । जो यूरोपियन भारतमें रह जायं उनके साथ हमें वैसा ही सम्मानपूर्ण व्यवहार करना चाहिये, जिसकी हम अपने लिए आशा रखते हैं । हमें समझ लेना चाहिये कि हम अपने सिवा और किसीके स्वामी नहीं हैं । हम किसीको उसकी इच्छाके विरुद्ध कुछ करनेके लिए विवश नहीं कर सकते ।

गांधीजीके बाद सुहरावर्दीने सभामें भाषण दिया । उन्होंने कहा : जब तक हिन्दू और मुसलमान अपने घरोंको नहीं लौट जाते तब तक हम यह नहीं सोचेंगे कि हमारा काम पूरा हो गया है। कुछ लोगोंका विचार है कि हिन्दू-मुस्लिम एकता कभी सिद्ध नहीं की जा सकती । "परन्तु जो चीज तीन चार दिन पहले तक असंभव समझी जाती थी, वह ईश्वरकी इच्छा और महात्माजीकी कृपासे चमत्कारिक रूपमें सत्य बन गई है ।" परन्तु मुझे इससे सन्तोष नहीं है । मैंने सुना है कि मुसलमानोंको "जय हिन्द" बोलनेके लिए मजबूर किया जा रहा है। "मुसलमान मजबूरीसे कुछ नहीं करेंगे, परन्तु अपनी खुशीसे जरूर 'जय हिन्द' बोलेंगे ।" यह कह कर सुहरावर्दीने मिश्र सभासे कहा कि आप सब मेरे साथ 'जय हिन्द' बोलिये । लोगोंने गगनभेदी स्वरमें 'जय हिन्द' का नारा लगाया । इस हृदय-स्पर्शी दृश्यको देख कर गांधीजीके होठों पर हल्कीसी अवर्णनीय मुसकान फैल गई ।

रातको गांधीजीने नगरका चक्कर लगाया और विभिन्न भागोंमें भातृप्रमके अनोखे दृश्य देखे । शहीद सुहरावर्दी मोटर चला रहे थे। एक गलीके मोड़ पर भीड़ने उन्हें पहचान लिया और सैकड़ों मुसलमानोंने फौरन गाड़ीको घेर लिया। उन्होंने "महात्मा गांधी जिन्दाबाद" के नारे लगाये और अपने साथ गांधीजी और सुहरावर्दीसे "जय हिन्द" के नारे लगवाये । कुछ लोगोंने उन पर गुलाबजल और इत्र छिड़का और "महात्मा गांधीकी जय" बोली । एक और सिरे पर मुसलमान छोकरोंने गाड़ीके चारों ओर इकट्ठे होकर अपने हाथ अन्दर डाल कर दोनोंसे हाथ मिलाये ।

गांधीजीने वह दिन उपवास और अतिरिक्त कताई करके मनाया । शहीद सुहरावर्दीने भी उनके साथ उपवास किया ।

गांधीजीका पत्र अगाथा हैरिसनको

१५ अगस्त, १९४७

तुम जानती हो कि मैं आजके जैसी महान घटनाओंका उत्सव कैसे मनाता हूं । मैं ईश्वरका आभार मानता हूं और इसलिए उसकी प्रार्थना करता हूं । मेरी इस प्रार्थनाके साथ उपवास तो होता ही है। . . . और गरीबोंके साथ तादात्म्य साधने और समर्पणके प्रतीक स्वरूप कताई तो होनी ही चाहिये । इसलिए मैं रोज जितनी कताई करता हूं उससे मुझे सन्तोष नहीं होता; दूसरे कामोंका ध्यान रखते हुए मैं अधिकसे अधिक कताई करता हूं । . . .

तुमने . . . विण्टर्टनके भाषणका [लॉर्डसभामें भारतीय स्वाधीनता बिल पर हुई बहसके दौरान अनुदार-दलीय सामन्त अर्ल विन्टरटनने असामान्य दुष्टतासे भरा भाषण दिया, जिसमें गांधीजी पर आक्रमण किया गया था] उल्लेख किया है। तुम्हें आश्चर्य होगा कि मैंने उसे पढ़ा नहीं है। . . . मुझे अखबार पढ़नेके लिए कभी कभी कुछ क्षण मिल जाते हैं । कुछ अंश या तो मुझे पढ़ कर सुना दिये जाते हैं या मैं उन पर किसी समय नजर डाल लेता हूं । यदि मैं मूलतः सही हूं, तो कोई मेरे पक्षमें बोलता है या विरोधमें, इसकी क्या परवाह ? आखिर तो तुम्हें और मुझे अपना अपना कर्तव्य उत्तम ढंगसे पूरा करना है और सदा मुस्कराते रहना है ।

काश, मैं तुम्हें यहां हो रही सब बातें बता सकता ! शायद हॉरेस (एलेक्ज़ेंडर) कहेंगे। ...

राजकुमारी अमृतकौरको एक पत्रमें लिखा : “मैं एक मुसलमानके घरमें हूं । घरके सब लोग बहुत भले हैं । मैं सोदपुर (आश्रम) से किसीको साथ नहीं लाया हूं । इसलिए मुझे जिस सहायताकी आवश्यकता होती है, वह मुसलमान भाइयोंसे ही मिलती है । यह मेरे लिए कोई नया अनुभव नहीं है । इससे मुझे दक्षिण अफ्रीकके और भारतके खिलाफतके दिन याद आते हैं । इस समय तो मैं शत्रु नहीं हूं। कौन जानता है, यह स्थिति कब तक रहती है ! हिन्दू और मुसलमान लगभग एक दिनमें मित्र बन गये हैं । ऐसा दिखता है कि सुहरावर्दी बिलकुल बदल गये हैं ।” [गांधीजीका पत्र राजकुमारी अमृतकौरको, १६ अगस्त, १९४७]

दिनमें राजाजी गांधीजीसे मिलने आये । आदरके चिह्न-स्वरूप वे अपने चप्पल द्वार पर छोड़ कर आये और पूरे हॉलमें नंगे पैरों ही चले, हालांकि मिलनेवाले लोग जूते पहने हुए ही गांधीजीके कमरे तक आते थे । दो बूढ़ोंको मिलते देखकर आसपासके लोगोंकी आत्मा आनंदसे भर गई । राजाजीकी कमर बुढ़ापेसे झुक गई थी और गांधीजी चिन्तासे क्षीण हो गये थे; परन्तु दोनोंके मुख-मण्डल पर हर्ष और आनंद छाया हुआ था । घंटे भरसे अधिक दोनों आपसमें कटाक्ष, विनोद और ज्ञानसे भरी बातें करते रहे ।

५

स्वाधीनता अब चौबीस घंटेकी हो गई थी । जब गांधीजी दूसरे दिन प्रातःकाल अपनी मामूली सैरको निकले, तो उनके मार्ग पर विशाक भीड़ कतार बांधे खड़ी थी । उन्होंने लोगोंकी उपस्थितिका

लाभ उठाकर उन्हें बताया कि वे उत्सवके अवसर पर स्वेच्छापूर्वक संयम और अनुशासन रखें और उन्हें (गांधीजीको) शोरगुलसे बचायें। शोरगुल तुरंत बन्द हो गया।

भीड़ने गांधीजीके निवास-स्थानके अहातेको थूक-थूक कर गंदा कर दिया था। उन्हें स्वच्छताका पाठ पढ़ानेके लिए गांधीजी नंगे पैर सैरको निकलने लगे। स्थितिमें तुरंत सुधार हो गया। अपने साथियोंसे उन्होंने कहा : "देखा, मेरे खुले पैरों निकलनेका कैसा असर होता है ?

१६ अगस्तकी प्रार्थना-सभामें करीब पचास हजारकी उपस्थिति थी। पहले दिन उन्हें समाचार मिले थे कि एक भीड़ने राज-भवन पर जबरदस्ती अधिकार जमा लिया था। इसका उल्लेख करते हुए गांधीजीने सभामें कहा : "इतिहासकारोंने इस बातका प्रमाण दिया है कि प्राचीन भारतमें लोगोंको अपने दरवाजों पर ताले लगानेकी आवश्यकता नहीं होती थी। रामराज्यमों चोरी अनजानी चीज थी। प्रामाणिकता और सत्यकी हमारी ऐसी परम्परा है। और आज हमसे कहा जाता है कि एक उद्दण्ड भीड़ने स्वाधीनता-दिवस पर राज-भवतके फरनीचरको तोड़ दिया और वहांकी एक तश्तरी चुरा ली।" यह भी शर्मकी बात है कि सेनाको राज-भवन खाली करानेके लिए बल-प्रदर्शन करना पड़ा। अगर यह सब सही है तो लज्जाकी बात है। मुझे यह कहा जायगा तो खुशी होगी कि जिन लोगोंने राज-भवनसे कोई सामान उठा लिया था, उन्होंनें स्वेच्छासे उसे लौटा दिया है।

दूसरे दिनकी प्रार्थना-सभामें एक लाखसे अधिक लोग आये। जब गांधीजीने जन-समूहको उत्साहके मदमें लहराते देखा, तो उन्हें भीतर ही भीतर फिर आश्चर्य हुआ कि लोगोंका यह उत्साह कहां तक सच्चा है और उनकी भावना वास्तवमें कितनी गहरी है। मनमें एकाएक पैदा हुई शंकाको प्रकट करते हुए उन्होंने कहा : "कलकत्तेमें जो चमत्कार दिखाई दे रहा है, उसके लिए सभी मुझ पर बधाइयोंकी वर्षा कर रहे हैं। हम सबको ईश्वरकी असीम दयाके लिए उसीका आभारी होना चाहिये। परन्तु इस क्षम्य अति-उत्साहमें हम यह न भूल जायं कि कलकत्तेमें ऐसे छुटपुट स्थान अब भी हैं जहां पूरी शांति नहीं है। मैंने सुना है कि एक जगहके हिन्दू उन मुसलमानोंका, जिन्हें मजबूरीसे घर छोड़ कर जाना पड़ा था, वापस आना पसन्द नहीं करते।" उन्होंने अपने निवास-स्थान पर आनेवाली भीड़की अनुशासनहीनताका भी जिक्र किया, क्योंकि उस भीड़ने अपनी हुल्लड़बाजीसे पुलिसकी स्थिति विषम बना दी थी। यह एक और अशान्ति पैदा करनेवाला लक्षण था। "में आपके अपार स्नेहकी कदर करता हूं, परन्तु मुझे आशा है कि यह एक क्षणिक उबाल सिद्ध नहीं होगा।"

सुहरावर्दीने घोषणा की कि मुसलमानोंने १८ अगस्तको या उसके अगले दिन होनेवाले ईदके पुनर्मिलनमें भाग लेनेके लिए अपने हिन्दू भाइयोंको आमंत्रित किया है। गांधीजीको यह भी सूचना मिली कि अनेक हिन्दुओंने अपने मुस्लिम बन्धुओंको रोजा खोलनेके लिए मस्जिदोंमें खाना भेजनेकी इच्छा प्रकट की है। सभामें हिन्दू-मुसलमानोंकी इतनी बड़ी उपस्थितिके सम्बंधमें सुहरावर्दीने कहा कि कुछ दिन पहले तक कोई स्वप्नमें भी यह नहीं सोच सकता था कि कलकत्तेमें दोनों कौमोंकी इतनी बड़ी सभा हो सकती है या हिन्दू मुसलमानोंके मुहल्लेमें और मुसलमान हिन्दुओंके मुहल्लेमें सलामतीसे आ-जा सकते हैं। अब तो कलकत्तेमें ऐसा एक भी स्थान नहीं है जहां हिन्दू और मुसलमानोंमें भाईचारा नहीं बढ़ रहा हो और वे उन कारणोंको दूर न कर रहे हों जिनकी वजहसे वे अलग अलग रहे। सुहरावर्दीने अपना कथन जारी रखते हुए आगे कहा : जब मैं पार्क सर्कसमें इस उद्देश्यसे गया कि वहां हिन्दुओंका फूलमालाओंसे स्वागत करके उन्हें अपने छोड़े हुए घरोंमें वापस लानेके लिए स्वागत-समितियां बनाई जायं, तो मैंने देखा कि वे समितियोंकी रचनाकी प्रतीक्षा न करके स्वयं ही अपने घरोंको लौट रहे हैं और मुसलमानोंसे भाईचारा बढ़ा रहे हैं। यह वह इलाका है जहां कुछ ही दिन पहले तक सिक्ख ड्राइवर भी अपनी टैक्सियां चलानेका साहस नहीं कर पाते थे। मैं फिर दोहराता हूं कि "यह चमत्कार ईश्वरकी दया और महात्माजीकी कृपासे हुआ है।" उन्होंने हंसीके बीच यह भी कहा : आप सब जानते हैं कि मैं ये सब बातें पहले नहीं कहता था। अब हालात ऐसे हो गये हैं कि मुझे आशा है कि भारतके मुसलमान "जय हिन्द" पुकारेंगे और पाकिस्तानके हिन्दू "पाकिस्तान जिन्दाबाद" के नारे लगायेंगे। हमने जो भूल की थी वह अब भूतकालकी चीज हो गई। "हम दुनियाको दिखा देंगे कि हमारे बीच अब कोई मतभेद नहीं हैं।"

सुहरावर्दीने आगे कहा: "मैं महात्माजीके पास क्यों दौड़ आया ? क्योंकि मुझे ऐसा लगा कि अगर यहां उपद्रव शुरू हो गया तो वह भारतके दूसरे भागोंमें भी फैल जायगा और अगर यहां उसे रोक दिया गया तो सब जगह शान्ति रहेगी। इस उद्देश्यको मद्देनजर रखकर मैं महात्माजीके पास आया और ईश्वरकी कृपासे ऐसा लगता है कि लड़ाईको सदाके लिए दफना दिया गया है।" उन्होंने अपना भाषण "जय हिन्द" के साथ समाप्त किया।

लोगोंको आश्चर्य हुआ : "क्या यह वही सुहरावर्दी है, जो कलकत्तेके भीषण हत्याकाण्डके लिए जिम्मेदार था ?"

परन्तु गांधीजीकी "छठी इन्द्रिय" ने इसके भीतर कुछ और ही देखा, जो बाह्य दृष्टिको दिखाई नहीं देता था । तीन मास पहले मईमें जब कलकत्ता कौमी आगमें जल रहा था, उस समय भ्रातृवधके बीच भी लोगोंके मनमें यह उत्कट लालसा काम कर रही थी कि साम्प्रदायिक एकता सिद्ध करें (देखिये पृष्ठ ३१६) । अब भाईचारेके इस उन्मादमें गांधीजीको खतरेके बीज नजर आये ।

गांधीजीका पत्र मीराबहनको

१८ अगस्त, १९४७

> भीड़का आनंद तो है, परन्तु मेरे हृदयमें कोई सन्तोष नहीं है । क्या मुझमें कोई अभाव है? . . . हिन्दू-मुस्लिम एकता इतनी एकाएक पैदा हुई है कि वह सच्ची नहीं हो सकती । लोग इस कायापलटका कारण मुझे मानते हैं । मुझे आश्चर्य होता है । शायद मैं यहां न होता तो भी यही बात होती । समय ही बतायेगा ।

इसका पहला संकेत उसी दिन मिल गया । उस दिन मुसलमानोंका ईदका त्यौहार था । सुबहसे ही गांधीजीके निवास-स्थान पर मलाकाती मुसलमानोंका अटूट तांता बंध गया । कलकत्तेके मुसलमान भाइयोंने बड़ी संख्यामें मिठाइयों और फलोंके उपहार भेजे । ज्यों ज्यों दिन चढ़ता गया, आनेवालोंकी संख्या बढ़ती गई । उस दिन गांधीजीका साप्ताहिक मौन था, इसलिए उन्होंने ईदकी बधाई और अभिवादनके रूपमें एक छोटासा सन्देश लिख दिया और आये हुए लोगोंको फल बांटे ।

पहले दिन एक जुलूस निकालनेके मामलेमें कलकत्तेसे १४ मील पर – बारकपुरमें थोड़ा उपद्रव हुआ । तीसरे पहर गांधीजी बारकपुर गये। परन्तु उनके वहां पहुंचनेसे पहले ही झगड़ा निबट चुका था और सारी बातका परिणाम यह हुआ कि भाईचारेके दृश्य चजर आये । गांधीजीके पहुंचने पर उनका गगनभेदी नारों और जय-जयकारके साथ स्वागत किया गया ।

एक मुसलमानने कहा: "हमारी तमाम गलतियां माफ कर दीजिये । हम जानते हैं कि हमने पहले गंभीर भूलें की हैं । परन्तु अब हम हिन्दुओंके साथ भाइयोंकी तरह रहेंगे ।" इसके बाद भीड़के हिन्दू और मुसलमान आपसमें गले मिले ।

एक हिन्दू प्रतिनिधिने कहा: "हम अपने मुसलमान भाइयोंका जी नहीं दुखाना चाहते। हम मस्जिदके सामने बाजा बजाना बन्द कर देंगे ।"

एक कागजके परचे पर गांधीजीने लिखा: "मुझे आशा है कि नमाजके समय मस्जिदोंके पास बाजा न बजानेका यह निर्णय सबको स्वीकार है और जो हिन्दू यहां मौजूद हैं उन पर ही नहीं, बल्कि सभी हिन्दुओं पर यह बात बन्धनकारक होगी । लीग और कांग्रेसने सारे मतभेद शान्तिपूर्ण उपायोंसे और बल-प्रयोगके बिना दूर करनेकी बात स्वीकार की है ।"

मुसलमान भाइयोंने गांधीजीसे कहा : हमारी स्त्रियां आपसे मिलनेके लिए बड़ी उत्सुक हैं । हमारा विश्वास है कि आप उन्हें निराश नहीं करेंगे । गांधीजीने उनका अनुरोध स्वीकार कर लिया । जब उनकी मोटर बाजारमें से गुजरी तब दोनों ओर मुसलमान स्त्रियोंकी घरोंकी छतों और झरोखों पर भीड़ लगी थी।

शामकी प्रार्थना-सभा मोहेमेडन स्पोर्टिंग क्लबके मैदानमें हुई। उसमें कमसे कम पांच लाखकी हाजिरी थी । मुसलमान असाधारण बड़ी संख्यामें आये थे । देशके दूसरे भागोंमें चल रहे साम्प्रदायिक भ्रातृवधको देखते हुए यह एक प्रेरणादायी दृश्य था कि कलकत्तेके हिन्दू और मुसलमान कंधेसे कंधा मिला कर खड़े थे । जब गांधीजी उनका अभिवादन स्वीकार करने और ईदकी बधाई देनेके लिए हाथ जोड़ कर खड़े हुए, तो उन्होंने तालियां बजाईं ।

गांधीजीके बोल चुकनेके बाद शहीद सुहरावर्दी बोले और फिर मुहम्मद उस्मानने सभामें भाषण दिया। उन्होंने कहा : स्वाधीनता-दिवसके पहले दिन मेरे मनमें घबराहट और चिन्ता थी । परन्तु अल्लाहकी मेहरबानी और गांधीजीकी जीतोड़ मेहनतसे आधी रातसे पहले ही हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा भूतकालकी वस्तु बन गया । "जैसे हमने अपनी आजादी लेनेके लिए कुरबानियां दी थीं वैसे ही उसकी रक्षाके लिए भी कुरबानियां देनेको हमें अब तैयार रहना चाहिये ।"

जब गांधीजीने जन-साधारणके प्रसन्न मुख अपने सामने देखे, हिन्दु-मुसलमानोंको आपसमें भाई-भाईकी तरह गले मिलते देखा और मुस्लिम लीग तथा कांग्रेसके स्वयंसेवकोंको एकसाथ एकत्र हुए देखा, तो उनका दिल खुशीसे नाच उठा । सन् १९२० और उसके बादका खिलाफत-युग जैसे लौटा हुआ दिखाई दिया !

एक घटनाके समाचार मिले थे, जो मस्जिदोंके सामने बाजा बजानेके पूराने पेचीदा सवाल पर कलकत्तेसे २६ मील उत्तरमें कांचरापाड़ाके उद्योग-क्षेत्रसें हुई थी । वहां पुलिसने गोली चला दी थी और

कई आदमी मारे गये थे । १९ अगस्तको गांधीजी वह स्थान देखने गये । उस दुर्भाग्यपूर्ण घटनाके बारेमें गांधीजीने सुझाया कि जब तक कांग्रेस और लीग अथवा पाकिस्तान और भारतीय संघ कोई दूसरा समझौता न कर लें तब तक ब्रिटिश राज्यमें, मजबूरन् ही सही, मस्जिदोंके सामने बाजा बजानेके बारेमें जो रिवाज चालू था उसका दोनों राज्योंमें मुक्त रूपसे और स्वेच्छापूर्वक पालन किया जाय ।

अपने शामके प्रार्थना-प्रवचनमें गांधीजीने कहा : आप लोग भाईचारेके जो दृश्य देख रहे हैं उनके पीछे बारकपुर, कांचरापाड़ा और अन्य स्थानोंके संकेत भी हैं । मैं इनके लिए किसीको बहानेबाजी नहीं करने दूंगा । आपको अल्पसंख्यकोंकी पिछली भूलों या मर्यादाओंको नजर-अंदाज करना चाहिये, क्योंकि अब वे न्यायके लिए बहुसंख्यकोंके सिवा और किसीकी ओर नहीं देख सकते। एक मुसलमान मित्रने आज आह भर कर मुझे कहा है : अब हमारे लिए हिन्दू बहुमतकी एक प्रकारकी गुलामी सहनेके सिवा कोई चारा नहीं रहा है। नमाज पढ़ते समय हमें चुपचाप मस्जिदोंके सामने बजनेवाले बाजेको बरदास्त करना पड़ेगा । गांधीजी बोले : यह बात सुन कर मुझे लज्जा और दुःखका अनुभव हुआ । बहुमतका कर्तव्य है कि अपनी विशाल उदारतासे उन्हें पुनः आश्वासन दे ।

कांचरापाड़ासे लौट कर गांधीजी आराम किये बिना सीधे ही शामको प्रार्थना-सभामें आ गये थे ।गांधीजी पर जो जोर पड़ रहा था उसका उल्लेख करते हुए सुहरावर्दीने प्रार्थनाके बादके अपने भाषणमें कहा : "ऐसी बूढ़ी उमरमें इतना तनाव बरदाश्त करना सिर्फ 'महात्मा' के लिए ही संभव है । मुझे अब महात्माजीकी महानताका अनुभव हुआ है ।"

श्रोताओंमें से कोई चिल्ला उठा : "आपको यह अनुभव बहुत पहले हो जाना चाहिये था ।"

सुहरावर्दीने उत्तर दिया : "आजादी मिलनेके बाद मुझे यह समझ आई है । महात्मा गांधीजी सचमुच महात्मा हैं ।"

२० अगस्तको शामकी प्रार्थनामें चार लाखसे अधिककी उपस्थिति थी । जो लोग घनी भीड़के करण सभाभूमि तक नहीं पहुंच सके, वे आसपासकी इमारतोंकी छतों पर इकट्ठे हो गये। सैकड़ों लोग उस इलाकेके एक एक पेड़की डालियों पर जा बैठे ।

बंगालके काल्पनिक विभाजनमें खुलना और चटगांवके पहाड़ी प्रदेशके हिन्दू बहुमतवाले जिले पश्चिम बंगालमें और मुर्शिदाबादका मुस्लिम बहुमतवाला जिला पूर्व बंगालमें शामिल किया गया था। सीमा-आयोगके निर्णयसे यह क्रम उलट दिया गया। इन इलाकोमें स्वाधीनता-दिवस काल्पनिक विभाजनके अनुसार मनाया गया था। दो दिन बाद काल्पनिक विभाजनके उलट जानेसे स्वाधीनता-दिवससे जो झंडे इन इलाकोंमें लहराये जा रहे थे वे गलत झंडे हो गये। इससे वहांके लोगोंमें कुछ तनाव खड़ा हो गया। इस मामलेमें गांधीजीसे पूछने पर उन्होंने कहा : गलत झंडोंको हटाकर सही झंडे लगानेमें जरा भी हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिये। मेरी खुदकी राय तो यह है कि दोनों उपनिवेशोंके सम्बन्ध आपसमें मित्रतापूर्ण है, इसलिए कोई कारण नहीं कि इंग्लैंड और अमेरिकाकी तरह दोनों उपनिवेशोंमें एक-दूसरेके झंडे क्यों नहीं लहराये जायं। "अगर पाकिस्तानसें लोग ऐसा न भी करें, तो भी भारतीय संघमें तो हमें ऐसा करना ही चाहिये। दूसरा पक्ष कुछ भी करे, हमें तो सही बात ही करनी चाहिये।" [प्रार्थना-प्रवचन, २० अगस्त, १९४७]

गांधीजीको बिहारसे यह टेलीफोन-सन्देश पाकर हर्ष हुआ कि कलकत्तेके चमत्कारका बिहार पर भी गहरा प्रभाव पड़ रहा है।

२१ अगस्तको स्त्रियोंकी एक सभामें गांधीजीने कहा : तमाम हिन्दू स्त्रियोंको अपनी मुसलमान बहनोंमें जाकर उनसे मित्रता करनी चाहिये और हर प्रकारसे उनकी भरसक सेवा करनी चाहिये। आत्मशुद्धिकी दृष्टिसे उन्हें अपने हृदयोंमें छुआछूत लेशमात्र भी नहीं रहने देनी चाहिये। मेरी सदासे यह राय रही है कि हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न अस्पृश्यताके कलंकका ही एक रूप है, जिसे हिन्दू धर्मने अपनी आत्मा पर लगा रखा है।

पार्क सर्कसमें २१ अगस्तको हुई प्रार्थना-सभामें लगभग सात लाख आदमी आये थे। कांग्रेस और लीगके स्वयंसेवकोंने पाकिस्तान और भारतीय संघके झंडे साथ साथ फहराये थे। इसकी ओर संकेत करके गांधीजी बोले : मुझे लगता है कि अब मैं नोआखाली जा सकता हूं। जो एकता यहां सिद्ध हो चुकी है उस पर मैं आपको बधाई देता हूं। मगर साथ ही आपको यह चेतावनी भी देता हूं कि आप इस खयालमें न रहें कि अब और कुछ करनेको बाकी नहीं है। शान्ति-समितियोंको नगरमें साम्प्रदायिक

सम्बंधोंको स्थिर करनेका काम तुरंत अपने हाथमें लेना चाहिये और जहां लोगोंको राहत पहुंचानेकी जरूरत हो वहां एक मजबूत पुनर्वास-समितिको धन-संग्रहका काम आरंभ कर देना चाहिये ।

इस प्रकार प्रतिदिन प्रार्थना-सभा कलकत्ताके भिन्न भिन्न भागोंमें रखी जाती थी और उसमें हिन्दुओं और मुसलमानोंकी अधिकाधिक बड़ी भीड़ इकट्ठी होती थी। हर जगह गांधीजीके सन्देशका विषय प्रतिदिन यही होता था : हमें स्वतंत्र भारतके योग्य नागरिक बनना चाहिये ।

यह देखा गया था कि गांधीजीके साथ हुए करारके अनुसार शहीद सुहरावर्दी उसी मकानमें नहीं सो रहे थे, जिसमें गांधीजी सोते थे । कुछ लोगोंने गांधीजीको सचेत किया कि सुहरावर्दी वचनका पालन नहीं कर रहे हैं; उन पर विश्वास नहीं किया जा सकता । गांधीजीने स्वीकार किया कि उनके बारेमें मेरा अविश्वास पूरी तरह मिटा नहीं है। "जब वह मिट जायगा तब इस शुभ समाचारकी घोषणा मैं कर दूंगा।" [प्रार्थनाःप्रवचन, २२ अगस्त, १९४७] परन्तु मैं इस सिद्धान्तसे हटनेको तैयार नहीं हूं कि हमेशा धोखा देनेवाला आदमी ही घाटेमें रहता है, स्वेच्छासे उसका शिकार बननेवाला हरगिज नहीं । अगर सुहरावर्दी मुझे धोखा देंगे, तो हानि उन्हींकी होगी, मेरी नहीं । मैं यह भी बता दूं कि सच तो यह है कि शहीद हैदरी मेंशनमें सोने लग गये हैं ।

२६ अगस्तकी रातको गांधीजी अर्धरात्रिमें उठ गये और दिया जलाकर अकेले ही बाकीका काम निबटाने बैठ गये, जो सप्ताह भर चली मुलाकातोंकी अधिकताके कारण इकट्ठा हो गया था। उन्होंने डेढ़ बजे रात तक काम किया और फिर आराम करनेके लिए लेट गये । दो बजे वे फिर काम करने लगे और प्रातःकालीन प्रार्थनाके समय तक करते रहे । अपने एक साथीसे उन्होंने कहा : "मुझे बड़ी बेचैनी और चिन्ता हो रही है । जिसने ईश्वरको सर्वार्पण कर दिया है, उसे चिन्ता होनी ही क्यों चाहिये ? क्या इससे यह प्रकट नहीं होता कि मुझमें श्रद्धाका अभाव है ? परन्तु धीरज रखो, मेरी साधना निरन्तर गतिसे चल रही है ।"

कलकत्तेके खिदरपुर गोदी क्षेत्रमें घनी मजदूर आबादीके होनेसे वह एक और खतरनाक स्थान बन गया था। २७ अगस्तको गांधीजीने अपनी प्रार्थना-सभा वहीं की । अपने प्रार्थना-प्रवचनमें खास तौर पर मजदूरोंको ध्यानमें रख कर उन्होंने कहा : मजदूरोंका भविष्य साम्प्रदायिक एकताके साथ गहराईसे गुंथा हुआ है। मजदूर उस समय अजेय बन जायंगे जब वे अपनी शक्तिको पहचान लेंगे और मिलकर

काम करनेकी कला सीख लेंगे। यह तब तक नहीं होगा जब तक मजदूर हिन्दू उद्योगपति और मुस्लिम उद्योगपतिसें भेद करते रहेंगे। अथवा मजदूरोंका हिन्दु-वर्ग अपनेको मुस्लिम-वर्गसे अलग या उसका विरोधी मानता रहेगा और दोनों वर्ग हरिजन-वर्गको अपनेसे भिन्न या अपना विरोधी समझते रहेंगे ।

दूसरे दिन जब गांधीजी युनिवर्सिटी साइंस कॉलेजमें अपनी प्रार्थना-सभा करने गये तो कुछ विद्यार्थियोंने काले तखते पर सुहरावर्दीके विषयमें अपमानजनक बातें लिख दीं । इस पर गांधीजीने उन्हें बहुत डांटा । उन्होंने कहा : यह भारतकी आतिथ्य-परम्पराके विरुद्ध है कि हमारे यहां आये हुए अतिथिका अपमान किया जाय । इसलिए सुहरावर्दीका अपमान मेरा अपमान है । विद्याथियोंके बारेमें यह आम शिकायत है कि उनमें अनुशासनका अभाव है और शिक्षकोंके प्रति आदरका भाव नहीं है । ये ही दो गुण तो विद्यार्थीकी तालीमकी बुनियाद हैं । विद्यार्थी-जीवनके भारतीय आदर्शमें संन्यासीके त्यागको विद्यार्थीके जीवनका विशिष्ट लक्षण बताया गया है और आत्म- संयम और यम-नियमोंके विकासको उसकी साधनाका लक्ष्य कहा गया है । आपकी इस उत्तेजित मनस्थितिको देखते हुए मैंने सुहरावर्दीसे कह दिया है कि वे आज मेरे बाद सभामें भाषण न दें । यह उनके लिए तो अपमानकी बात है ही, परन्तु आपके लिए भी होनी चाहिये ।

बादमें छात्रसंघके मंत्रीने विद्यार्थियोंकी तरफसे गांधीजीसे क्षमा-याचना की ।

दूसरे दिन गांधीजीसे ईसाइयोंके एक दलने पूछा : "हिन्दू भारतीय संघमें जा सकते हैं, मुसलमान पाकिस्तान जा सकते हैं । बेचारे भारतीय ईसाई कहां जायं ?" गांधीजीने उनसे कहा : यदि आप अपनेको अपने देश-बान्धवोंके साथ एक समझते हैं, तब तो सारा भारत आपका देश है । यह प्रश्न तभी उठ सकता है जब आप धर्मका या अपने दर्जेका संकीर्ण विचार रखें । आपको समयकी भावनाके साथ चलना चाहिये ।

७

लोगोंको अक्सर आश्चर्य होता था कि गांधीजीके भीतर ऐसी कौनसी शक्ति है जिसकी वजहसे वे इतने विभिन्न तत्त्वोंकी निष्ठा, भक्ति और त्याग प्राप्त कर सकते हैं और उन्हें टिकाये रख सकते हैं और वे सब तत्त्व उनके प्रेमके इतने दास हो जाते हैं कि स्वयं मानव-प्रकृतिकी सीमाओंके बारेमें हमारी प्रचलित धारणाएं बेकार हो जाती हैं ? अहिंसा-शक्तिके निर्माणके लिए गांधीजी इतने विविध विरोधी

स्वभावों और हितोंको एक साथ रख कर उनके बीच सुमेल कैसे साध लेते हैं ? २८ से ३१ अगस्त तककी उनकी लिखी डाकमें नीचेकी चुनी हुई बानगीसे बापुके कामकाजकी एक झलक हमें मिलेगी। इन दिलोंमें एक क्षण भी ऐसा नहीं मिला, जिसे वे अपना कह सकते थे। जिन्हें उनके पथ-प्रदर्शनकी जरूरत थी उनका मार्ग प्रकाशमय बनानेके लिए कैसे वे जरा भी परवाह किये बिना स्वयंको खपाते रहते थे; जो लोग देशके कामके लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर चुके थे, उनके लिए कितनी चिन्ता और उनके साथ वे कितना तादात्म्य रखते थे; उनकी बुद्धि कितनी परिपक्व थी; वे किस प्रकार रचनात्मक कार्यकी हरएक छोटी बात पर ध्यान देते थे – क्योंकि इसी कार्यसे गांधीजीके अहिंसात्मक जन-आन्दोलनोंके लिए संगठन-बल और प्राणशक्ति प्राप्त होती थी – और जिस समस्याको भी वे अपने हाथमें लेते थे उसमें कितनी मौलिकता ला देते थे ? इन सब गुणोंकी एक झांकी इन पत्रोंमें हमें मिलती है।

एक प्रान्तके भारतीय राज्यपालकी पुत्रीको उन्होंने लिखा: "तुम्हारा पत्र मिला। मैं ईश्वरके हाथोंमें हूं। एक प्रकारसे हम सभी उसके हाथोंमें हैं। मुझे पता नहीं कल मैं कहां हूंगा। यहांका काम सबसे कठिन है। कोई नहीं कह सकता कि परिणाम क्या होगा। पिताजीसे कहना कि उनके तारका जवाब मैंने दे दिया है। तुम उनकी सहायता कर रही हो ?"

मीराबहनको : "मुझे खुशी है कि तुम्हारी तबीयत पहलेसे ज्यादा अच्छी है। संयमपूर्ण जीवनके लिए तुम्हारे ५५ वर्ष कुछ भी नहीं। . . . लेकिन तुम किसी भी बातकी सावधानी नहीं रखती। मेरी गतिविधि अनिश्चित हो गई है। . . . 'चिड़ियोंको देखो।' उन्हें पता नहीं कि दूसरे क्षण वे क्या करेंगी। हमें अक्षरश: प्रतिक्षण जीना चाहिये।"

एक साथीको, जिसे गांधीजी बिहारमें अपने पीछे काम करनेके लिए छोड़ आये थे : " 'मेरे पड़ोसी' शीर्षक मेरे लेखके बारेमें तुम्हारी कठिनाई क्या है, यह मेरी समझमें नहीं आता। . . . अब मैंने वह पुस्तक खोज निकाली है। जहां तक मेरे अंग्रेजी ज्ञानका सम्बन्ध है, तुम्हारे सुझाये हुए परिवर्तनके लिए कोई गुंजाइश नहीं। . . . तुम्हारे दूसरे प्रश्नोंके उत्तर मैं भेज चुका हूं। . . . तुम्हें जब भी जरूरत पड़े मुझे अवश्य लिख सकते हो। मैं तुरंत जवाब न दे सकूं तो कोई बात नहीं। उत्तर देनेका प्रयत्न तो मैं करूंगा ही।"

सेवाग्रामके एक आश्रमवासीको : "तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारे लड़केको (जो एक असाध्य रोगसे पीड़ित था) आराम हो जाय, तो मुझे बड़ी खुशी होगी।"

एक साथीको, जो निसर्गोपचारके काममें लगे हुए थे, (अच्छे उद्देश्यके लिए 'बुरा' रुपया दानमें लेनेकी नैतिकताके विषयमें) उन्होंने लिखा : "मैं दुग्धालयके बारेमें पहले ही लिख चुका हूं। किसी अच्छे उद्देश्यके लिए दान लेनेमें मुझे कोई हानि दिखाई नहीं देती, बशर्ते कि दाताको बदलेकी कोई आशा न हो। आशा है, तुम अपने स्वास्थ्यकी काफी चिन्ता रख रहे हो।"

बिहार सरकारके मंत्री डॉ. सैयद महमूदको लिखा : "आप मेरे साथ आनेवाले थे, लेकिन आ नहीं सके। . . . यदि (इसके फलस्वरूप) वहां सब ठीकठाक रहे, तो मुझे सन्तोष होगा। आपका लड़का मुझसे मिला। . . . आज मैं सुबह ढाई बजेसे ही जाग रहा हूं। लिखनेके लिए मुझे बहुत थोड़ा समय मिलता है। अगर मुझे यहांकी स्थितिको संभालना है, तो लोगोंसे मुझे मिलना ही चाहिये। आशा है, बेगम साहिबा अच्छी होंगी। आप कुछ समय रांची (हिल स्टेशन) में रहें तो अच्छा होगा।"

बिहारके पुनर्वास-मंत्री अब्दुल कयूम अंसारीको : "म. ने आपकी बीमारीके समाचार मुझे अभी दिये हैं। मेरी रायमें सार्वजनिक कार्यकर्ताका बीमार होना एक अपराध है। आशा है, अब आप अच्छे हो गये होंगे।"

राजकुमारी अमृतकौरको : "हमें मानवतामें विश्वास नहीं छोड़ देना चाहिये। मानवता एक महासागर है। अगर कुछ बूंदे गंदी हों, तो उससे महासागर गंदा नहीं हो जाता। अपने शरीरको संभालना। . . . मैं अभी भी नोआखाली नहीं जा सकता। लोग चाहते हैं कि मैं वहां रहूं। बिहार और सिलहटवाले मुझे वहां बुलाना चाहते हैं। और अब जवाहरलालका तार आया है कि मुझे दिल्लीमें रहना चाहिये।"

सेवाग्राम आश्रमके व्यवस्थापकको : "मुझे आश्चर्य है कि मेरा पत्र तुम तक क्यों नहीं पहुंचा। इस ओर भी कोई भूल रही होगी। . . . मैं सब कुछ अपने ही हाथसे नहीं कर सकता। 'क' कहां है ? तो 'ख' चला गया। लेकिन इसकी चिन्ता नहीं। हां, इससे वायुमंडल पर अवश्य प्रभाव पड़ेगा। वह पागलोंका-सा व्यवहार कर रहा है। परन्तु उसकी शुद्धताको मैं बहुमूल्य समझता हूं।"

दक्षिण भारतके एक आश्रमवासीको : "तुम्हारा पत्र मिला । बीड़ीके धुएंसे इतनी गड़बड़ नहीं हो सकती । आंध्र हाईस्कूलमें अवश्य जाओ और जल्दी लौट आओ । मुझे खुशी है कि 'अ' और 'ब' अच्छे हो गये हैं ।"

सेवाग्राम आश्रमके एक लड़केको : "तुम्हारा पत्र मिला । जब तुम्हारी परीक्षा पूरी हो जाय तब तुम मुझे लिखना । तब मैं तुम्हें बता सकूंगा कि तुम्हें क्या करना चाहिये । . . . यह जानकर खुशी हुई कि तुमने बहुत प्रयत्नके बिना ही हिन्दुस्तानीकी तीसरी परीक्षा अच्छी श्रेणीमें पास कर ली । तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता, इससे मुझे दुःख होता है । तुम्हारी व्याधि अधिकतर मानसिक है । तुम्हारा मन अभी तक स्थिर नहीं हुआ है । मानसिक व्याधिका असर शरीर पर भी पड़े बिना नहीं रहता ।"

मेरे भाईको : "तुम्हारा पत्र मिला । . . . क्या हुआ, अगर तुम्हारी गुजरात (पश्चिमी पंजाबमें हमारा अपना शहर) की सारी सम्पत्ति नष्ट हो जाय ? इस सर्वव्यापक दावानलमें कोई भी बचनेकी आशा नहीं रख सकता । सुशीला अपने उपयुक्त स्थान पर है । वह ईश्वरकी रक्षामें है । प्यारेलाल मुझसे आज या कल मिलेगा । उसके आनेकी आशा है ।"

मेरी मांको, जिन्हें वाह शिविरमें गई हुई अपनी बेटीकी चिन्ता हो रही थी : "आप सुशीलाकी चिन्ता क्यों करती हैं ? ईश्वर सबका प्रभु और स्वामी है । हमें उसका विश्वास नहीं छोड़ना चाहिये । राजकुमारी (अमृतकौर) समाचार लाई है कि सुशीला सकुशल है । आशा है, आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा । मुन्नी (मेरी छोटी भतीजी) खूब शरारत करती होगी ।"

प्राकृतिक चिकित्साके काममें लगे हुए एक कार्यकर्ताको : "मेरा खयाल है कि दूधके बिना हम स्वास्थ्यकी समस्याको हल नहीं कर सकेंगे । . . . जो लोग दूधके बिना काम चला सकते हैं (और चलानेको तैयार हैं), उनके साथ हम अवश्य प्रयोग कर सकते हैं ।"

एक महाराजाको : "मैंने आपको एक लाख रुपयेकी रसीद भेज दी है । मैं देखता हूं कि नोआखालीके लिए मेरे पास पहले ही डेढ़ छाख रुपयेकी रकम पड़ी हुई है । वह फिलहाल काफी है । परन्तु नोआखालीके सिवा मुझे टिपरा, फेनी, चटगांव, कलकत्ता और बिहारके कामके लिए भी रुपया जुटाना पड़ता है । इस कामके लिए भी मेरे पास कुछ रुपया है । परन्तु मुझे अधिक सुविधा हो जायगी,

यदि आप अपना भेजा हुआ रुपया इन सब स्थानोंके हिन्दुओं और मुसलमानोंके कष्ट-निवारणके लिए खर्च करनेकी अनुमति दे दें। आपके उत्तरकी प्रतीक्षा रहेगी।"

८

कलकत्तेकी घटनाएं अब बिहारके अलावा देशके दूसरे भागोंमें भी अपना असर फैलाने लगी थीं। २४ अगस्तको भारतीय संघकी संविधान-सभाके मुस्लिम लीगी दलने एक प्रस्ताव पास किया, जिसमें कहा गया कि "महात्मा गांधीने कलकत्तेमें सारी कौमोंके बीच फिरसे शान्ति और सद्भावना स्थापित करके तथा सैकड़ों निरपराधोंके प्राणों और संपत्तिको नाशसे बचा कर जो सेवा की है, उसकी हम कदर करते हैं। शान्ति कायम रखनेके लिए सतत प्रयत्न करके उन्होंने दृष्टिकी विशालता और हृदयकी उदारताका परिचय दिया है। मुस्लिम लीग हृदयसे विश्वास करती है कि श्री सुहरावर्दी और दूसरे मुसलमान उन्हें सहयोग देते रहेंगे और उनके प्रशंसनीय प्रयत्नोंकी कदर करते रहेंगे।"

कितने बड़े खेदकी बात है कि गांधीजीकी "दृष्टिकी विशालता और हृदयकी उदारता" का यह अनुभव लीगको तभी हुआ जब भारतके दो टुकड़े हो गये और इतना निर्दोष रक्त बह चुका!

'हरिजन' में "चमत्कार अथवा संयोग ?" शीर्षकेसे एक लेखमें गांधीजीने लिखा :

> शहीद ... सुहरावर्दी और मैं बेलियाघाटमें साथ साथ रह रहे हैं। कहा गया है कि यहां मुसलमान कौमी दंगोंके शिकार हुए हैं।... हम एक मुस्लिम घरमें रहते हैं और मुसलमान स्वयं-सेवक बड़े ध्यानसे हमारी सुख-सुविधाओंकी देखभाल करते हैं। यहां मकानके अहातेमें अगणित हिन्दू और मुसलमान आते रहते हैं और अपने प्रिय नारे लगाते रहते हैं। हम ऐसा कह सकते हैं कि हर घड़ी भाईचारेका आनंद दुगुना-चौगुना बढ़ रहा है।
>
> इसे चमत्कार कहा जाय या संयोग ? इसे किसी भी नामसे क्यों न पुकारा जाय, यह बिलकुल स्पष्ट है कि इसके लिए मुझे सब तरफसे जो श्रेय दिया जा रहा है उसका मैं जरा भी पात्र नहीं हूं। ... शहीद भी इसके पात्र नहीं कहे जा सकते।... यह आकस्मिक परिवर्तन एक-दो आदमियोंका काम नहीं है। हम ईश्वरके हाथके खिलौने हैं। वह हमें अपनी ताल पर नचाता है। इसलिए मनुष्य अधिकसे अधिक यही कर सकता है कि इस नृत्यमें हस्तक्षेप न करे और अपने सरजनहारकी इच्छाको पूरी तरह शिरोधार्य करे। इस दृष्टिसे सोचने पर यह कहा जा

सकता है कि इस चमत्कारमें उसने हमें अपना निमित्त बना लिया है; और अपने लिए तो मैं यही पूछता हूं कि क्या मेरी युवावस्थाका स्वप्न मेरे जीवनके संध्याकालमें साकार होगा ?

जिन्हें ईश्वरमें पूर्ण श्रद्धा है उनके लिए न तो यह चमत्कार है, न संयोग है । घटनाओंकी एक श्रृंखला स्पष्ट रूपमें देखी जा सकती है, जिससे यह सिद्ध होता है कि दोनों कौमें अनजाने ही भाईचारेके लिए तैयार की जा रही थीं । इस प्रक्रियामें हमारे मैदानमें आ जानेसे देखनेवालोंको इस सुखद घटनाकी सिद्धिका श्रेय हमें देनेका अवसर मिल गया है ।

कुछ भी हो, इन अतिशय उत्साहपूर्ण घटनाओंसे खिलाफत आन्दोलनके प्रारंभिक दिनोंकी याद आ जाती है । उस समयका भाईचारा जनताको एक नये अनुभवके रूपमें प्रतीत हुआ था । इसके सिवा, उस समय हम दो उद्देश्योंक लिए एकसाथ काम कर रहे थे: खिलाफत और स्वराज्य । आज हमारे सामने ऐसा कोई उद्देश्य नहीं है । हमने पारस्परिक घृणा और द्वेषका जहर पिया है, इसलिए भाईचारेका यह अमृत हमें और भी मीठा लग रहा है । यह मिठास कभी कम नहीं होनी चाहिये । [हरिजन, २४ अगस्त, १९४७, पृ. २९२]

लॉर्ड माउन्टबेटनने गांधीजीको लिखा : "पंजाबमें हमारे पास ५५००० सैनिक हैं और फिर भी वहां बड़े पैमाने पर दंगे हुए हैं । बंगालमें हमारी सेना एक व्यक्ति की है, फिर भी वहां कोई दंगा-फसाद नहीं हो रहा है । एक अधिकारी और प्रशासक दोनोंके रूपमें मैं उस एक आदमीवाली सीमासेनाको अपनी अंजलि देना चाहता हूं और यह भी नहीं भूलना चाहता कि उसके सहायक सेनापति श्री सुहरावर्दी हैं । आपने सुना होगा कि जब १५ अगस्तको संविधान-सभासें आपका नाम लिया गया तब कितने उत्साहसे तालियां बजीं । हम सब आपको उस दिन बहुत याद कर रहे थे।" [लॉर्ड माउन्टबेटनका पत्र गांधीजीको, २६ अगस्त, १९४७]

गांधीजीने प्रशंसाकी उपेक्षा कर दी, परंतु उसके पीछेकी चुनौतीको पकड़ लिया । उत्तरमें उन्होंने लिखा : "मैं नहीं जानता कि शहीदका . . . और मेरा उस प्रशंसाको स्वीकार करना उचित होगा या नहीं, जो आपने की है । कदाचित् जो घटना चमत्कार जैसी दिखाई देती है उसका श्रेय हमें दिलानेके लिए अनुकूल परिस्थितियां तैयार थीं । क्या आपके पत्रसे मेरा यह समझना ठीक होगा कि आप चाहते हैं कि मैं पंजाबमें भी ऐसा ही प्रयत्न करूं ?" [गांधीजीका पत्र लॉर्ड माउन्टबेटनको, ३० अगस्त, १९४७]

सत्रहवां अध्याय : आकाश टूट पड़ा

१

वाणी करने पर भी किसीके कानों पर जूं नहीं रेंगती थी । पंजाबमें आकाश टूटने लगा था । १७ अगस्तको उन्हें कलकत्तेमें यह तार मिला :

> सोमवारसे लाहौर शहरमें रावलपिंडीको भी मात करनेवाला हिन्दुओंका भयंकर हत्याकांड हो रहा है । सैकड़ों मुर्दे सड़कों पर बिखरे पड़े हैं। अनारकली बाजार और दूसरे व्यापारी मुहल्ले जला दिये गये हैं । नगरका अधिकतर भाग जल रहा है । हिन्दुओंके घरोंमें पानीकी सप्लाई काट दी गयी है । जालमें फंसे हुए हिन्दू, जिन्होंने बच निकलनेकी कोशिश की, फौज और पुलिसकी गोलीके शिकार हुए हैं । हिन्दुओंको अन्न-जलसे वंचित कर दिया गया है । उनके सामने विनाशका खतरा खड़ा है । तुरंत कुछ न कुछ कीजिये । लाहौरमें आपकी उपस्थिति आवश्यक है ।

यह तार सरदारके पास भेजते हुए गांधीजीने लिखा : "मैंने इसका उत्तर नहीं दिया है । ये बातें सही हों तो भयंकर हैं । सच-सच बात मैं जानना चाहूंगा ।" [गांधीजीका पत्र सरदार पटेलको, १७ अगस्त, १९४७]

पंजाबमें नये विस्फोटके समाचार पाकर पंडित नेहरू १७ अगस्तको पीड़ित क्षेत्रोंके दो दिनके दौरे पर गये । दिल्ली लौटने पर उन्होंने २१ अगस्तको तार द्वारा गांधीजीको "कलकत्तेके अद्भुत परिवर्तन पर सादर बधाई" भेजी और लिखा कि पंजाबको आपकी "शांतिप्रद उपस्थिति" की जरूरत है ।

दूसरे दिन गांधीजीने जवाब दिया : "मैं यहां फंस गया हूं । नोआखालीमें मेरी उपस्थितिकी जरूरत है । बिहारमें भी कुछ दिन लग ही जायंगे । इन परिस्थितियोंमें पता नहीं पंजाब मैं कब जा सकूंगा। तुम रास्ता बताओ ।"

पंडित नेहरूने उत्तर दिया : "में आपसे तुरन्त पंजाब जानेके लिए नहीं कह रहा हूं । अब तो हमें स्थितिका सामना करना ही होगा । बादमें आपसे वहां जानेका अनुरोध करना जरूरी हो सकता है ।"

[पं. नेहरूका पत्र गांधीजीको, २२ अगस्त, १९४७] परन्तु पंजाबकी स्थितिके बारेमें उन्होंने जो रिपोर्ट भेजी, वह अत्यन्त अशान्तिकारक थी :

दक्षिणी जिले, जो अभी तक किसी बड़े उपद्रवसे मुक्त थे, अचानक भड़क उठे । जहां तक हमारा सम्बन्ध है, हमें ऐसी आशा नहीं थी । होशियारपुर और जालंधरमें खास तौर पर भयंकर अत्याचार हुए हैं और बड़े पैमाने पर मुसलमानोंको मौतके घाट उतारा गया है । कितने आदमी मारे गये, इसका अन्दाजा लगाना बिलकुल असंभव है । लेकिन मैं कल्पना करता हूं कि पिछले महीनेमें पूर्व पंजाबमें मारे गये लोगोंकी संख्या ७-८ हजार तक हो सकती है । ये आंकड़े बिलकुल गलत भी हो सकते हैं, क्योंकि इनका आधार अनुमान पर है ।

कदाचित् पश्चिम पंजाबमें मारे गये लोगोंकी संख्या इससे बहुत कम है, ऊपरकी संख्यासे आधी हो सकती है । यह बात हालके सप्ताहोंकी ही है; रावलपिंडी और मुलतानके पिछले हत्याकाण्डोंको यह लागू नहीं होती । पश्चिम पंजाबमें पूर्व पंजाबसे अधिक लूटपाट और आगजनी हुई है ।

यह मारकाटका धंधा पूरे पागलपनकी स्थितिमें पहुंच गया है और विशाल जन-समूह घरबार छोड़ कर पश्चिम या पूर्वकी ओर जा रहे हैं । आप जानते ही हैं कि बहुतसे लोग पिछले महीनोंमें पश्चिम पंजाब छोड़ कर चले आये हैं । अब यह प्रक्रिया दोनों तरफ दोहराई जा रही है ।

मौजूदा उपद्रव लगभग तीन सप्ताह पहले अमृतसरके देहाती इलाकोंमें शुरू हुआ । आक्रमणकारी सिक्ख थे। एक सप्ताहके भीतर लाहौरने इसका बदला लिया । वहां मुसलमान आक्रमणकारी थे । तबसे यह बुराई दोनों तरफ फैल गई है । शायद पूर्व पंजाबमें कुछ अधिक फैली है । वहां हथियारबंद टोलियां, मुख्यतः सिक्ख और अंशत: हिन्दू टोलियां, इधर-उधर घूमती रहती हैं और मुसलमानोंकी प्रमुख आबादीवाले गांवों पर हमले करती हैं । **आम तौर पर जहां मुसलमान अल्प संख्यामें हैं वहां वे सुरक्षित हैं । उनके पड़ोसी उन पर आक्रमण नहीं करते । पूर्व पंजाबमें हथियारबन्द टोलियां खास तौर पर मुस्लिम बहुमतवाले गांवोंमें जाती हैं** । कुछ इसी किस्मकी घटनाएं पश्चिम पंजाबमें भी होती हैं । . . . (देखिये खण्ड -२, पृष्ठ ३५७)

ऐसा मालूम होता है कि अधिकांश छोटे सरकारी कर्मचारी, जिनमें पुलिसवाले भी होते हैं, इस काममें शरीक रहते हैं। और कभी कभी सैनिक भी शरीक होते हैं। सारी स्थिति अत्यन्त घृणा उत्पन्न करनेवाली है। [वही] (मोटे टाइप मैंने किये हैं।)

पंडित नेहरूने यह भी लिखा : मुझे अब तक आपको ये सब बातें लिखनेमें संकोच होता था, क्योंकि मैं आपकी चिन्ताएं बढ़ाना नहीं चाहता था। परन्तु अब स्थिति ऐसी आ गई है जब मेरे खयालसे आपको मालूम होना चाहिये कि क्या क्या हो रहा है।"बेशक, इस समय तो मुस्लिम लीगके नेता और 'क' और 'ख' (सिक्ख नेता) भी हत्याकाण्ड और आगजनीको बन्द करानेकी कोशिश कर रहे हैं। पहले उन्हींने यह आग लगाई थी। . . . मुझे कोई सन्देह नहीं कि हम अगले चन्द दिनोंमें ही इन कार्रवाइयोंको खतम कर देंगे, कमसे कम बड़ी बड़ी घटनाओंका अंत तो हो ही जायगा। परन्तु कैसा भयंकर उत्तराधिकार है! पंजाब – पूर्वी और पश्चिमी – एक बरबाद प्रान्त हो जायगा और हजारों-लाखों मानव-प्राणी निराश्रित हो जायंगे।"

दूसरे जरियोंसे भी चौंकानेवाले समाचार आने लगे थे। पंडित नेहरूकी रिपोर्ट पहुंचनेसे पहले २४ अगस्तको कलकत्तेके पंजाबियोंका एक शिष्टमंडल गांधीजीसे मिला था।

गांधीजीका पत्र पंडित नेहरूको,

२४ अगस्त, १९४७

कलकत्तेके पंजाबी मुझे तुरन्त पंजाब जानेको दबाते रहे हैं। वे मुझे भयंकर कहानी कहते हैं। हजारों लोग वहां मारे गये हैं! कई हजार लड़कियां भगाई गई हैं! हिन्दू पाकिस्तानके भागमें नहीं रह सकते। इसीके साथ यह सूचना मिली है कि सेनाके दोनों पक्षोंने तरफदारी करके विनाशका सर्जन किया है! क्या इनमें से कोई बात सच हो सकती है?

अगर मुझे पंजाब जाना ही हो तो तुम्हारे खयालसे कब जाना चाहिये? मुझे अभी तो कलकत्तेमें काम करना है, फिर नोआखाली और बिहारमें काम करना है। परन्तु पंजाब जानेकी जरूरत सिद्ध हो जाय, तो वहां जानेके लिए और सब बातें ताकमें रख दी जा सकती हैं।

इस बीच पंडित नेहरू पूर्व पंजाबका दूसरा चक्कर लगा आये थे। २५ अगस्तको सुबह लौट कर उन्होंने फौरन गांधीजीको यह पत्र लिखा :

पंडित नेहरूका पत्र गांधीजीको,

२५ अगस्त, १९४७

अपने पिछले पत्रमें मैंने पंजाबकी स्थितिकी कुछ कल्पना आपको दी थी। इस दूसरी मुलाकातसे मैं और भी दुःखी हुआ हुं। ... साधारणत: बुरेसे बुरे दंगोंके बाद भी अधिकांश लोग अपने घरों पर ही रहते हैं। अब पाकिस्तान बन जाने पर उससे निकल जानेकी प्रेरणा एक खतरनाक क्षेत्रसे बच निकलनेकी सामान्य प्रेरणामें और शामिल हो गई है। पंजाबमें सीमाके दोनों ओर लोगों पर यही असर पड़ा है और विशाल पैमाने पर सामूहिक स्थलान्तरण हो रहा है। यह अधिकतर स्वेच्छासे ही हो रहा है। इसका अनिवार्य परिणाम लाखों लोगोंके लिए विपत्तिमें आता है और आगे भी आयेगा। इससे दोनों तरफकी प्रान्तीय और केन्द्रीय सरकारों पर भयंकर बोझ पड़ेगा। ...

अमृतसर जिलेके जिन्दा बच रहनेवाले मुसलमानोंने मुझसे कहा कि जिलेमें उनके ५०००० आदमी मारे गये हैं। इसमें अवश्य ही अत्युक्तिका कोई पार नहीं है। परन्तु पूर्व पंजाबमें १०००० तक लोग मारे गये हों, तो हमें आश्चर्य नहीं होना चाहिये। ... दोनों ओर व्यापक हत्याकाण्ड हुए हैं और बहुत बड़ी संख्यामें निराश्रितोंका वध किया गया है। पूर्व पंजाबमें कदाचित् दूसरोंकी अपेक्षा अकाली सिक्खोंने ज्यादा मारकाट की है। हत्यासे भी बुरी बात यह है कि दोनों ओर स्त्रियों पर भयंकर अत्याचार और बलात्कार हुए हैं।

कहा जाता है, और ठीक ही कहा जाता है, कि लाहौर और अमृतसर शान्त हैं। बात यह है कि अब मारे जानेके लिए वहां बहुत लोग बाकी ही नहीं रहे हैं। अर्थात् लाहौर लगभग पूरी तरह मुस्लिम शहर बन गया है और अमृतसर एक हिन्दू-सिक्ख नगर हो गया है। ...

पूर्व पंजाब और पश्चिम पंजाबमें आदतन् कानूनका भंग करनेवाले तत्त्व अधिकाधिक सामने आ रहे हैं और वे नेताओंकी बात सुननेको तैयार नहीं हैं। दोनों प्रान्तोंमें भीतरी संघर्ष भी हैं। पश्चिम पंजाबमें मुख्यमंत्री ममदोत और फीरोजखां नूनमें झगड़ा है। नून लीगमें अधिक विचारहीन तत्त्वोंको प्रोत्साहन देते दिखाई देते हैं। पूर्व पंजाबमें सिक्खों और हिन्दुओंके बीच काफी खींचतान है। अकाली सिक्ख या उनमें से कुछ लोग इस उथल-पुथलके परिणाम-स्वरूप

एक सिक्ख राज्यकी स्थापनाकी बात करनेमें नहीं हिचकिचाते । उनका तर्क बहुत अच्छा नहीं है, परन्तु इसमें शंका नहीं कि उनमें से बहुतोंको ऐसी अस्पष्ट आशाएं हैं कि अगर उपद्रव जारी रहे, तो कुछ न कुछ उनके फायदेकी बात हो सकती है । उनमें से कुछ लोगोंका यह विचार है कि वे भारतको पाकिस्तानसे युद्ध करनेके लिए विवश कर सकते हैं । वे कल्पना करते हैं कि ऐसी लड़ाईमें पाकिस्तान जरूर हारेगा और फिर सिक्खिस्तानका उदय हो जायगा ।

किन्तु मास्टर तारासिंह और ज्ञानी करतारसिंह शान्तिकी पुन-र्स्थापनाका प्रयत्न करते रहे हैं । उनका प्रभाव उतना नहीं दीखता जितना बहुत लोगोंका खयाल था । अकालियोंके अधिक उग्र तत्त्व कुछ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघवालोंसे मिल गये हैं ।

पंडित नेहरूको अभी तक गांधीजीके पंजाब जानेके बारेमें पूरा विश्वास नहीं था, परन्तु माउन्टबेटनकी सैनिक दृष्टिने "एक आदमीकी सीमासेना" का महत्त्व और अहिंसाके अस्त्रका सैनिक मूल्य समझ लिया था ।

गांधीजीको इससे आश्चर्य नहीं हुआ । क्या वे बार-बार यह नहीं कह चुके थे कि एक अनुभवी योद्धामें वीरोंकी अहिंसा आसानीसे आ सकती है, क्योंकि उसमें अनुशासन, सूझ-बूझ, सहनशक्ति और मृत्युकी परवाह न करनेके साहसके संस्कार होते हैं ? लेकिन जिसको इन चीजोंकी तालीम न मिली हो और जिसका अहिंसाका अभ्यास नकारात्मक ढंगका रहा हो, उसके लिए बहादुरोंकी अहिंसा आसान नहीं होती ? गांधीजीके ही नेतृत्वमें पचीस वर्षसे अधिक समय तक अहिंसाके सैनिकोंकी तालीम पाकर भी हथियारोंकी अनन्त शक्तिमें कांग्रेसके नेताओंका रहस्यमय विश्वास वास्तवमें कभी मिटा नहीं था । उधर माउन्टबेटनका धंधा ही योद्धाका था । उन्होंने एक अनुभवी योद्धाकी अन्तर्दृष्टिसे यह समझ लिया कि लड़ाइयां जीतनेके लिए केवल अस्त्र-शस्त्र ही काफी नहीं होते । कांग्रेसके नेता गांधीजीके प्रति व्यक्तिगत अनुराग रखते थे, इसलिए उन्हें गंभीर शारीरिक खतरेमें डालनेसे हिचकिचाते थे । माउन्टबेटनने खतरनाक जीवनको अपना जीवन-कार्य बना लिया था, इसलिए वे इस बातको सर्वथा उचित मानते थे कि जिस आदर्शके लिए गांधीजी जीते हैं और जिसकी सिद्धिके लिए वे किसी भी बलिदानको बहुत बड़ा नहीं समझते, उसके लिए वे "समझदार आदमी द्वारा उठाया जा सकनेवाला अधिकसे अधिक पागलपनभरा खतरा" उठायें ।

हां, तो हम पंडित नेहरूके पत्र पर फिर लौटें : "आज सुबह सम्मिलित सुरक्षा-परिषद्की बैठकमें माउन्टबेटनने मुझसे जोर देकर कहा कि मैं आपसे पंजाब जानेका अनुरोध करूं; उन्हें ऐसी आशा है कि आप वहां भी कलकत्ते जैसा ही चमत्कार कर दिखायेंगे । मैं महसूस करता हूं कि आपको वहां जाना चाहिये, परन्तु अभी नहीं ।"

*

इस बीच सरदार पटेलके पास निराश्रितोंके वाह शिविरसे अशान्तिकारक समाचार पहुंचे । गांधीजी अगस्तके पहले सप्ताहमें अपनी काश्मीर-यात्रासे लौटते हुए सुशीला (नय्यर) को वहां छोड़ आये थे । पहले-पहल तो वहां सब-कुछ ठीक चला । निराश्रितोंको बड़ी सान्त्वना मिली । परन्तु ज्यों ही गांधीजीने पीठ फेरी त्यों ही उनमें फिर घबराहट बढ़ गई । एक निराश्रितने दूसरेसे कहा : "बूढ़ेने हमारे साथ खूब चाल चली ! कितना चतुर है वह !" दूसरेने कहा : "यह लड़की हमारी क्या रक्षा करेगी ?" तीसरेने कुछ व्यंग्यसे आलोचना की : "महात्माजी हमारी रक्षाके लिए अपनी अहिंसक तोप छोड़ गये हैं!" इस चुटकी पर सब खिलखिला कर हंस पड़े ।

बादमें सुशीलाने लिखा था :

> मैं इस पूरे विश्वासके साथ वहां रही कि हिन्दुओं और सिक्खोंके लिए पाकिस्तानसे भाग जाना अनुचित है । वे पीढ़ियोंसे उस भूमि पर रहते आये हैं और वहां रहनेका उन्हें अधिकार है । यदि भारतवासी दक्षिण अफ्रीकामें अपने अधिकारोंके लिए लड़ सकते थे, तो क्या पाकिस्तानमें उन्हें अपने घरबार छोड़ देने चाहिये ?
>
> मैंने अपने ये विचार निराश्रितोंके सामने रखे । कुछने उनकी कदर की, कुछ नाराज हुए। उनका कहना था कि वे बन्धक व्यक्तिका जीवन बितानेको तैयार नहीं हैं । उन्हें भारतीय संघमें भिखारी होना स्वीकार है, परन्तु पाकिस्तानमें बड़े जमींदार बनना भी स्वीकार नहीं; क्योंकि यहां उनकी औरतोंकी इज्जत भी सुरक्षित नहीं है । मैंने उन्हें यह समझानेकी कोशिश की कि धमकियोंसे घबराकर भाग जानेके बजाय हमारे लिए अपनी इज्जतकी रक्षामें मर जाना ज्यादा सही है ।

जहांसे लोग भाग कर आये थे ऐसे कुछ गांवोंमें मैं गई । एक गांवमें मुसलमान जमींदारने अल्पसंख्यक कौमको संरक्षण दिया था और उपद्रवको उठते ही दबा दिया था । वहां केवल तीन मौतें हुईं और चंद घर जला दिये गये । मुझे बताया गया कि हिन्दू वापस आयें तो उनका स्वागत किया जायगा । परन्तु कुछ और गांवोंमें उनका वापस जाना पसन्द नहीं किया जाता । ऐसी सूरतमें मैं हैरान थी कि लोगोंसे क्या कहा जाय । डिप्टी कमिश्नरने आकर मुझे विश्वास दिलाया कि निराश्रित लोग बिलकुल सुरक्षित रहेंगे और जल्दी ही उन्हें फिरसे बसाना संभव हो जायगा । [हरिजन, २८ सितम्बर, १९४७, पृ. ३३७]

फिर आशातीत बातें सामने आईं । दंगे-फसाद फिर शुरू हो गये । खबर मिली कि पूर्व पंजाब रावलपिंडीका बदला ले रहा है और सारा पश्चिम पंजाब पूर्व पंजाबकी घटनाओंका बदला लेनेको भड़क उठा है । "१० अगस्तके आसपास पूर्व और पश्चिम पंजाबसे अमानुषिक कृत्योंके समाचार आने लगे । साम्प्रदायिक क्रोधके शिकार बने हुए कई लोग हमारे आसपासके स्थानोंसे शिविरके अस्पतालमें आने लगे । उनमें से करीब सत्रह वर्षकी एक नौजवान लड़की थी । वह ७४ स्त्रियोंके समूहमें से अकेली बची थी, बाकी सबने कुएंमें कूद कर अपनी इज्जत बचाई थी । उसके पिता सरदार प्रतापसिंह पहले ही शिविरमें आ चुके थे । उन्होंने और उनके साथियोंने उनके गांव पर आक्रमण करनेवाली मुस्लिम भीड़का सशस्त्र प्रतिकार किया था । तीन दिन तक वे आक्रमणकारियोंको रोके रहे । अन्तमें जब उनका गोला-बारूद खतम हो गया तब उन्हें आत्म-समर्पण करना पड़ा । उनमें से कई अपने नेता सहित घायल हो गये और कुछ मर गये । बचे हुए लोगोंसे कहा गया कि उन्हें फौरन् मुसलमान बनाया जायगा । उन्होंने दूसरे दिन तककी मोहलत मांगी ।

"दूसरे दिन सुबह गुंडे अपनी कैंचियां लिये हुए उनके मुसलमान बन जानेकी निशानीके तौर पर उनके बाल काटने और दाढ़ियां मूंड़नेको तैयार थे । भीड़में कुछ गुंडे जोर जोरसे आपसमें चर्चा कर रहे थे कि कौन किस स्त्रीको लेगा । स्त्रियोंने यह सुना । उन्हें बाहर आकर धर्म-परिवर्तन करानेकी आज्ञा दी गई । एक अधेड़ महिलाने दूसरोंकी तरफसे जवाब दिया : "हम आत्म-समर्पण करनेसे पहले अपनी अन्तिम प्रार्थना करना और कुएंसे – जो हाल ही में बनाया गया था – पानी पी लेना चाहती हैं । यह प्रार्थना स्वीकार कर ली गई । इस पर ७४ स्त्रियां और लड़कियां उस अहातेमें घुस गईं जिसमें कुआं था । उन्होंने अपना धार्मिक स्नान करके प्रार्थना करना शुरू कर दिया । उन्हें पकड़नेवाले मुसलमान अधीर

होकर पुकारने लगे : "जल्दी करो ।" स्त्रियोंकी मुखियाने चिल्ला कर जवाब दिया : "तुम्हारी हिम्मत हो तो आओ । तुम जीते जी हमें हरगिज नहीं छू सकोगे ।" यह कह कर उसने कुएंमें छलांग लगाई और उसके पीछे पीछे बाकी ७४ स्त्रियां भी कूद पड़ीं । इस वीर बलिदानका गुंडों पर इतना गहरा असर पड़ा कि वे जहांके तहां खड़े रह गये और नीचा सिर किये एकके बाद एक चले गये । उन्होंने जिन पुरुषों और बच्चोंको धर्मेभ्रष्ट करनेके लिए इकट्ठा किया था, उन्हें अछूता छोड़ दिया । फिर सिक्ख उस अहातेमें गये और कुएंमें कूदनेवाली स्त्रियोंकी लाशें बाहर निकालीं । सरदार प्रतापसिंहकी पुत्रीके सिवा और सब मर गई थीं । रातको उन पर एक और मुस्लिम भीड़ने हमला किया, परन्तु एक सैनिक गश्ती दलने आकर उन्हें बचा लिया और वाह शिविरमें पहुंचा दिया । जब मैंने बादमें यह कहानी गांधीजीको सुनाई तो उनकी आंखें गीली हो गईं । वे बोले: 'अहिंसक साहस कभी बेकार नहीं जाता और जब मनुष्यके लिए कठिनाइयां बरदाश्तसे बाहर हो जाती हैं तब ईश्वर इस ढंगसे सहायता देने चला आता है जिसकी हमें आशा भी नहीं होती ।'

"शिविरके पास ही सीमेंटका एक कारखाना था । उसे संसारके बड़ेसे बड़े कारखानोंमें से एक बताया जाता था । मैं उसे देखने गई । देख चुकने पर मुझे कारखानेके डॉक्टरने अपने घर निमंत्रित किया। वे बंगाली थे । घरमें एक दो बरसकी गोरी सुन्दर बालिका खेल रही थी । डॉक्टरने मुझे समझाया कि बच्ची उनकी गोद ली हुई पुत्री है । वह पंजाबी है । प्रसूतिके बाद मां अस्पतालमें मर गई थी और पिताने बच्चीको लेनेकी परवाह नहीं की । इसलिए डॉक्टर और उनकी पत्नीने उसे अपनी बेटी बना लिया । दोनों उस पर अपना प्यार बरसाते हैं । अचानक डॉक्टरकी आवाज भर्रा गई : 'पिछले एक सप्ताहसे मुझे हर वक्त डर लगा रहता है कि जब मैं घर लौटूंगा तब शायद बच्ची मुझे न मिले । गुंडे या तो इसे मार डालेंगे या उठा ले जायंगे ।' मैंने विरोध किया : 'आप व्यर्थ ही चिन्तित हो रहे हैं । ऐसी बच्चीको कोई नहीं छुएगा; और फिर इस कारखानेमें तो बहुत अच्छा सुरक्षाका प्रबन्ध है ।' डॉक्टरने उत्तर दिया : हां, लेकिन दो दिन हुए एक हिन्दू, जो मेरे घरके सामनेसे सीमेंटकी गाड़ी लिये जा रहा था, कत्ल कर दिया गया । वह कारखानेका आदमी था । हत्यारेने पीछेसे उसकी पीठमें छुरा भोंक दिया । वह स्थान लोगोंसे भरा हुआ था । किसीने उसे रोकनेकी कोशिश नहीं की । हत्यारा बच कर निकल भागा और कदाचित् अब भी वहीं है । क्या आप मेरी पत्नी और बच्चीको किसी सुरक्षित स्थान पर भेज देनेमें सदद नहीं कर सकतीं ?' उनकी वाणीमें अनुनयका स्वर था । मुझ पर गहरा असर हुआ । छोटीसी लड़की निश्चिन्त होकर कुत्तेके

साथ खेल रही थी। मुझे इस कल्पनासे ही दुःख हुआ कि उसके जैसी छोटीसी निर्दोष बच्चीको भी कोई मार सकता है। मैंने उनकी पत्नी और बालिकाको जल्दीसे जल्दी भारत भेज देनेकी व्यवस्था कर देनेका वचन दिया।"

दो दिन बाद सुशीलाने डॉक्टरको सूचना दी कि सारा आवश्यक प्रबन्ध कर दिया गया है, इसलिए वे दूसरे दिन अपनी पत्नी और बच्चीको भेज सकते हैं। "उनका चेहरा चमक उठा। उनकी पत्नीको जरा बेचैनी हुई कि वह पतिको पीछे छोड़ कर जा रही है। डॉक्टर मेरी तरफ मुड़ कर बोले : 'आपको भी इनके साथ चला जाना चाहिये। यह स्थान अत्यन्त असुरक्षित हो गया है। मैंने उन्हें इस कृपाके लिए धन्यवाद दिया और समझाया कि मैं नहीं जा सकती। मुझे गांधीजी जहां छोड़ गये हैं वहीं अपने कर्तव्य पर डटे रहना है। डॉक्टरका आग्रह था कि मुझे अपने-आपको ऐसे गंभीर खतरेमें नहीं डालना चाहिये और चले ही जाना चाहिये। 'नहीं, मैं नहीं जा सकती। आप मेरी चिन्ता न कीजिये। जब तक मेरा समय नहीं आ जायगा तब तक मैं कहीं भी सुरक्षित रहुंगी। जब समय आ जायगा तब मेरे लिए कहीं भी सुरक्षा नहीं होगी।' मेरे शब्दोंमें और कहनेके मेरे तरीकेमें कोई ऐसी बात थी जिसने उन पर असर किया। एक नई मुख-मुद्राके साथ वे खड़े हो गये : 'मेरे परिवारके जानेके लिए आपने जो व्यवस्था की है, उसके लिए मैं आपका आभारी हूं। परन्तु मैं उन्हें नहीं भेज रहा हूं। अगर यह जगह आपके लिए सुरक्षित है, तो उनके लिए भी काफी सुरक्षित है।' उनकी आंखोंमें आंसू आ गये थे। मेरा हृदय बापू और ईश्वरके प्रति कृतज्ञतासे छलक उठा। मैंने मन ही मन कहा : 'बापूने हम जैसे तुच्छ प्राणियोंके हृदयोंमें थोड़ीसी श्रद्धा और साहसके बीज रख दिये हैं, जो वैसी ही भावना दूसरोंके हृदयोंमें प्रेरित कर देते हैं।'

"अस्पतालमें आनेवाले घायलोंकी संख्या बढ़ रही थी। एक दिन एक ट्रक भरकर मुर्दे और मृतप्राय व्यक्ति पहुंचे। उनमें एक चंद महीनेका शिशु भी था, जिसकी कई हड्डियां टूटी हुई थीं। मांने अपने बच्चेको हत्यारोंसे बचानेका प्रयत्न किया और जब वह मुर्दा होकर गिर पड़ी तो बच्चेकी बांह और टांग लाशके भारसे दब कर मुड़ गई और टूट गई। अस्पतालका कर्मचारी-मंडल काम करते करते थक जाता था।

"एक दिन खबर आई कि शिविर पर हमला होनेवाला है। रातको सेनाके आदमी आ गये और उन्होंने शिविरसे सम्बन्धित मौकेके स्थानों पर अपने कदम जमा लिये। मैं थकावटसे चूर होकर सो गई

थी । कुछ आदमी दौड़े दौड़े मेरे पास आये : 'उठ जाइये, हमला करनेवाले आ रहे हैं ।' में बहुत थक गई थी । मैंने जवाब दे दिया : 'जब वे यहां आ जायं तब आकर मुझे बताना।' वे थोड़ी देर स्तब्ध होकर खड़े रहे, फिर चले गये । थोड़ी देर बाद शिविरमें मेरे साथ काम करनेवाले कुछ समाज-सेवकोंने मुझे झिंझोड़ा : 'बैरकोंमें घबराहट फैली हुई है । स्त्रियां और बच्चे रो रहे हैं । आपको जाकर उन्हें सान्त्वना देनी चाहिये ।' मैं उठ कर उस विभागमें गई जहां लोग सबसे अधिक घबराये हुए बताये गये थे । फौजी जीपें हलचल कर रही थीं । जहां वे मोर्चा जमानेवाली थीं वहांसे तेज रोशनी आ रही थी । मुझे चिन्ता हुई : 'मान लो हमला हुआ, तो मैं इन लोगोंकी रक्षा कैसे करूंगी ?' उनकी गांधीजीमें श्रद्धा है और गांधीजीने उन्हें मेरे सुपुर्द कर दिया है । गांधीजीने कहा था कि इन पर कोई आंच आनेसे पहले मुझे मर जाना चाहिये । मर जाना तो सीधी-सी बात है, लेकिन मुझे ऐसा अवसर मिलेगा ? क्या मैं इस परीक्षामें अटल रह सकूंगी ?' एक साथीने मुझसे पूछा : 'आप उनसे अहिंसक ढंगसे अपनी रक्षा स्वयं करनेकी कैसे आशा रखती हैं ? उन्हें क्या करना चाहिये ?' मेरे उत्तरसे उन्हें सन्तोष नहीं हुआ । अहिंसक आत्मरक्षा क्षणभरमें नहीं सीखी जा सकती । यदि मैं अहिंसक ढंगसे अपने ही प्राण निछावर करके दूसरोंके सामने उदाहरण प्रस्तुत कर सकूं, तो इससे सहायता मिल सकती है । मुझे स्वयं अपनी अपूर्णताका विचार करके दुःख हुआ । जब हम बैरकोंमें पहुंचे तो जो लोग होनेवाले आक्रमणके समाचार लाये थे वे वहां मौजूद थे । उन्होंने वहांके लोगोंसे कह दिया होगा कि चौंकानेवाली अफवाहोंके बावजूद उन्होंने मुझे किस तरह सोती हुई पाया था । इससे लोगोंको आश्वासन मिला था । हम उनसे थोड़ी देर बात करके लौट आये । उस रातको शिविर पर कोई आक्रमण नहीं हुआ । जब ऐसी ही अफवाहोंसे बादकी दो रातोंमें सैनिक गतिविधियां काफी चलीं, तो निराश्रितोंकी घबराहट बहुत कम हो गई ।"

जब मूल कार्यक्रमके अनुसार सुशीलाके वाह शिविर छोड़ कर आनेका समय हुआ उस समय तक वहांका जीवन अत्यन्त अनिश्चित बन चुका था । अधिक निराश्रित आने लगे थे । मार्गमें उन पर हमला होता था । उनमें से बहुतसे, जिनमें औरतें और बच्चे भी थे, भयंकर स्थितिमें पहुंचते थे । "तब एक दिन (१५ अगस्तके बाद) शिविरके लिए मिले-जुले पहरेके स्थान पर एक बलूची (पाकिस्तानी) पहरा लगा दिया गया । खबर मिली कि एक बलूची पहरेदारको छिपे छिपे कुछ स्थानीय मुसलमानोंसे यह कहते सुना गया है कि अब वे निर्भय होकर शिविर पर हमला कर सकते हैं । मेरी श्रद्धा हिल गई। अब मैं शिविरके निराश्रितोंको यह नहीं कह सकती थी कि वे पाकिस्तान छोड़नेका विचार न करें । पुलिस

और फौजके पक्षपातपूर्ण व्यवहारकी कहानियां मौजूद थीं और राष्ट्रवादी विचारोंके एक नौजवान मुस्लिम अफसरने मुझे बताया कि उन कहानियोंमें बहुत सचाई है। मुझे हार माननी पड़ी और भारतीय संघके जिम्मेदार क्षेत्रोंको लिख देना पड़ा कि वाह शिविरको जल्दी ही खाली करा दिया जाय।"

अगस्तके अन्तिम सप्ताहमें सरदार पटेलको सुशीलाकी तरफसे एक सिक्ख सैनिक अधिकारीके द्वारा, जो वाह शिविरसे आया था, ये समाचार मिले : "हमारा सम्बन्ध बाहरकी दुनियासे पूरी तरह कट गया है। डाक न यहां आती है, न यहांसे जाती है। लोगोंको यहां हर घड़ी निश्चित मृत्युका भय लगा रहता है। मैं उनका साहस बनाये रखनेका भरसक प्रयत्न कर रही हुं। वे मुझे यहांसे आने नहीं देंगे। . . . यह कुछ सन्तोषकी बात है कि मेरे यहां होनेंसे उन्हें थोड़ी हिम्मत रहती है। शिविर-नायक (कैम्प कमांडर) कहता है कि तीन-चार दिन पहले शिविर पर आक्रमण होनेवाला था, परन्तु हुआ नहीं। आपको किसी विश्वस्त व्यक्तिको भेज कर यहांकी सच्ची स्थितिके समाचार मंगवाने चाहिये।

"कुछ हिन्दू शरणार्थी, जो मुसलमानोंके वेशमें यहां किसी तरह पहुंच गये हैं, खबर देते हैं कि गुजरांवाला, वजीराबाद, गुजरात और लालामूसा आगसे जल रहे हैं। कलसे सियालकोट भी जल रहा बताते हैं। इसी तरहके समाचार रावलपिंडीके पास गूजरखांसे आये हैं। कहा जाता है कि रेलमार्गके दोनों ओर लाशें बिछी पड़ी हैं। परसों फौजी पुलिसके होनेसे रावलपिंडी जिलेके सुखोक गांवका हमला टल गया। कल ५०० मुसलमानोंने उस गांव पर फिर हमला किया और २५ हिन्दुओंको मार डाला।

"स्थिति दिनोंदिन ज्यादा बिगड़ रही है। यह कहना कठिन है कि मुस्लिम जनता फिरसे कब बेकाबू हो जायगी। ईदके दिन यहांके मुसलमानोंने सभा की। कुछ हिन्दुओं और सिक्खोंको बुलाया गया। मुझे भी निमंत्रण मिला। निराश्रितोंके लौट जानेके लिए गांवोंमें अनुकूल वातावरण नहीं है। थानेदारने (जो स्वयं मुसलमान है) मुसलमानोंको आड़े हाथों लिया और जिन्होंने बर्बरतापूर्ण अपराध किये थे उन्हें गुण्डे कहा। मुसलमानोंका बुजुर्ग वर्ग यह नहीं चाहता, लेकिन युवक और नेशनल गार्ड खूनके प्यासे हैं।

"लोग बहुत घबराये हुए हैं। उन्हें डर है कि गैर-मुस्लिम सेनाके हटा लेनेके बाद शिविर पर हमला होगा। खबर है कि तक्षशिला स्टेशन पर एक पैसेंजर गाड़ी मुस्लिम सेना और पुलिसके देखते देखते

जंजीर खींचकर रोक दी गई । दो सिक्ख मारे गये और दो तीन घायल कर दिये गये । सुना गया है कि बादके स्टेशनों पर सैनिकोंने हत्यारोंको बधाई दी।

"प्रश्न यह है कि कब तक ये निराश्रित इस शिविरमें रह सकेंगे । उनकी दशा बिलकुल सन्तोषजनक नहीं है । . . . उस दिन सिविल सर्जन शिविर देखने आया था । उसने उन्हें (निराश्रितोंको) कष्ट-निवारण संस्थाओके पास जानेको कहा । एक और (मुसलमान) अधिकारी यह कहते सुना गया : 'हम इन लोगोंको कब तक बोझ बताकर रखेंगे ?' निराश्रितोंके लिए सहानुभूतिका नाम भी नहीं है और न जो कुछ हुआ है उसके लिए लज्जाकी कोई भावना है ।"

सरदारने तुरन्त कार्रवाई की ।

सरदार पटेलका तार लियाकतअली खांको

२४ अगस्त, १९४७

अभी अभी सुशीला नय्यरका एक विशेष सन्देश मुझे मिला है । उसे गांधीजी रावलपिंडीके पास वाहके गैर-सुस्लिम शिविरमें छोड़ आये थे । सारे शिविरमें घबराहट है और आसपासके मुसलमानोंके शत्रुतापूर्ण रवैयेसे सबका खातमा हो जानेका गंभीर खतरा पैदा हो गया है । निराश्रितोंको स्थानीय सेना और पुलिसके पक्षपातका डर है, विशेषतः इस वजहसे कि जिस गैर-मुस्लिम सेनाका अब तक शिविरमें पहरा था वह हटाई जानेवाली है । वहांके निराश्रितोंमें फिरसे विश्वास स्थापित करनेके लिए तथा सैनिक संरक्षण और खाद्य-सामग्रीकी ठीक व्यवस्थाके लिए आप तुरन्त कार्रवाई करेंगे, तो मैं आपका आभारी होऊंगा । . . . यदि व्यवस्था करनेमें कोई कठिनाई हो, तो मेरा सुझाव है कि सारे शिविरको पूर्व पंजाबमें भेज दिया जाय । . . . गजनफरअलीको उपयुक्त आदेश देंगे तो कृतज्ञ रहूंगा, जिससे प्रत्यक्ष चर्चा द्वारा अथवा उनके व्यक्तिगत हस्तक्षेपसे समस्या निबठायी जा सके ।

लियाकतअली खांका पत्र सरदार पटेलको

२४ अगस्त, १९४७

आपका अत्यन्त जरूरी तार वाहके निराश्रित शिविरके बारेमें मिला । गजनफरअली खां और पश्चिम पंजाबके मुख्यमंत्रीको मैंने कह दिया है कि वे निराश्रितोंकी रक्षाके लिए सारे जरूरी कदम उठायें ।

गांधीजीके पास सुशीलाकी रिपोर्ट और लियाकतअली खांके नामका तार भेजते हुए सरदार पटेलने उन्हें लिखा : "आप सुशीलाको पीछे छोड़ आये, इस पर मुझे बड़ी चिन्ता हो रही थी । आज एक विशेष सैनिक अधिकारी उसका पत्र लेकर आया है । वह आपको भेज रहा हूं । . . . पंजाबकी स्थिति बहुत खराब हो गई है । वहांके लोग निरे पागल हो गये हैं । शहर और गांव जलाये जा रहे हैं । मनुष्योंको साग-भाजीकी तरह काटा जा रहा है । खबरें आ रही हैं कि इसमें फौज और पुलिसका भी हाथ है । हजारोंकी संख्यामें लोग भाग कर आ रहे हैं और जहां जाते हैं वहां घबराहट फैला रहे हैं । पुलिसके पचासी प्रतिशत जवान मुसलमान हैं । पंजाबमें क्या हो रहा है, इसके बारेमें सही जानकारी प्राप्त करना कठिन हो गया है । हजारों-लाखों लोग भाग कर आ रहे हैं । आज जवाहरलाल जालंधर और अमृतसर गये हैं । लीगी मंत्री भी वहां होंगे । परन्तु मालूम होता है कि आम लोग उनके काबूसे बाहर निकल गये हैं । . . . पंजाबको भेजे जानेवाले तार वहां नहीं पहुंचते । रेल-व्यवहारका सिलसिला टूट गया है । . . . स्थिति अत्यन्त कठिन है । पंजाबकी स्थितिका असर और स्थानों पर न पड़े, इसके लिए हमें जी-तोड़ प्रयत्न करने होंगे । पंजाबसे भाग कर आनेवाले अधिकाधिक निराश्रित दिल्लीमें भर रहे हैं । वे दिनरात चैन नहीं लेने देते । वे क्रोध और घबराहटसे बावले हो रहे हैं और उन्हें समझाना अत्यन्त कठिन है ।" [सरदार पटेलका पत्र गांधीजीको, २४ अगस्त, १९४७]

गांधीजीने २६ अगस्तको सरदारके नाम जो उत्तर भेजा उससे प्रकट होता था कि जिन लोगोंका गांधीजीके साथ तादात्म्य हो गया था और जिनके प्रति गांधीजीका **पक्षपात** माना जाता था, उनके प्रति गांधीजीका प्रेम कितना कठोर हो सकता था : "मैं सुशीलाको अक्षरश: मौतके मुंहमें छोड़ कर आया था । अब वह तभी लौटेगी जब वाहके निराश्चित निश्चिन्त हो जायंगें; अथवा उनके साथ वह मर मिठेगी । . . . आपके पत्रसे ही मुझे मालूम हुआ कि सुशीला इस समय कहां है । मेरे चले आनेके कुछ दिन बाद वाहसे उसका एक पत्र आया था । परन्तु उसके बाद कोई खबर नहीं मिली । इसलिए मुझे आश्चर्य हो रहा था।"

गांधीजीके पत्रमें यह भी लिखा था : "पंजाब जानेके लिए मुझ पर बड़ा दबाव डाला जा रहा है । मैं नहीं जानता कि मुझे क्या करना चाहिये । जवाहर भी लिखते हैं कि मुझे वहां जाना तो चाहिये, परन्तु अभी नहीं । हर हालतमें रविवार तक तो मैं यहां बंधा ही हूं । उसके बाद नोआखाली और वहांसे बिहार

जानेका मेरा विचार है। इसमें लगभग पन्द्रह दिन लग जायंगे। मुझे पता नहीं कि दिल्लीमें में क्या कर सकूंगा। मुझे अन्देशा है कि जो कुछ आप कर रहे हैं उसमें मैं कहीं बाधक न हो जाऊं।"

सरदार पटेलका पत्र गांधीजीको

२७ अगस्त, १९४७

राजकुमारी (अमृतकौर) श्रीमती माउंटबेटनके साथ पंजाबके तीन दिनके दौरे पर गई थी। आज वह आठ बजे लौटी। वह भयंकर खबरें लाई है। वह सुशीलासे भी मिली थी। मैंने श्रीमती माउंटबेटनसे कहा था कि वे सुशीलाको अपने साथ वापस ले आयें। तदनुसार सुशीला तैयार हो गई थी। परन्तु शिविरके लोग रोने-चिल्लाने लगे। इसलिए वह वहीं ठहर गई। इस शिविरको खतरा नहीं है। अब हमने कुछ और खाद्य-सामग्री पहुंचानेका भी बन्दोबस्त कर दिया है। सुशीला बिलकुल तन्दुरुस्त है। इसलिए कोई चिन्ताकी बात नहीं। बाकी तो सब कुछ ईश्वरके हाथमें है।

मालूम होता है कि सरदारको इस बातकी कोई आशा नहीं रह गई थी कि पाकिस्तानके अधिकारी पश्चिम पाकिस्तानके गैर-मुस्लिमोंके साथ न्याय करेंगे। वे मानते थे कि या तो उनमें ऐसा करनेकी इच्छा नहीं है, या शक्ति नहीं है अथवा दोनोंका अभाव है। इसलिए उनका दिमाग आबादीकी अदला-बदलीकी दिशामें चलने लगा था। पंजाब जानेके बारेमें गांधीजीने जो पूछताछ की थी, उसके उत्तरमें यह भावना प्रतिध्वनित होती थी: "आप पंजाब जाकर क्या करेंगे ? इस आगको बुझानेके लिए आप कुछ नहीं कर सकते। वहां हिन्दुओं, सिक्खों और मुसलमानोंके लिए एकसाथ रहना संभव नहीं है; हिन्दू शायद भविष्यमें किसी समय रह सकें, मगर आज तो नहीं। परन्तु सिक्खों और मुसलमानोंके एकसाथ रहनेकी कल्पना तो सुदूर भविष्यमें भी नहीं की जा सकती। सेनाओंमें पूरी तरह साम्प्रदायिताकी छूत फेल गई है। सीमाके दोनों ओर लाखों आदमी भाग रहे हैं। शिविरोंमें आतंक छाया हुआ है। जो लोग भाग रहे है उन पर हमले करके उनको मौतके घाट उतारा जा रहा है। उनके सुरक्षित स्थलान्तरणका कोई प्रबन्ध नहीं है।" [सरदार पटेलका पत्र गांधीजीको, २७ अगस्त, १९४७]

इसके विपरीत, गांधीजीकी जोरदार राय थी कि अपने पूर्वजोंकी राखसे पवित्र हुई भूमिको छोड़ आनेसे अच्छा तो यह है कि बच्चा बच्चा बहादुरीसे मर जाय। उन पर पंजाब जानेके लिए दबाव बढ़ता ही रहा।

गांधीजीका पत्र पंडित नेहरूको

२९ अगस्त, १९४७

साथमें एक भाई सरदार अजीतसिंहका पत्र है। तुम देखोगे कि एक क्षणकी भी देर किये बिना मैं पंजाब चला जाऊं ऐसा इनका आग्रह है। तुम निर्णय करो कि मुझे क्या करना चाहिये। जान-मालकी पूरी तरह बरबादी हो जानेके बाद मेरे जानेसे कोई लाभ होगा ? क्या बह निरा मजाक नहीं होगा ? मेरे हृदयमें जो विचार उमड़ रहे हैं, वे तुम्हारे सामने रख रहा हूं। मुझ पर जानेका दबाव डालनेवाले तीन तार आये हुए हैं।

उसी दिन पंडित नेहरूने तारसे उत्तर दिया: "मेरा अब भी यही विचार है कि आपके पंजाब जानेका समय अभी नहीं आया है। परन्तु मुझे लगता है कि दिल्लीमें आपका रहना बहुत वांछनीय है, ताकि आप पंजाबकी स्थितिके साथ सम्पर्क रख सकें और हमें उस बारेमें सलाह दे सकें।

दूसरे दिन सरदारने और समाचार भेजे, परन्तु यह स्पष्ट था कि न तो वे स्वयं और न पंडित नेहरू इस पक्षमें थे कि गांधीजी उसी समय पंजाब जायं : "कल लाहौरमें एक सभा थी। परिणाम सन्तोषजनक रहा। जिन्ना और दूसरे लीगी भी उपस्थित थे। सारे प्रस्ताव सर्व-सम्मतिसे पास हुए। परन्तु आगको बुझानेमें समय जरूर लगेगा। आजसे जवाहरलाल और लियाकतअलीने साथ साथ पंजाबका दौरा शुरू किया है। दौरा एक सप्ताह लक चलेगा। इसी प्रकार औरोंने भी दौरे लगाना आरंभ किया है। सभी कठोर प्रयत्न कर रहे हैं। बाकी तो ईश्वरके हाथमें है।

सरदारके पत्रमें आत्म-सन्तोषका जो स्वर गूंज रहा था, उससे गांधीजीको अशान्ति हुई। उनके साथी यह नहीं जानते थे कि वे किस दिशामें आगे बढ़ रहे हैं। गांधीजीने उसी दिन सरदारको उत्तर दिया: "आपका पत्र मिला। . . . ईश्वर आपको आवश्यक बल और बुद्धि दे। कौन सोच सकता था कि आप लोगोंको इतनी जल्दी ऐसी अग्नि-परीक्षाका सामना करना पड़ेगा ! ईश्वरेच्छा बलीयसी।"

निर्णयकी एक गंभीर भूल की जा रही थी। [पाठकोंके ध्यानमें यह बात आई होगी कि गांधीजी उसी समयसे पंजाब जानेको उत्सुक थे जब वे मार्च १९४७ के अन्तिम सप्ताहमें दिल्ली आये थे। उन्होंने कांग्रेसी नेताओंको (देखिये खण्ड- १, पृ. ४१५) और लॉर्ड माउन्टबेटनको (देखिये खण्ड - ३, पृ. २०३) यह चेतावनी दे दी थी कि पंजाबकी स्थितिको यदि ठीक ढंगसे संभाला नहीं गया, तो उससे स्वयं स्वाधीनता ही खाकमें मिल सकती है। लेकिन एक ओर कांग्रेसी नेताओंने परिस्थितियोंके खतरेको कम समझा और लॉर्ड माउन्टबेटनने सारा भरोसा "हिंसाके विरुद्ध खड़े किये गये संयुक्त मोर्चे" पर रखा, जब कि दूसरी ओर ऐसा मालूम होता है कि पंजाबके कांग्रेसी नेताओंके एक वर्गको यह ज्यादा पसन्द था कि उन्हें मुस्लिम लीगके साथ निबटनेके लिए स्वतंत्र छोड़ दिया जाय। कहा जाता है कि उनमें से चोटीके एक नेतानें मार्च १९४७ के पहले सप्ताहमें एक सार्वजनिक सभामें ये उद्गार प्रगट किये थे: "मैने कांग्रेसके वरिष्ठ नेताओंसे सलाह-मशविरा कर लिया है और मैं पूरी जिम्मेदारीके साथ कह सकता हूं कि अहिंसा हो या हिंसा अथवा टक्करें हों या न हों, हमें यहां लीगका मन्त्रि-मण्डल बनने नहीं देना है।" (पंजाबके एक कांग्रेस महासमितिके सदस्य द्वारा गांधीजीके नाम लिखे गये पत्रसे।) कोई आश्चर्य नहीं कि इस प्रकारकी गलत धारणाओं और भूलभरे निर्णयोंके वातावरणमें बहुत देर हो जानेके पहले गांधीजीका पंजाब जाना किसी दलको पसन्द नहीं था। जब सबने यह बात स्वीकार की तब बहुत देर हो गई थी। आगमें घी पड़ चुका था] गांधीजी अपने साथियोंको अवांछित हस्तक्षेप करके परेशान करना नहीं चाहते थे। फिर भी उन्हें लगा कि साथियोंको अंतिम चेतावनी दे देना उनका धर्म है।

गांधीजीका पत्र पंडित नेहरूको

३० अगस्त, १९४७

मेरे पंजाब जानेके बारेमें बात यह है कि तुम्हारी और वल्लभभाईकी इच्छाके बगैर में नहीं हिलूंगा। किन्तु मैं कहना चाहता हूं कि मुझे पंजाब दौड़ जानेके लिए रोज दबाया जा रहा है, ताकि बहुत देर न हो जाय। अगर तुम चाहो तो मेरे पास इस सम्बन्धकी जो भी सामग्री आती है वह सब तुम्हारे पास भेज दूं, जिससे तुम सही निर्णय कर सको।

अगर मैं पंजाब नहीं जाऊं तो क्या एक सलाहकार या परामर्शदाताके रूपमें में दिल्लीमें बहुत उपयोगी सिद्ध होऊंगा ? मेरा खयाल है कि मेरी रचना इस किस्मकी नहीं है। मेरी

सलाहका मूल्य तभी है जब मैं किसी विशेष कामको वास्तवमें कर रहा होऊं । जब में खुराक, कपड़ा, सेनाका उपयोग आदि बातों पर सैद्धान्तिक परामर्श दूं, तो मैं तुम्हारे काममें बाधा ही खड़ी कर सकता हूं । इसलिए मैं जितना अधिक सोचता हूं उतनी ही अपनी यह राय मुझे सही मालूम होती है । निर्णय मुझी पर छोड़ दिया जाय तो कदाचित् में पंजाब भाग जाऊं और जरूरी हो तो लड़नेवाले लोगोंको आत्महत्या करनेसे रोकनेके प्रयत्नमें खुद मर मिटूं । लॉर्ड माउंटबेटनका एक पत्र मुझे अभी अभी मिला है । उससे भी यही छाप पड़ती है । वे मेरे तुरंत पंजाब जानेके विचारका स्वागत करेंगे ।

यहां मेरे पास जो काम है उससे तुम सबको अवश्य सहायता मिलेगी ।

गांधीजीके पत्र सरदार पटेलने पंडित नेहरूके पास भेज दिये । वे लियाकतअली खांके साथ दोनों पंजाबोंका दौरा कर रहे थे । उन्होंने वहां जो कुछ देखा उससे और शायद लॉर्ड माउंटबेटनकी सलाहसे भी अन्तमें उनका निश्चय हो गया। उन्होंने ३१ अगस्तको गांधीजीको तार दिया: "पंजाबकी समस्या विस्तार और तीव्रता दोनोंमें जबरदस्त है । अब मुझे लगता है कि आपका पंजाबमें होना वांछनीय है । उससे लोगोंके पागलपनके इलाजमें सहायता मिलेगी और इस विनष्ट तथा निराश बने हुए प्रान्तको सान्त्वना देनेमें सहायता मिलेगी । मैं ४ तारीखको दिल्ली लौट रहा हूं । वहां थोड़े दिन ठहर कर फिर पंजाब आ रहा हूं ।"

इसके बाद नेहरूजीने २ सितम्बरको दूसरा तार भेजा: "अब मुझे यकीन हो गया है कि आपको जल्दीसे जल्दी पंजाब आ जाना चाहिये ।"

इस प्रकार गांधीजीके पंजाब जाने और जो चमत्कार कलकत्तेमें देखा गया वही वहां दोहरानेका रास्ता साफ हो गया । परन्तु जैसा पहले कई अवसरों पर हुआ था, विधाताने गांधीजीके लिए कुछ और ही सोच रखा था; और वे तो सदा "महान कुंभकारके हाथोंकी मिट्टी" बननेमें ही संतोष मानते थे ।

२

जब माचे १९४७ के प्रथम सप्ताहमें गांधीजी नोआखालीसे रवाना हुए थे तभीसे अपने नोआखालीके साथियोंसे उनका सतत सम्पर्क बना रहा था । उनके विचारसे भारतके भविष्यकी कुंजी अब भी नोआखाली और बिहारके हाथमें थी । इसीलिए वे जल्दीसे जल्दी वहां लौट जानेको इतने उत्सुक

थे । जुलाईके दूसरे सप्ताहमें दिल्लीसे कनु गांधीको भेजे हुए पत्रोंमें से एकमें गांधीजीने लिखा: "मेरा शरीर यहां है, मेरा हृदय नोआखालीमें है ।" एक और पत्रमें, जो मुझे भेजा गया था, उन्होंने लिखा: "तुम्हारे कार्यका विवरण पढ़ कर मुझे बहुत हर्ष होता है । मैं उड़ कर तुम्हारे पास आना चाहता हूं । परन्तु कश्मीर मुझे बुला रहा है । कश्मीर-यात्राके बाद मेरी योजना बिहार होकर नोआखाली आनेकी है । मेरे जीमें आता है कि तुम्हारे ही साथ रहूं । परन्तु कौन जानता है कि ईश्वरकी क्या ईच्छा है ?" [गांधीजीका पत्र प्यारेलालको, १७ जुलाई, १९४७]

साथ ही, हमें गांधीजीके प्रत्यक्ष मार्गदशनकी अधिकाधिक आवश्यकता अनुभव होने लगी । कई तरहके उतार-चढ़ावके बाद स्थितिमें निश्चित सुधार होने लगा था; खास तौर पर जब बंगालके मुख्यमंत्रीने संयुक्त सर्वसत्ताधारी बंगालका अपना लक्ष्य सिद्ध करनेके लिए हिन्दू अल्पमतका विश्वास प्राप्त करनेकी आवश्यकता अच्छी तरह समझ ली । परन्तु विभाजनकी योजना स्वीकार कर लेने और सुहरावर्दीका पतन हो जानेके बाद स्थितिमें निश्चित रूपसे फिर बिगाड़ होने लगा । स्थानीय लोगोंने प्रत्याक्रमण शुरू कर दिया और इसमें उन्हें पुलिस और मुल्की नौकरियोंमें रहे लीगी तत्त्वोंकी सहानुभूति और समर्थन मिलता था ।

४ जूनको सतीशचन्द्र दासगुप्तने शहीद सुहरावर्दीको एक पत्रमें आगजनी, लूटपाट और चोरीकी १७७ वारदातोंका ब्योरा दिया, जिनकी सूचना वे पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्टको दे चुके थे । उसने मौखिक वचन दिया था कि इस मामलोंमें जो कार्रवाई की जायगी उसकी सूचना शिविरको दी जायगी । परन्तु बादमें कोई सूचना नहीं आई । सतीशचंद्र दासगुप्तने बंगालके मुख्य-मंत्रीको लिखा: "मालूम होता है कि मुसलमानों द्वारा हिन्दुओंका उत्पीड़न बन्द करने या अपराधियोंको सजा दिलानेके मामलेमें पुलिस और न्यायाधिकारी लाचार हैं । . . . १५ अगस्त, १९४७ के बाद आप जिस पद पर आरूढ़ हैं उस पर रहें या न रहें । मैं यह बात इसलिए लिख रहा हूं कि आप या आपके उत्तराधिकारी वास्तविक स्थितिका अन्दाज लगा सकें।" [सतीशचन्द्र दासगुप्तका पत्र शहीद सुहरावर्दीको, २६ जुलाई, १९४७]

नोआखालीके पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्टको उन्होंने लिखा: "मैंने मुख्यमंत्रीको जो पत्र लिखा है, उसकी नकल आपको भेज रहा हूं । . . . १५ अगस्त आ रही है, परन्तु यहांके हिन्दुओंमें उसकी खुशी कहां है ? वही असुरक्षितता और उससे उत्पन्न होनेवाली दारुण स्थिति विद्यमान है । यद्यपि साम्प्रदायिक

दावानलके एकाएक भड़क उठनेकी संभावना तो नहीं है, फिर भी हिन्दुओंकी एक कौमके रूपमें रोजानाकी जिन्दगी असहनीय हो गई है। यदि लीग ऐसा नेतृत्व नहीं करेगी . . . जिसे आम लोग समझ सकें, तो १५ अगस्त तक हृदय-परिवर्तन होनेकी कोई संभावना नहीं दीखती ।" [सतीशचन्द्र दासगुप्तका पत्र नोआखालीके पुलिस-सुपरिन्टेन्डेन्टको, २६ जुलाई, १९४७]

दो दिन बाद पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्टने जवाब दिया: "१७७ वारदातोंके बारेमें मैं आपको सूचित करता हूं कि हर मामलेकी ठीकसे जांच की गई है और उसके बारेमें जरूरी कार्रवाई भी की गई है। जिन शिकायत करनेवालोंने रिपोर्ट पेश की थी, उन्हें जांचके परिणाम मालूम हैं ।" [नोआखालीके पुलिस-सुपरिन्टेन्डेन्टका पत्र सतीशचन्द्र दासगुप्तको, २८ जुलाई, १९४७]

पुलिसके मुखियाके पत्रमें यह भी लिखा था: "अब मैं नोआखालीकी स्थितिके बारेमें अच्छी तरह कह सकता हूं कि वह बिलकुल सामान्य है। आप निश्चित ही यह साबित नहीं कर सकते कि हिन्दुओं पर जुल्म हो रहे हैं और जिलेमें कहीं भी असुरक्षितताकी अवस्था विद्यमान है। यदि . . . अभी तक कटुताकी भावना बनी हुई है, तो वह जिलेमें काम करनेवाली बाहरी संस्थाओंके कारण है। अब स्वयंसेवकोंकी जरूरत नहीं रही है, इसलिए मैं उन्हें सलाह दूंगा कि वे नोआखालीसे चले जायं। इन स्वयंसेवक-संगठनोंके यहां रहनेकी वजहसे ही आजसे बहुत पहले दोनों कौमोंके बीच पड़ोसी जैसे सम्बंध फिरसे कायम नहीं हो सके।"

तीन दिन बाद यह बात चरम सीमाको पहुंच गई जब गांधी कैम्पको यह नोटिस दिया गया कि उसके दो उत्तम कार्यकर्ताओंको "नियुक्तिके उनके वर्तमान स्थानोंसे तुरंत हटा दिया जाय, अन्यथा पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट उनके विरुद्ध निषेधात्मक कार्रवाई करेगा।"

हमने इसके बारेमें जिला-मजिस्ट्रेट श्री मैकिनर्नीसे सम्पर्क साधनेका निश्चय किया। जब हम २२ मील जीपमें सवार होकर नोआखाली शहरमें पहुंचे, तो रातके लगभग नौ बज गये थे। सड़क गूदेकी तरह नरम और फिसलनी थी और कहीं कहीं पानीमें डूबी हुई थी। जिला- मजिस्ट्रेटको उस आज्ञा पर वैसा ही आश्चर्य हुआ जैसा हमें हुआ था। उनके मातहत अधिकारीने उनके ऊपर जाकर यह कार्रवाई की थी। जिला-मजिस्ट्रेटको शिकायत थी कि उच्च नीति-सम्बंधी मामलोंमें भी उनकी आज्ञाओंका उनके

अधीन कर्मचारी उल्लंघन कर रहे हैं; शायद वे बंगालके बदनाम और पदसे हटनेवाले मुख्यमंत्रीके जिला-प्रतिनिधिकी अपेक्षा स्थानीय लीग-पक्षी तत्त्वोंके साथ अपना अधिक घनिष्ठ सम्बंध मानते हैं।

शिष्टाचारके खातिर उन्होंने हमें पुलिसके मुखियाके पास भेज दिया और कहा कि बादमें आकर मुझे खबर दीजिये। हमने वैसा ही किया। हमने पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्टको यह चुनौती दी कि हमारे कार्यकर्ताओंके विरुद्ध लगाये गये आरोपोंकी जांच की जाय और यदि एक भी आरोप सही पाया जाय तो न केवल हम उन कार्यकर्ताओंको हटा देंगे, बल्कि स्वयं गांधी-कैम्पको ही बन्द कर देंगे। हमने आग्रह किया कि या तो आरोप पूरी तरह वापस लिया जाय या सिद्ध किया जाय। जांच तो कभी नहीं हुई, परन्तु जिस कार्रवाईकी धमकी दी गई थी वह "रोक दी गई"।

१४ अगस्तको श्री मैकिनर्नी, जो स्थानीय मुस्लिम नेताओं और उनके भाईबंद मुसलमान अफसरोंके कोप-भाजन बन चूके थे, जिला- मजिस्ट्रेटके पदसे मुक्त कर दिये गये और उन्हें सूचना दे दी गई कि उस दिन आधी रातसे उन्हें सेवामुक्त कर दिया गया है।

१५ अगस्तको स्वाधीनता-दिवस था। हम एक सभासे लौट रहे थे। यह सभा हमने यह दिवस मनानेके लिए एक गांवमें की थी। एक नहरके पुलके मेहराब पर बैठी हुई स्थानीय मुसलमानोंकी एक टोली पाकिस्तानके जन्मकी चर्चा कर रही थी। उनमें से एकने दूसरेसे कहा: "पाकिस्तान तो हो गया। अब यह बताओ यार, कि इसका मतलब क्या यह है कि हमें अधिक चावल या अधिक कपड़ा मिलेगा? ऐसा न हो तो पाकिस्तानसे क्या फायदा? . . . पिछले सप्ताह हमें राहतके मुफ्त चावलकी आधी ही मात्रा मिली और अगले सप्ताह हमें वह भी नहीं मिलेगी। ऐसे पाकिस्तानको लेकर हम क्या करेंगे?"

तब हमारे नाववालेको, जब हमारी नाव पुलके नीचेसे गुजरी, पुकार कर उनमें से एक चिल्लाया : "अरे भाई, हमें बताओ कि अब तुम हमारी रोटीकी समस्या हल करनेमें मदद दे सकते हो? तुम हिन्दू लोग होशियार होते हो। शायद तुम कुछ सहायता कर सको।"

किन्तु हमारे नाववालेने उत्तर दिया कि मैं तो तुम्हारी ही तरह बेपढ़ा, गरीब आदमी हूं। ये सवाल मेरे बसके नहीं। सब खूब हंसे। इसमें वर्तमान परिस्थितिके प्रति गहरा असन्तोष झलकता था।

हमारे शिविरके डॉक्टरने, जो नावमें हमारे साथ थे, बातचीतका तंतु पकड़ लिया: "तो मित्रो, पाकिस्तान तो आ गया, लेकिन तुम देखते हो कि न तो इस खाल (नहर) का रास्ता बदला है और न वह

पुरानी सुपरिचित सड़क बदली है। निर्दोषोंके प्राण चले गये, पुराने प्रेम-बन्धन टूट गये, आपसी सम्बन्ध जहरीले बन गये – और यह सब किसलिए ? हम तुमसे कहा करते थे, और महात्मा गांधी हमसे कहते रहे हैं, कि शासक आते हैं और चले जाते हैं, परन्तु हम साधारण लोगोंको – हिन्दू और मुसलमान दोनोंको – साथ साथ रहना है और अपनी समस्याओंको हल करना है। अपनी मेहनत, सूझ-बूझ, ईमानदारी और हिम्मतसे ही उन्हें हल करनेमें हमें मदद मिलेगी। हम हिन्दू हों या मुसलमान, हमारी समस्याएं एक ही हैं और वे हमारे सम्मिलित प्रयत्नसे ही हल की जा सकती हैं। महात्माजीने हमें दिखा दिया है कि हम अपनी ही कोशिशसे अपनी भूख और नग्नता कैसे मिठा सकते हैं। हम और हमारी छावनी तुम्हारी सेवाके लिए हाजिर हैं। आओ भाइयों, ईश्वरकी कृपासे हमने मिलकर काम किया तो हमें सफलता मिलेगो।"

जुलाईमें मियां गुलाम सरवरको, जो अक्तूबर १९४६ में अपनी गिरफ्तारीके समयसे कुमिल्लामें नजरबन्द था, "जमानत" पर छोड़ दिया गया। १५ अगस्तके पश्चात् उसे अपने मुख्य केन्द्र श्यामपुरमें आनेकी अनुमति मिल गई। यह स्थान मेरी छावनीसे चन्द मिनटकी दूरी पर था। १७ अगस्तकी मेरी छावनीकी डायरीमें यह लिखा है :

> कहा जाता है कि मियां गुलाम सरवर पांच दिनके पेरोल पर कल श्यामपुर लौट आया है। दो दिन बीत चुके हैं और अगले तीन दिनके भीतर उसे वापस कुमिल्लामें उपस्थित होना चाहिये। इससे पता चलता है कि हवा किधर बह रही है। . . . एक चिड़िया मेरे कानमें कह गई है कि कासिम अलीको भी नोआखाली सदरके लिए "जमानत" पर छोड़ा गया है।

थोड़े समय तक तो गुंडोंके दोनों नेता चुप रहे। मेरी २१ अगस्तकी डायरीमें यह लिखा है :

> वह (गुलाम सरवर) अभी तक पुलिसकी निगरानीमें है। परन्तु पुलिस उसका बहुत लिहाज रखती है। पुलिसने लोगोंसे कह दिया है कि "बड़ी संख्यामें" उससे मिलने न जायं। शाहपुर बाजारके अपने कुछ मित्रोंको खुद उसने भी कह दिया है कि . . . उसके पास बहुत भीड़ न की जाय, क्योंकि वह अपनी रिहाई करानेकी कोशिश कर रहा है और उनके किसी प्रदर्शनसे वह उद्देश्य विफल हो जायगा।

धीरे धीरे मियां साहब और उनका तंत्र सक्रिय हो गया। उनके गुर्गे उन लोगों पर दबाव डालने लगे, जिन्होंने दंगोंमें भाग लेनेके सम्बन्धमें उनके विरुद्ध शपथ लेकर बयान दिये थे, कि वे लोग अपनी

शिकायतें वापस ले लें। मियांके साथी कासिम अलीकी तरफसे लोगोंके सताये जानेकी शिकायतें भी हमारी छावनीमें आने लगीं। अन्तमें स्वयं गांधी-छावनीके विरुद्ध एक स्थायी मुहिम छेड़ दी गई। इसमें कुछ पुलिस-अधिकारियोंका वास्तविक सहयोग न रहा हो तो भी प्रोत्साहन और सहानुभूति जरूर थी।

जो लोग उपद्रवोंमें भाग ले चुके थे उन पर मुकदमा चलानेका और दंगोंके शिकार बने लोगोंके कष्ट-निवारण तथा पुनर्वासके जो अनुदान अभी तक स्थगित थे उनकी अदायगीका प्रश्न खटाईमें पड़ा हुआ था। एक ही सर्कलके बारेमें सर्कल रिलीफ अफसरके लगाये हुए हिसाबके अनुसार अभी तक ५०००० रुपयेकी रकम नहीं चुकाई गई थी, जब कि सारे जिलेके हिसाबसे तो चार लाखकी रकम बाकी थी। एक खबर मिली कि विशेष रिलीफ कमिश्नरने, जो दंगोंके बाद नोआखालीमें नियुक्त किया गया था और जिसने अपनी सहानुभूति और प्रामाणिक कर्तव्य-पालन द्वारा सबका विश्वास प्राप्त कर लिया था, भारतीय संघमें जाना पसन्द कर लिया था, इसलिए वह नोआखालीसे चला गया था। इससे लोगोंमें और भी बेचैनी बढ़ी। इसके बाद हमें मालूम हुआ कि पूर्व बंगालके रसद-मंत्रीने जिलेके मुख्य केन्द्रमें पहली ही बार आने पर यह घोषणा कर दी कि हमने कष्ट-निवारण और पुनर्वासके सम्बन्धमें पहले ही "पर्याप्तसे अधिक" खर्च कर दिया है और अब कष्ट-निवारणका विभाग तुरन्त बन्द कर दिया जाना चाहिये।

पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट अब्दुल्लाका फरवरी १९४७ में ही नोआखालीसे तबादला कर दिया गया था। परन्तु वे अपने नये स्थानसे भी गांधीजीके शान्ति-मिशनमें दिलचस्पी लेते रहे और गांधीजीके साथ उनका पत्र-व्यवहार जारी रहा।

एम. ए. अब्दुल्लाका पत्र गांधीजीको,

(मुर्शिदाबाद) ११ फरवरी, १९४७

मैं ३ तारीखको नोआखालीसे चल कर ... ७ तारीखको कलकत्ते पहुंचा और ... आज मैंने जिलेका काम संभाल लिया। कलकत्तेकी मुलाकातमें मुझे बताया गया कि मेरा तबादला इसलिए किया गया है कि मैंने काफी निवारक उपाय नहीं किये। मेरा उत्तर यह था कि तबादला इसकी काफी सजा नहीं है; इसके लिए खुली अदालती जांच होनी चाहिये। कलकत्तेके कुछ मुसलमानोंने मुझे बताया कि मुख्यमंत्री मुझसे इसलिए नाराज हो गये कि मैंने मुसलमानों पर

पुलिस और सेनाका 'जुल्म' रोकनेके लिए कोई कार्रवाई नहीं की । और कलकत्तेके मुसलमानोंने मुख्यमंत्रीके सामने मुझे "कांग्रेसी अब्दुल्ला बताया और मुझ पर गांधीजीका असर होने और उनका चेला बन जानेकी बात मेरे बारेमें कही । इत्यादि ।" एक और जरियेसे मुझे मालूम हुआ है कि नोआखालीसे मेरा अचानक तबादला होनेका असली कारण मेरा कुछ अंग्रेज अधिकारियोंके साथ मतभेद था । इस प्रकार कुछ हिन्दुओं, कुछ मुसलमानों और कुछ अंग्रेजोंने मुझ पर हमला किया; और सरकार सच कहनेको तैयार नहीं है। उसने अलग अलग लोगोंसे अलग अलग बात कही । मैं इस प्रपंचपूर्ण मनमानीकी चिन्ता नहीं करता, जब तक मुझे यह भरोसा है कि मेरी अन्तरात्मा बिलकुल साफ है ।

गांधीजीका पत्र एम. ए. अब्दुल्लाको

(नोआखाली) १८ फरवरी, १९४७

जब सब पक्ष किसी आदमीसे अप्रसन्न हो जायं, तो आम तौर पर वह इस बातकी पक्की निशानी है कि उसने अपने कर्तव्यका पालन किया है । ईश्वर करे आपके बारेमें भी यही बात हो।

एम. ए. अब्दुल्लाका पत्र गांधीजीको

(मुर्शिदाबाद) १५ फरवरी, १९४७

मुझे जितनी याद आपके बहुमूल्य और शिक्षाप्रद सम्पर्ककी आती है उतनी और किसी चीजकी यहां नहीं आती । वह सम्पर्क मझे नोआखालीमें इतने दिन प्राप्त रहा । इस जिलेमें ऐतिहासिक पृष्ठभूमियां (स्मारक) बहुत हैं और मेरा यह विचार है कि निकट भविष्यमें मैं उन सबको देखने जाऊं । नोआखाली "झूठी शपथ खाने और जालसाजी" के लिए मशहूर था और इस जिलेको "झूठ, दंभ और विश्वासघात" की पुरानी ऐतिहासिक विरासत मिली है । मुझे आश्चर्य होता है कि जब जीवनके सभी क्षेत्रोंमें सत्य इतनी दुर्लभ वस्तु बन गया है, तो दुनिया कायम कैसे है !

गांधीजीका पत्र एम. ए. अब्दुल्लाको

(नोआखाली) २० फरवरी, १९४७

आपके इस पत्रके अनुसार तो दोनोंमें से कोई भी जिला चुनने लायक नहीं । मेरे खयालसे कोई पुलिस-अधिकारी, जिसे अपराधोंसे वास्ता रखना पड़ता है, स्वभावत:

जिस समाजमें जाता है उसकी कमजोरी पहले देखता है । मुझे यह जानकर खुशी होती है कि बरहामपुरमें आपको मेरा समागम याद आयेगा । मुझे विश्वास है कि यह स्थिति कुछ ही दिन रहेगी और हर हालतमें यह कमी पत्र-व्यवहारसे पूरी कर ली जायगी ।

नोआखालीके भूतपूर्व पुलिस मुखियाको गांधीजी अपने पत्रोंमें "प्रिय अब्दुल्ला साहब" के नामसे संबोधन किया करते थे । अगले पत्रमें "साहब" का स्थान "मित्र" ने ले लिया । "मित्र" अब्दुल्लाने लिखा: " 'साहब से 'मित्र' बनना इतना ऊंचा सम्मान है, जिसे दुनियाके सबसे बड़े आदमीसे पानेका दावा मैं शायद ही कर सकता हूं । खैर, आपसे जो भी मिल जाय उसे पाकर मुझे खुशी होती है; और भारी सम्मानोंके बोझसे मैं कराह नहीं उठूंगा । 'विभाजन' के बारेमें आपने जो बात कही है वह मुझे यह कहावत याद दिलाती है : मिल कर हम खड़े रहेंगे, बिखर कर नीचे गिरेंगे' ।"

जिला-मजिस्ट्रेट श्री मैकिनर्नीके एक और मुस्लिम साथी अतिरिक्त जिला-मजिस्ट्रेट ए. ज़मन भी गांधीजीके प्रशंसक बन गये थे । उन्हें कलकत्ते स्थानान्तरित कर दिया गया था । बादमें उन्होंने भारतीय संघमें चला जाना पसन्द कर लिया । नोआखाली छोड़नेसे पहले २२ अप्रैलको उन्होंने गांधीजीको एक पत्र लिखा । वह यों था :

यदि मैं यह स्वीकार न करूं कि उपद्रव-पीड़ित क्षेत्रमें आपके होनेसे यहां उत्पन्न होनेवाली विविध समस्याओंके बारेमें आपकी कृपापूर्ण सलाहसे अपने काममें मुझे कितनी प्रेरणा मिलती थी, तो कहा जायगा कि मैं अपने कर्तव्यको भूल गया हूं । अलबत्ता, मेरे प्रयत्न बहुत अल्प थे, परन्तु मैं आपको इतना विश्वास दिला सकता हूं कि वे सच्चे दिलसे और सारी ताकत लगाकर किये गये थे । . . .

परन्तु आज मैं इन बातोंके लिए नहीं लिख रहा हूं । मेरा पत्र मुख्यत: आभार-प्रदर्शनके लिए है । आभार मुझे केवल उस प्रेरणाके लिए ही नहीं प्रकट करना है, जो आपने मेरे सरकारी कामके सिलसिलेमें मुझे दी, परन्तु उस गहरे असरके लिए भी प्रकठ करना है, जो आपके साथ चर्चा करनेसे हमेशा मेरे मन पर होता था । . . . मैं शंकाशील होता जा रहा था कि वास्तवमें कोई अनासक्त मनुष्य हो सकता है । मैंने गीताकी ये पंक्तियां पढ़ी थीं: "जिससे जगत संत्रस्त नहीं है और जो जगतसे संत्रस्त नहीं है, जो हर्ष, अधीरता, भय और उद्वेगसे मुक्त है, वह मुझे प्रिय है;"

अथवा "जो आनंदित नहीं होता, दुःखी नहीं होता, जो द्वेष नहीं करता, जो इच्छा नहीं करता और जो शुभ और अशुभ दोनोंका त्याग करता है, वह भक्त मुझे प्रिय है ।"* जब तक मैं आपके सम्पर्कमें नहीं आया तब तक इनका वास्तविक अर्थ कभी मेरी समझमें नहीं आया था ।

भारत-मंत्रीकी सेवाएं समाप्त होते ही मैं कदाचित् बहुत जल्दी मुक्त हो जाऊंगा । मेरी इच्छा है कि अपना शेष जीवन मैं धर्मके – मेरा आशय तुलनात्मक धर्मसे है – और तत्त्वज्ञानके अध्ययनमें बिताऊं । आप इजाजत दें तो कुछ समय आपके आश्रममें बितानेकी मेरी बड़ी इच्छा है । मैं स्वयं देखना चाहता हूं कि व्यवहारमें अच्छा जीवन कैसे व्यतीत किया जाता है ।

ये सब अधिकारी गांधीजीकी नोआखालीकी धर्मयात्रामें साथ रहे थे । इसका उन पर गहरा प्रभाव पड़ा था । वे गांधी-छावनीके अच्छे मित्र रहे थे । उनके चले जानेके बाद स्थिति तेजीसे बिगड़ने लगी । हमें अपनी स्थिति पर फिरसे विचार करना पड़ा । २१ अगस्तको मैंने सतीशचंद्र दासगुप्तको लिखा : "मैं नहीं समझता कि जिलेका प्रशासन मौजूदा अधिकारियोंके हाथमें रहते हुए हम कोई प्रगति कर सकते हैं, जब तक मंत्रि-मंडलके साथ हमारा किसी न किसी प्रकारका समझौता न हो जाय । इसका अर्थ यह है कि फिलहाल हमें शान्त रहना चाहिये और बापूके यहां आनेकी प्रतीक्षा करनी चाहिये । जब वे हमें नया प्रकाश बतायें तब हम देखेंगे कि हम क्या कर सकते हैं ।"

गांधीजीने हमें जिस मार्ग पर लगाया था, विभाजनसे हम उसके अन्तमें पहुंच गये थे । पुरानी व्यवस्थामें हमें अपनी स्थिति मालूम थी और हम जानते थे कि हमें किस लक्ष्य तक पहुंचना है । विभाजनके बाद हमारा उद्देश्य क्या होगा और उसके कारण हमें अपनी नीतिको क्या नया रूप देना चाहिये, ये प्रश्न हमारे मनमें भरे हुए थे । हमारे चिन्तनका एक नमूना मेरी छावनीकी डायरीमें इस प्रकार लिखा है :

मैं अनुभव करता हूं कि (मुसलमानोंको) मनानेके प्रयत्न करनेकी अब जरूरत नहीं है । हमें चुपचाप, स्थिर गतिसे और बिना किसी दिखावेके काम करके पूर्व पाकिस्तानकी नीति पर अपनी छाप डालनी चाहिये, ताकि हम विभाजनका डंक निकाल दें और उसके जहरको बेकार बना दें । दूसरे शब्दोंमें, हमें पाकिस्तानके अवैतनिक वफादार सेवक बन जाना होगा और दोनों कौमोंकी सेवामें प्रेमपूर्वक अथक परिश्रम करके और राज्यके प्रति अचल निष्ठा रख कर

दूसरोंको उस दिशामें गतिमान करना पड़ेगा । इसका मतलब यह नहीं कि हम सत्याग्रही नहीं रहेंगे । पाकिस्तानके प्रति हमारी वफादारी सत्याग्रही ढंगकी होगी, जैसी कि भारतीय संघके प्रति है और उसमें सत्यरूपी ईश्वरके प्रति हमारी सर्वोपरि निष्ठा रहेगी । "मेरा देश सही हो या गलत, मैं उसका हूं" यह नीति सत्याग्रहीके लिए नहीं हो सकती । मुझे आशा है कि बापूके आगमन पर हिन्दू-मुसलमान दोनोंको और अधिकारियोंको भी इस नये दृष्टिकोणकी शिक्षा दी जायगी ।

अपने मिशनके इस दौर पर हमें अग्रसर करने और हमारा पथ-प्रदर्शन करनेके लिए बापूकी उपस्थिति हमारे लिए सर्वोपरि महत्त्वकी बात बन गयी । इसलिए हमें बड़ी अशान्ति हुई जब हमने सुना कि स्थानीय मुस्लिम नेता खुले तौर पर कह रहे हैं कि गांधीजीको नोआखाली वापस नहीं आने दिया जायगा । उनके सतत कलकत्ते रुके रहनेसे हमारी बेचैनी और बढ़ गई ।

एक और कारण भी था । जुलाई १९४७ के मध्यमें आजाद हिन्द फौजके कर्नल जीवनसिंहने, जो हमारे साथ नोआखालीमें काम कर रहे थे, पूर्व पंजाबके कुछ जिलोंका दौरा करनेके बाद यह खबर दी कि उस इलाकेमें प्रत्येक गांव, लगभग प्रत्येक घर, एक शस्त्रागार बनाया जा रहा है । हिन्दू, मुसलमान और सिक्ख सब बड़ी तेजीसे लड़नेकी तैयारी कर रहे हैं । सैनिक गोदामोंसे होनेवाला हथियारोंका खुला व्यापार भयंकर रूप धारण कर रहा है । इन हथियारोंमें हथगोले, स्टेन-गन और छोटी तोपें भी हैं, जिन्हें गोरखे और लापरवाह अंग्रेज सिपाही निश्चित दलाली लेकर बेच रहे हैं । मुझे कई पत्र और छपे हुए पर्चे मिले, जो कुछ स्थानीय मुस्लिम लीगी संगठनों और पश्चिम पंजाबके मेरे अपने शहरके मौलवियोंके नामसे जारी किये गये थे और जिनमें मुसलमानोंको हिन्दुओंके विरुद्ध हत्या, अग्निकांड, स्त्रियोंका अपहरण करने और लूटपाट मचानेके लिए उभाड़ा गया था और उसके लिए ब्यौरेवार हिंदायतें दी गई थीं । मैंने ये चीजें गांधीजीके पास भेज दीं और उनसे सलाह मांगी : क्या मेरा यह कर्तव्य नहीं है कि में (उमकी) परीक्षाके समय अपने ही लोगोंके साथ रहूं ? औरोंसे वीरोंकी अहिंसाकी साधना करनेके लिए मैं कहूं तो उससे क्या फायदा, अगर मेरे अपने लोग खतरेके सामने सफेद झण्डी दिखाकर दूसरोंके लिए अपमान-जनक उदाहरण उपस्थित करें ?

उत्तरमें गांधीजीने लिखा कि सत्याग्रही अपने आदमियों और दूसरोंके बीच कोई भेदभाव नहीं रख सकता। "जैसे मैं अब पोरबन्दरका नहीं रहा, वैसे ही तुम भी अब गुजरात (पश्चिम पंजाब) के नहीं रहे। यदि सारा पोरबन्दर जल कर खाक हो जाय, तो भी वहां दौड़ जानेके लिए मुझे कोई विशेष प्रेरणा भीतरसे नहीं होगी। यही बात तुम्हारे मामलेमें भी होनी चाहिये।" [गांधीजीका पत्र प्यारेलालको, ३ अगस्त, १९४७]

दूसरे शब्दोंमें, मनुष्य एक ही समयमें सब जगह उपस्थित नहीं रह सकता। एक स्थानसे भाग कर दूसरे स्थान पर जानेसे किसी भी स्थानकी आग नहीं बुझाई जा सकती। परन्तु अपने कर्तव्य-स्थल पर डटे रह कर, जहां विधाताने हमें रख दिया है कमसे कम उस स्थानको तो हम सुरक्षित बनानेकी आशा रख सकते हैं और इस प्रकार आगको सर्वत्र फैलनेसे रोक सकते हैं। गांधीजीने आगे कहा: यही कारण है कि मैं १५ अगस्तसे पहले नोआखाली लौट जानेके लिए इतना उत्सुक हूं, क्योंकि वह मेरा स्वाभाविक कर्तव्य-स्थल है। और अब ऐसा लगता है कि मेरे कलकत्ते रहते रहते सारे पंजाबमें आग भड़क सकती है। ईश्वर ही जानता है कि इसकी नोआखाली और पूवे बंगालमें क्या प्रतिक्रिया होगी।

इसलिए हम लोगोंने यह निश्चय किया कि हममें से दो अर्थात् चारु चौधरी और मैं स्वयं गांधीजीसे कलकत्तेमें मिलें और उनके सामने अपना दृष्टिकोण रखकर उन्हें मनायें कि वे नोआखाली आनेका विचार छोड़ न दें। हम २९ अगस्तको नोआखालीसे चल कर ३० तारीखकी रातमें कलकत्ते पहुंचे।

---

* यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः॥ १२-१५
यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः॥ १२-१७

३

छह महीनेसे अधिक समयके बाद — जिस अर्सेमें जीवनका प्रवाह ही बदल गया था — वही पुराना सुपरिचित मुख देखना और वहीं पुरानी सुपरिचित आवाज सुनना एक भावाभिभूत कर देनेवाला

अनुभव था । वह महान क्षण निकट आ रहा था । वह क्रमशः घटती हुई बाधा, जो साधकको अहिंसाकी शक्ति पूरी तरह प्रकट करनेसे रोकती थी, टूटनेवाली थी । उस निर्णायक अवसर पर गांधीजीका दृष्टिकोण तीव्र उत्सुकतासे पूर्ण था, जैसे किसी वैज्ञानिकका दृष्टिकोण महत्त्वपूर्ण प्रयोगसे पहले होता है । यदि उनकी धारणा सही थी, तो हिंसाके नाजुक मर्यादा पार करते ही प्रेम अथवा आत्मबलकी एक ऐसी श्रृंखलाबद्ध प्रतिक्रिया शुरू होनी चाहिये, जो सब रुकावटें दूर कर देती है और जिसकी कोई सीमा नहीं होती । (देखिये खण्ड- २, पृष्ठ १५९-६०) । क्या उनकी धारणा कसौटी पर खरी उतरेगी और उनकी जीवनभरकी खोजमें एक और महत्त्वपूर्ण घटना बनेगी अथवा परीक्षाके बोझसे वह चूर-चूर हो जायगी?

३१ अगस्तको हमसे चर्चा होनेके बाद, गांधीजीने यह घोषणा की कि वे २ सितम्बरको नोआखालीके लिए रवाना होंगे, क्योंकि १ सितम्बरको सोमवार अर्थात् उनके मौन और विश्रामका दिन है । उस दिन शामको उस प्रभुने, जो मानवकी दीर्घदृष्टिके चूक जाने पर हर चीजको सावधानीसे देखता है, गांधीजीको सावधान कर दिया ।

चारू और मैं एक कामसे शहरमें गये हुए थे । जब हम हैदरी मेंशन लौटे तब रातके दस बज चुके थे । हमें आशा थी कि सब कोई सोये हुए मिलेंगे । इसके बजाय हमने मकानमें रोशनी जगमगाती देखी। कुछ लड़कोंने यह कहकर फाटक पर हमारी गाड़ी रोकनेकी कोशिश की कि "आप कौन हैं — हिन्दू या मुसलमान ?"

हम गाड़ीसे बाहर आ गये । उनके नायककी ठोड़ी पकड़ कर चारुने कहा : बच्चे तो इस समय बिस्तरमें सोते होते हैं । नोआखालीमें हमारे लड़के अधिक समझदारीका परिचय देते हैं । गांधी-छावनीमें हम कड़ा अनुशासन रखते हैं ।"

प्रदर्शनकारियोंने संवाद सुननेकी उत्सुकतामें पहले ही घेरा तोड़ दिया था और अस्तव्यस्त होकर वे हमारे चारों ओर इकट्ठे हो रहे थे । हम उन्हें हटा कर अन्दर चले गये । सब जगह भीड़ ही भीड़ थी । कुछ हुल्लड़-बाज मुख्य कमरेमें घुस चुके थे । दूसरे लोग चले आ रहे थे । दूसरे दिन जाकर कहीं हम इस कहानीका सूत्र जोड़ सके ।

रात १० बजेसे कुछ देर पहले एक आदमीको गांधीजीके पास लाया गया । उसके शरीर पर बहुतसी पट्टियां बंधी हुई थीं । एक जुलूसके आगे आगे कुछ उत्तेजित युवक थे । वे उसे कैसे पकड़

लाये थे और किसने उस प्रदर्शनका आयोजन किया था, यह शायद कभी भी प्रकट नहीं होगा । कई परस्पर-विरोधी बातें कही जाती थीं । एक तो यह थी कि वह एक ट्राम गाड़ीसे गिर पड़ा था । दूसरी यह थी कि रास्तेमें किसी शराबीसे उसकी भेंट हो गई और शराबीने उससे कहा कि 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' पुकारो । उसके इनकार करने पर दोनोंका झगड़ा हो गया और उसे कुछ हल्की चोटें आ गईं । कुछ साम्प्रदायिक विचारके लोगोंने इस घटनाका हाल सुना कर उस आदमीके घरका पता लगा लिया और वहांसे उसे सोतेसे उठा लाये । एक और बात यह भी कही जाती थी कि किसी मुसलमान मुहल्लेमें उसे किसी मुसलमानने छुरा मार दिया था । मारनेवालेका पता नहीं लग सका । बादमें मुख्यमंत्री डॉ. प्रफुल्ल घोषने तथाकथित छुरेबाजीके शिकारकी जांच कराई । डॉक्टरकी रिपोर्ट यह थी कि उस पर छुरेका कोई घाव नहीं दीखता । परन्तु चोटोंके ब्योरेका कोई महत्त्व नहीं था । महत्त्वकी बात यह थी कि इन नौजवानोंने कानूनको अपने हाथमें ले लिया था और न्यायाधीश, पंच और जल्लाद तीनोंका दायित्व एक ही साथ धारण कर लिया था ।

गांधीजी सो गये थे । "(कलकत्तेके समयसे) कोई १० बजे होंगे । प्रदर्शनकारी खूब जोरसे चिल्लाने लगे । मेरी नींद उचट गई, पर मैंने चुपचाप पड़े रहनेकी कोशिश की; क्योंकि मुझे मालूम नहीं था कि क्या हो रहा है । मैंने खिड़कियोंके कांच टूटनेकी आवाज सुनी । मेरी दोनों ओर दो बड़ी बहादुर लड़कियां थीं (आभा और मनु) । उन्हें मुझे नींदसे जगाना ठीक नहीं लगा । परन्तु मेरी जानकारीके बिना – क्योंकि मेरी आंखें बन्द थीं – वे भीड़के बीच चली गईं और उसे शान्त करनेका प्रयत्न करने लगीं। ईश्वरकी कृपासे उत्तेजित भीड़ने उन्हें कोई हानि नहीं पहुंचाई ।" [गांधीजीका अखबारी वक्तव्य, १ सितम्बर, १९४७]

हुल्लड़बाजों पर दोनों लड़कियोंके अनुनय-विनयका कोई असर नहीं पड़ा । उन्होंने मकानका फर्नीचर, चित्रोंके फ्रेम और रोशनीके झाड़-फानूस हॉकीके बल्लोंसे और पत्थर फेंक कर तोड़ना शुरू कर दिया । दो टोलियां थीं – एक दंगाइयोंको उभाड़नेकी कोशिश कर रही थी, दूसरी दंगाइयोंको शान्त करनेका प्रयत्न कर रही थी । समझदार वर्गने दोनों लड़कियोंको बचानेकी भरसक कोशिश की और उनसे भीतर चले जानेकी बिनती की । गांधीजीकी मंडलीमें एक व्यक्ति पायजामा पहने हुए था । उसे भूलसे मुसलमान समझकर भीड़ उस पर टूट पड़ी ।

गांधीजीके ही वर्णनको जारी रखें: "घरकी बूढ़ी मुस्लिम महिला, जिसे प्रेमसे दी अम्मा कहा जाता था, और एक मुस्लिम नौजवान मेरे गद्देके पास खड़े थे, शायद मुझे हानिसे बचाना चाहते थे। शोर बढ़ता ही गया। कुछ लोग बीचके बड़े कमरेमें घुस आये थे और उन्होंने कई दरवाजोंको तोड़ कर खोलना शुरू कर दिया था। मैंने सोचा, मुझे उठ जाना चाहिये और क्रुद्ध भीड़का सामना करना चाहिये। मैं एक दरवाजेकी देहली पर खड़ा हो गया। मित्रभाव रखनेवाले लोगोंने मुझे घेर लिया और आगे नहीं बढ़ने दिया।" [वही]

तगड़े डॉ. दिनशा मेहता घरमें थे। मगर वे बेचारे क्या कर सकते थे ? उन्हें बंगला भाषा नहीं आती थी। साथ ही "भीमका बल भी उन परिस्थितियोंमें बहुत काम नहीं दे सकता था।" [गांधीजीका पत्र सरदार पटेलको, १ सितम्बर, १९४७] गांधीजीने ऐसे अवसरों पर अपने मौनव्रतको तोड़नेकी गुंजाइश रखी थी। उन्होंने हुल्लड़बाजोंसे कहा : "यह क्या पागलपन है ? मुझ पर हमला क्यों नहीं करते? मैं तुम्हारा आक्रमण सहनेको तैयार हूं।" उन्होंने यह बात तीन बार दोहराई और अपनी बंगाली पतोहूसे अपने शब्दोंका बंगलामें उल्था करनेको कहा। "लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ। बुद्धिकी कोई बात वे सुनना ही नहीं चाहते थे। मैंने हिन्दू प्रणालीसे हाथ जोड़े। दूसरा कुछ नहीं किया। और अधिक खिड़कियोंके कांच टूटने लगे।" [गांधीजीका अखबारी वक्तव्य, १ सितम्बर, १९४७]

भीड़में से कोई चिल्लाया : "बदमाश सुहरावर्दी कहां है ?" मालूम होता है कि उनका विचार सुहरावर्दीको मार कर खतम कर देनेका था। सौभाग्यसे वे घरमें नहीं थे। वे मेरे साथ नोआखालीके लिए रवाना होनेकी तैयारी करने घर चले गये थे। उन्हें न पाकर दंगाइयोंने अपना क्रोध सुझ पर उतारा। शोरगुलका पार नहीं था।" [गांधीजीका पत्र सरदार पटेलको, १ सितम्बर, १९४७]

उसी समय जिस परिवारमें गांधीजी ठहरे थे उसके दो मुस्लिम सदस्य दौड़ते हुए अन्दर आये। उनके पीछे क्रुद्ध भीड़ लगी हुई थी। एकके शरीरसे बहुत खून बह रहा था। उसने गांधीजीके पीछे शरण ली। उसे देखकर किसीने उस पर बहुत बड़ा पत्थर तान कर फेंका। वह पासमें खड़े हुए एक मुसलमानको लगा। एक भारी लाठीके वारसे गांधीजीका सिर बाल-बाल बचा। किसीको चोट पहुंचाये बिना लाठी सामनेकी दीवारसे टकराई। अगर वह गांधीजी पर पड़ जाती तो वे वहीं ढेर हो जाते।

अन्तमें भर्राई हुई आवाजमें गांधीजी बोले : "मेरा ईश्वर मुझसे पूछता है कि 'तू कहां है ?' मुझे गहरी पीड़ा हुई है। १५ अगस्तको जो शान्ति स्थापित हुई थी, उसकी असलियत यही है ?"

कुछ मिनट बाद पुलिसका मुखिया और उसके अफसर लोग आ गये। उन्होंने गांधीजीसे भीतर चले जानेकी अपील की। उन्हें अलग ले जाकर मैंने अनुरोध किया कि हुल्लड़बाजोंके विरुद्ध बलका प्रयोग न किया जाय, क्योंकि मैं जानता था कि उसकी गांधीजी पर क्या प्रतिक्रिया होगी। कुछ समय बाद वे मकानसे भीड़को निकालनेमें सफल हुए।

गांधीजीने चारुको और मुझे बुला कर कहा : "इसके बाद मेरा नोआखाली जानेका निश्चय टूट जाता है। तुम सहमत होगे कि इस परिस्थितिमें मैं नोआखाली या कहीं भी नहीं जा सकता। मैं चाहता हूं कि इस पर विचार करके तुम मुझे बताओ। मैं नहीं जानता, ईश्वरने मेरे भाग्यमें क्या लिख रखा है। परस्तु नोआखाली जानेका तो अब कोई प्रश्न नहीं रह जाता।"

यह बातचीत मुश्किलसे पूरी हुई थी कि मुख्यमंत्री डॉ. प्रफुल्ल घोष आ पहुंचे। उन्होंने गांधीजीसे पूछा: "क्या हम हिन्दू महासभाके नेताओंको पकड़ लें ?"

गांधीजी : "नहीं। इसके बजाय आपको शान्ति कायम रखनेका भार और जिम्मेदारी उन्हीं पर डाल देनी चाहिये। उनसे पूछ लीजिये कि वे शान्ति चाहते हैं या लड़ाई। उनसे कहिये कि आप उनका सहयोग चाहते हैं और उनके उत्तरकी प्रतीक्षा कीजिये।"

जब गांधीजी सोनेके लिए बिस्तर पर गये तब साढ़े बारह बजे थे। परन्तु बाहरवाली भीड़ देर तक बादमें भी गलियोंमें घूमती रही। अन्तमें पुलिसको उसे तितर-बितर करनेके लिए अश्रुगैस इस्तेमाल करनी पड़ी। फिरसे पूरी तरह शान्ति कायम हुई तब तक रातका एक बज गया था। दो बजे तक हममें से कोई सो नहीं सका।

४

पिछली रातकी घटनाओंके समाचार सारे शहरमें आशातीत गतिसे फैल गये और दूसरे दिन सुबहसे ही हैदरी मेंशनमें चिन्तित लोगोंका तांता लग गया।

चारु चौधरीको और मुझे डर था कि अगर कलकत्तेकी स्थिति और बिगड़ेगी, तो नोआखालीमें उसकी बड़ी गंभीर प्रतिक्रिया होगी । इसलिए हमने निश्चय किया कि हम अपनी ही तरफसे हिन्दू महासभाके नेताओंके पास जायं और गांधीजी तथा शहीद सुहरावर्दीके शान्ति-प्रयत्नमें सहयोग देनेके लिए उन्हें समझायें ।

पहले हम डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जीसे मिले । वे पित्ताशयकी तीव्र व्याधिसे पीड़ित थे; उन्हें बिस्तरमें ही पूरा आराम लेनेकी सलाह दी गई थी । हमने उनसे कहा कि अगर नोआखालीकी और एक तरहसे सारे पूर्व बंगालकी अल्पसंख्यक कौमको अपार खतरेमें नहीं डालना हो, तो कलकत्तेकी स्थितिको तुरन्त काबूमें लाना पड़ेगा । उन्होंने हमारी बात बड़े ध्यानसे सुनी । अन्तमें वे बोले : "मैं जरूर अपील निकालूंगा और आप जो कुछ सुझायेंगे वह भी करूंगा ।" उन्होंने हमसे कहा कि आप एक घंटे बाद आयें; तब तक मैं अपना वक्तव्य तैयार कर लूंगा । उन्होंने अपना वचन पूरा किया । हिन्दू महासभाके दूसरे नेता एन. सी. चटर्जी अपने मकान पर नहीं थे । डॉ. मुकर्जीने हमें कहा : आप चिन्ता न करें । मैं खुद उनसे सम्पर्क स्थापित कर लूंगा ।

जब हम हैदरी मेंशन लौटे तो हमने देखा कि गांधीजी डॉ. मुकर्जीको पत्र लिख कर अनुरोध कर रहे थे कि क्या वह समय नहीं आ गया है जब कलकत्तेके हिन्दुओंके नाम उन्हें अपील निकालनी चाहिये। जब हमने डॉ. मुकर्जीके वक्तव्यका मसौदा उन्हें सौंपा, तो उनका चेहरा चमक उठा । कुछ छोटे-मोटे परिवर्तनोंके साथ वह दूसरे दिन अखबारोंमें प्रकाशित करनेके लिए भेज दिया गया :

> भारतकी शान्तिके लिए पश्चिम बंगाल और पूरे बंगालमें शान्तिपूर्ण परिस्थितियोंका बना रहना अत्यावश्यक है । कलकत्ता शान्ति-स्थापनाकी कुंजी है । यदि यहां शान्ति रहे, तो उसका प्रभाव पूर्व बंगालमें अवश्य पड़ेगा । समूचे बंगालकी शान्तिका असर समस्त पंजाब पर भी होगा। . . . बंगालकी बहुसंख्यक कौमको समझ लेना चाहिये कि अल्पसंख्यक कौमके निर्दोष व्यक्तियोंको अविचारी बनकर सतानेमें कोई लाभ नहीं है; और उससे ऐसा कुचक्र पैदा होता है, जिसे तोड़कर हम कभी बाहर नहीं निकल सकते । दोनों कौमोंके नेताओंको अपने सम्मिलित प्रयत्नोंसे इसका ध्यान रखना होगा ।

दोपहरके बाद दो बजे खबर आई कि नगरके कई भागोंमें एकसाथ साम्प्रदायिक अग्नि भड़क उठी है। हर दस मिनट पर दुर्घटनाओंके नये नये समाचार आते रहे और प्रत्येक नये समाचारके साथ गांधीजीका आत्म-निरीक्षण गहरा होता गया। वे तीसरे पहर फलोंका रस पिया करते थे। उस दिन जब रस उनके पास लाया गया, तो उन्होंने पीनेसे इनकार कर दिया।

उस दिनकी खबरोंने बेलियाघाटके ज्यादा गरीब मुस्लिम निवासियोंमें घबराहट पैदा कर दी थी, जो गांधीजीके पिछले आश्वासनोंके बल पर अपने घरोंको लौट आये थे। उनकी एक टोली निकटतम मुस्लिम मुहल्लेमें जानेके लिए एक खुली ट्रक पर चढ़ कर गई। जब उन्हें ले जानेवाली ट्रक गांधीजीके निवास-स्थानके पास बने एक कब्रस्तानके नजदीक होकर निकली, तो पासकी एक इमारतसे उस पर हथगोले फेंके गये और दो मुसलमान उसी क्षण मर गये।

ज्यों ही गांधीजीने इस घटनाका हाल सुना, उन्होंने जाकर उसके शिकार हुए लोगोंको देखनेकी इच्छा प्रगट की। वह बड़ा करुण दृश्य था। दोनों आदमी खूनमें लथपथ थे, उनकी आंखें चमक रही थीं और उनके घावों पर मक्खियोंका झुंड भिनभिना रहा था। अवश्य ही वे बेचारे रोजहा मजदूर रहे होंगे। उनमें से एक फटी हुई धोती पहने था। उसके पासकी एक चवन्नी उसके कपड़ेसे निकल कर उसकी लाशके पास आ पड़ी थी। गांधीजी निर्दोष मनुष्योंकी इस अकारण हत्याको देखकर स्तब्ध हो गये। जब वे अपने निवास-स्थान पर लौट आये तो किसीने उनसे पूछा : "क्या आप उपवासका विचार कर रहे हैं?"

उन्होंने उत्तर दिया: "आप ठीक कहते हैं। मैं प्रकाशके लिए प्रार्थना कर रहा हूं। संभव है, रात पड़ते पड़ते मुझे कोई स्पष्ट संकेत मिल जाय।

गांधीजीका पत्र सरदार पटेलको

१ सितम्बर, १९४७

आज तो हर जगह लड़ाईकी तैयारियां होती दिखाई दे रही हैं। में अभी दो मुसलमानोंकी लाशें देखकर लौटा हूं, जो हथगोलोंके घावोंके कारण मर गये हैं। मैं सुनता हूं कि अनेक स्थानों पर यह आग भड़क उठी है। जो "कलकत्तेका चमत्कार" माना गया था, वह चार दिनकी चांदनी सिद्ध हुआ। आजकी परिस्थितियोंमें मेरा क्या धर्म है, यही मैं सोच रहा हूं। यह मैं लगभग शामके

६ बजे लिख रहा हूं। यह पत्र कलकी डाकसे रवाना होगा। इसलिए मैं उसमें और भी कुछ जोड़ सकूंगा। जवाहरका तार है कि मुझे पंजाब जाना चाहिये। अब मैं पंजाब कैसे जा सकता हूं? मैं गहरा आत्म-निरीक्षण कर रहा हूं। इसमें मौन मेरा सहायक होता है।

आभा शहरमें अपने सम्बन्धियोंसे मिलने गई थी। वह पुलिसकी सहायतासे ६ बजे शामको ही लौट सकी। रास्तेमें उसकी गाड़ी पर पत्थर फेंके गये। दंगेके जो समाचार उसने दिये, वे बहुत बुरे थे।

शामकी प्रार्थना घरके भीतर हुई। प्रार्थनामें यह गुजराती भजन गाया गया : "हरिने भजतां हजी कोईनी लाज जती नथी जाणी रे" – हरिके मार्ग पर चलनेवालोंको कभी अपमानित होते नहीं देखा गया। प्रार्थना अभी हो रही थी कि शहीद सुहरावर्दी एन. सी. चटर्जी और कई मारवाड़ी व्यापारियोंको लेकर अन्दर आये। उन सबने स्वीकार किया कि हिन्दुओंका दिमाग बिलकुल खराब हो गया है।

एक मारवाड़ी मित्रने पूछा : "हम कैसे मदद कर सकते हैं?"

गांधीजी : "आपको आगकी ज्वालाओंमें जाकर उसे फैलनेसे रोकना चाहिये अथवा इस प्रयत्नमें मर जाना चाहिये। आपमें से कई आदमी नगरके पुराने व्यवसायी हैं। कमसे कम जिन मोहल्लोंमें आप व्यवसाय करते हें, वहां तो आपकी उपस्थितिका असर पड़ना चाहिये। परन्तु किसी भी सूरतमें असफलताकी खबर देनेके लिए जीवित मत लौटना।"

"यह सब सिक्खोंका काम है। वे यहां पश्चिम पंजाबकी घटनाओंका बदला लेना चाहते हैं।"

"जो भी इसके लिए जिम्मेदार हैं उन्हें इस पर पछताना होगा। वे नहीं जानते कि इसकी उन्हें कितनी कीमत चुकानी पड़ेगी। अन्तमें हरिकी इच्छा ही पूरी होगी।"

जब गांधीजी इन मित्रोंसे बातें कर रहे थे तब भी अपने मनसे यह प्रश्न पूछ रहे थे: "मैं इस चित्रमें कहां आता हूं? जब तक मैं स्वयं उदाहरण सामने न रखूं, तब तक क्या मुझे दूसरोंको बिनमांगी सलाह देनेका अधिकार है?" प्रकट रूपमें बोलते हुए उन्होंने कहा: "मैं उन्मत्त भीड़के बीच दौड़ जाना चाहता हूं। परन्तु यदि मैं ऐसा करनेका प्रयत्न करूं, तो सबका ध्यान मेरी ओर चला आयेगा।... इस प्रकार जन-साधारणके कल्पना-शील स्नेहने मेरे लिए वह रास्ता बन्द कर दिया है। परन्तु स्थिति चोटीके लोगोंका बलिदान मांगती है। अब तक विनाशके शिकार, दो अपवादोंके सिवा, अज्ञात साधारण लोगोंमें से ही हुए हैं।... इतना काफी नहीं है।"

जब आगन्तुक चले गये तो गांधीजी अपनी शामकी सैरके लिए निकले । और घर पर लौटनेसे पहले उन्हें मालूम हो गया कि उन्हें क्या करना चाहिये ।

भयंकर मानसिक तनावसे उन्हें तीव्र पेचिश हो गई थी । शामको उन्होंने कोई भोजन लेनेसे इनकार कर दिया । वे बोले: "जब मुझे इतनी मानसिक अस्वस्थता महसूस हो रही थी तब सवेरे भी कुछ खाकर मैंने मूर्खता ही की ।"

गरम पानी और ग्लुकोजका एक गिलास लेकर वे अपने निश्चयको प्रकट करनेवाला वक्तव्य तैयार करने बैठे ।

जब राजाजी १० बजे रातको आये तो गांधीजीने उन्हें अपना मसौदा बताया । उस पर नजर डालकर राजाजीने सदाकी भांति स्नेहपूर्ण चुटकी लेते हुए कहा : "आप मुझसे यह आशा तो नहीं रखते होंगे कि मैं आपके इस कदमको पसन्द करूंगा ।" दोनोंने मिलकर स्थितिका अनुमान लगाया और जो प्रश्न सामने थे उन पर विस्तारसे चर्चा की ।

राजाजी : "क्या हम गुंडोंके खिलाफ उपवास कर सकते हैं ?"

गांधीजी : "मैं उन लोगोंके दिलोंको छूना चाहता हूं, जो गुंडोंको पीछेसे सहारा देते हैं । गुंडोंके हृदयों पर कोई असर डाला जा सके या न डाला जा सके, मेरे मतलबके लिए इतना काफी है कि वे इस बातको समझ लें कि आम तौर पर समाजमें उनके उद्देश्यों अथवा उपायोंके लिए कोई सहानुभूति नहीं है और यह कि शान्तिप्रेमी लोगोंने निश्चय कर लिया है कि या तो वे अपना ध्येय सिद्ध करेंगे या इस प्रयत्नमें मर मिटेंगे ।"

राजाजी : "थोड़े समय और रुक कर क्यों न देख लिया जाय ?"

गांधीजी : "उपवास या तो अभी होगा या कभी नहीं होगा । बादमें बहुत देर हो जायगी । अल्पसंख्यक कौमको आजकी भयंकर स्थितिमें नहीं छोड़ा जा सकता । मेरे उपवाससे यदि कोई भलाई होनी है, तो उसे बुराईको रोकना होगा । मैं जानता हूं कि अगर मैं कलकत्तेको काबूमें रख सकूं, तो पंजाबसे भी निबट सकूंगा । परन्तु यदि मैं इस समय लड़खड़ाता हूं तो आग फैल सकती है; और मैं स्पष्ट

देख सकता हूं कि शीघ्र ही दो-तीन सत्ताएं हम पर टूट पड़ेंगी और इस प्रकार हमारे स्वाधीनताके चन्दरोजा सपनेको खतम कर देंगी ।"

राजाजी : "लेकिन मान लीजिये कि आप इस उपवासमें मर जाते हैं; तब तो यह आग और भी भयंकर रूपमें फैलेगी ।"

गांधीजी : "कमसे कम मैं उसका जीवित साक्षी तो नहीं रहूंगा । मैं अपना कर्तव्य पालन कर चुकूंगा । मनुष्यके हाथमें इससे ज्यादा क्या है ?"

राजाजीने हथियार डाल दिये ।

अपने मसौदेमें गांधीजीने पानीको पीने लायक बनानेके लिए अपने हाथमें यह छूट रख ली थी कि चाहें तो पानीमें खट्टे नीबूका रस वे ले सकेंगे । दक्षिण अफ्रीकाके अपने चौदह दिनके सर्व-प्रथम उपवाससे ही उन्हें सादे पानीसे ऐसी विचित्र अरुचि हो गई थी कि उससे मतली होती थी ।

राजाजी : "अगर आप अपनेको पूरी तरह ईश्वरके हाथोंमें छोड़ देना चाहते हैं, तो फिर पानीमें खट्टे नीबूका रस भी क्यों मिलायें ?"

गांधीजी : "आप ठीक कहते हैं । मैंने यह बात कमजोरीके कारण इसमें रहने दी । जब मैंने यह लिखा तब भी मुझे खटका था । सत्याग्रहीको अपने शर्तवाले उपवासके बाद जीवित रहनेकी आशा केवल उपवासकी शर्तें समयसे पूरी होने पर ही रखनी चाहिये ।"

बस, खट्टे नीबूके रसवाला अंश मसौदेमें से काट दिया गया और श्रद्धाका विशुद्ध साहस आरंभ हो गया । जब राजाजी अंतिम वक्तव्य लेकर गये तब ग्यारह बज चुके थे । वह उसी रात अखबारोंको दे दिया गया । ३१ अगस्तकी रातको हैदरी मेंशनमें हुए उपद्रवोंका उल्लेख करनेके बाद उसमें कहा गया था :

> इस घटनासे क्या पाठ मिलता है ? मेरे लिए तो यह स्पष्ट है कि यदि भारतको अपनी महंगी स्वाधीनता चिरस्थायी बनानी हो, तो उसके सभी नर-नारियोंको अपराधीको स्वयं मारनेका कानून पूरी तरह भूल जाना चाहिये । जो कुछ किया गया वह तो उसकी तुच्छ नकल थी । . . . यदि सभ्य समाजके प्रारंभिक नियमका भी पालन न किया जाय, तो कलकत्तेमें अथवा

और कहीं शान्ति बनाये रखनेका कोई मार्ग नहीं है । . . . जहां तक कानूनको अपने हाथमें न लेनेका स्वर्ण-नियम पालनेका सम्बन्ध है, इसमें कोई अपवाद नहीं होते । . . .

शान्तिके पहले ही दिनसे – अर्थात् १४ अगस्तसे ही मैं कहता रहा हूं कि यह शान्ति कहीं अस्थायी न हो । वह कोई चमत्कार नहीं था । क्या मेरी वह चेतावनी सही साबित होगी और कलकत्ता फिर जंगलके कानूनका शिकार हो जायगा ? हम आशा करें कि ऐसा नहीं होगा । हम सर्व-शक्तिमान परमेश्वरसे प्रार्थना करें कि वह हमारे हृदयोंको स्पर्श करे और पागलपनको फिरसे कलकत्तेमें न फैलने दे ।

जब ये पंक्तियां लिखी गई थीं . . . उसके बाद कुछ स्थान, जो कल (३१ अगस्त) तक सुरक्षित थे, अचानक अरक्षित हो गये हैं । कई आदमी मारे गये हैं । मैंने दो बहुत ही गरीब मुसलमानोंके शव देखे । मैंने यह भी देखा कि कुछ अभागे दिखाई देनेवाले मुसलमानोंको बैलगाड़ीमें भर कर सुरक्षित स्थान पर ले जाया जा रहा था । मैं पूरी तरह समझता हूं कि कल रातकी जिन घटनाओंका ऊपर इतना संपूर्ण वर्णन हो चुका है, उनका इस अचानक विस्फोटके सामने कोई महत्त्व नहीं रह जाता । खुली आगमें इधर-उधर घूम कर मैं जो भी कर सकूंगा, उससे यह आग संभवत: बुझेगी नहीं ।

जो मित्र मुझसे मिले उनसे मैंने कह दिया है . . . कि उनका कर्तव्य क्या है । इस आगको रोकनेके लिए मुझे स्वयं क्या पार्ट अदा करना है ? सिक्खों और हिन्दुओंको यह नहीं भूलना चाहिये कि इन चन्द दिनोंमें पूर्व पंजाबने क्या क्या किया है । अब पश्चिम पंजाबके मुसलमानोंने पागलों जैसा बरताव शुरू कर दिया है । कहते हैं कि कलकत्तेके सिक्ख और हिन्दू पंजाबकी घटनाओंसे बहुत चिढ़ गये हैं ।

अब जब कलकत्तेका बुलबुला फूटा हुआ मालूम होता है तब मैं क्या मुंह लेकर पंजाब जा सकता हूं ? आज तक मेरे लिए जो शस्त्र अचूक साबित हुआ है, वह उपवास है । शोर मचानेवाली भीड़को दर्शन दे देनेसे सदा काम नहीं बनता । कल रातको तो बेशक नहीं ही बना । स्वयं मेरे कहनेसे जो बात नहीं हो सकती, वह शायद मेरे उपवास करनेसे हो जाय । यदि कलकत्तेमें मेरा उपवास लड़नेवाले सभी तत्त्वोंके हृदयोंको छू दे, तो पंजाबमें भी वह ऐसे सब

तत्त्वोंको छू सकता है । इसलिए मैं आज रातको ८। बजेसे उपवास शुरू करूंगा और वह तभी समाप्त होगा जब कलकत्तेमें फिरसे सयानपन आ जायगा । हमेशाकी तरह मैं उपवासके दौरान जो पानी पिऊंगा उसमें नमक और सोडा मिलानेकी छूट रखूंगा ।

यदि कलकत्तेके लोग चाहते हैं कि मैं पंजाब जाकर वहांके लोगोंकी मदद करूं, तो उन्हें जल्दीसे जल्दी ऐसी परिस्थिति खड़ी करनी होगी जिससे मैं उपवास खोल सकूं । [गांधीजीका अखबारी वक्तव्य, १ सितम्बर, १९४७]

अखबारोंको दिये गये एक अतिरिक्त वक्तव्यमें राजाजीने कहा कि यदि कलकत्तेमें उत्पात शुरू न होता, तो गांधीजी पंजाब चले जाते । उन्हें पंजाब भेजना आपके हाथमें है । "पंजाबके स्त्री-बच्चे उन्हें अपने बीच देखनेको बहुत उत्सुक हैं और चाहते है कि गांधीजी आकर अपने वचन और आत्माके प्रभावसे उनके रिसते घावोंको भरें । आइये, हम कलकत्तेमें उन्हें विजय-माला पहनाकर उस पीड़ित प्रान्तमें भेजें ।"

५

राजाजीके चले जानेके बाद गांधीजीने आभा और मनुको जगाया और उनसे कहा कि आज रातके ८। बजेसे मेरा उपवास शुरू हो गया है । वह तभी समाप्त होगा जब दंगे बन्द हो जायंगे । वह "करो या मरो" का प्रतीक होगा । या तो शान्ति होगी या मेरी मौत ।

बेचारी लड़कियोंसे जो कहा गया उसे वे शून्य दृष्टिसे सुनती रहीं । गांधीजीने उन्हें डांटा : "तुम दोनों पर उपवासके दिनोंमें मेरी देखभालकी जिम्मेदारी रहेगी । तुम्हें सदाकी भांति खाना और आराम करना चाहिये । अगर तुम अपनेको तंदुरुस्त नहीं रखोगी, तो तुम अपना कर्तव्य-पालन नहीं कर सकोगी।" इससे वे धरती पर उतर आईं ।

गांधीजीका पत्र सरदार पटेलको

२ सितम्बर, १९४७

कल पत्र लिखनेके बाद . . . बहुतसे समाचार और आये हैं । कई लोग मुझसे आकर मिले भी हैं । मैं पहले ही अपने मनके भीतर सोच रहा था कि मेरा कर्तव्य क्या है । जो खबर मिली उसने मेरे लिए इस प्रश्नको निश्चित बना दिया । मैंने उपवास करनेका निश्चय किया । वह

कल रातको ८। बजेसे शुरू हो गया है । राजाजी कल रात आये थे । उन्हें जो कुछ कहना था उसे मैं धीरजके साथ सुनता रहा । उन्होंने हर तरहकी दलीलें मेरे साथ कर लीं । . . . परन्तु उनकी एक भी दलील मेरे गले नहीं उतरी । . . . किसीको घबरानेकी जरूरत नहीं । घबरानेसे कोई मदद नहीं मिलेगी । यदि नेता सच्चे दिलसे चाहेंगे, तो मारकाट बन्द हो जायगी और उपवास छूट जायगा । और यदि हत्याकाण्ड चलता रहा तो मेरे जीनेसे क्या लाभ ? यदि मैं लोगोंको पागल बननेसे नहीं रोक सकता, तो मेरे लिए करनेको और काम ही क्या रह जाता है ? यदि ईश्वर इस शरीरसे काम लेना चाहता है, तो वह लोगोंके दिलोंमें घुस कर उनमें फिरसे सयानपन पैदा करेगा और मेरे शरीरकी रक्षा करेगा । मैंने तो उसीके नाम पर उपवासका बीड़ा उठाया है । ईश्वर आप सबको स्वस्थ रखे और आप सबकी रक्षा करे । इस आगमें औरोंसे बहुत सहायता नहीं मिल सकेगी ।

पंडित नेहरूका दूसरा तार आया, जिसमें गांधीजीको पंजाब बुलाया गया था । इस पर गांधीजीने यह कहा : "अब मैं सुख और शान्ति अनुभव करता हूं, क्योंकि मैं वही कर रहा हूं जो मेरा कर्तव्य मुझसे कराता है ।" पंडित नेहरूके तारके उत्तरमें उन्होंने लिखा :

गांधीजीका पत्र पंडित नेहरूको

२ सितम्बर, १९४७

मैं आज लाहौरके लिए रवाना हो जाता, परन्तु कलकत्तेके विस्फोटके कारण नहीं जा सका । यदि यह क्रोध शान्त न हुआ, तो मेरे पंजाब जानेसे कोई लाभ नहीं होगा । मुझमें थोड़ा भी आत्मविश्वास नहीं रहेगा । यदि कलकत्तेकी मित्रता गलत थी, तो मैं पंजाबकी स्थिति पर असर डालनेकी आशा कैसे रख सकता हूं ? इसलिए कलकत्तेसे मेरा प्रस्थान कलकत्तेके मेरे उपवासके परिणाम पर ही निर्भर करता है । उपवासके लिए दुःखी या नाराज न होना ।

कलकत्ते पर २ सितम्बरका प्रभात उदय हुआ तब दंगे हो ही रहे थे । पिछली रातसे शहरमें शान्तिदल घूम रहे थे । फिर भी आगके कम होनेके कोई लक्षण दिखाई नहीं दिये ।

प्राकृतिक चिकित्सक दिनशा मेहताने डॉक्टरी जांच की, तो पता चला कि औसतन् १९ सेकंडमें दिलकी चार धड़कनें अर्थात् लगभग हर चौथी धड़कन कम हो रही थी । यह इस बातका संकेत था कि

गांधीजीके मन पर परिस्थितियोंका कितना भयंकर दबाव पड़ रहा था। डॉ. दिनशाने गांधीजीसे कहा : आपको कमसे कम दो सेर पानी रोज लेना चाहिये। गांधीजीने उत्तर दिया: "मैं कोशिश करूंगा। परन्तु यदि रामनाम मेरे हृदयमें अंकित है, तो मुझे पानीकी भी जरूरत नहीं होनी चाहिये। आप देखते हैं कि आज मैं कितना शान्त हूं। इससे पहले मुझे रातमें भी मुश्किलसे नींद आती थी।"

दिनमें जोरकी वर्षा हो जानेसे शहरके बड़े भागमें आवागमन बन्द हो गया। परन्तु दंगे तो होते ही रहे। मालिश, स्नान और गरम पानीके एनिमाके बाद (यह मामूली इलाज था, जो गांधीजी उपवासके दिनोंमें हमेशा करते थे) उन्होंने आठ औंस सादा गरम पानी धीरे धीरे एक एक घूंट करके पिया। इसमें उन्हें पूरा एक घंटा लगा।

जैसे-जैसे दिन आगे बढ़ता गया वैसे-वैसे गांधीजीमें बढ़ती हुई दुर्बलताके चिह्न दिखाई देने लगे। उनकी आवाज मन्द हो गई। लगभग एक घंटेके आरामके बाद डेढ़ बजे उन्होंने फिर आठ औंस गरम पानी लिया।

एक साथी कार्यकर्ता दोपहरको खबर लाये कि जकरिया स्ट्रीटमें व्यापक लूटपाट हो रही है और जोरकी गोली चल रही है। सशस्त्र पुलिस एक मस्जिदमें घुस गई है और जिन लोगोंने वहां शरण ली है उन्हें तंग कर रही है। तीसरे पहर भी दूरसे गोलियोंकी आवाज सुनाई देती थी।

प्रो. निर्मल बोस शरत् चन्द्र बोससे मिलने गये थे। लौट कर वे खबर लाये कि दंगे अधिकतर सिक्ख और बिहारी कर रहे हैं। बंगाली उसमें तुरन्त शामिल हो गये। नगरके विभिन्न भागोंमें लूटपाट जारी है। कई स्थानों पर गोलियां चल रही हैं, परन्तु मारकाट बन्द हो गई दीखती है। सियालदा रेलवे स्टेशनके पासका एक मुस्लिम होटल जला दिया गया है। कई जगह पुलिस अपना कर्तव्य पालन नहीं कर रही है। शरत् बोसके खयालसे यह मामूली हुल्लड़बाजोंका काम नहीं है। इसके पीछे कोई योजना और संगठन है। शरत् बोसने कुछ नाम भी बताये।

डॉ. प्रफुल्ल घोषकी भी यही राय मालूम हुई कि जो घटनाएं हो रही थीं उनकी बहुत कुछ जिम्मेदारी सिक्खों पर थी। उनका सुझाव था कि सब दलोंके प्रतिनिधियोंकी एक प्रतिनिधि-सभा बुलाई जाय और वह ऐसे उपाय निश्चित करे जो स्थितिको काबूमें लानेके लिए किये जाने चाहिये। गांधीजीके वक्तव्यको हिन्दी, बंगला और उर्दूमें छपवा कर व्यापक पैमाने पर बांटना चाहिये।

पौने चार बजे गांधीजीने फिर ८ औंस ठंडा पानी लिया ।

थोड़ी देर बाद शरत् बोस उनसे मिलने आये । जबसे गांधीजीने संयुक्त सर्वसत्ताधारी बंगालके बारेमें उनके प्रस्तावका समर्थन बंद कर दिया था, तभीसे उनके मनमें गांधीजीके खिलाफ शिकायत रही थी । गांधीजीके कलकत्ता आनेके बाद वे पहली ही बार उनसे मिलने आये थे ।

गांधीजी (हंसकर) : "तो आपको मेरे पास आनेके लिए उपवासकी जरूरत थी ?"

शरत् बोस : "मुझे लगता था कि आपको मेरी कोई चिन्ता नहीं है । परन्तु मैं आपकी शक्ति पर जोर नहीं डालूंगा । आपको बात करनेकी इजाजत है ?"

गांधीजी : "मुझे बात तो करती पड़ती है – कमसे कम उस उद्देश्यके खातिर जिसके लिए मैं यह उपवास कर रहा हूं ।"

शरत् बोस: "मैं देशके विभाजनका सदा विरोधी रहा हूं । मैने अपने विचार कभी नहीं छिपाये । मैं साफ बात कहनेवाला आदमी हूं । मैं पहले नहीं आया, क्योंकि – जैसा मैं पहले ही कह चुका हूं – मैं मानता था कि आपके लिए मेरा बहुत उपयोग नहीं है ।"

गांधीजी : " सभी समूहों और दलोंके प्रतिनिधियोंने आकर मुझसे पूछा है कि मैंने आपको क्यों नहीं बुलाया । उनमें से कुछने कहा कि हमें शक है कि (शरत् बोसके छोटे भाई नेताजी सुभाष बोस द्वारा स्थापित) फार्वर्ड ब्लॉकके लोग इन दंगोंके पीछे हैं । मैंने उनसे कहा कि शरत् बोस जानते हैं कि मेरा द्वार उनके लिए सदा खुला है । वे जब भी ठीक समझेंगे आ जायंगे ।"

गांधीजीके उद्गारने शरत बोसके दिलके पुराने घावको कुरेद दिया ।

"अन्याय तूने
जो किया,
प्रतीति मैं –
उसकी यहां करूँ ।"

उनके हृदयमें जो कुछ भरा था उसे उन्होंने बाहर उंडेल दिया : "आपने अपने प्रार्थना-प्रवचनमें कहा कि मैं भ्रष्टाचारमें . . . पानीकी तरह रुपया बहा रहा हूं ।"

गांधीजी : "तब क्या आपका स्पष्ट कर्तव्य नहीं था कि मेरे पास आकर आप मेरी शंकायें दूर करते – यदि मेरी शंकायें बेबुनियाद थीं ? मित्रताका विशेषाधिकार है कि अपने मनकी बात मनमें न रख कर निर्भयता-पूर्वक साफ साफ कह दी जाय और गलतफहमीका डर न रखा जाय । अन्यथा मित्रताका मूल्य ही क्या ? आपके सुहरावर्दीने कहा है कि आप पानीकी तरह रुपया बहाते हैं (सुहरावर्दी शरत् बोसके संयुक्त सर्वसत्ता-धारी बंगालके प्रस्तावमें उनके साथी थे और अपनी उड़ाऊ आदतोंके लिए मशहूर थे) । परन्तु इस कारण आपको मुझसे शिकायत थी, तो आपने उसका सार्वजनिक रूपमें खण्डन क्यों नहीं किया ? अथवा आप मुझे लिख सकते थे । तब या तो मैं अपना आशय आपको समझा देता या मेरी कोई गलतफहमी होती तो आप उसे दूर कर देते । उस हालतमें मैं अपने शब्द वापस ले लेता । सच्ची मित्रताका यही तकाजा था ।"

शरत् बोस: "खैर, जो हो गया सो हो गया । अब आपको फार्वर्ड ब्लॉकसे क्या शिकायत है ?"

गांधीजी : "हिन्दू महासभाके लोग कहते हैं कि इस विनाशके पीछे फार्वर्ड ब्लॉकके लोगोंका हाथ है । मेरा धर्म है कि मैं यह आरोप आपके सामने रखूं ।"

शरत् बोस: "आप चाहें तो इसमें विश्वास कर सकते हैं । परन्तु मैं आपसे कहता हूं कि हिन्दू महासभाके कुछ लोगोंका इस काममें हाथ है । वे ही सिक्खोंको यह कहकर उभाड़ रहे हैं कि जब पंजाब जल रहा है तब उनका चुपचाप देखते रहना नामर्दी है । मैं उनके नाम तक बता सकता हूं ।"

गांधीजी : "एक-दूसरेकी निन्दा करनेसे कोई नतीजा नहीं निकलेगा । मैं यहां न्याय करने नहीं आया हूं । मेरा उपवास तो सबसे अपने अपने दिल टटोलनेकी अपील करनेके लिए है । इसका परिणाम सर्वांगीण आत्मशुद्धिमें आना चाहिये । जब प्रारंभिक हृदय-शुद्धि हो जाय तब हिन्दुओं और मुसलमानोंके दलोंको उपद्रव-पीड़ित क्षेत्रोंमें एकसाथ घूमना चाहिये और पुलिसको उसके कठिन कर्तव्यसे मुक्त करना चाहिये । अथवा उन्हें खुले तौर पर कह देना चाहिये कि वे लड़ना चाहते हैं । फार्वर्ड ब्लॉक और हिन्दू महासभाके परस्पर वाग्युद्ध करने और परस्पर निन्दा करनेसे क्या फायदा ? हम पुलिस और सेनाकी सहायतासे कब तक काम चला सकते हैं ?"

इतनेमें शरत् बोसके लिए चाय आ जानेसे बातचीत यहां रुक गयी । तेज चाय लेनेकी उनकी आदत सबको मालूम थी और अक्सर मित्रोंमें इस पर सद्भावपूर्ण विनोद भी हुआ करता था । गांधीजीने

उन्हें चुटकी ली : "मैं ऐसी चायका उत्तम उपयोग यह करूं कि उसे नालीमें बहा दूं।" और फिर बालोचित हंसीके साथ आंखें मटकाकर गांधीजी बोले : "लेकिन शायद आप इसका उत्तर यह देंगे कि नरम स्वाधीनतासे तेज चाय अच्छी है।"

गांधीजीका इशारा शरत् बोस और कांग्रेसके बीच उन समझौतोंके सम्बन्धमें खड़े हुए मतभेदोंकी ओर था, जो कांग्रेसने सत्ताके हस्तांतरणके लिए ब्रिटिश सरकारके साथ हुई राजनीतिक वार्ताओंके दौरान किये थे। उनके कारण शरत् बोसने कांग्रेस कार्यसमितिसे त्यागपत्र दे दिया था।

जो व्यक्ति कांग्रेसका पक्षपाती माना जाता था, उसकी ओरसे कांग्रेस पर विनोदपूर्ण कटाक्ष होनेसे वह तनाव दूर हो गया, जो दोनोंकी बातचीतके प्रारंभिक भागमें आ गया था।

शरत् बोसके दिलमें सुहरावर्दी द्वारा कही गई उनकी फिजूलखर्चीवाली बातकी कसक अब भी मौजूद थी। उसे गांधीजीने उद्धृत किया था। अब शरत् बोसने अपने 'बेवफा' भूतपूर्व साथीसे कसर निकाली। गांधीजीने पुलिस और सेनाके बारेमें जो बात कही थी और जिसका सुहरावर्दीने समर्थन किया था, उसका जिक्र करते हुए वे बोले : "बंगालकी स्थितिमें खराबी तबसे शुरू हुई जब सुहरावर्दीने पंजाबसे सशस्त्र पुलिस बुलाकर यहां रखी। अब क्या वे ब्रिटिश सेना चाहते हैं?"

गांधीजीने सुहरावर्दीके खिलाफ की गई इस छींटाकशीकी परवाह न करके धीरजसे समझाया : "नहीं, उन्होंने ब्रिटिश सेनाकी बात नहीं कही। उन्होंने सिर्फ मिली-जुली पुलिसकी बात कही थी। परन्तु इस बारेमें मुझे भी उनसे शिकायत है। यदि हमारे स्वयंसेवकोंके दिल साफ हो जायें, तो पुनः शान्ति तुरन्त स्थापित हो जाय। इसके लिए नेताओंकी हृदय-शुद्धि आवश्यक है। तभी वे आम लोगोंका स्पष्ट मार्गदर्शन कर सकेंगे। आज इसका अभाव है। पहले आपको असंदिग्ध भाषामें घोषणा करनी चाहिये कि आप किस बातका समर्थन करते हैं और फिर उपयुक्त व्यक्तिगत उदाहरणसे उसका समर्थन करना चाहिये। यदि इस बीच कुछ चोटीके नेता मारे जाते हैं, तो मुझे उससे दुःख नहीं होगा। उलटे, मैं खुशीसे नाचूंगा। मारवाड़ी समाजके कुछ प्रमुख व्यक्तियोंसे भी, जो कल मुझसे सलाह लेने आये थे, मैंने यही बात कही थी। अकेले शान्तिके जुलूस केवल दिखावा साबित होंगे, यदि नेताओं और उनके अनुयायियोंका इरादा साफ और शुद्ध नहीं होगा। यदि ऐसा स्वयंसेवक-संगठन, जो अहिंसाके लिए प्रतिज्ञा-बद्ध हो और एकता तथा शान्तिके लिए परम बलिदान करनेको तैयार हो, काम करने लगे, तो

शहरसे सारी पुलिस हटा लेनेकी भी मैं चिन्ता नहीं करूंगा । और **यदि इसके परिणामस्वरूप सारे कलकत्तेको रक्तस्नान करना पड़े, तो भी मैं संत्रस्त नहीं हूंगा । कारण, यह निर्दोष रक्तका स्वेच्छापूर्ण दान होगा । ऐसी स्थितिसे निबटना मुझे आता है । तब आपको और मुझे नंगे पैरों आगके बीचमें कूदना पड़ेगा और तब तक दिन और रात अविरत कार्य करना होगा जब तक कि या तो फिरसे शान्ति स्थापित न हो जाय या हम सब मर न जायं । शान्ति-मिशनकी मेरी कल्पना यह है – इसमें चिकनी-चुपड़ी बातों या चारित्रिक कमजोरीके लिए कोई स्थान नहीं** । मुझे परवाह नहीं, यदि इन विचारोंको रखनेवाला मैं अकेला ही रहूं । मेरे लिए अपनी श्रद्धा काफी है । यदि मुझे इस काममें आप सबका प्रामाणिक और हार्दिक सहयोग मिल गया तो मुझे सन्तोष होगा । फिर तो हम पंजाबकी स्थिति पर भी काबू पा सकेंगे।"

फिर आत्म-निरीक्षणकी वृत्तिसे गांधीजी बोले: "मैंने अधिकारियोंसे कह कर मेरे निवास-स्थान पर रखा हुआ सशस्त्र पुलिसका पहरा हटवा दिया था । दुर्भाग्यसे वह फिर वापस आ गया है । मैंने उसे अपने लिए नहीं, परन्तु सुहरावर्दीके लिए रहने दिया है । वे घबराते हैं । यदि ३१ अगस्तकी रातको वे नोआखालीकी यात्राके लिए तैयार होनेको बाहर न चले गये होते तो ईश्वर जाने उनका क्या होता, और उसके परिणामस्वरूप मेरा क्या होता ?"

फिर कुछ सोचकर वे बोले : "मैंने अक्सर अपने आपसे पूछा है कि जब लीग और जिन्नाको मनचाही चीज मिल गई, तो अब और उपद्रव क्यों होना चाहिये ? यदि जिन्ना राजाजीकी योजनामें रही हुई मेरी बातको मान लेते, तो इस सारे उत्पातसे बचा जा सकता था । . . . मैं तो उससे भी आगे जानेको तैयार था । यदि अंग्रेजोंके चले जानेके बाद भी भारतकी सामूहिक बुद्धिमत्ता और राजनीतिज्ञता कोई शान्तिपूर्ण हल न निकाल पाती, तो मैं मुस्लिम लीगको सरकारका काम संभाल लेनेका निमंत्रण देता । यदि मैं कहता तो कांग्रेसी मंत्री उनके लिए रास्ता कर देते । **पंडित नेहरू और सरदारने मुझसे कह दिया था कि अगर मैं शासनकी जिम्मेदारी अपने हाथमें ले लूं, तो वे मेरे हुक्स पर अमल करेंगे** ।"

जब शरत् बाबूसे मुलाकात हो रही थी तभी डॉ. प्रफुल्ल घोष अपने कुछ साथियों सहित आ गये। "शान्ति-स्थापताके लिए मैं आपके ढंग पर भरसक प्रयत्न करूंगा," यह कहकर शरत् बोस उठे और चले गये ।

डॉ. घोषने गांधीजीसे शिकायत की : "आपने मंत्रि-मंडलको विश्वासमें लिये बिना उपवास करके उसके साथ बड़ा अन्याय किया है ।"

गांधीजी : "शायद आपका कहना ठीक है । परन्तु आग इतनी तेजीसे फैल रही थी कि उस समय एक एक क्षणका महत्त्व था । जरासी भी अनावश्यक देरीका परिणाम निर्दोषोंकी अधिक प्राणहानिमें आता ।"

लगातार एक घंटेसे अधिक चलनेवाली बातचीतका गांधीजीके स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ने लगा था । डॉ. घोषसे यह चीज छिपी नहीं रही ।

डॉ. घोष : "मैं बहसको लम्बाना नहीं चाहता ।"

गांधीजी : "यह तो आपके योग्य ही है । आपसे मैंने इससे कमकी आशा नहीं रखी थी ।"

डॉ. घोष: "लेकिन एक बात है । आपने अपना उपवास ऐसे समय आरम्भ किया है जब हिन्दुओंका एक वर्ग आपको अपना शत्रु समझने लगा है । वे मूर्खतावश सोचते हैं कि जब दूसरे पक्षने भले-बुरेके सारे विवेकको तिलांजलि दे दी है तब आपका हिन्दुओंसे कहना कि वे अहिंसाका पालन करें, उनके साथ बड़ा अन्याय है । अगर मंत्रि-मंडलकी किसी गलती पर आप उपवास करते, तो मैं आपसे कुछ न कहता ।"

गांधीजी : "यह सब तो विषयान्तर है । आप देखते नहीं कि इससे मुझे मुसलमानोंके विरुद्ध उपवास करनेका भी अधिकार मिल जाता है ? मेरा उपवास दोनों कौमोंकी सेवा करनेके हेतुसे हुआ है । ज्यों ही हिन्दू समझ लेंगे कि वे मुझे और किसी शर्त पर जीवित नहीं रख सकते त्यों ही कलकत्तेमें फिर शान्ति हो जायगी ।"

डॉ. घोष : "आपके उपवासका हम पर अन्य किसी भी बातसे ज्यादा बोझ पड़ता है । आपके उपवासके इस भारी बोझके होते हुए हम सफलतापूर्वक अपना काम कैसे कर सकते हैं ?"

गांधीजी : "यह इस चीजको देखनेका गलत तरीका है । मेरे उपवासका उद्देश्य है आपके हाथ मजबूत करना और प्रत्येकको अधिक क्रियाशील बनाना । अगर आप इसे जुल्म समझेंगे, तो कहींके न रहेंगे ।"

सुहरावर्दी बीचमें ही बोल उठे: "पहले ही हिन्दू और मुसलमान आपके उपवासका दबाव महसूस कर रहे हैं। हमें उनके प्रतिनिधियोंको एक जगह बुलाकर जल्दीसे जल्दी उनसे सलाह-मशविरा करना चाहिये।"

डॉ. घोषने उत्तर दिया: मैंने कल हिन्दुओं, मुसलमानों और सिक्खोंके प्रतिनिधियोंको मिलने बुलाया है। "यह सभा यहां हो या मेरे निवास-स्थान पर ?"

सुहरावर्दीने सोच-समझकर शिष्टाचार निभाते हुए सुझाया : "नहीं, यहां नहीं, मुख्यमंत्रीके निवास-स्थान पर।"

गांधीजीने शहीदके सुझावका समर्थन किया : पहले मुख्यमंत्रीके यहां एक प्रारंभिक सम्मेलन हो जाय। बादमें सब या उनमें से कुछ जरूरी हो तो मेरे पास आ सकते हैं। "१९२४ में दिल्लीमें मेरा जो २१ दिनका उपवास हुआ था उस समय भी यही कार्य-पद्धति अपनाई गई थी।"

डॉ. घोषने गांधीजीको बताया कि उनके मंत्रि-मंडलने अखबारोंके खिलाफ पहले ही कड़ी कार्रवाई कर दी है। ऐसा समाचारपत्र, जो उत्तेजक प्रचार करेगा, अभी तो फौरन बन्द कर दिया जायगा।

इसके बाद डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी आये। उनके साथ हिन्दू महासभाके कुछ और नेता भी आये थे। उनके कुछ भी कह सकनेसे पहले गांधीजीने चिन्तापूर्वक उनके स्वास्थ्यकी पुछताछ की। जो व्यक्ति स्वयं उपवास कर रहा हो, उसकी अपने लिए इतनी चिन्ता देखकर डॉ. मुकर्जी बहुत प्रभावित हुए।

डॉ. मुकर्जी अब यहां सामान्य भावना शान्तिके पक्षमें है। परन्तु पूर्व बंगालमें कुछ समय बाद इसकी प्रतिक्रिया होनेका खतरा है। ढाकासे बेचैनी पैदा करनेवाले समाचार आ रहे हैं। वहां किसी भी समय आग भड़क सकती है।"

गांधीजी : "यदि यहां स्थिति तुरन्त नहीं सुधरी, तो वहां ऐसा होना अनिवार्य है।"

डॉ. मुकर्जी : "कलसे (हिन्दू महासभाके) हिन्दुस्तान नेशनल गार्ड मुस्लिम नेशनल गार्डोके साथ रास्तों पर गश्त लगायेंगे।"

शहीद : "गांधीजीके स्वास्थ्य-सम्बन्धी बुलेटिनोंका अधिक व्यापक प्रचार होना चाहिये । उपवासका अंत दो दिनके भीतर आ ही जाना चाहिये ।"

गांधीजी : "मैं उपवास तब तोडुंगा जब डॉ. मुकर्जी यह खबर देंगे कि कलकत्तेमें सम्पूर्ण शान्ति है – इससे पहले नहीं ।"

शामको फिर भारी वर्षा हुई । गांधीजीकी मंडलीके एक साथीने उनसे पूछा : उपवासके दौरान आप मर जायं, तो क्या सारे देशमें आग नहीं फैल जायगी ? गांधीजीने उत्तर दिया यह सम्भव है । परन्तु उससे पहले मैं तो अपने प्रभुके दरबारमें पहुंच जाऊंगा ।"

"मान लीजिये, अभी तो शान्ति स्थापित हो जाती है, लेकिन आपका उपवास समाप्त हो जानेके पश्चात् वह फिर भंग हो जाय तो ?"

गांधीजी : "उस सूरतमें मैं बिना शर्ते आमरण अनशन शुरू कर दूंगा । वह शान्ति स्थापित होने पर भी नहीं टूटेगा । उस हालतमें मैं पानी भी नहीं लूंगा । सत्य और अहिंसाका उपहास देखनेके लिए मैं जिन्दा नहीं रहना चाहुंगा ।"

*

इस नाजुक मौके पर जिस शालीनता और गौरवका शहीदने परिचय दिया, उसकी मुझे यहां प्रशंसा करनी होगी । अपनी सत्ताविहीन स्थितिमें वे उन लोगोंसे बाजी मार ले गये, जो हाल ही में उनके बाद पदासीन हुए थे । गांधीजीके कमरेसे बाहर शहीद और दो कांग्रेसी नेताओंके बीच यह संवाद हुआ । उनमें से एक पश्चिम बंगाल मंत्रि-मंडलके सदस्य थे ।

शहीद : "मैंने आपको टेलीफोन किया था कि यहां आते हुए रास्तेमें मुझे भी ले लें, क्योंकि मेरे पास गाड़ी नहीं है । परन्तु आपने मुझे साथ नहीं लिया । मैं आपकी जगह होता तो इतना अहसान करनेमें कभी न चूकता ।"

कांग्रेसी (एक दृष्टान्त देकर) : "जब आप मुख्यमंत्री थे तब एक बार आपने भी ऐसा ही किया था।"

शहीद : "तो आपको याद है ! किन्तु मैं आपको बता दूं कि मुझे जरा भी याद नहीं । चूंकि आप निश्चयपूर्वक कहते हैं, इसलिए मैं इतना ही कह सकता हूं कि उस समय जरूर कोई गलतफहमी हुई होगी । यह मेरे स्वभावके विपरीत है ।"

भूतपूर्व मुख्यमंत्रीको बेशक बहुतसी बातोंका जवाब देना था । उनके हालके भूतकालके इतिहासकी बातें उनके मुंह पर निर्दयतापूर्वक कही गईं । कहनेवाले वे थे जिन्होंने उनके शासन-कालमें बहुत कष्ट सहा था । बुरीसे बुरी बातें उनके सामने बेतकल्लुफीके साथ कही गईं । उन सबको शहीदने एक खिलाड़ीकी तरह सुन लिया । उनके लिए यह खेलका ही एक हिस्सा था । उन्हें भूतकालका कलंक दूर करना था ।

६

३ सितम्बरको अर्थात् उपवासके दूसरे दिन सुबह डॉ. दिनशा मेहताने गांधीजीको देखा । गांधीजीने खबर दी: "शरीर और मन दोनोंकी दृष्टिसे रात खूब शान्तिमें बीती । मुझे उपवास तोड़नेकी बिलकुल उत्सुकता नहीं है । इस हिसाबसे शरीर भले ही ज्यादा कमजोर होता चला जाय, लेकिन मुझे लगता है कि मैं एक महीने तक भी उपवास चला सकता हूं ।"

डॉ. मेहता (गांधीजीका अर्थ गलत समझ कर) "हां, यदि आप उतनी मात्रामें पानी ले सकें, तो कोई कठिनाई नहीं होगी ।"

गांधीजी : "मेरे कहनेका मतलब यह था कि मेरे भीतर ईश्वरके विराजमान होनेका जो भाव इस बार है वह पहले कभी नहीं था । . . . यदि रामनाम मेरे हृदयमें पूरी तरह प्रवेश कर चुका है, तो मेरा विश्वास है कि जीवित रहनेके लिए मुझे पानीकी भी जरूरत नहीं होगी ।"

गांधीजीकी आयुके लिए उनका रक्तचाप अधिकसे अधिक अनुकूल १५४ था और साधारण था ८९ । मालिशके समय उन्होंने सदाकी भांति अपना दैनिक बंगला पाठ सीखा । कोई व्यक्ति खबर लाया कि आधी रात तक तो लूटपाट जारी रही थी, परन्तु उसके बादसे पूरी शान्ति रही ।

गांधीजी : "कोई आश्चर्य नहीं, लूटनेवालोंको भी दिनभरके कामके बाद आराम तो चाहिये न !"

अपने एक साथीके प्रश्नके उत्तरमें गांधीजीने कहा : मुझे आशा है कि उपवास "दस दिनसे भी" अधिक नहीं चलेगा । उपद्रवकारियोंका हृदय अवश्य पिघलेगा । "पहले भी ऐसा हुआ है । मैं उपद्रवकारियोंके वर्गको अच्छी तरह जानता हूं। मैं उनके बीच रहा हूं।"

कलकत्तेके एक प्रमुख दैनिकके संचालकने गांधीजीका फोटो लेनेकी इजाजत मांगी। उनकी दलील थी कि "इससे उनके शान्तिकार्यमें सहायता मिलेगी।" गांधीजीने यह कहकर इस सुझावको अस्वीकार कर दिया कि मैं अपने फोठोके प्रदर्शन द्वारा लोगोंकी भावनाओं पर क्षणिक प्रभाव डाल कर अपना उपवास नहीं तोड़ना चाहता, बल्कि हिन्दुओं और मुसलमानोंके सच्चे पश्चात्ताप और उनके बीच उत्पन्न हुई हार्दिक एकताके फलस्वरूप ही उसे तोड़ना चाहता हूं।

*

साम्प्रदायिक क्रोधने नियंत्रणमें आनेसे पहले ऐसे दो कार्यकर्ताओंका बलिदान ले लिया, जिन्होंने अहिंसाके सिद्धान्तके अनुसार जीवन जीनेका साहस किया। सचिन मित्र नोआखालीके शान्ति-मिशनमें ठक्कर बापाके विश्वस्त कार्यकर्ता थे। उनकी उमर ३८ वर्षकी थी। वे कलकत्ता विश्व-विद्यालयके एम. ए. थे और मंजे हुए सत्याग्रही तथा खादीप्रेमी थे। भगवानने उन्हें उत्कट कलाप्रेम और सुशील स्वभाव दिया था, इसलिए वे अपने सभी साथियोंके प्रिय बन गये थे। १ सितम्बरको शहरमें दावानल भड़क उठनेकी खबर सुनकर कुछ मुस्लिम मित्रोंके बुलावे पर वे उनकी नखोदा मसजिदकी दिशामें चल पड़े। वह खतरेकी जगह बताई जाती थी। चितपुर रोड और कैनिंग स्ट्रीटके चौराहे पर इस मंडलीको एक विरोधी मुस्लिम भीड़ने घेर लिया। मुस्लिम गुण्डोंने सचिन मित्र और उनके हिन्दू साथियोंको उनके मुस्लिम साथियोंसे अलग कर दिया। सचिनको छूरा भोंक दिया गया और उनके हिन्दू साथियों पर सख्त हमला किया गया। उनके मुस्लिम साथियोंने उनकी रक्षा करनेकी कोशिश की, परन्तु उन्हें दबा दिया गया और कुछको चोटें भी आईं। सचिन मित्रको अस्पताल भेजा गया, लेकिन वहां घावोंकी वजहसे उनकी मृत्यु हो गई। वे उस धर्मान्धताके शिकार हो गये, जिसके सामने शत्रु-मित्रका सारा भेद मिट जाता है और जो अपने भ्रम और अज्ञानमें उसी हाथको काट देती है, जो उसकी रक्षाके लए आगे बढ़ता है।

दूसरे कार्यकर्ता, जिन्होंने अपने प्राणोंका बलिदान दिया, स्मृतीश बेनर्जी थे। वे सचिन मित्रकी ही उमरके थे। यह सूचना पाकर कि पाठणशालाके लड़के-लड़कियोंका एक शान्तिदल खतरेमें है, वे

खतरेके क्षेत्रमें दौड़ गये । उसके बाद क्या हुआ, यह अज्ञात है । परन्तु थोड़ी देर बाद जब जुलूस पर आक्रमण हुआ तब उन्हें खूनसे सना कुर्ता पहने हुए कुछ लड़कियोंको सुरक्षित स्थान पर पहुंचानेका प्रयत्न करते देखा गया था । बादमें उनका शरीर अस्पतालमें लाया गया, जिस पर पांच प्राणघातक घाव थे ।

गांधीजीने दोनों मृत्युओं पर शोक नहीं किया । सचिन मित्रकी विधवा अंगशु रानी मित्रको एक हिन्दी पत्रमें उन्होंने लिखा: "प्यारेलालजीने अभी मुझे खबर दी है कि तुम्हारे पतिदेव, जिन्हें दूसरोंकी रक्षा करते हुए छुरेके घातक घाव लगे थे, घावोंके कारण चल बसे हैं । इस अवसर पर शोक न करना, परन्तु हर्ष मनाना । सचिन तो अमर हो गये हैं । तुम्हें दुःख जरा भी नहीं होना चाहिये; तुम्हें तो सचिनका अनुकरण करके सेवाकार्यमें डूब जाना चाहिये ।"

दोपहरको महिलाओंका एक दल आया । वे चाहती थीं कि सचिन मित्रके शवकी स्मशान-यात्रा निकाली जाय । गांधीजीने इस विचारको पसन्द नहीं किया और कहा कि भौतिक शरीरकी पूजासे मुझे घृणा है । यदि मेरे मरनेके बाद कोई मेरे शरीरकी स्मशान-यात्रा निकालनेकी कोशिश करें और मेरी लाश बोल सके, तो मैं जरूर उनसे यह कहूंगा कि मुझे इससे बचाओ और वहीं जला दो जहां मैं मरा हूं ।

महिलाओंके चले जानेके बाद राजाजीका फोन पर एक सन्देश आया कि कलकत्तेके विद्यार्थियोंने शान्ति-स्थापनाके लिए सर्वांगीण प्रयत्नमें अपने आपको जी-जानसे लगा दिया है । उन्होंने "गुण्डागर्दी नहीं चाहिये" का नारा अपना लिया है । इसके बाद शरत् बोसका फोन आया । उन्होंने गांधीजीकी तबीयतके बारेमें उत्सुकतासे पूछताछ की और उन्हें विश्वास दिलाया कि वे फिरसे शान्ति स्थापित करनेकी भरसक कोशिश कर रहे हैं ।

बाहरसे शान्ति-स्थापनाके लिए निकलनेवाले जुलूसोंके नारोंकी आवाज सुनाई देती थी । परन्तु थोड़ी देर बाद एक मुसलमान भाईने आकर खबर दी कि एक अस्पतालसे होनेवाले गोलीबारमें पांच आदमी मारे गये और चार घायल हुए हैं । आप चाहें तो किसीको इसकी सचाई जाननेके लिए भेज सकते हैं । गांधीजीने उत्तर दिया कि इसकी जरूरत नहीं । मैं इसीलिए तो उपवास कर रहा हूं । मुसलमान भाई घबरा गये । उन्होंने गांधीजीसे उपवास छोड़नेकी प्रार्थना की । "खुदा न करे — कहीं आपको कुछ हो गया, तो हम मुसलमानोंका तो खातमा ही हुआ समझिये ।"

गांधीजी : "मुझे इस तरहसे अपना उपवास तोड़नेके लिए मनानेका प्रयत्न मत कीजिये ।"

शामको साढ़े छह बजे बेलियाघाटसे हिन्दुओं और मुसलमानोंका एक मिश्र जुलूस निकला । वह गांधीजीसे मिलने पर तुल गया । थोड़ी बातचीतके बाद उनमें से दो हिन्दू और दो मुसलमान प्रतिनिधियोंको भीतर आकर गांधीजीसे मिलनेकी अनुमति दी गई । मुसलमानोंमें से एक प्रतिनिधि, जो बंगाल मुस्लिम लीगके प्रमुख सदस्य थे, आंखोंमें आंसू भर कर याचना करने लगे : "उपवास छोड़ दीजिये । मैंने खिलाफत आन्दोलनमें आपके साथ काम किया था । मैं यह जिम्मेदारी लेता हूं कि इस क्षेत्रमें कोई मुसलमान फिरसे शान्ति भंग नहीं करेगा । हमारे बीचमें आपका होना ही बड़ी बात है । यही हमारी सुरक्षाका आश्वासन है । यह आश्वासन हमसे न छीनिये ।"

गांधीजी : "मेरी उपस्थितिने उस दिन दंगाइयोंको गड़बड़ी मचानेसे नहीं रोका । जहां तक उनका सम्बन्ध है, मेरी बातमें आज वह ताकत नहीं रही । मेरा उपवास तभी टूटेगा जब शहरमें दावानल बुझ जायगा और पिछले पन्द्रह दिनोंमें रही वैसी गौरवशाली शान्ति फिरसे कायम हो जायगी । अगर मुसलमानोंको मुझसे सचमुच प्रेम है और वे मुझे अपने लिए उपयोगी समझते हैं, तो वे सारे कलकत्ता शहरके पागल हो जाने पर भी बदलेकी भावनाके वश न होकर अपनी श्रद्धाका प्रत्यक्ष प्रमाण दे सकते हैं । तब तक तो मेरी अग्नि-परीक्षा जारी ही रहेगी ।"

हिन्दू प्रतिनिधियोंने भी ऐसा ही आश्वासन दिया और वचन दिया कि वे अपने मुस्लिम पड़ोसियोंके साथ शान्तिसे रहेंगे । गांधीजी बोले : "उपवासका प्रभाव काम करने लगा है।" परन्तु इतना काफी नहीं है । उन्होंने शिष्ट-मंडलसे कहा कि मैं तब तक उपवास नहीं छोडूंगा जब तक मेरी लगाई हुई शर्त शब्द और भावना दोनोंमें पूरी नहीं हो जायगी । जीनेकी इच्छासे यदि समयसे पहले मैं उपवास तोड़ दूं, तो वह ईश्वरसे इनकार करना होगा । इसके बजाय मैं आपसे कहता हूं कि आप और भी अधिक संकल्प और दृढ़ निश्चयके साथ शान्तिके लिए काम कीजिये ।"

ये मित्र भारी हृदयके साथ वापस गये । उनके चले जानेके बाद गांधीजीने यह भी कहा: "बुराई करनेवालोंको मेरे प्राण बचानेके लिए नहीं, परन्तु सच्चे हृदय-परिवर्तनके फलस्वरूप बुराईसे बचना चाहिये । सब कोई समझ लें कि शान्तिकी बहानेबाजीसे मुझे सन्तोष नहीं होगा । मैं नहीं चाहता कि इस

समय तो शान्ति हो जाय और बादमें पहलेसे भी बुरी खून-खराबी हो। अगर ऐसा हुआ तो मुझे बिना शर्त आमरण अनशन करना पड़ेगा।"

शामको सवा सात बजे राजाजी खबर लाये कि पहले दिनकी तुलनामें शहर आज काफी शान्तिपूर्ण रहा और दोनों कौमोंके लोगोंका स्वयंसेवक और पुलिस दोनों ही कारगर बचाव कर रहे हैं। कुछ समय बाद डॉ. प्रफुल्ल घोष कुछ और कांग्रेसी कार्यकर्ताओं तथा नेताओंके साथ आये। गांधीजीने उनसे कहा कि मेरे प्राण बचानेके लिए वरिष्ठ नेताओंके दबावकी युक्ति काममें नहीं लेनी चाहिये। लोगोंके दिलोंमें स्वाभाविक और सच्ची एकता उत्पन्न होने पर ही मैं जीना चाहता हूं। यह न हो तो मैं मृत्युको ज्यादा पसन्द करूंगा। "मृत्यु ही हमारा सच्चा मित्र है। उससे हमें डरना क्यों चाहिये ?"

७

गुरुवार, ४ सितम्बरका – अर्थात् उपवासका तीसरा दिन – उदय हुआ उस समय गांधीजी और भी कमजोर हो गये थे। आवाज धीमी होकर केवल कानमें फुसफुसाने जैसी रह गई थी, नाड़ी मन्द पड़ गई थी और जल्दी जल्दी चल रही थी। उठने पर गांधीजीको चक्कर आते थे और कानोंमें भिनभिनाहटकी आवाज सुनाई पड़ती थी।

गांधीजीको खुशी हुई जब उनके नोआखालीवाले मित्र पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट अब्दुल्ला उनसे मिलने आये। गांधीजी उनसे बोले : "कैसा विचित्र संयोग है ! मैं आपका विचार कर रहा था और सोच रहा था कि आपसे कैसे मिलना होगा; और आप आ गये !"

यह दोनोंका अन्तिम मिलन था। अब्दुल्ला थोड़े अर्से बाद पूर्व पाकिस्तान लौट गये। परन्तु समय अथवा फासला दोनोंके स्नेह-बन्धनको ढीला नहीं कर सका। गांधीजीकी मृत्युके बाद उनके स्मारक-कोषमें जो प्रथम दान मिले उनमें पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट अब्दुल्लाका १००० रुपयेका चेक भी था।

चन्द मिनट उनसे आनन्दपूर्ण बातें करके गांधीजी 'हरिजन' के अगले अंकका सम्पादन करने लगे। यह काम वे पूरे उपवास-कालमें करते रहे।

तब चमत्कार हुआ। ज्यों ज्यों बोझिल समय बीतता गया और उपवासके बिस्तर पर पड़े हुए उस छोटेसे दुर्बल मानवकी प्राणशक्ति धीरे धीरे क्षीण होती गई, त्यों त्यों सब लोगोंमें गहरा हृदय-मंथन चलता रहा और छिपा हुआ असत्य बाहर आता गया। लोगोंने आकर गांधीजीके समक्ष वे बातें स्वीकार कीं, जो वे किसी इन्सानके कानमें नहीं कह सकते थे। हिन्दू और मुसलमान मिल कर उस बहुमूल्य जीवनको बचानेके लिए सारी शक्ति लगाकर प्रयत्न करने लगे, जो भाई और भाईके बीच भंग हुई शान्तिकी पुनर्स्थापनाके एवजके रूपमें बलिवेदी पर चढ़ाया जा रहा था। सारी कौमोंके मिश्र जुलूस साम्प्रदायिक सुमेलको फिरसे स्थापित करनेके लिए कलकत्तेके उपद्रवग्रस्त भागोंमें घूमने लगे।

दोपहरको केन्द्रीय कलकत्ताके सत्ताईस आदमियोंका एक दल आकर गांधीजीसे मिला। वे "प्रतिकार-दलों" के नामसे प्रसिद्ध समूहोंके सदस्य थे, जो १९४६में मुस्लिम लीगकी सीधी कार्रवाईके समय और उसके बादकी गुंडागिरीका सामना करनेके लिए खड़े हुए थे। कहा जाता है कि शहरके उपद्रवी तत्त्वों पर इनका नियंत्रण था। यह स्वीकार करके कि हमने हत्याकाण्डमें भाग लिया था, उन्होंने गांधीजीसे क्षमा-याचना की और उपवास छोड़ देनेकी प्रार्थना की। उनके चेहरों पर पश्चात्तापका भाव था, जिसमें लज्जा भी मिली हुई थी। उन्होंने वचन दिया कि वे गुंडोंको तुरन्त नियंत्रणमें ले लेंगे। उन्होंने कहा : हमने गुंडोंके उन सरदारोंका पता लगाकर उन्हें अंकुशमें ले लिया है, जिन्होंने पिछले रविवारको हैदरी मेंशनमें हुल्लड़बाजोंका प्रदर्शन संगठित किया था। उनमें वह लाठी फेंकनेवाला व्यक्ति भी है, जो आपको लगते लगते बच गई थी। (बादमें आक्रमणकारीने आकर गांधीजीसे माफी मांगी थी।) हम सब आपके सामने आत्म-समर्पण कर देंगे और आप जो दण्ड देंगे उसे स्वीकार करेंगे। क्या आप हमारे इस आश्वासनके आधार पर उपवास नहीं छोड़ेंगे ? "उसके बाद हम उपवासके भारसे मुक्त होकर अपने कार्यमें लगनसे जुट सकेंगे।" न छोड़ें तो बताइये, आपकी उपवास छोड़नेकी क्या शर्त है ?

परन्तु गांधीजीने उनका अनुरोध स्वीकार करनेमें असमर्थता प्रगट की। उन्होंने उन लोगोंसे कहा: मैं अपना उपवास तभी तोड़ूंगा जब मेरी आत्मा यह कहेगी कि शहरमें स्थिर शान्तिकी स्थापना हो गई है। आपको मुझे यह आश्वासन देना होगा कि शहरमें साम्प्रदायिक पागलपनका दौर फिरसे नहीं आयेगा, भले ही सारे पश्चिम बंगाल या समस्त भारतमें भी दावानल क्यों न भड़क उठे। मुसलमानोंको मुझसे यह कह सकना चाहिये कि अब उन्हें सुरक्षा महसूस होती है, अत: मेरे लिए उपवासको लम्बाना जरूरी नहीं है। मैं यह आशा नहीं रखता कि आप शहरके तमाम गुंडों पर काबू रख सकेंगे – यद्यपि उन

पर काबू रखा जा सके तो मुझे बहुत अच्छा लगेगा – क्योंकि मुझे अभी तक ऐसी सिद्धिके लिए आवश्यक मात्रामें शुद्धता, अनासक्ति और मानसिक स्थिरता प्राप्त नहीं हुई है । परन्तु यदि मैं आप लोगोंके दिलोंसे साम्प्रदायिक जहरको भी नहीं निकलवा सकूं, तो मैं यह समझूंगा कि जीवन जीने योग्य नहीं है; और मैं इसे लंबानेकी चिन्ता नहीं करूंगा । आपने इस बातका उल्लेख किया है कि आपके मन पर मेरे उपवासका भार है । यदि आपने अपने मनकी बात कही है, तो आपको ऐसी भावना क्यों रखनी चाहिये ? "यदि दृढ़ विश्वासके बिना मेरे उपवासके दबावमें आकर कोई कदम उठाया जाता है, तो बेशक आपके मन पर उसका भार रहेगा । परन्तु यदि आपके दिल और दिमाग दोनोंमें पूरा सहयोग होगा, तो कोई भार नहीं लगना चाहिये । मेरे उपवासका उद्देश्य हमारे हृदय और बुद्धिको निर्मल बनाना और मानसिक आलस्य तथा जड़ताको दूर करके हमारी शक्तियोंको मुक्त करना है, न कि हमें निर्बल अथवा निष्क्रिय बनाना । मेरा उपवास बुराईकी ताकतोंको अलग अलग कर देता है, और ज्यों ही वे अलग पड़ जाती हैं त्यों ही मर जाती हैं; क्योंकि स्वयं बुराईमें जीवन नहीं होता । इसलिए मैं आशा रखता हूं कि आप मेरे इस उपवासका भार महसूस न करके उसकी प्रेरणासे अधिक उत्साहके साथ काम करेंगे ।"

शिष्ट-मंडलके सदस्य यह समझ कर लौट गये कि जब तक वे अपना कर्तव्य पूरा नहीं करेंगे तब तक गांधीजीसे उपवास छोड़नेको कहना उचित नहीं होगा । तीसरे पहर दो बजे गुंडोंका एक और नेता आया । बड़ा बाज़ारके उत्पातोंका कर्ताधर्ता वही बताया जाता था । सारी बातें गांधीजीसे साफ साफ कहकर उसने वचन दिया कि शाम तक सारे हथियार गांधीजीके आगे घर दिये जायंगे । इस बीच उसने अपने दो लड़कोंको उस इलाकेकी हर मुस्लिम दुकानकी रक्षाके काम पर लगा दिया था । बादमें तीसरे पहर हुल्लड़बाजोंकी एक और टोली गांधीजीके पास आई । उसमें वे लोग भी शामिल थे जिन्होंने रविवारकी रातको उनकी छावनीमें उत्पात मचानेवालोंका नेतृत्व किया था । उन्होंने सच्चे दिखाई देनेवाले पश्चात्तापके साथ आत्मसमर्पण किया । उनके नेताने मनमें कुछ न छिपा कर पूरी तरह अपना दोष स्वीकार किया और कहा : "आप केवल अपना उपवास छोड़ दीजिये, फिर आप जो भी दण्ड देंगे उसे मैं और मेरा दल खुशीसे स्वीकार करेंगे ।"

गांधीजी बोले : "तुम्हारे लिए मेरा दंड यही है कि तुरन्त मुसलमानोंमें जाकर उन्हें पूरी रक्षाका आश्वासन दो । जिस क्षण मुझे पक्का भरोसा हो जायगा कि सच्चा हृदय-परिवर्तन हो गया है, उसी क्षण में उपवास छोड़ दूंगा । मैं तुम्हें बता दूं कि मैं भी तुम्हारी ही तरह उपवासको समाप्त करनेके लिए उत्सुक

हूं, क्योंकि मैं जल्दीसे जल्दी पंजाब चला जाना चाहता हूं। इसीके सहारे मैं इस अग्नि-परीक्षामें टिका हुआ हूं। परन्तु यदि तुम जल्दी नहीं करोगे, तो फिर पछताना होगा। मैं बहुत दिन नहीं जी सकता।"

शामके पांच बजे तक आनेवालोंका तांता लगा रहा। साढ़े पांच बजे राजाजीका एक पत्र आया। उन्होंने खबर दी: 'शहरमें तनाव मिट गया है। अब पूरी शान्ति है। मैं आपसे मिलने रातमें आऊंगा।' ६ बजे गांधीजी थोड़ी देरकी झपकी लेकर जागे। उस समय कलकत्तेके नागरिकोंका एक शिष्टमंडल, जिसमें सब कौमोंके प्रतिनिधि थे, उन्तकी सेवामें उपस्थित हुआ। उसमें शहीद सुहरावर्दी, एन. सी. चटर्जी और सरदार निरंजनसिंह तालिब भी थे। उन्होंने गांधीजीसे कहा : हम शहरके तमाम उपद्रव-ग्रस्त हिस्सोंमें होकर आये हैं। सब जगह शान्ति है। अब कोई बुरी बात हुई तो उसके लिए हम खुद जिम्मेदार होंगे। हमारे पास यह आशा रखनेके लिए पूरे कारण हैं कि फिरसे उपद्रव नहीं होगा, क्योंकि हमारी रायमें यह उपद्रव "वास्तवमें साम्प्रदायिक नहीं था," बल्कि "गुंडोंका काम" था। हमारी प्रार्थना है कि आप अपना उपवास छोड़ दें।

थोड़ी देर विचार करनेके बाद गांधीजी बोले : मुझे यह बात स्वीकार नहीं कि कलकत्तेका हिंसाकाण्ड साम्प्रदायिक स्वरूपका नहीं था, बल्कि वास्तवमें गुंडोंका काम था। "गुंडोंको हमीं बनाते हैं और हमीं मिटाते हैं। गुंडे खुद होकर कभी कोई काम नहीं करते। वे अपने आप काम कर ही नहीं सकते।" औसत नागरिक अथवा "निहित स्वार्थवाले मनुष्य" की कायरता अथवा निष्क्रिय सहानुभूतिसे ही गुंडोंको शरारत करनेकी ताकत मिलती है। "मेरे उपवाससे आपको अधिक जागरूक, अधिक सत्यवादी, अधिक सावधान और अपनी भाषामें अधिक निश्चित बनना चाहिये। आप सब मेरे प्रति अपने प्रेमके कारण मुझसे उपवास तुड़वाने यहां आये हैं। गुंडोंके नेता भी मुझसे मिलकर अपने कियेकी माफी मांग गये हैं। परन्तु आपका अनुरोध मान लेनेसे पहले मैं आपसे दो प्रश्न पूछना चाहता हूं : (१) क्या आप पूरी सचाईके साथ मुझे वचन दे सकते हैं कि कलकत्तेमें फिर कभी उपद्रव नहीं होंगे ? क्या आप कह सकते हैं कि नागरिकोंमें इतना सच्चा हृदय-परिवर्तन हो गया है कि वे अब साम्प्रदायिक उन्मादको बरदाश्त नहीं करेंगे, उसे पोषण देनेका तो प्रश्न ही नहीं ? यदि आप यह आश्वासन मझे नहीं दे सकते, तो अच्छा यही है कि आप मुझे यह उपवास जारी रखने दें। इससे मुझे हानि नहीं होगी। जब कोई मनुष्य इस प्रकार उपवास करता है, तो उसे सहारा पानीकी मात्रासे नहीं मिलता, परन्तु ईश्वरसे मिलता है; और (२) यदि उपद्रव शुरू हो गया — क्योंकि आप सर्व-शक्तिमान नहीं हैं या सर्वज्ञ भी नहीं हैं — तो क्या

आप मुझे यह वचन देंगे कि जिन लोगोंकी सुरक्षाकी आप प्रतिज्ञा कर रहे हैं उनकी रक्षाके प्रयत्नमें अपने प्राण आप निछावर कर देंगे, किन्तु असफलताकी खबर लेकर मेरे पास नहीं आयेंगे ? आपको यह भी याद रखना चाहिये कि अगर आप मुझे वचन देकर उसे तोड़ देंगे, तो आपको मेरे किसी तरहके प्रतिबन्धसे रहित आमरण अनशनके लिए तैयार रहना होगा । मैं काल्पनिक आनन्द नहीं भोगना चाहता । अगर आप मुझे धोखा देंगे और कहेंगे एक बात और मनमें रखेंगे दूसरी बात, तो मेरी मृत्युके लिए आप जिम्मेदार होंगे । मैं साफ और सीधा उत्तर चाहता हूं । आपका आश्वासन लिखित होना चाहिये ।"

गांधीजी गहरी भावनासे बोले । उसके बाद वातावरणमें संपूर्ण निस्तब्धता छा गई । पहले-पहल शहीद सुहरावर्दी ही बोले । "आपने कहा था कि जब कलकत्तेमें फिरसे सयानपन आ जायगा तब आप उपवास तोड़ देंगे । यह शर्त पूरी हो चुकी है । अब हमसे भविष्यके लिए गारंटी मांग कर क्या आप नई शर्त नहीं लाद रहे हैं ?" उन्होंने पूछा ।

शहीदकी दलीलको "कानूनी" बताकर गांधीजीने उत्तर दिया : कोई नई शर्त नहीं लगाई जा रही है । ये सब बातें उपवासकी मूल शर्तोंमें निहित थीं । "अभी मैंने जो कुछ कहा है वह तो केवल सीधीसादी सचाई है, ताकि आप जान लें कि आपको करना क्या है । यदि आपके विश्वास और भावनामें पूरा मेल है, तो इस घोषणा पर हस्ताक्षर करनेमें आपको कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिये । यह आपकी सचाई और विश्वासके साहसकी कड़ी परीक्षा है । यदि आप इस पर मुझे जीवित रखनेके लिए ही हस्ताक्षर करेंगे, तो सचमुच आप मेरी मृत्युको निश्चित बतायेंगे ।"

शहीद बीचमें ही बोले: "इतने बड़े शहरमें हमारी हजार कोशिशोंके बावजूद ऐसी घटनाएं हो सकती हैं । अवश्य ही आप किसी छुटपुट दुर्घटनाके होने पर उपवास नहीं कर सकते ।"

गांधीजीने शहीदको समझाया: "आप मेरी बात समझे नहीं । मेरा आशय यह नहीं है कि कलकत्ता हमेशाके लिए सभी अपराधोंसे पूरी तरह मुक्त हो जायगा । मेरा आशय इतना ही है कि अगर सारा देश भी उन्माद-ग्रस्त हो जाय, तो भी कलकत्ता अपने होश-हवास नहीं खोयेगा ।"

सबने इस चेतावनीकी गंभीरता और अपनी अपनी जिम्मेदारीको अच्छी तरह समझ लिया । राजाजी और आचार्य कृपलानीने, जो चर्चाके पिछले भागमें आ पहुंचे थे, प्रस्ताव रखा कि हम आपसमें विचार-विमर्श करलेके लिए थोड़ी देर गांधीजीको अकेला छोड़ दें । ठीक उसी समय एक अपील लगाई

गई, जिस पर नार्कलडंगा, शीतलातल्ला, मानिकतल्ला और कंकुरगाछी क्षेत्रोंक हिन्दू और मुसलमान निवासियोंके कोई ४० प्रतिनिधियोंके हस्ताक्षर थे। हस्ताक्षर करनेवालोंने वचन दिया कि इन मुहल्लोंमें हम कोई दुर्घटना नहीं होने देंगे । पहलेके दंगोंमें ये सबसे अधिक पीड़ित क्षेत्र थे । "गांधीजीको जानकारीके लिए यह भी बता दिया जाय कि १४ अगस्त, १९४७ से इन मिले-जुले क्षेत्रोंमें कोई दुर्घटना नहीं हुई ।" उन्होंने गांधीजीसे अपना उपवास छोड़ देनेकी हार्दिक प्रार्थना की।

शहीदने यह अपील पढ़कर सुनाई और कहा: "तो हमारा प्रयत्न व्यर्थ नहीं गया ।"

गांधीजीने उत्तर दिया: "हां, उसका प्रभाव हो रहा है ।"

फिर नेतागण सलाह-मशविरेके लिए दूसरे कमरेमें चले गये और आध घंटे तक वहां रहे ।

बोलनेके कारण जो जोर पड़ा उससे गांधीजी बिलकुल थक गये । उन्हें अचानक चक्कर आ गये। अपने बिस्तर पर बेचैनीसे करवटें बदलते हुए वे रामनाम लेने लगे ।

पासवाले कमरेमें जो सलाह-मशविरा हुआ उसमें सुहरावर्दीका रवैया सावधानी और चौकसाई भरा रहा । इससे उनकी सचाई और जिम्मेदारीकी भावना प्रकट होती थी । आचार्य कृपलानी सदाकी तरह शंका, कटाक्ष और विनोदसे पूर्ण थे। राजाजीके व्यवहारमें कुशलता, अपनी बातसे सबको कायल करनेकी शक्ति तथा व्यावहारिक बुद्धिमत्ताके दर्शन हो रहे थे। वे ठंडे तर्ककके नीचे अपने गहरे आवेगको छिपा रहे थे। चर्चा संक्षिप्त किन्तु शान्तिपूर्ण थी। राजाजीने प्रतिज्ञा-पत्रका मसौदा लिखवाया। उस पर सर्वप्रथम हिन्दू मसहासभाके एन. सी. चटर्जी और डी. एन. मुखर्जीके हस्ताक्षर हुए । उनके बाद पश्चिम बंगालकी मुस्लिम लीगके संसदीय दलके नेताकी हैसियतसे शहीद सुहरावर्दी, पंजाबी नेता आर. के. जैदका तथा सिक्ख नेता निरंजनसिंह तालिबके हुए। उसके बाद समय न खोकर हस्ताक्षर करनेवाले नेता गांधीजीके पास लौट आये ।

उस प्रतिज्ञा-पत्रमें लिखा था: " हम नीचे हस्ताक्षर करनेवाले गांधीजीको वचन देते हैं कि चूंकि अब फिरसे कलकत्तेमें अमन और शान्तिकी स्थापना हो गई है, इसलिए हम भविष्यमें कभी शहरमें साम्प्रदायिक लड़ाई-झगड़ा नहीं होने देंगे और उसे रोकनेके लिए मरते दम तक कोशिश करेंगे ।"

शहीदने गांधीजीसे कहा: "लेकिन महोदय, मेरे इस दस्तावेज पर दस्तखत करनेसे कोई लाभ होगा ? मुझे किसी भी समय पाकिस्तान बुला लिया जा सकता है । तब मेरी प्रतिज्ञाका क्या होगा ?"

गांधीजीने उत्तर दिया: "उस सूरतमें आपको यह विश्वास होना चाहिये कि जिन्हें आप पीछे छोड़कर जायं वे आपका वचन पूरा करेंगे । और आप वापस भी तो आ सकते हैं ।"

उपवास तोड़नेसे पहले गांधीजीने उपस्थित लोगोंसे कुछ शब्द हिन्दुस्तानीमें कहे : "मैं यह उपवास तोड़ता हूं, क्योंकि मैं पंजाबके लिए कुछ कर सकूं । यह उपवास छूटता है सिर्फ आप लोगोंके विश्वास पर । और कुछ मैं नहीं जानता हूं । अगर इसमें कोई भी ऐसी बात होगी जिससे मुझको पछताना पड़े, तो बहुत ही बुरा होगा । मुझको जीना पसन्द है । बहुत लोग कहते हैं कि तुम्हारा जीना अच्छा है, क्योंकि तुम हिन्दुस्तान और मानव-जातिकी और खिदमत कर सकोगे । मुझमें जीनेकी शक्ति है, मुझको जीना अच्छा लगेगा । लेकिन जान-बूझ कर मैं घोखेमें नहीं पड़ना चाहता हूं । यहां जितने हिन्दू-मुसलमान खड़े हैं, उनसे मैं आशा रखता हूं कि मुझे दुबारा उपवास नहीं करना पड़ेगा । मैं आप लोगोंको सावधान करना चाहता हूं कि इसके बाद आप लोग सोना नहीं । इसका असर नोआखाली और पंजाबमें पड़ेगा । कलकत्ता ही सारे हिन्दुस्तानकी शान्तिकी चाबी है । सारी दुनिया जल जाय तो भी कलकत्तेको नहीं जलना चाहिये । ईश्वर सबको सन्मति दे । अभी आपने सुना है: 'ईश्वर अल्लाह तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान ।' आपके और मेरे बीचमें भगवान तो पड़ा ही है ।"

तिहत्तर घंटेके बाद गांधीजीने ४ सितम्बरको रातके ९। बजे उपवास तोड़ा । उन्होंने पानी मिले हुए नारंगीके रसका एक गिलास घूंट-घूंट करके पिया । उससे पहले एक छोटीसी प्रार्थना हुई, जिसमें सब लोग शरीक हुए और बादमें टागोरका यह गीत गाया गया :

" जीवन जखन शुकाये जाय,
करुणा धाराय एसो "।

उसके बाद रामधुन गाई गई । नारंगीका रस शहीद सुहरावर्दीने पिलाया । उन्होंने गांधीजीके पैर छुए और रो पड़े ।

इस बीच हथगोलों और हथियारोंसे भरी एक मोटर-ट्रक आ पहुंची । जिन लोगोंने प्रतिशोधकी तथा प्रतिशोधका प्रतिशोध लेनेकी बर्बरताओंमें भाग लिया था, उनकी ओरसे पश्चात्तापके प्रतीकके रूपमें ये सब हथियार गांधीजीके चरणोंमें रख दिये ।

नेताओंके चले जानेसे पहले गांधीजीने राजाजीको अपने पास बुलाकर कहा : "मैं कल पंजाबके लिए रवाना होनेका विचार कर रहा हूं ।"

राजाजी चक्करमें पड़ गये । अगर गांधीजीके मनमें यह विचार जम गया, तो उसे हटाना कठिन होगा । सुहरावर्दीने अपनी कुशलतासे उन्हें इस मुश्किलसे बचा लिया । उन्होंने गांधीजीसे कहा: "आप कलकत्तेके नागरिकोंको सार्वजनिक प्रार्थना और आभार-प्रदर्शनका अवसर दिये बिना नहीं जा सकते । अगर हम कल यह काम करेंगे, तो हर्षोन्मत्त भीड़को काबूमें रखना असंभव होगा । यह काम जल्दीसे जल्दी परसों हो सकता है ।" औरोंने उनका समर्थन किया । उन्होंने यह बात नहीं बताई, जो उनके मनमें सबसे प्रमुख थी, कि उपवास तोड़नेके बाद चौबीस घंटेके भीतर गांधीजीके एक हजार मील लम्बे सफरकी उन्हें गहरी चिन्ता है । रास्ते भर उत्साही भीड़ उनके दर्शनोंके लिए परेशान करेगी ही ।

रातके साढ़े दस बजे नाजायज हथियार सौंपनेके लिए एक और टोली आई । गांधीजीने हथियार लानेवालोंसे कहा : "ये हथियार देनेमें आपको कोई दुःख नहीं होना चाहिये ।"

सबने एकसाथ कहा : "हमें कोई दुःख नहीं है ।"

दूसरे दिन ५ सितम्बरको एक और ढेर देशी हथियारों – बन्दूकों, तलवारों, छुरों और कारतूसोंका इसी तरह गांधीजीको सौंपा गया ।

सुहरावर्दी दोपहरमें आये । उन्होंने पूछा: "अब हमारा सम्मिलित मिशन पूरा हो गया । आगे मेरे लिए आपका क्या हुक्म है ?"

गांधीजी : "अगर आपका हृदय-परिवर्तन सच्चा है, तो फिर कभी सत्ताके प्रलोभनमें न पड़िये ।"

६ सितम्बरको शामकी प्रार्थना-सभामें गांधीजीने वही चेतावनी दोहराई, जो उन्होंने उपवास तोड़ते समय नेताओंको दी थी । सुहरावर्दीने गांधीजीकी अपीलका समर्थन करनेके बाद यह घोषणा की:

"मैं भी पंजाबके मिशनमें गांधीजीके साथ रहूंगा। मैंने पूरी तरह महात्माजीकी ताबेदारी स्वीकार कर ली है। आइंदा मैं उनके हुक्मकी पाबन्दी करूंगा।"

७ सितम्बरको, गांधीजीके कलकत्ता-निवासके अन्तिम दिन, रातके साढ़े आठ बजे कुछ महिलाएं उन्हें विदा देने आईं। उन्होंने भक्ति-प्रदर्शनकी सदियों पुरानी हिन्दू प्रथाके अनुसार गांधीजीकी आरती उतारना चाहा। इसमें पूज्य व्यक्तिके सामने शुद्ध घीके दीये जलाकर घुमाये जाते हैं। जब महिलायें दीयोंकी थाली लेकर पास आईं, तो गांधीजीने उन्हें रोक दिया। वे बोले: "दीये बुझा दो, घीकी एक एक बूंद किसी बरतनमें डालो और गरीबोंको बांट दो।"

रातके नौ बजे गांधीजी बेलूरके एकान्त स्टेशनसे दिल्लीकी गाड़ीमें चढ़े। हावड़ा स्टेशनकी भीड़से बचनेके लिए उन्हें वहां ले जाया गया था। उन्हें विदाई देनेवालोंमें पश्चिम बंगालके मुख्यमंत्री, उनके साथी मंत्री और शहीद सुहरावर्दी थे। एक एक करके सबने गांधीजीको पूज्य भावसे विदा दी। जब गाड़ी रवाना हुई तो सुहरावर्दीकी आंखें आंसुओंसे भीगी दिखाई दीं – शायद उनके जीवनमें सार्वजनिक रूपमें ऐसा पहली ही बार हुआ था।

८

जिस दिन गांधीजीने अपना उपवास तोड़ा, उसी दिन शामको मेरी बहन वाह-शिविरसे कलकत्ते पहुंचनेवाली थी। उस शिविरको खाली कर देनेका प्रबन्ध हो चुका था। परन्तु कर्तव्य हमें वापिस नोआखालीमें बुला रहा था। उपवास तोड़नेके समारोहकी समाप्तिकी प्रतीक्षा किये बिना चारु चौधरी और मैं जल्दीसे ढाका मेल पकड़नेके लिए स्टेशन चले गये। हमारी जेबमें पूर्व बंगालके मुख्यमंत्री ख्वाजा नजीमुद्दीनके नाम गांधीजीका एक पत्र था। जब हम धुंधलकेमें गांधीजीके सामने रख देनेके लिए आये हुए अवैध हथियारोंसे भरी हुई मोटर-ट्रकोंके पाससे जल्दी जल्दी गुजरे, तो टागोरके गीत और रामधुनके स्वर हमारे कानोंमें गूंज रहे थे।

गांधीजीका पत्र नजीमुद्दीनको

४ सितम्बर, १९४७

यह पत्र आपको प्यारेलालजी देंगे । . . . आप जानते होंगे कि सतीशबाबू और खादी-प्रतिष्ठानके कुछ आश्रमवासी मेरे दिल्लीसे लाये हुए कुछ सहायकोंके साथ नोआखालीमें इसलिए रखे गये थे कि आतंक और साहसहीनताके शिकार बने हुए हिन्दुओंकी वे सहायता करें और सम्भव हो तो उन्हें नोआखालीसे भाग जानेसे रोकें । . . . ऐसा करके मेरे खयालसे मैं नोआखालीके मुसलमानोंकी भी सेवा कर रहा था, यद्यपि उन्हें मेरी मददकी कोई जरूरत नहीं थी । परन्तु वहां पहुंचकर मैंने देखा कि मैं उनकी भी कुछ मदद कर सकता हूं । मैंने घोषणा कर दी थी कि मैं नोआखालीमें या तो करूंगा या मरूंगा । इसका अर्थ यह है कि यदि मेरे यथाशक्ति किये गये प्रयत्नसे दोनों समुदाय मित्र नहीं बन जाते, तो मैं वहां मरना पसन्द करूंगा । इसी बीच बिहारसे पुकार आ गई . . . और मुझे दौड़ कर बिहार जाना पड़ा । इस बार तो मुसलमानोंकी मदद करनी थी, क्योंकि वे बड़ी संख्यामें भागकर बंगाल, सिन्ध और दूसरे मुस्लिम बहुमतवाले भागोंमें चले गये थे । तबसे मैं नोआखाली वापस नहीं जा सका हूं । जब अन्तमें मैं पिछले महीनेकी ९ तारीखको कलकत्ते आया तो मुझे शहीद साहबने पकड़ लिया; और मैं अभी यहीं हूं । बादकी सब बातें आपको मालूम हैं ।

यह पत्र मैं अपने बिस्तरे पर लेटे लेटे लिखवा रहा हूं । हर आदमी मुझे सान्त्वना दे रहा है कि शान्तिके प्रथम १५ दिन जल्दी ही लौट आयेंगे । ऐसा हुआ तो शायद मैं अपना उपवास काफी जल्दी तोड़ कर तुरन्त अपना काम फिरसे हाथमें ले सकूंगा । पंजाबके दोनों भागोंसे मेरे पास आग्रहपूर्ण निमंत्रण आया है । मेरी रायमें दोनों भाग बिलकुल पागल हो गये हैं । इस बीच मैं चाहता हूं कि आप मुझे नोआखालीका सब हाल बतायें । प्यारेलालजी मेरे दृष्टिकोणसे वहांकी तमाम बातें आपको बतायेंगे । . . . मैं जानता हूं कि आप अत्यंत नाजुक वक्तमें पूर्व बंगालके मुख्यमंत्री बने हैं । ईश्वर आपकी सहायता करे ।

दूसरे दिन तीसरे पहर हम ढाकामें ख्वाजा नजीमुद्दीनसे मिले । "मैं इस पद पर नया ही आया हूं । मुझे अभी तक स्थितिके तथ्योंसे पूरी तरह परिचित होनेका समय भी नहीं मिला है," उन्होंने हमसे कहा । वे हमारी सारी बात उत्सुकतासे सुनते रहे । आर्थिक जिम्मेदारीसे सम्बन्ध रखनेवाली बातोंमें, जैसे उपद्रवोंके शिकार हुए लोगोंको दोष रही राहत-ग्रांट देना, मुख्यमंत्रीने हमें कोई वचन नहीं दिया । वे बोले

: सरकार इस समय भारी आर्थिक तंगी अनुभव कर रही है । मुझे अपने वित्तमंत्रीसे सलाह-मशविरा करना होगा । परन्तु यह काम तुरन्त हाथमें लेने और भरसक कोशिश करनेका उन्होंने वचन दिया ।

अल्पसंख्यक कौमके सताये जानेकी शिकायतोंके बारेमें वे जरा आत्म-सन्तोषका भाव रखते दिखाई दिये । नोआखालीमें ऐसी घटनाएं "सदा सामान्य" रही हैं; लेकिन "पहले कोई उनकी बहुत परवाह नहीं करता था ।" फिर भी वे इस बातमें हमसे सहमत थे कि बुरे भूतकालको भविष्यके लिए उदाहरण नहीं बनाया जा सकता और हालमें जो घटनाएं घटी हैं उन्हें बन्द करनेका पूरा प्रयत्न होना चाहिये । उन्होंने "खतरनाक व्यक्तियों" की सूची हमसे मांगी । हमने उन्हें सुझाया कि वे अपने भूतपूर्व पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट अब्दुल्लाको बुलाकर पूछें, जो अब भ्रष्टाचार-विरोधी विभागमें हैं, और भूतपूर्व जिला-मजिस्ट्रेट श्री मेकिनर्नीसे पूछें, जो अब भी नोआखालीमें हैं और बाढ़-कष्ट-निवारण कार्यमें लगे हुए हैं । उन्होंने कहा, मैं पूछूंगा । जरूरत हुई तो मैं आपको फिर बुलवा लूंगा ।

हमने उस घोर विरोधका भी सब हाल उन्हें बताया, जो स्थानीय मुस्लिम लीगी तत्त्वों द्वारा हमारी छावनीके खिलाफ किया जा रहा था । उन्होंने पूछा : "क्या आप कभी पुलिस या सेनाके सैनिकोंके साथ बाहर निकलते हैं ? नोआखालीके लोग इस पर बहुत नाराज होते हैं । क्या आपके आदमी हथियार रखते हैं, जैसे लाठियां ?" मैंने उत्तर दिया: "कभी नहीं । हम पुलिस और सेनासे बिलकुल दूर रहे हैं । रही बात हथियारोंकी, सो हमारी छावनीमें कोई हथियार नहीं रखने दिये जाते । मैं स्वयं तो आम तौर पर अकेला ही निकल जाता हूं और जब बाहर जाता हूं तो रातको लालटैन तक नहीं ले जाता ।"

वे हमारी छावनीके बारेमें तमाम हालचाल जानना चाहते थे: हमारी प्रवृत्तियां किस प्रकारकी हैं और हमारा उद्देश्य क्या है । हमने उनसे कहा : हमारी प्रवृत्तियोंका लक्ष्य दोनों कौमोंकी सेवा करना है, ताकि दोनोंको हार्दिक एकता और मित्रताके सम्बन्धमें बांधा जा सके । हमारा ध्येय आत्म-विलोपनका है अर्थात् ज्यों ही हमें स्थानीय हिन्दू और मुसलमान यह विश्वास दिला देंगे कि अब नोआखालीमें साम्प्रदायिक शान्ति खतरेमें नहीं है और वे अपने पैरों पर खड़े हो सकेंगे, त्यों ही हम अपना काम समेट कर यहांसे चले जायंगे । उन्होंने सुझाया कि हमें कुछ स्थानीय मुस्लिम लीगी नेताओंका सहयोग लेना चाहिये । उनके नाम भी उन्होंने बताये । हमने भूतकालमें उन्हें समझानेके अपने असफल प्रयत्नोंकी कहानी उन्हें सुनाई । हमने खिलाड़ीकी भावनासे एक प्रस्ताव रखा : "मुस्लिम लीग अपने कुछ विश्वस्त

कार्यकर्ताओंको नियुक्त करके हमारी छावनीके भीतर एक ऑफिस खोल दे और वे हमारी प्रवृत्तियों पर निगाह रखें और अपने सन्तोषके लिए देखें कि सेवाके सिवा और गांधीजीके शान्ति-मिशनको पूरा करनेके सिवा हमारा दूसरा कोई हेतु है या नहीं।"

मैंने यह भी कहा: "हमारी महत्त्वाकांक्षा तो यह है कि पाकिस्तानके अधिकारी स्वयं हमारी उपयोगिताको स्वीकार करें और हमें अपना सहायक समझें। अगर इसमें हम असफल सिद्ध हों, तो मैं यह चाहूंगा कि हम अपनी छावनी बन्द करके यहांसे चले जायेंगे। उस सूरतमें गांधीजी आकर अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार अकेले नोआखालीमें रहेंगे। हम तो यहां केवल उनके आदेशोंका पालन करनेके लिए ही रहते हैं।"

मुख्यमंत्रीने उत्तर दिया: "मैं अगर यह स्वीकार करूँ तो आप कोई खयाल नहीं करेंगे कि जब तक दोतों पक्ष एक-दूसरेके विचारोंको पूरी तरह जान न लें तब तक उनके बीच पूरा सहयोग नहीं हो सकता। अब तक लीगकी नीति गांधीजीके साथ असहयोग करनेकी थी। सही हो या गलत, लीग उनके नोआखालीमें आने और रहनेके हेतुकी कदर नहीं करती थी। आप इसे गलतफहमी कह सकते हैं। जब गांधीजी बिहार गये तब भी कुछ लोगोंको शंकाएं थीं, परन्तु कलकत्तेमें उन्होंने मुसलमानोंके लिए जो कुछ किया उससे उन सबके दिल गांधीजीने पूरी तरह जीत लिये हैं। अब स्थिति बदल गई है। सत्ता मुस्लिम लीगके हाथमें आ गई है। लीग आपके सहयोगका स्वागत करेगी; सच पूछा जाये तो वह आपका सहयोग चाहेगी। आखिर तो अकेली पुलिस शान्ति कायम रखनेके लिए बहुत कुछ नहीं कर सकती। इसलिए आप विश्वास रखें कि आपके शान्तिके काममें लीगका पूरा सहयोग आपको मिलेगा; और मैं आश्वासन देता हूं कि लीग आपको पूरा सन्तोष देगी। जब तक वह आपसे विश्वासका प्रमाण-पत्र प्राप्त नहीं कर लेगी तब तक मुझे सन्तोष नहीं होगा।" उन्होंने यह भी कहा : अब आपकी बात रह जाती है। तो मेरा आप पर पूरा भरोसा है। आप कभी कोई ऐसी बात नहीं करेंगे, जो उचित न होगी।

बातचीत कुछ हिन्दुस्तानीमें और कुछ अंग्रेजीमें हुई। जब चारुने उन्हें बातचीतके बीचमें बंगलाका एक पत्र दिया तो वे बोले: "आमि बांगला परते पारि ना, किन्तु बुजिते पारि (मैं बंगला पढ़ नहीं सकता, परन्तु समझ सकता हूं।) इस पर चारुने पत्र पढ़कर सुना दिया।

हमें विदा करते समय उन्होंने मुझसे कहा : "महादेव देसाई मेरे बहुत निकट आ गये थे । उनकी मृत्युके पश्चात् मुझे उनका न होना खटकता है । वे मेरे और गांधीजीके बीच कड़ी बना करते थे । आशा है, यह कमी आप पूरी करेंगे ।"

उनमें "कुलीन और सुशिक्षित" मनुष्यकी संपूर्ण सज्जनतता थी । बादमें हमें पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट अब्दुल्लासे उनकी अनोखी प्रामाणिकताका हाल मालूम हुआ । अब्दुल्लाने हमें बताया : "मैंने भ्रष्टाचारसे निबटनेके लिए उनसे अतिरिक्त अधिकार मांगे । उन्होंने कहा कि आपको मेरे घरकी तलाशी लेने और मेरे किसी भ्रष्टाचारका पता चले तो मुझे गिरफ्तार करनेका भी अधिकार है । उसी समय उनकी मेज पर टेलीफोन बोला । उनकी पत्नी बोल रही थीं : 'आज ईदका दिन है । तुम थोड़ी ज्यादा शक्कर और आटा नहीं मंगवा सकते ?' उन्होंने उत्तर दिया : 'अब्दुल्ला मेरे सामने ही बैठेहैं । मैं अभी अभी उनसे कह रहा था कि उन्हें मेरे मकानकी तलाशी लेनेका और मेरी तरफसे कोई अनियमितता पाई जाय तो मुझे गिरफ्तार कर लेनेका भी अधिकार है । यदि हमने राशनिंगके नियम जरा भी तोड़े, तो ये हम पर टूट पड़ेंगे ।" बेगम साहबकी ईदकी फरमाइशका यह अन्त हुआ !"

ख्वाजा साहबके सुझाव पर हम मुख्यमंत्रीसे दूसरे दिन फिर मिले । उनके वित्तमंत्री हमीदुलहक चौधरी भी उपस्थित थे । बातचीत ज्यादातर सुरक्षाके प्रश्न पर केन्द्रित रही । हमने गुंडोंके एक नेताका नाम बताया । वित्तमंत्रीने उसका वर्णन यों किया : "वह आदमी राजनीतिक निराशाका शिकार है । उसने सोचा कि इन दंगोंको संगठित करके वह अपनी खोई हुई साख फिरसे जमा लेगा और अपनी विफल महत्त्वाकांक्षा पूरी कर लेगा ।" ऐसे एक दूसरे नेताके बारेमें वे बोले : मैं उसे अच्छी तरह जानता हूं, क्योंकि वह मेरा मुवक्किल रह चुका है । "में उसके अस्थिर भावुक स्वभावको पहचानता हूं और जानता हूं कि कैसे उसने रामराम पटवारीके सारे घराने (मर्दों) का इसलिए सफाया कर दिया कि पटवारीने उसे निराश कर दिया था ।"

ख्वाजा नजीमुद्दीन दोनों नेताओंके बारेमें अपने वित्तमंत्रीके इस वर्णनको सुन रहे थे । वे बोल उठे: "इन लोगोंका हम क्या करेंगे ?" उन्होंने हमसे पूछा : उनके खिलाफ जो मुकदसे चल रहे थे उनका क्या हुआ ? हमने उन्हें बताया कि आगेकी जांचको दबा देने और मुकदमे वापस लेनेके लिए लोगोंको किस तरह डराया-धमकाया जा रहा है ।

इस पर उन्होंने हमें बताया कि किस प्रकार स्थानीय मुसलमानोंमें इस बात पर असन्तोष है कि पुलिस निर्दोष मुसलमानों पर "अत्याचार" कर रही है। उनका मतलब यह था कुछ मुसलमानोंको, जो निर्दोष माने जाते थे, दंगोंके मामलोंमें जबरन् फंसानेकी कोशिश करनेसे मुस्लिम समाजमें विरोधकी भावना फैली थी और इसी कारण सुहरावर्दी मंत्रि-मंडलकी लोक- प्रियता नहीं रही थी। "सौभाग्यसे मैं उस समय सरकारमें नहीं था। इसलिए आप विश्वास रख सकते हैं कि पिछली घटनाएं फिरसे नहीं होने दी जायंगी, क्योंकि किसी भी सत्तारूढ़ मंत्रि-मंडलको अराजकताके दमनके लिए कठोर उपायोंका आश्रय लेना पड़ेगा और इसके लिए लोग उससे घृणा करेंगे ही। यह स्वाभाविक है। और इसका हमें कोई पुरस्कार नहीं मिलता।"

नवम्बर १९४६ में गांधीजीने नोआखाली जानेकी अपनी योजना पर डटे रहकर पूर्व बंगालमें बैठे बैठे बिहारके मुसलमानोंकी सेवा की थी। अब वे कलकत्तेके मुसलमानोंकी सेवाके लिए वहां ठहर कर नोआखालीके हिन्दुओंकी सेवा कर रहे थे, हालांकि नोआखालीकी पुकार उनके कानोंमें गूंज रही थी। कलकत्तेसे वे रक्त-रंजित पंजाबके लिए रवाना हुए। परन्तु वे पंजाब भी नहीं पहुंच सके। दिल्लीने उन्हें रोक लिया। दिल्लीमें रहकर वे सारे भारत और पाकिस्तानकी सेवा करनेमें समर्थ हुए।

इन निर्णायक दिवसोंमें गांधीजीने अपने जिस उत्कृष्ट रूपका दुनियाको दर्शन कराया, वह पहले कभी देखनेको नहीं मिला था। उन दिनों वे विराट पुरुषके समान संकटके एक स्थानसे दूसरे स्थान पर टूटते हुए आकाशको थामनेके लिए दौड़ जाते थे। प्रार्थना-सभाओंमें उनके दैनिक उद्गारों, उनके सामान्य 'हां' और 'ना', उनके संकेतों – यहां तक कि उनके मौनने भी भारतकी स्वाधीनताके कमजोर जहाजको तूफानी समुद्रकी उद्वेलित लहरोंसे बाहर निकाल कर बन्दरगाह तक सुरक्षित रूपमें पहुंचानेके लिए आदेशोंका, प्रहरी-संकेतोंका, आज्ञाओंका रूप ले लिया था।

* * * * *